GL H 491.1
KAV V.3
122270
LBSNAA

ी राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
L.B.S. National Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY

122270

अवाप्ति संख्या
Accession No. 15099

वर्ग सख्या
Class No. GLH 491.1

पुस्तक संख्या
Book No. KAV कविता

V.3 भाग 3

कविता-कौमुदी

[तीसरा भाग]

ग्राम-गीत

सम्पादक

रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक

नवनीत-प्रकाशन लिमिटेड

बंबई

प्रकाशक
नवनीत-प्रकाशन लिमिटेड
तारदेव, बंबई

पहला संस्करण : १९२८
दूसरा संस्करण : १९५५

मूल्य आठ रुपये

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
इलाहाबाद

विषय-सूची

भूमिका	१
दूसरे संस्करण की भूमिका	७
गाँवों की ओर	९
गीतों की दुनिया में	२५
गीत-संग्रह	२८
गाँवों की अद्भुत रचना	३८
शिक्षा	३९
मौखिक विश्वविद्यालय	३९
कथा-प्रणाली	४०
शिक्षा का आरंभ	४१
गीत, खेल और कहानियाँ	४१
नौजवानों का साहित्य	४५
अधेड़ों और वृद्धों का साहित्य	४५
जातीय गीत	४५
जातीय नाच	४६
संकेताक्षर	४६
सम-सामयिकता	४७
स्त्री-साहित्य	४८
पुरुषों का साहित्य	४९
कहावतें और महावरे	५१
बुझौवल	५२

भाषा की टकसाल ५२
न्याय की व्यवस्था ५५
स्वास्थ्य और स्वच्छता ५७
सहयोगिता ६१
गृह-प्रबंध और मितव्ययिता ६३
ग्रामगीतों की व्यापकता ६४
ग्रामगीतों का वर्गीकरण ६६
ग्रामगीत या लोकगीत ६७
ग्रामगीतों की उत्पत्ति ६९
गीतों में कविता ७०
गीतों की प्राचीनता ७८
गीतों के रचयिता ८८
गीतों में एकात्मता ८९
गीतों में करुण-रस ९१
गीतों की भाषा ९९
गीतों में प्रकृति के साथ तन्मयता १०१
स्वाभाविकता १०३
अस्वाभाविकता ११५
गीतों में इतिहास १२९
गीतों में आदर्श गृहस्थी १३०
गीतों की दुनिया में परदा नही है १३१
गीतों में विवाह का आदर्श १३१
बहू के साथ व्यवहार १४८
गीतों में सास का चित्र १५४
गीतों की स्त्रियाँ लिखना-पढ़ना जानती हैं १५५
गीतों में उपदेश १५६
गीतों में चरखा १६३

कविता-कौमुदी

सोहर	१७१
अन्न-प्राशन का गीत	३१०
मुण्डन के गीत	३१२
जनेऊ के गीत	३१७
विवाह के गीत	३४३
जाँत के गीत	४५४
वर्षा-ऋतु के गीत	५५८
निरवाही	५५९
हिंडोले के गीत	६०४
कजली	६५५
कोल्हू के गीत	६५८
वसंत-ऋतु के गीत	६७५
चौताल	६७५
होली	६७६
चैती	६७७
ग्राम-कथायें	६७९
ग्राम-गाथायें	६९३
आल्हा	६९३
शीतला माता के गीत	६९९
बारहमासा	७०२
मेले के गीत	७१८

कौमुदी-कुंज

जातीय गीत	७४७
अहीरों के गीत	७४७

कहारों के गीत ७६०
तेलियों के गीत ७६७
गड़रियों के गीत ७६८
धोबियों के गीत ७७३
चमारों के गीत ७८३
प्रान्तीय भाषाओं के गीत ७९१
काश्मीरी गीत ७९१
पहाड़ी गीत ७९४
नेपाली गीत ८०४
पठानों के गीत ८०६
पंजाबी गीत ८०८
सिंधी गीत ८०९
राजस्थानी गीत ८११
मालवी गीत ८२९
भीलों के गीत ८३०
मराठी गीत ८३२
गुजराती गीत ८३३
कन्नड़ गीत ८३७
मलयाली गीत ८३७
तमिल गीत ८४१
तेलुगु गीत ८४२
उड़िया गीत ८४३
बुंदेलखंडी गीत ८४५
मुंडा गीत ८४७
संथाली गीत ८४८
बँगला गीत ८५१
असमी गीत ८५२

मैथिली गीत ८५४
भोजपुरी गीत ८५६
व्रजभाषा के गीत ८५९
अनुक्रमणिका ८६५
सम्मतियाँ ८७७

भूमिका

मैंने सन् १९२५ से १९३० तक लगातार देशभर में घूम-फिर कर, मासिक पत्रों में लेख लिखकर तथा डाक-द्वारा पत्र भेजकर लगभग १५ हज़ार ग्राम-गीतों का संग्रह किया था। सन् १९२९ में मैंने उनमें से कुछ ग्रामगीत पुस्तकाकार प्रकाशित भी किये थे। इस पुस्तक में जो गीत दिये गये हैं, वे सब उसी संग्रह से लिये गये हैं। मैं अपने संग्रह को समुद्र की एक बूंद के बराबर भी नहीं मानता हूँ। यद्यपि १९३० के बाद भी मेरा प्रयत्न अबतक जारी है, पर इसका कार्य-क्षेत्र ऐसा असीम दिखाई पड़ा और सहायक इतने कम मिले कि अब मेरे उत्साह मे शिथिलता आ गई है। अब अनुभव हो रहा है कि संग्रह का काम किसी एक व्यक्ति के बूते का नहीं है, बल्कि सरकार या अच्छी शक्तिशालिनी किसी संस्था के करने का है।

अपनी गीत-यात्रा में यह देखकर मुझे कितनी ही बार आंतरिक वेदना हुई है कि हमारे देशवासियों की ज्ञान-पिपासा शांत-सी पड़ती जाती है। दूसरी जातियों के ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति तो कहाँ? हम अपने पूर्वजों ही का अनुभूत ज्ञान छोड़ते जा रहे हैं। पता नही, इस पतन की सीमा कहाँ है?

अमेरिका के लोग रेड इंडियनों में प्रवेश करके उनकी एक-एक बात के जानने में लगे हैं। योरप के लोग अफ्रीका के मनुष्य-भक्षकों तक के बीच मे पहुँचकर उनके रीति-रस्म की खोज में लगे हैं। मनुष्य ही के नहीं, यूरोप-अमेरिका के विद्वान् पशु-पक्षी और कीट-पतङ्ग तक के रहन-सहन और स्वभाव की खोज करने में दिन-रात लगे रहते हैं। और हम? हम अपने ही देश-वासियों से अपरिचित हैं। गीत ही को लीजिये; अंग्रेज़ी में ग्राम-गीत-साहित्य पर सैकड़ों पुस्तकें हैं। विभिन्न जातियों के रस्म-रिवाजों

की जानकारी के लिये अंग्रेज़ विद्वानों ने अपना एक-एक जीवन लगा दिया है, और अपने देश-वासियों के कल्याण के लिये अपनी मातृ-भाषा का भाण्डार भरा है। यूरोप में ग्राम-गीतों के संग्रह के लिये कितनी ही सोसाइटियाँ हैं। वहाँ ग्राम-गीतों का जमा करना एक पेशा हो गया है, और गीत जमा करनेवालों की एक जाति बन गई है। रूस ने अभी थोड़े ही दिन हुये, अपने देश के ग्राम-गीतों का एक-एक शब्द लिख लिया है। पर हम? हम त्याग और वैराग्य का पाठ रट रहे हैं।

आटा पीसने वाली चक्की हमारे जाँत के गीतों को भी पीसती जा रही है। मदरसे किसानों, अहीरों, धोबियों और चमारों के गीतों को चुपचाप चाटते जा रहे हैं; कन्या-पाठशालायें नीरस, लक्ष्यहीन, प्रभाव-रहित, निर्जीव और हृदय को स्पर्शन करनेवाली तुकबन्दियों से कन्याओं को उनके मधुर, उपदेशप्रद और लय-विशिष्ठ गीतों से दूर घसीटे जा रही हैं। और हम चुपचाप बैठे टुकर-टुकर ताक रहे हैं। स्व० लाला लाजपतराय ने श्रीनगर (काश्मीर) में गीतों की चर्चा छिड़ने पर एक गहरी आह के साथ यह वाक्य कहा था—We are losing every thing, यह अक्षरश: सत्य है। हमारी दशा उस ग़ाफिल मुसाफिर की-सी है जो अंधा भी है और सो भी रहा है।

गीतों में जो कवित्व है, उसे ही मैं अपनी लेखनी-द्वारा प्रकट करने में समर्थ हुआ हूँ। पर ये गीत जब स्त्री-कंठ से निकलते हैं, तब इनका सौन्दर्य, इनका माधुर्य और इनका उन्माद कुछ और ही हो जाता है। इससे गीतों का आधे से अधिक रस तो स्त्रियों के कंठ ही में रह गया है। खेद है, मैं उसे कलम की नोक-द्वारा अपने पाठकों तक नहीं पहुँचा सका। यूरोप-अमेरिका में यह काम ग्रामोफोन के रिकार्डों से लिया जाता है। विधाता ने स्त्रियों के कंठ में जो मिठास रख दी है, जो लचक भर दी है, उसे मैं लोहे की लेखनी में कहाँ से ला सकता हूँ?

जब गृह-देवियाँ एकत्र होकर पूरे उन्माद के साथ गीत गाती हैं, तब उन्हें सुनकर चराचर के प्राण तरङ्गित हो उठते हैं। आकाश चकित-सा

जान पड़ता है, प्रकृति कान लगाकर सुनती हुई-सी दिखाई पड़ती है। मैं एक अच्छे अनुभवी की हैसियत से अपने उन मित्रों से, जो कौवाली और टप्पे सुनने को बाहर मारे-मारे फिरते हैं, सानुरोध कहता हूँ कि लौटो, अपने अन्तःपुरों को लौटो। कस्तूरी-मृग की तरह सुगन्ध-स्रोत की तलाश में कहाँ फिर रहे हो? स्वर का सच्चा सुख तुम्हारे अन्तःपुर में है। वहाँ की हृत्तन्त्री का तार जरा अपने मधुर वचनों से छू दो, फिर देखो, कैसा सुखमय जीवन जाग उठता है।

गीतों की मूल बोली या भाषा का पता लगाना बहुत कठिन ही नहीं, असंभव-सा है; क्योंकि गीत उत्पन्न होकर भाषा के प्रवाह में तैरते चलते हैं। मनुष्य के कंठ ही उनके घाट हैं। उपयुक्त कण्ठ पाकर कोई कहीं बसेरा ले लेता है, कोई कहीं। उन पर उनके आसपास का ऐसा प्रभाव पड़ जाता है कि उनका मूल रूप कायम नहीं रहता। इससे जहाँ वे गाये जाने लगते हैं, वहाँ के बहुत से शब्द, जो पर्यायवाची होते हैं, उनमें बैठ जाते हैं और उनके मूल शब्दों को स्थान-च्युत कर देते हैं। इससे कौन-सा गीत पहले-पहल कहाँ बना, इसका पता नहीं लगाया जा सकता। केवल इस बात का पता लग सकता है कि कौन-सा गीत कहाँ गाया जाता है।

स्त्रियों के गीतों में तो और भी गड़बड़ी रहती है। क्योंकि कन्यायें विवाहिता होकर जब दूसरे स्थानों को जाती हैं, तब अपनी असली बोली के गीत भी अपने साथ ले जाती है। उनकी ससुराल की बोली जुदा हुई, तो भी वे अपने गीतों में बहुत कम हेर-फेर करती हैं। एक तो शिक्षिता न होने के कारण हेर-फेर कर नहीं सकतीं; दूसरे अपरिचित बोली के शब्दों की प्राकृतिक मिठास से वे परिचित भी नहीं होतीं, इससे अपने परिचित शब्दों को बदलना वे पसंद भी नहीं करतीं और जहाँ वे जातीं हैं, वहाँ भी प्रायः उनके जाने हुए सब प्रसंगों के गीत वहाँ की बोली में मौजूद मिलते हैं, इससे हेर-फेर की जरूरत भी नहीं पड़ती। पर वे अपने लड़कपन के याद किये हुये गीतों को अधिक सरस समझती हैं और जब उनसे पूछा जाता है, तब उन्हीं गीतों को वे लिखाती तथा लिखकर भेजती भी हैं। यही कारण

है कि कभी-कभी पश्चिमी जिलों से पूर्वी जिलों में गाये जाने वाले गीत मिल जाते हैं, और पूर्वी जिलों के गीत पश्चिमी जिलों में।

मैंने इस पुस्तक में जितने गीत दिये हैं, वे भिन्न-भिन्न जिलों के हैं। पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वास्तव में वे उसी जिले के गीत हैं, या आसपास के दूसरे जिलों के, जहाँ से कन्यायें उन्हें ले गई हैं।

भाषा या बोलियों के अनुसार गीतों का विभाग करना भी बहुत मुश्किल है। किसी-किसी जिले में एक से अधिक बोलियाँ बोली जाती हैं। जैसे, जौनपुर के पश्चिमी हिस्से में अवधी और पूर्वी हिस्से में भोजपुरी का मिश्रण मिलता है। अवधी और ब्रजभाषा के सरहदी जिलों में भी बोलियों का मिश्रण मिलता है। यही कारण है कि एक-एक गीत में दो-दो, तीन-तीन बोलियों के शब्द पाये जाते हैं।

सभी ग्राम-गीत संग्रहणीय नहीं होते। उनमें कूड़ा-कचरा भी बहुत है। अच्छे पारखी ही उनमें से रत्नों को ढूंढ़ निकाल सकते हैं। अतएव योग्य व्यक्तियों ही को इस कार्य में लगना चाहिये।

जो गीत और कहावतें मैंने इस पुस्तक मे दी हैं, उनमें कही अधिक सरस और उपयोगी गीत और कहावतें अभी ग्रामीणों के कंठों मे हैं। वहाँ से निकालकर उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित कर देना बहुत ज़रूरी है।

योरप और अमेरिका में ग्राम-साहित्य के संग्रह का कार्य बहुत ज़ोरों पर हुआ है। वहाँ गीतों के रेकार्ड तैयार किये गये और नृत्यों के फिल्म। इस देश में भी ऐसा ही उद्योग करने की शीघ्र ज़रूरत है। क्योंकि जितने वृद्ध स्त्री-पुरुष रोज़ मर रहे हैं, उनमें से हरएक ग्राम-साहित्य की सम्पत्ति को कम ही करता जा रहा है।

ग्राम-साहित्य के संग्रह में कई कठिनाइयाँ अनिवार्य हैं। सबसे बड़ी कठिनाई धैर्य सँभालने की है। क्योंकि गाँव के लोग बोलकर लिखा नहीं सकते। इसका उन्हें अभ्यास ही नही होता। वे जब गाने की तरंग में आते हैं और गाने लगते हैं, तभी सुन-सुनकर गीत लिखे जा सकते हैं। वे जानते ही नहीं कि कहावतें और महावरे क्या चीज़ हैं। जब वे आपस में बातचीत

करने लगते हैं, तब उनके मुँह से वाक्य-वाक्य में कहावतों और महावरों का ताँता लग जाता है। धैर्यवान और सावधान संग्रह-कर्ता चुन-चुनकर उन्हें लिख ले सकता है।

परदे की प्रथा के कारण भी स्त्रियों के गीत मिलने में कठिनाई पड़ती है। इसके लिये मेले-ठेले में उनके झुण्ड के साथ काग़ज़-पेंसिल लेकर चलना पड़ेगा। धान का खेत निराते समय मेंड पर, छत कूटते समय छत पर और चक्की पीसने के समय रात के आख़िरी पहर में गृहस्थ के घर के पिछवाड़े बैठना पड़ेगा। नीची श्रेणी के लोगो के शादी-ब्याह में सम्मिलित होना, जाड़े की रात में अलाव के पास बुड्ढों के साथ बैठकर बातें सुनना और जाड़े की आधीरात से चलनेवाले ईख के कोल्हू के निकट बैठकर, थर-थर काँपते हुये, गीत लिखना पड़ेगा। कठिन तपस्या है। मैंने अनुभव करके देख लिया है।

कितने ही गीत अधूरे मिलते हैं, जिन्हें कई गाँवों में सुन-सुनकर पूरा करना पड़ेगा। ग्राम-गाथाओं को महीनों बैठकर सुनना पड़ेगा। किसानों और मज़दूर पेशेवालों की फ़ुरसत का भी सवाल है, जो पैसे से हल होगा।

इस काम में, जबतक देश के विद्वान् और सुशिक्षित युवक अपनी आत्म-प्रेरणा से न प्रवृत्त हों, तबतक लाखों रुपये का खर्च है, और कोई गवर्नमेंट ही इसे करा सकती है। जहाँ ग्राम-सुधार के लिये सरकार हर साल लाखों रुपये खर्च कर रही है, वहाँ प्रति वर्ष वह बीस-पचीस हज़ार रुपये भी इस काम में खर्च करे, तो मेरा अनुमान है कि तीन-चार वर्ष के लगातार परिश्रम से एक प्रांत का पूरा कंठस्थ साहित्य लिपि-बद्ध हो जायगा।

इस पुस्तक में प्रकाशित गीतों और प्रायः सब कहावतों में उनके ज़िले के नाम नहीं दिये गये हैं। इसका कारण यह है कि मुझे स्वयं उनके ज़िले मालूम नहीं हैं। उनमें से कुछ तो कई जिलों में बिना किसी पाठान्तर के प्रचलित हैं।

मुझे हार्दिक हर्ष है कि इस नये पथ पर चलने वाला मैं पहला पथिक और पहला ही पथ-प्रदर्शक भी हूँ, जिसने एक मंज़िल खतम कर ली है।

मेरा काम गीतों की उपयोगिता प्रकट करके, उनके संग्रह के लिये जनता में सुरुचि और प्रयत्न जाग्रत करने का था। अपनी समझ में मैंने उसे पूरा कर लिया।

संग्रह का काम किसी क्रम-विशेष को ध्यान में रखकर नही किया गया है। यह तो इधर-उधर बिखरे पड़े हुये रत्नों को चुनकर शिक्षित-समाज के सामने रख देने भर का काम है, ताकि वे भी उन्हें देखें और उपयोगी पायें तो वे भी आकर्षित हों और इस नष्ट होती हुई अमूल्य-निधि की रक्षा में प्रवृत्त हों। इसीसे इस संग्रह में किसी प्रांत या बोली या सामाजिक प्रथाओं और रस्म-रिवाजों के गीत पूरे विश्लेषण के साथ अलग-अलग नही मिलेंगे। अब रास्ता खुल गया है। उसकी सब मंज़िलें चलकर पूरी करने वाले लोग आगे आयेंगे।

मैंने जो कुछ किया, वह हिन्दी-संसार के सम्मुख है। वह चाहे भला हुआ हो, या बुरा, सब हिन्दी-संसार को समर्पित है। गीत उसी के रत्न हैं, जो उसी के चारोंओर बिखरे पड़े हैं। उनका कोई क़द्रदान नही था। मैंने उनमें से थोड़े रत्नों को उठाकर आगे रक्खा है और बताया है कि ये रत्न हैं, इनकी रक्षा होनी चाहिये। मैं इतना ही कर सकता भी था।

ये रत्न मुझे बहुत ही प्यारे हैं। क्योंकि इनको मैंने अपना बहुमूल्य स्वास्थ्य, जिसका मूल्य रुपयों से नही आँका जा सकता, व्यय करके प्राप्त किया है। यह वह पौधा है, जिसे मैंने अपने स्वास्थ्य से सींचा है। ईश्वर करे, यह बढे, और फूले-फले। इसकी छाया में, संसार के घोर दुःखों से दग्ध जन कुछ देर विश्राम लेकर शीतल, स्वस्थ और सुखी हों।

इस कार्य में मुझे बहुत से मित्रों और बहनों ने सहायता पहुँचाई है। सचमुच यदि उनकी सहायता मुझे न मिली होती, तो मैं गीतों का अगाध, और अपार सागर साहस की एक छोटी-सी नौका पर चढकर नहीं तर सकता था। सब के नामों की सूची बड़ी लम्बी है। कुछ मित्रों ने पत्र-द्वारा अपनी सम्मतियाँ भेजकर मेरे हृदय को बल प्रदान किया है। जब कितने ही शिक्षित कहे जाने वाले लोग मेरी हँसी उड़ाते थे, मेरे उद्योग को

पागलपन बतलाते थे, कितने ही लोग कहते थे कि मैं धन के लोभ से इस कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ, तब ये ही पत्र मुझे मार्ग से विचलित नहीं होने देते थे और मेरे धैर्य को क़ायम रखते थे। अतएव इन पत्रों का महत्व मैं कम नहीं समझता हूँ। मैं इन सब का हृदय से कृतज्ञ हूँ और अपने पाठकों से निवेदन करता हूँ कि यदि वे मेरे काम से सन्तुष्ट हों, तो वे भी मेरे सहायकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी
सं० १९८६

रामनरेश त्रिपाठी

दूसरे संस्करण की भूमिका

यह देखकर मुझे बहुत हर्ष हो रहा है कि आज लगभग पच्चीस वर्ष बाद इस पुस्तक का दूसरा संस्करण होने जा रहा है। इस बीच में इसकी लोक-प्रियता बहुत बढ़ गई। पहले मैं अपने मार्ग का अकेला पथिक था; अबतो बीसों दिखाई पड़ने लगे, जिनमें कई तो विश्रुत विद्वान् हैं। उनमें श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का नाम मैं बड़े आदर से लेता हूँ, जो मेरे बाद ही कार्य-क्षेत्र में आये, सारे देश का भ्रमण करके गीतों का संग्रह और गंभीर अध्ययन किया। इससे मुझे आशा हो चली है कि जिस काम को मैंने शुरू किया था, उसे शिक्षित वर्ग ने अपना लिया। अब तो ब्रजभाषा, भोजपुरी, मैथिली, बुंदेलखंडी, मालवी, मेवाड़ी, मारवाड़ी आदि भाषाओं के लोक-साहित्य की पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं; और कितनी ही लिखी रक्खी हैं। जनता की रुचि धीरे-धीरे ग्राम-साहित्य की रक्षा की ओर बढ़ रही है, यह मेरे अत्यंत आनंद का विषय है।

मैं सन् १९४१ में स्वास्थ्य-सुधार के लिये साहित्य-क्षेत्र से अलग हो गया था, और मेरी पुस्तकों का प्रकाशन भी बंद हो गया था। जैसे-जैसे

ग्रामगीतों की सरसता सर्वसाधारण में बढ़ती गई, वैसे-वैसे इस पुस्तक की माँग भी बढ़ती गई। किन्तु मैं स्वयं इसे प्रकाशित करने में असमर्थ था।

सन् १९५४ के प्रारंभ में नवनीत—हिन्दी डाइजेस्ट, बंबई के अध्यक्ष, श्री श्रीगोपाल नेवटिया का ध्यान इसकी उपयोगिता की ओर गया। नेवटियाजी स्वयं साहित्य के एक मर्मज्ञ विद्वान् और सुरुचि- सम्पन्न व्यक्ति हैं। उन्होंने इसके और इसके साथ ही कविता-कौमुदी के अन्य भागों के प्रकाशन का भार अपने हाथों मे ले लिया। यह दूसरा संस्करण उसी का परिणाम है।

दूसरे संस्करण की भूमिका मे मैंने कुछ अनावश्यक बातें निकाल दी हैं, और कहीं कही कुछ बढ़ा भी दी है। गीतों में घटाये नही, कुछ बढ़ाये ही गये हैं।

मैं आशा करता हूँ ग्राम-साहित्य के रसिकों की बहुत दिनों की आकांक्षा पूरी हो जायगी और वे संतोष प्राप्त करेंगे।

अंत में मै अपने परम स्नेह-भाजन श्री श्रीगोपाल नेवटिया को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरे इस बुझे हुये कीर्त्ति-दीप को फिर प्रज्वलित किया।

वसंत-निवास, सुलतानपुर — रामनरेश त्रिपाठी

१ जुलाई, १९५४

गाँवों की ओर

एक विचित्र प्रकार की शिक्षा के प्रभाव मे हम लोग अपने देश से बहुत दूर हो गये हैं। हम अपनी भाषा के थोड़े से शब्दों की परिधि में कैद हैं। न हम उस परिधि से बाहर जाना चाहते हैं और न वे शब्द देश के अन्तर्नाद को हमारी सीमा में प्रवेश ही करने देते हैं। इससे हम अपने देश में रहते हुए भी विदेशी-जैसे हैं।

वह देश कहाँ है? जहाँ वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति की आत्माएँ निवास करती हैं। वह देश कौन-सा है? जिसके घर-घर मे तुलसीदास बोल रहे हैं। सूरदास बालकों का रूप धरकर कहाँ खेल रहे हैं? कबीर कहाँ अपनी आत्मा निचोड़कर अमृत-रस बाँट रहे हैं?

गंगा की उज्जवल किन्तु चंचल, यमुना की श्यामल किन्तु गम्भीर अजस्र धारा के साथ जिनकी जीवन-धारा गीतों के रूप में प्रवाहित है, क्या हम उनसे दूर हुये जा रहे हैं?

अरे! ढाक के घने जङ्गल मे, आम, महुवे, पीपल, इमली और नीम की घनी और शीतल छाया मे, नालों के कलरव के साथ, तुलसी के चबूतरे के निकट, चमेली, माधवी, कामिनी और मालती के फूलों की सुगंध मे, वंशी की ध्वनि में, कोकिल के आलाप में, लहराती हुई पुरवा हवा में और लहलहाते हुये खेतों के किनारे जीवन का जो प्रवाह अनादि काल से प्रवाहित है, क्या हम उस प्रवाह से अलग हो गये हैं?

क्या हमारी एक विचित्र रहन-सहन हमें उस देश में जाने नहीं देती? क्या अल्पज्ञान का विशाल अभिमान उस देश की शान्ति-दायिनी ध्वनि को हमारे समीप तक पहुचने नहीं देता? क्या एक नवनिर्मित भाषा हमारे

और उस देश के बीच में लोहे की दीवार की तरह खड़ी है ? इतनी आसानी से हमें इतनी दूर कौन उठा ले गया ? आश्चर्य है :—

पास बैठे हैं मगर दूर नजर आते हैं।

आओ, एक बार चलकर हम अपने उस पुराने देश को देखें तो सही; जो नालों के किनारे, आम के घने बागों के बीच में बसा हुआ है। जिस देश में घर-घर में चंदन के वृक्ष और दरवाजों में चंदन के किवाड़े लगे हैं; जहाँ सब लोग सोने के थालों में भोजन करते हैं, सोने के बरतनों में पानी पीते हैं; जहाँ घर-घर में चित्र-शालाएँ हैं; जहाँ की सब स्त्रियाँ चित्र-कला में निपुण हैं और सब पुरुष चित्रों की सुन्दरता पर मुग्ध होने का हृदय रखते हैं; जहाँ घरों के पिछवाड़े घनी बंसवाड़ी है; आम और महुवे के पेड़ों की छाया जहाँ रास्तों को शीतल और सुखद बनाये रखती है; जहाँ प्रत्येक कंठ से गान निकलता है; जहाँ की चौपालों में राजनीति के जटिल प्रश्न एक-एक वाक्य से सुलझाये जाते हैं; जहाँ मनुष्य-मात्र के जीवन का निर्दिष्ट लक्ष्य और निश्चित पथ है; जहाँ धर्म के बंधन में सब प्रकार की स्वतन्त्रता है। जहाँ प्रेम का नशा और आनन्द का उन्माद है; जहाँ के पशु-पक्षी, वृक्ष, लता, सूर्य-चन्द्र और मेघ भी मनुष्य-जीवन के सहचर हैं; जहाँ घटायें पतियों को घर बुला लाती हैं; जहाँ कोयलें विरहिणियों के संदेश ले जाती हैं कि 'फागुन' आ गया है; जहाँ कन्याएँ अपने लिये स्वयंवर चुनती हैं; जहाँ वर अपने लिये स्वयं वधू पसन्द कर सकते हैं; जहाँ विवाह वासना-तृप्ति के लिये नहीं, बल्कि लोक-सेवा के लिये उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा से प्रेरित होकर किया जाता है; जहाँ माता के अकृत्रिम स्नेह की नदी, स्त्री के अखण्ड अनुराग की तरङ्गिणी, बहन के अपार प्रेम की सरिता और प्रकृति के शाश्वत शृङ्गार की धारा सदा प्रवाहित है।

आओ, उस देश को चलें।

क्या वह देश कहीं दूर है ? नहीं, इतना समीप है, जितना समीप

कोई दूसरा देश हो नहीं सकता। सिर्फ़ आँखों का चश्मा उतार डालना होगा, और एक बार अपनी आत्मा को स्मरण कर लेना होगा।

घटनायें जीवन की सीढ़ियाँ हैं। एक दिन एक घटना ने मेरे लिए उस देश का द्वार खोल दिया।

शाम हो रही थी। सूरज के डूबने में १०-५ मिनट की देर थी। जौनपुर से बदलापुर की सड़क पर उस दिन का शायद वही आखिरी इक्का था। इससे सड़क के किनारे बैठी हुई एक बुढ़िया को अपनी घास के लिये बड़ी ही चिन्ता थी। वह घबराई हुई आँखों से डूबते हुए सूर्य को भी देख लिया करती थी और इधर घास ले लेने के लिये इक्केवाले की खुशामद भी करती जाती थी। अंत में बुढ़िया दो आने में उतर कर चार पैसे पर कुल घास देने को राजी हो गई। पर इक्केवाले को घास की ज़रूरत ही नहीं थी। वह बातों में ही टाल-मटोल कर रहा था।

मुझे अवकाश था; क्योंकि पहिये की कील निकल गई थी, और इक्केवान उसे दुरुस्त करने में लगा था। मैं बुढ़िया की ओर आकर्षित हुआ। मैंने देखा—बुढ़िया की अवस्था साठ से कम न होगी। शरीर सूखकर हड्डी का ढाँचा-मात्र रह गया था। चेहरे पर असंख्य झुर्रियाँ थी। आँखें धुँधली हो गई थीं। बुढ़िया जो धोती पहने थी, वह सैकड़ों स्थानों पर मोटे डोरे से भद्दे तौर पर सिली हुई थी। फिर भी धोती के किनारे कई जगह से फटे थे और उनके कोने लटक रहे थे। मैं बुढ़िया से देहाती बोली में बातें करने लगा। वह भी अपनी बोली में जवाब देने लगी। जिसका भावार्थ यह है—

मैंने पूछा—बुढ़िया, सच-सच बताओ, यह घास कितने को दोगी?

बुढ़िया ने कहा—एक आना पैसा मिल जाता तो मेरा काम चल जाता।

मैंने पूछा—आज क्या तुम्हें एक आने पैसे की बड़ी जरूरत है?

बुढ़िया ने मेरी ओर कृतज्ञता से भरी हुई एक दृष्टि डाली। मानो इतना पूछकर मैंने उस पर कोई बड़ा उपकार किया था। वह एक साँस

खींचकर कहने लगी—हाँ; इसमें से दो पैसा तो मैं बनिये को देती। एक महीना हुआ उससे नमक उधार ले गई थी। कई दिन से नमक चुका है। एक पैसे का आज नमक ले जाती। मेरे एक नाती है, उसके लिये एक पैसे का गुड़ ले जाती। कई महीने से उसको गुड़ देने का वादा कर रक्खा है। कल शाम ही से वह गुड़गुड़ चिल्ला रहा है। आज मैं बड़े तड़के यह सोचकर उठी थी कि जल्दी घास बेंचकर पैसे मिल जायेंगे तो नाती के लिए गुड़ भी लेती जाऊँगी। आते वक्त मैं उससे वादा कर भी आई थी। वह मेरी राह देखता खड़ा होगा। देर हो जायगी, तो वह सो जायगा।

यह कहते-कहते बुढ़िया की आँखें भर आईं। उसके मन की वेदना मैं अब समझने लगा। मैंने पूछा—बुढ़िया! अगर यह घास तीन ही पैसे को बिकी, तब क्या-क्या खरीदोगी?

बुढ़िया का संतोष बातों से नहीं हो सकता था। उसका मन तो नाती से किये हुए वादे में विकल था। उसने कहा—भैया! आपको लेना तो है नहीं।

मैंने कहा—मैं तुम्हारी घास खरीद लूँगा। तुम मुझसे बातें करो।

बुढ़िया कहने लगी—तीन ही पैसे मिलेंगे, तो दो बनिये को दूँगी; क्योंकि उसका उधार बहुत पुराना हो गया है। उसके डर से मेरी उधार की राह बन्द है। और एक पैसे का गुड़ ले जाऊँगी।

मैंने पूछा—और नमक?

बुढ़िया ने कहा—जैसे चार रोज़ से अलोना खा रही हूँ, वैसे एक रोज़ और खा लूँगी। कल फिर तड़के उठकर घास करूँगी। उससे कुछ पैसे मिल जायेंगे, तो नमक ले जाऊँगी।

मैंने पूछा—आज तुमने दिन भर कुछ खाया नहीं?

बुढ़िया ने कहा—जंगल में खाती क्या? पहर रात रहे उठी हूँ। तब से पहर दिन रहे तक घास करती रही हूँ। कहीं घास रह भी नहीं गई है। और बाबूजी! अब पौरुष भी थक गया है। इतनी देर में यही इतनी-सी घास मिली है। सोचा था कि सड़क पर आते ही वह बिक जायगी,

में जल्दी ही घर लौट जाऊँगी और नाती को गुड़ खिलाकर तब मैं पानी पीऊँगी।

मैंने पूछा—दिन में तुमको भूख नहीं लगती।

बुढ़िया ने कहा—लगती क्यों नहीं? पर खाऊँ क्या? बहुत ज़ोर की भूख लगती है तो पानी पी लेती हूँ।

मैंने पूछा—बुढ़िया! तुम्हारी यह धोती कितनी पुरानी है?

बुढ़िया ने कहा—यह तीसरा बरस चल रहा है।

मैंने पूछा—नई धोती नही ख़रीदी?

बुढ़िया ने कहा—बेटा! कहाँ से खरीदूं? पहले जब शरीर में दम था, तब कुछ काम ज्यादा करती थी और जो पैसे मिलते थे, उनमें से काट-कपट कर कुछ जमा करती जाती थी। बरस-डेढ़ बरस में डेढ़-दो रुपये जमा हो जाते थे, उनमे मैं एक धोती ले लेती थी। अब खाने ही भर को नहीं अँटता, तो पैसे बचाऊँ कहाँ से?

मैंने पूछा—तुम्हारे कै लड़के हैं?

बुढ़िया ने कहा—एक।

मैंने पूछा—क्या वह तुमको खाने को नहीं देता?

बुढ़िया ने कहा—वही तो अकेला घर मे कमाने वाला है। वह है, उसकी स्त्री है और एक मेरा नाती है। बहू को जब से लड़का हुआ है, तब से वह बीमार ही रहती है। वह कमा सकती ही नहीं। अकेला मेरा लड़का दिन भर मजदूरी करके जो कुछ लाता है, वह उन्ही तीनों के लिये पूरा नहीं पड़ता। मुझे कहाँ से दे? मै जो दो-चार पैसे कमा लेती हूँ, उतने ही की रोटी मैं भी बहू से बनवा लेती हूँ। जिस दिन नहीं कमाती, उस दिन उपवास कर लेती हूँ।

मैंने पूछा—उस दिन क्या तुम्हारा बेटा खाने को नहीं पूछता?

बुढ़िया ने कहा—पूछता है। लाकर सामने रख देता है। पर बेटा! मैं उसका हिस्सा क्यों खाऊँ? मैं भी खा लूं, तो वह भूखा ही रह जायगा। फिर अगले दिन कमायेगा कैसे? वह न कमायेगा तो वे तीन प्राणी तकलीफ

पायेंगे न? मैं तो बुढ़िया ठहरी। भूखी रहकर पड़े-पड़े दिन काट दूँगी।

बुढ़िया की करुण-कहानी सुनकर मैं तो डूबने-उतराने लगा। कहाँ तो काव्य के नवरसों की मिथ्या और अस्वाभाविक कल्पना! और कहाँ साक्षात् मूर्तिमान करुण-रस का दर्शन! मैं निस्तब्ध हो गया।

इक्केवाला चलने की जल्दी कर रहा था। बुढ़िया को अपने नाती के लिये गुड़ की चिन्ता सता रही थी। मैंने दो आने में उसकी घास खरीद कर वहीं सड़क पर छोड़ दी और जो कुछ हो सका, सहायता-स्वरूप उसे कुछ और भी देकर अपनी राह ली।

इसी घटना के साथ मैंने पहले-पहल उस देश की सीमा में पैर रक्खा।

सीमा में प्रवेश करते ही मैं सोचने लगा—अरे! क्या यही वह देश है? जहाँ के लोग सोने के बरतनों में खाते-पीते थे। यही क्या वह देश है? जहाँ घर-घर में चन्दन के वृक्ष थे। यहाँ तो सुख नाम का कोई पदार्थ कहीं दिखाई ही नही पड़ता। यहाँ तो चारोंओर दुःख ही दुःख है।

एक ग़रीब व्यक्ति बहुत-सी टोकरियाँ एक लाठी से लटकाये गाँवों की ओर जा रहा है। टोकरियों का जितना बोझ उसके कंधे पर है, उससे कहीं अधिक बोझ उसके मन पर कुटुम्बियों की उन लालसाओं का है जो टोकरियों की बिक्री से प्राप्त हुये पैसों से पूर्ण होंगी। उस घासवाली बुढ़िया की तरह वह भी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री, छोटे भाई या अन्य कुटुम्बी से किसी न किसी चीज का वादा करके घर से चला है।

बहुत से किसान नाजों की गठरियाँ पीठ पर, सिर पर, कन्धे पर या काँख में लिये बाज़ार की ओर जा रहे हैं। प्रत्येक के मन में नाज की बिक्री के पैसों से कोई न कोई चीज खरीद कर किसी न किसी को संतुष्ट करने की तरंगे उठ रही हैं। आज कितने पैसों की ज़रूरत है? और नाज की बिक्री से कितने पैसे आयेंगे? और वह किन-किन ज़रूरतों में व्यय होंगे? किसान बार-बार इन गुत्थियों के सुलझाने में व्यस्त हैं।

कितने ही घर ग़रीबों के हैं। जिनमें कोई चहल-पहल नहीं है। एक घर की दशा कवि के शब्दों में सुनिये। कोई व्यक्ति अपना मानसिक कष्ट इस प्रकार कह रहा है—

क्षुत्क्षामाः शिशवः शवा इव भृशं मन्दाशया बान्धवा।
लिप्ता जर्जरकर्करी जतुलवैर्नो मां तथा बाधते।
गेहिन्या त्रुटितांशुकं घटयितुं कृत्वा सकाकु स्मितं।
कुप्यन्ती प्रतिवेशिलोकगृहिणी सूचीं यथा याचिता॥

'लड़के भूख से व्याकुल होकर मुर्दे के समान हो गये हैं। बाँधव विमुख हो गये हैं। हाँडी के मुँह पर मकड़ी ने जाला तान दिया है। ये सब मुझे उतना कष्ट नहीं देते, जितना कष्ट पड़ोसिनों का यह व्यवहार देता है, कि जब अपनी फटी धोती को सीने के लिये मेरी स्त्री उससे सूई माँगती है, तब वह ताने से हँसकर क्रोध करती है।'

किसी ग़रीब के पास एक ही वस्त्र है। वह उसके विषय में कहता है—

अयं पटो मे पितुरंगभूषणं पितामहाद्यैरुपभुक्तयौवनः।
अलंकरिष्यत्यथपुत्र पौत्रकान् मयाऽधुना पुष्पवतेव धार्यते॥

'यह वस्त्र मेरे पिता के शरीर का भूषण रहा है। जब यह नया था, तब पितामह ने इसका उपयोग किया था। अब यह मेरे पुत्र और पौत्रों को अलंकृत करेगा। मैं इसे फूल की तरह ही सँभालकर रखता हूँ।'

कोई पुरुष झंख रहा है—

अये लाजानुच्चैः पथिवचनमाकर्ण्य गृहिणी।
शिशोः कर्णौ यत्नात्सुपिहितवती दीनवदना।
मयि क्षीणोपाये यदकृत दृशावश्रुशबले।
तदन्तःशल्यं मे त्वमिह पुनरुद्धर्तुमुचितः॥

'रास्ते में किसी ने ज़ोर से 'लावा' कहा। गृहिणी ने उदास मुख से

बच्चे के कान यत्नपूर्वक बंद कर दिये, जिससे भूखा बच्चा लावा का नाम न सुन सके; नहीं तो वह माँगने लगेगा। मैं निरुपाय था। यह जानकर गृहिणी की आँखें भर आईं। यही मेरे हृदय का काँटा है। हे भगवान्, तुम्हीं उसे निकालने में समर्थ हो।'

किसी घर में यह दृश्य उपस्थित है—

मा रोदीश्चिरमेहि वस्त्र रहितान्दृष्ट्वाद्य बालानिमा—
नायातस्तव वत्स दास्यति पिता ग्रैवेयकं वाससी।
श्रुत्वैवं गृहिणी वचांसि निकटे कुड्यस्य निष्किंचनो।
निःश्वस्याश्रुजलप्लवप्लुतमुखः पान्थः पुनः प्रस्थितः॥

'हे बेटा! मत रोओ। तुम्हारे पिता जब आवेंगे और तुमको वस्त्र-रहित देखेंगे तो तुमको वस्त्र और माला देंगे।' गरीब पति झोपड़ी के पास खड़ा था। स्त्री का ऐसा वचन सुनकर उसने दुःख की साँस ली। आँसू से उसका मुख भींग गया और वह फिर लौट गया।'

किसी घर में यह दृश्य उपस्थित है—

कंथाखण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वांके गृहाणार्भकं।
रिक्तं भूतलमत्र नाथ भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः।
दम्पत्योरिति जल्पतोर्निशि यदा चोरः प्रविष्टस्तदा।
लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः॥

'हे नाथ! गुदड़ी का एक टुकड़ा मुझे दो। या इस बालक को तुम्हीं गोद में ले लो। आपके नीचे पयाल है, यहाँ की ज़मीन खाली है।' इस प्रकार स्त्री-पुरुष रात में बातें कर रहे थे। उसी समय वहाँ कोई चोर घुसा था। बातें सुनकर दूसरी जगह से चोरी करके लाये हुये वस्त्र को वह उनके ऊपर फेंककर रोता हुआ घर से बाहर निकल गया।'

कहीं यह दृश्य उपस्थित है—

वृद्धोन्धः पतिरेष मंचकगतः स्थूणावशेषं गृहं।
कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो॥

यत्नात्संचिततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला।
दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति॥

'वृद्ध और अंधा पति खाट पर पड़ा है। छप्पर में थून ही थून शेष हैं। चौमासा सिर पर है। परदेश गये हुये पुत्र का कुशल-समाचार भी नहीं मिल रहा है। बहुत यत्न से एक-एक बून्द करके एकत्र किये हुये तेल की कुल्हिया भी फूट गई है। इस प्रकार से आकुल-व्याकुल होकर चिन्ता करती हुई और अपनी पुत्र-वधू को गर्भ के भार से मन्द देखकर सास देर तक रोती रही।'

कोई कह रहा है—

मद्गेहे मुसलीव मूषकवधूर्मूषीव मार्जारिका।
मार्जारीव शुनी शुनीव गृहिणी वाच्यः किमन्यो जनः।
इत्यापन्नशिशूनसून्विजहतो दृष्ट्वा तु झिल्लीरवै—
र्लूता तन्तुवितानसंवृतमुखी चुल्ली चिरं रोदिति॥

'मेरे घर में (आहार न मिलने से) नन्हीं चुहिया-जैसी तो मूषिका, मूषिका-जैसी बिल्ली, बिल्ली-जैसी कुतिया और कुतिया-जैसी मेरी स्त्री है। औरों की तो बात ही क्या? इस प्रकार प्राण छोड़ते हुये बच्चों को देखकर मकड़ी के जाले से ढके हुये मुँह वाली चूल्ही झींगुर के स्वर से रो रही है।'

कोई कह रहा है—

पीठाः कच्छपवत्तरन्ति सलिले संमार्जनी मीनवत्।
दर्वी सर्पविचेष्टितानि कुरुते संत्रासयन्ती शिशून्।
शूर्पाधिवृतमस्तका च गृहिणी भित्तिः प्रपातोन्मुखी।
रात्रौ पूर्णतडागसन्निभमभूद्राजन्मदीयं गृहम्॥

'हे राजन्! रात में मेरा घर जल से पूर्ण तालाब की तरह हो जाता है। उसमें पीढ़े तो कछुओं की तरह और झाड़ू मछली की तरह तैरने लगते

हैं। कलछी साँप की तरह चेष्टा करके बच्चों को भयभीत करती है। स्त्री सूप से आधा सिर ढक लेती है और दीवार गिरने वाली है।'

गाँवों की फटी हुई दीवारों, एक बार पानी बरस जाने पर घंटों रोने वाले, चिथड़े जैसे छप्परों के अंदर, सड़ी हुई गलियों में अस्थि-चर्मावशेष नर-नारी भयानक हाहाकार कर रहे हैं, जो कानों से नहीं, आँखों से सुनाई पड़ता है। यहाँ तो घर-घर में उस घासवाली बुढ़िया के जीवन से कहीं अधिक भयानक दृश्य उपस्थित है। देहात के लोग तरह-तरह की रूढ़ियों में जकड़े हुये अधःपतन की ओर जा रहे हैं। उनमे धर्म की भिन्न-भिन्न व्याख्यायें प्रचलित हो गई हैं।

मैंने उस घासवाली बुढ़िया को कुछ पैसे देकर सन्तोष लाभ किया था। पर क्या वह सच्चा सन्तोष था? नहीं। आत्मा जगनेवाली थी, मैंने उसे थपकी मारकर फिर सुला दिया था। थोड़े पैसों से क्या? यहाँ तो समूचे जीवन-दान की आवश्यकता है। मैं सोचने लगा—ईश्वर ने इस देश को ग़रीब बनाकर शिक्षितों को अपनी मनुष्यता के विकास के लिये कितना लम्बा-चौड़ा मैदान दे दिया है। शिक्षितों को अपने गाँवों के नीरव हाहाकार को, जो जीवन-साफल्य के लिये ईश्वर की पुकार है, सुनना चाहिये।

गाँवों की दशा देखकर बार-बार मन को विक्षोभ और आँखों को जल-रेखाएँ घेर लेती थीं।

तन और मन की आँखें तो खुली ही थीं, मैंने कान भी खोल दिये। मैं गाँवों में गया। गाँवों का बाह्य सौन्दर्य बड़ा ही आकर्षक होता है। गरमी के तीन-चार महीने छोड़कर बाकी प्रायः सब महीनों में गाँवों के चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती है। तालाब और कुएँ बनवा देना और आम के बाग लगवा देना देहात में बड़े पुण्य और प्रतिष्ठा का काम समझा जाता है। जिसके पास कुछ भी धन बचता है, वह ये तीन काम अवश्य करता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि चारोंओर आम के बाग ही बाग नज़र आते हैं। पहले इन बागों के फल भी लोगों को मुफ्त मिला करते थे; पर पैसे की आवश्यकता बढ़ जाने से अब इनके फल नीलाम होने लगे हैं।

पहले ज़मींदार लोग ऊसर और जंगल गायों के लिये छोड़ देते थे। पर अब उनका ज़ाती खर्च इतना बढ़ गया है कि वे एक-एक बीता ज़मीन बेंचकर पैसे बना रहे हैं, फिर भी क़र्ज़दार बने रहते हैं। ज़मींदारों ने नदी-नालों तक के पेट बेंच लिये हैं। उन्हें मनुष्यों के पेट की चिन्ता क्या है?

जैसे गाँव का बाह्य सौंदर्य नयनाभिराम होता है, वैसे ही उसके भीतर का दृश्य नरक से कम वीभत्स नहीं होता। बरसात में सारे रास्ते पानी और कीचड़ से भर जाते हैं। कई सौ वर्ष पहले बेनी कवि ने लखनऊ का जो चित्र खींचा था, वही बरसात मे आजकल प्रत्येक गाँव में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। बेनी कवि लिख गये हैं—

गड़ि जात बाजी औ गयन्द गन अड़ि जात
सुतुर अकड़ि जात मुसकिल गऊ की।
दामन उठाय पाय धोखे जो धरत होत
आप गरकाप रहि जात पाग मऊ की।
बेनी कवि कहै देखि थर थर काँपै गात
रथन के पथ ना विपद बरदऊ की।
बार बार कहत पुकार करतार तोसों
मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की॥

यद्यपि बेनी कवि का लखनऊ अब नहीं है; पर गाँव तो पुराने लखनऊ ही जैसे हैं;

गाँव के लोग घर के पास ही घूर लगाते हैं। पानी बरस जाने से वह सड़ने लगता है। जगह की कमी से वे गायें, भैंसें, खेती के बैल अपने रहने के घरों ही में बाँधते हैं। इससे हर वक्त पशुओं के गोबर और मूत की दुर्गन्ध बनी रहती है। अधिकाँश लोग ग़रीब होते हैं, जो पुरानी और सड़ी-गली कच्ची दीवारों से घिरे हुए घर में, चूते हुए खपरैल या फूस के छप्पर के नीचे रहते हैं। जब सावन में घटा घिर आती है, तब उनके चेहरों पर घर गिरने के भय और खाने-पीने और पहनने की चीजों के भींग जाने की चिन्ता के बादल घिर आते हैं। जब पानी बरसने लगता है, तब उनकी आँखें चूने लगती हैं। बरसती हुई रात में रात-रात भर बेचारे सो नहीं

सकते। या तो किसी कोने में उकरू-मुकरू बैठकर रात बिता देते हैं, या किसी जगह, जहाँ चूता न हो, खड़े-खड़े आँखों में रात निकाल देते है और सबेरा होते ही फिर दिनभर पेट के धंधे में लगे रहते हैं।

यह सब होते हुये भी गाँवों के हृदय में सुख का प्रकाश है। वह सुख आँख से नहीं, कान से दिखाई पड़ता है। यदि वह सुख न होता तो अनन्त दु:खों का भार गाँव के लोग कैसे उठा सकते थे? बरसात के महीनों में गाँव में जाकर रहिये, तो देखियेगा कि जो व्यक्ति भूख की ज्वाला से जल रहा है, वह भी गा रहा है—

धै देत्यो राम—हमारे मन धिरजा।
सब के महलिया रामा दिअना बरतु हैं
हरि लेत्यो हमरो अँधेर। हमारे०॥१॥
सब के महलिया रामा जेवना बनतु हैं
हरि लेत्यो हमरी भूख। हमारे०॥२॥
सब के महलिया रामा सेजिया लगतु हैं
हमरी हरि लेत्यो नींद। हमारे०॥३॥

सावन की घटा जवानी की तरह उमड़ती चली आ रही है। पुरवा हवा अत्यन्त प्रिय व्यक्ति के कर-स्पर्श की भाँति सुहावनी लग रही है। ऐसे समय में वह चरवाहा, जिसे पेट भर खाने को नही मिलता, ओढ़ने-बिछौने की तो बात ही क्या? जिसके पास आराम से सोने भर के लिए भी जगह नहीं—ऊँचे स्वर से बिरहे गा-गा कर संसार के समस्त दुखों को तुच्छ समझ रहा है—

मन तोरा अदहन तन तोरा चाउर, नयना मूँग कै दालि।
अपने बलम के जेंवना जेंवतिउ, बिनु लकड़ी बिनु आगि॥

× × ×

सकल चिरैया उड़ि उड़ि जैहैं, अपनी अपनी जून।
मैं तौ पापिनि परिउँ पिंजड़वा, मरउँ बिसूर बिसूर॥

जोबन गया तो क्या हुआ रे, तन से गई बलाय।
जने जने को रूठना रे, हम से सहा न जाय ॥

किसान दिनभर खेतों में काम करके थकान से चूर शाम को घर लौट रहा है। वह गाता आ रहा है—

बेला फूलै आधीरात, गजरा मैं केके गरे डालूँ।

स्त्रियाँ खेत में काम कर रही हैं। कपड़े सब के मैले और फटे, पुराने हैं। कई ऐसी होंगी, जिन्हें रात में भरपेट भोजन नहीं मिला होगा। कई ऐसी होंगी, जिन्हें अकारण क्रोधी पति ने पीटा होगा। फिर भी वे गा रही हैं—

सँवलिया रे काहें मारै नजरिया।
मारै नजरिया जगावै पिरितिया। सँवलिया रे॥
जैसे दूध में पानी मिलतु हैं,
वैसे मिलौं तोरे साथ। सँवलिया रे॥
जैसे अकास पै चिड़िया उड़तु हैं,
वैसे उड़ौं तोरे साथ। सँवलिया रे॥

सावन में गाँव-गाँव में हिंडोले पड़ जाते हैं। जिन पर दिन में और रात मे लड़कियाँ और बहुएँ झूलती और गाती हैं। किसी बहू को ठीक-ठीक भोजन-वस्त्र नहीं मिलता, किसी की सास कर्कशा है और वह नरक-यंत्रणा भोग रही है। फिर भी सब प्रसन्न मन से गाती हैं—

प्रेम पिरित रस बिरवा रे तुम पिय चलेहु लगाय।
सीचन की सुधि लीजौ देखेउ मुरझि न जाय॥
प्रेम पिरित रस बिरवा॥

सावन का महीना है। बहुओं का मन नैहर के लिये तड़पने लगता है। हिंडोले के गीतों में अपनी यह तड़प वे गा-गाकर सुना रही हैं—

ठाढ़ी झरोखवाँ मैं चितवउँ नैहरे से केउ नाहीं आइ।
ओहि रे मयरिया कैसन बपई जेकर ससुरे में सावन होइ॥

कहार लोग बहुओं को पालकी या डोली में नैहर की ओर लिये जा रहे हैं। कंधे पर बोझा है। आँखें रास्ते पर लगी हैं। डोली ढोने ही की जीविका है। आमदनी कम है। घर में खानेवाले बहुत हैं। हरवक्त चिन्ता सिर पर सवार है। फिर भी वे गाते जाते हैं—

सोच मन काहे क करी।
मोरे मालिक सिरी भगवान॥सोच०॥

बरसात में मेले बहुत होते हैं। स्त्रियाँ झुंड की झुंड मेलों में जाती हैं। दुखी-सुखी सब घरों की स्त्रियाँ साथ गाती हुई चलती हैं। मेले के गीत प्रायः शान्त और शृङ्गार-रस ही के होते हैं। उत्तेजक नहीं होते। स्त्रियाँ गाती चलती हैं—

रघुबर संग जाब, हम न अवध माँ रहबै।
जौ रघुबर रथ पर जइहैं, भुँइऐ चली जाब। हम०॥१॥
जौ रघुबर बन फल खइहैं, फोकली बिनि खाब। हम०॥२॥
जौ रघुबीर पात बिछैहैं, भुइँयै परि जाब। हम०॥३॥

गाँवों में कहीं-कहीं मंदिर होते हैं, या साधु की कुटी होती है। कुछ लोग शाम को वहाँ जमा होते हैं। कोई संतानहीन होता है, कोई भाइयों से लड़-झगड़ कर आता है। किसी की अपनी स्त्री से नहीं पटती। कोई नितान्त दरिद्र है। पर गीत की दुनिया में सब अपना दुःख भूल जाते हैं—
कुटी में कुछ लोग गा रहे हैं। बाकी लोग बैठे सुन रहे हैं—

संतो नदी बहै इक धारा।
जैसे जल में पुरइन उपजै जल ही में करै पसारा।
वाके पानी पात नहिं भीजै ढुरुकि परै जैसे पारा॥

जैसे सती चढ़ी सत ऊपर पिय को वचन नहिं टारा।
आप तरै औरन को तारै तारै कुल परिवारा॥
जैसे सूर चढ़ै लड़ने को पग पीछे नहीं टारा।
जिनकी सुरति भई लड़ने को प्रेम मगन ललकारा॥
भवसागर एक नदी बहत है लख चौरासी धारा।
धर्मी धर्मी पार उतरिगे पापी बूड़े मंझधारा॥

ऐसे गीत सुनकर बहुत से पापी पाप कम करने लगते हैं; बहुत से सत्य छोड़नेवाले सँभल जाते हैं; बहुत सी कर्कशा स्त्रियाँ पति की आज्ञा-कारिणी हो जाती हैं। ऐसे गीत सामाजिक जीवन के मल को धोते रहते हैं।

कोई युवक अपनी जवानी की उमंग में है। वह अकेला गाता जा रहा है—

चितै दे मेरी ओर, करक मिटि जाय रे।
मैं चितवत तू चितवत नाहीं, नेह सिरानो जाय॥

दूर से आता हुआ पथिक थका-माँदा है। फिर भी वह गा रहा है—

झुला किन डारो रे अमरैयाँ।
रैनि अँधेरी ताल किनारे बुनिया परै फुइयाँ फुइयाँ॥

गाँवों की चौपाल मनोरंजक स्थान है। फुरसत के वक्त महल्ले के लोग चौपाल में आ बैठते हैं। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। बीच-बीच में कहावतें भी चलती रहती हैं। अच्छे से अच्छे रसभरे महावरे आनन्द बढ़ाया करते हैं। चौपाल में घाघ और भड्डरी भी मौजूद रहते हैं। कोई कह रहा है—

लरिका ठाकुर बूढ़ दिवान।
ममिला बिगरै साँझ बिहान॥

'राजा बालक हो और उसका दीवान पुराना हो तो उन दोनों में नहीं पटेगी।'

कोई कह रहा है ।

आलस नींद किसानै नासै, चोरै नासै खाँसी।
अँखिया लीबर बैसवै नासै, बाबै नासै दासी ।।

'आलस्य और नीद से किसान, खाँसी से चोर, कीचड़वाली आँखों से वेश्या और दासी की संगति से बाबा (साधू) का नाश होता है ।'

कोई कह रहा है :—

जबरा की मेहरारू, गाँव भर की काकी।
अबरा की मेहरारू, गाँव भर की भौजी ।।

'ज़बरदस्त की स्त्री को सब काकी कहते हैं । पर निर्बल की स्त्री को सब भौजाई समझते हैं ।'

कोई कह रहा है:—

बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै, चौदह साख लबार ।।

'जो कोई कहे कि बैल रक्खे बिना मैं खेती करता हूँ, भाइयों के सहयोग बिना मैं दूसरों से लड़ाई ठानता हूँ और बिना स्त्री गृहस्थी चलाता हूँ, वह चौदह पुश्त का झूठा है ।'

इसी प्रकार की हजारों अनुभव की बातें गाँवों में हरवक्त होती रहती हैं ।

एक बार जाड़ों में गाँव की सैर कर आइये । रात के पिछले पहर में कोल्हू और जाँत के गीत सुनकर आप का मन मुग्ध हो जायगा ।

गर्मी के दिनों में विवाह की धूम रहती है । महल्ले की स्त्रियाँ वर और कन्या के घरों पर जमा होकर विवाह के गीत गाया करती हैं ।

देहात के जीवन में मुझे गीतों की प्रधानता पद-पद पर प्रतीत होने लगी । भयानक दुःखों से ओत-प्रोत जीवन मे ये गीत कैसे उत्पन्न हुये ? मैं गाँवों की यह छटा देखकर मन ही मन मुग्ध हो गया । पर गीतों के संग्रह की ओर मेरी प्रवृत्ति बहुत दिनों तक नहीं हुई थी । केवल मैं मन ही मन

उसका रसानुभव किया करता था। इसके पहले मैं हिन्दी के पुराने और नये कवियों की कवितायें पढ़ चुका था और उर्दू-कविता में महावरों की जगमगाहट भी देख चुका था। पर गाँव के गीतों में कविता एक नये ही रूप में दिखाई पड़ी; जो कवियों और शायरों की कविता मे अधिक सरस थी। ग्राम-गीतों के लिये ज़मीन तैयार न थी। एक घटना-विशेष ने एक दिन उसमें बीज डाल दिया। जो उग आया और ख़ूब फ़ला-फला। घटना इस प्रकार से संघटित हुई थी—

गीतों की दुनिया में

सन १९२४ के आस-पास की बात है, मैं प्रयाग से जौनपुर जा रहा था। भभ्नोर स्टेशन पर कुछ स्त्रियाँ, जो संभवतः अहीर या चमार जाति की थीं, कुछ मर्दों को, जो कलकत्ते जा रहे थे, पहुँचाने आई थीं और रो रही थी। ट्रेन स्त्रियों को रोती हुई छोड़कर चल दी। कलकत्ते जाने वाले मर्द संयोग से थर्ड-क्लास के उसी डब्बे में आ बैठे थे,, जिसमें मैं था। उनके साथ तीन-चार स्त्रियाँ भी थी, जो अपने परदेशी पतियों के साथ या पास कलकत्ते जा रही थी।

रेल के चलते ही स्त्रियाँ गाने लगी। उस समय तो मुझे उसकी एक ही कड़ी याद रही। बाद को तो पूरा गीत मेरे संग्रह में आ गया।

वह गीत यह है:—

पुरुब से आइ रेलिया पछिउँ से जहजिया
पिय के लादि लेइ गइ हो।
रेलिया होइ गइ मोर सवतिया पिय के लादि लेइ गइ हो॥
रेलिया न बैरी जहजिया न बैरी उहै पइसवइ बैरी हो।
देसवा देसवा भरमावइ उहै पइसवइ बैरी हो॥
भुखिया न लागै पिअसिया न लागै हमके मोहिया लागइ हो।
तोहरी देखिके सुरतिया हमके मोहिया लागइ हो॥

सेर भर गोहूँवा बरिस दिन खइबै पिय के जाइ न देबै हो।
रखबै अँखिया हजुरवाँ पिय के जाइ न देबै हो।

रेल की तुलना सौत से होती हुई सुनकर मैं यकायक चौंक उठा। यह तो एक बिल्कुल नई उपमा है। किसी स्त्री ही ने यह गीत रचा होगा। नहीं तो, ऐसी मर्म की बात कहने की इस जमाने में फुरसत ही किसको? क्या स्त्रियाँ भी कवितामय हृदय रखती हैं। मैं उस कड़ी के साथ ही ये बात सोचने लगा। कई सौ वर्ष पहले रहीम ने स्त्रियों की तरफ से एक बरवा कहा था। जिसमें सौत की तुलना हंसिनी से की गई है। उस कड़ी के सुनने के साथ ही मुझे वह बरवा याद आया था—

पिय सन अस मन मिलयूँ, जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया, लइ बिलगानि॥

इसमें हंस-हंसिनी के एक विशेष गुण—सो भी कवियों के कथनानुसार, पक्षी-विद्या-विशारदों के कथनानुसार नहीं—मिले हुये दूध और पानी को अलग कर देने पर लक्ष्य करके विचार बाँधा गया है। हंसिनी के इस कल्पित गुण को जाननेवाले सहृदय रसिकजन ही इस बरवे को सुनकर सिर हिला सकते हैं। पर रेल तो प्रत्यक्ष सौत का-सा कार्य करती है। वह पति को लेकर भाग जाती है। मुझे गीत रचनेवाली के हृदय की सरसता बड़ी ही मधुर जान पड़ी। बस, इसी घटना के बाद से मैं ग्राम-गीतों की ओर आकर्षित हुआ हूँ।

इसके बाद एक दिन एक मेले में देहाती स्त्रियों के मुख से एक यह कड़ी भी सुनकर मैंने अनुभव किया कि उगे हुये अंकुर को किसी ने सींच दिया—

हम चितवत तुम चितवत नाहीं,
तोरी चितवन में मन लागो पिया।

इस गीत के भाव ने भी हृदय में आकर्षण पैदा किया था।

एक दिन सुलतानपुर ज़िले के एक गाँव में मैं जा रहा था। एक अहीर का लड़का गोरू चराते-चराते यह बिरहा गा रहा था—

बिरहा गावउँ बाघ की नाईं दल बादल घहराय।
सुनि के गोरिया उचकि उठि धावै बिरहा क सबद ओनाय ॥

जिन्हें 'ओनाय' शब्द का देहाती भाव मालुम है, वही इसका रस ले सकते हैं। पहले ऐसे बिरहे मैंने सैकड़ों सुने होंगे, पर एक भी याद नहीं रहा। अब जब कि मैं अलंकार, नायिकाभेद और नखशिख से परिचित हुआ, यह बिरहा मुझे बहुत सरस जान पड़ा।

एक दिन एक अहीर ने कहीं राह चलते-चलते—मुझे याद नहीं है, कहाँ ?—यह बिरहा गाया था—

महँगी के मारे बिरहा बिसरिगा भूलि गइ कजरी कबीर।
देखि क गोरी क मोहिनी सुरति अब उठै न करेजवा मँ पीर ॥

भूख के प्रभाव का ऐसा सच्चा और सजीव वर्णन तो शायद ही कोई कवि कर सके। भूख के मारे बिरहा बनाने या गानेवाले के कलेजे में गोरी की मोहिनी सूरत देखकर चाहे पीर न पैदा हुई हो, पर बिरहा सुनकर ग्रामगीतों के लिए प्रबल भूख की पीर मेरे हृदय में अवश्य पैदा हो गई।

शेख सादी ने भी ऐसी ही कल्पना की थी—

चुनाँ कहतशाले शुदन दर दमिश्क।
कि याराँ फरामोश कर्दंद इश्क ॥

अर्थात् दमिश्क में ऐसा अकाल पड़ा कि यारों ने इश्क को भुला दिया। पर अहीर के बिरहे में शायर की कल्पना से कहीं अधिक हृदय की सच्ची अनुभूति और सरसता मुझे जान पड़ी।

इस तरह गाँवों की एक अद्भुत दुनिया, जो शिक्षित जगत के बगल ही में बसी हुई है, बल्कि उसमें भी ओतप्रोत है, अपने रत्नों की आभा दिखला-दिखलाकर मुझे अपनी ओर खींचने लगी।

गीत-संग्रह

जनवरी सन् १९२५ में सब से पहले जाँत के दो गीत मुझे सुलतानपुर में मिले। मैंने उन्हें अर्थ-सहित 'सरस्वती' में प्रकाशित कराया। जिन-जिन पाठकों की दृष्टि से वे गीत गुज़रे, उनमें से बहुतों ने उन्हें पसंद किया और कइयों ने मुझे पत्र लिखकर अपनी प्रसन्नता प्रकट भी की। इससे मैं उत्साहित हुआ।

यहीं से मेरे उद्योग का श्रीगणेश समझना चाहिए।

संग्रह का काम बहुत कठिन था। इतने बड़े देश मे, जिसमें सैकड़ों बोलियाँ बोली जाती हैं, मैं अकेला कहाँ-कहाँ जा सकता था? और यदि जाता भी, तो राह-ख़र्च के लिये आवश्यक धन कहाँ से आता? और बिना अपने किये चिट्ठी-पत्री और समाचार-पत्रों द्वारा संग्रह का काम हो नहीं सकता था। ये सब चिन्ता की बातें मेरे दिमाग़ मे घूमने लगी।

एक बड़ी कठिनाई यह भी थी कि मेरे काम का कोई पथ-प्रदर्शक नहीं था। जहाँ तक मैं जानता था, हिन्दी में सब से पहला व्यक्ति मैं ही था, जिसने इस काम में हाथ लगाया था। रास्ता घोर अंधकार का था, पर मेरी लगन सच्ची थी; इससे मैं तो यही कहूँगा कि भगवान् लालटेन लेकर आगे-आगे चल रहे थे।

यह काम चिट्ठी-पत्री से नही हो सकता था। इसके लिये स्वयं जाकर मिलना और प्रभावशाली लोगों का इन्फ्लुएंस डालना आवश्यक था। सम्भव है, एक-एक व्यक्ति की 'हाज़िरी' में कई-कई दिन लग जायँ। इसलिये निजी कामकाज से हाथ खींचकर, केवल इसी काम में पूरा समय लगाने की ज़रूरत महसूस हुई। खैर; समय तो अपने अधीन था। पर धन कहाँ से आयेगा? ऐसी संस्थायें तो इस देश मे है नही, जो ऐसे आवश्यक और नये काम करनेवाले के लिये सब प्रकार की सुविधायें कर देतीं। पर गीतों के संग्रह का काम मै बहुत ही आवश्यक समझने लग गया था और उसके लिये ऐसी सच्ची लगन मन में जाग उठी थी कि सब कठिनाइयों के मुक़ाबले में मुझे उतर पड़ना अनिवार्य हो गया।

इसलिये ईश्वर का नाम लेकर, सन् १९२६ के सितम्बर महीने से, मैंने गीत-यात्रा शुरू कर दी। पहले मैं प्रयाग और उसके आसपास के जिलों—जौनपुर, प्रतापगढ़, रायबरेली, मिर्ज़ापुर, सुलतानपुर आदि—के देहातों में जाने-आने लगी।

देहात में जाने से गीत-संग्रह की नई-नई कठिनाइयाँ सामने आने लगीं।

एक कठिनाई स्त्रियों से गीत लेने में पड़ती थी। स्त्रियाँ बोलकर गीत लिखा ही नहीं सकतीं। बोलकर लिखाते समय उनको गीत याद ही नहीं आते। वे गाती जायँ और कोई लिखता जाय, तभी काम हो सकता है। सो भी कई स्त्रियाँ एक साथ बैठकर गावें, तभी उनके दिमाग़ में गीत की कड़ियाँ फूल की पंखड़ियों की तरह खुलती रहती हैं। अकेली गाने में शायद ही कोई स्त्री पूरा गीत गा सके। युवती स्त्रियों से गीत लेने में तो और भी कठिनाई है। एक तो परदा। दूसरे पर पुरुष के सामने बैठकर गाने में लज्जावश उनका कण्ठ ही नहीं फूटता। वे बुझ-सी जाती हैं। कन्यायें तो बहुत ही कम ऐसी मिलती हैं, जो पूरा गीत जानती हों। कारण यह जान पड़ता है कि गीत याद करने का काम तो स्त्रियों का जन्म-भर के लिये है। दस-पाँच जब मिलकर गाती हैं, तब किसी को कोई कड़ी याद आ जाती है, किसी को कोई। इस तरह सबका सहारा पाकर गीत का गोबर्द्धन किसी तरह उठा लिया जाता है। कन्यायें छोटी उम्र की होने की के कारण गीत की प्राइमरी क्लास में रहती हैं, इससे पूरा नहीं जानतीं।

स्त्रियों से गीत लेने में उनकी स्मरण-शक्तिवाली यह कठिनाई कम नहीं है। मेरे तो धैर्य की परीक्षा हो जाया करती थी। कभी-कभी तो एक-एक गीत के लिये पूरा एक दिन लग गया है। फिर भी शाम होने तक उसकी एक-दो कड़ियाँ संदिग्ध ही थीं। कभी-कभी एक गीत एक गाँव में अधूरा ही प्रचलित मिलता। उसकी पूर्ति दूसरे गाँव में होती। इस प्रकार एक-एक गीत के पीछे पड़े बिना सच्चा काम नहीं हो सकता था।

गीत-संग्रह करने में मुझे जो-जो तकलीफ़ें भोगनी पड़ी हैं, मेरा शरीर

और मन उनके लिये असमर्थ था। केवल गीतों के लिये सच्ची लगन ही मुझे उन तकलीफ़ों से पार लगाने में समर्थ हुई है।

ज़रा ध्यान में यह दृश्य देखिये तो—सावन का महीना है। घटा घिरी हुई है। कभी झीसे पड़ रहे हैं। कभी लहरे पर लहरे आ रहे हैं। पुरवा हवा के झोंके चल रहे हैं। धान के खेत में, घुटने तक पानी में खड़ी चमारिनें खेत में उगे हुये घास-पात को खोंटकर—नोचकर निकाल रही हैं। वे गा भी रही हैं। शरीर तो उनका धान के खेत मे काम कर रहा है, और मन गीत की दुनिया में है। मैं धान के मेड़ पर बैठा गीत सुनता जाता हूँ और लिखता जाता हूँ। जिन्होंने धान के मेड़ देखे होंगे, वे समझ सकते हैं कि धान के मेंड़ पर बैठना तलवार की धार पर बैठने के समान है। किसानों की एक अजीब आदत होती है—वे हर साल मेंड़ को काटते रहते हैं। कटते-कटते मेंड़ इतने पतले हो जाते हैं कि उन पर पैर रखकर चलना कठिन हो जाता है। बैठना तो असंभव ही समझिये। धान के मेंड़ों से तो ईश्वर ही बचावे। क्योंकि तलवार की धार की तरह पतले मेंड़ के दोनों ओर के खेत लबालब पानी से भरे रहते हैं। ज़रा सी दृष्टि चूकी, या ध्यान बँटा कि धड़ाम से पानी और कीचड़ के अंदर। कितनी ही बार मैं इस विपत्ति को भोग चुका हूँ।

कई बार सुबह से लेकर दोपहर तक बरसते हुये पानी मे, छाते के नीचे खड़े-खड़े मैंने चमारिनों के गीत सुने और लिखे हैं। कहीं बैठने की जगह ही नही मिली।

जो गीत मैंने चमारिनों के घरों पर जाकर लिखे हैं, उनके लिखने में मुझे अपने मन को बड़ी कड़ी परीक्षा में बैठाना पड़ा है। ध्यान में देखिये—गाँव से बिल्कुल बाहर चमार का घर है, जिसकी दीवारें लोनी से गल गई हैं। दीवारों के अन्दर के कंकड़ खीस काढ़े हैं। दीवारों में सैकड़ों दरारें छेद, बिल और गुफायें हैं, जिनमें छिपकलियों, मकड़ियों, चींटियों, चूहों और झींगुरों के सैकड़ों परिवार निवास कर रहे हैं। दीवारों पर बीसों स्थान से फटा हुआ, सहस्त्रों नेत्रोंवाला, एक सड़ा-गला छप्पर रक्खा है।

एक ही घर है। उसी में खाना भी पकता है, उसी में चक्की भी है, उसी में सैकड़ों स्थानों पर सिले हुये मैले-कुचैले कपड़े भी पड़े हैं। घर में छोटा बच्चा है तो एक किनारे उसका पाखाना भी पड़ा है। चमार-चमारिन को पेटके धंधे ही से फुरसत नहीं मिलती, पाखाना कौन उठाता? एक किनारे मड़ुवा, साँवाँ या धान पड़ा हुआ है। यही उनका आहार है। एक तरफ़ घास की चटाई लपेटी रक्खी है, जिसे घर के लोग जाड़ों में ओढ़ते और बरसात में बिछाते हैं। गरमी में ओढ़ने-बिछाने की ज्यादा ज़रूरत ही नही पड़ती। जमीन पर सो गये, आसमान ओढ़ लिया, किसी तरह रात कट गई। झोपड़ी के आस-पास सुअर और उनके छौने घूम रहे हैं। छौने कभी-कभी अंदर भी घुस आते हैं। घर के आस-पास खेत हैं, जो सुअर के गू से भरे हुये हैं। पानी बरस जाने से गू सड़कर जमीन पर फैल रहा है। उसकी बू से लवेंडर सूंघने वाली शहर की नाक फटी जा रही है। एक किनारे चूल्हे पर मरी हुई गाय का मांस पक रहा है। मैं उसी झोपड़े के द्वार पर दीवार से पीठ टेके, रूमाल पर बैठा हुआ, एक साठ बरस की बड्ढी चमारिन से गीत लिख रहा हूँ। बुड्ढी की धोती मे जुलाहे से अधिक सीनेवाले को मेहनत करनी पड़ी है। वह उसी धोती को कई बरस से पहन रही है और एक ही धोती होने के कारण वह धोती धो भी नही सकती और नहाती भी कम है। इससे उसके शरीर ओर धोती की बदबू नाक-भौं को सिकोड़ने के लिये काफ़ी है। बताइयें, ऐसे स्थानों से गीत-संग्रह का काम बड़े साहस का है, या नही?

शारीरिक कष्ट का यह हाल कि गाँवो में न धर्मशाले हैं, न सरायें। बाहर से जानेवाले लोग ठहरे तो कहाँ ठहरें? मैं दोहपर-दोपहर तक धान के मेंड़ों पर या चमारों के घरों पर बैठा गीत लिखा करता था। दोपहर को खेत में काम करने वालों या वालियों को छुट्टी मिलती, तो मैं भी वहाँ से उठकर गाँव के किसी ब्राह्मण या ठाकुर के द्वार पर डेरा डालता। चना-चबैना और गुड़ ही पर दिन बिताना पड़ता था। कभी-कभी तो आलस्य और रसोई बनाने की असुविधा के कारण रात भी लाई-चने की शरण

में बितानी पड़ती थी। गुड़ तो मेरा खास साथी ही था। उसे तो मैंने गीत-यात्रा के प्रथम चार वर्षों में इतना खाया कि आज वह डायबिटीज़ के नाम से जीवन-संगी बन बैठा है और उसका अंत ही नहीं दिखाई पड़ता।

अब एक सामाजिक कठिनाई का ज़िक्र सुनिये—देहात के लोग बहुत बेकार रहते हैं। काम के दिनों में भी दोपहर के बाद का उनका सारा वक्त किसी चौपाल में बैठकर गप्पें हाँकने, एक दूसरे की निंदा करने और तम्बाकू खाने और पीने में जाता है। मैं भी उन्हीं में जा बैठता। पर मेल मिलता नहीं था। वे बेचारे एक मैली-सी धोती पहने नङ्ग-धड़ङ्ग बैठते थे। उनके बीच में मैं सफेद धोती-कुरता और टोपी पहनकर बैठता था। काम भी क्या? गीत-संग्रह; जो बहुत से शिक्षित कहे जानेवालों की दृष्टि में पागल-पन समझा जाता था, गाँव के गँवारों की दृष्टि में तो वह एक मज़ाक के सिवा और कुछ हुई नहीं। मेरे काम का महत्व समझना उनकी बुद्धि से बहुत दूर था। इसलिये मन में पैदा हुये कौतूहल की पूर्ति के लिये उनको नई-नई कल्पनायें करनी पड़ती थीं। कोई कहता—बाबूजी किसी और मतलब से देहात में आये हैं। कोई कहता—अरे, यह खुफिया पुलिस का कोई दारोगा है। किसी बदमाश की टोह में आया है। कोई कहता—बाबू साहब औरत की तलाश में आये हैं। कोई खूबसूरत लड़की या औरत देखेंगे तो ले भागेंगे। कोई कहता—अरे! ये शहर में कोई कुसूर करके भगे हैं। देहात में हज़रत छिपे-छिपे फिर रहे हैं। इसी प्रकार के तीरों का निशाना बनकर मैं गाँवों में रहता था।

सन् १९२६, २७, २८, के बरसात के महीनों में मैंने गाँवों में जा-जाकर निरवाही और हिंडोले के गीत और जाड़े के महीनों में जाँत और कोल्हू के गीत लिखे थे। सोहर और गर्मी के गीत—जैसे विवाह और जनेऊ के गीतों के लिये मैं गाँवों में नहीं जा सका। गीतों के संग्रह में देर होती देखकर मैंने कुछ देहाती पढ़े-लिखे लोगों को वेतन देकर गीत जमा करने के लिये रक्खा। इनमें से अधिकांश ने मुझे खूबही ठगा। कई तो प्रयाग आकर मुझसे काफी रुपये लेगये और ऐसे बैठे कि उन्होंने फिर साँस ही

डकार न ली। कइयों ने कुछ गीत भेजे और फिर गीत लिखानेवाली बुढ़िया को देने के लिये रुपये तलब किये, जो गीतों के लोभ-वश मुझे देने पड़े। पर वे रुपये गीत की सूरत में फिर कभी नहीं लौटे। इससे कितने ही गीत तो दो-दो तीन-तीन रुपये फ़ी गीत की लागत के पड़ गये हैं।

बिहार के गीत मुझे डाक-द्वारा इतने काफ़ी मिल गये कि मुझे उधर जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। बिहार की स्त्रियों में युक्त-प्रांत की स्त्रियों से अधिक शिक्षा का प्रचार जान पड़ता है। बिहार की स्त्रियों में गीत लिख रखने की प्रथा है, जो युक्त-प्रांत में मेरे देखने में बहुत कम आई। बिहार से बहुत-सी हस्त-लिखित कापियाँ मेरे पास आई थीं, जिनसे मैंने गीत नक़ल करके उन्हें वापस भेजा।

इस प्रकार उत्तर भारत में गीत-संग्रह का चक्र चलाकर मैं अन्य प्रांतों के गीतों का अध्ययन करने के लिये, ८ नवम्बर, १९२७, को प्रयाग से बम्बई के लिये चल पड़ा। बम्बई में मैंने मराठी और गुजराती लोक-गीतों की छपी पुस्तकें ख़रीदीं। कुछ व्यक्तियों से भी मिला और उनसे गीतों का तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त किया।

१६ नवम्बर, १९२७ को मैं प्रातःकाल ९॥ बजे, नेत्रवती जहाज़ से द्वारका के लिये रवाना हुआ। मेरा इरादा द्वारका से प्रवेशकर के काठियावाड़ और गुजरात का भ्रमण करने का था। अतएव ता० १७ नवम्बर १९२७ को ९॥ बजे सवेरे मैं द्वारका पहुँचा। द्वारका और बेट द्वारका मे मैं तीन दिन रहा। वहीं मैंने कठियावाड़ में दौरा करने का प्रोग्राम तैयार किया और उसके अनुसार जामनगर, राजकोट, पोरबन्दर, सोमनाथ, जूनागढ़, गिरनार, गोंडल, मोरवी, बीकानेर, ध्रांगध्रा, पालिताना, वढवान और लिमडी की यात्रायें कीं। यात्रा में मैं अकेला था। इसलिये खाने की तकलीफ़ें और यात्रा की अन्य असुविधायें भी बहुत भोगनी पड़ीं।

मैं काम-चलाऊ गुजराती भाषा जानता हूँ। काठियावाड़ की यात्रा के मेरे अनुभव बड़े मधुर हैं। काठियावाड़ और गुजरात के लोग बड़े सहृदय

होते हैं। मुझे गुजरात स्वभाव ही से प्रिय है। काठियावाड़ के दौरे में वह प्रियता और भी बढ़ गई।

गुजरात और काठियावाड़ में रास नाम का नाच प्रायः प्रत्येक गाँव में, प्रत्येक पूर्णिमा की रात में होता है। संध्या के भोजनोपरांत महल्ले की स्त्रियाँ किसी स्थान विशेष पर एकत्र होकर रास नाचती हैं। गुजरात की पूर्णिमा स्त्रियों के इस आनन्दोत्सव से कैसी सुहावनी हो जाती होगी, ज़रा कल्पना कीजिये।

गर्बा एक खास तरह का गीत है। इसे गाते समय स्त्रियाँ एक गोल चक्कर में घूमती हुई हाथों से बड़ा श्रवण-सुखद ताल देती हैं। घूमते समय कभी आगे की तरफ झुक जाती हैं, कभी बग़ल की तरफ़ और कभी सीधी खड़ी हो जाती हैं। यह दृश्य बड़ा ही नयन-मनोहर होता है। गुजरात का यह सुप्रसिद्ध नृत्य देखकर और गान सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ।

काठियावाड़ की बहुत-सी सुखद स्मृतियाँ साथ लेकर मैं अजमेर आया। अजमेर में भी गीत-संग्रह के लिये कुछ मित्र तैयार करके तथा कुछ गीत प्राप्त करके मैं जोधपुर गया। जोधपुर में मेरे कितने ही पत्र-परिचित मित्र प्रत्यक्ष हुये। गीत-संग्रह के लम्बे-चौड़े वादे लेकर, और कुछ गीत प्राप्त भी करके, मैं फिर अजमेर वापस आया, और वहाँ से उदयपुर, नाथद्वारा और चित्तौरगढ़ गया। महाराणा प्रतापसिंह के साथी भीलों के गीत प्राप्त करने का प्रबन्ध किया और वहाँ की अच्छी तरह सैर करके फिर अजमेर वापस आया। अजमेर से फिर जयपुर गया। वहाँ से सीकर, सीकर से फतेहपुर (शेखावाटी), फतहपुर से पिलानी गया।

पिलानी बिड़ला-परिवार का मूलस्थान है। श्रीयुक्त जुगलकिशोरजी, श्रीयुक्त घनश्यामदासजी, श्रीयुक्त रामेश्वरदासजी बिड़ला-बंधु उन दिनों वहीं थे। मैं श्रीयुक्त घनश्यामदासजी के पास ठहरा। गीत-संग्रह के लिये श्रीयुक्त घनश्यामदासजी ने मुझे पहले भी दो हजार रुपये की आर्थिक सहायता दी थी, पिलानी में भी दी। बिड़ला-बंधु चार भाई हैं। चौथे भाई श्रीयुक्त ब्रजमोहनजी उन दिनों कलकत्ते में थे। उनसे मिलने का अवसर

मुझे अगले वर्ष काश्मीर में मिला। काश्मीर में उन्होंने काश्मीरी गीतों के लिये मुझे आर्थिक सहायता दी थी। चारों भाइयों का मानसिक विकास बड़ाही सुन्दर हुआ है। सब को स्वदेश और हिन्दू-जाति के कल्याण और शिक्षा-सदाचार की वृद्धि के लिये आन्तरिक अनुराग है। श्रीयुक्त जुगल-किशोरजी को हिन्दू-जाति की उन्नति के लिये गहरा प्रेम है। श्रीयुक्त घन-श्यामदासजी को और श्रीयुक्त रामेश्वरदासजी को संगीत का भी शौक है। दोनों भाई सरोद अच्छा बजाना जानते भी हैं।

राजपूताने के लिये हमारा अनुमान था कि वहाँ मुझे अच्छे गीत नहीं मिलेंगे। पर वह ग़लत साबित हुआ और मारवाड़ ऐसे रूखे-सूखे प्रान्त में भी मुझे प्रेम और करुणरस के झरने प्रवाहित मिले। वहाँ भी ग्राम-कविता का विकास उसी उन्माद के साथ हुआ है, जैसा भारत के अन्य प्रान्तों में। वहाँ भी पाबू जैसे वीरों की कथाएँ देहात में उसी तरह प्रचलित हैं, जैसे उत्तर प्रदेश में आल्हा। संयोग-वियोग शृङ्गार की तो बात ही अलग है, इस विषय में तो कोई प्रान्त पिछड़ा हुआ नहीं है। वहाँ उत्तरप्रदेश के घाघ और भड्डरी की तरह राजिया, किसनिया, केलिया, ईलिया, छोटिया, दानिया, नाथिया, पुसिया, बाघजी, बीझरा, भेरिया, मोतिया और सगतिया आदि देहाती कवि हुये हैं, जिन्होंने ग्रामीणों में नीति और सदाचार के भाव अबतक बना रक्खे हैं। मानो ये समाज के पहरेदार हैं।

राजपूताना तो कभी वीरों का प्रान्त था। इससे वीर-रस के भी गीत उधर खूब प्रचलित हैं। भीलों के गीत प्रायः वीर-रस-पूर्ण हैं।

पिलानी में मैं कई दिन रहा। गीत-संग्रह के काम की कुछ व्यवस्था हो जाने पर मैं वहाँ से पंजाब के लिए रवाना हो गया, और लाहौर, अमृतसर फीरोजपुर और लुधियाना होता हुआ मैं प्रयाग लौट आया।

इस लम्बी यात्रा से लौटकर मैंने उत्तर प्रदेश के गाँवों की यात्रा फिर शुरू की। यदि ओढ़ना-बिछौना ढोने की कोई असुविधा न हो, तो जाड़े के महीने यात्रा के लिए बड़े अच्छे होते हैं।

सन् १९२८ की मई में मैंने गीतों के लिए काश्मीर की यात्रा की।

वहाँ मैं ढाई महीने के लगभग रहा। काश्मीर के गीत काश्मीर ही की तरह सुन्दर हैं। काश्मीर में स्व० लाला लाजपतराय ने मेरे गीत सुने थे और मेरे काम से बड़ी सहानुभूति प्रकट की थी। चमारिनों के गीत सुनकर उनके हृदय की आर्द्रता आँखों में उमड़ आती थी। अछूतों के लिये उनके हृदय में सचमुच बड़ा ही अनुराग था। उन्होंने एक पत्र लिखकर सब शिक्षितों और अशिक्षितों से मेरे काम में सहायक होने की अपील की थी।

काश्मीर से लौटकर मैं बीमार हो गया। फिर भी १९२८ की बरसात मे मैंने गीत-यात्रा जारी रक्खी। सन् १९२६-२७-२८ में कुल मिलाकर लगभग ९-१० हज़ार मील की यात्रा मैंने पैदल और रेल से की। और गीत-संग्रह में सब प्रकार के खर्च मिलाकर कुल ३८-३९ सौ रुपये खर्च किये। समय, धन और स्वास्थ्य तीनों को अपनी शक्ति से अधिक खर्च करके मैंने पाया क्या? हज़ारों गीत और ग्राम्य जीवन के अनमोल अनुभव।

संग्रह से लाभ क्या होगा? यह एक प्रश्न है, जिसका उत्तर पाने के लिये बहुत से लोग लालायित होंगे। मैंने जो लाभ समझा है, वह यह है:—

सबसे पहला लाभ तो यह है कि हम एक कंठस्थ साहित्य को लिपिबद्ध करके उसे सुरक्षित कर लेंगे।

दूसरा लाभ इन गीतों के संग्रह से यह होगा कि हमको स्त्रियों के मस्तिष्क की महिमा देखने को मिलेगी। जिनको हमने मूर्ख समझ रखा है, उनके मस्तिष्क से ऐसे-ऐसे कवित्व-पूर्ण गीत निकले हैं कि उन पर हिन्दी के कितने ही कवियों की रचनायें निछावर की जा सकती हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू भगवानदास के शब्दों में 'उनमें रस की मात्रा व्यास, वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति से भी तथा तुलसीदास, सूरदास से भी अधिक है।' क्या यह एक आश्चर्य की बात नहीं है? अतएव ऐसी आश्चर्य की वस्तु का संग्रह क्या आवश्यक नहीं है?

तीसरा लाभ इन गीतों से यह होगा कि हिन्दी की प्राचीन और नवीन कविता की शैली पर इनका प्रभाव पड़ेगा। गीतों की रचना प्राकृतिक

शैली पर हुई है। उनमें कल्पित नहीं, बल्कि स्वाभाविक रस का विकास हुआ है। अतएव उसका प्रभाव भी शीघ्र और स्थायी होता है। मुझे आशा है, कि गीतों का अध्ययन करके हमारे वर्तमान कवि-गण अपनी शैली में परिवर्तन करेंगे।

चौथे, गीतों में वर्णित अपने देश के भिन्न-भिन्न रस्म-रिवाजों और रहन-सहन से हम जानकार हो जायँगे। इस जानकारी से देश के नेता और समाज-सुधारक सभी लाभ उठा सकते हैं।

पाँचवें, गीतों-द्वारा हम जनता को यह बता सकेंगे कि पूर्व-काल में, जब के बने ये गीत हैं, बालविवाह की प्रथा नही प्रचलित थी। वर-कन्या अपनी पसंद के अनुसार जीवन-संगी चुनते थे। गीतों में सर्वत्र ऐसा वर्णन मिलता है। यद्यपि वर-कन्या को अब वैसे अधिकार प्राप्त नहीं हैं, पर गीतों में विवाह का प्राचीन आदर्श तो कायम है। यदि ग्राम-गीतों द्वारा हम यह बात अपने देश के माता-पिताओं के हृदय में उतार सके, तो गीतों से यह एक बहुत बड़ा लाभ समझा जायगा।

छठें, हम गीतों में वर्णित भाई-बहन के प्रेम की वृद्धि करेंगे। पति-पत्नी के प्रेम को अधिक मधुर, चिरस्थायी और सुखमय बनायेंगे। बहू के प्रति सास की कठोरता, तथा ननद-भौजाई और देवरानी-जेठानी के झगड़े कम करेंगे। कन्याओं में सती-धर्म के प्रति शाश्वत श्रद्धा की नीव डालेंगे। बहू पर होनेवाले अत्याचारों की मात्रा कम करेंगे। पति-व्रत-धर्म की महिमा का प्रचार करके हम पति-पत्नी के जीवन को अधिक विश्वसनीय और आनन्दमय बनायेंगे। नीति के वचनों का प्रचार करके हम अपढ़ और अशिक्षित जनता की बुद्धि में स्फूर्ति उत्पन्न करेंगे। पिता-पुत्र में स्वाभाविक पवित्रता, युवकों में उच्चाभिलाषा और वृद्धों में संतोष की वृद्धि करेंगें। पुरुषों को एक नारीव्रत की शिक्षा देंगें।

सातवें, हम हिन्दी-साहित्य में नये-नये महावरों, कहावतों, पहेलियों और नवीन शब्दों की वृद्धि करेंगें।

गाँवों की अद्भुत रचना

पूर्व-काल में जिस किसी ने गाँवों का निर्माण किया होगा, वह अर्थ-शास्त्र का निश्चित ही बहुत बड़ा पंडित रहा होगा। उसने अक्षरों की सहायता लिये बिना ग्राम-जीवन में ज्ञान के प्रसार की अद्भुत व्यवस्था की है। पुस्तकों से आँख-द्वारा शिक्षा और ज्ञान को ग्रहण करने की अपेक्षा उसने गाँव के प्रत्येक कंठ को बोलती हुई पुस्तक बना दिया, और कान को उसका माध्यम। और अर्थ-व्यवस्था ऐसी की, जिसमें सिक्के की ज़रूरत ही नहीं। सच्चे परिश्रम से सम्पत्ति उत्पन्न होती है और वह प्रत्येक ज़रूरत-मंद को आसानी से प्राप्त हो जाती है। गाँवों में जाते-आते मुझे यह अनुभव हुआ कि गाँव स्वयं अपने में सम्पूर्ण है। इसका खुलासा आगे किया जाता है।

असली हिन्दुस्तान शहरों में नहीं, गाँवों में है। शहरों में अरब और योरप घुस आये हैं; पर गाँव की मूल संस्कृति और प्रकृति अभीतक बहुत-कुछ उसी हालत में है, जिस हालत में वह चन्द्रगुप्त और अशोक के ज़माने में रही होगी। अन्तर पड़ा है तो केवल धन का। पहले जैसा धन अब गाँवों में नहीं है, बल्कि घोर निर्धनता है। पर निर्धनता का उसकी नींव पर अभीतक बहुत ही कम प्रभाव पड़ा जान पड़ता है।

गाँव को गाँव की दृष्टि से देखिये, तभी वह सुन्दर मालूम होगा। गाँव को अन्दर से देखिये, तभी उसकी सम्पूर्णता समझ में आयेगी। अभी जो हम गाँव वालों को असभ्य, गंदे और अस्त-व्यस्त-सा पाते हैं, उसका पहला कारण तो उनकी असह्य गरीबी है, और दूसरा यह कि हम उन्हें योरप की आँखों से देखते हैं, इसीसे उनमें असंख्य त्रुटियाँ दिखाई पड़ती हैं। हम में उनकी त्रुटियाँ ही देखने का अभ्यास भी डाला गया है। उनकी त्रुटियाँ ही त्रुटियाँ हमें बताई भी जाती हैं और हम उन्हें अपनी प्रखर प्रतिभा से बढ़ाते भी रहते हैं, इससे उनसे हमें घृणा होती जाती है।

ग़रीबी किसी तरह हट जाय तो गाँववालों में अनेक ऐसे सद्गुण चमक उठेंगे, जो संसार के किसी भी सभ्य-समाज के लिये आदर्श माने जायँगे और जो पैतृक-सम्पत्ति की तरह हजारों पीढ़ियों से उनके पास हैं।

गाँव की प्राचीन व्यवस्था का अच्छी तरह अध्ययन किया जायगा तो वह एक आदर्श व्यवस्था साबित होगी। किसी ज़माने में गाँव में शिक्षा न्याय, सहयोगिता, स्वास्थ्य, चरित्र-निर्माण और गृह-प्रबन्ध आदि की स्वतन्त्र और उत्तम व्यवस्था थी। इन सब को मिलाकर वह सम्पूर्ण था और उसे बाहरी सहायता की बहुत ही कम आवश्यकता थी। विदेशी सभ्यताओं ने उसके रूप को छिन्न-भिन्न कर दिया है। इसीसे हम उसके असली रूप को, जो अब उसके टुकड़ों में वर्तमान है, नहीं देख पाते हैं और वह हमें अप्रिय-सा लग रहा है।

शिक्षा

सबसे पहले शिक्षा को लीजिये.—

यह कहा जाता है कि गाँववालों में शिक्षा का अभाव होता है, यह सर्वांश में सत्य नहीं है। यह हम मानते हैं कि उनको अक्षर-ज्ञान नहीं होता, और इसी से आँख-द्वारा मिलनेवाली शिक्षा से वे वंचित होते हैं। पर कान-द्वारा मिलनेवाले ज्ञान से वे रहित नहीं होने पाते। वे ऐसे पूर्वजों के प्रतिनिधि हैं, जिन्होंने किसी दिन सारी पृथ्वी पर अपनी सभ्यता का प्रसार किया था और अपने ज्ञान के आलोक से मनुष्य-जीवन को चमत्कृत कर दिया था। इससे सभ्य-समाज में प्रचलित अनेक सदगुण उनको परम्परा से प्राप्त हैं, जो उनके साथ रहकर व्यवहार करने पर प्रकट होते हैं।

यह सच है कि वे हाईस्कूल और यूनिवर्सिटी तक नहीं पहुँच पाते; पर कान से सुनकर मनुष्यता के जो लक्षण वे जान लेते हैं और जिन्हें वे व्यवहार में भी लाते हैं, उनसे क्या उनको शिक्षित नहीं माना जा सकता?

हमें उनकी सच्ची हालत की अच्छी तरह जानकारी प्राप्त करके ही उनके विषय में कोई बात बोलनी चाहिये।

मौखिक विश्व-विद्यालय

गाँव का सारा समाज एक अदभुत विश्व-विद्यालय-जैसा है, जिसमें चमार से लेकर ब्राह्मण तक एक दूसरे को ज्ञान-दान करते रहते हैं और

सभी गुरु और सभी शिष्य होते हैं। ज्ञान में वहाँ छूत नहीं है। चमार के मुख से गाये हुये भजनों से वहाँ ब्राह्मण पण्डित वैसा ही आनन्द अनुभव करते हैं, जैसा वे वाल्मीकि, व्यास और कालिदास के काव्यों से। और वह मौखिक विश्व-विद्यालय हजारों वर्षों से, बिना किसी वाइस चांसलर की देख-रेख और बिना एक पैसे के खर्च के चल रहा है।

गाँव के मौखिक विश्व-विद्यालय में बचपन से लेकर मृत्यु की अन्तिम सीढ़ी तक शिक्षा के अलग-अलग कोर्स हैं और हरएक को उसकी आयु के अनुसार आप से आप शिक्षा मिलती रहती है। वहाँ जो शिक्षा वृद्धावस्था के लिये उपयोगी है, उसका भार बचपन ही में उनपर नहीं लाद दिया जाता।

कथा-प्रणाली

गाँव में बहुत प्राचीन-काल से कथा कहने की प्रणाली प्रचलित है और इससे समाज को बहुत लाभ पहुँचा है।

बड़े-बड़े गाँवों में प्रायः प्रत्येक वर्ष कोई न कोई कथा-वाचक आते रहते हैं और गाँववालों की रुचि के अनुसार रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत् या दूसरे किसी पुराण की कथा कहते हैं। गाँव के स्त्री-पुरुष बड़ी श्रद्धा से कथा सुनते हैं और अपनी शक्ति और श्रद्धा के अनुसार कथा की समाप्ति पर कथा-वाचक को पैसा, रुपया, वस्त्र और अन्न आदि देकर संतुष्ट करते हैं। कथा-वाचक लोग मूल कथाओं के साथ और भी किस्से-कहानियाँ और सामयिक घटनाओं की बातें कहते रहते हैं, तथा बुराइयों की कड़ी अशोचना भी करते हैं, इससे गाँव के स्त्री-पुरुषों को अपने गुणों और दोषों की जानकारी होती रहती है और वे कथा-वाचक के थोड़े परिश्रम से, थोड़े समय में, इतना अधिक ज्ञान पा जाते हैं, जितना शायद वे गाँव की पाठशाला या स्कूल से न पाते।

पुरानी और नवीन शिक्षा-प्रणाली में एक मौलिक अन्तर है। पुरानी शिक्षा-प्रणाली का माध्यम कान है; और नई का आँख। पहले लोग सुनकर अधिक सीखते थे और अब पढ़कर। दोनों में श्रेष्ठ कौन है?

यह प्रश्न विचारणीय है। वेद का नाम श्रुति इसलिए है कि वह सुना जाता है। 'स्मृति' को स्मरण रखना पड़ता है; क्योंकि वह क़ानून का संग्रह है। मेरी राय में कान द्वारा मिलनेवाली शिक्षा अधिक और शीघ्र फल देनेवाली होती है।

गाँव में कथावाली प्रणाली बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। इससे अपढ़ लोग भी हिन्दू-सभ्यता के मूल सिद्धान्तों से अवगत होते रहते हैं और अपने चरित्र में उनका प्रभाव भी पड़ने देते रहते हैं।

शिक्षा का आरम्भ

गाँवों में शिक्षा का आरम्भ माँ की गोद ही से हो जाता है। पहले बच्चे को बोलचाल के कुछ शब्द रटाये जाते हैं; फिर कुटुम्बियों के उपनाम जैसे, बाबा, दादा, चाचा, काका, भाई और बहन आदि तथा घर की चीजों के नाम बताये जाते हैं।

जब बच्चा घर के बाहर निकलने लगता है और वह कुत्ते, बिल्ली, गौरैया, गाय, भैंस, बैल, बछड़ा, गीदड़ आदि जानवरों और गृहस्थ से संबंध रखनेवाले नाई, धोबी, ग्वाला, कुम्हार, माली, पुरोहित, कहार आदि पेशेवरों से परिचित हो जाता है, तब उसे उनसे संबंध रखनेवाली कहानियाँ, गद्य और पद्य दोनों में, सुनाई जाती हैं; जिनसे उसे वस्तु-ज्ञान कराया जाता है, तथा शब्दों के प्रयोग की विधि और व्यवहार-कुशलता सिखाई जाती है।

बच्चों की शिक्षा का जो स्वरूप गाँवों में प्रचलित है, वह उनके लिए बहुत ही उपयोगी है, और विश्लेषण करने पर वह विज्ञान-सम्मत भी साबित होगा।

गीत, खेल और कहानियाँ

बच्चों को लोरियों, खेलों और कहानियों-द्वारा शिक्षा दी जाती है। माँ मधुर स्वर से गा-गाकर बच्चे को जगाती और सुलाती है। बच्चे लोरियाँ सुनते-सुनते सोना पसन्द करते हैं। जिन्होंने शुरू-शुरू में लोरियों की प्रथा

चलाई, उनको ज़रूर मालूम था कि किस तरह कान-द्वारा बच्चे के दिमाग़ पर नींद का जादू फेरा जा सकता है।

बच्चा जब जाग उठता है, और उसे बहलाने की ज़रूरत होती है, तब उसका बड़ा भाई, बहन, पिता, चाचा या घर का और कोई वयस्क व्यक्ति उसे गोद में उठा लेता है और घर में या बाहर किसी खाट पर चित लेटकर, अपने दोनों घुटनों को बराबर मोड़कर, टाँगों पर उसे बैठा लेता है और यह गीत गाता है:—

खंता मंता लेई थै; एक कौड़िया पाई थै; गंगा में बहाई थै; गंगा माई बालू दिहिन; ऊ बालू हम भुजवा क दीन, भुजवा हम्मै लाई दिहेस; ऊ लाई घसिकरवै दीन; घसिकरवा हम्मै घास दिहेस; ऊ घसिया हम गैया क दीन; गैया हम्मै दूध दिहेसि; वहि दुधवा का खीर पकायउँ; खिरिया गै जुड़ाइ; भैया गै कोहाँइ, बहिनी गै मनावै; चला भैया खाइ ला; भैया मारेन दुइ लात।

यह अवध-प्रांत का गीत है। इसी के जोड़ के गीत अन्य प्रांतों की बोलियों में भी हैं।

गीत के अंत में खेलानेवाला 'पु-लु-लु-लु' कहकर टांगों को इतना ऊपर उठा लेता है कि बच्चा खेलानेवाले की छाती पर सरक आता है और उसका मुँह खेलानेवाले के मुँह के पास आ जाता है, जिसे वह चूम लेता है।

गीत पर ग़ौर करके देखिये तो मालूम होगा कि इस गीत-द्वारा बच्चे को घर के आसपास की कितनी वस्तुओं का ज्ञान करा दिया जाता है। कौड़ी, गंगा, बालू, भड़भूँजा, लाई, घसियारा, घास, गाय, दूध, खीर, आदि कितने ही शब्द, नये-नये वाक्य और क्रियायें, भड़भूँजा, घसियारा आदि पेशेवर और उनके काम बच्चे को बता दिये जाते हैं। अंत में भाई के हृदय में बहन के लिये प्रेम उत्पन्न करने का बीज बो दिया जाता है। "भैया मारेन दुइ लात' सुनकर भैया पैर चलाये बिना रह नहीं सकते। फिर टाँगें ऊँची करने पर बच्चा जब छाती पर सरक आता है और उसका मुँह चूम लिया जाता

है, तब वह भीतर ही भीतर कितना आनन्द अनुभव करता होगा, यह कल्पना-तीत है। इसमें एक वैज्ञानिक तथ्य भी है। ध्यान से सुनते-सुनते बच्चे के शरीर में रक्त का संचार मंद पड़ जाता होगा, उसे प्रवहमान करने के लिये ही गीत में दो लात मारने और बच्चे के सिरको नीचा और पैर को ऊँचा करने की बात जोड़ दी गई जान पड़ती है।

चार-पाँच बरस का होने पर लड़का टोले-महल्ले के लड़कों के साथ खेलने निकलता है। उसके लिये छोटे-छोटे खेल हैं, जो घर के अन्दर खेले जाते हैं। गीत उनमें भी गाये जाते हैं।

क्वार और कातिक के महीने में जब खेत अगली फ़सल के लिये जोत दिये जाते हैं, तब लड़के और नौजवान भी खेत का खेल प्रायः रात में खेलते हैं, जिनसे सारे खेत के ढेले भी फूट जाते हैं।

जाड़े और गरमी में वे कबड्डी खेलते हैं। पेड़ पर चढ़ने और पानी में तैरने के खेल भी वे खेलते रहते हैं, जिनमें पेड़ पर चढ़ना और पानी में तैरना उन्हें बिना कुछ खर्च किये आ जाता है। बरसात में अखाड़ों में कुश्ती लड़ने और लम्बी कूद का खेल होता है। इस तरह लड़कों की बौद्धिक और शारीरिक शिक्षा साथ-साथ चलती है।

मानसिक शिक्षा के लिये कहानियाँ कही जाती हैं।

गाँव की कहानियों और स्कूली रीडरों की कहानियों में मौलिक अन्तर होता है। रीडरों की कहानियाँ ज्यादातर योरप से आई हैं। उनमें दिमागी कतर-ब्योंत ही अधिक होती है, भारत के सात्विक जीवन को पौष्टिक आहार देने वाले तत्व कम। किसी में लोमड़ी ने चालाकी से कौवे का टुकड़ा कैसे छीन लिया की चालाकी बतलाई गई होती है और किसी में भेड़िये और मगर को धोखा देने वाली बात होती है। निश्चय ही बच्चे का दिमाग विलायती कहानियों के प्रभाव से धोखा, चतुराई और धूर्तता के साँचे में ढल जाता होगा। दिमाग़ और शरीर को उत्तेजना देनेवाली और अङ्ग-संचालन की ज्यादा क्रियायें करानेवाली कहानियाँ योरप के ठण्डे मुल्कों के लिये तो लाभदायक हो सकती हैं, पर भारत-जैसे गरम

मुल्क के लिये हृदय में शांति, सुख और सात्विक रस उत्पन्न करनेवाली कहानियाँ ही अनुकूल पड़ेंगी। कहानियों का संबंध केवल बुद्धि या मन ही से नहीं होता, शरीर के स्वास्थ्य से भी होता है। पूर्व और पश्चिम की कहानियों में जो मौलिक अन्तर है, उसी से मालूम होता है कि दोनों ओर की कहानियों की रचनाओं पर जलवायु की सरदी और गरमी का असर पड़ा हुआ है। अतएव बच्चों के लिये उनके असली मुल्क की कहानियाँ ही स्वास्थ्यकर हो सकती हैं।

गाँव की पुरानी कहानियों की प्रकृति ही दूसरी होती है। जैसे—एक राजा था; उसके सात बेटे थे। राजा ने कहा—जो बेटा फलाँ टापू से फलाँ फल ला देगा, उसे वह आधा राज-पाट दे देगा। सातों बेटे अलग-अलग राहों से जाते हैं। रास्ते के अनेक कष्ट भोगते हैं। अन्त में सबसे छोटा बेटा ही सफल होकर लौटता है। राजा उसे आधा राज दे देता है। बेटा उसे बड़े भाई को सौंप देता है।

ऐसी कहानियों से बच्चों में साहस के काम करने का हौसला तो बढ़ता ही है; रास्ते के कष्टों का और उनसे छुटकारा पाने का ज्ञान भी उनको हो जाता है और आधा राज पाकर उसे बड़े भाई को सौंप देने का महत्वपूर्ण त्याग भी उनको हृदयंगम करा दिया जाता है।

सबसे बड़ी विचित्रता गाँव की कहानियों में यह होती है कि उनमें प्रायः सबमें सबसे छोटे भाई ही को जिताया जाता है; क्योंकि वे छोटे बच्चे के लिये ही होती हैं, जिसे उत्साहित करना ज़रूरी होता है। कभी बड़ा भाई भी छोटा था, तब वही कहानी उसके लिये थी।

कुछ कहानियाँ गद्य में होती हैं, कुछ पद्य में; और कुछ गद्य-पद्य दोनों में। गद्य और पद्य दोनों की कहानियों की भाषा बोल-चाल की, सरल, सुबोध और छोटे-छोटे वाक्यों वाली होती है, जिससे बच्चे के नन्हें-नन्हें फेफड़ों पर ज्यादा बोझ नहीं पड़ता।

नौजवानों का साहित्य

नौजवानों के लिये जवानी के उमंग को बढ़ाने वाले प्रेम और शृङ्गार-रस के गीत, पूर्वजों के सच्चे अनुभवों को बताने वाली नीति की कहावतें, स्वास्थ्य के लिये चुटकुले और धनोपार्जन के लिये खेती की कहावतें आदि ज्ञान-वर्द्धक पाठ उनके कंठ में मौजूद होते हैं।

अधेड़ों और वृद्धों का साहित्य

अधेड़ों और वृद्धों के लिये जीवन में शांति का सुख भरने वाले भजन है, जिन्हें वे मन्दिरों में बैठकर, तीर्थ-यात्रा में या सुबह शाम अपनी बैठक में, गाते रहते हैं। जो नहीं गा सकते, या जिनको गाने का अवकाश नहीं मिलता, उन्हें सरवन, गोपीचन्द भरथरी आदि गानेवाले भिखमंगे, शिव-पार्वती का विवाह गानेवाले जोगी, संतों के भजन गाने वाले रैदास भगत, संसार की असारता के पद गानेवाले मँगते साधू और फ़कीर घूम-घूम कर गाते और सुनाते रहते हैं। शिक्षा-प्रचार का काम प्रातःकाल के चार बजे से, जब से मंदिरों में ठाकुरजी जागते है, और मसजिदों मे अज़ान दी जाती है, रात के दस बजे तक, सोने के समय तक, बराबर जारी रहता है।

जब राह में डोली उठाये हुये कहार गाते हुये चलते हैं:—

धै देत्यो राम हमारे मन धिरजा।
सब की महलिया रामा दिअना बरतु है,
हरि लेत्यो हमरो अँधेर; हमारे मन धिरजा ॥

तब क्या हजारों राही-बटोही, खेत में काम करने वाले किसान और गाँव के अन्य निवासी उनके गीतों से प्रभावित नहीं होते होंगे?

जातीय गीत

गाँव की प्रत्येक जाति ने, यहाँ तक कि जंगल में बसने वाले मुसहर तक ने, अपने जातीय गीत अलग बना रक्खे हैं। उनके गीतों में उनके समाजिक जीवन के लिये प्रोग्राम होता है। उनके गाने के स्वर और बाजे भी अलग होते हैं।

जातीय नाच

केवट, मल्लाह, मुसहर, अहीर, चमार, धोबी, पासी, नाई, भड़भूजा, गड़रिया, कहार, कुम्हार और हेला (भङ्गी) लोग अपने जातीय उत्सवों में खुद नाचते और गाते हैं। सबके नाच और गाने के तरीक़े तथा बाजे जुदा-जुदा होते हैं। कुछ लोग तो सूप ही बजाकर गाते और नाचते हैं।

प्राचीन काल में शिवजी नाचते थे, श्रीकृष्ण नाचते थे, अर्जुन नृत्य के गुरु बने थे; उनकी नृत्य-कला अब चाहे विकृत रूप ही में क्यों न हो, अभी-तक गाँवों में सुरक्षित है। कुछ दिनों से पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से हमारे शिक्षित-वर्ग में भी नृत्य-कला के लिये अनुराग उत्पन्न हुआ है सही, पर अच्छी तरह विश्लेषण किया जायगा तो भारतीय नृत्य-कला, जो गाँव की विभिन्न जातियों में बिखरी हुई मिलती है, पश्चिमी नृत्य-कला से बहुत बातों में विशेष कला-पूर्ण साबित होगी।

अहीरों का नाच नाच देना शायद योरप और अमेरिका दोनों के लिये मुश्किल होगा। उनकी 'फरी' देखकर सरकस वाले भी दंग हो जायँगे।

नृत्य के गीतों की शब्द-योजना इस ढङ्ग की होती है कि जब वे अपने स्वर में गाये जाते हैं, तब सुननेवालों के अंग फड़कने लगते हैं। जैसे:—

मेरा तेरा मनुवाँ कैसे एक होइ रे।
मैं कहता तू जागत रहियो,
तू रहता है सोइ रे॥

नाच के वक्त इसकी गति, ताल और लय पर इसके श्रोता और दर्शक अंग-संचालन के लिये विवश से हो जाते हैं। जिन्होंने नाच के लिये गीतों का सृजन किया है, वे अवश्य नृत्य-कला के विशेषज्ञ रहे होंगे।

संकेताक्षर

गाँव की सम्पूर्णता प्रमाणित करने के लिये सबसे अधिक रोचक उदाहरण संकेताक्षरों का निर्माण है।

किसी सद्गृहस्थ की बैठक में जब दस-पाँच मिलने-जुलने वाले बैठे होते हैं और उनमें से किसी को किसी से कोई गोपनीय बात, बिना दूसरों को सुनाये हुये, कहनी होती है, तब वह संकेताक्षरों के उपयोग से अपना कार्य सिद्ध कर लेता है। संकेताक्षरों के लिये गाँव में यह छंद प्रचलित है:—

अहि-फनि कमल चक्र टंकोर।
तरुवर पब्बै औ ससिकोर।।
अँगुरिन अच्छर चुटकिन मंत।।
कहै राम बूझै हनुमंत।।

इसमें अ से लेकर ज्ञ तक अक्षरों को वर्गों में बाँट दिया गया है। वर्गों का पता हाथ की कई तरह की बनावटों, जैसे साँप के फन, कमल, चक्र, धनुष आदि से बताकर, फिर उँगलियों से वर्ग के अक्षर और चुटकियाँ बजाकर मात्रायें समझा दी जाती हैं। गुप्त रीति से काम निकालने का कैसा सहज तरीका है! ऐसा ही तरीका झंडियों से बातचीत करने में बर्त्ता जाता है। कम से कम इतना तो हमें स्वीकार कर ही लेना चाहिये कि गाँव-वालों ने अपनी छोटी-छोटी कठिनाइयों पर भी ध्यान दिया है और उन्हें किसी न किसी रूप में उन्होंने दूर भी कर लिया है। उन्हें मूर्ख कैसे कहा जायगा?

सम-सामयिकता

गाँव के लोग असावधान नहीं कहे जा सकते। उनका ढाँचा ही इस क़िस्म का बना हुआ है कि वर्तमान-काल आपसे आप उनके अंदर सरक जाता है। एक उदाहरण लीजिये:—

रेल उनके लिये बिलकुल एक नई चीज़ थी; पर थोड़े ही दिनों के बाद उन्होंने बड़ी बारीकी से उसका गुण-दोष समझ लिया। एक अहीर, जो बुद्धिहीन गिना जाता है, अर्थ-शास्त्र की वह बात कहता है, जो यूनिव-र्सिटी के किसी प्रोफेसर के कहने की हो सकती है। वह राह में ज़ोर से गाता हुआ, गाँव भर को सुनाता हुआ चलता है:—

जब से छुटि रेल कै गाड़ी कटिगा जँगल पहाड़।
पैसा रहा सो गोड़े क सौंपेउँ पेटवा पीठि कै हाड़॥

अर्थात् जब ये रेल चली; उसके रास्ते के जंगल और पहाड़ काट डाले गये। पास में जो पैसा था, उसे मैंने पैर को सौंप दिया; अर्थात् पैर को पैदल चलने न देकर उसके लिये टिकट खरीद लिया और पेट को पीठ के हाड़ (रीढ़) के सुपुर्द कर दिया। मतलब यह कि खाने के लिये पैसा नहीं रह गया तो पेट पिचककर कर रीढ़ से जा सटा। क्या यह रेलकी एक मार्मिक आलोचना नहीं है?

जिस समाज में अपने वर्तमान सुख-दुःख की आलोचना की शक्ति और मन की तरंगों को पकड़कर उनमें सरसता अनुभव करने की समझ मौजूद है, उसे बुद्धिहीन कैसे कहा जायगा?

स्त्री-साहित्य

गाँव में स्त्रियों की शिक्षा भी बचपन से, गुड़ियों के खेल के साथ, शुरू कर दी जाती है। गुड़ियों के खेल में लड़कियों को गृहस्थी की कुल शिक्षा मिल जाती है। ज़रा सयानी होने पर लड़कियाँ गीत सीखने लगती हैं, जिन में उनके भावी जीवन में लाभ पहुँचाने वाले मानसिक रोगों के मधुर नुस्खे होते हैं, जिन्हें वे बहू बनने पर नित्य आज़माया करती हैं। जैसे,

ग्रामगीत ज्यादातर स्त्री-साहित्य ही है। हिन्दुओं में सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा प्रचलित है। स्त्री-गीतों में पूरे ज़ोर से इसका समर्थन पाया जाता है। कन्यायें और बहुयें सब कुटुम्बियों के अलग-अलग उपग्रामों को जोड़-जोड़कर गीत गाती हैं, जिनसे हरएक कुटुम्बी को गृहस्थी के एक केंद्र से बँधे रहने की प्रेरणा मिलती है।

स्त्री-गीतों की दुनिया में एक यह विचित्र बात भी पाई जाती है कि सारे गीत सास के जीवन तक ही पहुँचकर समाप्त हो जाते हैं। बहू जब स्वयं सास बन जाती है, तब उसकी सास का कोई भी समाचार हमें गीतों

से नहीं मिलता। पुरुषों के लिये वृद्धावस्था के गीत और भजन बहुत से हैं, जो उनको श्मशान तक पहुँचा आते हैं। उनमें स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि की निस्सारता जोरदार शब्दों में प्रकट करके पुरुष को परलोक के लिये उत्कंठित किया जाता है; पर स्त्रियों की वृद्धावस्था के लिए न गीत हैं, न भजन, न पद। वृद्धा स्त्रियों को निराधार क्यों छोड़ दिया गया? यह रहस्य समझ में नहीं आता। क्या सासें कुटुम्ब के लिये तरह-तरह की दवाओं से भरी बोतलें हैं कि जब दवा खतम हो जाती है तब वे खाली बोतलों की तरह उपेक्षा-पूर्वक अलग रख दी जाती हैं, और फिर उनकी खोज-खबर भी नहीं ली जाती? विचारणीय प्रश्न है।

पुरुषों का साहित्य

पुरुषों के गीतों में ज्यादातर वीरता, नीति, स्त्रियों के प्रति घोर आकर्षण, त्याग और वैराग्य के भाव भरे होते हैं। उनमें लम्बी-लम्बी कथायें, जैसे आल्हा, लोरिक, हीर-राँझा, ढोला-मारू, कुँवर विजयी आदि चलती हैं, जिनसे उनका मनोरंजन होने के सिवा उनमें साहस के काम करने की प्रवृत्ति भी जागृत होती है। पुरुषों के शृंगारी गीतों से तो ऐसा लगता है, मानों पुरुष भौंरे की तरह दौड़-दौड़कर सब रसों का स्वाद लेना चाहता है।

पुरुषों का साहित्य स्त्री-साहित्य से कम नहीं है। अंतर इतना ही है कि स्त्री का साहित्य घर के अंदर का है और पुरुष का बाहर का।

पुरुषों में जो छंद और गीत प्रचलित हैं, उनसे वे भावों की गहराई तक पहुँचे हुये जान पड़ते हैं। जैसे,

जब महुआ चूने लगता है, तब अकसर लोग गाने लगते हैं:—

औचक आइ जोबनवा मारेसि बान।
महुवा रोवै ठाढ़ आम बौरान॥

महुवे का फूल आँसू की तरह टपकता है और उन्ही दिनों आम में बौर भी आते हैं। 'बौरान' के दो अर्थ हैं—बौर गया और बावला हो गया। क्या यह किसी कवि-कृति से कम सरस है?

हास्य-रस के लिये एक फूहड़ स्त्री का मजाक सुनिये:—

फूहरि के घर खिड़की लगी। सब कुत्तों को चिंता पड़ी।
बांड़ा कुत्ता चितवै मौन। लगी तो है पर देगा कोन?

फूहड़-स्त्री का इससे चुभता हुआ मजाक और क्या होगा?

अपने प्राण-धन के साथ दुःख मे भी सुख अनुभव करने वाली एक पति-वल्लभा का हृदयोद्गार सुनिये:—

टूटि खाट घर टपकत टटियौ टूटि।
पिय कै बाँह सिर्हनवाँ सुख कै लूटि॥

एक प्रेम-विह्वला अपना घर जलता हुआ देखकर भी सुख अनुभव कर रही है:—

आगि लागि घर जरिगा अति सुख कीन्ह।
पिय के हाथ घइलना भरि भरि दीन्ह॥

आगे की पंक्तियों में देखिये, कविता का सच्चा स्वरूप झलकता हुआ मिलता है, या नही?

१

परबत पर दिवला बरै, चहुँदिसि बाजै पौन।
बरै अचंभा जानिये, बुझत अचंभा कौन॥

२

साजन तेरे हेत, अंखियाँ तो नदिया भईं।
मन भयो बारू रेत, गिर गिर परत करार ज्यों॥

३

जोबन गयो तो भल भयो, तन से गई बलाय।
जने जने का रूठना, मोसे सहा न जाय॥

४

साँझ भई दिन अथवा, चकई दीन्हा रोय।
चल चकवा वा देस को, जहाँ साँझ नहिं होय॥

५

आग लगी बनखंड में, दाह्या चंदन बंस।
हम तो दाझे पंख बिन, तू क्यों दाझे हंस॥
फल खाया बीटाँ करी, बैठे तुम्हरी डाल।
तुम जरो हम उड़ चलें, जीवेंगे कै काल॥

६

सत मत हारे बावरे, सत हारे पत जाय।
सत की बाँधी लच्छमी, फेर मिलैगी आय॥

कहावतें और महावरे

गाँव की कहावतों के थोड़े से शब्दों मे एक व्यक्ति का, एक समाज का सच्चा और विशाल अनुभव कैसे भर दिया जाता है, यह देखकर आश्चर्य होता है।

जब एक किसान कहता है:—

लरिका ठाकुर बूढ़ दिवान । ममिला बिगरै साँझ बिहान॥

अर्थात् राजा लड़का है और दीवान बूढ़ा; दोनों में पट नहीं सकती। सुबह से शाम तक झगड़ा होके ही रहेगा।

तब हमको मानना पड़ता है कि साधारण किसान को भी राजा और दीवान के स्वभाव का सूक्ष्म परिचय था।

हिन्दी में जितनी कहावतें और महावरे प्रचलित है, प्रायः सब गाँव की बोली से आये हुये हैं। यह उसका एक बड़ा ऋण है, जिससे हिन्दी कभी उऋण नही हो सकती।

गाँव के लोग बड़े ही प्रत्युत्पन्नमति होते हैं, यह उनकी कहावतों और महावरों से अच्छी तरह विदित होता है। उन्होंने कोई चीज़ देखी, उसकी गति-विधि को समझा और झट उसकी एक कहावत बनाली।

कोई आदमी ऐसा काम करना चाहता है, जो उससे नहीं हो सकता, तब वे कहते हैं:—

डगर चला न जाय रजाई का फाँड़ बाँधे । इत्यादि

यह क्षमता शहरवालों में बिलकुल ही नहीं है । 'टाई' और 'पतलून' जैसे झंझटी वस्त्रों को वे सैकड़ों वर्षों से देखते और पहनते आ रहे हैं, पर कभी उन्होंने उनके लिये कोई महावरा या कहावत नहीं बनाई और न कभी उनमें सरसता अनुभव की । पर गाँववालों ने रजाई, धोती, पगड़ी, जूता सभी पर तो कुछ न कुछ कहा है ।

कहावतें तो ग्राम-साहित्य के रत्न हैं । वे गाँववालों ही के लिये नहीं मनुष्य-मात्र के लिये उपयोगी हैं । और जो गाँववालों को समझना चाहे, उनके लिये तो अंधेरे रास्ते के दिये-जैसी हैं ।

महावरे भाषा के प्राण हैं, महावरों का ठीक प्रयोग न जाननेवाला न अच्छी भाषा बोल सकता है, न लिख ।

बुझौवल

बच्चों की बुद्धि पर शान चढ़ाने के लिये गाँवों में बहुत सी पहेलियाँ, जिन्हें बुझौवल भी कहते हैं, प्रचलित हैं । शाम को चौपाल में या नीम के पेड़ के नीचे किसी अधेड़ या बुड्ढे को घेरकर बच्चे बैठ जाते हैं और बुझौवल शुरू हो जाती है । बुझौवल बड़े ही गूढ़ार्थ वाले होते हैं । आश्चर्य है कि गाँव के अपढ़ अशिक्षित लोग उन्हें बना कैसे लेते हैं ?

पाजामे का बुझौवल सुनिये:—

दुई मुँह छोट एक मुँह बड़ा । आधा मनई लीले खड़ा ।
बीचो बीच लगावै फाँसी । नाम सुने आवत है हाँसी ।

इसी तरह कढ़ाई और तवे पर भी बुझौवल हैं:—

चाची के दुइ कान चाचा के कानै न ।
चाची चतुर सयानि, चाचा कुछ जानै न ।।

भाषा की टकसाल

आज हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा का जो रूप हमें दिखाई पड़ता है, वह गाँव की टकसाल का ढला हुआ है । हिन्दी के आदि जन्म-दाता गाँववाले

ही हैं। उन्हींने संस्कृत शब्दों को हिन्दी का रूप दिया है, विद्वानों और पंडितों ने नहीं।

गाँव की फैक्ट्री में नये-नये शब्दों के ढालने और पुराने शब्दों के खरादने का काम हर वक्त जारी रहता है। 'लालटेन' का असली नाम 'लैन्टर्न' है। गाँव की फैक्ट्री में उसका 'ललाटैन' बना, जिसे अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों ने भी स्वीकार कर लिया।

मोटर का 'हार्न' अंग्रेजी शब्द है, जिसका अर्थ 'सींग' है। यह उस समय का शब्द है, जब अंग्रेज गोरू चराया करते थे और सींग बजाकर अपनी गायें बुलाया करते थे। यद्यपि अब उसका शरीर हड्डी का न रहकर रबर और लोहे का बन गया है, पर स्वर-साम्य के कारण उसका नाम पुराना ही चल रहा है। अगर 'हार्न' शब्द का हिन्दी नाम रखने के लिये यूनिवर्सिटी या कालेज के प्रोफेसरों को कहा जाता तो संभवतः वर्षों तक वे 'सींग के' आस ही पास चकराते रहते और शायद न बना पाते। पर गाँव की फैक्ट्री में यह अपने दो स्वरों 'भों' और 'पू' को मिलाकर, 'भोंपू' बन गया, जिसे सभ्य और शिक्षित-वर्ग को भी स्वीकार करना पड़ा।

अंग्रेज़ी में संज्ञा शब्दों की क्रियायें बना लेने की जो क्षमता है, वह गाँव की फैक्ट्री में भी है। अंग्रेज़ी में अगर 'मोटर' से 'मोटरिंग' और 'पेट्रोल' से 'पेट्रोलिंग' बन सकता है तो गाँव की बोली में 'मिट्टी' से 'मटियाना', 'साबुन' से 'सबुनाना', 'साठ' से 'सठियाना' आदि आसानी से, बिना किसी प्रेरणा के बन जाते हैं। फ़ारसी की क्रियाओं को हिन्दी-रूप दे देने की शक्ति भी गाँव की फैक्ट्री ही में है। उसी में 'बदल' का 'बदलना' बना है। अभी और भी कितने ही शब्द वहाँ बनकर काम कर रहे हैं, जिनका हिन्दीवालों को पता ही नहीं है। और किसी को पता है भी, तो वह उनसे काम लेने में हिचकता है। जैसे, उरेहना = चित्र बनाना। छिनगाना = पेड़ की डालें छाँटना (संस्कृत का छिन्नांग), आदि सैकड़ों शब्द हैं, जिनकी हिन्दी में नित्य ज़रूरत पड़ती है, और मिलते नहीं। लेखकों को उनके अभाव में उनका अर्थ समझाना पड़ता है। ऋग्वेद का एक 'द्यौः' शब्द, जिसका

अर्थ 'आकाश' है, 'दइउ' के रूप में गाँव के हिन्दू और मुसलमान दोनों के मुँह-मुँह में मौजूद मिलता है।

स्वराज मिलने पर भारत में एक राष्ट्रभाषा की अनिवार्य आवश्यकता समझी जा रही थी और हमें हर्ष है कि हमारी 'हिन्दी' ही को यह गौरव प्रदान किया गया है। अब उसको अधिक व्यापक बनाने के लिये उसे एक नये साँचे में ढालने का प्रयत्न भी किया जा रहा है। इस प्रयत्न में सरकारी और गैर सरकारी दोनों ओर के विज्ञ शामिल हैं; इसके लिये वे हिन्दी और उर्दू के कोषों से मसाला ले रहे हैं। पर हिन्दी और उर्दू के कोष-कारों की परिधि तो खुद छोटी है। उनके संग्रहीत शब्दों से चुनकर जो भाषा बनाई जायगी, वह राष्ट्र की भाषा नहीं, कोष की भाषा जरूर बन जायगी।

देहात में संस्कृत और अरबी-फारसी के इतने शब्द अपने अपभ्रंश रूप में प्रचलित हैं कि आश्चर्य होता है कि वे वहाँ कैसे पहुँच गये? मुझे बिहार के एक गीत में 'व्यक्ति' शब्द सुनकर आश्चर्य हुआ—

रामा तब बोले वारी दसवंतिया रे ना।
रामा जहुँ हउवा घर के बेकतिया रे ना॥

(बिहार का नयकवा गीत)

मैं समझता था, संस्कृत का यह शब्द हिन्दी में बंगला से आया है; पर यह तो घनान्धकार में बसनेवाले एक ग्रामीण के घर में मुझे मिला। ऐसे शब्दों को राष्ट्रभाषा में अलग कैसे रक्खा जा सकता है?

इसी तरह संस्कृत के और भी बहुत-से शब्द हैं, जो ग्राम-गीतों में आम तौर से प्रयुक्त होते हैं, पर हिन्दुस्तानी भाषा के निर्माण में संलग्न विद्वानों को पता है कि नहीं, मालूम नहीं।

गाँव में जितने पेशेवर होते हैं, सब के अलग-अलग पेशे के शब्द हैं। हिन्दी में उनका तो अभाव ही है।

अतएव यह मानना पड़ेगा कि गाँव की बोली हमारी हिन्दी से अधिक सम्पन्न है। और जब इतना बड़ा बोलता हुआ कोष हमारे सामने खुला

पड़ा है, तब हम अलमारी में रक्खे हुये अपूर्ण और मूक कोषों से राष्ट्रभाषा का पेट भरने में लगें, तो क्या यह हँसी ही की बात नहीं है।

मेरा विश्वास है, गाँव के साहित्य का अध्ययन किया जायगा तो हिन्दी और राष्ट्रभाषा का प्रश्न सहज में हल हो जायगा। क्योंकि हमको संस्कृत और अरबी-फारसी के उन शब्दों को ग्रहण कर लेने में आगा-पीछा न करना पड़ेगा, जिनको गाँव में हिन्दू और मुसलमान दोनों आम-तौर से बोलते और समझते हैं। जिनके लिये हम भाषा को सरल बनाने जा रहे हैं, वे कितने शब्दों को, जिनको हम उनके लिये कठिन समझ रहे हैं, आसानी से समझ लेते हैं, यह तो हमें सबसे पहले जान लेना चाहिये।

न्याय की व्यवस्था

अंग्रेजी राज होने से पहले गाँव-गाँव में पंचायतें थीं, और पंचायतें केवल धन-सम्बन्धी झगड़े ही नहीं निपटाती थीं, समाज के संगठन को सुदृढ़ बनाये रखने के लिये बुराइयों के रोकने में भी वे तत्पर रहती थीं। हजारों वर्षों से भिन्न-भिन्न प्रकार की शासन-व्यवस्थाओं का दबाव पड़ते रहने से अब पंचायतें टूट-टूटकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गई हैं और हरएक पेशेवालों की पंचायतें अलग-अलग बन गई हैं। इन पंचायतों के सरपंच 'चौधरी' कहलाते हैं। सवर्णियों में चौधरी का मान किसी राजा से कम नहीं होता। वह स्वयं जातीय नियमों का कड़ाई से पालन करता है और अन्यों से कराता भी है।

छोटी जातियों में प्रत्येक व्यक्ति पंच कहलाता है, और सरपंच या चौधरी उन सब में बड़ा माना जाता है।

एक चौधरी के मर जाने पर, या किसी जातीय अपराध से उसके पद-च्युत किये जाने पर दूसरा चौधरी सर्व-सम्मति से चुन लिया जाता है। चौधरी का चुनाव सार्वजनिक होता है। चुननेवाले खुद स्वजाति के किसी लोक-प्रिय व्यक्ति से उनका चौधरी बनने की प्रार्थना करते हैं। इससे उम्मीदवारों के झगड़े नहीं उठते।

तेलियों के एक बिरहे में 'पंच' की बड़ी सुन्दर व्याख्या मिलती है:—

जहँ पंच तहँ परमेसर भाई जहँ कुँवंना तहँ कींच ।
वहिय कींच का बना चउतरा, सब पंच नवावइँ सीस ।।
पंचा क बैठि मँडरिया, मँडरिया छोट बड़ा एक तूल ।
केकरे मैं अर्ती उतारउँ रामजी, केकरे खोसउँ बेइली क फूल ।।
पंचा क आउब बहुत निक लागै, जो घर संपति होय ।
आवत के पंचा क सिसिया नवावउँ
जात के पैयाँ पड़ रे जाउँ ।।

इसमें पंच को परमेश्वर कहा गया है और पंचों की मंडली में छोटे-बड़े सब बराबर बताये गये हैं। पंचों का किसी गृहस्थ के घर जमा होना बड़े सौभाग्य की बात मानी गई है; और पंचों का स्वागत-सत्कार करना, उनको सिर झुकाकर प्रणाम करना और उनके पैर छूना एक सद्गृहस्थ के गर्व की बात बताई गई है। आज देश में कांग्रेस या एसेम्बली के प्रधान मंत्री, जो चुने जाकर अपने पदों पर पहुँचते हैं, जिस ज़िम्मेदारी का अनुभव करते हैं, वही चौधरी या सरपंच भी करता है। अन्तर इतना ही है कि चौधरी अवैतनिक होता है। सार्वजनिक सेवा का इससे अच्छा उदाहरण शायद ही और कहीं मिले।

जातीय नियम के विरुद्ध जब कोई व्यक्ति अपराध करता है, तब सब पंच बुलाये जाते हैं और उनके सामने मामला पेश होकर उसका निर्णय होता है। पंचायत का निर्णय अपराधी को मंजूर करना पड़ता है। अदालती निर्णय से पंचायती निर्णय कम ख़र्च का तो होता ही है, अपराधी नम्रता-पूर्वक अपराध और उसकी सज़ा भी स्वीकार करता है और आगे वैसा अपराध प्रायः करता भी नहीं है। अदालतों के निर्णय में यह विशेषता नहीं होती। उससे तो परस्पर द्वेष-भाव ही की वृद्धि होती हुई दिखाई पड़ती है।

जिन जातियों में चौधरी चुनने और पंचायत का निर्णय मानने की

ऐसी सर्वोत्तम प्रथा प्रचलित है, उन्हें शासन-कला से अपरिचित बताना कहाँ तक युक्ति-संगत होगा ?

स्वास्थ और स्वच्छता

गाँववालों को स्वास्थ्य और स्वच्छता के जितने ज्ञान की ज़रूरत होती है, वह उनके पास पूरा है। वे साफ़ नहीं रहते, सफ़ाई नहीं रखते, इसका कारण उनकी ग़रीबी है, न कि अज्ञान। वे स्वास्थ्य और सफाई के नियमों से परिचित हैं, यह उनकी कहावतों से प्रमाणित होता है। मेले-ठेले, शादी-ब्याह में गाँव के नौजवान जब बन-ठनकर और भड़कीले कपड़ों से सज-धजकर निकलते हैं, तब कौन कह सकता है कि उनमें शृङ्गार के प्रति उदासीनता है ?

शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रखने के नियम उनको मालूम हैं। उनके नियम बहुत सस्ते और बड़े ही गुणकारी भी हैं। यदि उनकी जानी हुई औषधियाँ उनको उपलब्ध हो सकें, या सबका संग्रह कराके, हर एक को बता दी जायँ तो उनको अस्पतालों की ज़रूरत बहुत कम रह जायगी।

और मनुष्य के भयंकर रोगों के तो उनके पास अचूक नुस्खे हैं। ग्राम-गीतों के संग्रह में खान-पान की अव्यवस्था के कारण और गुड़ अधिक खाने से मुझे 'डायबिटीज' रोग हो गया था और पेशाब में १० फीसदी चीनी जाने लगी थी। वह गाँव के एक ग़रीब बुड्ढे की बताई हुई दवा—गूलर की तरकारी खाने से चला गया। इसी तरह कोढ़, क्षय, दमा, ब्लड-प्रेशर आदि अमिट माने जानेवाले रोगों के सैकड़ों नुस्खे गाँववालों को मालूम हैं।

बेल की पत्तियों का रस शहद मिलाकर रोज सवेरे लेने से भी 'डायबिटीज़' रोग मिट जाता है। मैंने एक रोगी पर आज़मा कर देखा है।

हिन्दी-मन्दिर प्रेस के एक कंपोजीटर को क्षय रोग लग गया था। उसके थूक के साथ ख़ून जाने लगा था। देहात के लोग इस रोग का इलाज 'लहसुन' बतलाते हैं। लहसुन का सेवन एक महीने करके कंपोजीटर बिलकुल नीरोग हो गया और अब वह किसी प्रेस में 'फोरमैन' है।

गाँवों में जाते-आते रहने से मुझे बहुत सी बीमारियों के देहाती नुस्खे मालूम हो गये। मैंने क़इयों को आज़माया और बहुत ही गुणकारी पाया। जैसे,

कमल या पोलिया रोग में गाँव के लोग मूली के पत्तों का अर्क गुड़ के साथ लेते हैं और लाभ होता है।

एक्ज़िमा के लिये ताँबे के पैसों को काँसे की थाली में दही के साथ घिसकर लगाते हैं।

गाँव में जब कोई नई बहू किसी बड़ी बूढ़ी को प्रणाम करती है, तब हाथ में आँचल पकड़कर, आँचल को उसके पैर से तीन बार छुवा-छुवाकर अपने माथे से छुवाती है। तब उससे वह यह आशीर्वाद पाती है:—

दूधन नहाओ, पूतन फलो।

इसके शाब्दिक अर्थ से इसका भावार्थ गूढ़ है। वास्तव में यह एक नुस्खा है। नई बहू आँचल इसलिये हाथ में लेती है कि उसे आँचल भर देने का अर्थात् पुत्रवती होने का आशीर्वाद मिले। आशीर्वाद में उसे बता दिया जाता है कि दूध से नहाओगी तो पुत्र उत्पन्न होगा।

मुझे मालूम नहीं कि इसमें सचाई कहाँ तक है; पर यह नुस्खा उसी मतलब के लिये है, यह मुझे विश्वास है।

गाँव के लोग उत्तर तरफ सिर करके नहीं सोते और दक्खिन तरफ मुँह करके भोजन नहीं करते। इसमें भी कोई वैज्ञानिक रहस्य होगा, जो उनके पूर्वजों को मालूम था।

वे पेशाब ऐंड़ी उठाकर करते हैं। उनका कहना है कि इससे अंड-वृद्धि का रोग नहीं होता। अंड-वृद्धि को रोकने के लिये पैर के अँगूठे को काले डोरे से कसकर बाँधते भी हैं।

हरएक हिन्दू लड़के का कान छिदाया जाता है और उसमें सोने या चाँदी की बाली पहना दी जाती है। गाँववालों का विश्वास है कि कान में कोई धातु का टुकड़ा लगा रहने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।

हो सकता है कि गाँव के ग़रीबों के इलाज अमीरों को सूट न करें,

पर अस्पताल के महँगे इलाज, जो अमीरों के लिये हैं, ग़रीबों पर क्यों लादे जायँ? ग़रीबों के लिये उनके सस्ते नुस्खे क्यों न संग्रह किये जाँय?

गाँव के लोग स्वस्थ, साहसी, सुदृढ़ और बड़े ही परिश्रमी होते हैं। स्वास्थ्य के बारे में इससे अधिक प्रमाण और क्या चाहिये कि वे बीमार कम पड़ते हैं।

साहसी वे ऐसे होते हैं कि घोर अँधेरी रात में, हाथ में लाठी लिये सुनसान जंगल में जा सकते हैं। सारी रात अकेले अपना खेत रखाते रहते हैं। न उन्हें साँप का डर, न भूत-प्रेत का भय, न कंकड़ और काँटे की परवा। उनके बराबर साहसी दूसरा हो नहीं सकता।

उनकी सुदृढ़ता का सब से प्रबल प्रमाण तो योरप की बड़ी लड़ाई में मिला था। जब कि हिन्दुस्तान के सिपाहियों ने दो-दो तीन-तीन दिनों तक केवल चने और थोड़े पानी पर गुजर करके जर्मनों के छक्के छुड़ा दिये थे। अतएव खानपान की विशेषता से हमारे गाँवों के आदमी संसार की किसी भी सभ्य कहलाने वाली जाति के आदमियों से ज्यादा ही सुदृढ़ साबित होंगे।

उनके परिश्रमी होने का तो कहना ही क्या है? वे लगभग चार बजे सबेरे उठ जाते हैं। शौच आदि से निवृत्त होकर सूरज निकलते-निकलते घर-गृहस्थी के कामों पर डट जाते हैं।

जवान किसान दोपहर से पहले मुँह में कोई आहार नहीं डालता। दोपहर को जब सूरज ठीक सिर पर आता है, और जाड़ों में सूरज लगभग दो बजे वहाँ पहुँचता है, वह नहाकर पहला आहार लेता है। फिर दूसरा आहार रात में नौ-दस बजे। इससे उसका स्वास्थ्य दिनभर में चार बार खाने वालों से अच्छा तो रहता ही है, साथ ही परिश्रम करने का उसे काफी समय भी मिल जाता है।

अखबारों में पढ़ा है कि अमेरिका में 'ऐंटी ब्रेकफास्ट लीगें' (सबेरे के भोजन की विरोधनी सभायें) क़ायम हो रही हैं, और लोगों को पहला आहार दोपहर को लेने की सलाह दी जा रही है। इससे तो यही कहा जायगा

कि हमारे गाँव के किसान सदियों से उस स्थान पर खड़े हैं, जहाँ सभ्य संसार बहुत घूम-फिरकर अब पहुँचना चाहता है।

गाँव की स्त्री दिनभर काम में जुटी रहती है। सबेरे घर साफ करती है, बरतन माँजती है, कुवें से पानी लाती है, जानवरों को चारा-भूसा डालती है, आटा पीसती है, दाल दलती है, बच्चों की संभाल करती है, रसोई बनाती है, सबको खिलाकर तब स्वयं खाती है, तब कही दोपहर के बाद शाम तक कुछ फ़ुरसत पाती है; उस फुरसत में भी वह कुछ सीती-पिरोती रहती है। रात में फिर भोजन बनाकर घर भर को खिला-पिलाकर, सबके अंत में स्वयं खा-पीकर तब विश्राम करती है। इस तरह गाँव के स्त्री-पुरुष दोनों का अधिकांश समय परिश्रम में बीतता है, और परिश्रम से उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

अधिकांश स्त्री-पुरुष रविवार को नमक नहीं खाते; एकादशी को निराहार रहते हैं; बहुत-से त्योहारों पर केवल फलाहार करते हैं। इन सब का भी प्रभाव उनके स्वास्थ पर पड़ता है और वे बहुत कम बीमार पड़ते हैं।

पुरुष और स्त्री दोनों दातुन और स्नान करके ही भोजन करते हैं और कपड़े खोलकर हाथ-पैर धोकर तब खाने पर बैठते हैं।

चूल्हा रोज़ पोता जाता है और चौका गोबर से लीपा जाता है। बरतन माँजकर खूब चमका दिये जाते हैं।

अतएव स्वच्छता का ध्यान गाँव के लोग कम नहीं रखते, जैसा कि समझा जाता है। उनमें जो कुछ गंदगी दिखाई पड़ती है, वह हाथ की तंगी की वजह से है, न कि उनका स्वभाव ही गंदा होता है।

वर्ष में दो बार वे अपने घरों की सफाई करते हैं—एक दीवाली के आसपास, दूसरे होली के दिन। दीवाली का दिया जलाने के पहले वे अपने घर को लीप-पोतकर साफ़ कर लेते हैं; घूरे पर भी दिया जला कर उसे प्रकाशित कर देते हैं। होली के कई दिन पहले से वे घर और बाहर की सफ़ाई में लग जाते हैं। अनावश्यक कूड़ा-करकट जमा करके जला देते

हैं और घर लीप-पोतकर साफ़ और सुन्दर कर लेते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों घर की सफ़ाई में लगे रहते हैं।

गाय-बैल आदि जानवरों को किसी पोखरे में ले जाकर नहलाना-धोना और उनकी सींगों में तेल लगाकर उनको चमका देना हरएक किसान अपना कर्त्तव्य समझता है।

होली के दिन गाँववालों की ख़ुशी देखने योग्य होती है। वे सफ़ेद कपड़े पहनकर हँसते, गाते, परस्पर विनोद करते, रंग और अबीर उड़ाते घर से निकलते हैं। सारा दिन और रात में भी देर तक गाते-बजाते रहकर वे सारा दुःख-दर्द भूल जाते हैं। अतएव स्वच्छता का उनको पूरा ख़याल रहता है, बशर्ते कि उनके पास पैसा हो।

खोज की जाय तो गाँव वालों में इतने प्रकार के स्वास्थ-वर्द्धक खेल प्रचलित मिलेंगे, जितने सभ्य कहे जाने वाले समाज में नहीं हैं। और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके खेल बिना कौड़ी खर्च किये, बहुत मामूली साधनों से, खेले जाते हैं। हँस-बोलकर, दौड़-धूपकर, वे प्रकृति में से प्राण-पोषक तत्व ले लेते हैं और फिर अपने जीवन-पथ पर आगे बढ़ते हैं। उनको मूर्ख कौन कह सकता है?

सहयोगिता

गाँवों में सामाजिक संगठन का आधार सहयोगिता है। वहाँ का प्रत्येक कुटुम्ब दूसरे कुटुम्ब को हरएक सामाजिक विषयों में सहयोग देता रहता है। सहयोग के कुछ कार्य तो रूढ़ हो गये हैं और वे चक्र की तरह नियमित चलते हैं। जैसे:—

(१) कन्या के विवाह में निमन्त्रित गृहस्थ कन्या के पिता को कम से कम एक रुपया 'न्यौता' दे जाते हैं। रिश्तेदार लोग रुपया, आटा, घी और अचार आदि लेकर आते हैं। इस सबसे कन्या के पिता का बोझ हलका हो जाता है और कन्या का विवाह करके वह टूट नहीं सकता। इसका एक अर्थ यह भी है कि कन्या समाज की कन्या मानी जाती है और उसका विवाह समाज के सहयोग से होता है।

(२) जनेऊ में भी 'न्यौता' जाता है। कम से कम एक गज़ कपड़े का एक टुकड़ा, उसमें कुछ आटा और कुछ पैसे बँधे हुये होते हैं। समाज में जिसकी मान्यता जितनी अधिक होती है, उसी के अनुसार उसे 'न्यौते' मिलते हैं। अतएव मान्यता बढ़ाने का प्रयत्न प्रत्येक गृहस्थ करता रहता है और उसकी प्राप्ति का रास्ता दूसरों को सहयोग देना होता है। 'न्यौतों' से 'जनेऊ' का बहुत-सा खर्च निकल आता है।

(३) जब कोई किसान कुवाँ खुदवाता है, तब भी उसका समाज उसका बहुत-सा खर्च अपने ऊपर ले लेता है। एक प्रकार से वह समाज का कुवाँ हो जाता है, नाम केवल खुदवाने वाले का होता है। जब कुवाँ पानी तक खुद जाता है और उसमें 'नेवार' पड़ती है, तब आसपास के किसानों को 'बुलौवा' जाता है। वे 'नेवार' में पैसा डालने आते हैं। 'नेवार' गढ़ने वाले लोहार या बढ़ई कुवें के अन्दर चादर फैलाकर खड़े होते हैं उसमें किसान के मित्र लोग पैसे या रुपये डालते हैं। कभी-कभी लोहार को उसकी उजरत से कही ज्यादा रुपये मिल जाते हैं। रुपयों की संख्या किसान की सामाजिक मान्यता पर निर्भर होती है। लोहार 'नेवार' की गढ़ाई न लेकर केवल ऊपर से डाले हुये धन पर संतोष करता है।

(४) किसान खेत की कटाई की मजूरी पैसों में नहीं देता। वह काटने वालों को १६ बोझ पीछे एक बोझ काटे हुये नाज का देता है। कहीं-कहीं बीस बोझ पीछे एक बोझ देने की प्रथा भी है।

(५) नाई साल भर तक किसान की हजामत बिना पैसा लिये करता रहता है। किसान उसे साल में एक बोझ कटे हुये अन्न का देता है।

(६) लोहार सालभर तक किसान का हल, खुरपा, फावड़ा और कुदाल वगैरह बनाता रहता है और पैसा नहीं लेता। चैत्र में किसान उसे एक बोझ अन्न देता है।

(७) धोबी सालभर तक किसान के कपड़े धोता है। बदले में साल में एक बोझ अन्न वह भी पाता है।

(८) कुम्हार सालभर तक मिट्टी के बरतन देता रहता है। किसान उसे साल में एक बार एक बोझ अन्न देता है।

(९) शिक्षा के लिये पहले 'मठी' की प्रथा थी। हरएक गृहिणी खाना बनाने से पहले एक मूठी आटा, चावल या दाल निकालकर एक घड़े मे रखती जाती थी। महीने में किसी समय आकर पाठशाला के विद्यार्थी उसे माँग ले जाते थे, और उसमे पाठशाला के विद्यार्थियों और अध्यापक का भी खर्च चल जाता था। समय के प्रभाव से यह अत्यन्त उपयोगी प्रथा अब बिलकुल ही बन्द हो गई है।

इसी प्रकार कुछ और भी पेशेवर हैं, जिनका सम्बन्ध किसान से होता है और वे अपने काम के बदले में अन्न पाते हैं।

विचार किया जाय तो सच्चा सहयोग तो यही है। मानो नाई, लोहार, धोबी और कुम्हार को किसान आश्वासन देता है कि तुम्हारे खाने के लिये अन्न मै पैदा करूँगा, तुम निश्चिन्त होकर अपना पेशा करो। और नाई, लोहार आदि भी साल में किसानों से सैकड़ों मन ग़ल्ला पा जाते हैं, इससे उनको खाने के लिये अन्न उपजाने या खरीदने की आवश्यकता नहीं रहती। एक-एक पेशेवर सैकड़ों किसानों का काम करते रहते हैं।

अब पैसे ने बीच मे पड़कर उनमे गड़बड़ी मचा दी है और किसान को नाई आदि की सेवा के बदले में वह चीज़ देनी पड़ रही है, जिसे वह खेत में नहीं पैदा करता। जैसे-जैसे पैसेवाली सभ्यता बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे गाँव का सामाजिक सहयोग बिखरता जा रहा है।

गृह-प्रबन्ध और मितव्ययिता

गाँव के लोग आदर्श मितव्ययी होते हैं। थोड़ी आमदनी में भी वे ऐसा अच्छा गृह-प्रबन्ध करके जीवन बिताते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है।

एक उदाहरण के साथ चलिये। मान लीजिये, एक किसान के पास कुल १० कच्चे बीघे खेत है। जिसमें अच्छी फ़सल हुई तो साल में अधिक से अधिक १०० मन नाज पैदा होगा। जिसमें से हलवाहे और मजदूरों को

दे-दिलाकर उसके पास ५० कच्चे मन बचते होंगे। ५० मन का दाम आजकल के भाव से २००) मान लीजिये। अर्थात् महीने में १६) से कुछ अधिक।

अब उसका ख़र्च जोड़िये। उसके घर में वह, उसकी स्त्री, माँ-बाप, दो बच्चे, दो बैल, एक गाय या भैंस, इतने प्राणी हैं। इन सबको उसी आमदनी में से वह खिलाता-पिलाता है; घर वालों को कपड़े, जाड़े के अलग गरमी के अलग, देता है। साल भर में कुछ सरकार को देता है और कुछ ज़िलेदार को भी। पटवारी भी मुँह बाये रहता है, कुछ उसमें डालता है। पुलिस का सिपाही भी कुछ लेता ही है। साल में वह दो-तीन बार कथा सुनता है और कुछ पुरोहित को देता है। भूत-प्रेत का भी उसे विश्वास है, इससे ओझा-सोखा भी कुछ ले ही जाते हैं। होली-दिवाली और दशहरे में भी कुछ अधिक ख़र्च उसे करना पड़ता है। मेहमान भी आते-जाते रहते हैं। महाजन से ज़रूरत पर उधार लाता रहता है, उसे कुछ ब्याज देता है। दिल खोलकर लड़के-लड़की की शादी करता है, उसमें महाजन से क़र्ज़ लेकर ख़र्च करता है। गाँव में कथा बैठती है, आल्हा होता है, कठपुतली का नाच, नौटंकी आदि खेल-तमाशे होते रहते हैं; सब में चन्दा देता है। साधु-संत जो दरवाजे पर आ जाते हैं, उन्हें कुछ खाने को देता है। गाय-भैंस की चरवाही, घर की मरम्मत की मज़दूरी और खपड़े और बाँस का दाम चुकाता है, और इतनी चिंतायें लादे हुये वह खेत के मेंड़ पर मस्त होकर गाता भी चलता है और जी खोलकर हँस सकता है। इससे भी विचित्र बात यह है कि वह सत्तर-अस्सी वर्ष तक जी भी देता है। क्या कोई डाक्टर, जिसे स्वस्थ रहने के तरीके सबसे अच्छे मालूम होते हैं, सोलह रुपये मासिक पर सत्तर या अस्सी वर्ष तक जी देगा? इतनी छोटी आमदनी में घर का ऐसा सुप्रबन्ध शिक्षित-समाज का क्या कोई व्यक्ति करके दिखा सकता है? अगर नहीं, तो गाँव वालों को बेअक्ल कैसे कहा जा सकता है?

ग्राम-गीतों की व्यापकता

जन्म से लेकर मृत्यु तक हिन्दुओं का समस्त सामाजिक जीवन काव्य-

मय है। उसमें प्रत्येक मङ्गल-कार्य मे संगीत को मुख्य स्थान दिया गया है। शायद ही किसी हिन्दू का कण्ठ बचा हो, जिससे कभी न कभी कोई गान न फूट निकला हो।

उत्सवों मे मनोरंजन के लिये हिन्दू-जाति में सङ्गीत तो मुख्य है ही, प्रत्येक परिश्रम के काम के साथ भी गीत लगा हुआ है। राह चलते हुए स्त्री-पुरुष गीत गा-गाकर थकान मिटाते चलते हैं; पालकी लिये हुए कहार गीत गा-गाकर रास्ता काटते हैं; चरवाहा सुनसान जङ्गल मे अपने गीतों से पेड़-पत्तों तक को जगाता रहता है; रात मे किसान कोल्हू चलाकर ईख का रस निकालने के साथ अपने सरल और सरस हृदय का मधुर रस भी निकालकर जीवन के अनेक कष्टों से पीड़ित सहकर्मियों और दूर जानेवाले बटोहियों को बाँटता रहता है।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अपने कामों मे गीतों की सहायता अधिक ली है। संस्कार के अवसरों पर प्रायः कुल गीत स्त्रियाँ ही गाती हैं। आटा पीसने, धान रोपने, खेत निराने, खेत गोड़ने और काटने के समय गाँव की स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं, उनमे गृहस्थी के सुख-दुःख की बड़ी ही मार्मिक बातें भरी होती हैं। सम्भव है, गाँव के गीतों में नागरिक कवि की कविता का-सा आनन्द न मिले, पर उन में आनन्द का अभाव नहीं होता; रुचि-भेद से आनन्द की मिठास में अन्तर हो सकता है।

ग्राम-गीतों ने गाँव के अन्तःपुरों, चौपालों, बाग़-बग़ीचों, खेतों और खलियानों में कहीं शृङ्गार-रस का, कहीं करुण-रस का, कहीं हास्य-रस का और कही वीर-रस का स्रोत खोल दिया है। सहृदय नर-नारी उसमें डुबकी ले रहे हैं, रसपान कर रहे हैं, मुग्ध हो रहे हैं और थोड़ी देर के लिये संसार के माया-जाल से मुक्त होकर स्वर्गीय सुख का रसास्वादन कर रहे हैं। नागरिक कवियों की कविता का ऐसा प्रभाव कहीं देखा नहीं गया।

गाँव प्रकृति का क्रीड़ा-स्थल है और नगर मनुष्य का कार्य-क्षेत्र। गाँव में प्रकृति स्वयं गान करती है; पर नगर में स्वनिर्मित सभ्यता से बँधे हुए कवि की दशा 'व्यभिचारी' और 'चोर' की-सी होगई है:—

चरन धरत काँपत हृदय, नाहिं सुहावत सोर ।
सुबरन कहँ खोजत फिरत, कवि व्यभिचारी चोर ।।

अतएव जहाँतक स्वाभाविकता का सम्बन्ध है, नागरिक कवि की कविता से प्रकृति-जन्य ग्राम-गीतों का महत्व अधिक है ।

प्रकृति ने गाँव के प्रत्येक समाज में कवि उत्पन्न किये हैं । अहीरों के लिये बिरहे तुलसी ने नहीं बनाये थे; न कहारों के लिये कहरवा सूरदास ने । धोबी, चमार, नाई, बारी, पासी और कुम्हारों मे कबीर, बिहारी, केशव, भूषण, देव और पद्माकर नही पैदा हुए थे । पर इन जातियों मे भी कविता किसी न किसी रूप में वर्तमान है । और कहीं-कही तो वह नागरिक कवियों की कविता से अधिक सरस है ।

गीत भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में पाये जाते हैं और घर के भीतर गाये जाने वाले गीतों में सर्वत्र समानता मिलती है । जान पड़ता है, एक ही आत्मा भिन्न-भिन्न भाषाओं में बोल रही है । यह हमारी एक संस्कृति का प्रभाव है । और यही इस बात का भी एक प्रबल प्रमाण है कि सारा भारतवर्ष एक है ।[1]

ग्राम-गीतों का वर्गीकरण

ग्राम-गीतों को हम नीचे लिखे वर्गों में बाँट सकते हैं:—

१—संस्कारों के गीत ।
२—व्रतों और त्योहारों के गीत ।
३—ग्राम-गाथायें ।
४—ग्राम-कथायें ।
५—मन्दिरों में गाये जाने वाले पद ।
६—राह के गीत ।
७—खेत के गीत ।

[1]कौमुदी-कुंज में भिन्न-भिन्न प्रांतों के गीत नमूने के तौर पर दिये गये हैं ।

८—भिखमंगों के गीत।
९—भिन्न-भिन्न जातियों के गीत।
१०—कोल्हू के गीत।
११—चक्की के गीत।
१२—ऋतुओं के गीत।
१३—बच्चों के गीत, खेल और कहानियाँ।
१४—गाँव में मनोरंजन के साधन—मेले और तमाशे।
१५—गाँव के खेल।
१६—गुड़ियों के गीत।
१७—ग्राम-संगीत (नृत्य, वाद्य और गीत)।
१८—नाच और उसके तरीके।
१९—बाजे और उनके उपयोग।
२०—नीति की कहावतें।
२१—स्वास्थ्य की कहावतें।
२२—खेती की कहावतें।
२३—बुझौवल और ढकोसले।
२४—बारहमासे।
२५—नये-नये शब्द और महावरे।
२६—मनुष्य और पशु के रोगों के नुस्खे।
२७—पेशेवरों के शब्द और कहावतें।
२८—देहाती औषधियों के नुस्खे।

ग्राम-गीत या लोक-गीत

ग्राम-गीत के स्थान पर लोक-गीत शब्द का भी प्रयोग किया जा रहा है; पर यह उचित नहीं प्रतीत होता। क्योंकि ग्राम-गीत ग्रामीणों की पैतृक सम्पत्ति है; उनका गौरव उन्हीं के पास सुरक्षित रहने देने ही में सभ्य-समाज का गौरव है। लोक-गीत कहने से नगर-निवासियों

के सामाजिक जीवन के गीत भी सम्मिलित हो जाते हैं; पर नगर-निवासियों के गीत हैं ही क्या ? केवल कुछ ग़ज़ल, ठुमरियाँ, ख्याल और क़ौवाली। यह दाल में नीबू निचोड़कर पूरी थाली पर कब्ज़ा कर लेने-जैसी बात है। और मुख्य प्रश्न तो भाषा का है। ग्रामीणों की बोलियों में जो गीत होंगे, वे उन्हीं के माने जाने चाहिये। अतएव मेरी राय में, ग्रामीणों ने बिना किसी याचना और बिना किसी स्वार्थ की प्रेरणा से समाज को जो साहित्य प्रदान किया है, उसके साथ उनका ग्राम शब्द अवश्य लगा रहना चाहिये। यह उनकी एक मधुर स्मृति है और हमारी कृतज्ञता की द्योतक भी है।

•

———

ग्राम-गीतों की उत्पत्ति

ग्राम-गीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नही, केवल रस है; छन्द नहीं, केवल लय है; लालित्य नही, केवल माधुर्य है।

प्रकृति जब तरंग में आती है, तब वह गान करती है। उसके गीतों में हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा में विश्वास और करुणा में कोमलता।

प्रकृति के गान में मनुष्य-समाज इस प्रकार प्रतिविम्बित होता है, जैसे कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग।

प्रकृति संगीतमय है। ग्रह-गण एक नियत कक्षा में फिरकर उस संगीत का कोई स्वर सिद्ध कर रहे हैं। झरनों का अविराम नाद, पत्तों की मर्मर-ध्वनि, चंचल जल का कलकल, खमेघ का गरजना, पानी का छमाछम वरसना, आँधी का हाहाकार, कलियों का चटकना, विक्षुब्ध समुद्र का महारव, मनुष्यों की भिन्न-भिन्न भाषाएँ और विचित्र उच्चारण, खग, पशु, कीट-पतंग आदि की बोलियाँ, ये सब प्रकृति के उस संगीत के सहायक मंद्र और तार स्वर और लय हैं। वज्रपात थाप है और नदियों का प्रवाह मूर्च्छना। ग्राम-गीत प्रकृति के उसी महा संगीत के अंश हैं।

पूर्व काल में किसी व्याध के तीर से क्रौंच पक्षी को निहत देखकर मर्माहत महर्षि वाल्मीकि के हृदय में स्वभावतः करुणा उत्पन्न हुई थी। उसी करुणा से कविता का जन्म हुआ था।

जो हृदय वाल्मीकि के पास था, वह गाँवों में सदा रहता है, अब भी है। उसी में से प्रकृति का गान निकला करता है।

कविता प्रकृति का गान है। वह मस्तिष्क से नहीं, हृदय से निकलती है। इसी से कृत्रिम सभ्यता के प्रकाश में उसका विकास नहीं होता।

ग्राम-गीतों का जन्म-स्थान गाँव है। जिनकी वाणी में मस्तिष्क नहीं, हृदय है; जिनके विनय के परदे में छल नहीं, पश्चात्ताप है; जिनकी मैत्री के फूल में स्वार्थ का कीट नहीं, प्रेम का परिमल है; जिनके मानस-जगत् में आनन्द है, सुख है, शान्ति है, प्रेम है, करुणा है, संतोष है, त्याग है, क्षमा है, विश्वास है; उन्हीं ग्रामीण मनुष्यों के—स्त्री-पुरुषों के बीच में हृदय-नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम-गीत हैं। वेदों की तरह ये भी अपौरुषेय हैं।

गीतों में कविता

कविता क्या है? इस विषय में संस्कृत और अंग्रेजी के कवियों की व्याख्यायें मनन करने योग्य हैं—

विश्वनाथ कहते हैं—

वाक्यं रसात्मकं काव्यम्

(साहित्य-दर्पण)

'रसात्मक वाक्य काव्य है'।

मम्मट कहते हैं—

नियतिकृतनियमरहितांल्हादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम् ।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ॥

(काव्यप्रकाश)

'सृष्टि के नियमों से रहित, आनंद-स्वरूप, स्वतंत्र (देश काल-सम्बन्धी नियमों से रहित) और नवरसों से सुन्दर, काव्य-सृष्टि का निर्माण करने वाली सत्कवियों की वाणी की जय हो।'

मंखक कहते हैं—

अर्थोऽस्ति चेन्न पदशुद्धिरथास्ति सापि
नो रीतिरस्ति यदि सा घटना कुतस्त्या।
साप्यस्ति चेन्न नववक्रगतिस्तदेतद्
व्यर्थं विना रसमहो गहनं कवित्वम् ॥

'अर्थ है तो पद-शुद्धि नहीं; पद-शुद्धि है तो रीति नहीं; रीति भी है तो शब्दों का विन्यास अजीब तरह का है; यदि वह भी है तो नई कल्पनायें नहीं हैं। रस के बिना यह कविता का कठिन मार्ग व्यर्थ ही है।'

संस्कृत के एक बहुदर्शी कवि का कथन है— '

नान्ध्रीपयोधर इवातितरां निगूढः
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां प्रकाशः ॥
अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चि-
त्सौभाग्यमेति मरहट्टवधूकुचाभः ।

'जिसमें अर्थ कुछ छिपा हो, कुछ प्रकट, जैसे महाराष्ट्र की स्त्रियों के कुच (स्तन); वही वाणी प्रशंसनीय है। आंध्र-स्त्रियों के पयोधर (स्तन) के समान बिल्कुल छिपा रहना भी अच्छा नहीं और न गुजरात की स्त्रियों के स्तन के समान बिल्कुल प्रकट ही रहना उचित है।'

कुच, पयोधर और स्तन के धात्वर्थ को समझनेवाले इस श्लोक में विशेष रस ले सकते हैं।

संस्कृत के एक अन्य सूक्ष्मदर्शी कवि का अनुभव है—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तमाभाति लावण्यमिवाङ्गनायाः ॥

'जैसे स्त्रियों में शरीर के गठन के सिवा लावण्य नाम की एक वस्तु और होती है, वैसे ही महाकवियों की वाणी में भी एक अद्भुत विशेषता होती है, जिसका केवल भान होता है।'

संस्कृत के एक कवि का कथन है—

परश्लोकान्स्तोकाननुदिवसमभ्यस्य ननु ये
चतुष्पादीं कुर्युर्बहव इह ते सन्ति कवयः ।
अविच्छिन्नोद्गच्छज्जलधिलहरीरीतिसुहृदः
सुहृद्या वैशद्यं दधति किल केषांचन गिरः ॥

'दूसरों के कतिपय श्लोकों को कण्ठस्थ कर के चार पद के श्लोक बनाने वाले कवियों की कमी नहीं है। ऐसे कवि बहुत-से हैं। पर निरन्तर निकलने वाली समुद्र की लहरियों के समान हृदय को वश करनेवाली और स्वच्छ वाणी विरले ही की होती है।'

अंग्रेज़ कवि वर्ड्स्वर्थ कहते हैं—

'Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings.'

'कविता जोरदार भावों की आप से आप उमड़नेवाली उमंग है।'

सर जान लबक कहते हैं—

'Poetry lifts the veil from the beauty of the world which would otherwise be hidden, and throws over the most familiar objects the glow and halo of imagination.'

'कविता जगत् के सौन्दर्य पर से परदा उठाती है। नही तो वह छिपा ही रहता। वह सुपरिचित वस्तुओं के चारोंओर भी कल्पना का प्रकाश और कान्ति डालती है।'

सुप्रसिद्ध अंग्रेज कवि शेक्सपियर, जिसके विषय में एक समालोचक मुग्ध होकर कहता है—O Nature ! O Shakespeare ! which of ye drew from the other ?

'हे प्रकृति ! हे शेक्सपियर ! तुम दोनों में से कौन किसका प्रतिविम्ब है ?' कवि के विषय में कहते हैं—

The Poet's eye, in a fine frenzy rolling,
Doth glance from heaven to eatrh, from earth to heaven;
And, as imagination bodies forth
The forms of things unknown, the poet's pen
Turns them to shapes and gives to airy nothing
A local habitation, and a name—

'कवि की आँख सुन्दर मस्ती में लोटती हुई पृथ्वी से आकाश और आकाश से पृथ्वी तक अपनी दृष्टि डालती है।

'और जैसे कल्पना अज्ञात वस्तुओं को रूपवान बना देती है, वैसे ही कवि की लेखनी उनको आकार में परिणत कर देती है, और एक हवाई नाचीज को स्थान और नाम प्रदान कर देती है।'

विश्वनाथ की व्याख्या सब से अच्छी है। जिस वाक्य में रस हो; वही काव्य है। इस व्याख्या के अनुसार गीत ही काव्य है; क्योंकि गीतों में सर्वत्र रस प्रवाहित है।

मम्मट के मत से सत्कवियों की वाणी आनंद से परिपूर्ण और रसों से सुन्दर होनी चाहिए। गीतों में आनन्द और रस दोनों हैं।

मंखक भी रसहीन पद्य-रचना को कविता नहीं मानते।

उस बहुदर्शी कवि के कथनानुसार महाराष्ट्र की स्त्रियों के स्तन से गीतों ही की तुलना ठीक उतर सकती है। गीतों ही में अर्थ स्पष्ट और भाव कुछ प्रकट और कुछ गुप्त रहते हैं।

संस्कृत के सूक्ष्मदर्शी कवि के कथनानुसार गीतों ही में उनके शब्द-संगठन के सिवा एक अद्भुत लावण्य छिपा हुआ है।

समुद्र की लहरियों के समान निरन्तर निकलने वाले ग्राम-गीत ही हैं, जो अत्यन्त विशद और हृदय को वश करनेवाले हैं।

वर्ड्स्वर्थ की व्याख्या ग्राम-गीतों ही के लिए सत्य हो सकती है; क्योंकि ग्राम-गीत ही आप से आप उमड़नेवाले भावों की उमंग हैं। गीतों की रचना न किसी राजा-महाराजा की प्रेरणा से होती है और न किसी सम्पादक की प्रार्थना से। गीत कविता के स्वाभाविक स्रोत हैं।

गीत कविता की एक महान् जल-राशि के समान हैं। कवि-गण उस जल-राशि में से भिन्न-भिन्न दिशाओं को महाकाव्य रूपी नहरें ले गए हैं। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उन्होंने अपनी-अपनी नहरों को सजा रक्खा है; पर उनमें जल उस महान् जल-राशि ही का है। किन्तु कुछ ऐसे भी हैं,

जिन्होंने सुन्दर-सुन्दर अलंकारों से नहर को पाट दिया है। उनकी नहरें देखने में सुन्दर तो हो गई हैं जरूर, पर उनमें जल नहीं है, प्रवाह नहीं है, रस नहीं है। लोग उन्हें देखकर अलंकृत करनेवाले की प्रशंसा करते हैं; पर उनके निर्मल और शीतल जल का आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते। उनमें स्नान करके वे अपने तन और मन की तपन नहीं बुझा सकते।

संस्कृत और हिन्दी-कवियों ने कविता देवी को इतने अलंकार पहना दिये हैं कि उनके बोझ से उसका रस रूपी प्राण निकल गया है। पर अभी तक वे मुर्दे को अलंकार पहनाते ही जा रहे हैं।

शेक्सपियर के कथनानुसार कवि की दृष्टि बहुत व्यापक होनी चाहिए। पर जो स्वयं व्यापक है, पृथ्वी और स्वर्ग जिसके अंतर्गत है, वही प्रकृति यदि कविता करे, तो उसकी कविता कृत्रिम कवियों की कविता से तो कहीं अधिक सत्य और सरस होगी न ? गीतों की रचयिता स्वयं प्रकृति है। अतएव उनमें कविता का स्वाभाविक सौन्दर्य विकसित हुआ है।

गीतों में रस की मात्रा संस्कृत और हिन्दी के रस-सिद्ध कवियों की कविता से कही अधिक है। कालिदास और तुलसीदास आदि सिद्ध कवियों को समझने के लिए पहले कालिदास और तुलसीदास बनना पड़ता है, जो साधारण शिक्षा-दीक्षा वाले के लिए सुलभ नहीं।

सिद्ध कवियों की कविता का आनन्द वही उठा सकता है, जिसने छन्द, व्याकरण और अलंकार-शास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन किया है। ऐसी कविता को हम स्वाभाविक कविता नहीं कह सकते। यह तो माली-निर्मित उस क्यारी की तरह है, जिसके पौधे कैंची से कतरकर ठीक किये रहते हैं और जो खास तरह की रुचि से विवश होकर सजाई जाती है। पर ग्राम-गीत प्रकृति का वह उद्यान है, जो जंगलों में, पहाड़ों पर, नदी-तटों पर, स्वतन्त्र

रूप से विकसित होता है। वह अकृत्रिम है। सिद्ध कवियों की कविता किसी बँगले का वह फूल है, जिसका सर्वस्व माली है। पर ग्राम-गीत वह फूल है, झरने जिसको पानी पिलाते हैं, मेघ जिसे नहलाते हैं, सूर्य जिसकी आँखें खोलता है, मन्द-मन्द समीर जिसे झूले में झुलाता है, चन्द्रमा जिसका मुँह चूमता है और ओस जिस पर गुलाब-जल छिड़कती है। उसकी समता बँगले का कैदी फूल नहीं कर सकता।

जबतक मनुष्य का हृदय स्वतंत्र था, तबतक उसकी भाषा भी शीशे की तरह पारदर्शक और हीरे की तरह निर्मल थी, और उसमें से मनुष्य का हृदय साफ दिखलाई पड़ता था। जब से हृदय पर मस्तिष्क का अधिकार प्रारम्भ हुआ, बुद्धि का विकास हुआ, सभ्यता का कृत्रिम प्रकाश फैला, तब से भाषा भी धुँधली, भ्रमोत्पादक और आशंकामूलक हो गई। अतएव जिसे सभ्यता का विकास कहा जाता है, उसे हृदय की पराधीनता या कृत्रिमता का प्रदर्शन कहना चाहिए। वर्तमान सभ्य-समाज मे हृदय नाम का कोई पदार्थ नहीं है। वहाँ केवल मस्तिष्क है। वहाँ की भाषा में मस्तिष्क ही दिखलाई भी पड़ता है।

वर्तमान सभ्य-समाज हृदय ही से दूर नहीं हो गया है, प्रकृति से भी दूर चला गया है। सभ्य-समाज में परस्पर विश्वास नहीं; आत्मैक्य का भाव नही; शान्ति नही; स्वाभाविकता नहीं। वहाँ मस्तिष्क का षड्यंत्र है, भय है, आशंका है, असूया है, राग-द्वेष है और वेश, वाणी, विवेक और व्यवहार सब में बनावट है। सभ्य-समाज का हास्य प्रकृति का हाहाकार है। सभ्य-समाज का उन्माद प्रकृति का नैराश्य है।

सभ्यता की वृद्धि के साथ स्वाभाविकता का ह्रास होता है। सभ्यता का सम्बन्ध मस्तिष्क से है और स्वाभाविकता का हृदय से। बहुत कम ऐसा देखने में आता है जब मस्तिष्क और हृदय में एकता हो। प्रायः हृदय के विषय में मस्तिष्क सदा झूठ बोलता है। कितनी ही बार मनुष्य के हृदय में क्रोध उत्पन्न होता है, पर उसका मस्तिष्क शान्ति और विनय की

बातें करता हुआ पाया जाता है। हृदय में कामना रहती है, पर मस्तिष्क मुख के द्वारा वैराग्य और त्याग की बातें करता रहता है। हृदय में लोभ रहता है, पर मस्तिष्क निस्पृहता दिखलाता रहता है। बहुत ही कम उच्च कोटि के सत्पुरुष ऐसे होंगे, जिनके हृदय और मस्तिष्क में मेल हो। अतएव जिसे आजकल सभ्यता कहते है, वह एक प्रकार की अस्वाभाविकता है।

इस सभ्यता का प्रभाव कविता पर भी पड़ा है। नागरिक कवि की कविता में आदर्शवाद अधिक होता है, स्वाभाविकता कम। पर ग्रामीण-कविता में स्वाभाविकता ही का अंश अधिक रहता है। क्योंकि सभ्य-समाज को मोहनेवाली सभ्यता से ग्रामीण कवि अपरिचित होते हैं। इससे अपनी बातों में वे कृत्रिमता ला नहीं सकते। उनके हृदय में जो भाव रहता है, मस्तिष्क वही कह देता है। उसमे वह अपनी ओर से नमक-मिर्च नहीं मिलाता। समय का प्रभाव है कि ऐसे सत्यवादी लोग असभ्य कहे जाते हैं, और हृदय में कुछ और मुँह से कुछ कहनेवाले लोग सभ्य !

सभ्य-समाज में आकर कविता भी सभ्य हो गई है। पिंगल, व्याकरण, रस, अलंकार और मुहावरे नामक सभ्यता के शुभ लक्षणों से उसका नख-शिख दुरुस्त है। पर गाँव में वह अपने असली रूप ही में निवास करती है। वहाँ वह कालिदास की 'भ्रू-विलासानभिज्ञा' है और भोलापन ही उसका सौन्दर्य है। वहाँ वह अधिक स्वतन्त्र और अधिक स्वाभाविक है। पर उसमें कृत्रिमता, जो सभ्यता की जान है, न होने के कारण सभ्य-समाज में उसकी गति नहीं। इसी से शिक्षित कहे जाने वाले लोग प्रायः उससे अनभिज्ञ रहते हैं। पर कविता की दृष्टि से उसका महत्व सभ्य-समाज की कविता से कम नहीं, बल्कि अधिक ही है।

ग्राम-गीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्राम-गीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्राम-गीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है, अलंकार मनुष्य-निर्मित। रस मनुष्यमात्र

के लिए है, अलंकार केवल उन थोड़े से लोगों के लिए, जो उससे परिचित है। इसीसे ग्राम-गीतों की महिमा महाकवियों की वाणी से कहीं अधिक है।

ग्राम-गीतों में मनुष्य के हृदय का शुद्ध प्रतिबिम्ब है। अलंकारों ने कवियों को और साहित्य-मर्मज्ञों को मिथ्या कल्पना के ऐसे मैदान में ले जाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ मस्तिष्क के दाँव-पच के सिवा और कुछ नहीं है। यहाँ तक कि वहाँ पहुँचकर आलंकारिक कवि स्वयम् अपने को झूठा कहने लगे थे। संस्कृत के एक कवि की वाणी में यह सत्य निकल ही पड़ा है—

वृथागाथाश्लोकैरलमलमलीकां मम रुजं।
कदाचिद्धूर्तोऽसौ कविवचनमित्याकलयति ॥

'स्तुति के श्लोक बनाकर भेजने से क्या लाभ? मेरे दुःखों की चर्चा से भी कोई लाभ नहीं। संभव है, वह धूर्त इन बातों को कवि-कल्पना समझे।'

वाल्मीकि और तुलसी ने हृदय का साथ नहीं छोड़ा था। वे मस्तिष्क की सुनते थे सही, पर हृदय ही की कहते थे। इससे उनकी रचना में रस है, और वही रस सुननेवालों का मन मोह लेता है।

हमारा विश्वास है कि हिन्दी के कवि-गण ग्राम-कविता का ध्यान-पूर्वक अध्ययन करेंगे और साहित्य में बढ़ती हुई 'दिमागी ऐयाशी' को रोककर कविता की आदि जननी की सुख और शान्तिमयी गोद में जाने को वैसे ही लालायित होंगे, जैसे एक अंग्रेज कवि अपनी माता के लिए हुआ था—

Backward, turn backward, O time, in your flight;
Make me a child again, just for to-night!
Mother, come back from the echoless shore;

Take me again to your heart as of yore—
Kiss from my forehead the furrows of care,
Smooth the few silver threads out of my hair,
Over my slumbers your loving watch keep,
Rock me to sleep, mother,—rock me to sleep,

'ऐ समय ! अपनी उड़ान में तुम एक वार पीछे लौटो, पीछे लौटो। मुझे केवल एक रात के लिये फिर बालक बना दो। हे माँ ! उस तट से, जहाँ प्रतिध्वनि नहीं उठती, पीछे लौट आओ। पहले की तरह मुझे फिर हृदय से लगा लो। मेरे माथे मे फिक्र की रेखाओं को चूम लो। मेरे सिर के दो-चार बाल, जो सफेद हो गए हैं, उन पर हाथ फेर दो। मैं जब सोऊँ, तब अपनी प्यारी नजर से मुझे देखती रहो। हे माँ ! झुलाकर मुझे सुला दो—झुलाकर मुझे सुला दो।'

गीतों की प्राचीनता

वाल्मीकि, व्यास, भास और कालिदास, तथा कबीर, तुलसी और सूर की कविताओं का तो समय भी निश्चित है, पर गीतों की रचना का कोई समय निश्चित नहीं है। गीत तो प्रकृति का निरन्तर गान है। जब से पृथ्वी पर मनुष्य हैं, तब से गीत भी हैं। जबतक मनुष्य रहेंगे, तबतक गीत भी रहेंगे।

मनुष्यों की तरह गीतों का भी जीवन-मरण साथ चलता रहता है। कितने ही गीत तो सदा के लिये मुक्त हो गये। कितने ही गीतों ने देश-काल के अनुसार भाषा का चोला तो बदल डाला, पर अपने असली स्वरूप को कायम रक्खा। बहुत-से गीतों की आयु हजारों वर्ष की होगी। वे थोड़े फेर-फार के साथ समाज में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं।

वेदों के मंत्र-द्रष्टाओं का तो पता है, पर गीतों के रचयिताओं का पता नहीं। जैसे कोई नदी किसी घोर अंधकारमयी गुफा में से बहकर

आती हो, और किसी को उसके उद्गम-स्थान का पता न हो, ठीक यही दशा गीतों की है। इनके आदि-स्थान का कोई इतिहास संसार में नहीं है। महाकवियों की कविता से भी अधिक सरस गीतों की रचना जिन्होंने की है, उन्हें गीतों के साथ अपना नाम देने का ज़रा भर भी मोह नहीं हुआ है। यह महान् त्याग गीत रचनेवालों के विशाल हृदय के उपयुक्त ही है।

राम के जन्म पर आदिकवि वाल्मीकि लिखते हैं—

जगुः कलं च गंधर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत्॥
उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः।
रथ्याश्च जनसंबाधा नटनर्तकसंकुलाः॥
गायनैश्च विराविण्यो वादनैश्च तथापरैः।
विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्नसमन्विताः॥
प्रदेयांश्च ददौ राजा सूतमागधवन्दिनाम्।

'गन्धर्वों ने मधुर शब्द से गान किया; अप्सरायें नाचने लगीं; देवताओं ने दुन्दुभी बजाई; आकाश से फूलों की वर्षा हुई। अयोध्या में जन-समूह से भरा हुआ बड़ा उत्सव हुआ। गलियाँ नट, नाचने-गाने तथा बजानेवाले सूत, मागध, बन्दिजनों से गुंजायमान और सब रत्नों से पूर्ण बड़ी शोभित हुईं। राजा ने सब को पारितोषिक दिये।'

अब जानना यह है कि गन्धर्व क्या गाते थे? अप्सरायें केवल नाचती थीं, या नृत्य के साथ कुछ गाती भी थीं? नट, मागध, सूत और बंदीजन क्या गाते थे?

भागवतकार लिखते हैं—

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे
जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्।
वादित्रगीतद्विजमंत्रवाचकै—
श्चकार सूनोरभिशेचनं सती॥

भागवत—दशम स्कंध

'एक दिन बालक श्रीकृष्ण के जन्मदिन के उपलक्ष्य में नन्द के यहाँ महोत्सव हुआ। उसमें ब्रज की सब गोपियाँ आईं। उनके साथ मिलकर यशोदा ने बालक का अभिषेक कराया। गाना-बजाना हुआ। ब्राह्मणों ने स्वस्त्ययन मंत्र पढ़े।'

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः ।
मालां विभ्रद् वैजयंतीं व्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥

भागवत—दशम स्कंध

'वैजयन्ती माला पहने हुये श्रीकृष्ण उन असंख्य वनिताओं के समूह में कभी आप गाते और कभी उनका गाना सुनते हुये इधर-उधर घूमकर वन को सुशोभित करने लगे।'

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ।
गायन्तिस्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥

भागवत—दशमस्कंध

'कोई-कोई स्नेह के मारे आनन्द से परिपूर्ण होकर मंद और मधुर स्वर से श्रीकृष्ण के मन को मोहनेवाले गीत गाने लगते थे।'

क्वचिद्गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः ।
उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥

भागवत—दशम स्कंध

'कभी-कभी श्रीकृष्ण मदांध भौरों के साथ आप भी गाने लगते और संकर्षण के साथ फूल-मालाएँ पहने हुये अपनी लीलाओं के गानेवाले सखाओं के मधुर गान सुनते।'

प्रश्न यह है कि बालक कृष्ण के अभिषेक के समय यशोदा के घर में क्या-क्या गीत गाये गये? वनिताओं के समूह में श्रीकृष्ण स्वयं क्या गाते थे? वनिताएँ क्या गाती थीं? और गोप-गण क्या गीत गाते थे?

विज्जका कहती हैं—

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोः कन्दली ।
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्बन्धुराः ॥
लसन्ति कलहुंकृतिप्रसभकम्पितोरःस्थल—
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलमकण्डनीगीतयः ॥

'धान कूटनेवालियों का गान बड़ा ही मनोहर मालूम होता है। वे बड़ी अदा के साथ मूसल हाथ में लिये हुई हैं। मूसल के उठाने तथा गिराने के कारण चूड़ियाँ बज रही हैं। उन चूड़ियों के शब्द से वह गान और भी मनोहर हो गया है। जब वे मूसल गिराती हैं, उस समय उनके मुँह से हुंकार निकलता है, और हृदय कम्पित हो जाता है। वही गान का गमक बन रहा है।'

धान कूटनेवाली क्या गाती थी ?

किसी ने कहा है—

सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया ।
यस्य न द्रवितं चित्तं स योगी ह्यथवा पशुः ॥

'सुभाषित से, गीत से तथा युवती स्त्रियों के हाव-भाव से जिसका चित्त द्रवित नही होता, वह योगी है, या पशु।

वह कौन-सा गीत है ? जिससे चित्तं द्रवित हो जाता है ।

तुलसीदास कहते हैं :—

चली संग लइ सखी सयानी ।
गावत गीत मनोहर बानी ॥

अथवा—

नारि वृन्द सुर जेंवत जानी ।
लगीं देन गारी मृदुबानी ॥

सयानी सखियाँ क्या गीत गाती थीं ? और स्त्रियाँ क्या गाली देने लगी थीं ?

वाल्मीकि, भागवतकार, विज्जका और तुलसीदास, इनमें से किसी ने भी यह नहीं बताया कि वे गीत कौन-से थे ? अवश्य ही वे वही कंठस्थ गीत रहे होंगे, जो आज भी हैं। समय के अनुसार उन्होंने भाषा का जामा बदल लिया है। जैसे, हिन्दू लोग पहले पीताम्बर ओढ़ते थे, मुसलमानी राज में कुरते पहनने लगे और अब अंग्रेजी-राज में कोट पहनते हैं। पर कपड़ों के अंदर शरीर है हिन्दू ही का। इसी प्रकार गीतों का सिलसिला प्राचीनकाल से एक-सा चला आ रहा है। भाव पुराने हैं, भाषा नई है।

पूर्वकाल में गन्धर्वों की एक जाति ही अलग थी, जो गाने का पेशा करती थी। प्राचीन काव्यों में जहाँ कहीं उत्सव आदि का वर्णन आया है, वहाँ गन्धर्वों का जिक्र अवश्य आया है। विवाह आदि के संस्कारों के अवसरों पर यज्ञ होते थे, जिनमें सामवेद का गान हुआ करता था। नाटकों का समय आया, तब विवाह आदि उत्सवों में नाटक कराये जाने लगे। जैसा कि बौद्ध-काव्य 'अवदान कल्पलता' में अशोक के पुत्र कुणाल के विवाहोत्सव में एक नाटक खेले जाने का वर्णन मिलता है। नाटकों में स्त्री-पुरुष दोनों भाग लेते थे। जान पड़ता है, नाटकों के बहुल प्रचार का बुरा परिणाम समाज के सदाचार पर पड़ने लगा। तब सद्गृहस्थों में उसकी ओर से अरुचि पैदा होने लगी और तब से प्रत्येक कुटुम्ब ने गान के सम्बन्ध में अपने को स्वतंत्र कर लिया। संस्कारों, व्रतों और त्यौहारों में स्त्रियाँ स्वयं गाने लगीं। इस प्रकार गंधर्वों और नाटक के पात्रों से उन्होंने अपने परिवार को अलग खींच लिया।

नाटक के पात्र नाटकों का प्रचार कम पड़ जाने से बेकार हो गये। कुछ तो स्वतंत्र रूप से गाने-बजाने का पेशा करने लगे, कुछ समाज में रल-मिल-कर पेट के दूसरे धंधों में लग गये। पात्रियाँ पहले तो उत्सवों में गाने-बजाने का पेशा करती रहीं; पर जब उससे जीविका की पूर्ति न होती दिखी, तब उन्होंने वेश्या का पेशा इख्तियार कर लिया, जो उनके निकट ही था। आज भी वेश्याओं को देहात में लोग पातर, पातरी अथवा पतुरिया कहते हैं, जो नाटक की पात्री का अपभ्रंश है।

नाटक के पात्रों को लोग कैसी घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे, इसका भी प्रमाण अभी तक मौजूद है। देहात में जब कोई व्यक्ति किसी को कपटी बताना चाहता है, तब वह कहता है—'अरे वह बड़ा पातर आदमी है'; यह 'पातर' वही नाटक का पात्र है।

जो गीत आजकल देहात में गाये जाते हैं, उनमें कुछ गीत ऐसे हैं जिनसे उनकी उत्पत्ति का समय निकाला जा सकता है। जैसे—

जौने देस हिंगिया न महकै न जिरिया सुवासित।
तौने देस चले हैं कवन रामा छुरिया बेसाहैं कटरिया बेसाहैं॥

यह गीत कम से कम अंग्रेजी राज से पहले का तो हई है, जब कि लोग छुरी और कटारी बाँधते थे और प्रसिद्ध स्थानों में जाकर उन्हे खरीद लाया करते थे।

कुछ गीतों में मुगलों का वर्णन मिलता है। निश्चय ही वे मुगलों के समय के हैं। उदाहरण के लिये यहाँ कुछ ऐसे गीत दिये जाते हैं:—

(१)

घोड़े चढ़ु दुलहा तुँ घोड़े चढ़ु यहि रन बन में।
दुलहा बाँधि लेहु ढाल तरुवारि त यहि रन बन में॥१॥
पहिरौ न पियरी पीतामर यहि रन बन में।
दुलहा बाँधि लेहु लटपट पाग त यहि रन बन में॥२॥
कैसे के बाँधौ पाग त यहि रन बन में।
दुलहिनि मरम न जान्यों तोहार त यहि रन बन में॥३॥
जतिया तो हमरी पंडित कै यहि रन बन में।
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन बन में॥४॥
मारि डारेन भाई औ बाप त यहि रन बन में।
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन बन में॥५॥

यतनी बचनिया के सुनतइ यहि रन बन में।
दुलहा घोड़े पीठि लिहेनि बैठाय त यहि रन बन में ॥६॥
यक बन गैलें दुसर बन यहि रन बन में।
दुलहा तिसरे में लागी पियास त यहि रन बन में ॥७॥
अरे अरे जनम संघाती त यहि रन बन में।
दुलहा बुँद यक पनिया पियाउ त यहि रन बन में ॥८॥
ताल औ कुँइयाँ सुखानी त यहि रन बन में।
पनिया रकत के भाव बिकाय त यहि रन बन में ॥९॥
उँचवै चढ़ि के निहारेनि यहि रन बन में।
दुलहिनि झरना बहै जुड़ पानि त यहि रन बन में ॥१०॥
दुलहिनि झरना बहै जुड़ पानि त यहि रन बन में।
दुलहिनि ठाढ़े हैं मुगुल पचास त यहि रन बन में ॥११॥
अरे अरे जनम संघाती त यहि रन बन में।
दुलहा बुँद एक पनिया पियाउ त यहि रन बन में।
दुलहा मोरी तोरी छूटै सनेहिया त यहि रन बन में ॥१२॥
यतना बचन सुनि पायेन त यहि रन बन में।
दुलहा खींचि लिहेनि तरवारि त यहि रन बन में ॥१३॥
ठाढ़े एक ओर मुगुल पचास त यहि रन बन में।
दुलहा एक ओर ठाढ़े अकेल त यहि रन बन में ॥१४॥
रामा जूझे हैं मुगुल पचास त यहि रन बन में।
राजा जीति के ठाढ़ अकेल त यहि रन बन में ॥१५॥
पतवा के दोनवा लगायनि यहि रन बन में।
दुलहिनि पनिया पियहु डभकोरि त यहि रन बन में ॥१६॥
पनिया पियै दुलहिन बैठीं त यहि रन बन में।
दुलहा पटुकन करैं बयारि त यहि रन बन में ॥१७॥

दुलहा धरम लिहेउ मोर राखि त यहि रन बन में।
दुलहा हम तोहरे हाथ बिकानि त यहि रन बन में ॥१८॥
यतनी बचनिया के साथ त यहि रन बन में।
दुलहिन मलवा दिहिन गरे डारि त यहि रन बन में ॥१९॥

हे दुलहा! घोड़े पर चढ़ लो, घोड़े पर चढ़ लो। इस निर्जन और भयानक बन में ढाल-तलवार बाँध लो ॥१॥

पीला पीताम्बर पहन लो और जल्दी-जल्दी पगड़ी बाँध लो ॥२॥

पुरुष ने कहा—मैं कैसे पगड़ी बाँधू? मैं तो जानता ही नहीं कि तुम कौन हो? ॥३॥

स्त्री ने कहा—मैं तो ब्राह्मण-कन्या हूँ। मुगलों के डर से इस जंगल में छिपी हूँ ॥४॥

मुगलों ने मेरे भाई और बाप को मार डाला। मैं मुगलों के डर से इस जंगल में लुकी हूँ ॥५॥

इतना सुनते ही पुरुष ने स्त्री को घोड़े पर बैठा लिया ॥६॥

वे एक बन से दूसरे में गये। तीसरे बन में स्त्री को प्यास लगी ॥७॥

स्त्री ने कहा—हे जीवन के संगी! बड़ी प्यास लगी है। एक बूंद पानी पिलाओ ॥८॥

पुरुष ने कहा—इस बन में सभी ताल और कुएँ सूख गये हैं। पानी तो लोहू के भाव का हो गया है ॥९॥

पुरुष ने ऊँचे चढ़कर देखा तो बन में ठंडे पानी का एक झरना बहता दिखाई दिया। उसने कहा—हे दुलहिन! ठंडे पानी का एक झरना बह तो रहा है ॥१०॥

पर वहाँ पचास मुगल खड़े हैं ॥११॥

स्त्री ने कहा—हे दुलहा! हे जीवन के संगी! इस घोर बन में तुम मुझे एक बूंद पानी पिलाओ। हे दुलहा! नहीं तो हमारी तुम्हारी प्रीति अब छूट रही है ॥१२॥

इतना सुनते ही पुरुष ने हाथ में तलवार खींच ली ॥१३॥

उस बन में एक ओर तो पचास मुगल खड़े हैं और एक ओर अकेला दुलहा ॥१८॥

पचासों मुगलों को मारकर दुलहा राजा युद्ध जीतकर अकेला खड़ा है ॥१५॥

पत्ते के दोने में दुलहे ने दुलहिन को पानी दिया और कहा—दुलहिन ! खूब तृप्त होकर पानी पिओ ॥१६॥

दुलहिन बैठकर पानी पीती है और दुलहा दुपट्टे के छोर से हवा कर रहा है ॥१७॥

दुलहिन ने कहा—हे दुलहा ! तुमने मेरा धर्म रख लिया। मैं तुम्हारे हाथ बिक गई हूँ ॥१८॥

इतना कहकर दुलहिन ने दुलहे के गले में अपनी माला डाल दी। अर्थात उसको वरण कर लिया ॥१९॥

(२)

बिरना झीनी झीनी पतिया अमिलि कइ,
बिरना डोभइ बरियवा क पूत । बलैया लेउँ बीरन ॥१॥
बिरना हाली हाली डोभउ बरिया पूत,
मोरा बिरना जेवनवाँ क ठाढ़ । ,, ॥२॥
बिरना हाली हाली जेंवउ बिरन मोरा,
बिरना तुरुक लड़इया क ठाढ़, ,,
बिरना मुगल लड़इया क ठाढ़ । ,, ॥३॥
बिरना मुगल की ओरियाँ सब साठि जने,
मोरा भइया अकेलवइ ठाढ़ । ,, ॥४॥
बिरना मुगल जुझैं सब साठि जने,
मोरा भइया समर जीति ठाढ़ । ,, ॥५॥
बिरना कोखिया बखानउँ मयरिया कै,
जेकर पुतवा समर जीति ठाढ़ । ,, ॥६॥

बिरना भगिया बखानउँ बहिनियाँ क,
जेकर भइया समर जीति ठाढ़ । बलैया लेउँ बीरन ।।७।।
बिरना मँगिया बखानउँ मै भौजी कै,
जेकर समिया समर जीति ठाढ़ । ,, ।।८।।

बहन कहती है—हे भाई ! इमली की नन्हीं-नन्हीं पत्तियाँ बारी का लड़का डोभ रहा है ।।१।।

हे बारी के लड़के ! जल्दी-जल्दी डोभो । मेरा भाई जीमने के लिये खड़ा है ।।२।।

हे भाई ! जल्दी-जल्दी जीम लो । तुर्क (या मुगल) युद्ध के लिये खड़ा है ।।३।।

मुगल की ओर सब साठ आदमी हैं, और मेरा भाई अकेला ही खड़ा है ।।४।।

मुगल के सब साठों आदमी जूझ गये, मेरा भाई युद्ध जीतकर खड़ा है ।।५।।

मै उस माता की कोख को सराहती हूँ, जिसका पुत्र युद्ध जीत कर खड़ा है ।।६।।

मै उस बहन के भाग्य की बड़ाई करती हूँ, जिसका भाई युद्ध जीत कर खडा है ।।७।।

मै अपनी भावज के सुहाग का बखान करती हूँ, जिसका स्वामी युद्ध जीतकर खड़ा है ।।८।।

(३)

छव महिना के बेटी रजलो, रजलो के मइआ मरि हो जाय ।
बारह बरिस मैं दुधवा पिअवलों, रजलो मोगलवा से हो लोभाय ।।१।।
गोहुवाँ के रोटिया बनवलीं, उपर मुरगिया कै रे झोर ।
जेवहिं बइठले मोगला, रजलो बेनियाँ हो डोलाय ।।२।।
सूप अइसन डाढ़ी मोगलवा के, ये बरधा अइसन आँखि ।
ओही मुँहें लिहलन मोगल चुमवाँ, रजलो के छूटि उकिलाइ ।।३।।

रजलो बेटी छः महीने की थी, जब उसकी माँ मर गई। मैंने बारह बरस तक रजलो को दूध पिलाकर पाला-पोसा। अब वह मुगल के प्रेम में फँस गई ॥१॥

रजलो ने गेहूँ की रोटी बनाई। ऊपर से मुर्गी के अंडे का शोरबा रख दिया। मुगल जीमने बैठा। रजलो पंखी हाँकने लगी ॥२॥

मुगल की दाढ़ी सूप-जैसी है और आँखें बैल-जैसी। उसी दाढ़ीवाले मुँह से मुगल ने रजलो का मुँह चूमा तो रजलो को कै हो गई ॥३॥

(४)

हमरे बलमुआ के घुठी भर धोतिया रे निरमोहिया।
जइसे चले मीर उमराव रे लोभिया ॥

यह गीत उस जमाने का है, जब मुगलों का राज था और मीरों और उमरावों का अकड़कर चलना आदर्श समझा जाता था।

(५)

छोटी मोटी दुहनी दुधे कै बिना रे अगिनि वाफ लेइ।
यहि दूध पिअइँ बिरन मोरा भइया लड़ैं मोगलवा के साथ ॥

अर्थ स्पष्ट है। यह छोटी कन्या का गीत है जो ताजा दुहा हुआ दूध देखकर अपना हृदयोद्गार प्रकट कर रही है।

ये तो ऐतिहासिक प्रमाण हैं। मुग़लों का वर्णन आने से यह तो स्पष्ट ही है कि ये गीत मुग़लों के ज़माने के हैं। इनके सिवा गीतों में बहुत सी ऐसी प्रथाओं का वर्णन मिलता है, जो प्राचीन समय में प्रचलित थीं, किन्तु अब नहीं हैं। जैसे, वर का स्वयं कन्या की खोज करना; और कन्या का अपने लिये स्वयंवर पसंद करना। ये दोनों प्रथायें इस देश में पहले थीं, अब नहीं हैं।

गीतों के रचयिता

गीतों के रचयिता क्या, गीत-द्रष्टा कहना चाहिये, स्त्री-पुरुष दोनों हैं। किन्तु ये स्त्री-पुरुष ऐसे हैं, जो काग़ज़ और क़लम का उपयोग नहीं जानते

हैं। प्रायः सभी गीत अदृश्य में उत्पन्न हुये हैं और ग्रामीण जनता के कंठमें निवास करते हैं। जो गीत स्त्रियाँ स्वयं गाती हैं, उनकी रचयिता वे स्वयं हैं। गीतों की भाषा, उनके विषय और वर्णन-शैली ही इस बात के प्रमाण हैं। जो गीत पुरुष गाते हैं, वे पुरुषों के रचे हुये हैं। हमने गीतों का गहरा अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकाला है कि स्त्रियों के गीतों में पुरुषों का मिलाया हुआ एक शब्द भी नहीं है। स्त्री-गीतों की सारी कीर्ति स्त्रियों ही के हिस्से की है। यह सम्भव हो सकता है कि एक-एक गीत की रचना में बीसों वर्ष और सैकड़ों मस्तिष्क लगे हों, पर मस्तिष्क थे स्त्रियों ही के, यह निर्विवाद है।

गीतों में एकात्मता

शकुंतला में कालिदास ने मृग-शिशु और वृक्षों के साथ मनुष्य की जिस एकात्मता का चित्र खींचकर अपने को विश्व-वन्द्य बना लिया है, वह एकात्मता गीतों में सर्वत्र प्रकट है। मेघदूत में मेघ संदेश-वाहक है। गीतों में भौंरा, कोयल, तोता, चील्ह, श्यामा पक्षी, घटा, कौआ आदि अनेक चर और अचर हैं, जो मनुष्यों के सहचर की तरह काम करते हुए दिखाये गये हैं।

देखिये—

अरे अरे काला भँवरवा अँगन मोरे आओ।
भँवरा आजु मोरे काज बिआह नेवत दै आओ॥

× × ×

अरी अरी कारी कोइलि तोर जतिया भिहावन।
कोइलरि बोलिया बोलउ अनमोल त सब जब मोहइ॥
अरी अरी कारी कोइलिया अँगन मोरे आवउ।
कोइलरि आजु मोरे पहिला बिआह नेवत दै आवउ॥

× × ×

मावन सुगना मैं गुर घिउ पालेउँ चैन चना कै दालि।
अब सुगना तू भयउ सजुगवा बेटी क बर हेरइ जाव ॥

× × ×

तोकों देबों भौंरा दूध भात खोरवाँ ।
अरे पिया आगे खबरि जनाउ, कि फागुन आयउ ॥

× × ×

सरगा उड़इ एक चिल्हिया सरब गुन आगरि ।
चिल्हिया जहँ पठवों तहँ जातिउ सनेसिया लइ अउतेउ ॥

× × ×

अरे अरे श्यामा चिरइया झरोखवै मति बोलहु ।
मोरी चिरई ! अरी मोरी चिरई ! सिरकी भितर बनिजरवा,
जगाइ लइ आवउ—मनाइ लइ आवउ ॥

× × ×

कारिक पियरि बदरिया झिमिकि दैवा बरसहु ।
बदरी जाइ बरसहु उही देस जहाँ पिया कोड़ करैं ॥
भीजै आखर बाखर तम्बुआ कनतिया ।
अरे भितराँ से हुलसै करेज समुझि घर आवैं ॥

भारत के प्रायः सब प्रान्तों के गीतों में पशु, पक्षी, लता-वृक्ष और मेघ-माला के साथ एकात्मता का सुन्दर चित्र है। यहाँ मारवाड़ का एक 'कुर्जा' नामक गीत दिया जाता है :—

तूँ छै ये कुर्जा भायली, तूँ छै धरम की भेण,
एक संदेशो ये बाई म्हारी ले उडो ये म्हारी राज—
कुर्जा म्हारा पीव मिला दे ये ।

कुर्जा एक छोटी चिड़िया होती है। एक विरहिणी उससे कहती है—
'हे कुर्जा ! तू मेरी प्यारी सखी है। तू मेरी धर्म की बहन है। हे बहन ! मेरा यह संदेशा लेकर उड़ो और मेरे प्रियतम को मुझसे मिला दो।'

गीतों में करुण-रस

करुणा तो कविता की जननी ही है। जैसे कहानियों में अद्भुत रस प्रधान होता है, वैसे ही गीतों में करुण-रस। मनुष्य के जीवन में साधारण से साधारण प्रसंग में भी काव्य रहता है। उसको प्रकट करना, उसे स्वादिष्ट बनाकर उसके लिये जनता में सुरुचि उत्पन्न करना गीतों की विशेषता है। गीतों में जैसा प्रभावोत्पादक करुण-रस रहता है, वैसा किसी महाकाव्य में भी हमारे देखने या सुनने में नहीं आया। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, तुलसी या सूर किसी की कविता पढ़कर करुण-रस से हम उतने प्रभावित नहीं होते, जितने गीतों से हुये हैं। वास्तव में जैसा भवभूति ने कहा है, करुणरस ही एक रस है, वही विषय-सम्बन्ध से अनेक रसों में परिवर्तित हो जाता है—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेवहि तत्समस्तम् ॥

'रस एक ही है और वह करुण-रस है। प्रकारान्तर से वही अनेक रूपों में प्रकट होता है। जैसे जल एक ही है, पर रूप-भेद के कारण वह भँवर, बुदबुद, तरंग आदि नाम धारण करता है।'

गीतों में करुणरस की महिमा स्पष्ट है। यहाँ करुणरस का एक गीत दिया जाता है—

छापक पेड़ छिउलिया त पतवन गहबर ।
अरे रामा, तेहि तर ठाढ़ि हरिनिया त मन
अति अनमनि॥१॥
चरतै चरत हरिनवा त हरिनी से पूँछइ।
हरिनी! की तोर चरहा झुरान कि पानी
बिन मुरझिउ ॥२॥

नाहीं मोर चरहा झुरान न पानी बिनु मुरझिउँ।
हरिना! आजु राजाजि के छट्ठी तुहँ मारि
डरिहँ ॥३॥

मचियै बैठी कौसिल्या रानी हरिनी अरज करइ।
रानी! मसुवा त सिझहिं रोसइयाँ खलरिया
हमैं देतिउ ॥४॥

पेड़वा से टँगतिउँ खलरिया त हेरिफेरि देखतिउँ।
रानी! देखि देखि मन समुझाइत जनकु
हरिना जीतइ॥५॥

जाहु हरिनि घर अपने खलरिया नाहीं देबइ।
हरिनी! खलरी क खँझड़ी मिढ़उबइ त राम
मोर खेलिहँइँ॥६॥

जब जब बाजइ खँझड़िया सबद सुनि अनकइ।
हरिनी दौरि ढँकुलिया के नीचे हरिन क
बिसूरइ॥७॥

'ढाक का एक छोटा-सा घने पत्तों वाला पेड़ है। उसके नीचे हरिनी खड़ी है। उसका मन बहुत बेचैन है॥१॥

चरते-चरते हरिन ने पूछा—हे हरिनी! तू उदास क्यों है? क्या तेरा चरागाह सूख गया है? या तेरा मन पानी की कमी से मुरझा गया है? ॥२॥

हरिनी ने कहा—हे प्रियतम! न मेरा चरागाह ही सूखा है, और न पानी ही की कमी है। बात यह है कि आज राजा के पुत्र की छट्ठी है। आज तुम मारे जाओगे॥३॥

रानी कौशल्या मचिये पर बैठी हैं। हरिनी ने उनसे विनती की—हे रानी! हरिन का मांस तो आप की रसोई में सीझ रहा है, उसकी खाल आप मुझे दिलवा दें॥४॥

मैं हरिन की खाल को पेड़ मे टाँग दूँगी और उसे घूम-फिर कर देखूँगी। हे रानी। उसे देख-देखकर मैं मन को समझाऊँगी, मानो हरिन जीता ही है ॥५॥

कौशल्या ने कहा—हे हरिनी! अपने घर जाओ। खाल नहीं मिलेगी। खाल की खँजड़ी बनेगी। मेरे राम उसे बजाकर खेलेंगे ॥६॥

उस खाल से बनी हुई खँजड़ी जब-जब बजती थी, तब-तब हरिनी कान उठाकर उसका शब्द सुनती थी और दौड़कर उसी ढाक के नीचे जाती और खड़ी होकर हरिन को बिसूरती थी ॥७॥

देखिये, यह गीत कैसा करुण-रस से पूर्ण है।

हरिनी हरिन की खाल इसलिए माँगती थी कि वह उसे देख-देखकर हृदय को ढाढ़स देगी और 'हरिन जीता है' इस भ्रम को सत्य समझकर एक अंतर्हित सुख का अनुभव करेगी। मनुष्यों में कितनी ही ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो अपने मृत पति या पुत्र की चीजें बड़ी सावधानी से रख छोड़ती हैं और एकान्त में उन्हें देख-देखकर एक अदभुत प्रकार का सुख अनुभव किया करती हैं। उसी का चित्रण इस गीत में है।

अंत में हरिन के खाल की खँजड़ी बनी। खँजड़ी जब बजती थी, तब उसकी ध्वनि से हरिनी के हृदय में प्रेम का एक इतिहास जाग्रत होता था, और वह उसी इतिहास में लय हो जाती थी। कैसा मनोहर चित्र है! कैसी सहृदयता है! कौन ऐसा सहृदय है जो इस दृश्य को ध्यान में देखकर रो न दे।

शकुन्तला को बिदा करते समय महर्षि कण्व वृक्षों से कहते हैं—

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेष्ठ या।
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्॥
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः।
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥

'तुमको जल दिये बिना जो पहले जल पीने की इच्छा भी नहीं करती

थी, पुष्पाभरण पसंद होने पर भी स्नेह-वश जो तुम्हारे पत्ते नहीं तोड़ती थी, तुम में जब पहले-पहल फूल निकलता था, तब जो उत्सव किया करती थी, वही शकुन्तला आज पति-गृह को जा रही है। हे वृक्षो! तुम सब जाने की आज्ञा दो।'

महर्षि कण्व ने यह बात किनसे कही? गूँगे वृक्षों और लताओं से जो आजतक न कभी बोले हैं, न बोलेंगे। पर महर्षि की दृष्टि में वृक्ष भी मनुष्य का-सा हृदय रखते थे, और वे भी वियोग का दुःख अनुभव कर सकते थे। प्रकृति के साथ ऐसी तन्मयता—ऐसी आत्मीयता हमें या तो कालिदास की रचना में देखने को मिलती है, या ग्राम-गीतों में।

अब पाठक ऊपर के गीत को एक बार फिर पढ़ जायँ। गीत की हरिनी की मूक वेदना मनुष्य के हृदय को हिला दे सकती है। यहाँ हरिनी के बहाने किसी सहृदया स्त्री ने अपना चित्र लाकर खड़ा कर दिया है। पशुओं के मन में किस समय क्या बात उठती है, यह हम मनुष्य लोग नहीं जान सकते। पर हमारे मन में जो-जो तरगें उठती हैं, उन्हें हम पशुओं के मन में कल्पित करके उन तरंगों को अधिक कोमल, मधुर और उत्तेजक बना लेते हैं। गीत बनानेवाली स्त्री ने यही काम किया है।

यह गीत छट्ठी के दिन गाया जाता है। इसकी लय सोहर की है। इस प्रकार के गीतों से स्त्रियाँ मनुष्य-जगत में प्रेम और और करुणा की शिथिल पड़ती हुई धाराओं को फिर प्रबल वेगवती बना देती है। विधाता की सृष्टि में स्त्रियाँ अद्भुत पदार्थ हैं।

एक गीत और सुनिये। इसमें माता के हृदय की व्यथा है—

सोने के खरउवाँ राजा राम कउसिला से अरज करइँ।
हुकुम न देउ मोरी मैया मैं बन क सिधारउँ॥
जौने राम दुधवा पिआयउँ घिऊ सेनि अवटेउँ।
अरे मोरा भितराँ से बिहरै करेजवा मैं कैसे बन भाखउँ॥
राम तो मोर करेजवा लखन मोरी पुतरिव।

अर रामा, सीता रानी हाथे क चुरिया मैं कैसे बन भाखउँ।।
राम गए दुपहरिया लखन तिजहरियउँ।
सीता मोरी गई सँझलौके मैं कैसे जियरा बोधउँ।।
पोयउँ मैं घिये क सोहरिया दुधे कर जाउरि।।
अरे रामा, यतना जेंवन मोर बिष भा राम मोर बन गये।।
चारि मँदिल चारि दीप बरै हमरा अकेल बरइ।
रामा मोरे लेखे जग अँधियार राम मोर बन गये।।
भितराँ से निकसीं कउसिला नैनन नीर बहइ।
रामा राम लखन सीता जोड़िया कवने बन होइहैं।।
घर घर फिरहि कउसिला त लरिका बटोरहिं।
लरिकौ छन एक रचहु ! धमारि राम बिसरावउँ।।
राम बिना सूनि अजोध्या लखन बिन मन्दिल।
मोरी सीता बिन सूनी रसोइयाँ कइसे जिअरा बोधउँ।।
मंदिल दीप जरइबै औ सेजिया लगइबै।
रामा आधीरात होरिला दुलरवै जनुक राम घरहिन।
सवना भदवना क दिनवा घुमरि घन बरसइ।
रामा राम लखन दूनों भइया कतहुँ होइहैं भीजत।।
रिमिक-झिमिक दयू बरसइ मोरे नाहीं भावइ।
दैवा वोहि बन जाइ जनि बरिसहु जहाँ मोर लरिकन।।
राम क भीजै मटुकवा लखन सिर पटुका।
मोरी सीता क भीजै सेंदुरवा लवटि घर आवउ।

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े रामचन्द्र अपनी माता कौशल्या से निवेदन कर रहे हैं—माँ आज्ञा दो न ? मै बन को जाऊँ।

कौशल्या कहती हैं—जिस राम को मैंने दूध में घी औटाकर पिलाया, उसे बन जाने की आज्ञा कैसे दूं ? मेरा भीतर से कलेजा फटा जा रहा है।

राम तो मेरे प्राण हैं; लक्ष्मण आँख की पुतली और सीता मेरे हाथ की चूड़ी। मैं इन्हें बन जाने को कैसे कहूँ?

राम दोपहर को, लक्ष्मण तीसरे पहर को और मेरी सीता रानी गोधूलि-वेला में बन को गई। मैं कैसे धीरज धरूँ?

मैंने घी की पूरी पोई थी और दूध की खीर पकाई थी। हाय! मेरे राम बन को चले गए। मुझे सारा भोजन विष-सा लगता है।

चारों मंदिरों में चार दीपक जल रहे हैं। मेरे मंदिर में एक ही जल रहा है। पर मेरे लेखे सारा संसार अंधकारमय लगता है; क्योंकि मेरे राम बन को चले गए।

कौशल्या भीतर से निकलीं। उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। वह बिसूर रही हैं—हाय! राम, लक्ष्मण और सीता किस वन में होंगे?।

कौशल्या घर-घर फिरकर लड़के जमा करती और कहती हैं—हे लड़को! तुम हिल-मिलकर कुछ देर खेलो-कूदो। जिससे मैं थोड़ी देर के लिये राम को भूल जाऊँ।

राम के बिना मेरी अयोध्या सूनी है, लक्ष्मण के बिना महल और सीता के बिना रसोई। मैं कैसे धीरज धरूँ?।

रात को मैं दीपक जलाऊँगी; सेज बिछाऊँगी; और आधी रात को अपने पुत्र को प्यार करूँगी। मानो मेरे राम घर ही में हैं।

सावन-भादों के दिन हैं। बादल घूम-घूमकर बरस रहे हैं। हाय! राम, लक्ष्मण दोनों भाई कहीं भीगते होंगे।

यह बादल रिम-झिम बरस रहा है। मुझे अच्छा नहीं लगता। हे बादल! तुम उस बन में जाकर न बरसना, जहाँ मेरे लड़के हैं।

राम का मुकुट भीग रहा है, लक्ष्मण का दुपट्टा। और मेरी सीता की माँग का सिंदूर भीग रहा है। तुम तीनों घर लौट आओ।

यह गीत करुण-रस से ओतप्रोत है। ऐसा हृदय-द्रावक वर्णन न तो वाल्मीकि ने किया है, न कालिदास और भवभूति ने, और न तुलसी और सूरदास ही ने। कौशल्या के दुःख का स्त्रियों ने बड़ी गहराई से

अनुभव किया है। यही कारण है कि इस कविता में स्वाभाविकता यथेष्ट मात्रा में है; कोरी कवि की कल्पना नही है। राम के बन जाने पर कौशल्या की मनोदशा का वर्णन हिन्दी के किसी कवि ने इतना सुन्दर नहीं किया है। न स्त्रियों के सिवा कोई कर ही सकता था।

रामने सीता को वनवास दे दिया था। उसका गीत बड़ा ही करुण है। वन में सीता के दो पुत्र लव और कुश जन्म लेते हैं। सीता ने लकड़ी जलाकर पुत्रों का मुँह देखा :—

सीता लकड़ी क किहिन अँजोर संतति मुख देखिनि।

सीता विलाप करतीं हैं :—

तुम पुत भयहु बिपति में बहुतै सँसति में।
पुता कुसै रे ओढन कुस डासन बन-फल भोजन॥
जो पुत होतेउ अयोधिया वही पुर पाटन।
राजा दसरथ पटना लुटौतें कौसिल्या रानी अभरन॥

राम ने सीता को मनाने के लिये लक्ष्मण को भेजा; पर सीता ने अयोध्या आने से इन्कार कर दिया। लक्ष्मण के मनाने पर भी जब सीता नहीं आई, तब राम ने गुरु वशिष्ठ को भेजा। पर सीता फिर भी नहीं मानीं।

सीता गुरु के मनाने से भी नही आईं, तब राम स्वयं गये। बन में जाकर उन्होंने देखा कि दो बालक गुल्ली-डंडा खेल रहे हैं। राम ने उनसे पूछा—

केकर तू पुतवा नतिअवा केकर हौ भतिजवा।
लरिकौ कौनी मयरिया कै कोखिया जनमि जुड़वायउ॥

'तुम किसके बेटा, किसके नाती और किसके भतीजे हो? किस माँ की कोख से जन्म लेकर तुमने उसे शीतल किया है?'

लड़कों ने कहा—

बाप क नौवाँ न जानौं लखन के भतिजवा हो ।
हम राजा जनक के हैं नतिया सीता कै दुलरुआ हो ।।

'बाप का नाम हम नहीं जानते; हम लक्ष्मण के भतीजे, जनक के नाती और सीता के लाड़ले हैं'।

यह सुनकर राम की क्या दशा हुई?

यतना बचन राम सुनलेनि सुनहू न पउलेनि ।
रामा तरर तरर चुवैं आँसु पटुकवन पोंछइँ ।।

'रामने इतना सुना, अच्छी तरह सुनने भी नहीं पाये कि तरर-तरर आँसू चूने लगे, जिन्हें वे दुपट्टे से पोंछने लगे।'

आगे ऋषि की कुटी थी। उसके सामने कदम्ब का सुन्दर वृक्ष था, जिसके नीचे सीता बैठकर केश सुखा रही थीं। राम जाकर उनके पीछे खड़े हो गये। सीता ने पलटकर देखा तो राम खड़े हैं। राम ने कहा—

रानी छोड़ि देउ जियरा बिरोग अजोधिया बसावउ ।
सीता तोरे बिन जग अँधियार त जिवना अकारथ ।।

'हे रानी! जी का दुःख छोड़ दो और चलकर अयोध्या को बसाओ। हे सीते! तुम्हारे विना मेरे लिये संसार अंधकार-मय है; और मेरा जीना व्यर्थ है।

सीता ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

सीता अँखियाँ में भरलीं बिरोग एकटक देखिनि ।
सीता धरती में गईं समाय कुछौ नाहीं बोलिनि ।

आँखों में दुःख भरे हुये 'सीता ने राम को एकटक देखा और वे धरती में समा गई, कुछ बोलीं नहीं।'

ऐसा कौन सहृदय है जो इस गीत को पढ़कर रो न दे। सारे गीत में कई स्थल ऐसे हैं, जहाँ हृदयवान् मनुष्य रोये बिना नहीं रह सकता।

पहला हृदय-विदारक दृश्य वह है, जब सीता ने लकड़ी का उजाला करके अपने नवजात शिशु का मुंह देखा था। उस अवसर पर माता का विलाप पत्थर को भी पिघला देनेवाला है।

दूसरा करुण-का स्रोत खोल देने वाला दृश्य वह है जब राम ने गुल्ली-डंडा खेलनेवाले लड़कों से उनके पिता का नाम पूछा था। लड़कों ने कहा—हम अपने पिता का नाम नहीं जानते। राम के हृदय पर यह सोचकर कैसी गहरी चोट लगी होगी कि मनस्विनी सीता ने लड़कों को उनके पिता का नाम भी नहीं बताया था। तीसरा दृश्य वह है, जब सीता राम को एकटक देखती हुई बिना कुछ बोले धरती में समा गईं। इस एकटक देखने और कुछ न बोलने ही में सीता ने सब कुछ कह डाला।

करुण-रस का जैसा सुन्दर चित्र इस गीत में है, वैसा किसी महाकवि की कविता में नही मिलता। भवभूति की कविता में भी नहीं।

गीतों की भाषा

गीतों की भाषा बिल्कुल सीधी-सादी और सुबोध होती है। उसमें न व्याकरण का चमत्कार होता है, न शब्दों का लालित्य ही। शब्दों की लीला जैसी संस्कृत में, मोरोपन्त की मराठी केकावलि में और हिन्दी के कुछ प्राचीन कवियों की कविता में देखने को मिलती है, गीतों में कहीं उसकी गंध भी नहीं होती।

कुछ उदाहरण लीजिये :—

यथा नयति कैलासं नगं गान सरस्वती।
तथा नयति कैलासं न गंगा न सरस्वती।

रागार्णव

× × ×

असुतरां सुतरां स्थितिमुन्नतामसुमतां सुमतां महतां वहन्।
उरुचितैरुचितैर्मणिराशिभिः स्वरुचितैरुचितैरवभात्ययम्॥

धनञ्जय

× × ×

कृपा करिशि तूं जगत्रयनिवास दासाँवरी ।
तशी प्रकट हे निजाश्रितजनां सदा साँवरी ।।

मोरोपंत—केकावलि

× × ×

बसुधाधर में बसुधाधर में औ सुधाधर में त्यों सुधा मैं लसै ।
अलिवृन्दन में अलिवृन्दन में अलिवृन्दन में अतिसे सरसै ।।
हिय हारन में हर हारन में हिम हारन में रघुराज लसै ।
ब्रज बारन बारन बारन बारन बारन बार बसंत बसै ।।

रघुराजसिंह

शब्दों का ऐसा खेल गीतों में नही मिलेगा। जो गीत जिस प्रांत का है, वह वहाँ की सरल से सरल भाषा में है। उसमे ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है, जो हरवक्त सर्वसाधारण की जीभ पर रहते हैं और जिनके लिये कोष के पन्ने उलटने की जरूरत नहीं पड़ती।

क्या ही अच्छा होता, यदि हम राजशेखर के शब्दों मे प्राकृत के स्थान पर गीतों की भाषा के लिये यह कह सकते—

यद्योनिः किल संस्कृतस्य सुदृशां जिह्वासु यन्मोदते ।
यत्र श्रोत्रपथावतारिणि कटुर्भाषाक्षराणां रसः ।
गद्यं चूर्णपदं पदं रतिपतेस्तत्प्राकृतं यद्वच—
स्तांल्लाटाँल्ललितांगि पश्य नुदतीदृष्टेर्निमेषव्रतम् ।।

राजशेखर

'संस्कृत भाषा जिससे निकली है, सुलोचनाओं की जिह्वा पर जो आनन्द करती है, जिसके सुन लेने पर अन्य भाषा के अक्षर कठोर जान पड़ते हैं, जिसके असमस्त पद्य गद्य कामदेव का स्थान है, वह प्राकृत जिनकी बोली है, हे ललित अंगोंवाली ! उस लाट देश को देखो। उसे देखने के लिये पलक भाँजना भूल जाओ।'

गीतों में प्रकृति के साथ तन्मयता

संस्कृत-कवियों में वाल्मीकि का प्रकृति-प्रेम अनुपम है। वन, पर्वत, समुद्र, हरियाली, उपत्यका और तरंग देखकर उनके हृदय में अपार आनंद उमड़ आता रहा होगा। रामायण में वृक्ष, लता और फूल-पत्तों का जहाँ कहीं नाम आया है, वहाँ वाल्मीकि कुछ सुन्दर विशेषणों से उन्हें भूषित करने में नहीं चूके हैं। प्रकृति के लिये इतना अनुराग और किसी कवि में दिखाई नही पड़ता।

एक साधारण सी घटना है। सुग्रीव ने राम को बैठने के लिये साल-वृक्ष की एक शाखा दी। वाल्मीकि ने उस शाखा के साथ पर्ण-बहुला और सुपुष्पिता दो विशेषण जड़ दिये। हनुमान् ने लक्ष्मण को बैठने के लिये चन्दन की एक शाखा दी। वाल्मीकि ने उसके साथ परमपुष्पिता शब्द जोड़कर अपने परम पुष्पित हृदय का परिचय दिया है।

ततः स पर्णबहुलां भङ्क्त्वा शाखां सुपुष्पिताम् ।
सालस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद स राघवः ॥
लक्ष्मणायाथ संहृष्टो हनुमान्प्लवगर्षभः ।
शाखां चन्दनवृक्षस्य ददौ परमपुष्पिताम् ॥

'तब सुग्रीव बहुत पत्तोंवाली, अच्छे फूलों से युक्त साल-वृक्ष की शाखा तोड़कर और बिछाकर राम के साथ बैठ गये।'

'वानरों में श्रेष्ठ हनुमान ने प्रसन्न होकर अति पुष्पित चन्दन वृक्ष की शाखा लक्ष्मण को (बैठने के लिये) दी।'

ठीक ऐसी ही दशा गीतों की है। गीत-रचयिताओं के हृदय में भी प्रकृति के लिये अपार अनुराग है। शायद ही कोई गीत ऐसा हो, जिसमें प्रकृति के लिये कुछ न कहा गया हो। देखिये :—

कारिक पियरि बदरिया झिमिक दैव बरसहु ।
बदरी जाइ बरसहु वहि देस जहाँ पिया कोड़ करें ॥

भीजइ आखर बाखर तँबुआ कनतिया ।
अरे भितराँ से हुलसै करेज समुझि घर आवइँ ॥

× × ×

मोरे पिछवरँवाँ लवँगिया की बगिया लवँगा फूलै आधी राति रे ।
तेहि तर उतरैं दुलहा दुलरुवा तुरहीं लवँगिया के फूल ॥

× × ×

आधे तलवा माँ हंस चुनैं आधे में हंसिनि ।
तबहूँ न तलवा सोहावन एक रे कमल बिन ॥

× × ×

झिलमिल बहेला बयार पवन भल डोलि रही ।
डोलै नवरँगिया क डार कोइलिया कुहुकि रही ॥

× × ×

बेइलि एक हरि लायनि दुधवा सिँचायनि ।
आप हरि भयें बनजारा बेइलि कुम्हिलानि ॥

× × ×

सावन मेहँदी बोवायउँ रे भादौं माँ दुइ दुइ पात ।
सैयाँ मोरा छाये रे विदेसवाँ रे सीचौं मैं नयन निचोरि ॥

× × ×

आधी फुलवरिया गुलबवा आधी में केवड़ा गमकइ ।
तबहूँ न फुलवा सोहावन एक रे भँवर बिनु ॥

× × ×

उवहु सुरुज मनि उवहु सुरुज मनि तुम बिन जग अँधियार ।
तुम बिन गौवाँ खरिकवा न लइहैं अहिरा दुहन नहिं जाय ॥

× × ×

छोटी मोटी तुलसी गछिया लम्बी लम्बी पतिया
फरे फूले तुलसी सुहावन रे खी ।

अमवा महुलिया घन पेड़ तेही रे बीचे राह परी ।
रामा तेहि बिच ठाढ़ी एक तिरिया मनै माँ बैराग भरी ।।

भारत के प्राय: सब प्रांतों के गीतों में पशु, पक्षी, लता, वृक्ष और मेघमाला के साथ एकात्मता का सुंदर चित्र मिलता है।

गीतों में चन्दन, लौंग, नीबू, नारंगी, आम, महुवा, कदम्ब, कोयल, पपीहा, तोता, मैना, श्यामा, हंस, हरिण, हरिणी, कमल, गुलाब, चमेली, केवड़ा तालाब आदि का वर्णन सर्वत्र मिलता है।

स्वाभाविकता

स्वाभाविकता कविता का प्राण है। गीतों में चाहे करुण-रस हो, चाहे प्रेम या विरह, सब स्वाभाविकता की सीमा के अन्दर है। इसीसे गीत सीधे हृदय तक पहुँच जाते हैं। मस्तिष्क के पेंचीले रास्ते से गुजरने की उन्हें जरूरत नहीं पड़ती। सुप्रसिद्ध विद्वान् काका कालेलकर का कथन है—

आजनो युग अत्यन्त कृत्रिम छे। आपणी भाषा, आपणा रिवाज, आपणो विवेक, आपणा हेतु, आपणी नीति-मत्ता आपणुं जीवन बधूंज कृत्रिम थई गयुं छे। खुल्ली हवामा उघाड़े दिले फरतां के सूतां जेम आपणे लाजिए छीए अने डरिए छीए तेम सामाजिक राजकीय अने कौटुम्बिक व्यवहारो माँ पण स्वाभाविक थवानी आपणी हीमत नथी चालती, जाणे स्वाभाविकतामाँ मौत के सन्यानाशज रहेलुं होय। लोक-साहित्यना अध्ययन थी—तेना पुनरुद्धार थी आपणे अकृत्रिमताएं कवच तोड़ी शकशुं, अने स्वाभाविकतानी शुद्ध हवामाँ हरी फरी शकवा जेटली शक्ति केलवी शकशुं। स्वाभाविकतामांज आत्म-शुद्धि थवी शक्य छे। कृत्रिमतामां दंभ पाखंड अने अधर्म बधे छे। कृत्रिमता हमेशां आशा तो बहु बतावे छे, पण ते आशानी पूर्तिने नामे शुन्य।'

'आज का जमाना अत्यन्त कृत्रिम है। अपनी भाषा अपना रिवाज, अपना विवेक, अपना हेतु, अपनी नीतिमत्ता, अपना जीवन सभी कृत्रिम हो

गये हैं। खुली हवा में उघाड़े फिरने या सोने में जैसे हम लोग लजाते हैं, और डरते हैं, वैसे ही सामाजिक, राजकीय और कौटुम्बिक व्यवहारों में भी स्वाभाविक होने की हमारी हिम्मत नहीं पड़ती, मानो स्वाभाविकता में मृत्यु या सत्यानाश का भय है। ग्राम-साहित्य के अध्ययन से—उसके उद्धार से हम कृत्रिमता का कवच तोड़ सकेंगे और स्वाभाविकता की शुद्ध हवा में हिर-फिरकर यथेच्छ शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। स्वाभाविकता ही में आत्म-शुद्धि संभव है। कृत्रिमता से दंभ, पाखंड और अधर्म बढ़ता है। कृत्रिमता सदा आशा तो बढ़ाती है, पर कभी उसकी पूर्त्ति नहीं होती।'

वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, सूर और तुलसी की कविता में स्वाभाविकता की मात्रा यथेष्ट है। इसीसे समाज में उनका आदर भी यथेष्ट है। इनमें भी सब से अधिक स्वाभाविकता वाल्मीकि की कविता में है। अस्वाभाविकता ने कवियों को मिथ्या-भाषी बना दिया है। कविता में स्वाभाविकता हृदय को कितनी प्यारी लगती है, यह दिखाने के लिये संस्कृत और हिन्दी के कुछ पद्य तथा ग्राम-गीत यहाँ दिये जाते हैं—

वररुचि कहते हैं—

हस्ते कपोलममलं पथि चक्षुर्मनस्त्वयि ।

'सुन्दर कपोल हाथ पर है, आँखें मार्ग पर हैं और मन तुझ में है।'

कैसा स्वाभाविक वर्णन है। यदि इसी में कुछ कल्पना मिला दी जाती, तो यह रस न रह जाता।

शीला भट्टारिका की एक उक्ति है—

प्रियविरहितस्याद्य हृदि चिन्ता समागता ।
इति मत्वा गता निद्रा के कृतघ्नमुपासते ॥

'मैं प्रिया से रहित हूँ, इससे चिन्ता हृदय में आगई। यह देखकर निद्रा चली गई। कृतघ्न का साथ कौन देता है?'

चिन्ता के आने पर निद्रा का चला जाना बिल्कुल स्वाभाविक है।

इससे एक नैतिक परिणाम निकालकर सुचतुरा कवयित्री ने स्वाभाविकता को अधिक मधुर कर दिया है।

शकुन्तला में कण्व के मुख से कालिदास कहते हैं—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया ।
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिरनिशं चिन्ताजडं दर्शनम् ॥
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः ।
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥

शकुन्तला

'आज शकुन्तला जायगी, इससे मेरा हृदय उत्कंठित हो गया है। गले में वाष्प के रुक जाने से आवाज नहीं निकलती। आँखों से कुछ दिखाई नहीं पड़ता। मैं वनवासी हूँ, फिर भी स्नेह के कारण इतना व्याकुल हो गया हूँ। तब संसारी जन कन्या के नवीन वियोग-दुःख से क्यों पीड़ित न होते होंगे।'

अवश्य ही होते हैं। ग्राम-गीतों में बेटी की विदाके बाद स्नेह-विह्वल पिता के बहुत से वर्णन मिलते हैं।

भास ने स्त्री का कैसा सच्चा वर्णन किया है!—

दुःखार्ते मयि दुःखिता भवति या हृष्टे प्रहृष्टा तथा ।
दीने दैन्यमुपैति रोषपरुषे पथ्यं वचो भाषते ॥
कालं वेत्ति कथाः करोति निपुणा मत्संस्तवे राज्यति ।
भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सैका बहुत्वं गता ॥

'मेरे दुःखित होनेपर जो दुःखी और हर्षित होने पर हर्षित होती है; मेरी दीनता में जो दीन हो जाती है; मेरे क्रोध के समय जो कोमल बातें करती है; समय समझती है; समझदारी की बातें करती है; और मेरे मित्रों पर अनुराग करती है; वह एक ही भार्या मंत्री, सखा, नौकर रूप से अनेक हो गई है।

व्यास कहत हैं—

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा ।

एक अंग्रेज़ी कवि ने भी स्त्री का ऐसा ही मनोहर वर्णन किया है—

A wife is half the man, his truest friend—
A loving wife is a perpetual spring
A virtue, pleasure, wealth; a faithful wife
Is his best aid in seeking heavenly bliss;
A sweetly speeking wife is a companion
In solitude; a father in advice;
A mother in all seasons of distress;
A rest in passing through lifes wilderness.

'स्त्री मनुष्य की अर्द्धांगिनी है, उसका बहुत ही सच्चा मित्र है। प्रेम करनेवाली स्त्री एक शाश्वत बसंत, पवित्रता, आनद और लक्ष्मी है। वफ़ादार स्त्री स्वर्गीय आनंद को प्राप्त करने के लिये एक श्रेष्ठ सहायिका है। मधुर-भाषिणी स्त्री एकान्त की एक संगिनी है। शिक्षा देने के लिए पिता के समान है। हर प्रकार के दुःखों में माँ के समान है और जीवन के बयाबान को पार करने में एक विश्राम है।'

भवभूति ने स्वाभाविक करुण-रस की रचना में अपना प्रतिद्वन्दी नहीं रक्खा। बन में निकाली हुई सीता राम को देख रही है। उनके नेत्रों में आनंद और शोक दोनों हैं। भवभूति ने सीता की दृष्टि का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है—

विलुलितमतिपूरैर्वाष्पमानन्दशोक-
प्रभवमवसृजन्ती तृष्णयोत्तानदीर्घा ।
स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते
धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः ॥

उत्तररामचरित

'आनन्द और शोक से उत्पन्न हुये आँसुओं से भरी हुई, सतृष्ण, खूब

फैली हुई, स्नेहपूर्ण, स्वच्छ और विमोहित तुम्हारी दृष्टि दूध की नदी की तरह प्राणनाथ को स्नान करा रही है।'

कालिदास रघुवंश में राम के मुख से सीता को सम्बोधन कराके कहलाते हैं—

अत्राविषुक्तानि रथांगनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि ।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि ॥

'यहीं पम्पासर पर मैंने अवियुक्त चक्रवाक-दम्पति को देखा था। वे आपस में एक दूसरे को कमल-केसर दे रहे थे। तुमसे दूर रहने वाला मैं उनको बड़ी स्पृहा से देखता था।'

चक्रवाक-दम्पति को देखकर सीता-वियोगी राम की विह्वलता स्वाभाविक है। कालिदास की रचना में स्वाभाविकता की मात्रा बहुत अधिक है, इसी से वह प्रिय भी है।

सोमदेव भट्ट कहते हैं—

विधुरप्यर्कति चन्दनमनलति मित्राण्यपि रिपवन्ति ।
विधुरे वेधसि खिन्ने चेतसि विपरीतानि भवन्ति ॥

'हृदय के खिन्न होने पर सब विपरीत हो जाते हैं। चन्द्रमा सूर्य के समान, चन्दन अग्नि के समान, और मित्र शत्रु के समान हो जाते हैं।'

सुख और दुःख तो हृदय में है। हृदय प्रसन्न होता है तो सारा संसार हँसता-सा दिखाई देता है। खिन्न होता है, तो जगत् उदास दिखाई पड़ता है।

हर्षदेव कहते हैं—

प्रविशामि किमंगेषु भवतीं निगरामि किम् ।
चिरेण गतलब्धासि न जाने करवाणि किम् ॥

'मैं तुम्हारे अंगों में प्रविष्ट हो जाऊँ? या तुमको निगल जाऊँ? बहुत दिनों पर तुम मिली हो, जानता नहीं, मैं क्या करूँ?'

सच है, प्रेम के आधिक्य से ऐसी ही दशा होती है।

एक कोई कवि किसी विरहिणी का वर्णन करता है—

अद्यापि हि नृशंसस्य पितुस्ते दिवसो गतः ।
तमसा पिहितः पन्था एहि पुत्रक शेवहे ॥

'आज का दिन भी बीत गया। फिर भी तुम्हारा निष्ठुर पिता नहीं आया। मार्ग अंधकार से छिप गया। अब क्या आवेंगे? आने भी होंगे तो कहीं ठहर गये होंगे। चलो, बेटा! सो रहें।'

यह वर्णन विरहिणियों के अनेक अस्वाभाविक वर्णनों से कहीं अधिक सत्य और सहृदय रसिक के हृदय में करुण-रस उत्पन्न करने वाला है।

संस्कृत का एक कवि किसी विरही का वर्णन करता है, जिसने आत्म-हत्या कर ली थी—

ग्रामेस्मिन्पथिकाय पान्थ वसतिर्नैवाधुना दीयते ।
रात्रावत्र विहारमण्डपतले पान्थः प्रसुप्तो युवा ।
तेनोद्गीय खलेन गर्जति घने स्मृत्वा प्रियां तत्कृतं ।
येनाद्यापि करंकदण्डपतनाशंकी जनस्तिष्ठति ।

'हे पथिक! इस गाँव में आजकल यात्रियों को ठहरने का स्थान नहीं दिया जाता। क्योंकि कल रात में यहाँ मठ में एक युवा पुरुष सोया था। मेघ का गर्जन सुनकर, अपनी प्रियतमा का स्मरण करके उसने गाया और फिर उसने जो किया उसका स्मरण करके यहाँ वाले आज भी भयभीत हैं।'

कवि ने अपने वर्णन-चमत्कार से स्वाभाविकता को अधिक सुन्दर बना दिया है।

एक कवि मारवाड़ के एक पति-पत्नी का वर्णन करता है—

आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुद्वीक्ष्य दुर्लङ्घ्यतां ।
तन्वङ्ग्या परितोषवाष्पतरलामासज्य दृष्टिं मुखे ॥

दत्वा पीलुशमीकरीरकवलं स्वेनाञ्चलेनादरात् ।
उन्मृष्टं करभस्य केसरसटाभारावलग्नं रजः ॥

'पति आया है। दुर्गम मारवाड़ की भूमि से आने की कठिनाई को विचार कर सुन्दरी ने प्रसन्नता के आँसुओं के कारण चंचल नेत्रों से उस ऊँट का मुँह देखा। उसने पीलु, शमी और करीर आदि की पत्तियों का ग्रास बनाकर उसे दिया और आँचल से उसके कंधे की धूल साफ की।'

जो अपने प्रियतम को ले आया, सुन्दरी ने उसका सत्कार सब से पहले किया। शुद्ध प्रेम का तो यह स्वभाव ही है।

एक कवि प्रभात-काल का वर्णन करता है—

विरलविरलीभूतास्ताराः कलाविव सज्जना ।
मन इव मुनेः सर्वत्रैव प्रसन्नमभून्नभः ॥
व्यपसरित च ध्वान्तं चित्तात्सतामिव दुर्जनो ।
विगलति निशा क्षिप्रं लक्ष्मीर्निरुद्यमिनामिव ॥

'कलियुग में जिस प्रकार सज्जन थोड़े रह जाते हैं, उसी प्रकार आकाश में तारे थोड़े रह गये। मुनि के मन के समान समस्त आकाश स्वच्छ हो गया। सज्जनों के चित्त से जिस प्रकार दुर्जन हट जाते हैं, उसी प्रकार अन्धकार हट गया है। और उद्यमहीनों की लक्ष्मी की तरह रात्रि नष्ट हो गई है।'

कवि ने यहाँ प्रभात के वर्णन के बहाने काव्य-रसिकों के हृदयों में उत्तम गुणों के विकसाने का प्रयत्न किया है।

प्रभात के विषय में स्व० कुमारी तोरूदत्त की एक कविता भी बड़ी मधुर है—

still barred the doors ! The far east glows,
The morning wind blows fresh and free,
Should not the hour that wakes the rose,
Awaken also thee ?

All look for thee, Love, Light and Song,
Light in the sky deep red above,
Song, in the lark of pinions strong,
And in my heart true Love.

'तेरा द्वार अभी तक बन्द है। पूर्व दिशा चमक रही है। सबेरे की ताजी और स्वच्छन्द हवा बह रही है। जो घड़ी गुलाब को जगाती है, क्या वह तुझे नहीं जगायेगी?

प्रेम, प्रकाश और गीत, सब तेरी राह देख रहे हैं। प्रकाश गहरे लाल आकाश में, गीत लार्क पक्षी में, और शुद्ध प्रेम मेरे हृदय में।'

कैसा सरल, मधुर और स्वाभाविक वर्णन है! कहीं कृत्रिमता की झलक नहीं।

एक कवि एक ग़रीब पथिक का चित्र खींचता है—

मातर्धर्मपरे दयां मयि कुरु श्रान्तेद्य वैदेशिके।
द्वारालिन्दककोणकेथ निभृतं यातास्मि सुप्त्वा निशि॥
इत्युक्ते सहसा प्रचण्डगृहिणीवाक्येन निर्भर्त्सितः।
स्कंधन्यस्तपलालमुष्टिविभवः पान्थः पुनः प्रस्थितः॥

'हे धर्मात्मा माता! मुझ पर दया करो। मैं थका हुआ हूँ। द्वार के चौकठ के कोने में रात भर सोकर मैं चला जाऊँगा। यह कहने पर प्रचण्ड गृहिणी के द्वारा दुत्कारा हुआ वह पथिक, जिसके पास कंधे पर मुट्ठी भर पुआल ही का धन था, वहाँ से चला गया।'

क्या इसे पढ़कर हृदय में तत्काल करुणा उत्पन्न नहीं होती? इसमें अलंकार हो या न हो, पर रस तो है।

बस, स्वाभाविकता का प्रभाव दिखलाने के लिए इतने प्रमाण कम नहीं हैं।

गीत तो ऐसे स्वाभाविक वर्णनों से भरे पड़े हैं।

एक विरहिणी कहती है—

अरे अरे कारी बदरिया तुहइं मोरि बादरि।
बदरी ! जाइ बरसहु वहि देस जहाँ पिय छाये ।।

'हे काली घटा, तुम्ही मेरी प्यारी घटा हो; हे घटा ! वहाँ जाकर बरसो, जहाँ मेरे प्रियतम बसे हैं, डेरा डाले हैं।'

सावन का महीना आया। घटा देखकर पति को अपनी विरहिणी स्त्री की याद आई। वह घर आया। स्त्री द्वार बंद किये हुए सो रही थी। पति ने द्वार खटखटाया। स्त्री ने पूछा—तुम कुत्ते हो या बिल्ली ? या मेरे ससुर के पहरेदार ?

पति कहता है—

ना हम कुकुर बिलरिया न ससुरू पहरिया।
धन ! हम अही तोहरा नयकवा बदरिया बुलायसि ।।

'न मैं कुत्ता हूँ, न बिल्ली। न तुम्हारे ससुर का पहरेदार ही हूँ। हे मेरी प्यारी स्त्री ! मैं तुम्हारा पति हूँ। मुझे घटा बुला लाई है।'

'बदरिया बुलायसि' में कितना माधुर्य है ! कैसी स्वाभाविकता है ! हृदय का कैसा सुन्दर चित्र है !

कालिदास ने मेघदूत में मेघ से कहलाया है—

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां।
मन्द्रास्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ।।

'मेरी गरज में यह गुण है कि वह परदेशियों को तुरन्त अपने-अपने घर जाने का चाव दिलाती है, और उनके मन में उत्सुकता पैदा करती है कि वे अपने घर पहुँचकर, अपनी स्त्री की वेणी खोलें।'

कालिदास ने जो बात एक वैज्ञानिक की तरह कही, वही बात गीत में कवि की कही हुई-सी है।

एक गीत में रुक्मिणी और चकई का कथोपकथन, देखिये, कितना रसीला हुआ है—

गहिरि जमुनवाँ के तिरवाँ चनन गछ रुखवा हो।
तिन डरिया परे हैं हिंडोलवा झुलहिं रानी रुकुमिनि हो।।१।।
झुलतहिं झुलत अबेर भा है औरौ बेर भा है हो।
मोरा टुटला मोतिन केर हार जमुन जल भीतर् हो ।।२।।
धावउ बहिनि चकैया तूँ हाली बेगि आवउ हो।
चकई ! चुनि लेव मोतिन क हार जमुन जल भीतर हो ।।३।।
अगिया लगाओं तोरा हरवा बजर परै मोतिन हो।
बहिनी ! सँझवै से चकवा हेरान ढूंढ़त नहिं पावउँ हो ।।४।।

'गहरी नदी जमना के किनारे चन्दन का एक घना वृक्ष है। उसकी डाल पर हिंडोला पड़ा है। उस पर रानी रुक्मिणी झूल रही है ।।१।।

झूलते-झूलते बहुत देर हो गई। यकायक उनका मोती का हार टूट गया और मोती यमुना के जल मे जा गिरे ।।२।।

रुक्मिणी ने चकई से कहा—हे चकई बहन ! जल्दी दौड़कर आओ, और मेरे हार के मोतियों को यमुना के भीतर से चुनकर निकाल दो ।।३।।

चकई स्वयं चकवा के वियोग में व्याकुल हो रही थी। उसने कहा—तुम्हारे हार मे आग लगे, मोती पर बज्र गिरे। साँझ ही से मेरा चकवा खो गया है। मै ढूंढ़ रही हूँ और पाती नहीं हूँ ।।४।।

प्रियतम की खोज से बढ़कर संसार में और जरूरी काम क्या है ? सभी अपने प्रियतम की खोज में लगे है। चकई के मुख से यह सत्य अधिक सुन्दर लगता है। यही गीतों की महिमा है।

एक गीत में एक कन्या ससुराल जा रही है। घर के सामने नीम का एक पेड़ है। शायद उसी के हाथ का लगाया होगा। उसके लिये वह अपने बाबा से कहती है—

बाबा निमिया क पेड़ जिनि काटेउ,
निमिया चिरैया बसेर—बलैया लेउँ बीरन ।।१।।

बाबा बिटियउ जिनि केउ दुख—देउ,
बिटिया चिरैया की नाइँ बलैया लेउँ बीरन ॥२॥
सब रे चिरैया उड़ि जइहैं,
रहि जइहै निमिया अकेलि— ,, ॥३॥
सब रे बिटियवा जइहैं सासुर,
रहि जइहै माई अकेलि ,, ॥४॥

'हे बाबा ! यह नीम का पेड़ मत काटना। इस पर चिड़ियाँ बसेरा लेती हैं। ॥१॥

हे बाबा ! बेटियों को भी कोई कष्ट न देना। बेटी और पंछी की दशा एक-सी है ॥२॥

सब चिड़ियाँ उड़ जायँगी, नीम अकेली रह जायगी ॥३॥

सब बेटियाँ अपनी-अपनी ससुराल चली जायँगी, माँ अकेली रह जायगी ॥४॥

कैसा स्वाभाविक वर्णन है !

नीम के साथ माँ की और पक्षियों के साथ कन्याओं की तुलना करके उदासीनता का जो चित्र इस गीत में अंकित है, कविता की दृष्टि से वह साधारण कोटि का नहीं है। हिन्दी-कविता में चिड़ियों के बसेरे की याद संसार की क्षणभंगुरता दिखाने में की जाती है; पर इस गीत में वह एक बिल्कुल नये रूप में है।

एक गीत में एक कन्या सावन में नैहर जाने के लिए बेचैन दिखाई पड़ती है—

ठाढ़ी झरोखवा में चितवउँ,
नैहरे से केउ नाहीं आइ ॥१॥
ओहिरे मयरिया कैसन बपई रे,
जिन मोरी सुधियौ न लीन ॥२॥

ओहिरे बहिनिया कैसन बीरन,
ससुरे में सावन होइ ॥३॥

कन्या कहती है—झरोखे के पास खड़ी मैं देख रही हूँ, नैहर से कोई नहीं आया ॥१॥

हाय! वे माँ-बाप कैसे हैं? जिन्होंने मेरी सुध तक नहीं ली ॥२॥

अरे! उस बहन का वह भाई कैसा? जिसका सावन ससुराल में बीतेगा ॥३॥

कविता का आनन्द इसी में है कि सुनते ही हृदय में रस की धारा बहने लगे।

तुलसीदास ने कहा है—

चम्पक हरवा अँग मिलि अधिक सुहाय।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाय॥

इसमें सीता के चम्पे-जैसे वर्ण का वर्णन है। सीता का वर्ण चम्पे से इतना मिलता-जुलता था कि चम्पे का हार सीता के वर्ण में अदृश्य हो जाता था। जब वह कुम्हलाता था और उसका रंग फीका पड़ जाता था, तभी पता चलता था कि यह हार है। बिल्कुल स्वाभाविक वर्णन है। यदि तुलसीदास कहते कि सीता का वर्ण देखकर चम्पा लज्जा के मारे कुम्हला जाता है, तो अस्वाभाविक हो जाता; क्योंकि चम्पा जड़ पदार्थ है, उसको लज्जा हो नहीं सकती।

वर्तमान सभ्यता का कृत्रिम प्रकाश जिस जाति में जितना ही कम फैला है, उतना ही उस जाति के गीतों में स्वाभाविकता अधिक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कहे जानेवाले समाज में जो गीत प्रचलित हैं, उनकी स्वाभाविकता धीरे-धीरे कम होती जा रही है। शहरों में तो वह एक प्रकार से नष्ट ही हो गई है। शहरों के गीतों में विभवों का वर्णन—जैसे विवाह में हाथी-घोड़ों की बड़ी संख्या, बाजों के नाम, ठाट-बाट का जिक्र, कपड़ों और गहनों की लम्बी सूची, बरात की रौनक आदि का बड़ा वर्णन मिलेगा,

मनोभावों का चित्र बहुत ही कम। पर देहात के गरीब किसानों—मुख्यतः शूद्र-वर्ण के गीतों में स्वाभाविक कविता अभी तक मिलती है। निरवाही के गीत, जो मुख्यतः चमारिनें गाती हैं, स्वाभाविक सचाई से परिपूर्ण होते हैं। उनके पढ़ने और सुनने से मन में करुणा, प्रेम और सहृदयता जाग उठती है। किसी भी प्रकार के बुरे विकार नहीं उत्पन्न होते।

अस्वाभाविकता

राजशेखर कहते हैं—

उदन्वच्छिन्ना भूः स च निधिरपां योजनशतम्।
सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं कथयति॥
इति प्रायो भावाः स्फुरदवधिमुद्रामुकुलिताः।
सतां प्रज्ञोन्मेषः पुनरयमसीमा विजयते॥

'पृथ्वी समुद्र से घिरी हुई है। वह समुद्र सौ योजन लम्बा-चौड़ा है। सदा भ्रमण करनेवाला यह पथिक सूर्य आकाश का विस्तार बतलाता ही है। इस प्रकार जितने पदार्थ हैं, सब की कोई न कोई अवधि है, पर सज्जनों के बुद्धि-विकास की सीमा नहीं है।'

राजशेखर का कथन अक्षरशः सत्य है। सज्जनों के बुद्धि-विकास कहिये, या कल्पना की, सचमुच सीमा नहीं है। कहीं-कहीं हमारे संस्कृत के कविगण और उन्हीं की देखा-देखी 'पिछलगुए' हिन्दी के कविगण ऐसी उड़ान उड़े हैं कि पीछे फिरकर उन्होंने देखा ही नही कि जिस वस्तु के लिये उड़े हैं, वह कहाँ छूट गई है। महाकवियों ने कहीं-कहीं ऐसी कल्पनाएँ की हैं, जो मेकाले के शब्दों में पागलपन की सीमा के अन्दर आ गई हैं।

मेकाले कहते हैं—

Perhaps no person can be a poet or can even enjoy poetry without a certain unsoundness of mind.

'शायद कोई व्यक्ति न कवि हो सकता है, और न कविता का आनन्द ले सकता है, जिसकी विचार-शक्ति में कुछ पागलपन न हो।'

श्रीहर्ष कहते हैं—

कुरु करे गुरुमेकमयोघनं
बहिरितो मुकुरं च कुरुष्व मे।
विशति तत्र यदैव विधुस्तदा
सखि सुखादहितं जहि तं द्रुतम् ॥

'हे सखि ! अपने हाथ में हथौड़ा लो, और सामने एक दर्पण रक्खो। जब उस दर्पण में चन्द्रमा घुसे, तब उसे खूब मारो; क्योंकि वह शत्रु है।'

कहा जायगा कि विरहिणी पागल हो गई है, इसीसे ऐसा प्रलाप कर रही है। पर विरहिणी का पागलपन सुनकर इस पद्य के श्रोताओं में उसके लिये सहानुभूति तो नहीं उत्पन्न होती; उल्टे हास्य-रस जाग्रत हो आता है।

क्षेमेन्द्र कहते हैं—

तद्वक्त्राब्जजितः प्रसह्य भजते क्षैण्यं क्षपावल्लभ—
स्तद्भ्रूविभ्रमतर्जितं च विनतिं धत्ते धनुर्मान्मथम् ॥
तस्याः पेलवपल्लवद्युतिमुषा शोणाधरेणार्दितं।
नूनं प्राप्य विरक्ततां वनमही विम्बं समालम्बते ॥

'उसके मुख से हारकर चन्द्रमा लाचारी से क्षीण हो रहा है। उसके भ्रू-विलास से तिरस्कृत होकर कामदेव का धनुष नम्र हो गया है। उसके कोमल पल्लवों के समान सुन्दर लाल ओठों से पीड़ित होकर विम्बाफल विरक्त हो गया और यह सत्य बात है कि उसने बन में आश्रय लिया।'

चन्द्रमा, कामदेव का धनुष और विम्बाफल ये तीनों जड़ पदार्थ हैं। इनका क्षीण होना, नम्र होना और वन में आश्रय लेना पराधीन है। इनसे चेतन जैसा काम लेना अस्वाभाविक है, या नहीं ?

पंडितराज जगन्नाथ कहते हैं—

तीरे तरुण्या वदनं सहासं नीरे सरोजञ्चमिलद्विकासम्।
आलोक्य धावत्युभयत्र मुग्धा मरन्दलुब्धालिकिशोरमाला ॥

'तीर पर युवती का हँसता हुआ मुख है और जल में खिला कमल। दोनों को देखकर पुष्परस के लोभी भौंरों का मुग्ध समूह कभी इधर दौड़ता है, कभी उधर।'

खूब, भौंरे को भ्रान्ति हो रही है, या कवि को? भौंरा कमल के रस का प्रेमी है, न कि उसके आकार का। उसे गन्ध से भ्रान्ति हो सकती है, रूप से नहीं। कवियों ने हज़ारों वर्षों से काव्य-रसिकों को यह समझा रक्खा है कि हम मुख की उपमा कमल से देंगे, इसे समझ रखना। यह तो कवि और उसके प्रशंसकों के पारस्परिक समझौते की बात है। बार-बार कहते-कहते और सुनते-सुनते एक मिथ्या कल्पना सत्य-सी हो गई है, नहीं तो कमल और मुख के आकार में इतना अन्तर है कि आदमी ही दोनों को एक नहीं मान सकता; भौंरे को नखशिख और नायिका-भेद तो पढ़ाया नहीं गया, वह कैसे मानेगा?

पंडित पाजक कहते हैं—

इंदुं तण्डुलखण्डमण्डलरुचिं नित्योदितं जातु चि–
दर्शे मेघघरट्टघट्टनगलद्देहं विधत्ते विधिः॥
नूनं लोकहितेच्छया किरति यत्संतर्पणं सर्वतः।
शुभ्रादभ्रविशिष्टपिष्टरुचिरं भूमौ तुषारं दिवः॥

'चन्द्रमा गोलाकार चावल की राशि के समान है। वह प्रतिदिन उदय होता है। किसी अमावास्या के दिन ब्रह्मा ने मेघरूपी चक्की में पीसकर उसे चूर-चूर कर दिया। मालूम होता है, लोक-कल्याण की इच्छा से सब को तृप्त करनेवाले उसी चूर्ण को ब्रह्मा आकाश से कुहरे के रूप में गिरा रहा है, जो स्वच्छ आटे के समान है।'

व्याकरण ऐसे नीरस विषय के रचयिता पाणिनि कहते हैं—

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं गर्जन्ति यत्प्रावृषिकाल मेघाः।
अपश्यती वत्समिवेन्दुविम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति॥

'वर्षा का समय है। आधी रात बीत गई है। मेघ गरज रहे हैं। मालूम होता है, बछड़ा-रूपी चन्द्रमा को न देखकर रात-रूपी गाय हुंकार कर रही है।'

पाणिनि के श्लोक में रात को गाय, मेघ-गर्जन को गाय का हुंकार और चन्द्रमा को बछड़ा बनाया गया है, पर इसे श्रवणकर वात्सल्य-रस का उद्दीपन तो नहीं होता।

बछड़े को देखकर गाय का हुंकार करके दौड़ना इतना कोमल, इतना करुण है कि प्रत्येक माता उस दृश्य को देखकर ही नही, उसका वर्णन भी सुनकर प्रेम में मग्न हो जाती है। संस्कृत और हिन्दी-कवियों ने जहाँ कहीं माता और पुत्र का स्नेह दिखलाया है, वहाँ गाय और उसके बछड़े को याद किया है। जैसे—

साहं गौरिव सिंहेन विवत्सा वत्सला कृता।
कैकेय्या पुरुषव्याघ्र बालवत्सेव गौर्बलात्॥

वाल्मीकि

पाणिनि ने कुछ और भी कौतूहल-जनक बाते कहीं हैं—

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः।
धारानिपातैः सह किन्नु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततरं ररास॥

'रात का समय है। अभिसारिका चली जा रही है। बिजली चमकी। उसके प्रकाश में मेघ ने अभिसारिका का मुख देखा। उसको संदेह हुआ कि कहीं धारा के साथ हमने चंद्रमा को तो नही उगल दिया। इससे वह बड़े दुःख से चिल्लाने लगा।'

मेघ मानों कोई चेतन पदार्थ है, उसे मनुष्य की-सी बुद्धि प्राप्त है; चन्द्रमा से उसका कोई विशेष स्नेह जान पडता है। ये बातें तो पाणिनि ही जानते होंगे, पर मेघ के रोने का हाल सुनकर पृथ्वी पर के श्रोता तो अवश्य हँसने लगेंगे। रस का परिपाक न होने से यह श्लोक हास्य-रस उत्पन्न करने लगा है, करना चाहिये करुण-रस।

एक श्लोक और :

क्षपां क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बु सरिताम्।
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम्॥
क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति समालोकनपरा–
स्तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चरन्तीव जलदाः॥

पाणिनि

'जिसने रात छोटी बनाई, जिसने जबरदस्ती नदियों का जल हरण किया, जिसने समस्त भूमि को तपाया, वह गरम किरणों वाला सूर्य इस समय कहाँ गया? यही देखने के लिये हाथ में बिजली का दीपक लेकर मेघ समस्त दिशाओं में घूम रहे हैं।'

इसे पढ़कर मुझे सूरत की एक घटना याद आई। कहा जाता है कि फिरंगी लोग जब पहले-पहल सूरत में आये, तब एक रात को वे लैम्प जलाकर मैदान में सो रहे थे। मच्छरों से तंग आकर उन्होंने लैम्प बुझा दिया। अंधकार हो जाने पर उन्हें कुछ जुगनू चमकते हुये दिखाई पड़े। वे यह कहकर बिछौने छोड़कर भागे कि मच्छर लोग लालटेनें लेकर हमें ढूंढ़ने आ रहे हैं। यह घटना सत्य हो या किसी मसखरे की कल्पना हो, पर ऊपर के श्लोक से मिलती-जुलती अवश्य है। सूरत में मच्छर लालटेन लेकर घूम रहे थे, पाणिनि के दिमाग़ में मेघ बिजली का दीपक लेकर सूर्य को तलाश रहे थे। अवश्य ही मेघों का उद्देश्य अच्छा था। सूर्य ने गर्मी में बड़े-बड़े अत्याचार किये थे और खासकर प्रयाग-वासियों की दृष्टि में सूर्य का अपराध तो क्षमा के योग्य हुई नहीं। पर मेघों के साथ पाणिनि के शायद किसी पाठक की सहानुभूति न होगी; क्योंकि सभी शिक्षित लोग मेघ और सूर्य को अच्छी तरह जानते हैं।

एक और :—

विलोक्य संगमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या नहि नार्या विनेर्ष्यया॥

पाणिनि

'सूर्य का पश्चिम दिशा से अनुराग देखकर पूर्व दिशा ने अपना मुँह काला कर लिया। सच है, ईर्ष्या से रहित स्त्री नहीं होती।'

पूर्व और पश्चिम दिशायें कुछ भी करने के लिये स्वतंत्र नहीं हैं। जो कुछ होता है, वह नियमित है, निश्चित है, अनिवार्य है, सुव्यवस्थित है। इसी तरह क्या समस्त स्त्री-जाति का स्वभाव भी निश्चित है ?

कालिदास से भी प्राचीन भास कहते हैं—

कपोले मार्जारः पय इति करांल्लेढि शशिन—
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्विसमिति करी संकलयति।
रतान्ते तल्पस्थान्हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति॥

'चन्द्रमा की स्वच्छ किरणें कटोरे में पड़ी हैं, बिल्ली उसे दूध समझ कर चाट रही है। वृक्षों के छिद्र में पड़ी किरणों को कमल-तन्तु समझ कर हाथी खींचता है। बिछौने पर पड़ी हुई किरणों को स्त्रियाँ वस्त्र समझती हैं, इसी से उसे रतान्त में खींचती हैं। इस प्रकार प्रभा से मत्त होकर चन्द्रमा समस्त जगत को पागल बना रहा है।'

इसमें स्वाभाविकता की कुछ झलक जरूर है और वर्णन में माधुर्य भी है, पर पागल बनाने की अपेक्षा जगत् पागल बन रहा है, कहना अधिक सार्थक होता।

मङ्खक आँखें ढँककर कुछ कह रहे हैं—

आलि कल्पय पुरः करदीपं
चन्द्रमण्डलमिति प्रथितेन।
नन्वनेन पिहितं मम चक्षु—
र्मङ्क्षु पाण्डुरतमोगुलकेन॥

'हे सखी! हमारे सामने हाथ का दीपक ले आओ। क्योंकि चन्द्र-मण्डल नाम से प्रसिद्ध पीले अंधकार के द्वारा मेरी आँखें ढक गई हैं।'

पद्मनाभ करुणां कुरु भूयो
विग्रहेण परिपूरय राहुम्।
येन तज्जठरकोटरशायी
जात्वयं विधुरयेन्न विधुर्नः ॥

मङ्खक

'हे पद्मनाभ! आप फिर दया कीजिये और राहु का शरीर जोड़ दीजिये। जिससे चन्द्रमा राहु के पेट में चला जाय और फिर हम लोगों को कभी पीड़ा न दे।'

माघ कहते हैं—

अम्बरं विनयतः प्रिय पाणे-
र्योषितश्च करयोः कलहस्य।
वारणमिव विधातुमभीक्ष्णं
कक्ष्यया च वलयैश्च शिशिञ्जे ॥

'प्रियतम का हाथ वस्त्र को खींच रहा है। स्त्री के दोनों हाथ उसे रोक रहे हैं। इस प्रकार इन दोनों में कलह हो रही है। इस कलह को मिटाने के लिये स्त्री की करधनी और कंकण बार-बार बोल रहे हैं।'

यहाँ करधनी और कंकण में मनुष्य-बुद्धि का विकास हुआ है!

राजानक रत्नाकर कहते हैं—

काञ्चीगुणैर्विरचिता जघनेषु लक्ष्मी-
र्लब्धा स्थितिः स्तनतटेषु च रत्नहारैः।
नो भूषिता वयमितीव नितम्बिनीनां
कार्श्यं निरर्गलमधार्यत मध्यभागैः ॥

'करधनी से जघनों की शोभा बढ़ाई गई। रत्नों के हार स्तनों को पहनाया गया। पर मुझे कोई भूषण नहीं मिला, इसी दुःख से स्त्रियों का मध्य भाग दुर्बल हो गया।'

इससे कहीं युक्तिपूर्ण तो आलम और शेख का यह दोहा है—

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।
कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन॥

इसमें कटि को क्षीण करने का काम विधि के हाथों से लिया गया है। ऊपर के श्लोक में तो कटि को अलग-अलग हृदय और मस्तिष्क दे दिये गये हैं।

विकटनितम्बा कहती है—

अय्ययि साहसकारिणि किं तव चङ्क्रमणेन।
टसदिति भङ्गमवाप्स्यसि कुचयुगभारभरेण॥

'अरी साहस करनेवाली! तुम क्यों चक्कर लगा रही हो? कहीं तुम स्तनों के भार से टस से टूट जाओगी तो?'

खैरियत इतनी ही है कि बात परदे में है। कहीं स्तनों को विन्ध्याचल और हिमालय और कटि को कमलनाल या मृणाल-तन्तु कह दिया गया होता, तो खतरा और भी अधिक बढ़ जाता।

हर्षदेव कहते हैं—

विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद् ध्रुवम्।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः॥

'ब्रह्मा इस नायिका का मुख अपूर्व पूर्णचन्द्र के सम्मुख बनाकर बड़ा ही दुःखी हुआ; क्योंकि उसे भय था कि कहीं वह कमल, जिसपर वह बैठा है, बन्द न हो जाय।'

हर्षदेव की एक उक्ति और है—

यदेतच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां प्रकुरुते।
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति तथा॥
अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रांततरुणी-
कटाक्षोल्कापातव्रणकिणकलांकिततनुम्॥

'इस चन्द्रमण्डल के मध्य में जो मेघ-खण्ड के समान मालूम पड़ता है, लोग उसे शशांक बतलाते हैं। पर मैं ऐसा नहीं समझता। मैं तो यह समझता हूँ कि तुम्हारे शत्रु की विरहिणी स्त्रियों ने अपने कटाक्षरूपी अंगारों से चन्द्रमा को खूब जलाया है, उससे उत्पन्न व्रण का यह चिह्न है।'

ठीक है, कटाक्षों से तो फोड़े होते ही हैं।

एक अज्ञात कवि का कथन भी सुनने योग्य है—

प्रसन्न सम्पादितचारुकान्ति—
जितोऽपि कान्तामुखशोभयाऽयम्।
धृष्टः शशांकः पुनरभ्युदेति
लज्जा कुतोऽन्तर्मलिनाशयानाम् ॥

'सुन्दर कान्ति को बढ़ा लेनेवाला, प्रसन्न चंद्रमा कान्ता के मुख की शोभा से हार गया। पर वह ढीठ है। इससे फिर-फिर उदय होता है। जिनका हृदय मलिन होता है, उन्हें लज्जा कहाँ?'

चन्द्रमा बेचारा तो पराधीन है। न अपनी खुशी से आता है, न अपनी खुशी से जाता है। उसे यह पता भी नहीं कि कोई कवि उसे गाली दे रहा है।

एक अज्ञात कवि ने ब्रह्मा की भूल पकड़ी है—

अहो प्रमादो भगवान्प्रजापतिः
कृशातिमध्या घटिता मृगेक्षणा।
यदि प्रमादादनिलेन भज्यते
कथं पुनः शक्ष्यति कर्तुमीदृशम् ॥

'ब्रह्मा बड़े असावधान हैं। उन्होंने उस मृगनयनी नायिका का मध्य भाग बड़ा ही पतला बनाया है। यदि कभी प्रमाद-वश हवा लगने से वह टूट जाय तो वे फिर वैसा कैसे बना सकेंगे?'

हर्ष की बात इतनी ही है कि संस्कृत की ऐसी मृगनयनियाँ अब

कहीं शेष नहीं रह गई। अतएव हम लोगों की यह चिन्ता भी कवि महाशय के साथ गई।

अब ज़रा हिन्दी-कवियों की उड़ान देखिये—

बिहारी कहते हैं :—

सुनत पथिक-मुँह माह निसि, चलति लुवैं उहिं गाम।
बिनु बूझै बिनुही कहै, जियति बिचारी बाम॥

'परदेशी पति ने पथिक के मुँह से सुना कि उस गाँव में माघ महीने की रात में लू चलती है। बिना पूछे ही उसने समझ लिया कि उसकी स्त्री जी रही।'

विरहिणी की आह से माघ में लू चलने लगी थी!

मैं लै दयो लयो सुकर, छुवत छिनकि गौ नीरु।
लाल तिहारौ अरगजा, उर ह्वै लग्यो अबीरु॥

'हे लाल! तुम से अरगजा लेकर मैंने उसे दिया। उसका हाथ लगते ही अरगजे का पानी छनछनाकर जल गया और वह अरगजा अबीर होकर उसके उर पर लगा।'

औंधाई सीसी सु लखि, बिरह बरति बिललात।
बिचहीं सूखि गुलाब गौ, छींटौ छुई न गात॥

'उसको विरह से जलती और तड़पती हुई देखकर मैंने उस पर गुलाब जल की शीशी उँड़ेल दी। पर गुलाब-जल उसके शरीर तक पहुचने ही नहीं पाया। एक छींटा भी नहीं छू गया। बीच ही में सूख गया।'

बिहारी की विरहिणियाँ इस प्रकार आग हो रही थीं। विरह से हृदय में तड़प आ सकती है, न कि सारा शरीर आँवें या पजावे की तरह दहकने लगे। आग दूसरी चीज़ को जलाने के पहले स्वयं जल लेती है। पर बिहारी की विरहिनी स्वयं तो जीवित रहती है, पर जो चीज़ उससे छू जाती है उसे वह जला देती है। इससे अधिक अस्वाभाविकता और क्या होगी?

तोषनिधि कहते हैं :—

गोपिन के अंसुवान के नीर पनारे भये वहि के पुनि नारे।
नारे भये नदिया वहि के नदिया नद ह्वै गये काटि करारे॥
बेगि चलौ तो चलौ उत को कवि तोष कहैं ब्रजराज दुलारे।
वे नद चाहत सिंधु भये अब सिंधु ते ह्वै हैं जलाहल सारे॥

सूरदास ने आँसुओं की नदी में नाव भी चला दी है :—

इन नैनन के नीर सखीरी सेज भई घरनाव।
चाहत हौं ताही पै चढ़िकै हरिजी के ढिग जाँव॥

विचार तो ठीक है। अपनी ही नदी, अपनी ही नौका। जहाँ ठहरना हुआ, रोना बंद किया। आगे बढ़ना हुआ, रो दिया। सेज पर लेट-लेट कर जहाँ जी चाहा, पहुँच गये। पर ऐसा होता कहाँ है?

तोषनिधि फिर कहते हैं :—

कोऊ कहै वार सी सिवार सी कहत कोऊ
कोऊ कञ्जतार सी बतावत निसंक है।
मेरे जान सिरिफ लुनाई की लपेट लागी
ताही की लहक औ लचक होत बंक है।
'तोषनिध' जो पै बे अधार को बहम बाढ़ै
तौ पै परतच्छ को प्रमान कौन टंक है।
जैसे भूमि अंबर के मध्य में न खम्भ कोऊ
तैसे लोल लोचनी के अंक में न लंक है॥

अर्थ स्पष्ट है।

केशवदास एक कदम आगे बढ़कर कहते हैं—

भूत की मिठाई जैसी साधु की झुँठाई जैसी
स्यार की ढिठाई ऐसी छीन छहूँ रितु है।

धीरा कैसो हास केसवदास दासी कैसो सुख
सूर कैसी संक अंक रंक कैसो बितु है।।
सूम कैसो दान महामूढ़ कैसो ज्ञान
गौरी गौरा कैसो मान मेरे जान समुदितु है।
कौने है संवारी बृषभानु की कुमारी यह
तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है।।

देखा! इसको कल्पना कहते हैं। एक भी उपमा ऐसी नहीं, जिसे कोई आँखों से देख सके।

गंग कवि कहते हैं—

बैठी थी सखिन संग पिय को गवन, सुन्यो।
सुख के समूह में वियोग आग भरकी।
गंग कहै त्रिबिध सुगंध लै पवन बह्यो
लागत ही वाके तन भई बिथा जर की।।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहँ
लागत ही औरै गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो
जल जरि गयो पंक सूख्यो भूमि दर की।।

भयानक विरहाग्नि से प्रज्वलित प्यारी को छूकर पवन इतना गरम हो गया था कि मानसर पहुँचने पर भी वह मानसर के जलचर, सेवार, पंक और भूमि को जलाकर राख करने में समर्थ रहा। पता नहीं, प्यारी के घर, गाँव या शहर की क्या दशा हुई? और प्यारी राख हो गई या प्रलयाग्नि की तरह सुलगती ही रहीं?

ऊपर दिये हुये श्लोकों और दोहे-कवित्तों में रस नहीं है, केवल अलंकार है। जिस रचना के सुनने से हृदय में रस की उत्पत्ति न हो, उस रचना को कविता कहना ही क्यों चाहिये? रस स्वाभाविक है, अलंकार

यदि रस का सहायक हो तो स्वाभाविक, नहीं तो अस्वाभाविक है। ऊपर के श्लोकों और हिन्दी-पद्यों के वर्णनों से रस का विरस हो जाता है। विरह के मारे विरहिणी का शरीर अग्नि का पिंड हो रहा है, उसकी साँस से नदी-तालाब सूख जाते हैं, विरहिणी सूखकर ऐसी हो गई है कि मृत्यु उसे चश्मा लगाकर ढूंढ रही है और नहीं पा रही है, इन वर्णनों से क्या सुननेवाले के हृदय में करुणा उत्पन्न होती है? या शृंगार-रस का उद्दीपन होता है? हमारी समझ में तो इनसे कहनेवाले पर हँसी जरूर आती है। किसी स्त्री की कमर इतनी पतली है कि आँखों से दिखाई नहीं पड़ती या कोई साहब अपने माशूक की जुदाई में इतना रोये कि उनके आँसुओं ही से समुन्दर बन गया। या कोई साहब इश्क की मौत मर गये, कब्र में गये, वहाँ उनके इश्क की आग ऐसी भड़की और उन्होंने आह के साथ ऐसा शोला उगला कि उसकी आँच से आसपास की कब्रों के मुरदे उठकर भाग खड़े हुये। ऐसी कल्पनाओं को कौन सच समझेगा? और ऐसे मुसीबतजदों पर कौन तरस खायेगा? कोई भी बात जब मर्यादा को उल्लंघन कर जाती है, तब वह हास्यास्पद हो जाती है। यही दशा कवियों की कल्पना की हुई है। कल्पना के पीछे चलकर कवि लोग स्वाभाविकता की सीमा को डाँक गये हैं।

कवियों ने सहृदय काव्य-रसिकों से समझौता-सा कर रक्खा है कि मैं जब अमुक बात अमुक प्रकार से कहूँ, तब तुम उसे सत्य समझना और प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करना। ऐसा ही होता भी है। कविता में रस हो या न हो, पर उसमें अलंकार होने से काव्य-मर्मज्ञ को उस पर मुग्ध होने के लिये विवश होना पड़ता है। पर यह स्वाभाविकता नहीं है। यह तो अलंकार की जानकारी का या कवियों और काव्य-मर्मज्ञों के उस समझौते का परिणाम है, जिसका नाम अलङ्कार-शास्त्र है।

जिस वक्त अलंकार-शास्त्र की सृष्टि हुई थी, तब यह सोचा गया था कि इससे रस की सिद्धि में सहायता मिलेगी। पर कवियों ने अलङ्कार को ऐसी प्रधानता दे दी कि कविता नीरस हो गई। कविता देवी के शरीर

में गहने तो खूब पहना दिये गये, पर यह नहीं देखा गया कि उसमें प्राण हैं या नहीं ?

कल्पना की इस अतिशयता का सब से बुरा प्रभाव हिन्दुओं के इतिहास पर पड़ा है। किसी ऐतिहासिक पुरुष ने किस अवसर पर क्या कहा था ? अब वह निश्चित नहीं रह गया। बल्कि जितने कवि हो गये हैं और अब भी उस प्रकार के जितने हैं, सब ने अपनी-अपनी पहुँच के अनुसार एक ही इतिहास की रचना अलग-अलग रूपों में की है।

वाल्मीकि ने राम और हनुमान् की पहली भेंट से राम से परिचित होने पर हनुमान् का केवल यह वर्णन लिखा है—

ततः स तु महाप्राज्ञो हनूमान्मारुतात्मजः।
जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ॥

'तदनन्तर महाबुद्धिमान् मारुत के पुत्र हनुमान् राम-लक्ष्मण वीरों को सुग्रीव के पास ले गये।'

तुलसीदास ने इस अवसर पर एक दूसरे से खूब खुशामदें कराई हैं—

हनूमान कहते हैं—

एक मंद मैं मोह वस, कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहिं बिसारेउ, दीनबन्धु भगवान्॥

राम कहते हैं—

सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना।
तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना॥

दोनों में सत्य क्या है ? तुलसीदास जो कह रहे हैं, राम ने वह वाक्य हनुमान् से कहा था या नहीं ? यदि नहीं कहा था तो तुलसी ने या किसी ने, जिससे तुलसी ने लिया है, कल्पना करके लिखा क्यों ? इतिहास तो सत्य चाहता है। भक्ति, प्रेम, श्रद्धा से तो वह बहकाया नहीं जा सकता।

कल्पना की अतिशयता यहाँ तक बढ़ गई है कि अब भी प्रतिदिन

राम और कृष्ण के चरित्रों को लेकर कल्पना पर कल्पना जड़ी जा रही है। जिसके मुँह में जो समा रहा है, वह भक्ति की आड़ लेकर वही कहता जा रहा है। एक दिन ऐसा आयेगा कि बेसिर-पैर की कल्पनाओं के कारण राम और कृष्ण का इतिहास ही मिथ्या माना जाने लगेगा।

कल्पना का जैसा दुरुपयोग हिन्दी-साहित्य में हुआ है, वैसा शायद ही किसी अन्य साहित्य में हुआ हो। प्रतिदिन हम देखते हैं कि राधा और कृष्ण के बहाने हिन्दी के कवि लोग अश्लील और असभ्य शृंगार की सैकड़ों कल्पनायें कर-करके जनता में 'दिमागी ऐयाशी' की वृद्धि कर रहे हैं। फिर भी हम उसे नहीं रोकते।

ग्राम-गीत अस्वाभाविक कल्पना से, अत्युक्तियों से सर्वथा रहित हैं। उनमें जहाँ कहीं शृंगार है, वहाँ पवित्र प्रेम भी है। जहाँ पति-पत्नी का प्रसंग है, वहाँ धर्म की प्रधानता भी है। जहाँ सौन्दर्य है, वहाँ पवित्रता भी है। जहाँ प्रेम है, वहाँ सरलता भी है।

गीतों में इतिहास

गीतों में कभी-कभी इतिहास की बहुत-सी बारीक बातें मिल जाया करती हैं। महाराष्ट्र के पोवाड़े इतिहास की बहुत बड़ी सम्पत्ति समझे जाते हैं। झाँसी के आसपास महारानी लक्ष्मीबाई से सम्बन्ध रखनेवाले बहुत से गीत पाये जाते हैं। एक बार मैंने चमारिनों का एक गीत सुना था, जिसमें औरंगजेब की निन्दा थी, जो उसने अपने बड़े भाई दारा को मरवा डाला था। उस गीत का कुछ अंश मैंने नोट किया था, पर वह काग़ज़ ही कहीं गुम हो गया।

गीतों में बहुत-सी छोटी-छोटी कहानियाँ मिलती हैं, जो बड़ी-बड़ी घटनाओं से सम्बन्ध रखती हैं। एक गीत में बिहार के कुँवरसिंह का ज़िक्र आया है, जो १८५७ के प्रसिद्ध व्यक्तियों में थे।

मेरे जन्म-ग्राम कोइरीपुर (जिला जौनपुर) के पास चाँदा नाम का एक गाँव है, जहाँ १८५७ के बलवे में अंग्रेजों और कालाकाँकर (प्रतापगढ़)

के बिसेन-वंशी राजा से घोर युद्ध हुआ था। अब भी उस गाँव के आसपास के गाँवों में इस युद्ध के गीत गाये जाते हैं। एक कड़ी मैंने भी सुनी थी—

कालेकाँकर क बिसेनवा, चाँदे गाड़े बा निसनवाँ।

इसी प्रकार झाँसी की रानी, कुँवरसिंह और जाटों के गीतों में बहुत-सी ऐतिहासिक घटनाएँ बीजरूप से सुरक्षित हैं।

गीतों में आदर्श गृहस्थी

गीतों में आदर्श गृहस्थी दशरथ की समझी गई है। सास के लिये कौशल्या, ससुर के लिये दशरथ, देवर के लिये लक्ष्मण, बहन के लिये सुभद्रा और नगर के लिये अयोध्या तो निश्चित ही है। कितने ही गीतों में लव-कुश के जन्म पर सीता ने बन के नाऊ के हाथ दशरथ के लिये रोचन भेजा है, दशरथ ने लिया है और नाई को इनाम दिया है। पर रामायण के अनुसार लव-कुश के जन्म के समय दशरथ का देहान्त हो चुका था। ऐसे स्थानों पर दशरथ से अभिप्राय बहू के ससुर से होता है।

कहीं-कहीं राम की कथा में बहन सुभद्रा का भी नाम आता है। वहाँ सुभद्रा से बहन-मात्र का अभिप्राय समझना चाहिये।

प्रायः सब जाति के लोगों ने दशरथ की गृहस्थी को अपना आदर्श माना है। नाम-धाम दशरथ का ले लिया है, पर ठाट-बाट, रहन-सहन अपना ही रक्खा है। जैसे,

अहीर आम तौर से गाते हैं—

राम क बगिया सिता कै फुलवारी।
लछिमन देवरा बइठ रखवारी॥
तोरि तोरि नेबुवा पठावैं ससुरारी।
वहि नेबुवा क बनै तरकारी॥

राम के बाग और सीता की फुलवाड़ी की रखवाली के लिये देवर लक्ष्मण का बैठना तो किसी तरह चल भी सकता है; पर अहीर ने लक्ष्मण को भी

अहीर समझ लिया है और नीबू तोड़कर ससुराल भेजनेवाला काम जो उनके सुपुर्द कर दिया है, वह नहीं चल सकता। अहीर को अपनी ससुराल से बड़ा प्रेम होता है। और वह अपने घरवालों की चोरी-चोरी खाने-पीने की चीजें चुपके से ससुराल भेजता भी रहता है। उसने लक्ष्मण को भी अपने जैसा समझ लिया। गीत के चौथे चरण में तो उसने अपना दूसरा रूप भी प्रकट कर दिया, जिसके लिये वह प्रसिद्ध होता है वह कहता है कि उस नीबू की तरकारी बना करती थी। भोलेपन की हद हो गई।

इसी प्रकार एक पासी के गीत से यह अर्थ निकलता है कि सीता साठ सुअर चराया करती थीं। यह सब दशरथ की गृहस्थी को आदर्श मानकर अपने को तन्मय कर देने का सुन्दर परिणाम है। प्रत्येक जाति का व्यक्ति समझता है कि राम और सीता हमारी ही जाति के थे। यही तो भगवान् का विराट रूप है।

गीतों की दुनिया में परदा नहीं है।

परदा हिन्दुओं की चीज नहीं। परदे का एक नाम यवनिका है। यह नाम ही इस बात का प्रमाण है कि परदा यवनों की चीज है। भय-वश हिन्दुओं ने परदे को अपने घरों में स्थान दिया है। पर गीतों में उसकी चर्चा की कोई आवश्यकता नहीं समझी गई। इससे वे अछूते बचे रहे। गीतों में परदे का जिक्र कहीं नहीं मिलता। बहू अपने ससुर और जेठ से खुल्लमखुल्ला बातें करती हैं। ससुर, जेठ तथा अन्य लोग भी निस्संकोच भाव से बहू से बातें पूछते और कहते हैं।

गीतों में विवाह का आदर्श

विवाह प्राकृतिक नियम नहीं है, बल्कि समाज-स्वीकृत एक प्रथा है। स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण ही प्राकृतिक है। वह आकर्षण ही विवाह का मुख्य आधार है। विवाह के नियम मनुष्यों ने बनाये हैं। प्रकृति उन नियमों के अधीन नहीं है। युवावस्था प्राप्त होने पर स्त्री-पुरुष में जो

स्वाभाविक आकर्षण उत्पन्न होता है, उसे विवाह के नियम रोक नहीं सकते। प्रकृति स्वतंत्र है। वह तो अपना काम करती ही रहती है। धर्म-शास्त्र अनुमोदन करे या न करे, प्रकृति का प्रवाह रुक नहीं सकता।

पूर्वकाल में विवाह की प्रथा प्रकृति के नियमों के अनुकूल थी। विवाह के नियम तो थे, पर स्वाभाविक आकर्षण प्रधान था, विवाह के नियम गौण। वर-कन्या जब एक दूसरे को पसंद कर लेते थे, तभी वे विवाह के बंधन में बँधते थे, गीतों में वर-कन्या की इस स्वतंत्रता का उल्लेख बार-बार मिलता है। गीतों के अनुसार वैवाहिक प्रथा ने अबतक चार पलटे खायें हैं। पहले वर कन्या की खोज में निकलता था। फिर सावित्री और सत्यवान का विवाह कन्या की स्वतंत्रता के अनुसार हुआ था। नल-दमयन्ती का विवाह भी करीब-करीब ऐसा ही स्वतंत्रता से हुआ था। कुछ दिनों के बाद इसमें भी त्रुटियाँ दिखाई पड़ने लगीं। वर-कन्या युवावस्था की उमंग में चुनाव में भूल करने लगे। तब उनके माता-पिताओं ने हस्तक्षेप किया। उन्होंने वर की परीक्षा की प्रथा चलाई। परीक्षा कन्या नहीं लेती थी, उसका पिता लेता था। परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले ही को कन्या वरण कर सकती थी। फिर भी इस प्रथा का नाम स्वयम्वर था। सीता और द्रौपदी का विवाह इसी प्रथा के अनुसार हुआ था। यदि रावण धनुष तोड़ देता तो सीता को उसके साथ जाना पड़ता। और इस प्रथा में कन्यायें लूटी भी जाने लगीं थीं। जैसे, कृष्ण ने रुक्मिणी को, भीष्म ने काशीराज की तीन कन्याओं को और पृथ्वीराज ने संयोगिता को लूट ही तो लिया था। चंदबरदायी के कथनानुसार यह प्रथा पृथ्वीराज के समय तक रही। पर इसमें संयोगिता ने अपने पिता की पूरी अवज्ञा की थी। पिता-पुत्री के विचारों का यह संघर्ष स्वयम्वर की प्रथा पर कुल्हाड़े की तरह पड़ा। इसके बाद पिताओं ने पुत्र और पुत्री की विवाह-सम्बन्धी सब स्वतंत्रताएँ छीन लीं। अब पिता चाहे जैसे वर के साथ कन्या का विवाह कर देता है, कन्या किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती। उसको जबरदस्ती धर्म-शास्त्र के नियमों की पाबंदी करनी पड़ती है।

पूर्वकाल में वर और कन्या का विवाह बड़ी अवस्था में हुआ करता था। सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुक्त सी० वी० वैद्य, M. A., L-L. B. 'महाभारत-मीमांसा' में लिखते हैं—

'द्रौपदी विवाह के समय बड़ी थी। स्वयम्वर के अवसर पर वह निर्भयता से चली आई। कर्ण जब लक्ष्य बेधने को धनुष उठाने लगा, तब उसने करारा उत्तर दिया—'मैं सूत से विवाह न करूँगी'। ब्राह्मण रूपी अर्जुन के साथ वह प्रण जीते जाने पर, आनन्द से चली गई।

व्यासजी ने उसके लिये 'ब्रह्मवादिनी' और 'पंडिता' विशेषणों का प्रयोग किया है।'

अब देखिये, गीतों की दुनिया में विवाह का क्या नियम है?

यद्यपि विवाह की प्रथा बहुत विकृत हो गई है, पर गीतों में वही पुराना आदर्श ही कायम है। गीतों की दुनिया में वर-कन्या अपनी-अपनी पसंद से चुनाव करते हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

वर कन्या की तलाश में निकला है—

कौन की ऊँची अँटरिया सुरुज मुख छाई।
किन घर कन्या कुमारी त दुलहीं चाहिए॥

वर को जब पता चला कि अमुक घर में एक कन्या विवाह के योग्य हुई है, तब वह उस घर के आँगन में जा बैठा और कहने लगा—

तुम घर कन्या कुमारी त हमका बियाहि देव।

कन्या को भी यह वर पसन्द आया। इससे जब कन्या का छोटा भाई यह कहता हुआ—

मारौं मैं पूत तपसिया बहिन मोरी माँगै।

तलवार लेकर मारने दौड़ा, तब—

भीतर से निकसीं लाड़ली मोतियन माँग भरे।
जिन मारौ पूत तपसिया जनम मेरो को खेइहैं॥

कन्या की अवस्था इतनी हो चुकी थी कि वह जन्म खेनेवालेकी आवश्यकता समझने लगी थी।

एक गीत में कन्या कहती है—

बाबा जे चलेन मोर वर हेरन पाट पितम्बर डारि।
छोट देखि बाबा करबै न करिहैं बड़ा नाहीं नजरि समाय ॥
अरे अरे बावा सुघर वर हेरेउ हम बेटी तोहरी दुलारि।
तीन लोक माँ हम बड़ि सुन्दरि हँसी न करायउ मोरि ॥

वही कन्या अंत में कहती है—

आसन देखि बाबा डासन दीहौ मुख देखि दीहौ बीरा पान।
अपनी सम्पति देखि दाइज दीहौ बर देखि दीहौ कन्यादान ॥

ये बातें छोटी उम्रवाली कन्या की नहीं हो सकती।

एक गीत में कन्या एक तालाब में नहा रही है। पास ही एक युवक धोती धो रहा है। कन्या ने उसका परिचय पूछा। युवक ने जो उत्तर दिया, उससे कन्या यह जानकर बड़ी ही प्रसन्न हुई कि यही तो वह वर है, जिससे उसका विवाह होनेवाला है। वह दौड़कर अपनी माँ के पास जाती है और कहती है—

जे बर मोरी माया नगरा ढुँढ़ाये से बर सगरे नहायँ।

यही बात वह अपनी भावज से भी कहती है। सोचने की बात है कि अबोध बालिका ऐसी बातें नहीं कह सकती हैं। ये बातें उन दिनों की है, जब विवाह कोई लज्जा की बात नहीं समझा जाता था।

एक गीत और लीजिये—

नीलें नीले घोड़वा छैल असवरवा कुरखेते हनइ निसान।
खिरकी उघेरि के अम्मा जो देखइँ धिया दस आउरि होइ ॥

वर नीले घोड़े पर असवार है, छैला है, ऐसा वीर है जो कुरुक्षेत्र में विजय का झंडा गाड़ सकता है। उसे देखकर कन्या की माँ का हृदय आनन्द

से उमड़ आता है। वह कहती है—दस कन्यायें और हों तो अच्छा। कैसा स्वाभाविक वर्णन है! अवश्य ही यह वर बालक नहीं रहा होगा।

एक गीत में कन्या का पिता एक मालिन से कह रहा है—

दमदा जे चाहिल सब कर नायक सभा बिच पंडित होय।

एक गीत में वर की आयु अधिक स्पष्ट हो गई है—

आँखि तोरी देखूँ ये दुलहा अमवा की फँकिया रे
भौंह तोरी चढ़ली कमान रे
यतनी सुरति तुहूँ पायो दुलरुआ केहि गुन रह्यो कुँआर रे ॥१॥
बाबा मोरे गयनि कमरू के देसवा रे पितिया गयनि
मेवाड़ रे।
जेठ भैया गयनि जीरा की लदनिया यहि गुन
रह्यों कुँआर रे ॥२॥
दखिन के देसवा से लिखि पढ़ि आयउँ चिठिया
लिख्यों समुझाय रे।
आवहु बाबा रे आवहु काका आवहु सग जेठ भाइ रे ॥३॥
बाबा मोरे लेइ आये मोहरा पचास रे पितिया लेइ
आये हाथी घोड़ रे।
जेठ भैया लायनि झारि पितम्बर अब मोरा रचा है बिआह रे ॥४॥

'हे दूल्हा! आँखें तो तुम्हारी आम की फाँकों की तरह हैं, और भौंहें चढ़ी हुई कमान की तरह। हे प्यारे! तुमने इतनी सुन्दरता पाई है, पर तुम क्वाँरे क्यों रह गये? ॥१॥

वर कहता है—मेरे बाबा कामरूप देश को गये थे। मेरे चाचा मेवाड गये थे। जेठे भाई जीरा लादने गये थे। इस कारण से मैं क्वाँरा रह गया। ॥२॥

मैं दक्षिण देश से पढ़-लिखकर लौटा, तब मैंने सब को चिट्ठियाँ लिखीं कि बाबा आओ, काका आओ, जेठे सगे भाई आओ ॥३॥

मेरे बाबा पचास मोहर लेकर आये। काका हाथी-घोड़ा ले आये। और जेठे भाई पीताम्बर ही पीताम्बर ले आये। अब मेरा विवाह हो रहा है ॥४॥

यह विवाह बड़ी उम्र में तो हुआ ही था, साथ ही शिक्षा समाप्त कर लेने पर हुआ था। आश्चर्य है कि ऐसे गीत गा-गाकर भी लोग नन्हें-नन्हें बच्चों का विवाह कर देते हैं।

यह तो युक्तप्रान्त और बिहार के गीतों की साक्षी हुई। अब ज़रा देखिये, अन्य प्रांत के गीत क्या कहते हैं?

जैसे युक्तप्रांत के गीतों में कन्या अपने पिता को वर ढूंढ़ने भेजती है और यह बतला देती है कि उसे कैसा वर चाहिये, वैसा ही वर्णन पंजाबी गीतों में भी है—

बेटी, चन्नण दे ओहले लाड़ो क्यूँ खड़ी ?
मैं ताँ खड़ी सी बाबल जी दे बार, कन्या
कुँआर, बाबल बर लोड़िये ।
नी जाइये, के हो जिहा वर लोड़िये ?
तारेआँ बिच्चों चंद चंदाँ बिच्चों कान्ह,
कन्हैया बर लोड़िये ।

(पंजाबी)

'चन्दन वृक्ष की ओट में प्यारी बेटी क्यों खड़ी है?"

हे पिता! मैं इसलिये खड़ी हूँ कि मुझ कुमारी के लिये वर चाहिये।

बेटी! तुम्हें कैसा वर चाहिये ?

मुझे ऐसा वर चाहिये जो तारों में चन्द्रमा के समान और पुरुषों में श्रीकृष्ण के समान हो।'

एह बेटी बहुत अधीनी मेरे बाबल टोले वरो ।
एह वर टोले ल्याँदा मेरी बेटी वर साँवलड़ा ॥

(पंजाबी)

'बेटी बहुत नम्रता पूर्वक कहती है—हे पिताजी ! मेरे लिये वर ढूंढ़िये।
पुत्री ! मैं तेरे लिये सुन्दर वर ढूंढ़ लाया हूँ।'

चंगा वे बाबल घर वर टोल अच्छा जिहा नगर सुहावना
हरे राम राम ।

(पंजाबी)

'हे पिता ! मेरे लिये अच्छा घर, अच्छा वर और अच्छा-सा सुहावना नगर ढूंढ़िये।'

मारवाड़ का एक बहुत ही प्रचलित गीत है :—

काचा दाख हेट बनड़ी पान चाबे, फूल सूंघे,
करे ये बाबा जी सूं बीनती।
बाबा जी देस देता परदेस दीजो म्हारी जोड़ी को वर हेरजो।
हँस खेल ये बाबा जी री प्यारी बनड़ी हेर्‌यो ये फूल गुलाब को।।
कालो मत हेरो बाबाजी कुल ने लजावे ।
गोरो मत हेरो बाबाजी अंग पसीजे ।
लाँबो मत हेरो बाबाजी साँगर चूंटे ।
ओछो मत हेरो बाबाजी बावन्यू बतावे ।
ऐसो वर हेरो कासी को बासी ।
बाई के मन भासी हस्ती चढ़ आसी ।

'कच्चे अंगूर के पेड़ के नीचे बनड़ी (व्याही जानेवाली कन्या) खड़ी पान खा रही है और फूल सूंघ रही है। वह अपने बाबाजी से प्रार्थना करती है—

हे बाबा ! मेरा विवाह अपने गाँव के आसपास करने के बजाय चाहे परदेश में करना, पर मेरी जोड़ी का वर ढूंढ़ना।

बाबाजी ने कहा—हे बाई ! तू हँस-खेल। मैंने तेरे लिये ऐसा अच्छा वर ढूंढ़ा है, जैसे गुलाब का फूल।

कन्या फिर कहती है—हे बाबा ! काला वर मत ढूंढ़ना, वह कुटुम्ब को लज्जित करेगा। गोरा मत ढूंढ़ना, वह ज़रा-सी मिहनत करेगा तो उसे पसीना आ जायगा। लम्बा न ढूंढ़ना, वह केवल साँगर (मारवाड़ के एक ऊँचे पेड़ की फली) तोड़ने के काम का है। छोटा मत ढूंढ़ना, वह बौना कहा जायगा। ऐसा वर ढूंढ़ना जो काशी में वास कर चुका हो अर्थात् शिक्षित हो। वह तुम्हारी बाई को पसंद आयेगा। वह हाथी पर चढ़कर आयेगा।'

देखिये, कैसा मार्मिक गीत है। यह गीत उस समय का है, जब यह माना जाता था कि कन्याओं के मुँह में भी जीभ होती है। आजकल मारवाड़ में ऐसी बात कोई कन्या मुँह से निकाले, तो समझा जायगा कि उसे पश्चिम की हवा लग गई है।

गुजरात की कन्या भी अपनी रुचि के अनुकूल वर चुनने की अधिकारिणी है। वह अपने दादाजी से कहती है—

दीकरी दादाजी ने विनवे । रढ़ियालाँ रे मोती ॥
उँचो ते वर ना खोलशो । उँचो ते ऊँटड़ो कहेवाशे ।
दीकरी दादाजी ने विनवे । रढियालाँ रे मोती ॥
नीचो ते वर ना खोलशो । नीचो ते गटीओ कहेवाशे ॥
दीकरी दादाजी ने विनवे । रढियाला रे मोती ॥
जाड़ो ते वर ना खोलशो । जाड़ो ते भोंदू कहेवाशे ॥

'कन्या दादाजी से प्रार्थना करती है—हे दादाजी ! मेरे लिये ऊँचा वर न खोजना, उसे लोग ऊँट कहेंगे। मेरे लिये नीचा वर भी न खोजना, वह ठिंगना कहलायगा। मेरे लिये मोटा वर भी न खोजना, उसे लोग भोंदू (मूर्ख) कहेंगे।'

छोटी उम्रवाली कन्या इस प्रकार वर की समालोचना नहीं कर सकती।

इतने अनुनय-विनय के उपरांत भी जब बेमेल विवाह होने लगे—कोई कन्या बालक के साथ व्याह दी गई, और कोई बूढ़े के साथ—तब

फिर स्त्रियों की सरस्वती ने प्रतिवाद किया। भारत के प्रत्येक प्रांत में बेमेल विवाह के विरुद्ध गीत गाये जाते हैं। सुनिये—

नाहक गौन दिहे मोर बाबा बालक कंत हमार रे।
चीलर अस दुइ देवर हमरे बलमा मुसे अनुहार रे। १ ॥
तेलवा लगायउँ बुकउवा लगायऊँ खटिया प दिहेउँ ओलार रे।
नेपे नेपे आइ बिलरिया सवतिया लइ गइ बलमा हमार रे॥ २ ॥
सास मोरी रोवइँ ननद मोरी रोवइ रोवइ हमारि बलाइ रे।
कोठवा में ढूँढेउँ अटरिया में ढूँढ़ेउँ खटिया तरे रिरिआइँ रे॥ ३ ॥

'हा! मेरे बाबा ने मेरा गौना नाहक ही किया। मेरा पति तो अभी बिल्कुल बालक है। मेरे दो देवर हैं, जो चीलर (कपड़े की सफ़ेद जूँ) जैसे हैं, और पति चूहे जैसा है॥१॥

एक दिन मैंने पति को उबटन लगाया, तेल लगाया और फिर खाट पर सुला दिया। बिल्ली मौत की तरह चुपके-चुपके आई और मेरे पति को उठा ले गई॥२॥

मेरी सास रो रही है, मेरी ननद रो रही है, मैं क्यों रोऊँ? मेरी बला रोवे! अंत में मैंने भी कोठे पर ढूंढा, अटा पर खोजा तो देखा कि पति तो खाट के नीचे पड़ा रिरिआ रहा है॥३॥'

पति का इससे वीभत्स चित्र कोई क्या खींचेगा? जिस समाज में पति देवता के समान पूज्य माना गया है, उसमें पति का ऐसा मज़ाक हँसने का विषय नहीं, पिताओं के विचार करने का विषय है। ऐसे बेमेल विवाहों में धर्मशास्त्र कहाँ तक धर्म की रक्षा कर सकेगा?

गीतों में वृद्ध-विवाह का भी मजाक उड़ाया गया है—

दसइ बरिसवा क मोरि रँगरैली असिया बरिस क दमाद।
निकरि न आवै तू मोरि रँगरैली अजगर ठाढ़ दुआर॥

इसमें वृद्ध दूल्हे को अजगर बताना बहुत सरस और अर्थपूर्ण है। जैसे अजगर चल-फिर नहीं सकता, वैसे वृद्ध भी। जैसे अजगर अपने

शिकार को निगल जाता है, वैसे वृद्ध पति भी बेचारी अबोध कन्या के जीवन के सुख को निगल जाता है ।

राजपूताने में भीलों की प्रसिद्ध जाति है । ये वे ही भील हैं, जिनका सम्बन्ध महाराणा प्रताप के इतिहास से है । यद्यपि भीलों में बाल-विवाह या वृद्ध-विवाह की प्रथा नहीं है, पर कभी-कभी घटना-वश बेमेल विवाह भी हो जाते हैं। उनको लेकर गीतों में काफ़ी मज़ाक उड़ाया गया है। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के सम्बन्ध के भील-स्त्रियों के दो गीत यहाँ दिये जाते हैं—

बार बरनी कन्याडी ने अडी बर नो बोर रे ।
पाणी भरना जाऊँ तारे बाँहे बाँहे आवे रे ।
बाँहे बाँहें आवे तारे कुँवाँ माँ हड़सेल्यूँ रे ।
कुँवा माँ हड़सेल्यूँ तारे डाबक डूबक करे रे ।
डाबक डूबक करे तारे अइयड़ला माँ दाज्यूँ रे ।
अइयड़ला माँ दाज्यूँ तारे माँणे लम्बावी रे ।
माँणे लम्बावी तारे काँने बलगायूँ रे ।
बार बरनी कन्याड़ी ने अड़ी बर नो बोर रे।
वाहिदाँ रोलूँ तारे बाँहें बाँहें आवे रे ।
बाँहें बाँहें आवे तारे ऊकोड़ा माँ दाब्यूँ रे ।
ऊकोड़ा माँ दाब्यूँ तारे फुदक फुदक करे रे ।
अइयड़ला माँ दाज्यूँ तारे टोपलूँ लंबायु रे ।
टोपलूँ लँबायूँ तारे काँने वलगायुँ रे ।
बार बरनी कन्याड़ी ने अड़ी बर नो बोर रे ।
रोटलो करँ तारे सूला कने आवे रे ।
सूला कने आवे तारे ऊँबाडूँ धमकायुँ रे ।
ऊँबाडूँ धमकायु तारे भदड़ भदड़ नाठूँ रे ।
भदड़ भदड़ नाठूँ तारे टोडले जइने ऊबूँरे ।

टोडले जइने ऊँबूं तारे मस्का मिस्की करे रे।
अइड़यला माँ दाज्यूं तारे पेली रोटी आली रे।
पेली रोटी आली तारे सेली रोटी माँगी रे।
सेली रोटी आली तारे हैका हामण जोवे रे।
हैका हामण जोवे तारे हैका वालुं आव्युं रे।
वार बरनी कन्याड़ी ने अड़ी वर नो बोर रे।

'बारह वर्ष की कन्या का अढ़ाई वर्ष का वर है। कन्या कहती है—मैं जब पानी भरने जाती हूँ, तब यह साथ-साथ जाता है। जब साथ-साथ जाता है और उठकर चलने के लिये तंग करता है, तब मैंने जरा सा धक्का दिया। वह कुँएँ में जा पड़ा। कुँएँ में जा पड़ा, तो, 'डाबक-डूबक' करने लगा। उसकी यह दशा देखकर मेरे हृदय में बड़ी जलन पैदा हुई। खैर; मैंने मटकी उसके पास तक लम्बी कर दी। उसने उसकी गर्दन पकड़ ली। मैंने उसे ऊपर खींच लिया। हाय! बारह वर्ष की कन्या का ढाई वर्ष का वर है। जब मैं गोबर साफ़ करने चली, तब वह भी पीछे पीछे चला। मैंने उसे घूर में दबा दिया। घूर में दबने से वह 'फुदक-फुदक' करने लगा। तब मेरे हृदय में दुःख पैदा हुआ। मैंने टोपला (?) लम्बा किया। तब वह उसे पकड़कर फिर मेरे साथ चला।

मैं रसोई बनाने लगी। वह चूल्हे के पास आकर बैठ गया। उसे हटाने के लिये मैंने जलता हुआ चैला फेंका। चैले से डरकर वह 'धबड़-धबड़' करता हुआ भाग गया, और दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया। वहाँ खड़े-खड़े वह मिस्का-मिस्की करने लगा। उसे सिसकते देखकर मेरे हृदय में फिर व्यथा पैदा हुई। तब मैंने उसे पहली रोटी दी। जब तक मैं रसोई बनाती रही, तब तक वह पहली ही रोटी खाता रहा। अंत में उसने अखीरवाली रोटी माँगी। जब मैंने आखिरी रोटी भी दे दी तब वह बहुत दीन भाव से छीके की ओर देखने लगा। छीके की ओर देखते देखकर मैं उसका मतलब समझ गई। मैंने उसे छीके से उतारकर घी दिया। हा! बारह वर्ष की कन्या के ढाई वर्ष के पति की यह हालत है।'

वृद्ध-विवाह के विरुद्ध भी भील-स्त्रियों ने आवाज़ उठाई है—

माँ, मने डोहा ने परणावी रे।
डोहा ने गोंदड़ी नो घणो भाव रे।
ले रे डोहा सुंथा पुंथा—ले रे डोहा सुंथा पुंथा।
माँ, मने डोहा ने परणावी रे।
डोहा ने अमल नो घणो भाव रे।
ले रे डोहा गटागट—ले रे डोहा गटागट।
माँ, मने डोहा ने परणावी रे।
डोहा ने धाणी नो घणो भाव रे।
ले रे डोहा करुड़ करुड़—ले रे डोहा करुड़ करुड़।
माँ, मने डोहा ने परणावी रे॥

'हा! माँ ने मुझे बुड्ढे से ब्याह दिया! बुड्ढे को चटाई का बड़ा शौक है। ले रे बुड्ढे, सड़ी-गली चटाई ले। बुड्ढे को अमल का बड़ा शौक है। ले रे बुड्ढे, गटागट पी जा। बुड्ढे को धाणी (भुने हुये चने) का बड़ा शौक है। ले रे बुड्ढे, कुरुड़-कुरुड़ कर। हा! माँ ने मुझे बुड्ढे से ब्याह दिया!'

दोनों गीतों में भील-कन्या की अपार हृदय-वेदना छिपी हुई है।

मलाबार की तुल्लू जाति का एक गीत है—

ले ले ले ले ला, किन्नी मदिमाये।
ले ले ले ले ला, ,, ,,
तानुनचेल्य बालेना, ,, ,,
तानुनचेल्य बालेना, ,, ,,
नेत्तेरदा पुतियना, ,, ,,
नीरद बेलेत्तना, ,, ,,
बाले पोबल मन्ना, ,, ,,

उछला फोउन्देन, किन्नी मदिमाये
बुछिटा कल्टोन्डेना, ,, ,,
उल्लय बेलेगा फोउन्देना, किन्नी मदिमायगे ।
जातिपोलिकेना, किन्नी मदिमायगे ।
ले ले ले ले ला, किन्नी मदिमायगे ।
गछा मेसे बट्टोन्दयां, किन्नी मदिमायगा ।
पोन्नू सिन्टे पुट्टुन्डूया, किन्नी मदिमायगा ।
पोन्नू टूवरे फोउन्देना, किन्नी मदिमाये ।
पोन्नू मल्ला टूउन्देना,
जातिपोलिकेना किन्नी मदिमायगा ।
लन्दबन्द मल्टोन्देना, किन्नी मदिमाये ।
जातिनीति मल्पोन्देना, किन्नी मदिमायगे ।
ले ले ले ले ला, किन्नी मदिमाये ।
तूरीकोरेन्देना , किन्नी मदिमायगे ।
जातिनीति मल्टोन्देना, किन्नी मदिमायगे ।
ले ले ले ले ला, किन्नी मदिमाये ।
ले ले ले ले ला, किन्नी मदिमाये ।

ले ले ले ले ला (अहा) कैसा नवयुवक वर!
ले ले ले ले ला (अहा) कैसा नवयुवक वर!

'यह युवा वर कैसा सुन्दर नन्हा-सा बच्चा था। यह जन्म ही से हृष्ट-पुष्ट था। ज्यों-ज्यों यह बढ़ता गया, इसका शरीर और पुष्ट होता गया। पर एक दिन यह निरा बच्चा था। यह वर अब जवान हो गया है, इसीसे इसका शरीर लम्बा हो गया है और शरीर के साथ ही साथ इसमें चतुराई भी बढ़ गई है। यह जवान वर अपने जमींदार का काम करने गया है। इसको इसके जातिवालों ने कुछ भेंट दी है। अब इसके मूछ और दाढ़ी

निकल आई है। इसका चित्त किसी रमणी के अनुराग में फँस गया है। उसी का साक्षात् करने के लिये यह गया है। इसने एक सुन्दर जोड़ा खोज लिया है। इसकी जातिवालों ने यही उपहार इसके लिये युक्त समझा। यह सदा अपनी जाति की भलाई में लगा रहता है। ले ले ले ले ला (अहा) कैसा युवक वर! इस युवक वर को ताड़ी का बर्तन दो। इसे जाति-सेवा के बदले ताड़ी का बर्तन दो।

ले ले ले ले ला (अहा) कैसा युवक वर!
ले ले ले ले ला (अहा) कैसा युवक वर!'

अन्य देशों के ग्राम-गीतों में भी विवाह के सम्बन्ध में कन्या की स्वतंत्रता का प्रमाण मिलता है।

फ्रांस का एक बहुत प्राचीन ग्राम-गीत है—
Mon per' me dit tonjours,
Marie toi, ma fille! r
Non, non, mon, Pere,
Je ne veux plus aimer,
Car mon amant est a l'armee.

Elle s'est habillaec,
En brave militaire,
Ell'fit conper, friser ses blonds cheveux.
A la facon d'son amaureux.

Elle S'on ut loger,
Daus une hotellerie;
Bonjour, hotess', pourriez-vous me loger?
J'ai er l'argent pour vous payer.

Entrez, entrez, monsieur,
Nous en logeons bien d'autres,
Montez en haut : en voici I'escalier;
L'ou va vous servir a diner.

'पिता नित्य मुझसे कहते हैं कि बेटी ! ब्याह कर ले। नहीं, नहीं, पिता ! मैं दूसरे से प्रेम नहीं कर सकती। क्योंकि मेरे हृदय का देवता सेना में है।

'बालिका ने पुरुषोचित वीर-वेष बनाया। प्रेमी की भाँति अपने सुन्दर, मुलायम, घुंघराले बाल कटवा लिये। इसके बाद उसने सेना की ओर यात्रा की। वह एक होटल में पहुँची। मालकिन से उसने पूछा—'क्या तुम मुझे एक कमरा दे सकती हो ? मैं किराया दूना दूंगा।' मालकिन ने कहा—'आइये महाशय ! यहाँ और भी बहुत से लोग ठहरे हैं। यह सीढ़ी है, इससे ऊपर चले जाइये। वहीं आपका भोजन भी पहुँचा दिया जायगा।'

'अपने कमरे में पहुँचकर बालिका गाने लगी। संयोगवश उसका प्रेमी भी उसी होटल में पासवाले कमरे में ठहरा हुआ था। उसने बोली पहचानकर मालकिन से पूछा—'यह कौन गा रहा है ?' मालकिन ने कहा—'एक सैनिक।' प्रेमी ने सैनिक-वेशधारी अपनी प्रियतमा को भोजनार्थ निमन्त्रित किया। बालिका ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

Onand it la vit venir,
Met du vin daus son verre;
Ata sante'. I'object de mes amours !
Ata sante, c'est pour tonjours !

N' auriez-vous pas, monsieur,
Un chambre secrete,

Et un beau lit soit convert de fleurs,
Pour raconter tous nos malheurs ?

N' auriez-vous pas, monsieur
Une plume et de I'encre ?
Oni, j'ecrirai a mes premiers parents
One j'ai retron ve mon amant.

'जब उस प्रेमी ने उस सैनिक वेशधारी बालिका को आते देखा, तब उसने ग्लास में शराब उंड़ेली और 'प्रियतमे ! तुम्हारे स्वास्थ्य के लिये" कहकर वह उसे पी गया।

'सैनिक-वेशधारी बालिका ने पूछा—महाशय ! क्या यहाँ कोई प्राइवेट कमरा और फूलों से भरी हुई सुन्दर शैया नहीं है ? जहाँ एकान्त में बैठकर हम लोग अपने दुर्भाग्य की गाथा एक दूसरे को सुना सकें ? फिर रुककर उसने पूछा—क्या आप के पास कलम दावात नहीं है ? मैं अपने अभिभावकों को लिखूँगी कि मेरा प्रियतम मुझे मिल गया।'

इसके बाद बालिका पुरुष-वेश ही में रही और अपने प्रेमी की रेजिमेंट में भरती हो गई। सात वर्ष की गुप्त सैनिक सेवा के बाद उसे वह वस्तु मिल गई, जिसे पाने की आकांक्षा ने उसे इस दुर्गम पथ पर प्रवृत्त किया था—

Une fille de dix-huit ans
Ouda servi sept ans
Surement a gagne
Le conge de son bien-airne.

'अठारह वर्ष की बालिका को सात वर्ष की सैनिक सेवा के बाद सफलता मिली। उसने अपने प्रियतम की छुट्टी सदा के लिये मंजूर करा ली।*

इस गीत की बालिका का प्रेम साधारण नहीं है। उसकी तुलना

*'सुधा' में प्रकाशित श्रीयुत अवधेशपति वर्मा के एक लेख से।

सावित्री के प्रेम से की जा सकती है। प्रेम और पवित्रता किसी खास देश या जाति की सम्पत्ति नहीं। फ्रांस में भी सावित्री जैसी कन्यायें जन्म ले सकती हैं और लिये होंगी। समय यद्यपि बदल गया, पर ग्राम-गीतों में विवाह का प्राचीन आदर्श अभी तक सुरक्षित है।

यूनान देश के एक प्राचीन ग्राम-गीत का अंग्रेजी-पद्यानुवाद एक अंग्रेज ने इस प्रकार किया है—

'Take him, my dughter,
for he wears a hat,
'I a frank husband won't
marry for that'
'Take him, my daughter,
his plenty of cash,
'I won't have a husband
without a moustache !'
(Greek folk-verse)

'पिता कहता है—हे बेटी ! इस व्यक्ति से व्याह कर लो। देखो, यह हैट पहनता है। बेटी कहती है—मुझे एक स्वतंत्र विचारोंवाला पति चाहिये। हैट के लिये मैं इससे व्याह नहीं कर सकती।

पिता कहता है—हे बेटी ! इससे व्याह कर लो। इसके पास बड़ा धन है। बेटी ने कहा—मूछवाले के सिवा मैं और किसी को अपना पति नहीं बना सकती।'

तात्पर्य यह कि कन्या युवा वर चाहती है, जिसकी रेख उठ रही हो। न वह हैटवाले को पसंद करती है, न धनवाले को।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि गीतों में कन्याओं ने पति के सम्बन्ध में अपने मन की भावना स्पष्ट व्यक्त कर दी है। आश्चर्य है कि लोग रात-दिन इन्हें सुनते रहते हैं, फिर भी इनकी उपेक्षा करते

है और अपने पुत्र या पुत्री को अपना जीवन-सगी चुनने का प्राकृतिक अधिकार नही देते।

भवभूति के शब्दो मे—

प्रेयो मित्र बन्धुता वा समग्रा
सर्वे कामा शेवधिर्जीवितञ्च ।
स्त्रीणा भर्त्ता धर्मदाराश्च पुसा
इत्यन्योऽन्य वत्सयोर्ज्ञातिमस्तु।

भवभूति—मालती माधव

'हे वत्सद्वय ! तुम्हे याद रखना चाहिये कि स्त्री का पति और पति का स्त्री प्रियतम मित्र है। मित्रता, आशा, कामना और जीवन भी दोनो का एक है।'

हम कह सकते है कि पति-पत्नी की मित्रता, आशा, कामना और जीवन की एकता मे माता-पिता को उतना ही हस्तक्षेप करना चाहिये, जितने मे वह और दढ हो।

बहू के साथ व्यवहार

प्रत्येक सास यद्यपि कभी बहू हो चुकी होती है और प्रत्येक ननद को बहू होना होता है, फिर भी बहू के प्रति इन दोनों का व्यवहार अच्छा नही पाया जाता। यदि एक ही घर मे देवरानी-जेठानी भी हुई तो उनमें जो सीधे स्वभाव की होती है, उसे ही घर के सब काम करने पडते है। देहात मे ऐसे प्रमाण प्रत्येक गाँव मे मिल सकते है, जहाँ सास बहू को गालियाँ ही नहीं देती, बल्कि मारती-पीटती भी है और कही-कही तो दयाहीन सास चिमटा या कलछी आग मे लाल कर के बहू को दाग भी देती है। यह कैसी कठोरता है ! बहू बेचारी कुछ बोल नही सकती। बोले किससे ? पति तो सास का बेटा ही ठहरा। वह सुन लेगा, पर करेगा क्या ? हिन्दू-समाज मे बेटा यदि कर्कशा माँ को छोडकर बहू का पक्ष ले, तो वह कपूत कहा जायगा। ससुर सास का पति ही ठहरा। जो

सास बहू को लोहा लाल कर के जला सकती है, वह अपने पति का मुँह भी तो नोच सकती है। जिन घरों में कर्कशा सास होती हैं, उनमें बहुवें नरक-यंत्रणा भोगा करती हैं।

गीतों में सासों के कारनामों के बड़े-बड़े वर्णन आते हैं—

एक बहू का भाई उसे देखने आया है। वहू ने सास से पूछा—

सासू काउ रे बनाई जेंवनरवा रे ना।

सास ने कहा—

कोठिलहि बहुवरि सरली कोदइया रे ना।
बहुवरि मेंड़वा मसउढ़े क सगवा रे ना॥

'कोठिले में सड़ा हुआ कोदो (एक प्रकार का निकृष्ट चावल) है और मेड़ पर मसौढ़े (एक प्रकार की घास) का साग है।'

सोचने की बात है कि बहू के भाई का सास कैसा आतिथ्य करती है!

बहू ने अपने भाई से घर के ज्यादा काम की शिकायत भी की है—

कै मन कूटौं भैया कै मन पीसौं रे ना।
भैया कै मन सिझवउँ रसोइयाँ रे ना॥
सासू खाँची भरि बसना मँजावैं रे ना।
सासू पनिया पताल से भरावैं रे ना॥

एक गीत में भाई बहू से मिलने आया है। बहू के पूछने पर कि उसके भाई के लिये कैसा खाना, पीना और रहने का स्थान दिया जाय, सास कहती है—

भोजना देउ बहू अकड़ी कोदैया औ मुनमुनिया क दालि रे।
घुँटने क देउ बहुआ फुटही मेटियवा औरौ गड़हिया कै पानी रे
कुँचने क देउ बहुवा पिपरे क पतिया औरौ चिरैया क लेंड़ रे।
सोवने क देउ बहुवा टुटला झिलिंगवा औ चुवनी चौपारि रे।

इसी गीत में बहू ने भाई के सामने कुटुम्बियों का जो चित्र खींचा है, वह मनन करने योग्य है—

बहू कहती है :—

सासु तो ए भैया बुढ़िया डोकरिया आजु मरै की काल्हि रे ।
ननदी तो ए भैया वन की कोइलिया आजु उड़ै की तो काल्हि रे ।
जेठानी तो ये भैया कारी बदरिया छिन बरसै छिन घाम रे ।
देवरानी तो ये भैया कोने कै बिलरिया छिन निकरै छिन पैठैरे ।

इसी गीत में बहू अपने अन्य दुःखों का भी वर्णन करती है—

पीठ देखौ भैया तो पीठ देखौ जैसे है धोबिया क पाट रे ।
कपड़ा देखो भैया कपड़ा देखौ जैसे सवनवा कै बादरी रे ॥

कैसी यथार्थ उपमायें हैं ! बहू की पीठ मार खाते-खाते धोबी के पाटे की तरह हो गई है । उसके कपड़े ऐसे मैले हैं, जैसे सावन की घटा। सावन की घटा का ऐसा उपयोग शायद ही किसी महाकवि ने किया हो।

बहू ने अपने दुःखों का वर्णन करके अंत में भाई से कहा है—मेरा दुःख और किसी से न कहना।

ई दुख बाँधौ भइया अपनी गठरिया
जहवाँ खोलेउ तहवाँ रोयउ रे ।

'हे भाई ! मेरे दुःखों को अपनी गठरी में बाँध लो। जहाँ इसे खोलना' वहाँ रोना ।'

इस एक वाक्य में बहू के हृदय की महान अन्तर्पीड़ा छिपी हुई है। हृदय की अनंत कोठरियों में मनुष्य सुख और दुःख के अनंत इतिहास बंद कर रखता है । अवकाश मिलने पर वह कोई न कोई कोठरी खोलकर पुराने इतिहास का स्मरण करने लगता है। बहन के दुःखों की कोठरी भाई जब खोलेगा, तब वह रोयेगा।

एक गीत में बहू का भाई मिलने आया है। बहू को भाई से मिलने की छुट्टी नहीं दी जा रही है—

एक करैली हम बोवा अरे करैली पसरी बबैया जिउ के देस ॥१॥
पसरत पसरत पसरि गई पसरी है रन वन देस ॥२॥
सात अइल केर चुल्हिया सातौ माँ अकली दुआरि ॥३॥
एक पर रीझै उर्दा भात अरे करैली यक पर सुहावन दूध ॥४॥
उर्द भात जरि बरि जाय रे करैली दुधवा गयल उतिराय ॥५॥
उर्द भात खैहें देवर मोर दुधवा पियै सग भाय ॥६॥
रखिया बहावन हम गयनि रे करैली भैया बिरछ तरे ठाढ़ ॥७॥
सासू गोसाईं पैयाँ तोरी लागौं कहौ सासू भैया भेंटन हम जाब ॥८॥
हमका जनी बौहरि हमका जनी पूँछि लेव जेठनिया हँकारि ॥९॥
जेठानी गोसाईं पैयाँ तोरी लागौं रे करैली कहहु दीदी भैया
भेंटन हम जाव ॥१०॥
हम का जनी बौहरि हम का जनी रे करैली पूँछि लेव नन-
दिया दुलारि ॥११॥
ननदी गोसाईं पैयाँ तोरी लागौं रे करैली कहहु तो ननदी
भैया भेंटन हम जाब ॥१२॥
हम का जनी भौजी हम का जनी रे करैली
जितना बखरवा में धनवा उतना कूटे जाव
तब भौजी भैया भेंटन जाव ॥१३॥
जितना डेहरवा में गोहुँवा उतना पीसे जाव
तब भौजी भैया भेंटन जाव ॥१४॥
जितना पिपरवा में पतवा उतना रोटिया पोये जाव तब भौजी
भैया भेंटन जाव ॥१५॥

'मैंने करैली की एक लता लगाई थी। वह बाबा के देश तक फैल गई है ॥१॥

फैलते-फैलते वह अरण्य में, देश में, सर्वत्र फैल गई है ॥२॥

सात मुँह का चूल्हा है, उसमें एक ही द्वार है ॥३॥

एक मुँह पर उर्द और भात रींझ रहा है। दूसरे पर सुन्दर दूध ॥४॥

उर्द और भात जल-बल गया और दूध उतरा आया ॥५॥

उर्द भात मेरा द्रेवर खायगा और दूध मेरा सगा भाई पियेगा ॥६॥

मैं चूल्हे की राख घूर में फेंकने गई थी। वहाँ देखा तो वृक्ष के नाचे भैया खड़े हैं ॥७॥

हे सासजी ! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। कहो, तो भाई से भेंट कर आऊँ ॥८॥

हे बहू मैं क्या जानूं ? जेठानी को बुलाकर पूछ लो ॥९॥

हे जेठानी ! मैं तुम्हारे पैर पडती हूँ। आज्ञा दो, तो भाई से मिल आऊँ ॥१०॥

हे बहू ! मैं क्या जानूं ? दुलारी ननद से पूछ लो ॥११॥

हे प्यारी ननद ! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। कहो, तो भाई से मिल आऊँ ॥१२॥

हे भौजाई ! मैं क्या जानूं ? बखार में जितना धान है, उतना कूट-कर तब भाई से भेंट करने जाओ ॥१३॥

जितना कोठिला में गेहूँ है, उतना पीसकर तब भाई से मिलने जाओ ॥१४॥

पीपल में जितने पत्ते हैं, उतनी रोटियाँ पोकर तब भाई से मिलने जाओ ॥१५॥'

बहुओं को ससुराल में कितनी साँसत भोगनी होती है, इस गीत में भी उसका उल्लेख है। सास जो बात नहीं करना चाहती, उसे वह दूसरों पर टाल देती है। ननद तो बहू के लिये छुरी लिये तैयार ही रहती है। धान कूटना, गेहूँ पीसना, पानी भरना, बरतन माँजना, कपड़े धोना, फटी धोतियाँ सीना, आँगन बटोरना, चूल्हा सैंतना (लीपना), राख और कूड़ा करकट ले जाकर घूर में फेंकना यह सब काम अकेली बहू को करने पड़ते हैं। इस पर भी सास और ननद की झिड़कियाँ अलग से सहनी पड़ती हैं।

नैहर से आये हुये कुटुम्बियों से इच्छापूर्वक मिलने नहीं दिया जाता। बहू बेचारी कभी बीमार होती है तो उस पर यह इलजाम लगाया जाता है कि काम न करने के लिये बहाना कर रही है। बहू का इतिहास असहनीय दुःखों और भयानक वेदनाओं से भरा हुआ है।

संस्कृत के एक श्लोक में किसी ने बहू के मुख से उसके दुःख का कारण इस प्रकार कहलाया है—

श्वश्रूः पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रूभङ्गवक्रेक्षणा।
मर्मच्छेदपटु प्रतिक्षणमसौ ब्रूते ननांदा वचः।
अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरितं स्मृत्वा मनो वेपते।
कान्तः स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखिः।

'सास मेरी ओर देखती नहीं। देखती भी है तो आँखें तरेर कर। ननद प्रतिक्षण हृदय को जलाने वाली बात बोलती है। औरों का तो कहना ही क्या? उनकी बातों का तो स्मरण करके हृदय काँप जाता है। हे सखी! मेरा अपराध यही है कि प्रियतम मुझे प्रेम की दृष्टि से देखते हैं।'

सच है, कहीं-कहीं पति का प्रेम ही बहू के दुःख का कारण हो जाता है।

कैसी विडम्बना है; कैसी लज्जा की बात है! बहू के प्रति कुटुम्बियों का व्यवहार कैसा घृणित है!

ननद का काम बहू की चुग़ली खाना है। ननद प्रायः बहू की समवयस्का होती है। बहू बेचारी पराये घर से आती है। बहू के आते ही सास तो पाठशाला की गुरुआनी होकर बैठ जाती है, ननद मानीटर का काम करने लगती है। बहू से दासी की तरह काम लिया जाने लगता है। बहू ने यदि कभी प्रतिवाद किया तो खैर नहीं। ननद चुगली खा-खा कर बहू के नाक में दम किये रहती है। गीतों में इन सब बातों का वर्णन मिलता है।

बारह वर्ष के बाद एक पति घर आता है। इतने वर्षों तक उसकी सतवंती स्त्री बड़े नियम-धर्म से रही थी। ननद इस बात को जानती थी। फिर भी—

गोड़वा धोवत बहिनी लागे चुगुलिया
भैया भौजी से लेहु किरियवा हो राम ।

बहन के कहने से भाई ने अपनी स्त्री में उसके सत की परीक्षा ली। जलते हुये तेल में हाथ डालकर स्त्री निष्कलंकिनी साबित् हुई। उसका भाई उसे पालकी में बैठाकर घर लिवा ले गया। तब उसका पति रोकर कहने लगा—

भल छल किहिउ मोरी बहिनी हो राम,
डासल सेजिया उड़ासिउ हो राम ।
बारह बरिस तक मोरि बाट जोहिन,
छुटि गै मोरि सतवंती हो राम ।।
चाँद सुरिज अस मोरी रानी छुटिगै,
के घर बसल उजाड़ा हो राम ।

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण गीतों में मिलते हैं, जिनमे बहुओं की मनोवेदनाएँ व्यक्त होती हैं। सद्गृहस्थों को बहू के कष्टों पर विचार करना चाहिये।

गीतों में सास का चित्र

गीतों में सास का चित्र बहुत ही बुरा खींचा गया है। इससे जान पड़ता है कि स्त्रियों के गीत मुख्यकर बहुओं के बनाये हुये हैं। यद्यपि बहुएँ आगे चलकर सास हुई होंगी, और उनको अपनी रचना के लिये लज्जित होना पड़ा होगा; पर सास बनकर वे गीतों को बहुओं के समाज से बाहर न कर सकीं। क्योंकि सास बनकर वे भी अपनी बहुओं पर वही अत्याचार करने लगी होंगी, जो उनकी सास ने उनके साथ किया था। जहाँ-जहाँ गीतों में सास ने बहू को डाटा है, वहाँ वह सदैव कर्कश स्वर में बोली है।

किसी पति ने अपनी स्त्री को चुपके से बाँस के छिलकों की बनी

पंखी दी थी। किसी दिन सास ने उसे देख लिया। इस पर कुपित होकर उसने पूछा—

बेनिया डोलावत आइगै निनरिया
परिगै है सासू क नजरिया हो राम।
खाउँ न बहुवरि तोरा भैया भतिजवा
कवन छयल बेनिया दीहेसि हो राम॥

लाची नाम की एक बहू गंगा नहाने गई थी। रास्ते में उसे जयसिंह नाम का कोई लम्पट राजा मिला। उसने लाची के साथ छेड़खानी की। लाची ने कटार से उसका काम तमाम कर डाला। इस झगड़े में बहू को घर पहुँचने में कुछ देर हो गई। इस पर सास ने कहा—

उहवाँ से चलली लाची घर के पहुँचली हो ना।
रामा सासु गरिआवे बाबा-मुअनी हो ना॥
जनि सासु बावा खाहु जनि सासु भइआ खाहु हो ना।
सासु वटिआ रोकेला बटपरवा हो ना॥

गीतों की स्त्रियाँ लिखना-पढना जानती हैं

आज-कल कन्याओं को पढ़ाना-लिखाना एक नवीन बात-सी जान पड़ती है। स्त्री-शिक्षा के विरोधी अब भी हैं। और देहात में भीतर ही भीतर एक यह अज्ञान भी घर किये हुये है कि पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं। पर गीतों की स्त्रियाँ लिखना-पढ़ना जानती हैं। वे अपने परदेशी को पत्र लिखती हैं, और उसका आया हुआ पत्र पढ़ती है। कुछ उदाहरण लीजिये—

एक स्त्री चील्ह के द्वारा परदेशी पति को चिट्ठी भेजती है। चील्ह चिट्ठी लेकर उसके पति के पास जाकर कहती है—

सोअत बाटअ कि जागत बरधिया के नायक।
तोरि धनि चिठिया पठायेनि उठहु किन बाँचहु॥

पति ने चिट्ठी लेकर पढ़ा—

बाँयें हाथे चिठिया लिहलेनि दहिने हाथे बाँचैं ।
ढुरै नयनवन आँसु पटुकवन पोंछइँ ॥

एक स्त्री ने एक पथिक के हाथ अपने परदेशी पति को पत्र भेजा था। पथिक ने चिट्ठी ले जाकर उसके पति को दे दिया—

चिठिया जे लिहलेनि मन मुसुकइले निरमोहिया ।
बाँचै लगले बरहो बिरोगवा रे लोभिया ॥

एक स्त्री का पति परदेश जा रहा है। स्त्री से वह कहता है—

जौ तोरा मूड़ पिराये अरि अम्मा को जगइहौ
अरी अम्मा को जगइहौ हो।
मोरी रानी अन्तर जिअरा क भेद पतिया लिखि भेजिउ
पतिया लिखि भेजिउ हो ॥

स्त्री पढ़ी-लिखी न होती, तो पति ऐसा क्यों कहता ?

गीतों में उपदेश

गीतों से बढ़कर स्त्रियों में सदाचार, प्रेम और सहृदयता की वृद्धि करने का दूसरा कोई साधन नहीं। गीतों से कन्याओं और नववधुओं को बहुत लाभ पहुँचता है। इनमें उनके भावी जीवन का चित्र रहता है। भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोगों में, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार रहना चाहिये, इन बातों की शिक्षा स्त्रियों को इन गीतों ही से मिलती है। कन्या-पाठशालाओं की रीडरों से इन गीतों में कहीं अधिक उपदेश रहता है। कन्या को विदा करते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं, उनमें पत्थर को भी पिघला देने का प्रभाव होता है। साथ ही कन्या और वर के लिये उपदेश की ऐसी गूढ़ और अनुभव की बातें भरी रहती हैं, जो अच्छे से अच्छे कवि की कविता में भी नहीं मिलतीं।

कुछ उदाहरण लीजिये—

शकुन्तला को विदा करते समय कण्व के मुख से कालिदास ने यह उपदेश दिलाया है—

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रिय सखी वृत्तं सपत्नी जने ।
भर्तुर्विप्रकृतापिरोषणतया मास्म प्रदीपं गमः, ॥
भूमिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी ।
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधमः ॥

शकुन्तला

'बड़ों की सेवा करो। अपना सौतों से प्रिय सखी के समान व्यवहार करो। पति यदि अपमान भी करे तो क्रोध से उसके विरुद्धाचरण मत करो। नौकर-चाकरों के साथ उदारता-पूर्वक व्यवहार करो। अपने भाग्य का गर्व मत करो। स्त्रियाँ इसी प्रकार गृहिणी पद पाती हैं। इससे विपरीताचरण वाली स्त्री कुल का कण्टक होती है।

इन्हीं बातों को गीतों में एक अन्य प्रकार से बड़ी रोचकता के साथ कहा गया है—

काहे रे अमवा हरिअर ना जानों कौने गुना।
ललना ना जानों मलिया के सींचे त ना जानों खेत गुना ॥ १ ॥
ना यह मलिया के सींचे त ना यह खेत गुना।
ललना रिमिकि झिमिकि दैवा बरिसै त उनही के बूंद गुना ॥ २ ॥
होरिल तौ बड़ सुन्दर ना जानों कौने गुना।
है हौ ना जानों अम्मा के सँवारे त ना जानों कोखी गुना ॥ ३ ॥
ना यह अम्मा के सँवारे तौ ना यह कोखी गुना।
ललना मोर पिया तप ब्रत कीन त उनहीं के धरम गुना ॥ ४ ॥
बारह बरिस बन सेवलें त गुरू घर से अवलें हो।
ललना तब घर बबुआ जनमलें त उनहीं के धरम गुना ॥ ५ ॥

मचियहिं बैठी हैं सासु त बहुआ से पूँछइँ हो।
बहुआ कवन कवन फल खायू होरिल बड़ सुन्दर हो ॥ ६ ॥
फल तौ खायूँ नौरंगिया त आम छोहारौ हो।
सासू नरियर दाख बदाम नाहीं रे जानौं वहि गुन हो ॥ ७ ॥
सभवहिं बैठे हैं ससुरु त बहुआ से पूँछइँ हो।
बहुआ कवन कवन तप कीहिउ होरिल बड़ सुन्दर हो ॥ ८ ॥
सासु क वचन न टारेउँ न ननदा तुकारेउँ हो।
ससुरु कबहुँ न लाई लूकी लायउँ नाहीं रे जानौं वहि गुन हो ॥ ९ ॥
सुपेली खेलत कँ ननदिया त भौजी से पूँछइ हो।
भौजी कवन कवन ब्रत कीहिउ होरिल बड़ सुन्दर हो ॥१०॥
स्वामी क मानेउँ हुकुमवा देवर क दुलारेउँ हो।
ननदा ! मब कर लिहेउँ असीस त ना जानीं वहि रे गुना ॥११॥

'यह आम वृक्ष हरा क्यों है ? मालूम नहीं, माली के सीचने से यह हरा है ? या खेत के प्रभाव से ? ॥१॥

न यह माली के सीचने से हरा है, न खेत के प्रभाव से। रिमझिम करके जो बादल बरसते हैं, उन्ही की बूँदों के प्रभाव से यह हरा है ॥२॥

यह बालक बहुत सुन्दर है। इतना सुन्दर यह क्यों है ? नहीं जानती, इसकी माँ ने इसको ऐसा सुन्दर सँवार रक्खा है ? या उसकी कोख का ऐसा प्रभाव ही है ? ॥३॥

नहीं, नहीं; न तो यह माँ के सँवारने से इतना सुन्दर है और न कोख का ही प्रभाव है। मेरे पति ने बहुत तप-व्रत किया था। उन्हीं के धर्म के प्रभाव से यह इतना सुन्दर है ॥४॥

हे सखी ! मेरे पति बारह वर्ष तक बन में, गुरु के घर में, रहकर विद्या पढ़ते रहे। फिर घर आये। तब इस बालक का जन्म हुआ। उन्हीं के धर्म के प्रभाव से यह इतना सुन्दर है ॥५॥

मचिये पर बैठकर सास बहू से पूछती है—बहू ! तुमने क्या-क्या फल खाया ? जो तुम्हारा पुत्र इतना सुन्दर है ॥६॥

बहू ने कहा—मैंने नारंगी, आम, छोहारा, नारियल, दाख और बादाम खाया था। शायद इन्हीं के प्रभाव से बालक सुन्दर हुआ हो ॥७॥

सभा में बैठे हुये ससुर बहू से पूछते हैं—हे बहू ! तुमने कौन-सा तप किया है ? जो तुम्हारा बच्चा बड़ा सुन्दर है ॥८॥

बहू ने कहा—हे ससुरजी ! मैंने कभी सासजी की बात नहीं टाली। न ननद का तिरस्कार किया। न कभी इधर की बात उधर लगाई। शायद इसी के गुण से बच्चा इतना सुन्दर हुआ हो ॥९॥

सुपेली (छोटा सूप) खेलती हुई ननद ने पूछा—हे भौजी ! तुमने कौन-सा व्रत किया था ? जिससे तुम्हारा बालक इतना सुन्दर है ॥१०॥

बहू ने कहा—हे ननद ! मैंने सदा स्वामी की आज्ञा का पालन किया। देवर को प्यार किया और सब का आशीर्वाद लिया। शायद इसी से मेरा बालक सुन्दर हुआ है ॥११॥

सबसे आशीर्वाद लेनेवाली बात बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है। इसी में गृहस्थी के सुख और शान्ति का मंत्र सुरक्षित है। इस एक गीत में बहुत-सी उपदेश की बातें हैं, जो पाठकों को सहज ही में मालूम हो जायँगी।

एक गीत और सुनिये—

एक गीत में कन्या का विवाह होनेवाला है। वह माँ से कहती है—

नाहीं सिखेउँ मैया गुन अवगुनवा नाहीं सिखेउँ राम रसोइँ।
सासु ननद मोरी मैया गरिआवइँ मोरे बूते सहि नहिं जाइ ॥

माँ कहती है—

सिखि लेउ बेटी गुन अवगुनवा सिखि लेउ राम रसोइँ।
सासु ननद तोरी मैया गरिआवइँ लइ लिहौ अँचरा पसारि ॥

इससे अच्छा उपदेश माँ बेटी को और क्या दे सकती है ?

एक गीत में कोई लम्पट पुरुष किसी सतवन्ती स्त्री को सोने

और मोती का लोभ देकर उसे धर्म-च्युत करना चाहता था। स्त्री कहती है—

आगि लगो सोनवाँ बजर परो मोतिया
सत छोड़े कैसे पत रहिहैं रे की।

गीतों में पातिव्रत-धर्म की महिमा तो खूबही है। एक स्त्री के चरित्र पर उसके पति और अन्य कुटुम्बियों ने मिथ्या दोषारोपण किया था। जलते हुये तेल में हाथ डलवाकर स्त्री की परीक्षा ली गई। स्त्री निष्कलंकिनी प्रमाणित हुई। पर पति आदि के व्यवहार से उसे बड़ी मार्मिक वेदना हुई। वह भाई के साथ नैहर जाने लगी। मार्ग में एक बन पड़ा। वहाँ उसे बन की तपस्विनियाँ मिलीं। उन्होंने एक ही वाक्य कहा—

बेटी बिअहा क मेटौ गुनहवा रे ना।

'हे पुत्री! पति का अपराध भूल जाओ'। इस एक छोटे से पद में पति-पत्नी के बीच की शान्ति बन्द है।

एक गीत में एक स्त्री की बड़ी मनोहर कथा है—

सासु जे बोलेलीं अड़पी ननद तड़पी बोलै हो।
बहुअरि काहे क भरलिउ गुमान सोऐलू सुख निद्रा ॥१॥
बाबा के हैं हम निनरुई त भैया के दुलरुई हो।
ऐ अपने हरीजी के प्राणअधारी सोईलै सुख-निद्रा ॥२॥
एतना बचन राजा सुनलेनि सुनहु न पवलेनि हो।
राजा सारी रात सुतलें करवटिया त मुखहू न बोलहिं ॥३॥
किआ रउरा जेवना बिगड़ले सेजिअ भोर भइलेसि हो।
ऐ राजा किया रउरा सेवा चुकलों त मुखहू न बोलहु ॥४॥
नाहीं मोर जेवना बिगड़ले न सेजिअ भोर भइलेस हो।
ऐ रानी! गंगा जमुन मोरी मइया गरब बोली बोलेहु ॥५॥

हम से भइलि तकसिरिया सासु पग लागब।
राजा! मइया मनाइ हम लेब राउर हँसि बोलहु ॥६॥

सास डपटकर बोलती है, ननद तड़पकर कहती है—बहू! किस अभिमान में तुम भरी रहती हो जो खूब सुख से सोती हो? ॥१॥

बहू ने कहा—मैं अपने पिता की एक ही कन्या हूँ; भाई की दुलारी हूँ और अपने प्राणेश्वर की प्राणाधार हूँ। इसी से सुख की नीद सोती हूँ ॥२॥

पति ने यह बात सुन ली। सब बातें अच्छी तरह सुनी भी नहीं कि वे सारी रात एक करवट सोये रहे और स्त्री से नही बोले ॥३॥

स्त्री ने पूछा—हे राजा! क्या आपका भोजन मैंने खराब बनाया? या सेज बिछाने में कोई भूल हुई या देर हुई? मैं आपकी किस सेवा में चूक गई? जो आप नहीं बोलते है ॥४॥

पति ने कहा—हे रानी! न तुमने मेरा भोजन बिगाड़ा, न सेज में कोई भूल या देरी हुई। गंगा-जमना की तरह पवित्र और पूज्य मेरी माँ को जो तुमने अभिमान से जवाब दिया, मैं इसलिए अप्रसन्न हूँ ॥५॥

स्त्री ने कहा—मुझ से गलती हुई। मैं सासजी के पैर छूकर क्षमा माँगूँगी। हे राजा! आप प्रसन्न होकर बोलें, मै माताजी को मना लूँगी ॥६॥

इस गीत से स्त्रियों को अभिमान-रहित और नम्र होने की शिक्षा मिलती है। साथ ही पुरुष के लिये भी संकेत है कि वह माता के सम्मान का सदैव ध्यान रक्खे। सास-बहू के झगड़ों में पुरुष की असावधानी भी एक प्रधान कारण है।

सावन का एक गीत है—

धीरे बहु नदिया तें धीरे बहु,
मोरा पिया उतरइँगे पार ॥ धीरे बहु० ॥१॥
काहेन की तोरी नइया रे,
काहे की करुवारि।

के तोरा नइया खेवइया रे,
के धन उतरइँ पार।। धीरे बहु० ।।२।।
धरमै कइ मोरी नइया रे,
सत कइ लगी करुवारि।
सैयाँ मोरा नइया खेवइया रे,
हम धन उतरब पार।। ,, ।।३।।

स्त्री कहती है—हे नदी ! तू धीरे-धीरे बह। मेरे पति पार उतरेंगे ।।१।।

नदी ने पूछा—तेरी नाव किस चीज की है ? पतवार किस चीज की है ? तेरी नाव का खेनेवाला कौन है ? और कौन स्त्री पार उतरेगी ? ।।२।।

स्त्री उत्तर देती है—धर्म की मेरी नाव है। जिसमें सत का पतवार लगा है। नाव का खेनेवाला मेरा स्वामी है। और मैं स्त्री पार उतरूँगी ।।३।।

यह गीत जिस समय मन्द-मन्द स्वर से गाया जाता है, सुनने वालों का हृदय तरंगित हो उठता है। स्त्री-कवि के रचे हुये इस भाव-पूर्ण गीत की तुलना हिन्दी के उच्च से उच्च कवि की कविता से की जा सकती है।

एक पति ने अपनी स्त्री से कहा—जरा बिछौना बिछा दो। स्त्री ने कहा—

सोनवहि कै मोरा नैहर रुपवा केवाड़ी लागे हो।
रामा सात भैया कै एक बहिनी सेजरिया कैसे डासउँ हो ।।१।।

पति को स्त्री का यह अभिमान असह्य हो गया। उसने द्वार बंद कर लिया। स्त्री ने बहुत आवाज दी, पर न तो पति बोला, न उसने द्वार ही खोला। बहू ने सास से कहा कि मेरा क्या अपराध है, जो वे नाराज हो गये। सास ने बेटे से पूछा; बेटे ने नाराजी का कारण बता दिया। तब बहू कहती है—

मटियहिं कै मोरा नैहर सुपवा केवाड़ी लागे हो।
सासू सातो भैया किंगरी बजावइँ बहिनि मोरी नाचइ हो ।।२।।

बहू ने कैसे वाक्-चातुर्य से पति को मना लिया ! विवाद को जल्दी समाप्त कर डालने में स्त्रियाँ पुरुषों से चतुर होती हैं।

गीतों में चरखा

चरखा हिन्दुओं की बहुत प्राचीन वस्तु है। आर्य लोग अपने हाथ से कातते हुये सूत का यज्ञोपवीत पहनते थे। पूर्वकाल में हिन्दुओं के घर-घर में चरखे होते थे। स्त्रियाँ, मुख्यतः विधवायें और वे स्त्रियाँ, जिनके पति परदेश में होते थे, चरखा कातकर समय ही नहीं काटती थीं, बल्कि इसी की आमदनी से अपनी जीविका भी चलाती थी।

चरखे तो घर-घर में थे ही, पर यजुर्वेद के एक मंत्र से मालूम होता है कि लोग अपने कपड़े अपने ही घर में बुन भी लेते थे—

सीसेन तंत्रं मनसा मनीषिणः
ऊर्णा-सूत्रेण कवयो वयन्ति।

(यजु० १९।८०)

'मननशील कवि लोग मनन के साथ सीसे के यंत्र से ताना फैलाकर ऊन के सूत से कपड़ा बुनते हैं।'

(सातवलेकर-कृत 'वेदों में चरखा' से।)

इससे मालूम होता है कि वैदिक काल में कपड़ा बुनने वालों की कोई अलग जाति नहीं थी। मननशील कवि लोग भी अपने कपड़े बुन लिया करते थे। अथर्ववेद के एक मंत्र से मालूम होता है कि विवाह के अवसर पर वधू अपने ही काते हुये सूत का वस्त्र वर को समर्पित करती थी—

ये अन्ता यावतीः सिचोय ओतवो ये च तन्तवः।
वासो यत्पत्नी भिरुत तन्नः स्योनमुपस्पृशात्॥

(अथर्व० १४-२-५१)

'जो कपड़े के अंतिम भाग हैं, जो किनारियाँ हैं, जो बाने है, तथा

जो नाने हैं, इन सब के साथ पत्नी के द्वारा जो बुना हुआ कपड़ा होता है, वह हमारे लिए सुखदायक हो।'

(सातवलेकर की टीका)

संस्कृत में मोरिका नाम की एक प्रसिद्ध स्त्री-कवि हो गई है। उस ने एक श्लोक में घर में सूत की कमी की एक विचित्र शिकायत की है—

मा गच्छ प्रमदाप्रिय प्रियशतै-
भूयस्त्वमुक्तो मया,
बाला प्राङ्गणमागतेन भवता
प्राप्नोति निष्ठां पराम् ॥
किं चान्यत्कुचभारपीड़नसहै—
यत्नप्रबद्धैरपि,
त्रुटयत्कंचुकजालकैरनुदिनं
निःसूत्रमस्मद्गृहम् ॥

'हे प्रमदाप्रिय! न जाओ, मैंने कई बार उससे यह कहा। मैंने कहा—आप जब आँगन में आते हैं, तब वह बाला प्रसन्न होती है। उसके कुरते खूब मजबूत बनाये जाते हैं, जिससे स्तनों का भार वे सह सकें; पर वे फट-फट जाते हैं। इससे आजकल हमारे घर में सूत की कमी हो गई है।'

भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों के गीतों में चरखे का वर्णन मिलता है। यद्यपि पंजाब, गुजरात और आंध्रदेश के बराबर चरखे का प्रचार और किसी प्रांत में नहीं है; पर गीतों में चरखे ने सर्वत्र स्थान पाया है—

चरखा मेरा अठ-फागुड़ा माल मेरी नूँ ताड़।
पूणीं ताँ बदाँ लसलसी तन्द कड्ढाँ दर्याउ॥
आगे ताँ चरखा रँगला पिच्छे पीढ़ा लाल।
चकले दे उघर चाकला चकले दे उघर कत्थो॥
कत्तनवाली नाजो कोमली।

(पंजाबी)

'मेरा चरखा आठ फाँकों का बना हुआ है। मेरी माल को ताव है। मैं बहुत पोली पूनी बनाकर नदी जितना लम्बा तार निकालती हूँ।

'सामने रँगीला चरखा है, पीछे लाल पीढ़ा है। चकले के ऊपर चकला और चकले के ऊपर कथ है।

'कातनेवाली कोमल सुन्दरी है।'

सुनेयो सुनेयो नमेयो कुड़मो अर्ज बन्दी दी सुनियो बे।
जे साडी बीबी मन्दा बोले अन्दर वड़ समझायो बे।
जे साडी बीबी मोटा कत्ते रेशम करके जाणेओ बे।

(पंजाबी)

'हे हमारे नवीन समधियो! मुझ दीन की विनती सुनो।

'यदि हमारी लड़की कुछ भला-बुरा कहे, तो उसे एकान्त में ले जाकर समझा देना।

यदि हमारी लड़की मोटा सूत काते तो उसे बारीक तार समझना।'

नानी सुपुत्ती ने सूत कत्तेया नाने ठोक बुनाएआ।
सरहन्द ते मजीठ आँदी चोला-चोप रँगाएआ॥

(पंजाबी)

'सुपुत्रोंवाली मेरी नानी ने सूत काता और नाने ने उसे बुनाया। फिर सरहिन्द से मजीठ मँगाकर चोला-चोप रँगाया।'

ननद भावो दा प्यार चरखा डाहे लेआ।

(पंजाबी)

'ननद भौजाई का प्रेम है। दोनों चरखा कातने बैठी हैं।'

मारवाड़ की एक स्त्री पति को पत्र लिखती है—

चरखो तो ले ल्यो भँवर जी राँगलो जी
हाँ जी ढोला! पीड़ो लाल गुलाल।
तकवो तो ले ल्यूँ जी भँवरजी! बीजलसार को जी,
ओ जी म्हारी जोड़ी का भरतार!

पूणी मँगा ल्यूँ झीक बीकानेर की जी।
म्होर म्होर की कातूँ भँवरजी! कूकड़ी जी
हाँ जी ढोला! रोक रुपैये रो तार।
मैं कातूँ थे बैठा विणज ल्यो जी,
ओजी म्हारी लाल नणद रा ओ वीर!
ओजी म्हारे हीवड़े का जीवड़ा।
ओजी म्हारी सेजाँ रा सिणगार!
थारी प्यारीजी जोवे वाट
जल्दी पधारो देस में जी।

(मारवाड़ी)

'हे प्रियतम! एक रंगीला चरखा, लाल-गुलाल रंग का पीढ़ा और बिंधे हुये लोहे का तकवा ले लें। हे मेरी जोड़ के स्वामी! बीकानेर से पूनी मँगा लें। हे प्रियतम! मैं एक-एक कुकड़ी एक-एक मोहर के मूल्य की कातूँगी। मेरा एक-एक सूत रुपये-रुपये का होगा। मैं सूत कातूँ, तुम बैठकर उसे बेच लो। हे मेरी प्यारी ननँद के भाई! हे मेरे हृदय के जीव! हे मेरी शय्या के शृंगार! तुम्हारी प्यारी तुम्हारी राह देख रही है, जल्दी घर लौटो।'

एक स्त्री का पति परदेश गया है। स्त्री घर में बैठकर सोच रही है—

धरि गइलें चनन चरखवा सिरिजि गज ओबरि हो राम।
दिन भरि कतबइ चरखवा ओहरियाँ ओठँघाइ देबइ हो राम॥
रामा साँझ खनी सुतबइ मइयाजी के कोरवाँ त प्रभु बिसराइ
देबइ हो राम॥

'मेरे प्राणनाथ कोठरी बनाकर उसमें एक चन्दन का चरखा रख गये हैं। दिनभर मैं चरखा कातूँगी, फिर उसे उधर खड़ा कर दूँगी। संध्या को माँ (सास) की गोद में सोऊँगी, और स्वामी के वियोग का दुःख भूला दूँगी।'

वियोगिनी के लिये चरखे से बढ़कर धीरज देनेवाला और कोई साथी नहीं।

जनेऊ का एक गीत है, जिसमें यह वर्णन मिलता है कि राम और लक्ष्मण दोनों हल चलाकर खेत जोतते हैं और कपास बोकर रुई पैदा करते हैं। फिर रानी रुक्मिणी कपास को ओटकर रुई से बिनौले अलग करती है, और उसे धुनकर चन्दन के चरखे पर सूत कातती हैं। उस सूत से जनेऊ बनता है।—

राइयो रुक्मिनि बीज लै जाँय।
राम लछिमन दोनों बोवैं कपास।
एक पत्ता दो पत्ता तीसरे कपास।
काहे की है चरखी काहे की है डंडी।
चन्दन की चरखी सोने की है डंडी।
राइयो रुक्मिनि ओटैं कपास॥
काहे की है धुनिया काहे की है ताँत।
सोने की धुनिया रेसम की है ताँत।
राइयो रुक्मिन धुनैं कपास॥
काहे की है रहटा काहे की है माल।
चन्दन रहटा रेसम की है माल।
राइयो रुक्मिन कातैं सूत॥
एक तागा, दो तागा, तीसरे जनेउ।
तीन तागा, चार तागा, पाँचवें जनेउ।
पाँच तागा, छः तागा, सातवें जनेउ।
सात तागा, आठ तागा, नौवें जनेउ॥
पहिलो जनेउ गनेसजी को देव।
दुसरा जनेउ ब्रह्माजी को देव॥

तीसरे जनेउ महादेवजी को देव।
चौथे जनेउ विष्णुजी को देव॥
पाँचवों जनेउ सब देवतन देव।
छठवों जनेउ सब पुरखन देव॥
सातवों जनेउ बरुआ को देव।
अहिर गड़रिया बम्हन कर लेव॥

इसमें कपास बोने से लेकर सूत कतने और सूत से फिर जनेऊ बनने तक का क्रम वर्णित है। अन्त में कहा गया है कि इसी सूत के प्रभाव से अहीर गड़रिये भी ब्राह्मण हो सकते हैं।

आजकल ब्राह्मण-क्षत्रिय हल चलाना पाप समझते हैं; पर इस गीत से पता चलता है कि हरएक द्विज को स्वयं हल चलाना, कपास बोना, ओटना, धुनना, चरखा चलाना, सूत कातना और सूत से जनेऊ बनाना जानना चाहिये। घर-घर में चरखे की रक्षा के लिये ही तो कहीं यह नियम नहीं बनाया गया था!

जाँत के एक गीत में बिरहिनी अपने परदेशी पति को बिसूर रही है—

देइ गये चनन चरखवा ओठँगने क मचिया हो राम।
अरे पिया देइ गये अपनी दोहइया धरम जिनि छोड़िउ हो॥

एक गीत में एक पुरुष अपनी पत्नी को खाने-पहनने का बड़ा कष्ट देता था। एक दिन पत्नी का भाई बहन से मिलने आया। बहन ने अपना दुखड़ा रोया। भाई ने बहनोई को शिकार के समय बन में मार डाला। इस पर बहन विलाप करती है—

केन मोर छइहैं भइया राँड़ क मड़इया
केन बितइहैं दिन रतिया हो राम।

भाई कहता है—

हम तोरि छउबै बहिनी राँड़ क मड़इया
भउजी बितावइ दिन रतिया हो राम।

वहन कहती है—

दिन भर भइया भउजी चरखा कतइहइँ
साँझि बेर देइहँइँ बूँद मँड़वा हो राम।

गोपीचन्द राजा पर विपत्ति पड़ी, तब वे हल जोतकर दिन काटने लगे। रानी ने कहा—राजा! मेरे नैहर में चलो; वहाँ हम सुख से रहेंगे: गोपीचंद ससुराल गये, किसी ने कुछ पूछा ही नहीं। तब राजा रानी से कहते हैं—

चलहु न धनिया अपने के देसवा रे
चरखा लै विपति गँवउबइ हो राम।

गोपीचंद राजा की कथा कितनी पुरानी है, इसका पता नहीं। गुजरात के गीतों में भी गोपीचंद का कथानक है। पर उन दिनों भी चरखा विपत्ति का साथी था, जैसा कि महात्मा गाँधी कहते रहे कि वह आज भी है।

एक गीत में एक पति अपनी पत्नी को संदेशा भेजता है—

हमरो सनेसवा रे धनी समुझाइह निरमोहिया।
चरखा कातिहि कुल राखिहि रे लोभिया॥

गुजराती गीतों में भी चरखे का बहुत वर्णन मिलता है—

सासु ने बहू बे रेंटियो रे काँते
काँततां बाईजीए पूँछयूं रे—मारी सहीरे समाणी॥
बहू रे बहू मने पूणियो बताओ
पूणियो कांती नाखी रे— ,,

(गुजराती)

'सास बहू चरखा कातने बैठीं। कातते-कातते सास ने पूछा—बहू! पूणी कहाँ है? बहू ने कहा—मैंने तो उसे कात डाला।' इत्यादि।

+ + +

अये माए दीकरिए सुतर कांतीउँ रे,
अये आप्यूं वणनारा ने हाथ रे—नणदल लेरीउँ रे॥
मारूँ वणी वणावी घेर आबीयुं रे,
में आप्युं रँगाराने हाट रे। "

(गुजराती)

"माँ-बेटी ने सूत काता। फिर उसे बुननेवाले को दे दिया। बुनकर आया, तब उसे रँगनेवाले को दे दिया। इत्यादि।

कविता-कौमुदी

[ग्राम गीत]

सोहर

सोहर, जिसे कहीं-कहीं सोहिलो भी कहते हैं, उस गीत का नाम है, जो पुत्र-जन्म के अवसर पर गाया जाता है। गीतों में इसका यह नाम गाया भी जाता है। जैसे—

बाजै लागी अनँद बधइया गावइँ सखि सोहर।

पर इसका मुख्य नाम मंगल-गीत है। प्रत्येक सोहर के अन्त में इसका यही नाम आता है। जैसे—

जो यह 'मङ्गल' गावइ गाइ सुनावइ।
सो बैकुण्ठे जाइ सुनइया फल पावइ॥

तुलसीदास ने रामचरित-मानस मे जन्म और विवाह के अवसर पर स्त्रियों से मंगल या मंगल-गीत ही गवाया है। जैसे—

गावहिं मङ्गल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठ लजानी॥

विवाह मे जो गीत गाये जाते हैं, यद्यपि वे सोहर ही छंद में होते हैं पर उनकी लय भिन्न होती है। जन्म और विवाह दोनों प्रसंग मंगल-सूचक है। इसलिए उन अवसरों के गीतों का नाम भी मंगल-गीत रक्खा गया है। तुलसीदास ने 'रामलला नहछू' इसी छंद में लिखा है।

सोहर प्रायः सब स्त्रियों ही के रचे हुए हैं। स्त्रियाँ पिंगल के पचड़े में नहीं पड़ी हैं; इसलिए गीतों में न तुक मिले हैं और न पदों की मात्रायें ही समान हैं। स्त्रियां गाते समय छोटे-बड़े पदों को खींच-तानकर बराबर

कर लिया करती हैं। पर तुलसीदास ने 'रामलला नहछू' में तुक भी मिलाया है और प्रत्येक पद की मात्रायें भी बराबर रक्खी हैं। उन्होंने पिंगल के अनुसार शुद्ध करके सोहर छंद लिखा है। उदाहरण के लिए यहाँ 'रामलला नहछू' के कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

बनि बनि आवति नारि जान गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो॥
अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो॥
रूप सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो।
जाकी ओर बिलोकहि मन उन साथहि हो॥
दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगंधन बोरा हो॥
मोचिनि बदन सकोचिनि हीरा माँगन हो।
पनहिं लिहे कर सोभित सुन्दर आँगन हो॥
बतिया कै सुघर मलिनिया सुन्दर गातहि हो।
कनक रतन मनि मौर लिहे मुसुकातहि हो॥
कटि कै छीन बरिनिया छाता पानिहि हो।
चन्द्रबदनि मृगलोचनि सब रसखानिहि हो॥
नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो॥

हमारे पास सोहर गीतों का बड़ा, संग्रह है। उसमें बहुत से गीतों के अन्त में तुलसीदास का नाम आया हुआ है। पर हमें विश्वास नहीं कि वे गीत तुलसीदास ही के रचे हुए हैं। यदि सोहर छन्द में उनका 'रामलला नहछू' मौजूद न होता, और उसे देखकर हम यह न जानते होते कि तुलसीदास

किस प्रकार का सोहर लिखते थे, तो शायद हम उन गीतों को तुलसीदास का रचा हुआ मान भी लेते। पर 'रामलला नहछू' की उपस्थिति में वे बेतुके और छोटे-बड़े पदवाले गीत तुलसीदास के रचे हुए नहीं माने जा सकते। वे गीत स्त्रियों ही के रचे हुए हैं, और केवल अधिक प्रचार के उद्देश्य से उनमें तुलसीदास का नाम जोड़ दिया गया है। हिन्दी में तुलसीदास के सिवा और किसी कवि की रचना सोहर छन्द में हमारे देखने में नहीं आई। सुना है, सूरदास ने भी 'सोहिलो' लिखा था, पर वह हमारे देखने में नहीं आया। तुलसीदास ने 'रामलला नहछू' सोहर छन्द में लिख तो दिया, पर 'नहछू' होते समय तुलसीदास का सोहर गाया नहीं जाता। स्त्रियों ने पिंगल और अलंकार से अनुप्राणित तुलसीदास के सोहर को पुस्तक ही में पड़ा रहने दिया है।

जब किसी हिन्दू के यहाँ पुत्र पैदा होता है, तब टोले-महल्ले की स्त्रियाँ उसके यहाँ एकत्र होकर सोहर गाती हैं। पुत्र के जन्म-दिन से लेकर कहीं-कहीं छः दिनों तक और कहीं-कहीं बारह दिनों तक सोहर गाया जाता है। कन्या पैदा होने पर सोहर प्रायः नहीं गाया जाता। यद्यपि कन्या को लोग लक्ष्मी-स्वरूप मानते हैं, पर उसके विवाह के इतने झंझट लोगों ने बढ़ा लिये हैं कि अब कोई कन्या के जन्म से प्रसन्न नहीं होता और न हर्ष-सूचक उत्सव ही मनाता है।

सोहर में शृंगार और हास्य-रस तो प्रधान ही हैं, पर करुण-रस की मात्रा भी कम नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि करुण-रस स्त्रियों को बहुत प्रिय है। सोहर ऐसे जन्मोत्सव-सम्बन्धी गीत में भी उन्होंने कहीं-कहीं ऐसा करुण-रस भर दिया है कि सुनते ही हृदय में करुणा उमड़ आती है और आँखों में आँसू छलक पड़ते हैं।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में और बिहार में जो सोहर गाये जाते हैं, उनमें बहुत ही कम अन्तर मिलता है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों के सोहर में हमें वह रस नहीं मिला, जो पूर्वी जिलों के सोहर में है।

यहाँ कुछ चुने हुए सोहर अर्थ-सहित दिये जाते हैं—

(१)

गंगा जमुनवाँ के बिचवाँ तेवइया एक तपु करइ हो।
गंगा! अपनी लहर हमैं देतिउ मैं माँझाधार डूबित हो ॥१॥
की तोहिं सासु-ससुर दुख कि नैहर दूरि बसै।
तेवई! की तोरे हरि परदेस कवन दुख डूबउ हो ॥२॥
ना मोरे सासु-ससुर दुख नाहीं नैहर दूरि बसै।
गंगा! ना मोरे हरि परदेस कोखि दुख डूबव हो ॥३॥
जाहु तेवइया घर अपने हम न लहर देबइ हो।
तेवई! आजु के नवएँ महिनवाँ होरिल तोरे होइहै हो ॥४॥
गंगा! गहबरि पिअरी चढ़उबै होरिल जब होइहैं हो।
मैया! देहु भगीरथ पूत जगत जस गावइ हो ॥५॥

गंगा-यमुना के बीच एक स्त्री तप कर रही है। वह कहती है कि हे गंगा! तुम मुझे अपनी लहर देती तो मँझधार में डूब मरती ॥१॥

गंगा ने कहा—हे स्त्री! क्या तुझे सास-ससुर का दुःख है? या नैहर दूर है? या तेरा स्वामी परदेश में है? तू किस दुःख से डूबना चाहती है? ॥२॥

स्त्री ने कहा—न मुझे सास-ससुर का दुःख है, न नैहर ही दूर है और न मेरे स्वामी ही परदेश में हैं। मैं निस्सतान होने के दुःख से डूबना चाहती हूँ ॥३॥

गंगा ने कहा—हे स्त्री! तू अपने घर जा। मैं तुझे लहर न दूँगी। आज के नवें महीने तेरे पुत्र होगा ॥४॥

स्त्री ने कहा—हे गंगा! मेरे पुत्र होगा तो मैं तुम्हें खूब चटक रंग की पीली साड़ी चढ़ाऊँगी। हे गंगा! तुम मुझे भगीरथ जैसा पुत्र देना, संसार जिसका यश गाये ॥५॥

सन्तान की लालसा स्त्रियों में बड़ी प्रबल होती है। इस गीत में एक

स्त्री संतान के लिए गंगाजी से प्रार्थना करती है। गंगाजी ने उस पर प्रसन्न होकर उसे वर दिया। स्त्री कृतज्ञता-प्रकाश करती हुई गंगाजी को पिअरी (पीला वस्त्र) चढ़ाने की मन्नत मानती है। संतान पाने का जब उसे वर मिल गया, तब वह यह चाहती है कि उसे भगीरथ-जैसा प्रतापी पुत्र मिले, जिसका यश सारा संसार गाये। कैसी मनोहर अभिलाषा है! हिन्दू-स्त्री का लक्ष्य कितना ऊँचा है! स्त्रियों में माता होने की इच्छा तो स्वाभाविक होती है, पर वह कैसे पुत्र की माता होना चाहती है, यह बात महत्व की है। पुत्र का जन्म होने से पहले ही उस का आदर्श स्थिर कर रखना यह हिन्दूओं के उत्तम गृहस्थ-जीवन की एक सुन्दर छटा है। जब भगीरथ-जैसा पुत्र उत्पन्न करने वाली माताएँ इस देश में थीं, तभी भारत सुखी और स्वतंत्र था।

(२)

चलहु न सखिया सहेलरि जमुनहि जाइय हो।
जमुना कै निर्मल नीर कलस भरि लाइय हो ॥१॥
केऊ सखी जल भरैं केऊ मुख धोवइँ हो।
केऊ सखी ठाढ़ी नहाइँ त्रिया एक रोवइ हो ॥२॥
की तुहें सासु ससुर दुख की नैहर दूरि बसै।
बहिनी! की तुमरा कन्त बिदेस कवन दुख रोवउ हो ॥३॥
ना मोहें सासु-ससुर दुख ना नैहर दूरि बसै।
बहिनी! ना मोरा पिया परदेस कोखि दुख रोवउँ हो ॥४॥

हे सखियो! चलो जमनाजी को चलें। जमनाजी का पानी बड़ा स्वच्छ है। चलो, घड़ा भर लायें ॥१॥

कोई सखी जल भर रही है, कोई मुँह धो रही है और कोई खड़ी नहा रही है। एक सखी रो रही है ॥२॥

एक सखी ने उससे पूछा—हे सखी! क्या तुम्हें सास-ससुर का दुःख

है ? या तुम्हारा नैहर दूर है ? या तुम्हारे स्वामी परदेश में हैं ? तुम किस दुःख से रो रही हो ? ॥३॥

उस स्त्री ने कहा—हे बहन ! न तो मुझे सास-ससुर का दुःख है, न नैहर ही दूर है और न मेरे स्वामी ही परदेश में हैं। मैं तो कोख के दुःख से से रो रही हूँ, अर्थात् मेरे सन्तान नहीं है ॥४॥

सतान की लालसा स्त्रियों में इतनी प्रबल होती है कि जिस स्त्री के बालक नहीं होते, उसका मन किसी भी मनोरंजन में नहीं लगता।

(३)

खिड़की हीं बैठली रानी त राजा पुकारइँ हो ।
रानी ! एक सँतति बिना कुल हीन, हम होबै जोगी हो ॥१॥
जो तुहुँ ए राजा जोगी होब हमहुँ जोगिन होबै हो ।
राजा नगर पइठि भीख मँगबै दुनऊँ जने खाबइ हौ ॥२॥
एकल पेड़ कदम कइ मोतियन करहइ हो ।
रामा तेही तर ठाढ़ भगवान त बालक उरेहइँ हो ॥३॥
राम ही राम पुकारीला राम नाहीं बोलइँ हो ।
राम हमरी कवन तकसिरिया त मुखवउ न बोलउ हो ॥४॥
कोऊ के दिये राम दुइ चार कोऊ के दस-पाँच हो ।
राम हमरी नगरिया काहे भूलल त हमरी कवन गति ॥५॥
रजवा तो हउएँ बहेलिया त रनियाँ बहेलिनि हो ।
राजा केतनेक जियरा बझउलैं सँतति नाहीं पइहइँ हो ॥६॥
सास ससुर नाहीं मनलू त ननदा तुकरलेउ हो ।
रानी जेठ क परछाहीं न बरवलू त भुललैं नरायन ॥७॥
सास ससुर हम मानब ननदा दुलारब हो ।
राम जेठ क परछहियाँ बरइबै समुझैं परमेसर ॥८॥

मोरे पिछवरवाँ बढ़इया बेगि ही चलि आवउ हो।
बढ़ई गढ़ि देहू काठे क बलकवा मैं जियरा बुझावउँ—
मन समुझावउँ हो ॥९॥
काठे क बलक गढ़ि दिहलैं अँगने धरी दिहलइँ हो।
बाबुल मोरे अँगने रोइ न सुनावउ बझिनि कहावउँ हो ॥१०॥
दैव गढ़ल जो मैं होतेउँ तो रोइ सुनउतेउँ हो।
रानी बढ़ई क गढ़ल होरिलवा रोवन नाहीं जानइ हो ॥११॥

रानी खिड़की में बैठी हुई थीं। राजा ने पुकार कर कहा—हे रानी! हम संतति बिना कुल-हीन हैं। मैं जोगी होना चाहता हूँ ॥१॥

रानी ने कहा—हे राजा! तुम जोगी होगे तो मैं जोगिन होऊँगी। हम दोनों गाँव से भीख माँगकर लायेंगे और खायेंगे ॥२॥

कदम्ब का एक पेड़ है। जिसमें मोती फूल रहे हैं। भगवान् उसके नीचे खड़े होकर बालक रच रहे हैं ॥३॥

राजा ने राम, राम कहकर पुकारा। पर राम नही बोले। राजा ने कहा—हे राम! मेरा क्या अपराध है, जो तुम मुँह से नहीं बोलते? ॥४॥

हे राम! तुमने किसी को तो दो-दो चार-चार बालक दिये। किसी को दस-पाँच। भला, तुम मेरे गाँव को कैसे भूल गये? मेरी क्या दशा होगी? ॥५॥

राम ने कहा—राजा! तू तो पूर्व-जन्म में बधिक था। तेरी रानी बधिकिन थी। तू ने कितने ही जीवों को फँसाया था। तुझे संतति नहीं मिलेगी ॥६॥

हे रानी! तू ने सास-ससुर की इज्जत नहीं की। ननद को तू ने 'तू' करके पुकारा। जेठ की परछाईं से परहेज नहीं रक्खा। इसीसे भगवान भी तुझको भूल गये। इसीसे तुझको भी संतान नहीं मिलेगी ॥७॥

रानी ने कहा—हे राम! मैं अब सास-ससुर को मानूँगी। ननद

को दुलारूँगी। जेठ की परछाई भी बचाऊँगी। तुम मेरे हृदय की व्यथा समझो ॥८॥

रानी कहती हैं—मेरे पिछवाड़े बढ़ई रहता है। हे बढ़ई! जल्दी आओ। मेरे लिये काठ का एक लड़का गढ़ दो। मैं उससे जी बहलाऊँगी ॥९॥

बढ़ई ने काठ का बालक गढ़ दिया और आँगन में लाकर रख दिया। रानी ने कहा—हे बेटा! मेरे आँगन में रोकर मुझे सुनाओ। मैं बाँझ कहलाती हूँ, मेरा यह कलंक तो मिटे ॥१०॥

काठ के बालक ने कहा—मैं यदि भगवान् का बनाया होता तो रोकर सुनाता भी। हे रानी! बढ़ई का गढ़ा हुआ बालक रोना नहीं जानता ॥११॥

इस गीत में पुत्र-हीन माता-पिता का कैसा करुणाजनक मज़ाक है! सारा गीत एक सुन्दर नाटक के प्लाट की तरह मनोहर है। पुत्र के लिए राजा-रानी का तप करने जाना, वन में भगवान् से मिलना, प्रश्नोत्तर करना, पुत्र-हीन होने का कारण जानना, भविष्य के लिए सत्कर्म की प्रतिज्ञा करना, घर लौट आना, घर में मन बहलाने के लिए काठ का लड़का बनवाना और उस निर्जीव बालक से भी संतोष न मिलना, एक से एक बढ़कर रोचक सीन इस गीत-रूपी नाटक में है। पुत्र-हीन दम्पति की बड़ी ही विचित्र अन्तर्पीड़ा इस गीत में छिपी हुई है।

(४)

सोरहों सिंगार सीता कइलीं अटरिया चढ़ि गइलिनि हो।
रघुनन्दन क डासल सेज सिरहाने ठाढ़ी भइलिनि ॥१॥
पलक उघारि राम चितवइँ अभरन देखि भरमइँ।
सीता कवन जरूर तोहरे लागल एतनी राति अइलिउ ॥२॥
काहें लागी कइलू सिंगार काहें रे लागी अभरन।
सीता काहें लागी चढ़लिउ अटरिया देखत ड़र लागइ ॥३॥
आप लागी कइलीं सिंगार आप लागल अभरन।
राजा रौरे तीन लोक क ठाकुर भेंट करै आइउँ ॥४॥

तू हूँ तउ तीन लोक के ठाकुर तोहैं देखि जग डरै।
राजा तिरिया अलप सुकुमारि सेजरिया देखि भरमइ ॥५॥
नइहरै न बाटैं बीरन भइया ससुरे न देवर।
राजा मोरे गोदियाँ न जन्मल बलकवा अहक कैसे पुजिहइँ ॥६॥
लाल पियर न पहिरलीं चउक ना बैठलिउँ।
सीता के ढुरला नयनवन आँसु पटुका राम पोछइँ ॥७॥
लाल पियर पहिरइबइ चउकन बइठइबइ।
रानी तोहइँ रखबइ पगड़िया के पेंच नयनवाँ के भीतर ॥८॥

सीता सोलह श्रृंगार करके अटा पर चढ़ गई। वहाँ रामचन्द्रजी की सेज बिछी थी। सीता सिरहाने खड़ी हुई ॥१॥

राम ने पलक उठाकर देखा। गहने देखकर वे चकित हुए। उन्होंने पूछा—हे सीता! ऐसी क्या जरूरत पड़ी जो तुम इतनी रात में यहाँ आई हो? ॥२॥

किसलिए तुमने श्रृंगार किया? और किसलिए गहने पहने हैं? हे सीता! तुम किसलिए अटा पर आई हो? देखकर मुझे आशंका होती है ॥३॥

सीता ने कहा—हे नाथ! आपके लिए मैंने श्रृंगार किया है और आपके लिए ही गहने पहने हैं। आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। मैं आप से भेंट करने आई हूँ ॥४॥

आप तो तीन लोक के ठाकुर हो। आपको देखकर तो सारा संसार डरता है। मैं तो एक नादान, अल्पवयस्का, सुकुमार स्त्री हूँ। सेज देखकर मैं चकित होती हूँ ॥५॥

न तो मेरे नैहर में कोई भाई है, न ससुराल में देवर। हे राजा! मेरी गोद में कोई बालक भी नहीं। मेरी लालसा कैसे पूरी हो ॥६॥

न मैंने कभी लाल-पीली साड़ी पहनी, न वेदी पर बैठी। यह कहते-कहते सीता के नयनों से आंसू बहने लगे। राम दुपट्टे से उसे पोंछने लगे ॥७॥

राम ने कहा—हे रानी! मैं तुमको लाल-पीला वस्त्र पहनाऊँगा। वेदी पर बैठाऊँगा। सीता! मैं तुमको अपनी पगड़ी में सरपेंच की भाँति शीर्ष-स्थान दूंगा और आँखों के भीतर रक्खूंगा ॥८॥

विषय-सुख की अपेक्षा माता होने की लालसा स्त्रियों में अधिक बलवती होती है। पूर्वकाल में, जब के बने ये गीत हैं, स्त्री-पुरुष विषय-वासना की तृप्ति के लिए विवाह नहीं करते थे, बल्कि संतान और समाज की सेवा के लिए वे धर्म के अटूट बंधन में अपने को बाँधते थे। इसीसे इस गीत के राम और सीता अलग-अलग सोते थे। यकायक शयनागार में सीता का आना राम को आनन्द-वर्द्धक नहीं, बल्कि आश्चर्यजनक और भय-कारक जान पड़ा था।

आजकल इसके बिल्कुल विपरीत है। क्योंकि अब स्त्री-पुरुष दोनों आर्यों के प्राचीन आदर्श से अलग हो गये हैं। अब तो स्त्री का पुरुष से अलग रहना ही आश्चर्य और भय की बात समझी जाती है।

(५)

सासू मोरी कहेलि बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो।
रामा जिनकी मैं बारी रे बियाही उइ घर से निकारेनि हो ॥१॥
घरवाँ से निकरि बँझिनियाँ जङ्गल बिच ठाढ़ी हो।
रामा बन से निकरी बघिनियाँ तो दुखु सुखु पूँछइ हो॥
तिरिया! कौनी विपतिया कै मारी जङ्गल बिच ठाढ़ी हो ॥२॥
सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो।
बाघिन! जिनकी मैं बारीबियाही उइ घर से निकारेनि हो।
बाघिन! हमका जो तुम खाइ लेतिउ बिपतिया से छूटित हो ॥३॥
जहवाँ से तुम आइउ लउटि उहाँ जाओ तुमहिं नाहीं खइबइ हो।
बाँझिनि! तुमका जो हम खाइ लेबइ हमहुँ बाँझिन होबइ हो ॥४॥

उहाँ से चलेलि बँझिनियाँ बिबउरी, पासे ठाढ़ी हो।
रामा बिबउरि से निकरेलि नगनियाँ तो दुखु सुखु पूँछइ हो ॥
तिरिया ! कौनी विपतिया कै मारी बिबउरी पासे ठाढ़ी हो ॥५॥
सासु मोरी कहेलि बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो।
नागिन! जिनकी मैं बारी रे बियाही उइ घर से निकारेनि हो।
नागिनि ! हमका जो तुम डसि लेतिउ विपतिया से छूटित हो ॥६॥
जहवाँ से तुम आइउ लउटि तहाँ जावो तुमहिं नाहीं डसिबइ हो।
बाँझिनि! तुमका जो हम डसि लेबइ हमहूँ बाँझिनि होबइ हो ॥७॥
उहवाँ से चलली बँझिनिया मइया द्वारे ठाढ़ी हो।
भितरा से निकरी मयरिया तो दुखु सुखु पूँछइ हो ॥
बिटिया कउनि विपति तुमरे ऊपर उहाँ से चली आइउ हो ॥८॥
सासु मोरी कहेलि बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो।
मइया ! जिनकी मैं बारि रे बियाही उइ घर से निकारेनि हो।
मइया ! हमका जो तुम राखि लेतिउ विपतिया से छूटित हो ॥९॥
जहवाँ से तुम आइउ लउटि उहाँ जाओ तुमहिं नाहीं रखबइ हो।
बिटिया तुमका जो हम राखि लेबइ बहू बाँझिनि होइहइँ हो ॥१०॥
उहवाँ से चलेली बँझिनियाँ जङ्गल बिच आई हो।
धरती ! तुमहीं सरन अब देहु बँझिनि नाम छूटइ हो ॥११॥
जहवाँ से तुम आइउ लउटि उहाँ जाओ तुमहिं हम न राखब हो।
बाँझिनि ! तोहँका जो हम राखि लेई हमहुँ होब ऊसर हो ॥१२॥

मेरी सास मुझे बाँझ कहती है और ननद कहती है कि तू ब्रजबासिन अर्थात् गोपियों की तरह सदा कुमारी है। हे राम ! बालावस्था में जिनसे मेरा बिवाह हुआ था, उन्होंने भी मुझे घर से निकाल दिया ॥१॥

बाँझ स्त्री घर से निकलकर जंगल के बीच में खड़ी है। जंगल में से

बाघिनी निकली। वह बाँझ से उसका सुख-दुख पूछने लगी। हे स्त्री! तुझ पर ऐसी क्या विपत्ति पड़ी है जो तू इस भयानक जंगल में अकेली खड़ी है? ॥२॥

स्त्री ने कहा—हे बाघिनी! मेरी सास मुझे बाँझ कहती है, और ननद ब्रजबासिन बताती है। जिनकी मैं विवाहिता हूँ, उन्होंने बाँझ कहकर मुझे घर से निकाल दिया है। हे बाघिनी! यदि तुम मुझे खा लेती तो मैं इस विपत्ति से छूट जाती ॥३॥

बाघिनी ने कहा—तुम जहाँ से आई हो, वहीं लौट जाओ। मैं तुम्हें न खाऊँगी। यदि मैं तुमको खा लूँ तो मैं भी बाँझ हो जाऊँगी ॥४॥

बाँझ वहाँ से चलकर साँप की बाँबी के पास पहुँची। बाँबी में से नागिन निकली। उसने बाँझ का सुख-दुख पूछा। हे स्त्री! किस विपत्ति के कारण तुम बाँबी के पास आई हो? ५॥

स्त्री ने कहा—मेरी सास मुझे बाँझ कहती है और ननद कहती है कि तू ब्रजबासिन है। जिनके साथ मेरा विवाह हुआ है, उन्होंने भी बाँझ समझकर मुझे घर से निकाल दिया है। हे नागिन! यदि तुम मुझे डस लेती तो मैं विपत्ति से छूट जाती ॥६॥

नागिन ने कहा—जहाँ से तुम आई हो, वहीं लौट जाओ। मैं तुम्हें डस लूँगी तो मैं भी बाँझ हो जाऊँगी ॥७॥

बाँझ वहाँ से चलकर अपनी माँ के द्वार पर आकर खड़ी हुई। माँ घर में से बाहर निकली और उसने बेटी का सुख-दुख पूछा। हे बेटी! तुझ पर ऐसी क्या विपत्ति पड़ी जो तुम वहाँ से चली आई? ॥८॥

बेटी ने कहा—हे माँ! सास मुझे बाँझ कहती है। ननद ब्रजबासिन कहती है। हे माँ! जिनसे मेरा विवाह हुआ था, उन्होंने मुझे बाँझ कहकर घर से निकाल दिया। हे माँ! यदि तुम मुझे अपने घर में रख लेती, तो मैं विपत्ति से छुटकारा पा जाती ॥९॥

माँ न कहा—जहाँ से तुम आई हो; वहीं लौट जाओ। मैं तुम्हें अपने

यहाँ नहीं रहने दूँगी । यदि मैं तुम को रख लूँ, तो मेरी बहू बाँझ हो जायगी ॥१०॥

बाँझ वहाँ से चलकर जंगल में आई और धरती से बोली—हे धरती माता ! तुम्हीं अब मुझे शरण दो ॥११॥

धरती ने कहा—जहाँ से तुम आई हो, वहीं लौट जाओ। हे बाँझ ! यदि मैं तुमको रख लूँगी, तो मैं भी ऊसर हो जाऊँगी ॥१२॥

हा ! हिन्दू-समाज में स्त्री का बाँझ होना कितने परिताप का विषय है ! बाँझ से बाघिन और नागिन तक घृणा करती है। यहाँ तक कि असली माता और सब की आश्रय-दाता पृथ्वी भी बाँझ को स्थान नहीं देतीं। हिन्दू-समाज की रचना ही इस प्रकार की हुई है कि उसमें बाँझ के लिए आदर का स्थान नहीं है। इससे प्रत्येक स्त्री संतानवती होने ही में अपना गौरव और कल्याण समझती है।

(६)

सोने के खड़उवाँ राजा दसरथ बेइली तर ठाढ़ भये।
बेइली ! पतवा कँचन अस तोर तो फल कैसे निरफल हो ॥१॥
भल बउरानेउ राजा दसरथ किन बउरावा हो।
राजा ! तोहरे घर रनिया कौसिल्ला त उनहीं से पूँछउ हो ॥२॥
सोने के खड़उवाँ राजा दसरथ वेदिया पर ठाढ़ भये।
मोरी रानी काहे तोहरा बदन मलीन कँवल नाहीं हुलसइ हो ॥३॥
भल बउराने राजा दसरथ किन बउरावा हो।
राजा बिनु रे सन्तति कुल हीन कँवल कैसे हुलसइ हो ॥४॥
सोनवा तौ हमरे गिनती नाहीं चँदिया के ढेर लागल रे।
मोरी रानी ! बरहा भवन कै अजोधिया दुनौं जने भेलसब हो ॥५॥
सोनवाँ तो मोरे लेखे राखी भा चँदिया तो माटी भा है।
राजा ! बरहा भवन कै अजोधिया तो मोरे लेखे जरि गैहै हो ॥६॥

तू राजा होउ तपसिया तौ हम धना तपसिन हो।
मोरे राजा ! बिन्दरावन कै कुटियवा दूनों जने तप करबइ हो ॥७॥
बन से निकरे एक जोगिया तो राजा से पूँछइँ हो।
राजा कवन सँकट तोहरे जियरा तो मधुबन तप करउ हो ॥८॥
का रे कहउँ मोरे जोगिया तौ का तुम पूँछेउ रे।
जोगिया बिन रे सन्तति कुलहीन तो मधुवन तप करउँ हो ॥९॥
झोलिया से काढ़िनि भभुतिया तो राजा का दीहिनि रे।
राजा आठ रे महीना नौ लागत राम जनम लेइहइँ,
अजोधिया राज खेइहइँ हो ॥१०॥
आठ महीना नौ लगतै श्रीरामजी जनम लीन्हे हो।
ए हो बाजै लागी अनँद बधैय्या उठन लागे सोहर हो ॥११॥
सभवै बइठे हैं राजा दसरथ सुनहु कौसिल्ला रानी हो।
रानी उहइ बेइलिया कटइबइ त जिन मोका बोली बोला हो ॥१२॥
मचियै बइठी कौसिल्ला रानी सुनो राजा दसरथ हो।
मोरे राजा ! दुधवन बेइली सिंचइबइ त जिन
मोका बुद्धि दिये हो ॥१३॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए राजा दशरथ लता के नीचे खड़े हुए। राजाने पूछा—लता! तुम्हारा पत्ता तो सोने-जैसा है, पर तुम में फल क्यों नहीं हैं? ॥१॥

लता ने कहा—राजा दशरथ ! तुम्हारी मति मारी गई है क्या ? तुम्हारे घर में कौशल्या रानी हैं, उनसे क्यों नहीं पूछते ? ॥२॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए राजा दशरथ वेदी पर आकर खड़े हुए। उन्होंने रानी से पूछा—रानी ! तुम्हारा मुह उदास क्यों है ? हृदय-कमल विकसित क्यों नहीं है ? ॥३॥

रानी ने कहा—राजा ! आपकी मति किसने हर ली है ? बिना संतान के हृदय-कमल कैसे विकसित हो सकता है ? ॥४॥

राजा ने कहा—मेरी प्यारी रानी! मेरे घर में सोने की गिनती नहीं। चाँदी के ढेर लगे हुए हैं। अयोध्या में हमारे बारह महल हैं। हम दोनों सुख भोगेंगे ॥५॥

रानी ने कहा—सोना मेरे लिये राख और चाँदी मिट्टी है। संतान बिना मेरे लिए बारह महलों की अयोध्या जल गई है ॥६॥

हे राजा! तुम तपस्वी बनो और मैं तपस्विनी। दोनों चलकर बृन्दा-वन में तप करें ॥७॥

दोनों तप करने लगे। वन में एक योगी निकले। उन्होंने पूछा—हे राजा! तुम्हारे प्राण पर क्या संकट पड़ा है जो तुम तप कर रहे हो? ॥८॥

राजा ने कहा—हे योगी! मैं तुमको क्या बताऊँ? बिना संतान के हम कुलहीन हैं, इससे तप कर रहे हैं ॥९॥

योगी ने अपनी झोली में से विभूति निकालकर राजा को दी और कहा—हे राजा! नवाँ महीना लगते ही तुम्हारे घर में राम जन्म लेंगे और अयोध्या का राज खेयेंगे ॥१०॥

आठवें के बाद नवाँ महीना लगते ही राम ने जन्म लिया। आनंद की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा ॥११॥

राजा को लता का ताना भूला नहीं था। सभा में बैठे हुए उन्होंने रानी कौशल्या से कहा—हे रानी! मैं उस लता को कटा डालूँगा, जिसने मुझे ताना मारा था ॥१२॥

मचिया पर बैठी हुई रानी कौशल्या ने कहा—हे राजा! सुनो; उस लता को दूध से सिंचाओ, जिसने मुझे बुद्धि दी है। अर्थात् निस्संतान होने की याद दिलाकर मुझे संतान-प्राप्ति के लिए उत्साहित किया है ॥१३॥

संतान-हीन होना बड़ी लज्जा की बात है। निस्संतान व्यक्ति का मजाक एक लता भी उड़ा सकती है। इस गीत की अंतिम पंक्तियों से पुरुष और स्त्री के स्वभाव का भी पता चलता है। पुरुष में बदला लेने की प्रवृत्ति बहुत होती है। राजा दशरथ को लता का ताना भूला नहीं था, और वे उसे कटाने जा रहे थे। पर स्त्री का हृदय क्षमाशील होता है। कौशल्या ने लता

के ताने को और ही रूप दे दिया। उन्होंने उसे क्षमा ही नहीं किया, वल्कि उसे दूध से सिंचाने की भी इच्छा प्रकट की। पुरुष कठोर गुणों का समूह होता है और स्त्रियाँ कोमल गुणों की।

(७)

भोर भये भिनुसार चिरइया एक बोलइ।
राजा झपटि के खोलइँ केवरिया हेलिनि डीठि परि गै।
परि गइ हेलिनिया क डीठि राजै के मुख ऊपर ॥१॥
हेलिनि बिनवै हेलवा सँग अपने पुरुख सँग।
हेलवा आजु देखेउँ निरबंसी गुसइयाँ कैसे पुरवैं ॥२॥
चुप रहु हेलिनी छिनारि तैं जतिया क पातरि।
तीन भुअन कर राजा कहेउ निरबंसी ॥३॥
चुप रहु हेलवा दहिजरा तैं जतिया क पातर।
हेलवा तीनि उन्हा करि रानी तीनों जनि बाँझिनि ॥४॥
यतना सुनेउ राजा दसरथ जियरा दुखित भये।
राजा गोड़े मूड़े तानेनि दुपटवा सुतैं धौराहर ॥५॥
घरिय घरिय दिन दुपहर पहर न बीतै।
मोरा सिझलै जेवनवा जुड़ाय रजै नाहीं आये ॥६॥
अरे रे राजा जी कै चेरिया त हमरी लउँड़िया।
चेरिया सिझले जेवनवा जुड़ाय रजै नाहीं आये ॥७॥
चेरिया जे चढ़ि गइ अटरिया रजै क जगावइ।
राजा सिझलै जेवनवाँ जुड़ाय विकल रनिवासै ॥८॥
राजा जे आये हैं महलिया बेदिया चढ़ि बइठें।
राजा कौन बिरोग तुमरे जियरा त हमसे बतावहु ॥९॥
पाँच पदारथ मोरे घर छठयें नरायन।
रानी जतिया क पातर हेलिनियाँ कहइ निरबंसी ॥१०॥

बाउर हो राजा बाउर किन बउरावा।
राजा जो विधि लिखा है लिलार तहैं भरि पाउब ॥११॥
बाउर हो रानी कौसिल्ला किन बउराई।
रानी देहु न हमरा अयनवा देखहुँ मुख आपन ॥१२॥
ऐनहु लइ मुख देखिन जियरा दुखित भयें।
रानी करर बरर होइगे बार गोसइयाँ कैसे पुरवैं ॥१३॥
बाउर हो राजा बाउर किन बउरावा।
राजा जो विधि लिखा है लिलार तहैं भरि पाउब ॥१४॥
बाउरि हो रानी कौसिल्ला किन बउराई।
रानी देहु न मोरि बैसखिया मैं तप करइ जाबइ ॥१५॥
एक बन डाकैं दुसर बन तीसरे बिन्द्रावन।
बिन्द्रैबन के बिचवाँ त राजा ध्यान लायनि ॥१६॥
बन से निकरेनि एक तपसी पुछैं राजा दसरथ।
कौन बिरोग तुमरे जियरा जो इतनी दूरि आये ॥१७॥
पाँच पदारथ मोरे घर छठयें नरायन।
तपसी जतिया क पतरी हेलिनिया कहइ निरबंसी ॥१८॥
जाहु रजै घर अपने पूत तोरे होइहइँ।
राजा सुनि लिहें तोहरी पुकार जगत कै मालिक ॥१९॥
होत बिहान लोहि फाटत होरिल जनम लिहें,
। राम जनम लिहें।
बाजै लागी अनन बधइयां गावैं सखि सोहर ॥२०॥
घर घर फिरैं राजा दसरथ पंडित बुलावइँ।
पंडित खोलहु न पोथिया पुरान तो सुघरी बिचारहु ॥२१॥

बहुतै सुघरी रामा जनमें तो रोहनी नखत में।
राजा बारह बरस के होइहइँ त बन के सिधरिहइँ ॥२२॥
बभना के पूत जौ न होतेउ त जियरा मरवउतेंउ।
मोरि इतनी तपस्या के राम त बन के सुनायेउ ॥२३॥
मन कै दुखित राजा दसरथ सुतें धवराहर।
मन कै उछाहिल कौसिल्ला रानी पटना लुटावइँ ॥२४॥
बाउर हो रानी कौसिल्ला किन बउराई।
रानी धीरे धीरे पटना लुटावउ राम बन जइहइँ ॥२५॥
बाउर हो राजा दसरथ किन बौरावा।
राजा छुटल बँझिनिया क नाम भले बन जइहीं ॥२६॥

सबेरा होते ही एक चिडिया बोला करती है। उसकी बोली सुनकर राजा दशरथ ने झपटकर किवाड़ खोला तो मेहतरानी पर उनकी दृष्टि पड़ गई ॥१॥

मेहतरानी की दृष्टि भी राजा के मुख पर पड़ गई। उसने मेहतर से कहा—आज सबेरे ही सबेरे निरबसिये (संतान-हीन) का मुँह देख आई हूँ। देखूँ, ईश्वर क्या करते हैं ? ॥२॥

मेहतर ने कहा—ऐ छिनाल मेहतरानी ! चुप रह। तू नीच जाति की स्त्री है, तूने तीन भुवन के महाराज को निर्वंशी कैसे कहा ? ॥३॥

मेहतरानी ने कहा—दाढ़ीजार मेहतर ! तू चुप रह। तू नीच जाति का पुरुष है। उनके तो तीन-तीन रानियाँ हैं, क्या तीनों बाँझ हैं ? ॥४॥

राजा दशरथ ने यह बात सुन ली और वे मन में बहुत दुःखी हुए। वे सिर से पैर तक चादर तानकर धौरहर पर जाकर सो रहे ॥५॥

कौशल्या चिन्ता करने लगीं—घड़ी-घड़ी कर के दोपहर हो गया। पहले तो एक पहर भी नहीं होता था कि राजा आ जाते थे। रसोई ठंडी पड़ती जा रही है। राजा क्यों नहीं आये ? ॥६॥

ऐ राजा की चेरी ! ऐ मेरी दासी ! रसोई ठंडी हो रही है। राजा नहीं आये ॥७॥

चेरी अटा पर चढ़ गई। उसने राजा को जगाकर कहा—राजा ! रसोई ठंडी हो रही है, सारा रनिवास विकल है ॥८॥

राजा महल में आये। वेदी पर बैठ गये। कौशल्या ने पूछा—राजा ! तुम्हारे जी में क्या दुःख है ? मुझे बताओ ॥९॥

राजा ने कहा—पाँच पदार्थ मेरे घर में हैं। छठें नारायण हैं। हे रानी ! नीच जाति की स्त्री मेहतरानी मुझे निरबसिया कहती है ॥१०॥

रानी ने कहा—तुम बहुत भोले हो। हे राजा ! जो भाग्य में लिखा है, वही मिलेगा ॥११॥

राजा ने कहा—रानी ! तुम पागल हो। ज़रा मेरा दर्पण तो मुझे दो, मैं अपना मुँह तो देखूँ ॥१२॥

राजा ने दर्पण लेकर मुँह देखा। वे दुःखी हुए। बोले—हे रानी ! बाल तो अधपके हो गये। देखें, ईश्वर कैसे बिताता है ? ॥१३॥

रानी ने कहा—राजा ! तुम भोले हो। किसने तुमको भरमाया है ? हे राजा ! जो ब्रह्मा ने माथे में लिख दिया है, वही मिलेगा ॥१४॥

राजा ने कहा—रानी ! तुम्हारी समझ ठीक नहीं। मेरी लाठी लाओ। मैं तप करने जाऊँगा ॥१५॥

एक वन से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में गये तो वृन्दावन मिला। वृन्दावन के बीच में बैठकर राजा ने भगवान का ध्यान किया ॥१६॥

वन में से एक तपस्वी निकले। उन्होंने पूछा—हे राजा ! तुमको क्या दुःख है ? जो तुम इतनी दूर आये हो ॥१७॥

राजा ने कहा—मेरे घर में किसी चीज की कमी नहीं है। पर हे तपस्वीजी ! नीच जाति की स्त्री मेहतरानी ने मुझे निर्वंशी कहा है ॥१८॥

तपस्वी ने कहा—हे राजा ! अपने घर जाओ। तुम्हारे पुत्र होगा। संसार के स्वामी ने तुम्हारी पुकार सुन ली है ॥१९॥

सबेरे पौ फटते ही पुत्र ने जन्म लिया, राम ने अवतार लिया। आनंद की बधाई बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥२०॥

राजा दशरथ घर-घर घूमकर पंडितों को बुला रहे हैं। राजा पूछते हैं—हे पंडित! अपनी पोथी खोलो न? बताओ, लड़का कैसी घड़ी में पैदा हुआ है? ॥२१॥

पंडित ने कहा—बहुत अच्छी घड़ी में राम का जन्म हुआ है। रोहिणी नक्षत्र में जन्म हुआ है। हे राजा! बारह वर्ष के होंगे तो वन को चले जायँगे ॥२२॥

राजा ने कहा—तुम ब्राह्मण के लड़के न होते तो मैं तुम्हें जान से मरवा डालता। इतनी तपस्या के बाद जो राम मुझे मिले हैं, तुमने कहा कि वे वन को चले जायेंगे? ॥२३॥

राजा मन में दुःखी होकर अटा पर जाकर सो रहे। कौशल्या रानी को पुत्र-जन्म से बड़ा उत्साह था। वे धन और वस्त्र लुटाने लगी ॥२४॥

राजा ने कहा—हे कौशल्या रानी! पागल मत हो। किसने तुम्हें बावली कर दिया है? धीरे-धीरे धन और वस्त्र लुटाओ। राम वन को जायँगे ॥२५॥

रानी ने कहा—राजा! तुम्हारी बुद्धि कहाँ है? राम वन को जायँगे तो क्या हुआ? मेरा बाँझ का नाम तो छूट गया ॥२६॥

हिन्दू-समाज में वंश-हीन होना बड़े पाप का फल समझा जाता है। इस विचार की छाप आज भी हिन्दुओं के मस्तिष्क में मौजूद है। वंश-हीन व्यक्ति, चाहे वह राजा दशरथ ही क्यों न हो, मेहतर-द्वारा भी तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है। उच्च समाज में उसकी अप्रतिष्ठा का तो कहना ही क्या?

इस गीत में भी स्त्री की बुद्धि का अच्छा चमत्कार देखने को मिलता है। पुरुष बात-बात में व्यथित हो जाता है; पर स्त्री की बुद्धि आदि से अन्त तक गंभीर और क्रियाशील रहती है।

(८)

अरे अरें श्यामा चिरइया झरोखवै मति बोलहु।
मोरी चिरई! अरी मोरी चिरई! सिरकी भितर बनिजरवा
जगाइ लइ आवउ, मनाइ लइ आवउ ॥१॥
कवने बरन उनकी सिरकी कवने रँग बरदी।
बहिनी! कवने बरन बनिजरवा जगाइ लै आई मनाइ लै आई ॥२॥
जरद बरन उनकी सिरकी उजले रँग बरदी।
सँवर बरन बनजरवा जगाइ लै आवउ मनाइ लै आवउ ॥३॥
सिरकी भितर बनिजरवा सोवहु की जागउ।
मोरे बनिजर तोर धन चिट्ठी लिखि भेजीं उठो चिट्ठी बाँचउ ॥४॥
चिठिया बँचत बनिजरवा हिरदैयाँ लै लगावइ करेज छपटावइ।
अरे मोरे बनजर! तरर तरर चुवै अँसुवा रुमलिया लइ पोंछइ ॥५॥
सवना भदौवाँ अँधियरिया अमवाँ नाहीं बौरइ,
अमिलिया नाहीं झपसइ।
मोरी चिरई! अरी मोरी चिरई! बाऊ बहुरिया कै ठनगन
अमवाँ जे माँगइ अमिलिया जे माँगइ ॥६॥
खैरा सुपरिया घुनन लागे झिंगुर लागे कापड़।
जौ मोरी बरदी बिकइहैं तबै घर आइब ॥७॥
मचियइ बइठी ससुइया तो सुरजा मनावैं।
अरे मोरे सुरजा मेहरी क चाकर मरदवा त अमवाँ ढुँढ़न गए,
अमली ढुँढ़न गये, कब दहुँ आवइँ ॥८॥

हे श्यामा चिड़िया! खिड़की पर मत बोलो। हे प्यारी चिड़िया! सिरकी में मेरा बनजारा (व्यापारी) है, उसे जगा लाओ, उसे मना लाओ ॥१॥

श्यामा ने कहा—हे बहन ! तुम्हारे बनजारे की सिरकी किस रंग की है ? उसकी बरदी किस रंग की है ? बनजारा स्वयं किस रंग का है ? जिसे मैं जगा लाऊँ और मना लाऊँ ।।२।।

स्त्री ने कहा—पीले रंग की तो सिरकी है, सफेद रंग की बरदी है, और साँवले रंग का बनजारा है। उसे जगा लाओ, उसे मना लाओ ।।३।।

श्यामा ने बनजारे के पास जाकर कहा—सिरकी के भीतर सोते हो या जागते ? हे बनजारा ! उठो। तुम्हारी प्यारी स्त्री ने चिट्ठी भेजी है, उसे बाँचो ।।४।।

बनजारे ने चिट्ठी बाँचकर उसे हृदय से लगाया, कलेजे से चिपका लिया। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। रुमाल लेकर वह उसे पोंछने लगा ।।५।।

बनजारा कहने लगा—सावन-भादों का घोर अंधकार; भला आज-कल न आम में बौर आते हैं और न इमली ही फलती है। पर हे मेरी प्यारी चिड़िया ! मेरी भोली-भाली स्त्री का हठ तो देखो; वह आम और इमली माँगती है ।।६।।

मुझे इतने दिन आये हो गये कि खैर-सुपारी में घुन लग गए और कपड़ों में झींगुर। अब तो मेरी बरदी बिकेगी, तभी मैं घर आऊँगा ।।७।।

मचिया पर बैठी हुई सास सूर्य से प्रार्थना कर रही है—हे मेरे सूर्य ! स्त्री का दास पुरुष स्त्री के लिए आम ढूँढ़ने गया है, इमली ढूँढ़ने गया है। पता नहीं, कब आयेगा ।।८।।

इस गीत में पुराने जमाने का चित्र है, जब व्यापारी लोग, जिन्हें बनजारा कहते थे, चीजें लादकर दूर देशों में बेचने जाया करते थे और बहुत दिनों पर लौटते थे। यह बात खास ध्यान देने की है कि उन दिनों स्त्रियाँ भी पढ़ी-लिखी होती थीं और अपने पतियों को पत्र लिखकर भेजा करती थीं। श्यामा पक्षी के हाथ पत्र या संदेशा भेजना तो वैसा ही है, जैसा मेघदूत में मेघ-द्वारा और नल-दमयन्ती की कथा में हंस-द्वारा समाचार भेजे गये थे। आम और इमली पति-पत्नी का खास संकेत है।

(९)

मचियहि बैठी हैं सासू त बहुआ से पूछइँ रे।
बहुआ काहें तोर मुंहा पियरान गोड़ घहरावहि रे॥१॥
लाज सरम कइ बतिया मैं सासूजी से कइसे कहउँ रे।
सासू तोरा पूत छयल छबिलवा अँचरवा पिच डारइँ रे॥२॥
ये अलबेली बहुरिया लछन न लगावहु रे।
दुलहिनि आज के नवयें महिनवाँ होरिल तोहरे होइहैं रे॥३॥
अरे सासूजी के होबइ चेरिया ननद मन हरबइ रे।
अपने राजा के प्रान पियारी होरिल मोरे होइहइँ रे॥४॥

मचिये पर सास बैठी है और बहू से पूछ रही हैं—हे बहू! तुम्हारा मुँह पीला क्यों है? पैर भारी क्यों है? ॥१॥

बहू सोचती है, ठीक जवाब देते हुए मुझे लाज लगती है। फिर वह बोली—हे सासजी! तुम्हारा पुत्र बड़ा छैल-छबीला है, उसने मेरा आँचल मसल दिया है ॥२॥

सास ने कहा—हे अलबेली बहू! बात न बनाओ। हे दुलहिन! आज के नवें महीना तुम्हारे पुत्र होगा॥३॥

बहू मन में कहती है—अरे! मेरे पुत्र होगा! मैं सासजी की चेरी होऊँगी। ननद का मन हर लूँगी और अपने राजा की प्राण-प्यारी होऊँगी।

गर्भवती बहू की कैसी मनोहर अभिलाषा है!

(१०)

चकई पुछहिं सुनु चकवा भोर कब होइहइँ
सुरुज कब उइहइँ रे।
चकई रुकमिनि हरि परदेस घरहि कब अइहइँ रे॥१॥

तौ खेलत मेलत के बेटौना त भैया मोर लागउ रे।
भैया हरि कै लगाई नवरङ्गिया तौ ठाढ़ि सुखाति हवैं रे ॥२॥
खेलत मेलत की बिटियवा त बहिनी मोर लागउ रे।
बहिनी जो रे धनिया कुलवंतिनि सींचि जुगावइँ रे ॥३॥
हाथ के रे काढ़ेन ककनवाँ पायेन कर नूपुर रे।
ये हो सिर धरि लिहेन घइलना नौरङ्ग सींचैं चलि भईं रे ॥४॥
पेड़ धरि सींचैं नवरङ्गिया डार धरि भेंटइँ हो।
येहो आइ गैहै हरि कै सुरतिया तौ छतिया बेहाल भई हो ॥५॥
घिया केरि पुरिया पोवायउँ दुधन कइ जाउरि हो।
ये हो मोरे लेखे माहुर धतुरवा अकेले मोरे हरि बिन हो ॥६॥

चकई चकवे से पूछती है—हे चकवा! सबेरा कब होगा? सूर्य कब उदय होंगे? हे चकवा! रुक्मिणी के स्वामी परदेश से कब आयेंगे? ॥१॥

रुक्मिणी कहती है—हे खेलने-कूदने वाले लड़को! तुम मेरे भाई लगते हो। मेरे प्राणेश्वर की लगाई हुई नारंगी खड़ी सूख रही है ॥२॥

लडकों ने कहा—हे खेलनेवाली लड़की! तुम मेरी बहन लगती हो। जो स्त्री कुलवंती होती है, वह स्वयं सींचकर उसे जगाती है ॥३॥

रुक्मिणी ने हाथ का कंगन काढ़कर रख दिया। पैरों से पाजेब निकालकर रख दिया, और सिर पर घड़ा रखकर वह सींचने चल खड़ी हुई ॥४॥

पेड़ का तना पकडकर वह नारंगी सींचती है और डाल पकड़कर भेंटती है। इतने में प्राणेश्वर की सुध आ जाती है तो वह विह्वल हो जाती है ॥५॥

वह कहती है—मैंने घी की पूरियाँ बनाईं और दूध की खीर। पर प्राणेश्वर के बिना मेरे लिए वह विष-सी मालूम होती है ॥६॥

इस गीत में वियोगिनी का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन है।

(११)

पहिल सपन एक देखेउँ अपने मंदिल में रे।
सासु सपने क करहु बिचार सपन सुभ पावउँ ॥१॥
सपने ससुर राजा दसरथ बगिया लगावइँ हो।
सासु बगिया में फुलइ गुलाब भँवर रस बिलसइ हो ॥२॥
सपने कौसल्ला ऐसी सास तो हमरे महल आईं।
सासु सोने कै दहेंड़िया लिहे ठाढ़ि पुछैं बहुवा कहाँ धरउँ रे ॥३
सपने लखन अस देवर रुमलिया पीठि झारैं,
बिहँसि बतिया बोलइँ हो।
भौजी जौ तोरे होइहैं होरिलवा बछेड़वा हम लेबइ रे ॥४॥
सपने सुभद्रा सेसी ननदा तौ हमरे महल आईं,
बिहँसि बतिया बोलइँ हो।
भौजी जौ तोरे होइहैं होरिलवा कँगन हम लेबइ हो ॥५॥
सपने पुरुष राजा राम अस हमरे महल आयें।
सामी हँसत कमल दूनौं नैन सेजरिया पगु धारइँ हो ॥६॥

मैंने अपने महल में आज पहला स्वप्न देखा। हे सासजी! स्वप्न का विचार कर के बताओ कि यह स्वप्न शुभ है न? ॥१॥

स्वप्न में राजा दशरथ-ऐसे मेरे ससुर बाग लगाते हैं। उस बाग में गुलाब फूला है, जिस पर भौंरे रस ले रहे हैं ॥२॥

स्वप्न में कौशल्या-ऐसी सास मेरे महल में आती हैं; उनके हाथ में सोने की दहेंड़ी (दही की हांड़ी) है। वे पूछती हैं कि बहू! इसे कहाँ रक्खूँ ॥३॥

स्वप्न में लक्ष्मण ऐसे देवर रुमाल से मेरी पीठ झाड़ रहे हैं, हँसकर कह रहे हैं कि भाभी! तुम्हारे पुत्र होगा तो मैं बछेड़ा लेऊँगा ॥४॥

स्वप्न में सुभद्रा ऐसी ननद मेरे महल में आती हैं। वह हँसकर कह रही हैं कि हे भाभी! तुम्हारे पुत्र होगा तो मैं कंगन लूँगी ॥५॥

स्वप्न में राम ऐसे मेरे पति महल में आये। कमल ऐसे नेत्रों से हँसते हुए उन्होंने मेरी सेज पर चरण रक्खा ॥६॥

(१२)

छोट मोट पेड़वा ढेकुलिया त पतवा रे लहालही हो।
रामा ताही तरे ठाढ़ि रे हरिनिया हरिन बाट जोहइ हो ॥१॥
बन में से निकलेला हरिना त हरिनी से पूछल हो।
हरिनी काहें तोर बदन मलीन काहें मुँह पीअर हो ॥२॥
गइलों मैं राजा के दुअरिआ त बतिया सुनि अइलौ हो।
प्यारे आजु छोटे राजा क बहेलिया हरिन मरवइहइँ हो ॥३॥
केइ रै बगिया लगवलें केइ रे आए ढुँढ़ले हो।
हरिनी केकर धनिया गरभ से हरिनवा मरवावलें हो ॥४॥
दसरथ बगिया लगवलें लखन आये ढुँढ़ले हो।
प्यारे रघुवर धनिया गरभ से हरिन मरवावलें हो ॥५॥
कर जोड़ी हरिनी अरज करइ सुनु कौसिल्ला रानी हो
रानी सीता के होइहैं नन्दलाल हमही कुछ दीहब हो ॥६॥
सोनवा मढ़इबों दुहू सिंगवा भोजनवा तिल चाउर हो।
हरिनी भुगतहु अयोधिया क राज अभै बन बिचरहु ॥७॥

एक छोटा-मोटा ढाक का पेड़ है, जो पत्तों से लहलहा रहा है। उसके नीचे हरिनी खड़ी है और हरिन की राह देख रही है ॥१॥

बन में से हरिन निकला और उसने हरिनी से पूछा—हे हरिनी! तुम्हारा मुँह उदास और पीला क्यों है? ॥२॥

हे हरिन! मैं राजा के द्वार पर गई थी। वहाँ मैंने सुना है कि आज छोटे राजा अपने बहेलिये (व्याधा) से हरिन को मरवायेंगे ॥३॥

हे हरिनी ! किसने बाग लगवाया ? बन में आकर किसने खोजा ? और किसकी स्त्री गर्भ से है, जो हरिन मरवायेंगे ? ॥४॥

हे हरिन ! राजा दशरथ ने बाग लगवाया है। लक्ष्मण खोजने आये थे। राम की स्त्री सीता को गर्भ है। उन्हीं के लिये हरिन मारा जायगा ॥५॥

हरिनी कौशल्या के पास जाती है और हाथ जोड़कर विनती करती है—हे रानी ! सीता के पुत्र हो तो मुझे कुछ देना ॥६॥

कौशल्या उसका अभिप्राय समझकर कहती हैं—हे हरिनी ! तुम्हारी बात सच निकलेगी तो मैं हरिन के दोनों सींगों को सोने से मढ़ाउँगी और तिल चावल खाने को दूँगी। तुम जाओ, अयोध्या के राज में सुख भोगो और निर्भय हो कर वन में विहार करो ॥७॥

हरिनी बात करने में बड़ी चतुर थी। स्त्रियाँ प्रायः होती ही हैं।

(१३)

उठत रेख मसि भीजत राम बनै गये हो।
मोरी बरहा बरिस कै उमिरिया मैं कैसे बितइबइ हो ॥१॥
काह राम तोहरे घराँ रहे काह बिदेस गये हो।
रामा हँसि कै न धरेउ अँचरवा न कबहूँ कोहानेउ ॥२॥
कारी चुनरि नाहीं पहिरयों पियरी नाहीं छोर्‌यों हो।
रामा कोरवा न लीन्हेउँ बलकवा छटी नाहीं पूजेउँ हो ॥३॥
छोड़े जाई थ घर भर सोनवाँ महल भर रुपवा हो।
रामा छोड़े जाई थ लहुरा देवरवा पिया के सँग रहवइ हो ॥४॥

रेख भिन रही थी (जरा-सी मोछ निकल रही थी); उस समय राम बन को गये। मेरी बारह बरस की अवस्था, मैं दिन कैसे बिताऊँगी ? ॥१॥

हे राम ! तुम्हारे घर रहने से क्या ? और विदेश जाने से क्या ? न तो तुमने कभी हँसकर मेरा आँचल पकड़ा और न तुम कभी रूठे ॥२॥

पीली धोती पहनकर मैं आई थी, वही पहने हूँ। काली सारी मैंने पहनी ही नहीं। न गोद में बालक लिया, न छठ की पूजा की ॥३॥

सोने से भरा हुआ घर और चाँदी से भरा हुआ महल छोड़कर मैं जा रही हूँ। छोटे देवर को भी छोड़कर जा रही हूँ। मैं अपने प्राणनाथ के साथ रहूँगी ॥४॥

कभी-कभी रूठ जाना भी प्रेम-वृद्धि के लिए आवश्यक जान पड़ता है।

ना हँस कर के कर गहे, ना रिस कर के केस।
जैसे कंता घर रहे, वैसे रहे बिदेस॥

(१४)

राम जे चलेनि मधुबन के माई से अरज़ करइँ।
माई हम तो जाबइ मधुबन के सितै कइसे रखबिउ॥१॥
आँगन कुइयाँ खनइबै सितैहिं नहवैबइ।
बेटा! खाँड़ चिरौंजी खवइबइ हिरदैया बीच रखबइ॥२॥
राम जे चलेनि मधुबन के सीता जे गोहन लागीं।
सीता! हमरे सँग मत चलहु बहुत दुख पउबिउ॥३॥
सहबइ मैं भुखिया पियसिया जेठ दुपहरिया।
पिया देखि हम तोहरी सुरतिया सकल सुख पउबइ॥४॥

राम बन को जा रहे हैं। माँ से प्रार्थना कर रहे हैं—हे माँ! मैं तो बन को जा रहा हूँ, सीता को तुम कैसे रखोगी? ॥१॥

माँ ने कहा—बेटा! आँगन में कुँवा खोदवा लूँगी। वहीं सीता को नहलाऊँगी; खाँड़ और चिरौंजी खिलाऊँगी और हृदय में रखूँगी ॥२॥

राम मधुबन को चले। सीता साथ लगीं। राम ने कहा—सीता! हमारे साथ मत चलो, बहुत कष्ट पाओगी ॥३॥

सीता ने कहा—हे प्रियतम! भूख-प्यास सह लूँगी; जेठ की दुपहरी भी सह लूँगी; हे राम! तुमको देखकर मैं सब सुख पाऊँगी ॥४॥

सच है, पतिव्रता स्त्री को पति के सिवा सुख कहाँ?

(१५)

जउ मैं जनतेउँ ये लवँगरि एतनी मँहकबिउ।
लवँगरि रँगतेउँ छयलबा क पाग सहरवा में गमकत ॥१॥
अरे अरे कारी बदरिया तुहइँ मोरि बादरि।
बादरि! जाइ बरसहु वहि देस जहाँ पिय छाये ॥२॥
बाउ बहइ पुरवइआ त पछुवाँ झकोरइ।
बहिनी दिहेउ केवड़िया ओठँगाइ सोवउँ सुख नीदरि ॥३॥
कि तुहुँ कुकुरा बिलरिआ सहर सब सोवइ।
कि तुहुँ ससुर पहरिआ किवरिआ भुड़कावहु ॥४॥
ना हम कुकुर बिलरिया न ससुरु पहरिआ।
धन! हम अहीं तोहरा नयकवा बदरिया बुलायसि ॥५॥
आधि राति बीति गई बतियाँ नियाई राति चितियाँ।
बारह बरस का सनेहिया जोरत मुर्गा बोलइ ॥६॥
तोरबेउँ मैं मुर्गा क ठोर गटइया मरोरबेउँ।
मुर्गा काहे किहेउ भिनुसार त पियहि बतायउ ॥७॥
काहे क ये रानी तोरबिउ ठोर गटइया मरोरबिउ।
रानी होइ गइ धरमवाँ क जूनि भोर होत बोलइ ॥८॥

हे लवंग! यदि मैं जानती कि तुम इतना महकोगी तो मैं अपने शौकीन पति की पगड़ी तुम्हारे फूल से रँगती, जिससे वह सारे शहर में महकते ॥१॥

हे काली घटा! तुम्हीं मेरी प्यारी घटा हो। हे घटा! वहाँ जाकर बरसो, जहाँ मेरे प्रियतम हैं ॥२॥

पूर्वा हवा बह रही है। कभी-कभी पछवाँ भी झकोरता है। हे ननद! तुम केवाड़ी बन्द कर देना, मैं सुख की नींद सोऊँगी ॥३॥

तुम कुत्ते हो या बिल्ली? या मेरे ससुरजी के पहरेदार हो? सारा शहर तो सो रहा है, तुम कौन हो जो मेरी केवाड़ी खटखटा रहे हो? ॥४॥

न मैं कुत्ता हूँ, न बिल्ली और न तुम्हारे ससुर का पहरेदार ही हूँ। हे प्यारी! मैं तुम्हारा पति हूँ; मुझे घटा बुला लाई है ॥५॥

आधी रात बातों ही में बीत गई। बारह वर्ष के प्रेम को एक करने में सारी रात बीत गई। इतने में मुर्गा बोलने लगा ॥६॥

स्त्री ने कहा—हे मुर्गा! मैं तुम्हारी चोंच तोड़ डालूँगी। तुम्हारी गर्दन मरोड़ दूँगी। तुमने सबेरा क्यों किया? और मेरे प्रियतम को क्यों बतलाया? ॥७॥

पति ने कहा—हे रानी! मुर्गे बेचारे की चोंच क्यों तोड़ोगी और गर्दन क्यों मरोड़ोगी? हे रानी! धर्म का समय हो गया है, इसलिये सबेरा होते ही बोलता है ॥८॥

(१६)

कोठवा से उतरी राधिका अँगनवाँ में ठाढ़ी भईं,
अँगनवाँ में ठाढ़ी भईं रे।
अरे ओ मोरे रामा, हँसि हँसि पूँछहिं जसोदा
काहे बहु अनमनि रे ॥१॥
काह कहौं मोरी सासु कहत मोहे लाज लागइ रे।
अरे ए मोरी सासु, आजु महल मोरे चोरी भई
तिलरी चोराय गई रे ॥२॥
तोरि डारौ हाँथे क हँथेहरा, गोड़े क गोड़ाहर।
अरे ए मोरी बहुआ, ओढ़ि लेहु नित का डुपटवा
त मुरली चुराय लावउ ॥३॥
तोरि डारिन हाँथे का चुड़िला गोड़े का गोड़ाहर।
ओढ़ि लिहिन नित का डुपट्टा त
मुरली चुराइ लाईन रे ॥४॥

बहेरा से आये कन्हैया अँगनवाँ में ठाढ़े भये।
अरे ए मोरे रामा, हँसि हँसि पूछहि जसोदा
काहे बेटा अनमन रे ॥५॥
काह कहौं मोरी माया, कहत मोहिं लाज लागै।
आज बृन्दाबन चोरी भई, मुरली चोराय गई रे ॥६॥
अस जिन जानो राधिका मुरलिया बाँस की है रे।
मुरली में बसे मोरे प्रान, मुरलिया हमरी दै देव रे ॥७॥
अस जिन जान्यो कन्हैया तिलरिया लाह कै है।
अरे ए मोरे कान्हा, तिलरी में लागो हीरा लाल,
तिलरिया हमरे बाप की है ॥८॥

(मुरादाबाद)

राधा कोठे से उतरीं और आँगन में खडी हुई। यशोदा हँसकर पूछने लगी—हे बहू! मन उदास क्यों है? ॥१॥

हे सासु! मैं क्या कहूँ? कहते हुए मुझे लाज लगती है। आज मेरे महल में चोरी हुई है। कोई मेरी तिलरी चुरा ले गया ॥२॥

यशोदा ने कहा—हाथ-पैर के कड़े तोड़ डालो, और हे मेरी बहू! दुपट्टा ओढ़कर तुम भी मुरली चुरा लाओ ॥३॥

राधा ने हाथ की चूड़ी और पैर के कड़े तोड़ डाले और दुपट्टा ओढ़कर वह मुरली चुरा लाई ॥४॥

कन्हैया बाहर से आये और आँगन में खड़े हुए। यशोदा हँसकर पूछने लगीं—हे बेटा! उदास क्यों हो? ॥५॥

हे मेरी माँ! मैं क्या कहूँ? कहते हुए लाज लगती है। आज वृन्दाबन में चोरी हुई, मेरी मुरली चोरी गई ॥६॥

कन्हैया ने राधा से कहा—हे राधा! ऐसा मत समझना कि मुरली बाँस की है। मुरली में मेरा प्राण बसता है। मेरी मुरली दे दो ॥७॥

राधा ने कहा—हे कन्हैया ! ऐसा मत समझना कि तिलरी लाख की है। तिलरी में हीरा और लाल जड़े हैं। वह मेरे बाप की दी हुई है ॥८॥

इसमें विवाह के उपरान्त पति-पत्नी की प्रेम-वर्द्धक छेड़-छाड़ का वर्णन है।

(१७)

मोरे आँगन चन्दन रुखवा त लहर लहर करै हो।
ललना, तेही पर बोलै काग त बोल सुहावन ॥१॥
की काग नैहर से आवा की हरिजी पठावा।
काग कौन सँदेस तुम लायो त बोलिया सुहावन ॥२॥
नहीं हम नैहर से आवा ना हरिजी पठावा।
आज के नवयें महीना होरिल तोरे होइहैं ॥३॥
चुप रहौ काग तू चुप रहौ बैरिनि ना सुनै।
एक तो बिटियही मोरी कोख दुसरे हरि दारुन ॥४॥
आठै नौ मास लागत होरिल जनम भए।
बाजै लागे आनँद बधैया उठन लागे सोहर हो ॥५॥
रान्ह परोसिन माया मोरी और बहिन मोरी।
कगवा क हेरी मँगाओ मैं सोनवा मिढ़ावौं ॥६॥
सोनवाँ मिढ़ौबै वोकै ठोर रूपे दोनौ डखना।
सोने के कटोरिया में दूध भात कगवा क भोजन ॥७॥

(उन्नाव)

मेरे आँगन में चंदन का पेड़ लहलहा रहा है। हे सखी ! उस पर कौवा बोल रहा है। उसकी बोली बड़ी सुहावनी लगती है ॥१॥

हे कौवा ! तुम नैहर से आये हो ? या मेरे प्रियतम ने तुमको भेजा है ? कौन-सा संदेशा तुम लाये हो ? तुम्हारी बोली बड़ी सुहावनी लगती है ॥२॥

न तो नैहर से आया हूँ, न तुम्हारे प्रियतम ने मुझे भेजा है। आज के नवें महीने तुम्हारे पुत्र होगा ॥३॥

हे कौवा! चुप रहो, कहीं बैरिन सुन न ले। एक तो मेरी कोख यों ही कन्या-वाली है, दूसरे मेरे प्रियतम (बार-बार कन्या ही पैदा करने के कारण) मुझसे प्रेम नहीं करते ॥४॥

आठवें के बाद नवाँ महीना लगते ही पुत्र ने जन्म लिया; आनंद की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा ॥५॥

हे मेरी पड़ोसिनो! तुम मेरी माँ हो, मेरी बहन हो, कौवे को खोज लाओ, मैं उसे सोने से मिढ़ाऊँगी ॥६॥

उसकी चोंच और उसके दोनों डखनों को मैं सोने से मिढ़ाऊँगी। सोने की कटोरी में मैं उसे दूध और भात खाने को दूँगी ॥७॥

इस गीत में पुत्र-जन्म से माता को होनेवाली खुशी का वर्णन है। कौवा-जैसा कुत्सित गिना जानेवाला पक्षी भी सुख-दायक वचन बोलने के कारण सोने से मढ़ा जाने का पात्र समझा गया है। इस प्रकार कौवे के बहाने मनुष्य के परिवार में मधुर भाषण की विशेषता भी बताई गई है।

गाँववालों का यह विश्वास होता है कि जब कौवा घर की मुँड़ेर पर काँव-काँव बोलता है, तब घर मे कोई न कोई नया मेहमान आता है।

(१८)

मैं तो पहले जनौंगी धीयरी,
मेरी जौ कोखि होय सुलच्छनो ॥
जाकी गरजति आवैगी बराइति री,
पालिकी चढ़ि आवै साजना ॥१॥
मेरो घरु जो रितो अरु पेटु री,
मेरी धीयरी जमईया लै गयो ॥

मैं तो बहुरि जनौंगी पूतु री,
मेरी जौ कोखि होय सुलच्छनी ॥२॥
जाकी गरजति जायगी बरायत री,
पालिकी चढ़ि आवै कुलबहू ॥
मेरो घरु तौ भरो अरु पेटु री,
मेरी रुनुक झुनुक डोलै कुलबहू ॥३॥

(बदायूँ)

बहू अपने मन की लालसा बतलाती है:—

मैं पहले कन्या जानूँगी; यदि मेरी कोख सुन्दर लक्षण वाली हुई तो। जिसके विवाह के लिये बाजा बजाती हुई बरात आयेगी और दामाद पालकी में चढ़कर आयेगा ॥१॥

हाय! मेरा तो घर भी खाली हो गया और पेट भी; मेरी कन्या को तो दामाद ले गया। अब तो मैं पुत्र जनूँगी, यदि मेरी कोख सुन्दर लक्षण वाली हुई तो ॥२॥

जिसकी बरात बाजा बजाती ई जायगी और बहू पालकी में चढ़कर आयेगी। मेरा घर भी अब भरा-पूरा लगता है और पेट भी। बहू रुन-झुन करती हुई घर में डोल रही है ॥३॥

इस गीत मे गर्भिणी बहू के मन की तरंगें दिखाई गई हैं।

(१९)

एक साध मन उपजी, जो हर पुजवैं।
साहिब! हमरे नैहर लौं जावो पियरी लै आवो ॥१॥
तुम्हरो तो नैहर गोरी दूर बसै, को मेरे जैहे।
घर ही में पियरी रँगैहौं, मैं साध पुजैहौं ॥२॥
भोर होत पौ फाटत होरिल उर धरे।
बजन लागे अनँद बधाये, गावैं सखी सोहरे ॥३॥

बाहर बजै बधैया, भीतर सखी सोहरे।
सात सबद सहनैया ससुर द्वारे बाजै,
बहुत नीको लागै ॥४॥
बरहीं बरस बीरा आये, मलिन घर उतरे॥
मालिन, किन घर बजें बधैया, गावें सखी सोहरे ॥५॥
साहिब, तुम्हरी बहिन घर लाल भये,
तुम्हरे भनिज भये।
उन घर बजै बधैया, गावें सखी सोहरे ॥६॥
जो मैं ऐसी जनतो, बहिन घर लाल भये,
हमरे भनिज भये।
बेंचतों मैं ढाल तलवरिया, कमर कटरिया,
सिर की पगड़िया, पियरी लै आवतो ॥७॥
हँकरो गाँव के बजजवा, बेगि चले आवै,
अरे जल्दी आवै।
बजजा! पँचरँग चुनरी लै आव, बहिनें पहिरावौं
बहिन सुख मानैं ॥८॥
हँकरो गाँव के सुनरा, बेगि चले आवै,
अरे जल्दी आवै।
सुनरा, सोने रुपे खडुआ, लै आव,
भनिजहिं पहिरावौं, बहनोई सुख मानै ॥९॥
हँकरो गाँव के दरजी, बेगि चले आवै, अरे जल्दी आवै
दरजी रेसम का कुरता सिलाव, भनिजहिं पहिरावौं,
बहिन सुख पावै ॥१०॥
(इटावा)

मन में एक इच्छा उत्पन्न हुई है, यदि भगवान उसे पूरी करें। हे स्वामी! मेरे नैहर जाओ और वहाँ से 'पियरी' (पीली धोती) ले आओ ॥१॥

हे गोरे रंगवाली! तुम्हारा नैहर तो बड़ी दूर है, कौन जाय? मैं घर ही में 'पियरी' रँगवा दूँगा; मैं हाँ तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूँगा ॥२॥

सबेरे, पौ फटते ही, पुत्र उत्पन्न हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥३॥

घर के बाहर बधाई बज रही है और घर के भीतर सखियाँ सोहर गा रही हैं। ससुर के द्वार पर सातों स्वरों में शहनाई बज रही है, जो बहुत प्यारी लगती है ॥४॥

बारहवें वर्ष (बहन के विवाह के बाद) भाई आया और मालिन के घर पर ठहर गया। हे मालिन! किसके घर में बधाई बज रही है और सखियाँ सोहर गा रही हैं? ॥५॥

मालिन ने कहा—हे साहब! तुम्हारी बहन के पुत्र उत्पन्न हुआ है; तुम्हारे भाञ्जा हुआ है। इसीसे उस घर में बधाई बज रही है और सखियाँ सोहर गा रही हैं ॥६॥

भाई पछताने लगा—मैं ऐसा जानता कि बहन के पुत्र हुआ है, मेरे भाञ्जा हुआ है, तो मैं अपनी ढाल-तलवार, कमर की कटारी और सिर की पगड़ी बेंचकर बहन के लिए 'पियरी' (पीली धोती) ले आता ॥७॥

गाँव के बजाज को बुलाओ। अरे, जल्दी आओ। हे बजाज! पाँच रंगों में रंगी हुई चूनरी ले आओ; मैं बहन को पहनाऊँ, जिससे मेरी बहन बहुत सुख माने ॥८॥

गाँव के सुनार को बुलाओ। सुनार! जल्दी आओ। हे सुनार! सोने और चाँदी के कड़े बना लाओ; मैं भांजे को पहनाऊँ, जिससे बहनोई प्रसन्न हों ॥९॥

गाँव के दरजी को बुलाओ। दरजी ! जल्दी आओ। हे दरजी ! रेशम का कुरता बना लाओ; मैं भांजे को पहनाऊँ, जिससे बहन सुख पाये ॥१०॥

इस गीत में बहन के लिए भाई का अकृत्रिम प्रेम दिखलाया गया है।

(२०)

छापक पेड़ छिउलिया तौ पतवन घन बन।
ए हो ओहि तरे ठाढ़ी सीतल देई
मनहीं बिसोह करैं हो ॥१॥
को मोरे दुइ खर तुरिहैं त मड़ई बनइहँइ।
ए हो, को मोर दियना जरइहैं
त मड़ई रखइहँइ ॥२॥
वन से जो निकरे बन तपसी
त सीतै समुझावहिं हो।
सीता ! हम तोरा दुइ खर तुरब त मढ़ई छवाइब।
सीता ! हम तोरा दियना जराइब त
मढ़ई रखाइब हो ॥३॥
को मोरा लेीन्हें मुट्ठी भर सोने का छुरवा त
को मोरे धगरीन।
ए हो को मोरे पँजरा बइठइहैं त
बिपती गवाँइब हो।४।
बन से जो निकरी बन तपसिन
सीतै समुझावहिं।
सीता ! हम देबों मुट्ठी भर सोने का छुरवा त
हम तोर धगरीन ॥

सीता! हम तोरे पँजरा बइठाइब त
बिपति गवाँइब हो ॥५॥
भोर भये पहु फाटल लउहर जनम ले ले
जंगल सोहावन हो।
ए हो, हँकरि बोलावहु नग्र के नउआ त
हँकरि बोलावहु हो।
नउवा चारि सोपारी लेइ लेहु
रोचन लेइ जावहु हो ॥६॥
पहिला रोचन राजा दसरथ दुसरा कौसिल्ला रानी।
ए हो, तिसरा रोचन देवर लछिमन,
पिअइ न बतायउ हो ॥७॥
छोटे कदम के रे डाल त राम दतुइन तोरैं।
लछुमन किनके रोचन तुम पायो त
भहर-भहर करै झहर-झहर करै ॥८॥
भाभी जो हमरी सीतलदेई बड़ी गुन आगरि।
भइया, उनहीं के भये नँदलाल रोचन हम पायों।
मोरे सिर भहर भहर करै, झहर झहर करै ॥९॥
जनम तो लेले पूता बड़ी रे विपति में हो,
बड़ी रे सँसति में हो।
पूता जनम जो लेतेउ अजोधिया हमहुँ मुँह देखित ॥१०॥
राजा दसरथ पटना लुटउतें कौसिल्ला रानी अभरन।
रामा तरर तरर चुवै आँसु पटुकवन पोंछइँ ॥११॥

(फैज़ाबाद)

ढाक का एक छोटा-सा पेड़ है, जो पत्तों से खूब सघन हो रहा है। सीता देवी उसी के नीचे खड़ी होकर मन में चिंता कर रही हैं ॥१॥

मेरे लिये कौन खर (सरपत) तोड़ेगा? कौन झोपडी बनायेगा? कौन दिया जलायेगा? और कौन झोपड़े की रखवाली करेगा? ॥२॥

वन में से तपस्वी निकले। उन्होंने कहा—हे सीता! हम तुम्हारे लिये सरपत तोड़ेंगे, झोपड़ी बनायेंगे, दिया जलायेंगे और झोपड़ी की रखवाली करेंगे ॥३॥

सीता फिर चिंता करने लगीं—मेरा यहाँ कौन है जो सोने की मूठ वाला छुरा लेगा? कौन मेरी धगरिन (नाल काटने वाली चमारिन) होगी? मेरी बच्चादानी कौन बैठायेगा? और कौन मेरी विपत्ति हरेगा ॥४॥

वन में से तपस्विनियाँ निकलीं। उन्होंने कहा—हे सीता! हम सोने की मूठ वाला छुरा लायेंगी; हम धगरिन होंगी; हम तुम्हारी बच्चादानी बैठायेंगी, और विपत्ति में सहायक होंगी ॥५॥

सबेरा हुआ। पौ फटा। पुत्र उत्पन्न हुआ। जंगल सुहावना लगने लगा। अरे, दौड़कर नगर के नाई को तो बुला लाओ। हे नाई! चार सुपारियां ले लो और रोचन लेकर जाओ ॥६॥

पहला रोचन राजा दशरथ को, दूसरा रानी कौशल्या को और तीसरा देवर लक्ष्मण को देना; पर पति (रामचन्द्र) को न बताना ॥७॥

कदम्ब का छोटा-सा पेड़ है। उसकी डाल से राम दातुन तोड़ रहे हैं। हे लक्ष्मण! तुमने यह रोचन किसका पाया है, जो तुम्हार माथे पर दमक रहा है? ॥८॥

लक्ष्मण ने कहा—मेरी भावज जो सीता देवी हैं, जो गुणागार हैं, हे भाई! उन्हीं के पुत्र उत्पन्न हुआ है। उन्ही का यह रोचन मैंने पाया है, जो मेरे माथे पर दमक रहा है ॥९॥

राम मन में कहने लगे—हे पुत्र! जन्म तो तुमने बड़ी विपत्ति में लिया। हे पुत्र! तुम अयोध्या में जन्में होते तो मैं भी तुम्हारा मुंह देखता ॥१०॥

तुम्हारे जन्म की खुशी में राजा दशरथ नगर लुटाते और रानी कोशल्या गहने लुटातीं। राम की आँखों से तरर-तरर आँसू बहने लगे; जिन्हें वे दुपट्टे से पोंछते हैं ॥११॥

राम के जीवन-चरित्र में सीता का वन-वास एक ऐसी घटना है, जो पत्थर के कलेजे को भी पिघला सकती है। हिंदी के भक्त कवियों ने इस घटना को छिपाने ही का प्रयत्न किया है; पर स्त्रियों ने इस विषय को लेकर अपने गीतों में पति-पत्नी के मनोभावों के बड़े ही करुणापूर्ण चित्र खींचे हैं। वन में सीता को पुत्र हुआ है; सीता ने घर के सब लोगों को रोचन भेजा, केवल पति को नहीं। पति को इससे जो मनोवेदना हुई होगी, वह अनुभव की बात है; शब्दों में वह व्यक्त नहीं की जा सकती।

सीता के वन-वास के समय राजा दशरथ जीवित नहीं थे। पर गीत एक गृहस्थ के पूरे कुटुम्ब के लिये रचे गये हैं, जिसमें पिता, माता, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री और पतोहू सब हैं, और राजा दशरथ का परिवार उसका एक आदर्श है। इसलिये गीतों में राजा दशरथ से अभिप्राय किसी भी कुटुम्ब के पिता से है, और रानी कौशल्या का घर की स्वामिनी से।

(२१)

कि गुन अमवा बउरलै अरे ना जानों कौने गुन।
कि अरे अमवा तोके मलिया जो सींचेला कि
अपने गुन ॥१॥
नाहीं मोके मलिया जो सींचेला नाहीं हम अपने गुन॥
रिमकि झिमकि दैव बरिसै उनके जो बुन्द परे॥२॥
बहुआ होरिल बड़ सुन्दर ना जानौं कौने गुन॥
मोरी बहुआ की तू खइलू नौरँगिया की पेट गुन॥३॥
नाहीं हम खइली नौरंगिया नाहीं मोरे पेट गुन॥
लगिलिउँ ससुइयाजी के गोड़ त उनके धरम गुन ॥४॥

बहुआ चउक बड़ सन्दर ना जानि कौने गुन।
किय तोहरी सुघरी नउनियाँ की तोहरे आँगन गुन ॥५॥
नाहीं मोरी सुघरी नउनियाँ नाहीं मोरे आँगन गुन॥
सैयाँ मोर तप व्रत कीन्ह तौ उनके धरम गुन॥
ललना, जिअरा में भरा है हुलास सबै लागइ सुन्दर॥६॥
(बिजनौर)

आम में बौर लगे हैं; क्या कारण है? हे आम! तुम को माली ने सींचा है, इस कारण से बौर लगा है? या तुम अपने ही प्रभाव से बौरे हो? ॥१॥

न माली के सींचने से और न अपने ही प्रभाव से मुझमें बौर लगा है। आकाश से जो रिमझिम करके वृष्टि हुई है, उसी की बूँदें पड़ने से बौर लगा है ॥२॥

हे बहू! होरिल (शिशु) बड़ा सुन्दर है, क्या कारण है? हे मेरी बहू! तुमने नारंगी खाई थी, उसके प्रभाव से? या तुम्हारी कोख से सुन्दर बालक पैदा होता ही है? ॥३॥

मैंने नारंगी नहीं खाई थी, और न मेरी कोख के कारण ही ऐसा सुन्दर बालक पैदा हुआ है; बल्कि मैंने सासुजी के पैर छुए थे, उन्हीं के धर्म के प्रभाव से ऐसा सुन्दर बालक पैदा हुआ है ॥४॥

हे बहू! चौक बड़ा सुन्दर है। तुम्हारी नाइन (जिसने चौक पूरा था) बड़ी चतुर है? या आँगन ही सुन्दर है? जिससे चौक भी सुन्दर लगता है ॥५॥

न तो मेरी नाइन ही चतुर है, और न आँगन ही सुन्दर है; बल्कि मेरे स्वामी ने बहुत तप-व्रत किया था (जिसके प्रभाव से यह पुत्र हुआ है), उन्हीं के धर्म से यह चौक सुन्दर लगता है। और एक कारण यह भी है कि आज सब के हृदयों में आनन्द भर गया है, इससे सभी चीजें सुन्दर लग रही हैं। ॥३॥

इस गीत से बहुओं को दो शिक्षाएँ मिलती हैं, एक तो सासु के साथ नम्रता-पूर्वक व्यवहार करने की; और दूसरे पति यदि तप और व्रत करे तो उसके प्रभाव से सुन्दर पुत्र की उत्पत्ति होती है।

अंत की कड़ी में कैसी मनोहर और मनोविज्ञान की बात कही गई है, कि यदि हृदय प्रसन्न है तो संसार की सभी चीजें प्रिय लगती हैं।

(२२)

नजर कई मतल बढ़इया पलँगरीआ ढीली सालइ
पलँगारी ढीली सालई रे॥
हे हो निंदिआ कै मतल बहुरिया ओबरिआ लै बिछावइ
ओबरिया लै बीछावइ रे॥१॥
सोने के खरऊआँ कवन रामा मथवन मनि बरइ
मथवन मनि बरइ रे।
राजा निहुरि निहुरि झाँकइ ओबरी
निंदरिया नाहीं आवइ॥२॥
राजा न हो मोरे राजा तुम्हीं मोरे राजा।
राजा, रस देई के बेनिया डोलावा निंदरिआ मोरे आवइ॥३॥
रानी न हो मोरी रानी तुम्हीं मोरी रानी हो।
रानी एक तौ बाबा के दुलरुवा त मैया के पियरवा रे।
रानी तीसरे कचेहरी कै जोति, मैं कैसे बेनिया हाँकउँ
चेरिअवा बेनिया हाँकइ हो॥४॥
राजा न हो मोरे राजा तुम्हीं मोरे राजउ रे।
राजा एकऊ होरिल जो जनमिहै, तो तुम्हीं बेनिया हँकबेउ
तुम्हीं से हँकाउब हो॥५॥

(बाराबँकी)

आँखों का मतवाला बढ़ई पलँग ढीली मालना है। नींद की मतवाली बहू उसे ओबरी (जच्चा-घर) में लेजाकर बिछाती है ॥१॥

अमुक राम, जिनके माथे पर मणि जल रही है, सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए झुक-झुककर ओबरी झाँकते हैं; उन्हें नींद नहीं आती ॥२॥

हे मेरे राजा! तुम्हीं मेरे राजा हो; ज़रा प्रेम से पंखी हाँक दो, तो मुझे नींद आ जाय ॥३॥

हे मेरी रानी! तुम्हीं मेरी रानी हो। एक तो मैं अपने बाप का दुलारा, दूसरे माँ का प्यारा तीसरे कचहरी की ज्योति; भला मैं कैसे पंखी हाँकूँ? पंखी दासी हाँकेगी ॥४॥

हे मेरे राजा! तुम्हीं मेरे राजा हो। एक भी पुत्र मेरे जन्मा, तो याद रखना, तुम्हीं पंखी हाँकोगे। मैं तुम्हीं से हकाऊँगी ॥५॥

इस गीत में पति-पत्नी का चुहल वर्णित है।

(२३)

पावोंमें पेंजनियाँ लाला ठुमुक ठुमुक खेलोगे ॥१॥
अच्छी सुभ घड़ी वा दिन जानूँगी
जा दिन लाला मेरो दादा-दादी बोलोगे ॥२॥
कैं झूलें मेरे पालनों, कै दादी की गोद।
अंदन चंदन को पालनों कै रेसम की डोर ॥३॥
कृष्ण को पालनों बनवाऊँ,
दादी ने गाड़ो पालनो दादा ने बँटा दई डोर ॥४॥
कै झूले मेरे पालनों कै बाबा की गोद ॥५॥
(मुरादाबाद)

हे मेरे लाल! तुम्हारे पैरों में पैंजनियाँ हैं। अब तुम ठुमुक-ठुमुक कर खेलोगे ॥१॥

हे मेरे लाल! मैं उसी को शुभ घड़ी जानूँगी, जिस दिन तुम दादा-दादी बोलोगे ॥२॥

या तो मेरे पालने में झूलो, या दादी की गोद में झूलो ॥३॥
चंदन के पालने में रेशम की डोर लगी है ॥४॥
मैं अपने कृष्ण के लिये पालने बनाऊँगी। दादी ने उसे गढ़ाया है और दादा ने उसके लिये रेशम की डोर बट दी है ॥४॥
या तो तुम मेरे पालने में झूलो, या दादा की गोद में रहो ॥५॥

(२४)

चैतहि कै तिथि नवमी तौ नौबति बाजई हो।
बाजइ दसरथ राजदुआर कौसिल्ला रानी मंदिर हो ॥१॥
मिलहु न सखिया सहेलरि मिलिजुलि चालित हो।
जहाँ राजा के जनमें हैं राम करिय नेवछावरि हो ॥२॥
केउ नावैं बाजू औ बन्द केउ कजरावट हो।
केउ नावैं दखिनवाँ क चीर करहिं नेवछावरि हो ॥३॥
भितराँ से निकरीं कौसिल्ला अँगनवहि ठाड़ी भईं हो।
रानी धई धई हिरदै लगावैं करैं नेवछावरि हो ॥४॥
राम नयन रतनारे कजर भल सोहै हो।
दीन्हों रचि रचि फुआ सुभद्रा तउ पतरी अँगुरियन हो ॥५॥
राम के मथवा लुचुरिया बहुत निक लागइ हो।
जैसे फूलन के बिचवा कलिया बहुत निक लागइ ॥६॥
राम के गोड़वा घुघुरुवा बहुत निक लागइ हो।
नान्हें गोड़वन चलत बकैयाँ देखत राजा दसरथ ॥७॥
जौ यह मंगल गावइँ गाय सुनावइँ हो।
सो तौ तुलसी जगत तरि जाय अमर पद पावइ हो ॥८॥

(फैजाबाद)

चैत महीने की नवमी तिथि है नौबत बज रही है। नौबत राजा दशरथ के द्वार पर और कौशल्या रानी के महल में बज रही है ॥१॥

हे सखियो! आओ, सब मिलजुलकर चलें। राजा के राम जन्मे हैं, उनकी न्योछावर कर आयें ॥२॥

किसी ने बाजूबंद, किसी ने कजरौटा और किसी ने दक्खिनी चीर न्यौछावर किया ॥३॥

कौशल्या रानी भीतर से निकली और आँगन में खड़ी हुई। वह सब को पकड़-पकड़कर छाती से लगाती है और न्यौछावर करती हैं ॥४॥

राम की रतनारी आँखों में काजल बहुत सुहावना लगता है। फूफी सुभद्रा ने उसे अपनी पतली उँगलियों से बहुत बनाकर लगाया है ॥५॥

राम के माथे पर छोटी-छोटी लटें बहुत खिलती हैं; जैसे फूलों के बीच में कलियाँ सुन्दर लगती हैं ॥६॥

राम के पैर में घुंघरू बहुत सुन्दर लगते हैं। राम नन्हें-नन्हें पैरों से 'बकैयाँ' (घुटनों के बल) चलते हैं। राजा दशरथ देख रहे हैं ॥७॥

जो यह मंगल गीत गायेंगे, या गाकर सुनायेंगे, तुलसीदास कहते हैं, वे लोग संसार को पार कर जायेंगे और अच्छी गति पायेंगे ॥८॥

'राजा दशरथ देख रहे हैं', इस कड़ी में प्रत्येक पुत्रवान् पिता के हृदय का सुख भरा हुआ है।

(२५)

राम चले ससुररिया सीतल देइ के नैहर।
उमड़े जनकपुर के लोग त राम के देखन ॥१॥
मचियहि बैठीं कौसिल्ला रानी सिंहासन राजा दसरथ।
राम बहुत दिन लागे ससुररिया निनरिया न लागइ ॥२॥
हँसि हँसि चिठिया पठायेनि बिहँसि ओरहन दीहेनि।
मोरे राम, के तोहें राखेन बेलम्हाई निनरिया न लागइ ॥३॥

हँसि हँसि चिठिया क बाँचेन बिहँसि ओरहन लीहेन।
राम भोरे बिदा होइ जाब ओरहन अब पावा ॥४॥
साँझेनि घोड़वा मलायेन रथ तैयारेन।
राम निहुरि निहुरि माथ नवायेन घरे हम जाबइ ॥५॥
लागि झरोखवाँ सीतल रानी नैनन अँसुवा झारैं।
राम मोह माया अब छोड़ौ घरहि सिधारौ ॥६॥
अगिली के रथ पर राम पिछली पर लछिमन।
बिचली प सीतल रानी तीनिउ घर आयेन ॥७॥

राम ससुराल को चले, जहाँ सीतादेवी का नैहर है। राम को देखने के लिये जनकपुर के लोग उमड पड़े ॥१॥

मचिये पर कौशल्या रानी और सिंहासन पर राजा दशरथ बैठे हैं। कौशल्या ने कहा—हे राजा! राम ने ससुराल में बहुत दिन लगाया, नींद नहीं आती ॥२॥

राजा ने हँसकर चिट्ठी भेजी और मुसकुराकर उलहना भेजा कि हे मेरे राम! किसने तुमको बिलमा रक्खा है? तुम्हारे बिना हमे नीद नहीं आती ॥३॥

राम ने हँसकर चिट्ठी पढ़ी और मुसकुराकर उलहना लिया। उन्होंने निश्चय किया कि सबेरे विदा हो जायेंगे; क्योंकि उलहना आया है ॥४॥

राम ने शाम को घोड़ा मलाया, और रथ तैयार कराया। सबेरे राम ने सब को झुक-झुककर सिर नवाया और कहा—अब हम घर जायँगे ॥५॥

सीता रानी झरोखे पर खडी हैं। उनकी आँखों से आँसू झड़ रहे हैं। वह कहने लगीं—हे राम! अब यहाँ का मोह छोड़ो और घर चलो ॥६॥

आगे के रथ पर राम हैं, पीछे के रथ पर लक्ष्मण और बीच के रथ पर सीता रानी हैं ॥७॥

ससुराल में जाकर और सास-ससुर और नैहर में मौजूद पत्नी के स्नेह का सुख पाकर पति का अपने घर को भूल जाना स्वाभाविक है।

पर माता-पिता का प्रेम-पूर्ण उलहना पाकर वह घर लौटने की जो उतावली करता है, उसमें माता-पिता के लिये उसके हृदय का प्रेम और आदर-भाव भी दर्शनीय है।

(२६)

छापक पेड़ छिउलिया तौ पनवन गहवर।
अरे रामा तिहि तर ठाढ़ी हरिनियाँ त मन अति अनमनि हो ॥१॥
चरनइ चरन हरिनवाँ तौ हरिनी से पूँछइ हों।
हरिनी की तोर चरहा झुरान कि पानी बिन मुरझिउ हो ॥२॥
नाहीं मोर चरहा झुरान न पानी बिन मुरझिउँ हो।
हरिना आजु राजाजी के छट्टी तुम्हें मारि डरिहइँ हो ॥३॥
मचियै बैठी कौसिल्ला रानी हरिनी अरज करइ हो।
रानी ममुवा तौ मिझहीं रसोइयाँ खलरिया हमें देतिउ ॥४॥
पेड़वा से टँगबइ खलरिया त मन ममुझाउब हो।
रानी हेरि फेरि देखबइ खलरिया जनुक हरिना जीतइ हो ॥५॥
जाहु हरिनि घर अपने खलरिया नाहीं देबइ हो।
हरिनी ! खलरी क खँजड़ी मिढ़उबइ त राम मोर खेलिहइँ हो ॥६॥
जब जब बाजइ खँजड़िया सबद सुनि अनकइ हो।
हरिनी ठाढ़ि ढकुलिया के नीचे हरिन क बिसूरइ हो ॥७॥

(सुलतानपुर)

ढाक का एक छोटा-सा, घने पत्तोंवाला पेड़ है, जो खूब लहलहा रहा है। उसके नीचे हरिनी खड़ी है। उसका मन बहुत बेचैन है ॥१॥

चरते-चरते हरिन ने हरिनी से पूछा—हे हरिनी ! तू उदास क्यों है ? क्या तेरा चरागाह सूख गया है ? या तेरा मन पानी की कमी से मुरझा गया है ? ॥२॥

हरिनी ने कहा—हे प्रियतम ! न मेरा चरागाह ही सूखा है और न पानी ही कमी है। बात यह है कि आज राजा के पुत्र की छट्ठी है। आज तुम मारे जाओगे ॥३॥

हरिन मार डाला गया। रानी कौशल्या मचिये पर बैठी है। हरिनी ने उनसे विनती की— हे रानी ! हरिन का मांस तो आपकी रसोई में सीझ रहा है, हरिन की खाल आप मुझे दिलवा दीजिये ॥४॥

मैं खाल को पेड़ से टाँग दूँगी। बार-बार मैं उसे देखूँगी और मन को समझाऊँगी, मानो हरिन जीता ही है ॥५॥

कौशल्या ने कहा—हरिनी ! तुम घर लौट जाओ, खाल नहीं मिलेगी। इस खाल की तो खँजडी बनेगी और मेरे राम उसे बजायेंगे ॥६॥

जब-जब खँजड़ी बजती थी, तब-तब हरिनी उसके शब्द को कान लगाकर सुनती और उसी ढाक के पेड़ के नीचे खड़ी होकर अपने हरिन को बिसूरा करती थी ॥७॥

जिस स्त्री ने इस गीत की रचना की है, उसका हृदय प्रेम के मर्म से अच्छी तरह परिचित जान पडता है। पशुओं में भी वह उसी प्रेम का अनुभव करती है।

'बिसूरइ' शब्द की मिठास देहातवाले ही समझ सकेंगे।

(२७)

सभवाँ बईठल सीरीकृष्ण दूतीअ लईया लावेले हो।
राजा, रउरे महल दुई नारी झगरा नाहीं सूनीले हो ॥१॥
सभवाँ से उठें सीरीकृष्ण त राधा के महल गइल हो।
रानी कवन करेलु तकसीर रुकुमीनी गरीआवेली हो ॥२॥
एतना बचन राधे सुनलीं त सुन हू न पवेलीं हो।
सखीया आव चली ओनकी महलीयाँ, ओरहन देई
आईय हो ॥३॥

अँगना बटोरति चेरीया त अवरी लऊँड़ीया न हो।
रानी अवती बाटीं राधा सवतिया, त रउरे महल
बीच हो ॥४॥
कोने से काढ़ि पलँगीया, राधा के बईठावहु हो।
चेरीया झापा से काढ़ि चुनरीया राधा पहिरावहु हो ॥५॥
नउजी के काढ़ पलँगिया त हम नाहीं बइठब हो।
सखीया नउजी के काढ़ चुनरिया त हम नाहीं पहिरब हो।
सखीया का हो करेलु तकसीर हमही गरीआवेली हो ॥६॥
कवन दुतीया लईया लावेले झगड़ा मचावेले हो।
बहीनी ऊनकर नावँ जो बतवतू
लाते लतीआईब झोंटा झोंटीलाईब हो ॥७॥
कृष्ण दुती लईया लावैलें झगड़ा मचावेलें हो।
बहिनी उनहीं कै नाम सुनि पवलु
लाते लतीआवउ चुरुकीया उखारहु हो ॥८॥
अहीरा ही के रे बिटिया, त बछरू चरावेलु हो,
राधा कृष्ण करैं भँडुवइया त बोलेलु बराबर हो ॥९॥
भीखम के री बीटीया, त बोलेलु बराबर हो।
बार कुवारें ले अइलें सिरीकृष्ण त बोलेलु बराबर ॥१०॥
(गाजीपुर)

श्रीकृष्ण सभा में बैठे हैं। दूती ने कहा—हे राजा! आपके महल में दो स्त्रियाँ हैं, लेकिन उनमें झगड़ा होते नहीं सुना ॥१॥

सभा से उठकर श्रीकृष्ण ने राधा के महल में जाकर कहा—हे रानी! तुमसे क्या अपराध हो गया? रुक्मिणी गाली दे रहीं हैं ॥२॥

इतना सुनते ही, अच्छी तरह सुने बिना ही, राधा ने सखियों से कहा—सखियो! ज़रा चलो तो, 'उनके' महल में उलहना दे आयें ॥३॥

दासी आँगन बुहार रही थी। उसने कहा—हे रानी रुक्मिणी! राधा सौत आपके महल में आ रही है ॥४॥

रानी रुक्मिणी ने कहा—हे दासी! कोने से पलँग निकाल लो। राधा रानी को बैठाओ। पेटारे में से चूनरी निकाल लाओ और राधा रानी को पहनाओ ॥५॥

राधा ने कहा—हे सखी! पलँग न निकलवाओ; मैं बैठूँगी नहीं। और चूनरी भी न मगाओ; मैं पहनूँगी नहीं। हे सखी! मैंने क्या कुसूर किया? मुझे गाली क्यों देती हो? ॥६॥

रुक्मिणी ने कहा—किस कुटनी ने यह झगड़ा लगाया है? हे बहन! उसका नाम तो बताओ। मैं उसे लात से लतियाऊँगी और झोंटा पकड़कर झोंटियाऊँगी ॥७॥

राधा ने कहा—श्रीकृष्ण ही इधर की उधर लगाते हैं। उन्हीं का नाम सुनती हूँ। अब उन्हें चाहे लतियाओ, चाहे उनकी चोटी उखाड़ लो ॥८॥

रुक्मिणी ने कहा—अहीर की बिटिया हो, बछड़े चराया करती थी, इसीसे अक्ल कम है। भला, कहीं श्रीकृष्ण चुगली खा सकते हैं? और तुम मेरे मुँह पर बोल रही हो? ॥९॥

राधा ने कहा—तुम भी तो भीष्म की बेटी हो। कुँवारी थी, तभी तुम्हें श्रीकृष्ण उड़ा लाये। तुम मेरी बराबरी क्या करती हो? ॥१०॥

रुक्मिणी ने राधा का स्वागत करने में हृदय की स्वच्छता तो बहुत दिखलाई, पर अंत में दोनों में झगड़ा होकर ही रहा। इसी तरह कुटुम्ब की स्त्रियों में केवल शक पर कलह होता रहता है और यह गीत उसका एक रोचक उदाहरण है। श्रीकृष्ण का नाम आ जाने से गीत में रोचकता बढ़ गई है। विवाहित होने पर भी श्रीकृष्ण का नटखटपन नहीं छूटा था।

(२८)

सूतल रहली अटरिया, सपन एक देखीले हो।
सासु सपन देखीले अजगूत सपन बड़ सुन्दर हो ॥१॥

धनवाँ त देखीले टुंड़ारल मनवाँ ढेमारल हो।
सासु गज हाथी ठाढ़ीं दुअरवाँ, चढ़ल राजा दसरथ हो ॥२॥
गंगा त देखी ले हलोरत सरजू डफोरत हो।
सासु तिरबेनी पइठी नहालों त कोरवाँ गजाधर हो ॥३॥
धनवाँ त हवै तोर धनवा मनवाँ संतती तोर हो।
बहुवरि गजहाथी ठाढ़ दुअरवाँ चढ़ल परमेसर हो ॥४॥
गंगा त हइ तोरी माता त सरज् बहीनी तोरी हो।
तिरबेनी भउजी तोहारी त कोरवाँ भतीज ले ले हो ॥५॥

(गोरखपुर)

अटा पर सोई हुई थी, कि मैंने एक सपना देखा। बडा अद्भुत सपना था और बड़ा ही सुन्दर था ॥१॥

मैंने धान में टूंड निकला हुआ देखा, कपास में ढोंढियाँ लगी हुई देखी, दरवाजे पर हाथी खडा देखा, जिस पर राजा दशरथ सवार थे ॥५॥

गंगाजी में लहरें उठ रही थी, सरज् में बाढ़ आई थी, त्रिवेणी में पैठ कर नहा रही थी, उनकी गोद में गजाधर थे ॥३॥

हे बहू! धान तो तुम्हारा धन (पति) है। कपास तुम्हारी संतति है। हाथी पर सवार भगवान है। गंगा तुम्हारी माँ, सरजू तुम्हारी बहन और त्रिवेणी तुम्हारी भावज है। वह गोद में तुम्हारे भतीजे को लिये हुये है ॥४॥

अर्थात् बहू के भाई के पुत्र होनेवाला है।

(२९)

कोपभवन राजा दसरथ सुरज मनावैं आदित मनावइँ हो।
आदित आजु तु भोर मति होहु त राम मोर न जागैं,
त राम मोर जागैं न हो ॥१॥
जो आदित भोर होइहैं अवर राम जगि हैं न हो।
सुरुजु राम बने चली जईहैं हम कइसे जीअब हो ॥२॥

सारी रात राम राम रटलें त राम के बीरह में न हो।
ललना भोर भईल भीनुसार त मीरुग बना बोलैला हो ॥३॥
ई सब हाल राम सुनलें अउर राम सुनलेंन हो।
राम ठाढ़े हैं राजा के सामने त माता से पुछलें हो।
माता पिता बेदन मोही बताव त कवने तरह कर हो ॥४॥
पीता बेदन बाबु ईहै तु वन बीच बीचरहु
बन बीच बीचरहु हो।
बाबू भरथ के राजसींगासन ईहवै बेदन हवै हो ॥५॥
बलकल बसन लपेटी त माथ सीता लछिमन हो।
राम माता चरन धरें माथ त बन क सीधारैल हो ॥६॥
ईन्द्र छोड़ै ईन्द्रासन ब्रह्मा छोड़ै आसन हो।
माता बाप क बचन न छूटइ बचन हम राखब हो ॥७॥
(बनारस)

कोप-भवन में राजा दशरथ सूर्य को मना रहे हैं। हे सूर्य! आज सबेरा मत करो, मेरे राम जागने न पायें ॥१॥

हे आदित्य! सबेरा हो जायगा, राम जग जायेंगे और बन को चले जायेंगे तो मैं कैसे जीऊँगा? ॥२॥

राम के विरह में राजा दशरथ रातभर राम-राम रटते रहे। सबेरा हुआ और मुर्गा बोला ॥३॥

राम ने सब हाल सुना। वे राजा के सामने आये। माता से उन्होंने पूछा—हे माता! पिता को किस तरह का कष्ट है? मुझे बताओ ॥४॥

हे बेटा! तुम्हारे पिता को यह कष्ट है कि तुम तो बन में जाकर रहो और भरत राज-सिंहासन पर बैठेंगे ॥५॥

राम ने वल्कल वस्त्र पहन लिया और सीता और लक्ष्मण को साथ ले लिया। माता के चरणों पर सिर नवाकर वे बन को चले गये ॥६॥

राम ने कहा—इन्द्र अपना इन्द्रासन छोड़ दें और ब्रह्मा अपना ब्रह्मासन, लेकिन पिता का वचन न छूटे, मैं पिता का वचन रक्खूंगा ॥७॥

पुत्र के लिये हिंदू-समाज में राम का आदर्श अद्वितीय है। घर-घर में राम-जैसे पितृ-भक्त पुत्र हों, हरएक गृहस्थ यही चाहता है। गीत में यही भाव प्रकट किया गया है।

(३०)

पिया बइठन के मचिया गढ़ावहु हो,
पिया पौढ़न के रँगपलँग से देह भरुआइल हो ॥१॥
पिया हुन हुन आवैले पीर न केहिके जगाइब हो।
सासु त सूतैं अटरिया ननद पटसरिया हो;
सइयाँ आप सुतैं रंगमहलिया मैं केहिके जगाइब हो ॥२॥
सासु उठैं बारैं त दियना ननद लेवैं हँसिया हो;
प्रभु आपु चले धगरिन बोलावन
से होरिला जनम लेहलें हो ॥३॥
सासू पिपर क झार अकसाइन अरु भकसाइन हो।
सासू हम न पिअब पिपरिया, पिपरिया भकसावै हो ॥४॥
इतना बचन राजा सुनलैं सुनहु न पवलैं हो।
राजा धाइ भइलें घोड़े असवार सवति हम आनब हो ॥५॥
सइयाँ पिपर क झार हम सहबैं सवति नाहीं सहबै हो।
सइयाँ जनि लावहु सवति छाती ऊपर पीपरि पीअब हो ॥६॥
(बस्ती)

हे प्रियतम! बैठने के लिए मचिया गढ़ाओ, और पौढ़ने के लिए रंगीन पलँग बनवाओ, देह भारी होने लगी ॥१॥

हे प्रियतम! रह-रहकर पीर उठती है; किसको जगाऊँगी? सास

तो अटा पर सोती हैं; ननद पटसार में सोती है; आप रंगमहल में सोते हैं, मैं किसको जगाऊँगी? ॥२॥

सास उठीं, दिया जलाया। ननद ने हँसिया ली। स्वामी धगरिन बुलाने चले। होरिल ने जन्म लिया है ॥३॥

हे सास! पीपल (औषधि) की झार बड़ी कड़वी लगती है। मैं पीपल नहीं पीऊँगी ॥४॥

राजा (पति) ने इतना सुना। अच्छी तरह वे सुन भी नहीं पाये कि झटपट घोड़े पर सवार हो गये और बोले कि हम मौत लाने जा रहे हैं ॥५॥

हे स्वामी! मैं पीपल की झार सह लूँगी· मौत मुझसे न सही जायगी। मेरी छाती पर सौत मत लाओ, मैं पीपल पी लूँगी ॥६॥

जच्चा को पहले-पहल कैसी-कैसी चिन्तायें होती हैं और वह कितना ठनगन करती है, इस गीत में उसी का चित्र है। साथ ही सौत से उसे घृणा भी कितनी है कि सौत के बदले वह पीपल की झार का कष्ट सहने को भी तैयार हो जाती है।

बच्चा होने के बाद पीपल, सोंठ आदि कुछ दवायें जच्चा को दी जाती हैं।

(३१)

हनि हनि काटिन खम्बा औ करतुलिया बाँस।
जाइ हिंडोलवा गड़ाइन गंगा जमुन बालू रेत।
एक पर राधा रुकमिनि एक पर झूलें कृष्ण अकेल ॥१॥
पान खाइन पिच डारिन पर गइ चुँदरिया में दाग।
चलहु न सखिया सहेलरि चिरवा धोवन हम जायँ ॥२॥
चीर धोइ भुइयाँ डारिन लै गये कृष्ण उठाय।
कृष्ण देय डालो चीर हम जल माँझ उघारि ॥३॥
ह्वै जावैं जल माछरि जलवा डराय हम लेब।
जो तू जलवा डरैवा तो हम बन कोइलि होब ॥४॥

तो तुम होबो बन कोइल लसवा लगाइ हम देब।
जो तू लसवा लगैबो तो हम बन धुँघची होब ॥५॥
जो तुम होबो बन घुँघची अगिया लगाय हम देब।
जब तुम अगिया लगैबो आधा जरब आधा लाल ॥६॥
(लखनऊ)

खंभा और करतुलिया (?) बाँस काट-काटकर गंगा और यमुना की रेती पर हिंडोले गाड़े गये। एक हिंडोले पर राधा और रुक्मणी झूलने लगी, और दूसरे पर श्रीकृष्ण अकेले ॥१॥

श्रीकृष्ण ने पान खाकर पीक कर दिया, जिससे उनकी चुँदरियों पर दाग पड़ गये ॥२॥

हे सखी-सहेलियो! चलो न; हम चीर धोने जायँगी ॥३॥

चीर धोकर उन्होंने जमीन पर फैला दिया। श्रीकृष्ण उठा ले गये। हे कृष्ण! चीर दे दो, जल में हम उघाड़ी खड़ी हैं ॥४॥

हम जल में मछली हो जायँगी। श्रीकृष्ण ने कहा—तो हम जाल डलवाकर पकड़ लेंगे। उन्होंने कहा—तुम जाल डलवाओगे, तो हम बन की कोयल हो जायेंगी ॥४॥

तुम कोयल हो जाओगी, तो मैं लासा लगाकर पकड़ लूँगा।
तुम लासा लगाओगे तो हम घुँघची बन जायँगी ॥५॥
तुम घुँघची बन जाओगी, तो हम बन में आग लगा देंगे।
तुम आग लगा दोगे, तो हम आधी जलकर अधी लाल हो जायेंगी ॥६॥

इस गीत में प्रेमी-प्रेमिका का परस्पर हास-परिहास है। घुँघची बनना बताकर प्रेमिका ने यह भाव प्रकट किया है कि आधे में वह श्रीकृष्ण का श्याम रूप रक्खेगी और आधे में अपना अरुण वर्ण।

(३२)

अँगना चँदन बड़ो रूख, चँपे की है डार, मोर गढ़ाओ पालकी।
घुँघरू गढ़ लावो मेरे लाल को बाजनी ॥१॥

मिचवन हो पिय भँवर सलोने सैंया भँवर घमाओ ।
पाटिन चमकें आरसी ॥२॥
भरी तो हो पिय रेशम, सलोने सैयाँ, रेशम बान,
अदवाइन पखटून की, डाँसी अहो फूलन भरी सेज ॥३॥
आलसाई है गेंदुआ, वा पर पौढ़े हैं रजवा,
डोलै सुहागिन बीजनी ॥४॥
बिजनी डुलत हँस बूझी, काहे की धना साधली ॥
मोहि खिचड़ी की बलम खिचड़ी की है साध,
औमर खिचड़ी चाहिए ॥५॥
खिचड़ी तो अपने बबुल पर, अपने बिरन पर माँग,
हम पर मेवा माँग ले ॥६॥
बबुल बसें परदेस और रजन के देस,
बीरन बारे बेदने ॥७॥
घुँघरू गढ़ लाव मेरे लाल को बाजनी ॥८॥
भौज तो हमरी पूरब की, खिचरी को मरम न जाने ।
पानी वही जमुना को और गँगाजल लाव,
चरुआ छैल कुम्हार को ॥९॥
गुड़ तो गँड़ेरी ऊपजै, सोंठ वही सतुआ की
बलम सतुआ लाव ॥१०॥
पीपरामूर गठीली, अजवाइन हो अजपुर की ।
जीरो किरैयन ऊपजै, हल्दी हरदोई से लाव ॥११॥
बायबिरँगे ढुरढुरी, पीपर हो सुख पीपर लाव ।
सुपारी वही रूठा की लाव, खैर ले आओ पापरी ।
पान वही महुबे के चूना लाव मोती चूर के,

चावल वही भिनवा के, दाल हरी हरी मूँग की।
घी तो वही कपिला को लाव ॥१२॥
एक पियरो, दूजे मँहगनो तेल वही सरसों को
एक पियरो दूजे चरपरो ॥१३॥
सोने के पिय करहा मँगाव, रतन जड़ाऊ करछुली।
परसौ वही सोने के थार, रूपे के कटोरा में घी धरौ ॥१४॥
सोने को पिय कठुला गढ़ाव रतन जड़ाऊ
कि पैंजना ॥१५॥
बारह मन की खौर भराव तेरह मन को गेंदुआ
होरिल को पिय धाय लगाव ॥१६॥
हम तुम कलजुग मानिये, ऊँचे से पिय ढोल धराव,
जो रे सुनैं मेरो मायको ॥१७॥
जो सुनि हैं मेरी माय, बैलन खिचरी भराय,
बकचन पियरी भराय।
ऊपर गागर घिरत की, ऊपर लड्डू सोंठ के,
कुरता टोपी रेशमी, रतन जड़ाऊ कि पैजनी ॥१८॥
बैठी हैं तखत बिछाय, पछ आछो है नंगा बाप को।
पिछवारे हो पिय हौद खुदाव, बैरी दुश्मन गिर पड़े,
जाहि न सुहाय सोई गिर पड़े।
घुँघरू गढ़ लाव मेरे लाल को बाजनी ॥१९॥
(अलीगढ़)

आँगन में चंदन का पेड है; चंपे की डाल है; पलँग गढ़ाओ। मेरे लाल के लिये बजनेवाले घुँघरू गढ़ लाओ ॥१॥

जिसके पाये सुन्दर काले-काले हों, जिसकी पाटी दर्पण की तरह चमकती हो ॥२॥

जो रेशम के बाध से बुनी हो; जिसमें मखतूल की उरदावन लगी हो और उस पर फूलों की सेज बिछी हो ॥३॥

उस पर तकिये पड़े हों, राजा (पति) उस पर लेटे हों; महागिन पंखा झल रही हो ॥४॥

पति ने पंखा झलते समय पूछा—हे धन ! तुमको किस चीज की साध है ? हे प्रियतम ! मुझे खिचड़ी खाने की साध है. अभी खिचड़ी चाहिये ॥५॥

खिचड़ी तो अपने पिता और भाई से माँग; मुझसे तो मेवा माँग ले ॥६॥

पिता तो परदेश में राजा के देश में बसते हैं; भाई बहुत छोटे हैं ॥७॥

भावज पूर्व की है; खिचड़ी का मर्म जाननी ही नहीं। मेरे लाल के लिये घुँघरू गढ़ा लाओ ॥८॥

जमना का पानी और गंगा का जल लाओ। और कुम्हार का घड़ा ॥९॥

गुड तो गन्ने से पैदा होता है, और सोंठ और सतुआ लाओ ॥१०॥

गाँठदार पीपरामूल, अजपुर की अजवाइन तथा जीरा जो क्यारियों में पैदा होता है और हरदोई की हल्दी लाओ ॥११॥

ढुरढुरी बायभिडंग और सुख देने वाली पीपल लाओ। सुपारी, खैर, महोबे का पान, मोती का चूना, झीने चावल, हरी मूँग की दाल और कपिला गाय का घी लाओ ॥१२॥

सरसों का पीला महँगा और चरपरा तेल लाओ ॥१३॥

प्रियतम ! सोने की कढ़ाही और रत्न-जड़ी कलछुल मँगाओ। सोने के थाल में भोजन परसो और चाँदी के कटोरे में घी रक्खो ॥१४॥

हे प्रियतम ! सोने का कंठा और रत्न-जड़ी पैंजनी गढ़ाओ ॥१५॥

बारह मन का गद्दा और तेरह मन का तकिया भराओ। होरिल के लिए धाय लगाओ ॥१६॥

हम तुम आनन्द मनायें। ऊँचे से ढोल बजवाओ, जिससे मेरे नैहर वाले सुनें ॥१७॥

मेरी माँ सुनेगी तो बैलों पर खिचड़ी भरकर, बकुचा-भर पीयरी, उस पर घी का गागर, उसपर सोंठ के लड्डू, रेशमी कुरते-टोपी और रत्न-जड़े पैंजना भेजेंगी ॥१८॥

बहू तख्त बिछाकर बैठी है। बाप का भेजा हुआ पछ (सामान, जो बच्चा पैदा होने पर नैहर से आता है) आया है। हे प्रियतम ! पिछवाड़े कुंड खुदा दो, जिसमें बैरी गिर पड़े और मेरा सुख जिसे न सुहाये, वह भी गिर पड़े।

मेरे लाल के लिए बजने वाले घुँघरू गढ़ा लाओ ॥१९॥

बच्चा पैदा होने पर घर-गिरस्ती में पति-पत्नी के बीच बड़ी चहल-पहल पैदा हो जाती है। इस गीत में जच्चा के लिए स्वास्थ्यकर खाने-पीने की चीजों के नाम गिनाये गये हैं और बच्चों को सजाने के लिये उसकी माँ की उत्सुकता बताई गई है।

(३३)

के मोरे नौरँगीया लगावै तो थलवा बन्हावै।
के रे नौरँगी रखवार त के मोरे चोरी करै ॥१॥
बाबा मोरा थल्हवा वन्हावै नौरंगीया लगावैं।
सखी भईया मोरा बैठे रखवार तो सैयाँ मोरा चोरी करैं॥२॥
बोलीया हो एक राजा बोलौंहुँ जौ बोल मानौ हो।
राजा मोरें नौरंगीया कै साधि नौरंगीया लेही आवौ ॥३॥
बोलायहु तो धन बोलिह बोल तो सोहावन।
धन नौरंगीया बैठल रखवार नौरंगी कैसे पावौं ॥४॥
कुकुरा के देबै पिया दूध भात पहरू के तिलवा।
पीया हाली बेगी डरीया ओनायौ रुमाल भरी तोरयो हो॥५॥
हाली बेगी डरीया वोनौलें रुमाल भरी तोरेलें हो।
सखी जागी परल रखवार पेड़े धई बान्हल ॥६॥

सासू तो बोलही क रहेलीं ननँद उठि बौलइँ हो।
भौजी जिभीया तु रखतिउ नीवार भईया मोरा बान्हल ॥७॥
खिरकी से बोललीं जच्चारानी अपनेउ भैया सँग।
भैया चोरवा अलफ सुकुवार ढीलही बान्हा बान्हौ ॥८॥
जौ मैं जानतौं ऐ बहीनी ये घर ही कै चोरवा।
बहीनी सोना कै हरवा गढ़ौतौं बहनोइया गले डलतों ॥९॥
आवहु मोरे बहनोईया पलँग चढ़ि बैठौ।
बगीचा कै लेहु रखवारी नौरंगी फल चाखो ॥१०॥
(गोंडा)

किसने नारंगी का पेड़ लगाया है? किसने थाला बँधाया है? कौन रखवाला है? और कौन नारंगी चुराता है? ॥१॥

बाबा (बाप) ने नारंगी का पेड़ लगाया, और थाला बँधाया। हे सखी! मेरा भाई रखवाली पर बैठा है और बहनोई नारंगी की चोरी करता है ॥२॥

हे राजा! एक बात कहती हूँ, जो तुम मानो। मेरा जी नारंगी खाने को ललचाया है; कहीं से नारंगी ला दो ॥३॥

हे रानी! तुम्हारी बात मुझे बड़ी सुहावनी लगती है। लेकिन नारंगी पर रखवाला बैठा है; नारंगी कैसे मिलेगी? ॥४॥

हे प्रियतम! कुत्ते को मैं दूध-भात और पहरेदार को तिलवा (तिल का लड्डू) दूँगी। जल्दी डाल झुकाकर, रुमाल भर-कर नारंगी तोड़ लेना ॥५॥

पति ने जल्दी डाल झुकाकर, रुमाल भरकर नारंगी तोड़ ली। हे सखी! इतने में रखवाला जग पडा और उसने चोर को पकड़कर पेड़ से बाँध दिया ॥६॥

सास तो बोलने भी न पाई कि ननद उठकर कहने लगी—हे भौजी! जीभ को काबू में रक्खो न? मेरा भाई बाँधा गया है ॥७॥

खिड़की खोलकर जच्चा-रानी ने अपने भाई से कहा—हे भैया! चोर अभी छोटी उम्र का सुकुमार है, कसकर न बाँधना ॥८॥

हे बहन! जो मैं जानता कि घर ही का चोर है, तो सोने का हार गढ़वाकर बहनोई के गले में डालता ॥९॥

हे मेरे बहनोई! आओ; पलँग पर चढ़कर बैठो। अब तुम बाग की रखवाली लो और नारंगीका फल चखो ॥१०॥

इस गीत में एक मनोहर रूपक है। नारंगी से अभिप्राय विवाह-योग्य कन्या से है। बहनोई उसे प्राप्त करने जाता है। कन्या का भाई उसे विवाह के बंधन में बाँधकर नारंगी का बाग ही उसे सौंप देता है। कन्या का मजाक भी बड़ा मरम है।

इसमें यह भी बताया गया है कि किस प्रकार जच्चा की इच्छा की पूर्ति के लिए पति को उत्सुकता होती है।

(३४)

राजा काहें तोरा मुहवा उदासल से हमसे बनावहु ना।
राजा केही सोंच देह दुबराइल मुँह भइल पीअर ना।
राजा सासु ननद कुछ कहलीं की केहु से कुछ अनबन हो ॥१॥
रानी माई बहिन ना कुछ कहलीं न केहू से अनवन हो।
रानी मोगल बजाज क रूपयवा त उहवै माँगैं ना ॥३॥
झमकि के रानी उठी बोलैं त काहें तू उदासल हो।
अँग का गहना उतारि पेटारी काढ़ि फेंकैं ना ॥२॥
राजा लइ जाहु देई देहु मोगल बजजवा रुपयवा ना।
रानी यही सोच हम तौ उदासल
कइसे तोहीं नंगी राखउँ ना ॥४॥
राजा गहना कपड़ा नाहीं साधि न एकौ मोहीं भावइ हो।
राजा तोहार मुँह रही हरीअर त बिन गहनै सोभब हो ॥५॥

(बनारस)

हे राजा ! तुम्हारा मुँह उदास क्यों है ? मुझे बताओ न ? हे राजा ! कौन-सी चिंता है, जिससे तुम्हारी देह दुर्बल हो गई और मुँह पीला पड़ गया है ? हे राजा ! सास-ननद ने कुछ कहा है ? या किसीसे अनबन हो गई है ? ॥१॥

हे रानी ! न माँ ने कुछ कहा, न बहन ने ; और न किसीसे अनबन ही हुई। हे रानी ! मुगल बजाज अपना रुपया माँगता है ॥२॥

रानी उठ खड़ी हुई और बोली—तो तुम उदास क्यों हो ?

उसने शरीर पर से उतारकर और पेटारी से निकालकर गहने उसके सामने फेंक दिये ॥३॥

हे राजा ! ले जाओ, मुगल बजाज को रुपया दे दो।

हे रानी ! मैं तो इसी सोच से उदास था कि तुमको नंगी कैसे रक्खूँगा ? ॥४॥

हे राजा ! गहने और कपड़े की मुझे साध नहीं है। तुम्हारा मुँह प्रफुल्लित रहे, तो मैं बिना गहने ही के सुन्दर लगूँगी ॥५॥

पत्नी ने अपने पति की चिंता में हिस्सा लेकर गृहस्थों के सामने बड़ा सुन्दर आदर्श रक्खा है। पति-पत्नी के इसी तरह के परस्पर के सहयोग से गृहस्थी में सुख और समृद्धि की वृद्धि होती है।

(३५)

धोरे धोरे बैठ ननद भवज मुख धोवैंहीं।
भवज जो जाओ नँदलाल कँगनवा मैं तो लै लऊँगी ॥१॥
साँझ हुई भय फाटी ओ हो ! भय फाटी।
अजी होय पड़े नँदलाल कँगनवा मैं तो लै लऊँगी ॥२॥
यह तो मेरे बीर ने घड़वाया मेरे बाबल ने धड़ाया।
मेरी मैया ने पिन्हाया कँगनवा कैसे दै दऊँगी ॥३॥
कचहरी बैठे ससुरे वह आँगन मैं ठाढ़े पुकारैं,
बहुवल दे दो हाथों के कँगनवा धीयल परदेसन ये ॥४॥

जूवा खिलन्ते राजा आँगन में ठाढ़े।
धना दे दो हाथों के कँगनवा बहन परदेसन ये ॥५॥
कहाँ तुमने हाथों गड़ाये कहाँ मोल लिवाये।
परदेसी बीरन के कँगनवा मैं कैसे दै दऊँगी ॥६॥
ला मेरे मैले से कपड़े मैले से कपड़े।
अजुध्या में माँगूँगा भीख कँगनवा गड़वाय दऊँगा ॥७॥
ला मेरी सोने की सराई, मेरी सोने की सराई।
काटूँगी कँगनवा की कील फेर न बुलाऊँगी ॥८॥
(बुलन्दशहर)

पास-पास बैठकर ननद और भावज मुँह धो रही हैं। हे भावज! तुम्हारे पुत्र होगा, तो मैं कंगन ले लूँगी ॥१॥

शाम हुई। रात बीती। पौ फटी। ओहो! पौ फटी। वाह वा! पुत्र हुआ। मैं तुम्हारा कंगन ले लूँगी ॥२॥

इसे तो मेरे भाई ने गढ़वाया था, पिता ने गढ़वाया था, और माँ ने पहनाया था; मैं कंगन कैसे दे दूँगी? ॥३॥

कचहरी में बैठे हुए ससुर आँगन में आकर खड़े होकर कहने लगे—हे बहू! हाथ का कंगन दे दो; बेटी परदेसिन है ॥४॥

जुआ खेलते हुए राजा (पति) आँगन में आकर कहने लगे—हे बहू! कंगन दे दो, बहन परदेसिन है ॥५॥

पत्नी ने कहा—तुम अपने हाथों से गढ़ाये हो? या खरीदकर लाये हो? परदेश गये हुए भाई का दिया हुआ कंगन मैं कैसे दे दूँ? ॥६॥

पति ने कहा—ला, मेरे मैले-कुचैले कपड़े तो ला। मैं अयोध्या में जाकर भीख मागूँगा और कंगन गढ़वा दूँगा ॥७॥

बहू ने कहा—ला, मेरी सोने की सलाई तो कंला; गन की कील निकालूँ। मैं ननद को फिर न बुलाऊँगी ॥८॥

यह सोहर चमार के घर का है। चमारिनें बड़ा रस ले-लेकर इसे गाती हैं।

(३६)

जेठ बैसाखवा क दिना त गरमी बहुत होला हो।
राजा बाहर कोठवा उठवतो दुनोही जाना रहतीन हो ॥१॥
बोलिया त बोललू ये धन बोलही न जानेलू हो।
धना हम जइबो पुरबी बनिजिया कैसे रहबी अकसर हो ॥२॥
राजा बारी देबों चौमुख दियना त रतिया कटीत होइहें हो।
राजा रउरे मयरिया लेई सोइबों
त रतिया बिरतन्त होई हो ॥३॥
राजा बुतीं गइलें चौमुख दियना त
रतिया पहार भइलें हो।
राजा सोई गइलीं रउरी मयरिया त
रतिया भयावनि हो ॥४॥
कोठवा ऊपर कोठरिया झरोखवा से चितईला हो।
राजा रउरे सरीखे क सीपहिया कतहूँ नाहीं देखीला हो ॥५॥
(बलिया)

जेठ-बैसाख के दिन हैं। गरमी बहुत पड़ रही है। हे राजा! बाहर कोठा छवाते तो दोनों जन सोते ॥१॥

हे धन! कहा तो तुमने ठीक, लेकिन समझ-बूझकर नही कहा। मैं तो व्यापार करने पूरब जाऊँगा, तब तुम अकेली कैसे रहोगी? ॥२॥

हे राजा! चारोंओर दिये जला लूँगी, रात कट जायगी। आपकी माँ के साथ सोऊँगी, रात बीत जायगी ॥३॥

हाय! चारोंओर के दिये बुझ गये। रात पहाड़ हो गई। आपकी माँ सो गई, रात भयानक लग रही है ॥४॥

कोठे पर कोठरी है। उसके झरोखे से देखती हूँ, आप-सरीखा कोई सिपाही कहीं नहीं देखती हूँ ॥५॥

इस गीत में एक विरहिणी स्त्री की मनोवेदना चित्रित है।

(३७)

सासु जे बोलेलीं अड़पी ननद तड़पी बोलें हो।
बहुअरि काहे क भरलिउ गुमान सोएलू सुख निद्रा ॥१॥
बाबा के हैं हम निनरुई त भैया के दुलरुई हो।
ऐ अपने हरीजी के प्राणअधारी सोईले सुख-निद्रा ॥२॥
एतना बचन राजा सुनलेनि सुनहु न पवलेनि हो।
राजा सारी रात सुतलें करवटिया त मुखहु न बोलहिं ॥३॥
किआ रउरा जेवना बिगड़ले कि सेजिआ भोर भइलेनि हो।
ऐ राजा किया रउरा सेवा चुकलों त मुखहू न बोलहु ॥४॥
नाही मोर जेवना बिगड़ले न सेजिआ भोर भइलेस हो।
ए रानी! गँगा जमुन मोरी माता गरब बोली बोलिहु ॥५॥
हम से भइलि तकसिरिया मामु पग लागव।
राजा! मइया मनाइ हम लेब राउर हँसि बोलहु ॥६॥

सास डपटकर बोलती हैं, ननद तड़पकर कहती है—बहू! किस अभिमान में तुम भरी रहती हो जो खूब सुख से सोती हो? ॥१॥

बहू ने कहा—मैं अपने पिता की एक ही कन्या हूँ, भाई की दुलारी हूँ और अपने प्राणेश्वर की प्राणाधार हूँ। इसी से सुख की नींद सोती हूँ ॥२॥

पति ने यह बात सुन ली। सब बातें अच्छी तरह सुनी भी नहीं कि वे सारी रात एक करवट सोये रहे और स्त्री से नहीं बोले ॥३॥

स्त्री ने पूछा—हे राजा! क्या आपका भोजन मैंने खराब बनाया? या सेज बिछाने में कोई भूल हुई या देर हुई? मैं आपकी किस सेवा में चूक गई जो आप नहीं बोलते हैं? ॥४॥

पति ने कहा—हे रानी ! न तुमने मेरा भोजन बिगाड़ा, न सेज में कोई भूल या देरी हुई। गंगा-जमुना की तरह पवित्र और पूज्य मेरी माँ को जो तुमने अभिमान से जवाब दिया, मैं इसलिए अप्रसन्न हूँ ॥५॥

स्त्री ने कहा—मुझ से गलती हुई। मैं सासजी के पैर छूकर क्षमा माँगूँगी। हे राजा ! आप प्रसन्न होकर बोलें, मैं आपकी माँता को मना लूँगी ॥६॥

इस गीत से स्त्रियों को अभिमान-रहित और नम्र होने की शिक्षा मिलती है। साथ ही पुरुष के लिए भी यह संकेत है कि वह माता के सम्मान का सदैव ध्यान रक्खे। सास-बहू के झगड़ों में पुरुष की असावधानी भी एक प्रधान कारण है।

(३८)

सावन भादौं की अँधिअरिआ बिजुलिआ चमाकइ
बिजुलिआ चमाकइ हो।
मोरी सखिआ वे हरि चले मधुबन को मैं दरसन कीन्हें
मैं दरसन कीन्हेउ हो ॥१॥
का दइ कइ चले माई को काह बहिन को, ये काह बहिन को।
मोरी सखिआ का दइ चले गोरी धनिअै जो गरुये गरब से
जो गरुये गरब सेनी हो ॥२॥
बइठक दइ चले मइयै रोसइयाँ बहिनियै, रोसइयाँ बहिनियइँ।
मोरी सखिआ यह गजओवरि गोरी धनियैं जो गरुये गरब से
जो गरुये गरब सेनी हो ॥३॥
जो मोरा मूड़ पिरैहैं मैं किनको जगैहौं, मैं किनको जगइहउँ।
मोरे राजा अन्तर जिअरा को भेद मैं किनको बतैहौं,
मैं किनको बतइहउँ हो ॥४॥
जौ तोरा मूड़ पिराये अरि अम्मा को जगैहौ
अरि अम्मा को जगइहउ हो।

मोरी रानी अन्तर जिअरा को भेद पतिया लिखि भेजिउ
पतिया लिखि भेजिउ हो ॥५॥
काहे को फारि कगद करौं काहे की मसी करौं
काहे की मसी करउँ हो।
मोरे राजा के लइ जाये मोर पतिया जो पाती लिखि भेजौं
जो पाती लिखि भेजउँ हो ॥८॥
आँचर फारि कगद करौ कजरा की मसी करौ
कजरा की मसीं करउ हो।
मोरी रानी लहुरा देवरवा के हाथे जो पाती लिखि भेजेउ
जो पाती लिखि भेजेउ हो ॥७॥
देवरा हो मोरा देवरा अरे तुम मोरा देवरा
अरे तुम मोरा देवरा हो।
मोरा देवरा जो हरि होयँ अकेले तो बाँचि सुनायउ
तौ बाँचि सुनायउ हो ॥८॥
रानी ने पाती भेजी अरि राजा ने बाँची अरि राजा ने बाँची।
हाँ जैसे नैन रहे जलछाय आँकु नहिं सूझै आँकु नहिं सूझइ हो॥९॥
यह लो अपनी चकरिया अरि वह चटसरिया,
अरि वह चटसरियउ हो।
मोरे स्वामी हम घर रानी दुखित हैं तो हमरे दरस बिन
हमरे दरस बिन हो ॥१०॥

सावन-भादों की अँधेरी रात है। बिजली चमक रही है। हे सखी! मेरे स्वामी मधुबन को चले गये। मैंने दर्शन किया है ॥१॥

माँ को क्या दे गये? बहन को क्या दे गये? और अपनी गोरी स्त्री को क्या दे गये? जिसको गर्भ है ॥२॥

माँ को बैठक दिया, बहन को रसोई दी और अपनी गोरी स्त्री को यह कोठरी दे गये ॥३॥

स्त्री ने पूछा था—यदि मेरा सिर दर्द करने लगेगा तो मैं किसको जगाऊँगी ? और हे मेरे राजा ! मैं अपने मन की बात किससे बताया करूँगी ?॥४॥

पति ने कहा था—हे रानी ! यदि तुम्हारा सिर दुखे तो माँ को जगा लेना और अपने मन की बात मुझे पत्र में लिखकर भेजा करना ॥५॥

स्त्री ने पूछा—किस चीज को फाड़कर मैं कागज बनाऊँगी ? और किस चीज़ की स्याही ? और कौन मेरी चिटठी लेकर जायगा ? जो पत्र लिखकर भेजूँगी ॥६॥

पति ने कहा—आँचल फाड़कर कागज बनाना और काजल की स्याही बनाना। मेरी रानी ! छोटे देवर के हाथ पत्र लिखकर भेजना ॥७॥

पति के चले जाने पर स्त्री ने देवर से कहा—हे देवर ! तुम मेरे प्यारे देवर हो। मेरे हरि अकेले हों तो मेरा पत्र उनको बाँचकर सुनाना ॥८॥

रानी ने पत्र भेजा। राजा ने बाँचा। बाँचते-बाँचते उसकी आँखों में आँसू भर आये। अक्षर का सूझना बन्द हो गया ॥९॥

पति ने अपने मालिक से कहा—यह लो अपनी नौकरी और यह लो अपना घर। हे मेरे मालिक ! मेरी रानी मुझे देखने के लिए तरस रही है ॥१०॥

मालूम होता है, स्त्री का पत्र पाकर पति नौकरी छोड़कर घर चला आया। सच है, प्रेम की परीक्षा त्याग ही से होती है। इस गीत से यह भी मालूम होता है, कि गीतों की दुनियाँ में स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी भी थीं। तभी तो स्त्री ने देवर के हाथ पति को पत्र लिखकर भेजा था।

(३९)

सोने के खड़उवाँ कवन राम खुटुर खुटुर करइँ हो।
उठहु ससुर राम धेरिया सेजरिया हमरी डासहु हो ॥१॥
सोनवहि कै मोरा नैहर रुपवा केवाड़ी लागे हो।
रामा सात भैया कै बहनी सेजरिया कैसे डासउँ हो ॥२॥

इतना बचनु सुनि रजवा तौ मनहिं दुखित भये हो।
अरे हो, हनि लिहान बजर केवाँड़ उघारे नहीं उघरइ।
खोलाये नाहीं खोलइँ बोलाये नाहीं बोलइँ हो ॥३॥
मचियै बैठली सासू तौ बहुवरि अरज करइ हो।
सासू कवन गुनहिं हम कीन्ह केवड़िया हनि लीन्हे हो ॥४॥
बेटा तू मेरा बेटा तुमहिं सिर साहिब हो।
बेटा कवन गुनहियाँ बहुवर कीन्ह केवड़िया हनि लीन्हेउ हो॥५॥
मैया तू मेरी मैया तुहहिं मेरी मैया हौ हो।
मैया सोनवहि कै वोकै नैहर रुपवै केवाड़ी लागे हो।
मैया सात भैया कै बहिनिया सेजरिया कैसे डासइ हो ॥६॥
मटियहिं कै मोरा नैहर सुपवा केवाँड़ी लागे हो।
सासू सातो भैया किंगरी बजावइँ बहिन मोरी नाचइ हो ॥७॥

सोने के खड़ाऊं पर चढ़े हुए.....राम खुटुर खुटुर चल रहे हैं। उन्होंने अपनी स्त्री से कहा—हे मेरे ससुर की कन्या! उठो और मेरी सेज बिछाओ ॥१॥

स्त्री ने कहा—सोने का तो मेरा नैहर है, चाँदी के उसमें किवाड़े लगे हैं, मैं सात भाइयों में एक ही बहन हूँ। मैं सेज कैसे बिछाऊँगी? ॥२॥

स्त्री की यह गर्वोक्ति सुनकर पति मन ही मन बहुत दुःखी हुआ। उसने बज्र ऐसा केवाड़ा बन्द कर लिया जो खोलने से नहीं खुल सकता। स्त्री ने खोलने के लिए बार-बार कहा, बार-बार बुलाया, पर पति ने न केवाड़ खोले और न कुछ उत्तर दिया ॥३॥

स्त्री बेचारी सास के पास पहुँची। सास मचिया पर बैठी थीं। बहू ने बिनती की—हे सासजी! मैंने क्या अपराध किया जो उन्होंने केवाड़े बन्द कर लिये? ॥४॥

माँ ने बेटे से पूछा—हे बेटा! बहू ने क्या अपराध किया जो तुमने केवाड़े बन्द कर लिये? ॥५॥

बेटे ने कहा—हे माँ ! सोने का तो इसका नैहर है, जिसमें चाँदी के केवाड़े लगे हैं; अपने सात भाइयों में यही एक बहन है। भला, यह सेज कैसे बिछा सकती है ? ॥६॥

स्त्री ने कहा—अच्छा, मेरा नैहर मिट्टी का है। जिसमें सूप के केवाड़े लगे हैं। मेरे सातो भाई किंगरी बजाकर भीख माँगते हैं और मेरी बहन नाचती है ॥७॥

स्त्री का नैहर यदि सुखी हुआ तो उसके लिये स्त्री को अभिमान बहुत काफी होता है। पर नैहर के लिये उसका अभिमान ससुराल में सहन नहीं हो सकता। इस अभिमान को लेकर भी कभी-कभी सास-बहू, ननद-भौजाई और यहाँ तक कि पति-पत्नी में भी वैमनस्य फैल जाता है। स्त्रियाँ बड़ी प्रत्युत्पन्नमति होती हैं। इस गीत की स्त्री का वाक्चातुर्य देखिये, उसने झटपट अपने नैहर का अभिमान त्याग दिया और पति को प्रसन्न कर लिया।

(४०)

ये रतनारे होरिलवा फागुन जिनि जनमेउ।
सब सखी खेलिहैं फगुववा खेलन कइसे जाबइ ॥१॥
ये रतनारे होरिलवा चैत जिनि जनमेउ।
सब सखी चुनिहैं कुसुमियाँ चुनन कइसे जाबइ ॥२॥
ये रतनारे होरिलवा बैसाख जिनि जनमेउ।
घर घर मङ्गलचार देखन कइसे जाबइ ॥३॥
ये रतनारे होरिलवा जेठ जिनि जनमेउ।
जेठ तपै दुपहरिया तपन मोरे लगिहइँ ॥४॥
ये रतनारे होरिलवा असाढ़ जिनि जनमेउ।
खोरी खोरी मेघवा गरजिहैं गोतिन नाहीं अइहइँ ॥५॥
ये रतनारे होरिलवा सावन जिनि जनमेउ।
सब सखि झुलिहैं झलुववा झुलन कैसे जाबइ ॥६॥

ये रतनारे होरिलवा भादौं जिनि जनमेउ।
भादौं बिजली चमाकै गोतिन नाहीं अइहइँ ॥७॥
ये रतनारे होरिलवा कुआर जिनि जनमेउ।
घर घर अइहइँ पितरै दुखित होइ जइहइँ ॥८॥
ये रतनारे होरिलवा कातिक जिनि जनमेउ।
सब सखि पुजिहैं तुलसिया पुजन कैसे जाबइ॥९॥
ये रतनारे होरिलवा अगहन जिनि जनमेउ।
सब सखि जैहैं गवनवाँ देखन कैसे जाबइ ॥१०॥
ये रतनारे होरिलवा पूस जिनि जनमेउ।
पूस हनै तुसार जाड़ मोरे लगिहइँ ॥११॥
ये रतनारे होरिलवा माघ तू जनमेउ।
माघइ मास सुमास महल बीचे रहबइ ॥१२॥

हे मेरे रतनारे बेटा! फागुन में जन्म न लेना। सब सखियाँ फाग खेलने जायँगी, मैं कैसे जाऊँगी? ॥१॥

हे मेरे रतनारे बेटा! चैत में जन्म न लेना। सब सखियाँ कुसुम चुनने जायँगी, मैं कैसे जाऊँगी? ॥२॥

हे मेरे रतनारे बेटा! बैसाख में जन्म न लेना। बैसाख में घर-घर विवाह आदि उत्सव होते हैं, मैं देखने कैसे जाऊँगी? ॥३॥

हे मेरे रतनारे बेटा! जेठ में जन्म न लेना। जेठ की दुपहरी की ज्वाला मुझसे कैसे सही जायगी? ॥४॥

हे मेरे रतनारे बेटा! आषाढ़ में जन्म न लेना। गली-गली में बादल गरजेंगे, तब अडोस-पड़ोस की स्त्रियाँ सोहर गाने के लिये कैसे आयेंगीं? ॥५॥

हे मेरे रतनारे बेटा! सावन में जन्म न लेना। सब सखियाँ सावन में झूला झूलने जायँगी, मैं कैसे जाऊँगी? ॥६॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! भादों में जन्म न लेना। भादों में बिजली चमकेगी तो स्त्रियाँ कैसे आयेंगी ? ॥७॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! कुआर में जन्म न लेना। घर में पितर आयेंगे और दुःख पायेंगे ॥८॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! कार्तिक में जन्म न लेना। सब सखियाँ तुलसी की पूजा करने जायँगी, मैं कैसे जाऊँगी ? ॥९॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! अगहन में जन्म न लेना। सब सखियाँ गौने जायँगी, मैं उन्हें देखने और भेंट करने कैसे जाऊँगी ? ॥१०॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! पूस में जन्म मत लेना। पूस में पाला पड़ता है, मुझे बड़ी जाड़ा लगेगी ॥११॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! माघ में जन्म लेना। माघ ही सबसे अच्छा महीना है। माघ में सुख से महल में रहूँगी ॥१२॥

इस गीत में बारहो महीनों की साधारण आलोचना की गई है।

(४१)

गरजउ हे दैवा ! गरजउ गरजि सुनावउ हो।
दैवा ! बरसौ जये के खेतवा बरसि जुड़वावउ हो ॥१॥
जनमउ हे पूता ! जनमउ मोहिं दुखिया घर हो।
पूता ! उजरा डिहवा बसावउ बबैया जुड़वावउ हो ॥२॥
कैसे मैं जनमउँ ये मैया कैसे मैं जनमउँ रे।
मैया ! टुटहे झिलँगवा ओलरबिउ तुकारि पुकरबिउ हो ॥३॥
जनमउ हे पूता ! जनमौ मोहिं दुखिया घर हो।
आल्हर चनना कटइबों तौ पलँग सुउइबों हो ॥४॥
पीताम्बर ओढ़इबिउँ तौ भैया कहि गोहरइबिउँ हो।
तेलवा त मिलिहैं उधरवा नुनवाँ व्यवहरवाँ हो।
मैया ! कोखिया क कवन उघार जबइ विधि देइहैं,
तबइ तू पउबिउ ॥५॥

सुरजा उवत पह फाटत होरिला जनम लीन्हा हो।
रामा बाजै लागे अनँद बधैया उठन लागे सोहर हो ॥६॥

हे बादलो! बरसो। गरजकर सुनाओ। जौ के खेत में बरसो। उसे शीतल करो॥१॥

हे पुत्र! मुझ गरीबनी के घर जन्म लो। उजड़े हुए खँडहर को बसाओ। पिता के हृदय को शीतल करो॥२॥

हे माँ! मैं कैसे तुझ गरीबिनी के घर जन्म लूँ? तू टूटे खटोले पर मुझे सुलायेगी, और 'तू' कहकर बुलायेगी॥३॥

माँ ने कहा—हे बेटा! तुम मेरे घर जन्म लो। मैं ताजा चन्दन कटाकर उसका पलंग बनवाऊँगी और उस पर तुमको सुलाऊँगी। पीताम्बर ओढ़ाऊँगी। भैया कहकर पुकारूँगी। मुझ गरीबिनी के घर जन्म लो॥४॥

हे माँ! तेल और नमक तो उधार-व्यवहार से भी मिल सकते हैं, पर कोख तो उधार नहीं मिल सकती। जब भगवान देंगे, तभी पाओगी॥५॥

बड़े, तड़के पौ फटते ही पुत्र ने जन्म लिया। आनंद की बधाई बजने लगी और सोहर गाये जाने लगे॥६॥

इस गीत में बादलों से पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा प्रकट की गई है। इसका रहस्य गीता के इस श्लोक में है—

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो पर्जन्यादन्न संभवः।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि—

अर्थात्, यज्ञ से बादल होते हैं। बादल से अन्न होते हैं और अन्न से प्राणी पैदा होते हैं।

(४२)

केकर ऊँच मंदिलवा त पुरुब दुअरिया हो।
रामा 'कौन' राम परम सुनरिया त बार न बाँधइ
सिर न सँवारइ, भुइयाँ प लोटइ हो॥१॥

ससुर क ऊँच मँदिलवा त पुरुब दुअरिया हो।
'कवन' राम परम सुनरिया त बार न बाँधइ,
सिर न सँवाँरइ, भुइयाँ प लोटइ हो ॥२॥
अँगना बटोरत चेरिया औरौ लउँड़ियाउ हो।
चेरिया राजा के खबरि जनाउ बेदन मोर कहियो हो ॥३॥
पसवा जे खेलत 'कवन' राम रजवा कवन राम हो।
राजा तोरी धन बेदना बेआकुल तुहँके बोलावइ हो ॥४॥
पसवा जे फेंकैं राजा बेल तर औरौ बबुर तर हो।
राजा झपटि पईठैं गजओबरि कहै रे धन बेदन हो ॥५॥
मुड़ मोर बहुत धमाकै अरे कड़िहर सालइ हो।
राजा मुअलिउँ कमरियाकी पीर तो दाई बोलावहु हो ॥६॥
तुम राजा बइठौ गोड़वरियाँ हम मुड़वरियाँ हो।
राजा पहर पहर पीर आवै दुनौं जन अँगइब हो ॥७॥
छानी जो होत त छवतेंतिउँ मरद बोलउतेउँ हो।
रानी बेदन का बाँधल मोटरिया कले कल छूटहिं
त छोरहिं नरायन हो ॥८॥
आवहु रान्ह परोसिनि तुहुँ मोर गोतिन हो।
गोतिन यहि बौरहिया समझावो बेदन कइसे बाँटी हो ॥९॥

यह ऊँचा घर किसका है, जिसका द्वार पूर्व ओर है? यह किसकी परम सुन्दरी स्त्री बाल नहीं बाँधती, न सिर सँवारती है और भूमि पर लोट रही है? ॥१॥

यह घर ससुरजी का है, जिसका द्वार पूर्व ओर है। .....राम की परम सुन्दरी स्त्री न बाल बाँधती है, न सिर सँवारती है और भूमि पर लोट रही है ॥२॥

दासियाँ आँगन बुहार रही हैं। हे दासी! मेरे स्वामी को खबर करो और मेरी प्रसव-वेदना का समाचार कहो ॥३॥

मेरे राजा पाँसा खेल रहे थे। दासी ने कहा—हे राजा! आपकी प्यारी स्त्री प्रसव-वेदना से व्याकुल हैं और आपको बुला रही हैं ॥४॥

स्वामी ने पाँसा बेल और बबूल के नीचे फेंक दिया। वे झपटते हुए कोठरी में चले आए और पूछने लगे—मेरी प्यारी रानी! क्या तकलीफ है? ॥५॥

मेरा सिर बहुत धमक रहा है और कमर कटी जा रही है। हे राजा! कमर की पीड़ा से तो मैं मरी जा रही हूँ। जल्दी दाई को बुलाओ ॥६॥

हे राजा! तुम पैर की तरफ बैठो और मैं सिरहाने बैठूँगी। हम दोनो मिलकर एक-एक पहर पर आनेवाली पीड़ा को सहेंगे ॥७॥

हे रानी! छान-छप्पर छवाना होता तो मर्द उसमें मदद कर सकता था। यह पीड़ा की बाँधी हुई गाँठ धीरे ही धीरे छूटेगी और सो भी नारायण की कृपा होगी, तब ॥८॥

हे मेरी पड़ोसिनी! तुम लोग जरा इस पगली को समझाओ तो, भला, पीड़ा कैसे बाँटी जा सकती है? ॥९॥

इस गीत में प्रसव-पीड़ा के समय का जीता-जागता चित्र है।

(४३)

फुल एक फुलइ गुलाब भँवर रँग सुन्दर हो।
फुलवा परिगा श्रीकृष्णजी के हाथ ते केइ लइ जइहइँ हो ॥१॥
कृष्ण पिआरी रानी रुकमिनि उनही फुलवा दीहेनि हो।
सतिभामा के जियरा बिरोग हमहिं बिसरायनि हो ॥२॥
अरे कहतिउ सरगे क जाई सरग डोरिया लाई हो।
रानी उहि रे बरन कइ फूल अँगनवाँ तोहरे लउबइ हो ॥३॥
काहे क सरग क जाबेउ सरग डोरिया लउबेउ हो।
हमरा कुसल रहइँ सिरीकृष्ण नौजि फुलवा पउबइ
फुलेह बिन रहबइ हों ॥४॥

गुलाब का एक फूल फूलता है जो भ्रमर की तरह सुन्दर है। वह फूल श्रीकृष्णजी के हाथ पड़ गया। उसे कौन लेगा? ॥१॥

श्रीकृष्ण की प्यारी रानी रुक्मिणी हैं। श्रीकृष्ण ने उन्हें ही वह फूल दे दिया। सत्यभामा के जी में इससे व्यथा पहुँची कि श्रीकृष्ण ने उन्हें भुला दिया ॥२॥

श्रीकृष्ण ने कहा—कहो तो मैं स्वर्ग जाकर, स्वर्ग तक रस्सी लगाकर हे रानी! उसी रंग का फूल तुम्हारे आँगन में लाकर लगा दूँ ॥३॥

सत्यभामा ने कहा—क्यों स्वर्ग जाओगे? क्यों स्वर्ग तक सीढ़ी लगाओगे? मेरे श्रीकृष्ण सुख से रहें। मुझे फूल न मिला, न सही। मैं बिना फूल ही के रहूँगी ॥४॥

बात यह थी कि रुक्मिणी को गर्भ था। गर्भ के समय स्त्री को सब प्रकार से प्रसन्न रखना पुरुष का कर्तव्य है। किसी पति के दो स्त्रियाँ थीं। पति को एक सुन्दर फूल मिल गया। उसने उसे लाकर अपनी गर्भिणी स्त्री को दे दिया। दूसरी स्त्री इससे कुढ़ी कि उसे क्यों नहीं दिया। पति था व्यवहार-कुशल। कई स्त्रियों को संतुष्ट रखना जानता था। उसने वाक्-चातुर्य से दूसरी स्त्री को भी संतुष्ट कर लिया। पर कई स्त्रियाँ होने से पुरुष को रात-दिन एक न एक के मोरचे पर खड़ा ही रहना पड़ता है। एक न एक रूठी ही रहती है। यह इस गीत से स्पष्ट हो रहा है।

(४४)

जिरवै अस धन पातरि कुसुम अस सुन्दरि।
रामा चढ़ि गईं पिआ की अटारी सोईं सुख नींदा ॥ १ ॥
गेडुवा त धरिन उससवाँ चुनरी पयन तरे।
धना चढ़ि गई पिया की अँटरिया सोईं सुख नींदा,
खबरि कुछ नाहीं ॥ २ ॥
सोइ साइ जब जागीं चौंकि उठि बइठीं।
ये मोरे राजा छोड़ो न मोर अँचरवा तौ हम भुइँ बइठीं ॥ ३ ॥

कै तेरी सासु तुम्हें टेरै की ननद बुलावइ।
ये री रानी की तेरे रोवैं बारे लाल जिन्हें लै बइठौ ॥ ४ ॥
ना मोरी सासु बुलावइ न ननद बुलावइ।
मोरे राजा ! राम भजन की है बेर में जिअरा लइके बइठब ॥५॥
कोठे से उतरीं जच्चा रानी त आँगन ठाढ़ी भईं।
द्वारे से आये उनके देवर काहे भाभी अनमनि ॥ ६ ॥
देवरा हो मोरे देवरा अरे तुम मोरे देवरा।
ये मोरे देवरा तोरे भाई बोलैं विष बोल करेजे मोरे सालइ ॥ ७ ॥
भाभी हो मोरी भाभी तुम्हीं मोरी भाभी।
ये मोरी भाभी ! अँचरे में लै तिल चौरा त सुरुज मनावउ ॥ ८ ॥
न्हाइ धोइ जब ठाढ़ी भइँ सुरुज मनावइँ।
ये मोरे सूरुज हम पर होउ दयाल सजन बोली बोलइँ ॥ ९ ॥
सुरुज मनावइ न पायउँ होरिल भुइँ लोटइँ।
बाजै लागी अनँद बधाई गावैं सखि सोहर ॥१०॥
टेरो न गाँव को बढ़ई हाल चलि आवइ बेगि चलि आवइ।
मोरे राजा चन्दन बिरिछ कटावइँ औ पलँग बिनावइँ ॥११॥
इँगुर बरनि पलँगिया रेसम उरदावन।
मोरी रानी ! आइ सोवउ सुख नींद मैं बेनिया डोलावउँ ॥१२॥
अब तौ बेनिया डुलौबेउ बहुत निक लगबइ।
मोरे राजा ! एक होरिल के कारन तुँ बोली हानि मारेउ
करेजे मोरे सालइ ॥१३॥

स्त्री जीरे की तरह पतली और फूल की तरह सुन्दरी है। वह अपने प्राणप्यारे की अटारी पर चढ़ गई और सुख की नींद सो गई ॥१॥

पानी से भरा हुआ लोटा सिरहाने रख दिया और ओढ़नी पैरों के पास। स्त्री सुख की नींद सो गई। उसे कुछ खबर न रही ॥२॥

सो-सा कर जब वह उठी, तब चौंककर उठ बैठी। पति से उसने कहा—हे मेरे राजा! मेरा आँचल छोड़ दो। मैं पलँग से नीचे उतर कर बैठूँगी ॥३॥

पति ने कहा—क्या तेरी सास तुझे बुला रही है? या ननद पुकार रही है? या तेरा कोई बालक रो रहा है? जिसे लेकर तू बैठेगी ॥४॥

स्त्री ने कहा—न सास बुला रही हैं, न ननद। हे मेरे स्वामी! भजन की बेला है। मैं अपना प्राण लेकर बैठूँगी ॥५॥

कोठे से उतरकर वह प्रसूता देवी आँगन में खड़ी हुई। बाहर से देवर ने आकर पूछा—हे भाभी! तू उदास क्यों है? ॥६॥

भाभी ने कहा—हे मेरे प्यारे देवर! तुम्हारे भाई ने विष ऐसी एक बात कह दी है, जो मेरे कलेजे में दुःख दे रही है ॥७॥

देवर ने कहा—हे मेरी प्यारी भाभी! तुम आँचल में तिल और चावल लेकर सूर्य देवता को मनाओ ॥८॥

स्त्री नहा-धोकर खड़ी हुई और सूर्य को मनाने लगी। हे सूर्य! मुझ पर कृपा करो। मेरे पति ने ताना मारा है ॥९॥

अभी अच्छी तरह प्रार्थना कर भी न पाई थी कि पुत्र उत्पन्न हुआ और पृथ्वी पर लोटने लगा। आनन्द की बधाई बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥१०॥

मेरे राजा गाँव के बढ़ई को जल्दी बुला रहे हैं। चन्दन का वृक्ष कटाकर पलँग बनवा रहे हैं ॥११॥

लाल रंग की पलंग है, जिसमें रेशम की रस्सी लगी है। पति ने कहा—मेरी प्यारी रानी! आकर इस पलंग पर सुख की नींद सोओ और मैं पंखा हाँकूँ ॥१२॥

स्त्री ने हँसकर कहा—हाँ, अब तो तुम जरूर पंखा हाँकोगे। अब मैं तुमको बहुत अच्छी मालूम होऊँगी। पर एक पुत्र के कारण तुमने ऐसी बोली मुझ मारी थी, जो मेरे कलेजे में चुभ गई है ॥१३॥

जहाँ आपस म बहुत प्रेम होता है, वहाँ इस तरह की छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ाई-झगड़े चलते ही रहते हैं। यदि यह न हो, तो प्रेम की मिठास मालूम ही न हो।

(४५)

छापक पेड़ छिउल कर पतवन घनबिन हो।
जिहि तर ठाड़ी सीता देई बहुत विपति में हो॥ १॥
कहाँ पाउब सोने क छुरउना कहाँ पाउब धगरिन।
को मोरी जागइ रइनिया कवन दुख बाँटइ॥ २॥
बन से निकरीं बन तपसिनि सीतहिं समुझावइँ।
चुप रहु बहिनी तु चुप रहु हम देबइ सोने क छुरउना
हम तोरी जागब रइनिया हमहि होबै धगरिन।
विपति महिं बाँटब॥ ३॥
होत भोर लोही लागत कुस के जनम भये।
बाजै लागी अनँद बधाई गावइँ सखि सोहर॥ ४॥
जौ पूता होत अजोधिया राजा दसरथ घर हो।
राजा सगरिउ अजोधिया लुटउते कौसल्या देई अभरन॥ ५॥
अब तो पूता जनमेउ बन में बनफूल तोरउ हो।
बेटा! कुस रे ओढ़न कुस डासन बनफल भोजन हो॥ ६॥
हँकरिन बन केर नउवा बेगहि चलि आयउ।
नउवा जल्दी अजोधिया क जाओ रोचन पहुँचाओ॥ ७॥
पहिला रोचन राजा दसरथ दुसर कौसिल्ला रानी।
तीसरा दिन्ह्यो देवर लछिमन पियहिं न बतायउ॥ ८॥
राजा दसरथ दिहेन घोड़वा कौसिल्ला रानी अभरन।
लछिमन देवरा दिहेन पाँचौ जोड़वा त नउवा बिदा कर॥ ९॥

सोनेन केर गेंड़वना तो राम दतिवन करें।
लछिमन भहर भहर होय माथ रोचन कहँ पायउ ॥१०॥
भौजी तो हमरी सीता देई दोऊ कुल राखनि।
भइया उनके भये नन्दलाल रोचन हम पावा ॥११॥
हाँथे क गेंडुवा हाथ रहा मुख की दँतिवन मुखै रहि।
ढुरै लागे मोतियन आँसु पटुकवन पोंछइँ ॥१२॥
आगे के घोड़वा वशिष्ठ मुनि पाछे कै लछिमन।
बीचे के घोड़वा रामचन्दर सीता के मनावन चलें ॥१३॥
तुम्हारा कहा गुरु करबइ परग दस चलवइ।
फाटक धरती समाबइ अजोधिया न जाबइ ॥१४॥

पलाश (ढाक) का छोटा-सा पेड़ है, जो हरे पत्तों से खूब घना हो रहा है। उसके नीचे सीता देवी खड़ी हैं, जो घोर विपदा में पड़ी है ॥१॥

सीता सोच रहीं हैं—यहाँ बन में सोने का छुरा कहाँ मिलेगा? यहा धगरिन (नाल काटने वाली) कहाँ मिलेगी? मेरी शुश्रूषा के लिये रात भर कौन जागेगा? मेरा दुःख कौन बँटायेगा? ॥२॥

बन मे से बन की तपस्विनियाँ निकली। वे सीता को समझाती हैं—हे सीता बहन! चुप रहो, धीरज धरो। हम सोने का छुरा देंगी और हमी धगरिन होंगी। हमीं तुम्हारे लिये रात भर जागेंगी और हमी दुःख बँटायेंगी ॥३॥

पौ फटते ही कुश का जन्म हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगी ॥४॥

सीता ने कहा—हे बेटा! यदि तुम अयोध्या में राजा दशरथ के घर पैदा हुए होते तो उनके हर्ष का ठिकाना न होता। वे आज सारी अयोध्या लुटा देते और मेरी सास कौशल्या अपने कुल गहने लुटा देतीं ॥५॥

अब तो तुम बन में पैदा हुए हो, बन के फूल तोडो, कुश बिछाओ, कुश ओढ़ो और बनफल खाओ ॥६॥

बन का नाऊ बुलाया गया। वह तत्काल आ पहुँचा। हे नाऊ! जल्दी अयोध्या जाओ और रोचन पहुंचाओ ॥७॥

पहला रोचन राजा दशरथ को देना। दूसरा रानी कौशल्या को। तीसरा रोचन मेरे देवर लक्ष्मण को; पर मेरे पति को कुछ न बताना ॥८॥

राजा दशरथ ने नाऊ को घोड़ा दिया; कौशल्या ने गहने और लक्ष्मण ने पाँचों जोड़े (पगड़ी, दुपट्टा, अँगरखा, धोती और जूता) देकर नाऊ को बिदा किया ॥९॥

सोने के लोटे से राम दातुन कर रहे थे। लक्ष्मण के माथे पर रोली लगी देखकर राम ने पूछा—लक्ष्मण! तुम्हारा माथा दमक रहा है। तुमने यह रोचन कहाँ पाया? ॥१०॥

लक्ष्मण ने कहा—हे भैया! मेरी भाभी सीता देवी दोनों कुलों की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाली है। उनके पुत्र हुआ है। वही रोचन मैंने पाया है ॥११॥

यह सुनते ही राम ऐसे व्यथित हुए कि हाथ का लोटा उनके हाथ ही में रह गया और दातुन मुँह ही में रह गई। आँखों से मोती-ऐसे आँसू ढुलक पड़े। वे दुपट्टे से उसे पोंछने लगे ॥१२॥

आगे के घोड़े पर वशिष्ठ, पीछे के घोड़े पर लक्ष्मण और बीच के घोड़े पर राम सीता को मनाने चले ॥१३॥

सीता ने कहा—हे गुरु! आपकी आज्ञा मैं नहीं टालूँगी। दस कदम चलूँगी; पर अयोध्या में नहीं जाऊँगी और फाटक पर ही पृथ्वी में समा जाऊँगी ॥१४॥

सीता देवी पर मिथ्या संदेह कर के राम ने लोक-मर्यादा की रक्षा के लिये उनको जो वनवास दिया था, स्त्री-समाज ने उसका अनुभव बड़े ही दर्द से किया है। वाल्मीकि और तुलसी दोनों इस घटना को छोड़ गये; पर स्त्रियों ने सहस्र-सहस्र कंठ से उसे गाया है और सीता के साथ सहानुभूति प्रकट की है।

इस गीत का सुख तो "पियहिं न बतायउ" में है। मनस्विनी पतिव्रता का चित्र इस छोटी-सी कड़ी में ऐसा उतर आया है कि देखते ही बनता है।

(४६)

कमर में सोहै करधनियाँ पाँव पैजनियाँ।
ललन दूरी खेलन जनि जाओ ढूँढ़न हम न अउबै ॥ १ ॥
सात बिरन की बहिनिया बाप धिया एकै।
हरिजी के परम पियारि ढूँढ़न कैसे अउबै ॥ २ ॥
भोर भये भिनसरवा कलेवना की जुनिया।
होइ गै कलेवना की बेर ललन नहिं आये ॥ ३ ॥
अँगिया तो फाटै बँदै बँद अँचरा करै कर।
छतिया उठीं हहराय ढूँढ़न हम आइनि ॥ ४ ॥
सात बिरन की बहिनिया बाप धिया एकै।
मैया बाबू क परम पियारि ढूँढ़न कैसे आइउ ॥ ५ ॥
छाड़ेउँ मैं सातौ बिरनवा बाप कै नैहर।
छोड़ि दीन्ह्यौं हरि की सेजरिया ढूँढ़न हम आइन ॥ ६ ॥
जैसे कुम्हार क औंवाँ त भभकि भभकि रहै।
बेटा वैसइ माई क करेजवा त धधकि धधकि रहै ॥ ७ ॥

बच्चे के कमर में करधनी और पाँव में पैंजनी शोभा दे रही है। माँ कहती है—हे बेटा! दूर खेलने मत जाओ। मैं ढूँढ़ने कैसे आऊँगी? ॥१॥

सात भाइयों की तो मैं बहन, अपने बाप की एक ही कन्या और अपने प्राणेश्वर की परम प्यारी, भला, मैं तुमको ढूँढ़ने कैसे आऊँगी? ॥२॥

सबेरा हुआ। कलेवे का समय आया। कलेवे का वक्त हो गया। बेटा घर नहीं आया। कहीं खेल रहा है ॥३॥

माँ से रहा नहीं गया। बच्चे के लिये हृदय ऐसा उमड़ा कि चोली के बन्द-बन्द टूट गये और आँचल के तार-तार अलग हो गये। हृदय पीड़ा से व्यथित हो गया। तब वह ढूँढ़ने आई ॥४॥

बेटे ने पूछा—तुम सात भाइयों की बहन, बाप की एक ही बेटी तथा मेरे पिता की बड़ी प्यारी, मुझे ढूँढ़ने कैसे निकली? ॥५॥

माँ ने कहा—मैंने सातों भाइयों को छोड़ दिया। नैहर भी भुला दिया। स्वामी की सेज भी छोड़ दी। मैं तुमको ढूँढ़ने आई हूँ ॥६॥

जैसा कुम्हार का आँवाँ सुलगता है, वैसे ही पुत्र के लिये माँ का हृदय धधक-धधक उठता है ॥७॥

किसी स्त्री को पहला ही पुत्र हुआ है। संसार में प्रेम के लिये उसे एक नया पदार्थ मिला है। पहले वह जानती नहीं थी कि पुत्र-प्रेम कितना प्रबल होता है। स्त्री के हृदय में पुराने और नये प्रेम-पात्रों का जब संघर्ष जारी हुआ है, तब उसने पुत्र-प्रेम के पीछे सब को छोड़ दिया। सचमुच, पुत्र के लिये माँ का प्रेम अगाध होता है।

(४७)

राजा दसरथ के पिछवरवाँ अतर भल गमकइ हो।
अरे अतर क बास सुबास कोसिल्ला रानी के राम भये ॥ १ ॥
घर में से निकलीं केकैयी रानी सुनहु सुमित्रा रानी हो।
बहिनी आवा चली बड़े दरबार दोहँस फेरि आई ॥ २ ॥
अँगना बटोरति चोरिया त अवरी लऊँड़िआ हो।
आवेलीं केकैया सुमित्रा त राम जनि देखावहु हो ॥ ३ ॥
अँगना बटोरति चेरिया त अवरी लऊँड़िआ हो।
चेरिआ झारि बिछाव सुखपलिआ बईठैं रानी केकइ ॥ ४ ॥
हम नहिं बैठब कौसिल्ला रानी हम नाहिं बैठब।
तनि एक राम क देखब घरे हम जाइब ॥ ५ ॥
का हम राम क देखाई त का राम सुन्दर।
अरे छठिआ बरहिआ के आया त राम देखी जाया ॥ ६ ॥
ई मती जानहु कौसिल्ला रानी का राम सुन्दर।
इहै राम लंका फुंकैहइँ अजोधिया बसइहैं ॥ ७ ॥

राजा दशरथ के पिछवाड़े इत्र खूब महक रहा है। इत्र की सुगन्ध बड़ी मीठी है। जान पड़ता है, कौशल्या के राम हुए हैं ॥१॥

घर में से कैकेयी रानी निकलीं और सुमित्रा से बोली—हे बहन! आओ चलें, बड़े दरबार की हाजिरी दे आवें ॥२॥

आँगन बटोरती हुई दासी ने कहा—कैकेयी और सुमित्रा आ रही हैं, इन्हें राम को न दिखाओ ॥३॥

आँगन बटोरती हुई दासियों से कौशल्या ने कहा—जल्दी से सुखपाल झाड़कर बिछा दो, जिस पर रानी कैकेयी बैठेंगी ॥४॥

कैकेयी ने कहा—हे रानी कौशल्या! हम बैठेंगी नहीं। हम एक बार राम को देखकर घर जायँगी ॥५॥

कौशल्या ने कहा—राम को क्या दिखाऊँ? क्या राम सुन्दर हैं? छठी या बरही को आइयेगा तो राम को देख लीजियेगा ॥६॥

कैकेयी ने कहा—हे कौशल्या रानी! यह मत समझना कि राम सुन्दर नहीं हैं। यही राम लंका फुकायेंगे और अयोध्या बसायेंगे ॥७॥

गीत की पाँचवीं छठी पंक्तियों से मालूम होता है कि घर में राग-द्वेष फैलाने में नौकरानियों का कितना हाथ होता है। अन्तिम पंक्तियों में रूप की अपेक्षा गुण की महिमा अधिक बताई गई है। हिन्दू-समाज का सदा से यही ध्येय रहा है। तभी इस समाज में विश्वविजयी वीर पैदा होते थे।

(४८)

ससुर दुअरवा जँम्हिरिआ तो लहर लहर करै, मँहर मँहर करै।
मोरे साहब अँगनवाँ रस चूवइ जच्चा रानी भीजइँ ॥ १ ॥
दुअरवा से आये बीरन भैया छुरिया पहाँटैं कटरिया पहांटैं।
सारे कटबौ मैं रुखवा जम्हिरिआ बहिन मोरी भीजइ ॥ २ ॥
ओबरी से बोलीं जच्चा रानी नैना कजर दिहे सिरहा सिंदुर दिहे,
मुँह मा ताम्बूल लिहे, कोरवा होरिल लिहे हो।
भैया ससुरे लगाई जम्हिरिआ जम्हिरिआ जनि काटेउ ॥ ३ ॥

मेरे ससुर के द्वार पर जम्हीरी नीबू का वृक्ष लहलहा रहा है; महक रहा है। उससे आँगन में रस टपका करता है, जिससे जच्चा रानी भीगती हैं ॥१॥

बाहर से छोटा भाई आया। वह छुरी तेज करने लगा, कटारी तेज करने लगा और कहने लगा—मैं इस नीबू साले को काट डालूँगा। मेरी बहन भीगती है ॥२॥

कोठरी से जच्चा रानी निकली, जो आँखों में काजल दिये हुए हैं, सिर पर सिंदूर लगाये है, मुँह में पान लिये हुए है और गोद में बालक लिये हुए हैं। उन्होंने कहा—हे भाई! इस नीबू को मेरे ससुरजी ने लगाया था, इसे मत काटो ॥३॥

मालूम होता है, ससुर का देहान्त हो चुका है। उनके हाथ का लगाया हुआ जम्हीरी नीबू का दरख्त उनके स्मृति-चिह्नस्वरूप मौजूद है। ससुर के हाथ की चीज है, इस खयाल से बहू को उस पर कितना प्यार है, कितनी ममता है, यह गीत से स्पष्ट है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ स्मृति की रक्षा कहीं अधिक करती हैं।

(४९)

काहेक चनना उतारेउ कपुरा भरायउ।
रानी केहिं देखि चढ़लिउ अँटरिया काहे देखि मुरझिउ ॥ १ ॥
होरिला कै चनना उतारेन कपुरा भरायन।
राजा तुम्हें देखि चढ़लिउँ अँटरिया सवति देखि मुरझिउँ ॥ २ ॥
रानी तुम तो रेंड कै कँड़रिया फट्ट सेती टुटबिउ।
रानी हम तो बाँस कै कइनिया नवाये नाहीं टुटबै ॥ ३ ॥

पति ने पूछा—किसका चन्दन उतार कर कपूर भराया? किसे देख कर तुम अटा पर चढ़ी? और किसे देखकर कुम्हला गई? ॥१॥

स्त्री ने कहा—बच्चे का चंदन उतार कर कपूर भराया। हे मेरे राजा! तुमको देखकर अटा पर चढ़ी और सौत को देखकर मुरझा गई ॥२॥

पति ने कहा—हे रानी! तुम्हारा स्वभाव तो रेड़ के कोमल डंठल की तरह है कि जरा-सा धक्का लगा और खट से टूट गया। पर मेरा स्वभाव बाँस की पतली टहनी की तरह है, जो झुक सकता है, पर टूटता नहीं ॥३॥

पति ने दो स्वभावों की कैसी सुन्दर तुलना की है। पति ने स्त्री को उपदेश किया है कि स्वभाव सहनशील होना चाहिये।

(५०)

चनना कटाइउँ . पलँगा बिनाइउँ।
मचवन ईंगुर चराइउँ रेशम ओरदावनि ॥ १ ॥
तेहि पर सुतैं कवन रामा कोरवाँ कवन दुई।
चेरिया तो बेनिया डोलावैं नींद भलि आवइ ॥ २ ॥
छपटि क सूतैं मोर साहब तुम सिर साहब हो।
मोरे बारे ललन की झँगुलिया पसिनवाँ बुड़त है ॥ ३ ॥
बोलेउ तौ धन बोलेउ बोलेहु न जानेउ हो।
तोरे बारे ललन की झँगुलिया मैं दोहरी सिआइहौं ॥ ४ ॥
कहवाँ के दरजी बोलइहौ तौ कहँवा कै सुइया हो।
कैसे क बन्द लगइहौं ललन पहिरइहौं हो ॥ ५ ॥
अगरे कै दरजी मँगइहौं पटने कै सुइया हो।
रानी बत्तिस बन्द लगइहौं ललन पहिरइहौं ॥ ६ ॥
हाथन सोने क खगउड़ा पायन पैजनियाँ।
लालन खेलिहैं बरोठवा बतीसो बन्द झुलिहैं ॥ ७ ॥
बहै पुरवइया पवन भल डोलइ हो।
लालन खेलिहैं बरोठवा दुनौ जन देखब हो ॥ ८ ॥

चन्दन कटाकर पलँग बनवाया, उसके पावों में ईंगुर का रंग कराया और रेशम की ओरदावन (पैताने की ओर लगी हुई रस्सी) लगवाया ॥१॥

उस पर. . . . राम सोते हैं, जिनकी गोद में. . . . . देवी हैं। दासी पंखा झल रही है ॥२॥

स्त्री की गोद में शिशु है। वह कहती है—मेरे स्वामी, मेरे प्राणनाथ, मुझ से चिपक कर सो रहे हैं। मेरे छोटे बच्चे की कुरती पसीने से तर हो रही है ॥३॥

पति ने कहा—हे मेरी प्यारी रानी! तुमने कहा तो सही, पर

कहना नहीं आया। मैं तुम्हारे नन्हें बच्चे के लिये दो-दो कुरते सिला दूँगा ॥४॥

स्त्री कहती है—कहाँ का दरजी बुलाओगे ? और कहाँ की सुई होगी ? झँगुली में कै सौ बन्द लगेंगे ? जिसे तुम मेरे लाल को पहनाओगे ॥५॥

पति ने कहा—आगरे का दरजी बुलाऊँगा, पटने की सुई मँगाऊँगा। झँगुली में बत्तीस बन्द लगेंगे। जिसे मैं लाल को पहनाऊँगा ॥६॥

बच्चे के हाथ में सोने का कड़ा होगा, पैरों में पैजनियाँ होंगी। मेरे लाल बैठक में खेलेंगे और बत्तीसों बन्द लटकते रहेंगे ॥७॥

पूर्वा हवा चल रही है। वायु की लहर बड़ी सुहावनी लग रही हैं। मेरे लाल बैठक में खेलेंगे और हम दोनों देखेंगे ॥८॥

पति-पत्नी की एकान्त लालसा इस गीत में चित्रित है। साथ ही किसी समय कहाँ-कहाँ की क्या चीजें प्रसिद्ध थीं, इसका वर्णन भी है।

(५१)

जेठ तपै दिन रात तो धरती गरम भई।
राजा बाहेर बँगला छवउता दुनौ जने सोइत ॥ १ ॥
रानी न हो मोरी रानी तुहीं मोरी रानी।
लागत मास असाढ़ दखिन चले जइहैं।
रानी बाहेर बँगला छवावौं अकेले तुम सोवउ ॥ २ ॥
राजा न हो मोरे राजा तुहीं मोरे राजा।
सावन भादों की रात अकेले कैसे रहबइ ॥ ३ ॥
रानी न हो मोरी रानी तुहीं मोरी रानी।
मैके से बिरन बुलाओ नइहर चली जावउ ॥ ४॥
काहे क बिरन बुलौबै नइहर चली जाबइ।
राजा ! सासु की करिके टहलिया उमिरि हम बितउब ॥५॥

जेठ रात-दिन तप रहा है। पृथ्वी गर्म हो गई है। हे मेरे राजा ! बाहर बँगला छवाते, तो हम दोनों उसमें सोते ॥१॥

पति ने कहा—हे मेरी रानी ! तुम मेरी प्यारी रानी हो। मैं तो आषाढ़ लगते ही दक्खिन चला जाऊँगा। कहो तो तुम्हारे लिये बाहर बँगला छवा दूं, जहाँ तुम अकेले सोना ॥२॥

स्त्री ने कहा—हे मेरे राजा ! तुम मेरे राजा हो। सावन भादों की अँधेरी रात में मैं अकेले कैसे रहूँगी ? ॥३॥

पति ने कहा—हे रानी ! तुम मेरी रानी हो। नैहर से अपने भाई को बुला लो और नैहर चली जाओ ॥४॥

स्त्री ने कहा—क्यों भाई को बुलाऊँ ? क्यों नैहर जाऊँ ? हे राजा ! मैं सास की सेवा करके अपनी उम्र बिताऊँगी ॥५॥

(५२)

पलँग जो आये बिकाइ पलंग अति सुन्दर।
मोरी सासु को देउ बोलाइ पलंग उइ लैहैं होरिल भुइयाँ सोवै॥१॥
गरब क माती बहुरिया गरब बोली बोलइ।
माँगि पठावो अपने नइहर होरिलवा सोवावो ॥ २ ॥
हँकरौ न नगर के नौवा बेगि चलि आवो।
नौवा हमरे मइके चले जावो पलँग लै आवो, होरिल भुइँ सोवैं ।३
सभा में बैठे "अमुक" रामा नौवा अरज करै।
साहेब धेरिया के भये नँदलाल पलँग उइ माँगइ ॥ ४ ॥
अल्हर चनन कटावइँ पलँग बनावइँ।
चारों पावन ईंगुरु ढरावैं रेसम ओरदावन ॥ ५ ॥
पलँग जो आई दुवारे पलँग अति सुन्दर।
मोरी सासू को देउ बोलाइ पलँग उइ देखैं ॥ ६ ॥
बड़े रे बापन के धेरिया बड़े बोल बोलइ।
पलँग बिछावो गज ओबरी होरिलवा सोवावो ॥ ७ ॥

बहुत सुन्दर पलँग बिकने आया है। मेरी सास को बुला दो। वे पलँग खरीद लें। मेरा बच्चा जमीन पर सोता है ॥१॥

सास ने कहा—अभिमान से मतवाली बहू गर्व ही की बात बोलती है। अपने नैहर से पलँग मँगा न लो, जिस पर अपने बच्चे को सुलाओ ॥२॥

बहू ने गाँव के नाई को बुलवाया और कहा—हे नाई! तुम मेरे मैके जाओ और पलँग ले आओ। मेरा बच्चा ज़मीन पर सोता है ॥३॥

बहू का पिता सभा में बैठा था। नाई ने जाकर विनय किया—हे स्वामी! आपकी कन्या के पुत्र हुआ है। कन्या ने पलँग मँगाया है ॥४॥

पिता ने हरा चंदन कटाकर पलँग बनवाया। चारों पावों में ईगुर लगवाया और रेशम की ओरदावन लगवाकर भेजा ॥५॥

पलँग जब बहू के द्वार पर आया, तब बहू ने कहा—पलँग बहुत सुन्दर है। ज़रा मेरी सास जी को बुला दो, पलँग देख लें ॥६॥

सास पलँग देखकर लज्जित हुई और बोली—बड़े बाप की बेटी है, इससे बड़े बोल बोलती है। बहू! ले जाओ, पलँग को अपनी कोठरी में बिछाओ और इस पर बच्चे को सुलाओ ॥७॥

धनी घर की कन्या छोटी हैसियत वाले घर में ब्याही गई थी। इससे सास-बहू में पटती नही थी। एक ओर अभिमान, दूसरी ओर ईर्ष्या। बात-बात में युद्ध।

(५३)

ऊँचे डगरिया कै कुइयाँ सुघर एक पानी भरै हो।
घोड़वा चढ़े राजपुतवा तौ बोलिया बहुत करैं हो ॥ १ ॥
को है घरे माँ अति दारुनि पनियाँ क पठइस हो।
जो जेठहिं के दुपहरिया में पनियाँ भराइस हो ॥ २ ॥
जाकर धना तुम सुन्दरि सो प्रभु कहाँ गये हो।
जो जेठहिं के दुपहरिया में पनियाँ भराइन हो ॥ ३ ॥
ऐसन धना जौ पाइत परम सुख पाइत हो।
धन! अँखिया में राखित छिपाय करेजवा में जोगइत हो ॥४॥

अस रजपुतवा जो पाइत चाकर हम राखित हो।
अपने प्रभुजी के पाये कै पनहिया तौ तोहँसे ढोवाइत हो ॥ ५ ॥

रास्ते में ऊँचाई पर एक कुँवा है। एक सुन्दरी स्त्री पानी भर रही है। घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजपूत वहाँ आया। बोली-ठोली में वह बहुत निपुण है ॥१॥

राजपूत ने कहा—हे सुन्दरी! तुम्हारे घर में ऐसे कठिन हृदय-वाली कौन है? जिसने तुमको इस जेठ की दुपहरी में पानी भरने भेजा है ॥२॥

तुम जिसकी ऐसी सुन्दरी स्त्री हो, वह तुम्हारा स्वामी क्या कहीं परदेश गया हुआ है? जो तुमको जेठ की दुपहरी में पानी भरना पड़ता है?

आहा! ऐसी सुन्दरी स्त्री यदि मैं पाता तो मैं बहुत ही सुख पाता। उसे मैं आँखों में छिपा रखता और हृदय में चुरा रखता ॥४॥

पतिव्रता स्त्री राजपूत की इस बात से नाराज़ होकर कहती है—तुम्हारे जैसा राजपूत को मैं पाती तो उसे नौकर रखती और अपने प्रभु के पाँव की जूती उससे ढोवाती ॥५॥

(५४)

जौने देस हिंगिया न मँहकै न जिरिया सुबासित।
तौने देस चलेहैं कवन रामा छुरिया बेसाहै कटरिया बेसाहै ॥१॥
अपना का बेसहैं त छुरिया होरिल क कटरिया।
अपने नाजौ का बेसहैं कँगनवाँ तौ बड़ेरे जुगुति सेती ॥ २ ॥
कँगना पहिरि धन बैठीं त अपने ओसरवा माँ रे।
येहो लहुरी ननद हाँकै बेनिया कँगनवाँ भौजी लेबै हो,
जौ तोरे भौजी होइहैं होरिलवा कँगनवाँ हम लेबै हो ॥ ३ ॥
चूमौं मैं ननदी क ओंठवा चउर अस दँतवा।
ननदी जौ मोरे होइहैं होरिलवा कँगन हम देबै,
ननदी कँगना कै जोट पछेलवा दुनौ हम देबै ॥ ४ ॥

नहाय धोय ननदी ठाढ़ि भईं देवता मनावैं लागीं।
देवता देहु भौजी क पूत कँगना हम पाई ॥ ५ ॥
सुरजा मनवहीं न पाइनि होरिला जनम लीन।
लट खोले नाचै ननदिया कँगनवाँ भौजी लेबइ रे ॥ ६ ॥
न तोर भैया गढ़ावा न बाबा रौरे मोल लीन।
ननदी ई मोरे नैहरे क कँगना कँगन हम ना देवइ रे ॥ ७ ॥
होउ उपत्तर केर धेरिया सुपत्तर कैसे होवौ री।
भौजी जौन बोल बोलिव ओसरवाँ उहै बोल राखउ ॥ ८ ॥
मारब सात गड़हरी गले दुइ थप्पड़ रे।
भौजी कँगना कै जोट पछेलवा दुनौ हम लेवइ ॥ ९ ॥
हाथ से काढ़ै कँगनवाँ फुफुनियाँ चुरावइँ रे।
ननदी खर वारि करउ उजेर कँगनवाँ मोर हेराय गये रे ॥१०॥
दुअरवा से आये ससुर राजा गरजि घुमड़ि बोलैं।
बहुअरि दै डारौ धिया का कँगनवाँ बिटियवा परदेसिनि ॥११॥
दुअरवा से आये साहेब मोरे गरजि घुमड़ि बोलैं।
दै डारौ बहिन का कँगनवाँ बहिन मोर दूखित होइहैं रे ॥१२॥
सभवा से आये देवर राजा साँसि दपटि बोलैं।
भौजी देसवा निकरि हम जाबै बहिनिया के कारन,
भौजी बेचबौं मैं ढाल तरवरिया बहिनि क मनैबौं ॥१३॥
फुफुनी से काढै कँगनवाँ अगनवाँ लै बहावै रे।
अरी पहिरौ सतभतरौ ननदिया सौति मोरि होवौ रे ॥१४॥
पहिरि ओढ़ि ननदी ठाढ़ि भईं सुरजा मनावैं लागीं।
सुरजा बाढ़ै मोरे भैया क सेजरिया मैं नित उठि आवउँ ॥१५॥

जिस देश में न हींग में सुगंध है, न जीरे में सुवास। उस देश में छुरी और कटारी खरीदने के लिये.....राम गये हैं ॥१॥

अपने लिये उन्होंने छुरी खरीदी और अपने पुत्र के लिये कटारी। तथा अपनी प्राणेश्वरी के लिये खूब जाँच-बूझकर कंगन खरीदा ॥२॥

कंगन पहनकर स्त्री अपने ओसारे में बैठी। उसकी छोटी ननद बेनिया (वेणु = बांस। बांस की बनी हुई पंखी) डुला रही थी। उसने कहा—भौजी! तुम्हारे पुत्र होगा तो यह कंगन मैं लूँगी ॥३॥

स्त्री ने कहा—मेरी प्यारी ननद! मैं तुम्हारे ओठ चूमती हूँ। तुम्हारे चावल ऐसे नन्हे-नन्हे दाँत चूमती हूँ। यदि मेरे पुत्र होगा तो मैं तुमको यह कंगन दे दूँगी। यही नही, मैं कंगन का जोड़ा पछेला भी दे दूँगी ॥४॥

ननद नहा-धोकर खड़ी हुई और देवता मनाने लगी—हे देवता! मेरी भौजी को पुत्र दो, जिससे मैं कंगन पाऊँ ॥५॥

अभी सूर्य को मना भी न पाई थी कि पुत्र का जन्म हुआ। ननद लट खोलकर नाचने लगी कि हे भौजी! मैं कंगन लूँगी ॥६॥

स्त्री ने कहा—यह कंगन न तेरे भाई ने गढ़ाया है, न तेरे बाबा ने इसे खरीदा है। इसे तो मैं अपने नैहर से ले आई हूँ। मैं कंगन नही दूँगी ॥७॥

ननद ने कहा—तुम कुपात्र की कन्या हो, सुपात्र कैसे हो सकती हो? भौजी! तुमने ओसारे में जो वादा किया था, उसे पूरा करो ॥८॥

मैं तुमको सात लात लगाऊँगी और दो थप्पड मारकर कंगन छीन लूँगी और पछेला भी ले लूँगी ॥९॥

स्त्री ने हाथ से कंगन निकालकर नीवी में चुरा लिया और कहा—हे ननद! फूस जलाकर जरा उजाला कर। कंगन कहीं खो गया ॥१०॥

बाहर से ससुर राजा आये और गरजकर बोले—हे बहू! कंगन दे डालो। बेटी परदेसिन है ॥११॥

बाहर से स्वामी आये और दपटकर बोले—मेरी बहन को कंगन दे डालो; नहीं तो वह दुःखी होगी ॥१२॥

सभा में से देवर राजा घुड़ककर बोले—भौजी! तुम कंगन न दोगी तो मैं बहन के लिये विदेश चला जाऊँगा। अपनी ढाल-तलवार बेंचकर बहन को कंगन लाकर दूँगा और उसे मनाऊँगा ॥१३॥

स्त्री ने इतनी कहा-सुनी के बाद नीवी से कंगन निकाला और ननद के आगे आँगन में फेंककर कहा—ले सात भतारवाली! पहनकर मेरी सौत बन ॥१४॥

ननद कंगन पहनकर खड़ी हुई और सूर्य देव से कहने लगी—हे सूर्य भगवान्! मेरे भाई की सेज बढ़े, जिससे मैं हमेशा आती रहूँ ॥१५॥

यह गीत उस समय का है, जब हिन्दुओं में छुरी-कटारी बाँधने का शौक था, और लोग दूर-दूर जाकर छुरी-कटारी खरीद लाया करते थे।

इस गीत में ननद-भौजाई के चोचले हैं। पुत्र-जन्म पर ननद को गहने आदि चीजें मिलती हैं। वह खुशामद करके, कभी-कभी रूठकर और लड़-झगड़कर भी चीजें लिया करती है। पर उसको लड़ाई के मूल में प्रेम का अथाह समुद्र भी होता है। जैसा इस गीत में ननद ने कहा है—

मारब सात गडहरी गले दुई थप्पड़।
कँगना कै जोट पछेलवा दुनौ हम लेबइ॥

ऐसा वाक्य निधड़क होकर वही कह सकता है, जिसमें पूर्ण प्रेम हो।

ननद-भौजाई में हँसी-मजाक करने का भी रिश्ता है। भौजाई ने कंगन देते समय मजाक किया भी है।

यह गीत किसी ननद का बनाया हुआ है। इसमें भौजाई को शर्मिंदा किया गया है। ननदके लालच की तो हद होती ही नहीं। भौजाई को अपना घर भी तो देखना पड़ता है। इसीसे उसे कंजूस कहा गया है।

सबसे मार्मिक और करुणापूर्ण शब्द इस गीत में 'बिटियवा परदेसिनि' है।

(५५)

गहिरी जमुनवा के तिरवाँ चनन गछ रुखवा हो।
तिन डरिया परे हैं हिंडोलवा झुलहिं रानी रुकमिनि हो ॥ १ ॥
झुलतहिं झुलत अबेर भा है औरउ बेर भा है हो।
मोरा टुटला मोतिन केर हार जमुन जल भीतर हो ॥ २ ॥

धावउ बहिनि चकइया तूं हाली बेगि आवउ हो।
चकई! चुनि लेव मोतिन क हार जमुन जल भीतर हो ॥ ३ ॥
अगिया लगाओं तोरा हरवा बजर परै मोतिन हो।
बहिनी! सँझवै से चकवा हेरान ढूंढ़त नहि पावउँ हो ॥ ४ ॥

गहरी नदी जमना के किनारे चन्दन का एक घना वृक्ष है। उसकी डाल पर हिंडोला पड़ा है। उस पर रानी रुक्मिणी झूल रही हैं ॥१॥

झूलते-झूलते बहुत देर हो गई। यकायक उनका मोती का हार टूट गया और मोती यमुना के जल में जा गिरे ॥२॥

रुक्मिणी ने चकई से कहा—हे चकई बहन! जल्दी दौडकर आओ, और मेरे हार के मोती यमुना के भीतर से चुनकर निकाल दो ॥३॥

चकई स्वयं चकवा के वियोग में व्याकुल हो रही थी। उसने कहा—तुम्हारे हार में आग लगे, मोती पर बज्र गिरे। साँझ ही से मेरा चकवा कहीं खो गया है। मैं ढूंढ़ रही हूँ और पाती नहीं हूँ ॥ ४ ॥

प्रियतम की खोज से बढ़कर संसार में और जरूरी काम क्या है?

(५६)

अँगने में फिरहि जच्चा रानी हथवाँ गोबर लिहे।
सासु कौन महल मोहि देहौ तवन घर लीपब हो ॥ १ ॥
मैया तो बोलैं न पावैं कि ननद उठि बोलै।
अम्मा यहि हरजोतवा की बिटिया दिहेउ घर भुसउल ॥ २ ॥
दूरि से आए सिर साहेब हड़पि तड़पि बोलैं।
बहिनी बड़े रे साहेब की बिटियवा देहु घर ओबरि ॥ ३ ॥
होत भोर पह फाटत होरिला जनम भए।
बाजै लागीं अनँद बधैया उठन लागे सोहर ॥ ४ ॥
बाहेर बाजै बधैया भीतर उठैं सोहर।
लट खोले झगड़ ननदिया कँगन भौजी लेबइ ॥ ५ ॥

केतनौ ननदी तु नाचौ जियरा नाहीं हुलसै।
ननदी समुझौ त आपन बोल दिहेउ घर भुसउल ॥ ६ ॥

हाथ में गोबर लिये जच्चा रानी घूम रही हैं। हे सास! मुझे कैसा घर दोगी? बता दो, तो मैं उसे लीप दूं ॥१॥

सास बोलने भी न पाई थी कि ननद ने उठकर कहा—माँ! इस किसान की बेटी को भूसे का घर दे दो ॥२॥

इतने में बाहर से स्वामी आ गये। बहन की बात सुनकर उन्होंने घुड़ककर कहा—बहन! यह बड़े घर की कन्या है, इसे खास घर दो ॥३॥

पौ फटते ही पुत्र का जन्म हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा ॥४॥

बाहर बधाई बज रही है, भीतर सोहर हो रहा है। ननद लट खोलकर झगड़ रही है कि हे भौजी! मैं कंगन लूँगी ॥५॥

भौजाई ने कहा—हे ननद! तुम कितना ही नाचो, पर मेरे मन में उत्साह नहीं हो रहा है। तुम अपनी बोली को याद करो, जो तुमने कहा था कि भूसे का घर दे दो ॥६॥

ननद-भौजाई में मेल बहुत कम देखने में आता है। कहीं-कहीं तो सास-बहू में वैमनस्य करा देने में ननद ही कारण होती है।

(५७)

काहे रे अमवा हरिअर ना जानों कौने गुना।
ललना ना जानों मलिया के सींचे त ना जानों खेत गुना ॥ १ ॥
ना यह मलिया के सींचे त ना यह खेत गुना।
ललना रिमिकि झिमिकि दैवा बरिसै त उनहीके बूंद गुना ॥२॥
होरिल तौ बड़ सुन्दर ना जानौं कौने गुना।
हं हो ना जानौं अम्मा के सँवारे त ना जानौं कोखी गुना ॥ ३ ॥
ना यह अम्मा के सँवारे तौ ना यह कोखी गुना।
ललना मोर पिया तप ब्रत कीन त उनहीं के धरम गुना ॥ ४ ॥

बारह बरिस बन सेवलें त गुरू घर से अवलें हो।
ललना तब घर बबुआ जनमलें सोहर अब सूनब हो ॥ ५ ॥
मचियहि बैठी हैं सासु त बहुआ से पूँछइँ हो।
बहुआ कवन कवन फल खायू होरिल बड़ सुन्दर हो ॥ ६ ॥
फल तो खायूँ नौरँगिया त आम छोहारौ हो।
सासू नरियर दाख बदाम नाहीं रे जानों वहि गुन हो ॥ ७ ॥
सभवहि बैठे हैं ससुरु त बहुआ से पूँछइँ हो।
बहुआ कवन कवन तप कीहिउ होरिल बड़ सुन्दर हो ॥ ८ ॥
सासु क बचन न टारेउँ न ननदा तुकारेउँ हो।
ससुरु कवहुँ न लाई लूकी लायउँ नाहीं रे जानौं वहि गुन हो ॥९।
सुपेली खेलत कै ननदिया त भौजी से पूंछइ हो।
भौजी कवन कवन ब्रत कीहिउ होरिल बड़ सुन्दर हो ॥१०॥
स्वामी क मानेउँ हुकुमवा देवर क दुलारेउँ हो।
ननदा ! सब कर लिहेउँ असीस त ना जानौं वहि रे गुना ॥११॥

यह आम का वृक्ष हरा क्यों है ? मालूम नहीं; माली के सींचने से यह हरा है या खेत के प्रभाव से ? ॥१॥

न यह माली के सींचने से हरा है, न खेत के प्रभाव से। रिमझिम करके जो बादल बरसते हैं, उन्हीं की बूंदों के प्रभाव से यह हरा है ॥२॥

यह बालक बहुत सुन्दर है। इतना सुन्दर यह क्यों है ? नहीं जानता इसकी माँ ने इसको ऐसा सुन्दर सँवार रक्खा है ? या उसकी कोख का ऐसा प्रभाव ही है ? ॥३॥

नहीं, नहीं न तो यह माँ के सँवारने से इतना सुन्दर है और न कोख का ही प्रभाव है। मेरे पति ने बहुत तप-व्रत किय था। उन्हीं के धर्म के प्रभाव से यह इतना सुन्दर है ॥१४॥

हे सखी ! मेरे पति बारह वर्ष तक बन में गुरु के घर में रहकर

विद्या पढ़ते रहे। फिर घर आये। तब इस बालक का जन्म हुआ। अब सोहर सुनूंगी ॥५॥

मचिये पर बैठकर सास बहू से पूछती है—बहू! तुमने क्या-क्या फल खाया जो तुम्हारा पुत्र इतना सुन्दर है? ॥६॥

बहू ने कहा—मैंने नारंगी, आम, छोहारा, नारियल, दाख और बादाम खाया था। शायद इन्ही के प्रभाव से बालक सुन्दर हुआ है ॥७॥

सभा में बैठे हुये ससुर बहू से पूछते हैं—हे बहू! तुमने कौन-सा तप किया है जो तुम्हारा बच्चा बड़ा सुन्दर है? ॥८॥

बहू ने कहा—हे ससुरजी! मैंने कभी सासजी की बात नहीं टाली। न ननद का तिरस्कार किया। न कभी इधर की बात उधर लगाई। शायद इसीके गुण से बच्चा इतना सुन्दर हुआ हो ॥९॥

सुपेली (छोटा सूप) खेलती हुई ननद ने पूछा—हे भौजी! तुमने कौन-सा व्रत किया था जिससे तुम्हारा बालक इतना सुन्दर है? ॥१०॥

बहू ने कहा—हे ननद! मैंने सदा स्वामी की आज्ञा का पालन किया। देवर को प्यार किया और सब का आशीर्वाद लिया। शायद इसीसे मेरा बालक सुन्दर हुआ है ॥११॥

यह गीत क्या है, एक आदर्श बहू का सुन्दर चित्र है। बालक सुन्दर क्यों हुआ है? इसके लिये उसके पिता का तपोनिष्ठ और धर्मिष्ठ होना आवश्यक है। साथ ही उसकी माँ भी ऐसी हो, जो गृहस्थी में अपना कर्त्तव्य-पालन करती हुई, घर के सब छोटे-बड़ों को सुख देकर, उनसे आशीर्वाद प्राप्त करे। उत्तम चरित्रवाले माँ-बाप का पुत्र सुन्दर क्यों न होगा?

(५८)

जेठ बैसखवा कै गरमी पसिनवाँ से ब्याकुल।
मोरे साहब बाहर बँगला छवउतेउ दुनौं जन सोइत ॥ १ ॥
ना हम बँगला छवैबइ न हम घर रहबइ हो।
मोरी रानी! हम तो जाबइ परदेस नइहर चली जावउ ॥२॥

ना मोरे माइ न बाबा न मोर सग भैया हो।
स्वामी ! भौजी बोलइ विष बोल करेजवा मँ सालइ ॥३॥
सासु क चरन पखरबै ननद क दुलरबइ।
साहब ! देवरा कै धोतिया पछरबइ यहीं हम रहबइ ॥ ४ ॥
एतना बचन जब सूनेनि घोड़े से उतरि परे।
मोरी रानी हरियर बँसवा कटइबै त बँगला छवइबइ ॥ ५ ॥
छरहर बँसवा कटायेन बँगला छवायेन हो।
मोरी रानी सीतल बहै बयरिया सोवउ सुख नींदर ॥ ६ ॥

बैसाख-जेठ की गरमी में मैं पसीने से व्याकुल हो जाती हूँ। हे मेरे स्वामी ! बाहर एक बँगला छवा दो तो उसमें हम दोनों सोयें ॥१॥

स्वामी ने कहा—न हम बँगला छवायेंगे, न हम घर रहेंगे। हे मेरी रानी ! मैं तो परदेश जाऊँगा। तुम नैहर चली जाओ ॥२॥

स्त्री ने कहा—न मेरी माँ है, न मेरे बाप है, न मेरा कोई सगा भाई है। भावज ऐसी कड़ी बात बोलती है जो विष की तरह मेरे कलेजे में सालती है ॥३॥

मैं यहीं रहूँगी। सास के पैर धोऊँगी। ननद को प्यार करूँगी। देवर की धोती धोऊँगी। मैं यहीं रहूँगी ॥४॥

स्त्री की यह सहृदयता से भरी हुई वाणी सुनते ही पति घोड़े से उतर पड़ा। उसने प्रेम से गदगद् होकर कहा—मेरी रानी ! मैं हरे-हरे बाँस कटाकर बँगला छवा दूँगा ॥५॥

पति ने लम्बे और सीधे बाँस कटवाकर बँगला छवा दिया और स्त्री से कहा—हे रानी ! ठंडी-ठंडी हवा चल रही है। जाओ, बँगले में सुख की नींद सोओ ॥६॥

गीत में स्त्री के विनम्र स्वभाव की विजय हुई है।

(५९)

चैतहि कै तिथि नवमी त नौबति बाजइ हो।
बाजै दसरथ राज दुवार कौसिल्ला रानी मंदिर हो ॥ १ ॥
मिलहु न सखिया सहेलरि मिलि जुलि आवहु हो।
जहाँ राजा के जनमें हैं राम करिय नेवछावरि हो ॥ २ ॥
केउ नावै बाजूबन्द केउ कजरावट हो।
केउ नावै दखिनवा कै चीर करहि नेवछावरि हो ॥ ३ ॥
भितरा से निकसीं कौसिल्ला अँगनवहिं ठाढ़ी भई हो ।
रानी धइ धइ हिरदै लगावैं करैं नेवछावरि हो ॥ ४ ॥
राम के मथवा चननवा बहुत निक लागै हो।
राम नयन रतनारे कजर भल सोहै ।
दीन्हों रचि रचि फूआ सुभद्रा तउ पतरी अँगुरियन ॥ ५ ॥
राम के मथवा लुटुरिया बहुत निक लागै हो।
जैसे फूलन के बिच बिच कलियाँ बहुत निक लागैं ॥ ६ ॥
राम के गोड़वा घुँघुरुवा बहुत निक लागैं हो।
नान्हें गोड़वन चलत बकैंयाँ देखत राजा दसरथ ॥ ७ ॥

चैत की नवमी है। राजा दशरथ के राज-द्वार पर और रानी कौशल्या के महल में नौबत बज रही है ॥१॥

हे सखियो! मिल-जुलकर आओ। चलो, राजा दशरथ के राम जन्में हैं, चलकर उनकी न्योछावर करें ॥२॥

कोई बाजूबन्द न्योछावर कर रही है। कोई कजरौटा और कोई दक्षिण का चीर न्योछावर कर रही है ॥३॥

कौशल्या भीतर से निकलीं और आँगन में खडीं हुईं। रानी न्योछावर करनेवालियों को बड़े प्रेम से हृदय से लगा रही हैं ॥४॥

राम के माथे पर चन्दन बहुत अच्छा लग रहा है। राम के रतनारे

नेत्रों में काजल बहुत सुन्दर लगता है। फूफी सुभद्रा ने अपनी पतली उँगलियों से खूब बना-बनाकर काजल दिया है ॥५॥

राम के माथे पर घुँघुराले बाल बहुत सुन्दर लगते हैं। जैसे फूलों के बीच में कलियाँ बहुत अच्छी लगती हैं ॥६॥

राम के पैर में घुँघुरू बहुत अच्छे लगते हैं। राम नन्हें पैरों से बकैयाँ चल रहे हैं। राजा दशरथ देख रहे हैं ॥७॥

कैसा स्वाभाविक वर्णन है। इस गीत में आँखों में काजल लगाने की कला का ज़िक्र है। राम की फूफी यद्यपि सुभद्रा नहीं थी, पर गीतों में राम और कृष्ण का सारा परिवार एक कर लिया गया है। सुभद्रा के लिये गीत में कहा गया है कि उन्होंने अपनी पतली उंगली से राम की आँखों में बहुत सुन्दर काजल लगाया था। आजकल की स्त्रियों में इस कला का ह्रास होता जा रहा है। अब तो स्त्रियाँ भूत-प्रेत और नजर टोना ही के डर से अपने बच्चों की आँखों में काजल लगाती हैं, बल्कि लीपती हैं। पर वे स्वयं अपनी आँखों में भी अच्छी तरह रच-रचकर काजल लगावें तो उनका सौन्दर्य और अधिक मनोमोहक हो सकता है।

(६०)

कौने बन उपज सुपरिया कौने बन नरियर हो।
चेरिया कौने बन फुलली कुसुमियाँ मैं चुनरी रँगैबै हो ॥१॥
जेठ बन उपजी सुपरिया ससुर बन नरियर हो।
सैय्याँ बन फुलली कुसुमियाँ तौ चुनरी रँगावउ हो ॥२॥
एक तौ अँगवा कै पातरि दुसरे गरभ सेती हो।
पहिरे कुसुम रँग सारी तौ बेदना बेआकुल हो ॥३॥
सासु मोरी बेनियाँ डोलावैं ननद मुख चूमैं हो।
भौजी छिन एक बेदना निवारौ होरिल तुमरे होइहैं,
सोहर अबहिं सुनबिउ हो ॥४॥

तौ का बिख बोलिउ ननदिया जहर बिख लागइ हो।
ननदी सरग नियर भुइयाँ दूरि होरिल कहाँ होइहैं हो ॥५॥
आपन मैया जे होतीं बेदन हरि लेतीं हो।
हरिजी कै मैया निरबेदनी त होरिल होरिल करैं,
सोहर सोहर करैं हो ॥६॥

किस बन में सुपारी पैदा होती है? किस बनमें नारियल? और हे दासी! किस बन में कुसुम फूलता है? मैं चुनरी रँगाऊँगी ॥१॥

दासी कहती है—जेठ के बन में सुपारी पैदा होती है, और ससुर के बन में नारियल। तुम्हारे स्वामी के बन में कुसुम फूला है। तुम चुनरी रँगा लो ॥२॥

स्त्री एक तो शरीर से पतली, दूसरे गर्भ। वह कुसुम्मी रंग की साड़ी पहनकर प्रसव-पीड़ा से विकल है ॥३॥

मेरी सास बेनिया डुला रही हैं। ननद मुँह चूम रही है। ननद कहती है—भौजी! जरा धीरज धरो। तुम्हारे पुत्र होगा, अभी तुम सोहर सुनोगी ॥४॥

स्त्री कहती है—हे ननद! क्या विष बोलती हो? तुम्हारी बात मुझे ज़हर-सी लग रही है। हे ननद! मुझे स्वर्ग समीप और धरती दूर दिखाई पड़ रही है। बच्चा कहाँ होगा? ॥५॥

हा! आज जो मेरी माँ यहाँ होतीं तो पीड़ा हर लेतीं। मेरे स्वामी की माँ तो वेदना जानतीं ही नहीं उनको तो बस पुत्र-पुत्र और सोहर-सोहर की रट लगी है ॥६॥

स्वाभाविक वर्णन।

(६१)

पिया मोर चललें नोकरिया त बड़े रे गरब से।
हथवा चम्पे केर छड़िया त माथे पर चन्दन ॥१॥

पियवा न होउ मोर पियवा तुहीं सिर साहेब।
मोर पियवा जब हम गरुए गरभ से तू चललेव नोकरिया ॥२॥
धनिया न होउ मोरी धनिया तुहीं ठकुराइन।
धनिया काहे तोर बदन मलीन काहें मन धूमिल ॥३॥
पियवा न होउ मोरे पियवा तुहीं सिर साहेब।
मोरे राजा छिन एक बेनिया डोलउतेउ नींद भरि सोइत ॥४॥
ओरी कै पानी बड़ेरिया कैसे धन जइहैं।
मोरी रानी हम कैसे बेनिया डोलैबइ तु नींद भरि सोइहउ ॥५॥
सुरजा उवत पह फाटत होरिल जनम लिहिन,
बबुवा जनम लिहिन।
मोरे साहेब बाजै लागी अनँद बधैया उठन लागे सोहर।
सतरँग बाजै सहनइया दुआरे मोरे नौबति ॥६॥
हँकरउ नगरा के सोनरा हाली बेगि आवइ।
मोरे सोनरा तू सोने रूपे गढ़उ बेनियवा त धनिया मनावउँ ॥७॥
हँकरउ नगरा के बरई त हाली बेगि आओ।
अरे मोरे बरई तू सौ सठि बिरवा लगावो तौ धनिया
मनावउँ ॥८॥
एक हाथे लिहिनि बेनियवा दुसरे हाथे बिरवा।
मोरी रानी अब हम बेनियाँ डोलइबै नींद भरि सोवउ ॥९॥
बेनिया तो हाँको अपनी मैया त सग पितियनिया।
मोरे राजा हमरे तो भये नन्दलाल त हम तौ जुड़ानेन ॥१०॥

बड़े घमंड से मेरे स्वामी नौकरी के लिये चले। उनके हाथ में चम्पा की छड़ी थी और माथे पर चन्दन सुशोभित था ॥१॥

स्त्री कहती है—हे मेरे प्रियतम! तुम्हीं मेरे प्राणाधार हो। तुम्हीं मेरे मालिक हो। जब मुझे गर्भ का भार है, तब तुम नौकरी को जा रहे हो? ॥२॥

पति कहता है—हे मेरी प्राणेश्वरी ! तुम मेरी रानी हो। हे धन ! तुम्हारा मुख मलिन क्यों है ? और तुम्हारा मन धूमिल क्यों है ? ॥३॥

स्त्री कहती है—हे मेरे नाथ ! तुम एक क्षण पंखा हाँकते, तो मैं नींद भर सो लेती ॥४॥

पति कहता है—हे धन ! कहीं ओलती का पानी बड़ेरी जाता है ? मेरी रानी ! मैं पंखा हाँकूँ और तुम नींद भर सोओ ? यह उल्टी बात कैसे हो सकती है ? ॥५॥

सबेरा होते ही बच्चा पैदा हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा। द्वार पर शहनाई और नौबत बजने लगी ॥६॥

पति कहता है—गाँव के सुनार को बुलाओ, जल्दी बुलाओ। हे सुनार ! तुम सोने और चाँदी की पंखी बना दो। मैं अपनी रानी को मनाने जाऊँगा ॥७॥

गाँव के तम्बोली को जल्दी बुलाओ। हे तम्बोली ! जल्दी आओ। एक सौ बीड़े लगाकर दो। मैं अपनी लाड़ली को मनाने जाऊँगा ॥८॥

पति ने एक हाथ में पंखी ली और दूसरे में पान के बीड़े। स्त्री के पास जाकर उसने कहा—हे रानी ! मैं पंखी हाँकूँगा, तुम नींद भर सो जाओ। ॥९॥

स्त्री कहती है—हे पतिदेव ! तुम जाकर अपनी माँ और सगी चची को पंखी हाँको (उनकी सेवा करो)। हे राजा ! मुझे पंखे की आवश्यकता नहीं रही। मेरे लाल पैदा हुये हैं, मेरा हृदय तो अब यों ही शीतल हो गया है ॥१०॥

पुत्रवती होने पर पति की दृष्टि में पत्नी का आदर अधिक हो जाता है। एक बार प्रार्थना करने पर भी पति ने पंखी नहीं हाँकी, बल्कि परिहास किया। पर जब पत्नी पुत्रवती हुई, तब वह उसे मनाने चले। बाँस की पंखी से नहीं, बल्कि सोने-चाँदी की पंखी से। पति-पत्नी का यह प्रेम-कलह हिन्दुओं में घर-घर पाया जाता है। और सच पूछा जाय, तो गृहस्थी के सुख का एक अंश इस प्रकार के प्रेम-कलह में भी है।

(६२)

दिन तौ सून सुरुज बिनु राति चंदा बिनु रे।
बहिनी नैहर सून अपनी मैया बिनु ससुरे पुरुष बिनु रे॥१॥
गरुई गठरिया केन बँधिहैं मैया बिनु रे।
एहो लपकि खबरिया केन लेइ हैं तो अपने भैया बिनु रे॥२॥

जैसे सूर्य के बिना दिन सूना है और चन्द्रमा के बिना रात सूनी है, वैसे ही माँ के बिना नैहर और पुरुष के बिना ससुराल सूनी हैं॥१॥

माँ के बिना भारी गठरी बाँधकर कौन देगा? भाई न हो तो झपटकर बहन के दुख-सुख की खबर कौन लायेगा? ॥२॥

(६३)

कुँअवा खोदाये कवन फल हे मोरे साहेब!
झोंकवन भरैं पनिहारि तबै फल होइहैं॥१॥
बगिया लगाये कवन फल हे मोरे साहेब!
राहे बाट अमवा जे खैहैं तबै फल होइहैं॥२॥
पोखरा खोदाये कवन फल हे मोरे साहेब!
गौआ पियैं जूड़ पानी तबै फल होइहैं॥३॥
तिरिया के जनमे कवन फल हे मोरे साहेब!
पुतवा जनम जब लेइहैं तबै फल होइहैं॥४॥
पुतवा के जनमे कवन फल हे मोरे साहेब!
दुनिया अनन्द जब होइ तबै फल होइहैं॥५॥

हे मेरे स्वामी! कुँवा खुदाने का फल तभी है, जब झुंड की झुंड पनिहारिनें पानी भरें॥१॥

बाग लगाने का फल तभी है जब राह चलनेवाले आम खायँ॥२॥
तालाब खुदाने का फल तभी है, जब गायें ठंडा पानी पीयें॥३॥
स्त्री होने का फल तभी है, जब उसके पुत्र हो॥४॥

पुत्र होने का फल तभी है, जब संसार आनंदित हो जाय ॥५॥

इस गीत का अंतिम पद बड़ा मार्मिक है। 'पुत्र होने का फल तभी है, जब संसार आनंदित हो जाय' संसार आनंदित तभी होगा, जब किसी उत्तम गृहस्थ के घर पुत्र उत्पन्न होगा, जिससे संसार को अपने कल्याण की आशा होगी। अथवा पुत्र उत्पन्न होकर अपने पुरुषार्थ से संसार का दुःख दूर करे, उसे आनंदित करे, तभी उसका जन्म सफल है। कैसी उच्च भावना है! कुँवाँ खुदाना, तालाब खुदाना और बाग़ लगाना, गाँवों में ये तीन काम पुण्य के गिने जाते हैं। गीत से यह प्रमाणित होता है कि पूर्वकाल में लोग बाग़ अपने लिये नहीं, बल्कि राही-बटोही के आराम के लिये लगाते थे। आजकल बाग का फल बेंच लेना एक साधारण बात नही, बल्कि बुद्धिमानी का काम समझा जा रहा है। पर किसी समय फल और दूध का बेंचना इस देश में पाप समझा जाता था। फल और दूध नहीं, पहले शिक्षा, औषधि और न्याय भी मुफ्त मिलता था। समय का फेर है, अब सब के दाम देने पड़ते हैं।

(६४)

मोरे पिछवरवाँ जम्हिरिया त लहर लहर करै।
उनकै महर महर आवै बास जम्हिरिया सुहावन ॥१॥
कटबूँ मैं बिरिछ जम्हिरिया त पलँगा सलइबूँ।
सेइ पलँग हम सोइबै सलोनी, धन कोरवाँ।
जेकर कमल फुलै दुनौ नैन बहुत निक लागइ ॥२॥
सेजिया से रुठलि तिरियवा जमुन तट ठाड़ी भई।
केवटा हालि बेगि नइया लेइ आवहु त परवा उतारहु ॥३॥
जौ मैं नइया लैके आवउँ नेवरिया लैके आवउँ।
तिरिया का उतरौनी मोहिं देइहौ त परवा उतारउँ ॥४॥
देबूँ मैं हाथ की मुँदरिया औ गरे कै तिलरिया'
केवटा औ गज मोतिन क हार त परवा उतारउ ॥५॥

अगिया लगावउँ तोरी मुँदरी वजर परै तिलरी।
तिरिया आजु रइनि बसि लेतिउ त परवा उतारउँ ॥६॥
चाँद सुरज अस पियवा मैं सोवत छोड़ेउँ।
केवटा के तोर मति हरि लीन्ह पाप मन व्यापेउ ॥७॥
लहँगा कै बाँधिन मुरायठ ओढ़नी क पिछौरा।
तिरिया उतरि गई हैं पार केवट हाथ मींजइ ॥८॥
जाते की दइयाँ अकेलिन लौटत बिरन सँग।
केवटा खलवा कढ़ाय भूसा भरतेउँ जवन मुख भाखेउ ॥९॥

मेरे पिछवाड़े जम्हीरी नीबू का वृक्ष लहलहा रहा है। उसमें से बड़ी मनोहर सुगंध आया करती है। जम्हीरी बड़ा सुदंर लगता है ॥१॥

पति कहता है—मैं उस नीबू को कटवाकर पलँग बनाऊँगा। उस पलँग पर मैं अपनी सुन्दरी स्त्री के साथ सोऊँगा, जिसके दोनों नेत्र प्रफुल्लित कमल की तरह सुन्दर हैं और बहुत प्यारे लगते हैं ॥२॥

किसी कारण से स्त्री और पुरुष में विवाद हो गया। संभवतः नीबू के काटने में राय नहीं मिली। इसलिये रूठकर स्त्री जमुना के किनारे गई और उसने मल्लाह को कहा—जल्दी आओ, और मुझे पार उतारो ॥३॥

मल्लाह ने कहा—मैं नाव लेकर आऊँ और पार उतारूँ, तो मुझे उतराई क्या दोगी? ॥४॥

स्त्री ने कहा—मैं हाथ की अँगूठी दे दूँगी। गले की तिलड़ी दे दूँगी। और यदि इतने पर भी तू संतुष्ट न होगा तो गजमुक्ताओं का हार दे दूँगी॥५॥

मल्लाह ने कहा—तुम्हारी अँगूठी में आग लगे। तिलड़ी पर बज्र गिरे। हे स्त्री! यदि तुम आज की रात मेरे यहाँ बस जाओ, तो मैं पार उतार दूँ ॥६॥

स्त्री ने कहा—चाँद और सूर्य की तरह सुन्दर पति को तो मैं सोता छोड़ आई हूँ। केवट! तेरी अक्ल किसने हर ली? तेरे मन में पाप समा गया है क्या? ॥७॥

स्त्री ने घाँघरे को तो सिर से लपेट लिया और ओढ़नी को पहन लिया। वह नदी में कूद पड़ी और तैर कर पार हो गई। केवट हाथ मींजकर रह गया ॥८॥

जाते वक्त तो अकेली थी। पर लौटते वक्त उसका छोटा भाई साथ था। वापसी में उसने मल्लाह को डाटा—तू ने उस दिन जो बात मुँह से निकाली थी, उसके बदले में, मेरे जी में आता है कि, तेरी खाल खिंचवा-कर उसमें भूसा भरा दूँ ॥९॥

इस गीत में उस समय के हिन्दू-समाज की दशा का वर्णन है, जब स्त्रियाँ ऐसी हिम्मतवाली होती थीं कि अकेली सफर कर सकती थी और नाव न मिलने पर जमुना ऐसी नदी को तैरकर पार हो जाती थी, तथा मल्लाह ऐसे मनचलों की मरम्मत भी कर सकती थीं। यह बेचारा एक गीत उस जमाने की यादगार बनाये हुये है।

(६५)

अलबेली जच्चारानी खूब बनी।
अपने पिया कै सोहागिन खूब बनी।
जैसे रेशम कै लारछा जच्चारानी केस बनी।
जसे चन्दन कै होरसा जच्चारानी माथ बनी।
अलबेली जच्चा० ॥१॥

जैसे आम केर फाँकिया जच्चारानी नैन बनी।
अपने पिया कै दुलारी जच्चारानी खूब बनी।
मतवाली जच्चारानी खूब बनी।
जैसे सुग्गा कै ठोरवा जच्चारानी नाक बनी।
अलबेली जच्चा० ॥२॥

जैसे अनारे कै दाना जच्चारानी दाँत बनी।
अपने पिया कै सोहागिन जच्चारानी खूब बनी।

जैसे अनार कै कलियाँ जच्चारानी होंठ बनी।
मतवाली जच्चारानी खूब बनी।
अलबेली जच्चा० ॥३॥
जैसे केरा केर खँभिया जच्चारानी जाँघ बनी।
अपने पिया कै सुहागिन जच्चारानी खूब बनी।
जैसे केरा केर छीमिया जच्चारानी अँगुली बनी।
मतवाली जच्चारानी खूब बनी।
अलबेली जच्चा० ॥४॥

अलबेली जच्चारानी खूब सुन्दर लगती है। अपने पति की प्यारी सुहागिन जच्चारानी बहुत सुन्दर लगती है। जच्चारानी के केश ऐसे सुन्दर हैं, जैसे रेशम के लच्छे। जच्चारानी का माथा ऐसा सुन्दर है, जैसे चन्दन घिसने का होरसा (गोल शकल का पत्थर, जिस पर चन्दन घिसा जाता है) ॥१॥

जच्चारानी के नेत्र ऐसे सुन्दर हैं, जैसे आम की फाँकी। अपने पति की प्यारी, रूपगर्विता, जच्चारानी बड़ी ही सुन्दर लगती है। जच्चारानी की नाक ऐसी सुन्दर है, जैसे तोते की चोंच ॥२॥

जच्चारानी के दाँत ऐसे सुन्दर हैं, जैसे अनार के दाने। अपने पति की सुहागिन जच्चारानी बड़ी सुन्दर हैं। जच्चारानी के होठ ऐसे लाल हैं जैसे अनार की कली। मतवाली जच्चारानी खूब अच्छी लगती हैं ॥३॥

जच्चारानी की जाँघ ऐसी सुन्दर है, जैसे केले का खम्भा। सुहागिन जच्चारानी बड़ी सुन्दर है। जच्चारानी की उँगलियाँ ऐसी सुन्दर हैं, जैसी केले की फलियाँ। मतवाली जच्चारानी बड़ी सुन्दर हैं ॥४॥

(६६)

हँसि हँसि पूछइँ राजा त रानी के' राजा हो।
मोरी रानी कहाँ लगाई इती बेर बिरस मन होइ गया रे ॥१॥

फूल बिनन गईं बगियै वही। फुल-बगियै।
ये मोरे राजा बारी को लगन भँवरवा अँचर गहि राखेउ ॥२॥
लावो न ढाल तरवरिया अरे कमर कटरिया।
मोरी रानी मारौं मैं बारी को भँवरवा अरे मित्र
तुम्हारो अरे बैरी हमारो है रे ॥३॥
डारन डारन पिया फिरैं पातन भँवरा।
ये मोरे भँवरा उड़ि के न बैठो फुलवरिया राजा तुम्हें मारइँ ॥४॥
डेहरी तो सूनि मेहरी बिन मेहरी मरद बिन हो।
जैसे वैसे मोरी सूनी फुलवरिया अकेले भँवरा बिन ॥५॥

राजा ने हँसकर पूछा—हे मेरी रानी! तुमने इतनी देर कहाँ लगाई? मेरा मन बिरस हो गया ॥१॥

रानी ने कहा—मैं बाग में फूल बीनने गई थी। हे राजा! वहाँ मेरे बचपन के प्रेमी भौरे ने मेरा आँचल पकड़कर रोक लिया था ॥२॥

राजा ने कहा—मेरी ढाल-तलवार लाओ। मेरे कमर की कटारी लाओ। मैं तुम्हारे बचपन के प्रेमी भौरे को मारूँगा। वह तुम्हारा मित्र और मेरा शत्रु है ॥३॥

मेरे प्रियतम डाल-डाल फिर रहे हैं और भौंरा पात-पात। हे भौंरा फुलवाड़ी से उड़कर चले जाओ न? राजा तुम्हें मारेंगे ॥४॥

रानी कहती है—हाय! स्त्री बिना डेहरी (ड्योढ़ी, देहली) सूनी है। पुरुष बिना स्त्री सूनी है। वैसे ही अकेले एक भौंरे के बिना फुलवाड़ी सूनी है ॥५॥

(६७)

सुखिया दुखिया दोनों बहिनियाँ।
दोनों बधावा लै आईं हरे राजा बीरन ॥१॥
सुखिया जे लाईं गुजहरा गोड़हरा।
दुखिया दूब कै पौंड़ा हरे राजा बीरन ॥२॥

सुखिया जे पूँछई अपने बीरन से।
बिदा करो घर जाई, हरे राजा बीरन ॥३॥
लेहु न बहिनी कोंछ भरि मोतिया।
सैयाँ चढ़न का घोड़ा, हरे राजा बीरन ॥४॥
दुखिया जे पूँछइ अपने बीरन से।
बिदा करौ घर जाई, हरे राजा बीरन ॥५॥
लेहु न बहिनी कोंछ भरि कोदौ।
वहै दूब का पौड़ा, हरे मोरी बहिनी ॥६॥
गँउवाँ गोइँड़वा नँघही न पायों।
दुब्बा झरन लागीं मोती, हरे राजा बीरन ॥७॥
कोठे चढ़ी जे भौजी पुकारैं।
रूठी ननद घर लाओ, हरे मोरे राजा ॥८॥

सुखिया दुखिया दो बहनें थीं। भाई के पुत्र होने पर दोनों बधावा लेकर आईं ॥१॥

सुखिया बालक के लिये हाथ और पैर के कडे ले आई। और दुखिया बेचारी दूब के कुछ डंठल खोंट कर लाई ॥२॥

सुखिया अपने भाई से पूछती है—हे भाई! विदा करो तो मैं घर जाऊँ ॥३॥

भाई कहता है—हे बहन! आँचल भरकर मोती लो और अपने पति के चढ़ने के लिये घोड़ा लो ॥४॥

दुखिया ने भाई से कहा—हे भाई! विदा करो तो मैं भी अपने घर जाऊँ ॥५॥

भाई ने कहा—हे बहन! आँचल भरकर कोदौ (एक तरह का निकृष्ट चावल) लो और वही दूब का डंठल लो ॥६॥

दुखिया बहन अभी गाँव की सीमा लाँघने भी न पाई थी कि दूब से मोती झड़ने लगे ॥७॥

उसकी भौजाई कोठे पर चढ़कर पुकारने लगी—मेरी ननद रूठ कर जा रही है। उसे मना लाओ ॥८॥

दुखिया बहन ग़रीब घर में ब्याही थी। भाई के बालक के लिये उसके पास देने को कुछ नही था। प्रेम-विवश वह थोड़ी-सी घास लेकर आई थी। सुखिया बहन गहने लेकर आई थी। भाई ने प्रेम का कुछ मूल्य नहीं आँका। केवल गहने और घास का मुक़ाबला किया। उसने दोनों को उनकी लाई हुई चीज़ों के अनुसार बदला देकर विदा किया। पर सुखिया स्वार्थ-वश आई थी। उसके स्वार्थ को दुखिया के विशुद्ध प्रेम से नीचा दिखाने के लिये ही यह रूपक बाँधा गया है। घास से मोती झड़ते देखकर बहू का स्वार्थ फिर प्रबल होता है। दुखिया तिरस्कृत होकर गई थी। अब इसकी ग्लानि बहू को हुई। इस प्रकार स्वार्थ का नग्न नृत्य घर-घर में हो रहा है। पर शुद्ध प्रेम और चीज़ है। वह घास में मोती होकर झड़ता है।

(६८)

देहरी के ओट धन ठुनकइँ उनुन ठुनुन करइँ रे।
राजा हमरे तिलरिआ कै साध तिलरिआ हम लेबइ ॥१॥
एक तो कारी कोइलिआ औ दुसरे छछुन्दरि।
रानी तोहरेउ तिलरिआ क साध तिलरिआ काउ करबिउ ॥२॥
एतनी बचन रानी सुनलिन मन में बिरोग भवा,
जियरा दुखति भवा।
रानी कोइँछा में लिहीं तिल चउरा त देवता मनावइँ,
सुरजा मनावइँ ॥३॥
आठ महीना नौ लगतइ, होरिल जनम लिहीं,
बबुआ जनम लिहीं रे।
बहिनी बाजइ लागी अनँद बधइया उठन लागे सोहर ॥४॥

अँगनइ बजत बधइया भितर मोरे सोहर हो।
बहिनी सतरँग बाजइ सहनइया ससुर द्वारे नौबति रे ॥५॥
हँकड़हु नगर के सोनरा हाली बेगी आवइ,
आरे जल्दी आवइ रे।
सोनरा गढ़ि लाओ सोने क तिलरिआ
मैं रानी क मनावऊँ ॥६॥
हँकड़हु नगर के बरई हाली बेगी आवइ जल्दी से आवइ।
बरई मोहर क बिरवा लगावउ मैं लछिमी मनावउँ ॥७॥
दहिने हाथे लिहिन तिलरिआ बायें हाथे बिरवाउ रे।
राजा झमकि के चढ़ि गै अटरिआ तो रनियाँ मनावइँ ॥८॥
सूतल रनिआ मनावइँ जाँघ बैठावइँ।
रानी छोड़ि देव मन कै बिरोग पहिरो रानी तिलरी ॥९॥
राजा हम तौ कारी कोइलिआ तिलरिआ नाहीं सोहइ।
राजा हमरे पलँग मति बैठौ साँवर होइ जाबेउ रे ॥१०॥
राजा होरिल दिहिन भगवान त तुम्हरे धरम से हो।
राजा पाये रतन अनमोल तिलरिआ काउ करबइ हो ॥११॥

देहली की ओट में स्त्री ठुनक रही है। हे राजा! मेरे लिये एक तिलड़ी (तीन लड़ का हार) बनवा दो। मुझे तिलड़ी पहनने की बड़ी इच्छा है ॥१॥

पति ने कहा—वाह! एक तो तुम कोयल ऐसी काली-कलूटी, दूसरे छछूंदर ऐसी गंदी। तुम्हें भी तिलड़ी का शौक चर्राया है? तुम तिलड़ी क्या करोगी? ॥२॥

यह बात सुनकर स्त्री के मन में बड़ा दुःख हुआ। वह आँचल में तिल और चावल लेकर सूर्य देवता को मनाने लगी ॥३॥

आठवें महीने के बाद नवाँ लगते ही पुत्र का जन्म हुआ। आनंद की बधाई बजने लगी और सोहर होने लगा ॥४॥

आँगन में बधाई बज रही है। भीतर सोहर हो रहा है। ससुर के द्वार पर शहनाई और नौबत बज रही है ॥५॥

पति ने कहा—नगर के सोनार को बुलाओ। अरे सुनार! जल्दी आओ। सोने की तिलड़ी बनाकर जल्दी लाओ। मैं अपनी रानी को मनाऊँगा ॥६॥

नगर के बरई (तम्बोली) को बुलाओ। तम्बोली! तुम जल्दी एक-एक मुहर का एक बीड़ा लगाकर लाओ। मैं अपनी लक्ष्मी को मनाऊँगा ॥७॥

दाहिने हाथ में तिलड़ी और बायें में बीड़ा लेकर पति अटारी पर झपटकर चढ़ गया और स्त्री को मनाने लगा ॥८॥

सोई हुई स्त्री को उसने जगाया; गोद में बैठाया और कहा—मेरी रानी! मन का विक्षोभ छोड़ दो और यह लो तिलड़ी पहनो ॥९॥

स्त्री ने कहा—हे राजा! मैं तो काली-कलूटी कोयल हूँ। मुझे तिलड़ी अच्छी नहीं लग सकती। हे राजा! तुम मेरी पलँग पर न बैठो, नहीं तो साँवले हो जाओगे ॥१०॥

हे राजा! भगवान् ने तुम्हारे धर्म के प्रभाव से मुझे पुत्र दिया है। ऐसा अनमोल रत्न पाकर अब मैं तिलड़ी लेकर क्या करूँगी? ॥११॥

(६९)

ननद भौजाई दूनौं पानी गईं अरे पानी गईं।
भौजी जौन रवन तुहैं हरि लेइ ग उरेहि देखावहु ॥१॥
जौ मैं रवना उरेहौं उरेहि देखावउँ।
सुनि पैहैं बिरन तुम्हार त देसवा निकरिहइँ ॥२॥
लाख दोहइया राजा दसरथ राम मथवा छुवौं।
भौजी लाख दोहइया लछिमन भइया जो भइया से बतावउँ ॥३॥
मागौं न गाँग गँगुलिया गंगा जल पानी।
ननदी समुहे कै ओबरी लिपावउ रवना उरेहौं ॥४॥

माँगिन गाँग गँगुलिया गंगा जल पानी
सीता समुहे क ओवरी लिपाइन रवना उरेहै ॥५॥
हँथवहु सिरजिन गोड़वहु नंयना बनाइन।
आइ गये हैं सिरीराम अँचर छोरी मूँदेनि ॥६॥
जेवन बैठें सिरीराम बहिन लोही लाइन।
भइया जौन रवन तोर बैरी त भौजी उरेहै ॥७॥
अरे रे लछिमन भइया बिपतिया कै साथी।
सीता के देसवा निकारहु रवना उरेहै ॥८॥
जे भौजी भूखे क भोजन नाँगे को बस्तर।
से भौजी गरुहे गरभ से मैं कैसे निकारौं ॥९॥
अरे रे लछिमन भइया बिपतिया के नायक।
सीता क देसवा निकारौ इ त रवना उरेहै ॥१०॥
अरे रे भौजी सीतल रानी बड़ी ठकुराइन।
भौजी आवा है तोहका नेवतवा बिहान बन चलबइ ॥११॥
ना मोरे नैहर ना मोरे सासुर।
देवरा! ना रे जनक अस बाप मैं केहि के जइहौं ॥१२॥
कोंछवा के लिहिन सरसइया छिटत सीता निकसीं।
सरसौ यहींके अइहीं लछिमन देवरा कँदरिया तोरी खइहैं ॥१३॥
एक बन डाँकिन दुसर बन डाँकिन तिसरे बिन्द्राबन।
देवरा एक बुंद पनिया पिअउतेउ पिअसिया से व्याकुल ॥१४॥
बैठहु न भौजी चँदन तरे चँदना बिरिछ तरे।
भौजी पनिया क खोज करि आई त तुमकाँ पियाइं ॥१५॥
बहै लागी जुड़ुली बयरिया कदम जूड़ि छहियाँ।
सीता भुइयाँ परी कुम्हिलाय पिअसिया से व्याकुल ॥१६॥

ोरिन पतवा कदम कर दोनवा वनाइन।
ाँगिन लवँगिया कै डरिया लछन चले घरके ॥१७॥
सोये साये सीता जागीं झझकि सीता उठी हैं।
कहवाँ गये लछिमन देवरा त हमें न बतायउ।
हिरदइया भरि देखतेउँ नजर भरि रोउतेउँ ॥१८॥
को मोरे आगे पीछे बैठइ को लट छोरै।
को मोरी जगइ रयनिया त नरवा छिनावइ ॥१९॥
बन से निकरीं बन तपसिन सितै समुझावैं।
ीता हम तोरे आगे पीछे बैठव हम लट छोरब।
हम तोरी जगबै रयनिया त नरवा छिनउबै ॥२०॥
ोत बिहान लोही लागत होरिल जनम भये।
ीता लकड़ी क करहु अँजोर सँतति मुख देखहु ॥२१॥
म पुता भयहु बिपति में बहुतै सँसति में।
पुता कुसैरे ओढ़न कुस डासन बन-फल भोजन ॥२२॥
जो पुत होतेउ अजोधिया में वही पुर पाटन।
ाजा दसरथ पटना लुटौतें कौसिल्ला रानी अभरन ॥२३॥
अरे रे हँकरौ न बन के नउअवा बेगिहिं चलि आवहु।
नउवा हमरा रोचन लैर जाउ अजोधियइ पहुँचावउ ॥२४॥
ाहिले दिहौ राजा दसरथ दुसरे कौसिल्ला रानी।
ीसरे रोचन लछिमन देवरा पै पिऐ न जनायउ ॥२५॥
ाहिले दिहिन राजा दसरथ दुसरे कौसिल्ला रानी।
तिसरे लछिमन देवरा पै पिऐ न जनायेसि ॥२६॥
राजा दसरथ दिहिन आपन घोड़वा कौसिल्ला रानी अभरन।
छिमन देवरा दिहिन पाँचौ जोड़वा बिहसि नउवा
घर चल्यौ ॥२७॥

चारिउ खूंट क सगरवा त राम दतुइन करैं।
भइया भहर भहर करै माथ रोचन कहँ पायउ।
भइया केकरे भये नँदलाल त जिया जुड़वायन ॥२८॥
भौजी तो हमरे सितल रानी बसहि बिन्द्राबन।
उनके भये हैं नँदलाल रोचन सिर धारेन ॥२९॥
हाथ क दतुइन हथ रहि मुख कै मुख रहि।
ढुरै लागी मोतियन आँसु पितम्बर भीजै ॥३०॥
हँकरौ न बन केर नउआ बेगि चलि आवहु।
नउआ सीता कै हलिया बतावह सीतै लै अउबै ॥३१॥
कुस रे ओढ़न कुस डासन बनफल भोजन।
साहब लकड़ी क किहिन अँजोर सँतति मुख देखिन ॥३२॥
अरे रे लछिमन भइया बिपतिया के नायक।
भइया एक बेर जातेउ मधुबन क भौजइअइ लै अउतेउ ॥३३॥
अजोध्या से चलि भये लछिमन मधुबन उतरें।
भौजी राम क फिरा है हँकार त तुम के बुलावैं ॥३४॥
जाव लछन घर अपने त हम नहिं जाबइ।
जौ रे जियैं नँदलाल तो उनही क बजिहैं ॥३५॥

ननद और भौजाई दोनों पानी के लिये गईं। रास्ते में ननद ने कहा—हे भौजी! जो रावण तुम्हें हर ले गया था, उसका चित्र बनाकर मुझे दिखाओ ॥१॥

भौजाई ने कहा—मैं रावण का चित्र बनाकर तुम्हें दिखाऊँ। पर तुम्हारे भाई सुन पायेंगे, तो मुझे वे देश से निकाल देंगे ॥२॥

ननद ने कहा—मैं राजा दशरथ की लाख शपथ कर के, राम का माथा छूकर और लक्ष्मण भाई की लाख क़सम खाकर कहती हूँ, भाई से न कहूँगी ॥३॥

भौजाई ने कहा—अच्छा, गंगाजल लाओ। और हे ननद! सामने की कोठरी लीप-पोतकर ठीक कर दो, तो मैं रावण का चित्र बना दूँ ॥४॥

गंगाजल आया और सामने की कोठरी लिपाई गई। भौजाई ने रावण का चित्र बनाया ॥५॥

पहले हाथ बनाया; फिर पैर; फिर आँखें बनाई। इतने में श्रीराम आ गये। सीता ने झटपट आँचल खोलकर उसे ढक लिया ॥६॥

श्रीराम भोजन करने बैठे। बहन ने चुगली खाई—हे भाई! रावण, जो तुम्हारा बैरी है, उसका चित्र भौजी ने बनाया है ॥७॥

राम ने कहा—हे विपत्ति के साथी भाई लक्ष्मण! सीता रावण का चित्र बनाती है, इसे देश से निकाल दो ॥८॥

लक्ष्मण ने कहा—जो सीता भूखों को भोजन और नंगों को वस्त्र बाँटती है; और जिसे गर्भ भी है; मैं उसे देश से कैसे निकालूँ? ॥९॥

राम ने फिर कहा—हे विपत्ति के साथी भाई लक्ष्मण! सीता रावण का चित्र बनाती है, इसे घर से निकाल दो ॥१०॥

लक्ष्मण ने सीता से कहा—हे भौजी! हे सीता रानी! हे बड़ी ठकुराइन! मुझको और तुमको न्यौता आया है। कल बन को चलेंगे ॥११॥

सीता ने कहा—हे देवर! मेरे न नैहर है, न ससुराल। न जनक ऐसा बाप ही है। मैं किसके यहाँ जाऊँगी ॥१२॥

सीता आँचल में सरसों लेकर रास्ते में बखेरती हुई निकली। इस विचार से कि लक्ष्मण इधर से आयेंगे तो सरसों के मुलायम डंठल तोड़कर खायेंगे ॥१३॥

एक बन को पार किया। दूसरे बन को पार किया। तीसरा बृन्दावन था। सीता ने कहा—हे देवर! प्यास लगी है। बहुत व्याकुल हूँ। एक बूंद पानी कहीं मिले तो ले आओ ॥१४॥

लक्ष्मण ने कहा—हे भौजी! इस चंदन के वृक्ष के नीचे बैठ जाओ। मैं खोजकर पानी ले आऊँ, तब तुमको पिलाऊँ ॥१५॥

ठंडी हवा बहने लगी। कदम्ब की छाया शीतल थी ही। सीता प्यास से व्याकुल होकर, कुम्हलाकर, धरती पर लेट गई ॥१६॥

लक्ष्मण पानी लेकर लौटे। कदम्ब के पत्ते का दोना बनाकर, उसमें पानी भरकर लक्ष्मण ने उसे लवंग की डाल मे लटका दिया और स्वयं घर का रास्ता लिया।

सीता सो-साकर झिझककर उठीं। उन्होंने कहा—हे लक्ष्मण देवर! तुम कहाँ गये? मुझे नहीं बतलाया। तुमको मैं जी भरकर देख तो लेती और तुमको देखकर आँख भरकर रो तो लेती ॥१८॥

हाय! यहाँ बन में मेरे आगे-पीछे कौन बैठेगा? कौन मेरी लट खोलेगा? कौन मेरी रात जागेगा? और कौन बच्चे की नाल काटेगा? ॥१९॥

सीता का विलाप सुनकर बन की तपस्विनियाँ निकलीं। वे सीता को समझाने लगीं—हे सीता! हम तुम्हारे आगे-पीछे रहेंगी; हम तुम्हारी लट खोलेंगी; हम तुम्हारी रात जागेंगी और हम बच्चे की नाल काटेंगी ॥२०॥

सबेरा हुआ। पौ फटते ही बालक का जन्म हुआ। तपस्विनियों ने कहा—हे सीता! लकड़ी जलाकर उसके उजाले में अपने बच्चे का मुँह तो देखो ॥२१॥

सीता बच्चे से कहने लगीं—हे बेटा! तुम विपत्ति में पैदा हुये हो। कुश ही तुम्हारा ओढ़ना, कुश ही बिछौना और वन-फल ही तुम्हारा आहार है ॥२२॥

हे पुत्र! यदि तुम अयोध्या में पैदा हुये होते, तो आज राजा दशरथ, सारा शहर और रानी कौशल्या अपने कुल गहने लुटा देतीं ॥२३॥

अरे! बन के नाई को बुलाओ न? जल्दी आवे। हे नाई! मेरा रोचन अयोध्या पहुँचाओ ॥२४॥

पहले राजा दशरथ को देना। दूसरे कौशल्या रानी को देना। तीसरे देवर लक्ष्मण को देना। पर मेरे पति को न बताना ॥२५॥

नाई ने रोचन पहले राजा दशरथ को दिया। फिर कौशल्या को और फिर लक्ष्मण को। पर राम को नहीं जनाया ॥२६॥

राजा दशरथ ने नाई को अपना घोड़ा दिया। कौशल्या ने गहना दिया। लक्ष्मण ने पाँचों जोड़े (पगड़ी, अँगरखा, दुपट्टा, धोती और जूता) दिये। नाई खुशी से हँसता हुआ घर लौटा ॥२७॥

चौकोर बड़े तालाब के किनारे राम दातुन कर रहे थे। इतने में लक्ष्मण आ गये। उनके माथे पर रोचन का तिलक देखकर राम ने पूछा—हे भाई! तुम्हारा माथा खूब दमक रहा है। यह रोचन कहाँ से आया? किसके पुत्र हुआ है? पुत्र ने किस का हृदय शीतल किया है ॥२८॥

लक्ष्मण ने कहा—मेरी भौजी सीता रानी, जो वृन्दावन में रहती हैं उनके पुत्र हुआ है। उसी का रोचन मैंने माथे पर लगाया है ॥२९॥

यह सुनते ही राम के हाथ की दातुन हाथ ही में और मुँह की दातुन मुँही में रह गई। राम की आँखों से मोती ऐसे आँसू ढुलने लगे और उनका पीताम्बर भीगने लगा ॥३०॥

राम ने कहा—बन का नाई कहाँ गया? बुलाओ। हे नाई! सीता का समाचार मुझे सुनाओ। मैं सीता को ले आऊँगा ॥३१॥

नाई ने कहा—हे मालिक! कुश का ओढ़ना, कुश का बिछौना और बन-फल का आहार है। सीता ने लकड़ी का उजाला करके तब अपने पुत्र का मुँह देखा है ॥३२॥

राम ने कहा—हे मेरे विपत्ति के नायक भाई लक्ष्मण! एक बार तुम मधुबन जाओ और अपनी भौजाई को ले आओ ॥३३॥

लक्ष्मण अयोध्या से चलकर मधुबन में उतरे। लक्ष्मण ने सीता से कहा—हे भौजी! तुमको राम ने बुलाया है ॥३४॥

सीता ने कहा—हे लक्ष्मण! तुम लौट जाओ। मैं नहीं जाऊँगी। यदि मेरे लाल जीते रहेंगे, तो ये उन्हीं के कहलायेंगे ॥३५॥

ऐसा कौन सहृदय है, जो इस गीत को पढ़कर रो न दे। इसमें ननद

का देवर का पति का और तपस्विनियों का यथार्थ और अद्भुत चित्र खींचा गया है।

इस गीत में कई बातें ध्यान देने की हैं। पहले तो यह कि हिन्दू स्त्रियों में चित्रकला का प्रचार इतना अधिक था कि गीतों में अबतक उसका वर्णन मिलता है।

दूसरे, ननद का स्वभाव। ननद ने बार-बार शपथ खाकर भी भौजाई की बात अपने भाई से कह दी। सचमुच बहुत-सी ननद भौजाई की प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं रखतीं।

तीसरे, देवर का प्रतिवाद। देवर ने भौजाई का पक्ष लिया और बड़े भाई से एक बार कहा—भौजाई को निकालना नहीं चाहिये। पर जब बड़े भाई ने फिर अपनी आज्ञा दुहराई, तब छोटे भाई ने शिष्टाचार के सामने सिर झुकाया और बड़े भाई की आज्ञा का पालन किया।

चौथे, तपस्विनियों की सहानुभूति। अपनी मान-मर्यादा का अभिमान छोड़कर दुःखी के दुःख निवारण में तत्पर हो जाना आर्य-संस्कृति की एक खास बात है।

पाँचवें, माता की दीन दशा। हाय! वह कैसा हृदय-विदारक दृश्य था, जब माता ने लकड़ी का उजाला करके अपने पुत्र का मुँह देखा। इस अवसर पर माता का विलाप पत्थर को भी पिघला देने वाला है।

छठें, पति का अनुताप। छोटे भाई के मुँह से पुत्रोत्पत्ति का समाचार पाकर पत्नी की याद में पति की आँखों से जो आँसू टपके हैं, उनमें अनन्त व्यथा और अपार पश्चात्ताप भरा हुआ है।

सातवें, स्त्री का आत्म-गौरव। स्त्री ने नाई से कहा—'पियहिं न बतायउ' इस एक वाक्य में आत्म-सम्मान दूर से एक पर्वत-शिखर की भाँति दिखाई पड़ रहा है। स्त्री ने पति की बुलाहट का जो उत्तर देवर को दिया है, उसमें भी वेदना का एक विशाल समुद्र लहरें मार रहा है।

इस गीत में आदि से अन्त तक मनुष्यों के भिन्न-भिन्न स्वभावों के यथार्थ चित्र हैं।

(७०)

जब हम रहे जनक घर राजा रे जनक घर।
सखिया सोने के सुपेलिया पछोरौं मैं मोतिया हलोरौं ॥ १ ॥
जब हम परलीं राम घर राजा दसरथ घर।
जरि बरि भइउँ है कोइलिया त जरि के भसम भइउँ ॥ २ ॥
सभवा बैठे हैं रामचन्द्र पुछाइन राजा दसरथ।
पुता कौन सितल दुख दिहेउ सखिन सँग रोवैं ॥ ३ ॥
हँसि कै धनुख उठाइन विहँसि कै पैठिन।
सीता अब सुख सोवऊ महलिया गुपुत होइ जाबइ ॥ ४ ॥
अरे रे लछिमन देवरा बिपतिया के नायक।
देवरा भइया के लावऊ मनाय नाहीं त विष खाबइ ॥ ५ ॥
अरे रे भौजी सितल रानी बड़ी ठकुराइन।
देहुना तिरिया कमनिया मैं भइया खोजें जैहौं ॥ ६ ॥
ढूँढ़ौं मैं नग्र अजोधिया और पुर पाटन।
देवरा ढूँढ़ेउ नाहीं गुपुत तलौवा जहाँ राम गुपुत भयें ॥ ७ ॥
केहि के मैं सेजिया बिछावउँ फूल छितरावउँ।
देवरा केहि के मैं लागौं टहलिया त दुख बिसरावउँ ॥८॥
हमरेन सेजिया बिछावहु फूल छितरावहु।
भौजी हमरेन लागौ टहलिया त दुख बिसरावहु ॥ ९ ॥
जौने मुख अमवा खायउँ अमिलिया कैसे चीखउँ।
जौने मुख लछिमन कहि गोहरायउँ पुरुख कैसे भाखउँ ॥१०॥
अरे रे पापिनि भौजीं पाप जनि बोलउ।
भौजी जैसे कौसिल्ला रानी माता वैसेन हम जानौं ॥११॥
लाख दोहइया राजा दसरथ राम मथवा छुवौं।
बुड़की मोरि अमिरथा होइ जो घन कहि गोहरावउँ ॥१२॥

सीता ने कहा—जब मैं राजा जनक के घर में थी, तब हे सखियो! मैं सोने की सुपेली में पछोरती और मोती हलोरती थी ॥१॥

अब मैं राम के घर में—राजा दशरथ के घर में—पड़ी हूँ। दुःख से जलकर मैं कोयल हो गई, राख हो गई हूँ ॥२॥

रामचन्द्र सभा में बैठे थे। राजा दशरथ ने पुछवाया—हे पुत्र! तुमने सीता को क्या दुःख दिया? जो वह सखियों के सामने रो रही थी ॥३॥

राम ने हँसकर धनुष उठाया। मुसकराते हुए वे घर में आये। सीता से उन्होंने कहा—सीता! अब तुम महल में सुख से सोओ। मैं गुप्त हो जाऊँगा ॥४॥

सीता ने कहा—हे मेरे देवर लक्ष्मण! हे विपत्ति के साथी! अपने भाई को मनाकर लाओ, नहीं तो मै विष खा लूँगी ॥५॥

लक्ष्मण ने कहा—हे भौजी! हे बड़ी ठकुराइन! मेरा तीर-कमान ला दो, मैं भाई की खोज में जाऊँगा ॥६॥

लक्ष्मण ने लौटकर कहा—मैंने सारी अयोध्या नगरी ढूंढ़ डाली सीता ने कहा—हा! तुमने तो गुप्त सरोवर तो नहीं ढूढ़ा, जहाँ राम गुप्त हुये हैं ॥७॥

हाय! मं किसकी सेज बिछाऊँ? किसके लिये फूल बखेरूँ? किसकी सेवा करके अपना दुःख भूलूं? ॥८॥

लक्ष्मण ने कहा—हे सीता! मेरी सेज बिछाओ। मेरे लिये फूल बखेरो। हे भौजी! मेरी सेवा करके दुःख भूल जाओ ॥९॥

सीता ने कहा—जिस मुँह से मैंने आम खाया, उस मुँह से इमली कैसे चखूं? जिस मुँह से मैंने तुमको लक्ष्मण कहकर पुकारा, उस मुख से तुमको पति कैसे कहूँगी ॥१०॥

लक्ष्मण ने कहा—हे पापिन भौजी! पाप की बात मुँह से न निकालो। मैं तुमको माता कौशिल्या की तरह समझता हूँ ॥११॥

मुझे राजा दशरथ की लाख शपथ है। मैं राम का माथा छूता हूँ। गंगाजी में मेरा डुबकी लगाना व्यर्थ जाय, जो मैं तुमको अपनी स्त्री कहूँ।

सीता और लक्ष्मण का आदर्श ईश्वर करे, हिन्दू-जाति में चिरजीवी हो। गीत में लक्ष्मण ने सीता के प्रति जो मनोभाव प्रकट किया है, वह स्त्रियों की कल्पना-मात्र नहीं है। उसमें ऐतिहासिक तथ्य भी है। सुमित्रा ने लक्ष्मण को रामके बन जाते समय जो उपदेश दिया था, वाल्मीकि के शब्दों में वह यह है—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

अर्थात्, हे पुत्र! राम को दशरथ समझना, सीता को सुमित्रा समझना, बन को अयोध्या समझना। बस, तुम सुख से जाओ।

लक्ष्मण ने सदा सीता को माता की तरह समझा था। लक्ष्मण ने एक स्थान पर अपनी यह मानसिक पवित्रता प्रकट भी की थी। सुग्रीव ने जब पहली मुलाकात के अवसर पर सीता के फेंके हुये गहने लाकर राम के सम्मुख रखे थे, तब राम ने लक्ष्मण से पूछा था—लक्ष्मण! देखो, ये गहने सीता ही के हैं न? तब लक्ष्मण ने कहा था—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरेत्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

अर्थात्, मैं इन बाजुओं और कुण्डलों को नही पहचानता। हाँ, नूपुर (बिछियों) को पहचानता हूं; क्योंकि प्रतिदिन मैं चरण छूता था (तब इन्हें देखता था)।

अहा, लक्ष्मण केवल नूपुर को पहचानते थे! बीसों वर्ष साथ रह-कर भी लक्ष्मण ने सीता के ऊपरी अंगों पर दृष्टि नहीं डाली थी। कैसा उच्चकोटि का समाज था! और कैसे देवर-भौजाई थे!

इस गीत में, ऊपर की पंक्तियों में एक बात यह भी ध्यान देने की है कि सीता ने सखियों से एक ज़रा-सी शिकायत की थी। इतने ही अपराध से राम घर छोड़कर चले गये। इस प्रकार का स्वभाव देहात के पतियों में खूब देखने में आता है। किसी-किसी घर में तो बहुत ही छोटी-छोटी

बातों को लेकर स्त्री-पुरुष महीनों मुँह फुलाये रहते हैं। बात की चोट सब को बड़ी-कड़ी लगती है; पर बहुत ही कम लोग कड़ी बात कहने से अपने को रोकते हैं।

(७१)

माघै कै तिथि नौमी राम जग्गि रोपेन।
रामा! बिना रे सिता जग्गि सूनि सितै लइ आवउ॥ १॥
अरे रे गुरू बसिष्ठ मुनि पइयाँ तोरि लागौं।
गुरु तुमरे मनाये सीता अइहीं मनाय लै आवहु॥ २॥
अगवाँ के घोड़वा बसिष्ठ मुनि पाछे लछिमन देवर।
हेरैं लागें रिषि की मेढुलिया जहाँ सीता तप करैं॥ ३॥
अँगनेहिं ठाढ़ी सीतल रानी रहिया निहारत।
रामा आवत हैं गुरू हमार त पाछे लछिमन देवर॥ ४॥
पतवा के दोनवा बनाइन गंगाजल पानी।
सीता धोवै लागीं गुरुजी के चरन औ मथवाँ चढ़ावैं॥ ५॥
येतनी अकिलि सीता तोहरे तु बुधि कै आगरि।
सीता किन तोरा हरा है गेयान राम बिसरायउ॥ ६॥
सब कै हाल गुरु जानौ अजान बनि पूछौ।
गुरु अस कै राम मोहिं डाहेनि कि कैसे चित मिलिहै॥ ७॥
अगिया में राम मोहिं डारेनि लाइ भूँजि काढ़ेनि।
गुरु गरुहे गरभ से निकारेनि त कैसे चित मिलिहै॥ ८॥
तुमरा कहा गुरु करबै परग पाँच चलबइ।
गुरु अब न अजोधियै क जाब औ विधि न मिलावैं॥ ९॥
हँकरहु नगरा के कँहरा बेगि चलि आवउ हो।
कँहरा चनन क डँड़िया फनावउ सितहि लइ आउब॥१०॥

एक बन गइलें दुसर बन तिसरे बिन्द्राबन।
गुल्ली डँडा खेलत दुइ बलकवा देखि राम मोहेन ॥११॥
केकर तू पुतवा नतियवा केकर हौ भतिजवा हो।
लरिकौ कौनी मयरिया कै कोखिया जनमि जुड़वायउ हो ॥१२॥
बाप क नौवाँ न जानौं लखन के भतिजवा हो।
हम राजा जनक के नतिया सीता कै दुलरुआ हो ॥१३॥
इतना बचन राम सुनलेन सुनहू न पउलेनि हो।
रामा तरर तरर चुवइ आँसु पटुकवन पोंछइँ हो ॥१४॥
अगवैं ऋषि क मँढुलिया राम नियरानेनि।
रामा छापक पेड़ कदम कर लगत सुहावन ॥१५॥
तेहि तर बैठी सितल रानी केसियन झुरवइँ।
पछवाँ पलटि जब चितवइँ रामजी ठाढ़े ॥१६॥
रानी छोड़ि देहु जिअरा बिरोग अजोधिया बसावउ।
सीता तोरे बिन जग अँधियार त जिवना अकारथ ॥१७॥
सीता अँखिया में भरलीं बिरोग एकटक देखिनि।
सीता धरती में गईं समाइ कुछौ नाहीं बोलिन ॥१८॥

माघ की नवमी को राम ने यज्ञ आरंभ किया। लोगों ने कहा—हे राम! सीता के बिना यज्ञ सूनी रहेगी। सीता को ले आओ ॥१॥

राम ने कहा—हे वशिष्ठ मुनि! मैं तुम्हारे चरण छूता हूँ। हे गुरु! सीता तुम्हारे मनाने से आयेंगी। जाकर मना लाओ ॥२॥

आगे के घोड़े पर वशिष्ठ और पीछे देवर लक्ष्मण, दोनों बन में ऋषि का झोंपड़ा ढूंढ़ने लगे, जहाँ सीता तप करती थीं ॥३॥

सीता आँगन में खड़ी थीं। रास्ते की ओर देख रही थीं। उन्होंने गुरु वशिष्ठ और देवर लक्ष्मण को आते देखा ॥४॥

सीता बेचारी के पास बन में बरतन कहाँ थे? सीता ने पत्ते का

दोना बनाया। उसमें गंगा-जल लेकर सीता ने गुरु के पैर धोये और माथे चढ़ाया ॥५॥

सीता के शिष्टाचार से गुरु बहुत प्रसन्न हुये और बोले—हे सीता! तुम्हारी इतनी अक्ल है! तुम तो बुद्धि की आगर हो। हे सीता! किसने तुम्हारी मति हर ली? जो तुमने राम को भुला दिया ॥६॥

सीता ने कहा—हे गुरु! तुम सब जानते ही हो, फिर अनजान की तरह क्यों पूछते हो? राम ने मुझे ऐसा डाहा कि अब उनसे चित्त कैसे मिलेगा? ॥७॥

राम ने मुझे आग में डाला। उसमें जलाकर भूनकर निकाला। जब मैं गर्भिणी थी, तब मुझे घर से निकाल दिया। भला, उनसे मेरा मन कैसे मिलेगा। ॥८॥

हे गुरु! मैं आपका वचन न टालूँगी और अयोध्या की ओर पाँच कदम चलूँगी; पर अयोध्या नहीं जाऊँगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे राम से मिलावें भी नहीं ॥९॥

वशिष्ठ लौट गये। रामने कहा—नगर से कहार बुलाओ। कहारो! चंदन की पालकी सजाकर लाओ। मैं सीता को मनाने चलूँगा ॥१०॥

एक बन में गये, दूसरे बन में गये, तीसरा वृन्दावन मिला। वहाँ गुल्ली-डंडा खेलते हुए दो बालकों को देखकर राम मुग्ध हो गये ॥११॥

राम ने पूछा—हे बालको! तुम किसके पुत्र हो? किसके पौत्र हो? और किसके भतीजे हो? किस माता की कोख से जन्म लेकर तुमने उसे शीतल किया है? ॥१२॥

लड़कों ने कहा—हम अपने पिता का नाम नहीं जानते। हम लक्ष्मण के भतीजे, राजा जनक के नाती और सीता देवी के प्राण-प्यारे हैं ॥१३॥

राम यह वचन पूरा-पूरा सुन भी न पाये कि उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली और वे दुपट्टे से उसे पोंछने लगे ॥१४॥

सामने ही ऋषि की कुटी थी। राम उसके समीप पहुँच गये। वहाँ एक छोटा-सा कदम्ब का वृक्ष था, जो बड़ा सुन्दर लगता था ॥१५॥

उसी कदंब के नीचे सीता रानी बैठकर अपने केश सुखा रहीं थीं। पीछे पलट कर वे देखती हैं तो रामचन्द्र खड़े हैं ॥१६॥

राम ने कहा—रानी! मन की ग्लानि छोड़ दो। चलकर अयोध्या को बसाओ। हे सीता! तुम्हारे बिना मुझे संसार अंधकार-मय लगता है और मेरा जीना व्यर्थ हो रहा है ॥१७॥

सीता की आँखों में हृदय की वेदना उमड़ आई थी। वे राम की ओर एकटक देखते-देखते पृथ्वी में समा गईं, मुँह से कुछ नहीं बोलीं ॥१८॥

निर्दोष और मनस्विनी सीता के मन की दशा स्त्रियाँ जितनी अच्छी तरह समझ सकती हैं, पुरुष उतना नहीं समझ सकते। सीता को क्या कहना चाहिये, क्या नहीं कहना चाहिये, यह आदर्शवाद स्त्रियों में नहीं चलता। वहाँ तो मन की स्पष्ट दशा का चित्र खीचा जाता है। 'सीता-राम के मुख को एकटक देखती हुई पृथ्वी में समा गईं; मुख से कुछ नहीं बोलीं' इस एकटक देखने और कुछ न बोलने ही में सीता ने सब कुछ कह डाला।

(७२)

राधे ललिता चन्द्रावलि आवउ जसुमति आवउ हो।
ललना मिलिजुलि चलीं वहि पार जमुन जल भरि लाई हो ।१।
कमर में बांधले कछौटा हिरदय चन्दन हार हे।
ललना पइरि के पार उतरलीं तिरिय एक रोवइ हो ॥ २ ॥
किए तोरा दारुनि सासु ननद दुख दीहल हे।
बहिनी की तोरा कन्त बसल दुर देस कवन दुख
रोवलु हो ॥ ३ ॥
नाहिं मोरा दारुनि सास न ननद दुख दीहल हे।
बहिनी नाहीं मोरा कन्त बिदेस कोखिए दुख रोवलुँ हो ॥ ४ ॥
सात बलक दैव दिहलेन कंस लइ लिहलेन हो।
बहिनी आठम रहल गरभ से इहौ हरि लेइहै हो ॥ ५ ॥

चुप रहु चुप रहु देवकी आँचर मुँह पोंछहु हे।
बहिनी आपन बलक हम मारब तोहरा जिआउब हो ॥ ६ ॥

हे राधे, ललिता, चन्द्रावली और यशोदा ! आओ हिलमिलकर उस पार चलें और यमुना का जल भर लायें ॥१॥

सबने कमर में कछौटा बाँध लिया। हृदय पर लटकते हुए चन्दन के हार को कस लिया। वे तैरकर पार उतर गईं। वहाँ देखा तो एक स्त्री रो रही थी ॥२॥

उसने पूछा—क्या तुम्हारी सास कठोर हृदय की है ? या ननद ने तुम्हें दुःख दिया है ? या तुम्हारा कंत (पति) दूर देश में है ? हे बहन ! तुम क्यों रो रही हो ? ॥३॥

स्त्री ने कहा—न मेरी सास कठोर है; न ननद ने ही दुःख दिया है; और न मेरा कंत ही दूर देश में है। हे बहन ! मैं कोख के दुःख से रो रही हूँ ॥४॥

भगवान ने मुझे सात बालक दिये थे। कंस ने सातों ले लिये। अब आठवाँ बालक गर्भ में है। हाय ! वह इसे भी छीन लेगा ॥५॥

यशोदा ने उसे पहचानकर कहा—हे देवकी बहन ! चुप रहो, मत रोओ। आंचल से मुँह पोछ डालो। मैं अपना बालक देकर तुम्हारा यह बालक बचा लूँगी ॥६॥

दुःखी के प्रति सच्ची सहानुभूति इसे कहते हैं। अपना बालक देकर दूसरी बहन के बालक की रक्षा करना यह आर्य-जाति की नारियों ही में संभव है। यशोदा ने अपना वचन अक्षरशः पूरा किया था।

(७३)

एक सौ अमवा लगवलीं सवा सौ जामुन हो।
अहो रामा तबहुँ न बगिया सोहावन यक रे कोइलि बिनु ॥ १ ॥
नइहर में पाँच भइया त सात भतीजा बाड़े हो।
अहो रामा तबहुँ न नइहर सोहावन यक रे मयरिया बिनु ॥ २ ॥

एक कोरा लिहलों मैं भइया दूसरे कोरा भतीजा हो।
अहो रामा तबहुँ न गोदिया सोहावन अपना बालक बिनु ॥ ३ ॥
पलँग पर सेजिया डसवलों त फूल छितरइलों हो।
अहो रामा तबहुँ न सेजिया सोहावन एक बलम बिनु ॥ ४ ॥

मैंने एक सौ आम के वृक्ष लगवाये और सवा सौ जामुन के। तब भी एक कोयल के बिना बाग सुन्दर नहीं लगता ॥१॥

नैहर में तो पाँच तो भाई है और सात भतीजे। पर फिर भी एक माँ के बिना नहर अच्छा नहीं लगता ॥२॥

गोद में एक ओर मैंने भाई को ले रक्खा है, दूसरी तरफ भतीजे को। पर अपने पुत्र के बिना गोद सुन्दर नहीं लगती ॥३॥

मैंने पलंग पर सेज बिछाया; उस पर फूल छितराये; पर स्वामी के बिना सेज सुहावनी नहीं लगती ॥४॥

(७४)

राहइ पर एक कुँइया सँवरि एक पानी भरै।
घोड़वा चढ़ल इक रजपूत हमसे खिआल करै ॥ १ ॥
केकर अस तुहुँ बिटिया केकरी पतोहिया।
कवने नयक क बहुअवा त झुकवन पानी भरौ ॥ २ ॥
बाबइ कर हम बिटिया ससुर क पतोहिया।
अपने नयक क बहुअवा त झुकवन पानी भरौं ॥ ३ ॥
सासु नँनद घरवाँ दारुनि पनियाँ भरावइँ।
ऐसनि धनि जउ पवतेउँ त हार अस रखतेउँ ॥ ४ ॥
जैसे मोरे हरि क पनहिआँ वइसइ तोर मलपट।
तोहें अस मरद जो पउतेउँ त पनही ढोवउतेउँ ॥ ५ ॥
गगरी त लिहेन सिरेह पर लेजुरी हथेह पर।
सासु घोड़वा चढ़ल इक रजपूत हमसे खिआल करै ॥ ६ ॥

बहु कैसेन उनकर घोड़वा त कइसनि लगाम लागि।
बहू कवने बरन बनिजरवा कवनि पाग बाँधइ ॥ ७ ॥
लालय वोनकर घोड़वा त करिया लगाम लागि।
साँवरे बरन बनिजरवा मुरेरी पाग बाँधइ ॥ ८ ॥
मचियै बैठी हैं सासु बिहँसि बतियाँ बोलइँ।
बहुवरि के तोरा हरा है गेयान बिदेसिया न चीन्हिउ ॥ ९ ॥

रास्ते में एक कुँवा था। जिस पर एक सुन्दरी पानी भर रही थी। घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजपूत उधर से निकला। वह उससे हँसी करने लगा ॥१॥

ऐसी सुन्दरी तुम किसकी कन्या हो? किसकी पतोहू हो? किस नायक की प्यारी स्त्री हो? जो पानी भर रही हो ॥२॥

स्त्री ने कहा—मैं अपने पिता की पुत्री और ससुर की पतोहू हूँ। मैं अपने स्वामी की प्यारी स्त्री हूँ और पानी भर रही हूँ ॥३॥

राजपूत ने कहा—जान पड़ता है, घर में सास और ननद बड़ी निठुर हैं जो तुमसे पानी भराती है। मैं ऐसी स्त्री पाता तो हार की तरह गले में लटकाए रखता ॥४॥

स्त्री ने कहा—जैसे मेरे प्राणनाथ की जूती है, वैसे तो तुम्हारा गाल है। तुम्हारे ऐसे मर्द को मैं पाती तो जूतियाँ ढोवाती ॥५॥

घड़ा सिर पर और रस्सी हाथ में लेकर स्त्री ने सास के पास आकर कहा—हे सास! घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजपूत मुझसे मज़ाक करता है ॥६॥

सास ने पूछा—हे बहू! कैसा उसका घोड़ा है? और कैसी लगाम लगी है? वह स्वयं किस रंग का है? और कैसी पगड़ी बाँधे हुये है? ॥७॥

बहू ने कहा—लाल रंग का तो घोड़ा है, काले रंग की उसकी लगाम है, श्याम वर्ण का वह स्वयं है और मोड़दार पगड़ी बाँधे हुये है ॥८॥

मचिए पर बैठी हुई सास हँसकर कहने लगी—बहू ! किसने तुम्हारी बुद्धि हर ली ? जो तुमने अपने परदेशी पति को नही पहचाना ॥९॥

पहचानती कैसे ? ब्याह करने के बाद ही कमाने के लिये पति परदेश चला गया होगा। बारह वर्ष बाद लौटा होगा। स्त्री ने विवाह के बाद फिर कभी उसे देखा होगा ही नहीं, पहचानती कैसे ? उसने पति को पर-पुरुष समझकर जो कुछ कहा, वह उचित ही था। अपरिचित पुरुष का किसी स्त्री से इस प्रकार मजाक करना सभ्यजनोचित व्यवहार नहीं कहा जा सकता।

(७५)

चैतइ कौ तिथि नउमी कि नौबति बाजइ।
राजा राम लिहिन अउतार अयोधिया के ठाकुर ॥१॥
दसरथ पटना लुटावैं कौसिल्ला रानी अभरन।
रानी कैकेइ वस्त्र लुटावैं सुमित्रा रानी सुबरन ॥२॥
राम के मथवा झलरिया बहुत निक लागै अधिक छबि लागइ।
मानौं कमल कर फूल भँवर सिर लुन करैं ॥३॥
राम के पाँय पैंजनियाँ बहुत निक लागै अधिक छबि लागइ।
ये हो चलत मधुरियन चाल त रुनि-झुनि बाजइ ॥४॥
राम के कमर करधनियाँ बहुत निक लागै अधिक छबि लागइ।
सँवरे बदन पर झँगुलिया दमिन चित चोरइ ॥५॥
राम के नयन कजरवा अधिक निक लागै बहुत छबि लागइ।
अब दीन्ही है फूफू सहोद्रा अँगुरिया नाहीं डोलइ ॥६॥
ऐसी मूरत जौ पउतिउँ हृदया बसउतिउँ।
पीत पितम्बर ओढ़उतिउँ ललन कहि बोलउतिउँ ॥७॥

चैत्र की नवमी को नौबत बज रही है। अयोध्या के स्वामी राजा राम ने अवतार लिया है ॥१॥

राजा दशरथ गाँव लुटा रहे हैं। रानी कौशिल्या गहना, रानी कैकेयी वस्त्र और रानी सुमित्रा सोना लुटा रही हैं ॥२॥

राम के माथ पर बाल बहुत सुन्दर लगते हैं। मानों कमल के फूल पर भौंरे मुग्ध हो रहे हैं ॥३॥

राम के पैर में पैंजनी बहुत शोभा दे रही है। जब राम मंद-मंद चलते हैं, तब वह रुन-झुन बजती है ॥४॥

राम की कमर में करधनी बहुत अच्छी लगती है। साँवले शरीर पर पीली झँगुली बिजली का भी चित्त चुरा रही है ॥५॥

राम की आँखों में काजल बहुत शोभा दे रहा है। यह काजल राम की फूफू सुभद्रा का दिया हुआ है, जिनकी उँगली काजल देते समय नही हिलती ॥६॥

ऐसी मनोहर मूर्ति जो मैं पाती तो हृदय में बसा लेती। उसे पीताम्बर ओढ़ाती और प्यारे पुत्र कहकर बुलाती ॥७॥

(७६)

सोने के खड़उवाँ राजा दसरथ खुटुरु खुटरु चले।
राजा गइले केदलिआ के बन में त काँट गड़ि गइलनि ॥१॥
जे मोरे कँटवा निकरिहें वेदन हरि लीहें।
अरे जवन मगनवाँ जे मँगिहैं तवन हम देइब ॥२॥
घर में से निकले केकैया रानी सोरहों सिंगार कइलें।
राजा हम तुहरे कँटवा निकरबइ वेदन हरि लेइब ॥३॥
अरे जवन मँगन हम मँगवइ तवन रउरें देइब।
अँगुली से कँटवा निकरलीं वेदन हरि लिहलीं ॥४॥
राजा जवन मगन हम मँगली तवन रउरे देई।
राजा राम लछन बन जायँ भरत राज बेलसैं ॥५॥
मँगही के केकई तु मँगलु माँगन नहिं जनलु।
केकई माँगै मोरे प्रान अधार कौसिल्ला रानी के ओठँगन ॥६॥

जे राम चित से न उतरें पलक से न बिसरें।
से राम बने चलि जैहैं त कैसे जिउ बोधब ॥७॥

सोने के खड़ाऊँ पर राजा दशरथ खुटुर-खुटुर करते कदली के बन में गये, तो वहाँ काँटा धँस गया ॥१॥

उन्होंने कहा—जो यह काँटा निकाल लेगा और मेरी पीड़ा हर लेगा, वह जो माँगेगा, मैं वही दूँगा ॥२॥

सोलहो शृंगार किये हुये कैकेयी रानी घर में से निकलीं। उन्होंने कहा—हे राजा! मैं काँटा निकालकर तुम्हारी पीड़ा हर लूँगी ॥३॥

पर जो मैं माँगूँगी, उसे आपको देना पड़ेगा। यह कहकर उन्होंने उँगली से काँटा निकाल लिया और पीड़ा हर ली ॥४॥

कैकेयी ने कहा—हे राजा! जो मैं माँगती हूँ, उसे आप दें। मैं माँगती हूँ कि राम, लक्ष्मण बन जायँ और भरत राज करें ॥५॥

दशरथ ने कहा—माँगने को तो तुमने माँगा, पर माँगने नहीं जाना। कैकेयी! तुम मेरा प्राणाधार और रानी कौशल्या का जीवनाधार ही माँगती हो ॥६॥

जो राम चित्त से नहीं उतरते, पलक से दूर नहीं किये जा सकते, वे राम यदि बन जायेंगे तो मैं धैर्य कैसे धरूँगा? जी को कैसे समझाऊँगा? ॥७॥

यद्यपि कैकेयी को यह वरदान एक युद्ध में मिला था, जिसमें राजा दशरथ राक्षसों से लड़ रहे थे। रथ पर कैकेयी भी थी। यकायक रथ का धुरा पहिये के पास टूट गया। कैकेयी झट कूद पड़ी और उसने पहिये को अपनी कलाई पर रोककर रथ को और राजा को गिरने से बचा लिया। राजा को इस घटना की खबर भी न होने पाई। इतने में उन्होंने राक्षसों के सरदार का सिर काट लिया। हर्षोद्वेग में भाग लेने के लिये जब उन्होंने कैकेयी की ओर देखा, उस समय वह कलाई पर रथ सँभाले खड़ी थी। राजा के लिये यह दूसरे प्रकार का हर्षोद्वेग था और पहलेवाले से कहीं अधिक

प्रभावोत्पादक था। क्योंकि इससे राजा के प्राण की रक्षा ही नहीं हुई, बल्कि एक कोमलांगिनी नारी की वीरता भी प्रकट हुई। इसी खुशी में राजा ने कैकेयी को दो वर दिये थे। पर गीत बनाने वाली स्त्रियों ने कैकेयी के इस कार्य को शायद स्त्री-जाति के लिये अस्वाभाविक और क्रूर समझकर उसे छोड़ दिया और एक नई घटना गढ़ ली, जो पहले से अधिक सरल, अधिक स्वाभाविक और घरेलू है।

(७७)

बाबाजी बियहिन राजा घर बहुत सम्पति घर।
मोरी माइउ खबरिया न लिहीं न बिरना पठाईं ॥१॥
सासु कहैं तोरे बाबा नाहीं ससुर कहैं तोरे मावा नाहीं।
आपु प्रभु कहैं तोरे भैया नाहीं के तोहरे आवइ ॥२॥
अरे गरभैतिन बहुववा गरब जिनि बोलउ।
तोरे भैया के होरिला जो होतें तो ओई तोरे औतें ॥३॥
इतनी बचन सुनि बहुअरि सुरजू मनावैं।
सुरजू भैया के होते नंदलाल तो हमरे ओई औतें ॥४॥
होत बिहान पह फाटत होरिला जनम भये।
बाजै लागी अनन बधैया उठै लागे सोहर ॥५॥
बाबा मोरे गइन बजज घर जोड़वा लै आइन।
माई मोरि पियरी रँगावैं वीरन लैके आवैं ॥६॥
भौजी मोर चौरा कुटाई औ ढुँढ़िया बन्हाई।
भौजी मोर पुतरा उरेहैं वीरन लैके आवइँ ॥७॥
आगे आगे आवै ढुँढ़िया पाछे घिउ गागरि।
वहि पाछे भैया असवरवा तो बहिनी के देस जाँय ॥८॥
जैसे दौरै गैया तो अपने लेरुअवा खातिर।
बैसेन दौरै तो बहिनियाँ अपने वीरन खातिर ॥९॥

काउ लै आया भैया सासू क काउ गोतिन क।,
काउ लै आया भैया भयन क तो काउ तू हमका ॥१०॥
पियरी लै आये बहिनी सासू क ढुंढ़िया गोतिन क।
गूँजा गोड़हरा तो भयन का तुहँका तो कुछु नाहीं ॥११॥

कन्या कहती है—पिता ने मेरा विवाह यद्यपि राजा के घर में किया, जहाँ बहुत धन है; पर मेरी माँ ने न मेरी खबर ली और न भैया ही को भेजा ॥१॥

सासु कहती हैं—तेरे पिता नहीं हैं। ससुर कहते हैं—तेरे माँ नहीं है। स्वयं पतिजी कहते हैं—तेरे भाई नहीं है। कौन आये? ॥२॥

अरी अभिमानिनी बहू! घमंड की बात न बोल। तेरे भाई के पुत्र होता तो वही तेरे यहाँ आता ॥३॥

बहू यह सुनकर सूर्य देवता को मनाने लगी—हे सूर्य! भैया के पुत्र होता, तो वही हमारे यहाँ आता ॥४॥

दूसरे दिन पौ फटते ही पुत्र का जन्म हुआ। आनंद की बधाई बजने लगी। सोहर गाया जाने लगा ॥५॥

मेरे पिता बजाज के घर गये और धोती जोड़ा ले आये। मेरी माँ ने उसे पीले रंग में रंग दिया। भाई लेकर आ रहा है ॥६॥

मेरी भाभी ने चावल कुटाकर ढूंढ़ी बँधाया और उसे घड़े में भरकर उस पर सुन्दर चित्र बना दिया, जिसे मेरा भाई लेकर आ रहा है ॥७॥

आगे-आगे ढूंढ़ी और पीछे घी का घड़ा और उसके पीछे घोड़े पर सवार मेरा भाई बहन के देश जा रहा है ॥८॥

जैसे गाय बछड़े को देखकर दौड़ती है; वैसे ही बहन अपने भाई के लिये दौड़ी ॥९॥

बहन पूछती है—भैया! सास के लिये क्या लाये हो? गोत्र-वालियों के लिये क्या लाये हो? अपने भांजे के लिये क्या लाये हो? और मेरे लिये क्या लाये हो? ॥१०॥

भाई कहता है—सास के लिये पीली धोती और गोतिनों को ढूँढ़ी लाया हूँ। भांजे के लिये हाथ-पैर के कड़े लाया हूँ। तुम्हारे लिये कुछ नहीं ॥११॥

(७८)

कारिक पियरि बदरिया झिमिकि दैव बरसहु।
बदरी जाइ बरसहु उही देस जहाँ पिया कोड़ करें ॥१॥
भीजै आखर बाखर तम्बुआ कनतिया।
अरे भितराँ से हुलसै करेज समुझि घर आवइँ ॥२॥
बरहे बरिस पर लौटें बरही तरे उतरें।
माया लै के उठीं चनना पिढैया बहिनि जल गेंड़ुवा ॥३॥
मोर पिया पनियउँ पीयेनि हाथ मुँह धोयनि।
माई! देखउँ कुल परिवार धना को न देखउँ ॥४॥
बेटा तोरी धन अँगिया कै पातरि मुख कै सुन्दरि।
बहुवरि गोड़े मूड़े ताने पिछौरा सोवइँ धौराहरि ॥५॥
खोलौ न बहुअरि गढ़ की केवँरिया दुपहर ओनायेन।
बहुअरि देखौ न तोर परदेसिया दुआरे तोरे ठाढ़ रे ॥६॥
झझकि के बहुअरि जागइँ केवारी खोलि देखइँ।
पिया जनत्यों मैं तोरि अबैया त पटना लुटउतेउँ
थेइया नचउतेउँ ॥७॥
जब से तु गया मोरे पियवा सेजरिया नाहीं डासेउँ।
अपने ससुरू कै ताप्यों रसोइयाँ भुइयाँ परी लोटेउँ ॥८॥
जब से गयों मोरी धनिया पनवा नाहीं खायउँ।
तिरियवा नाहीं चितयउँ।
धनिया तोहरी दरद मोरी छतिया त जानहिं नरायन ॥९॥

हे काली पीली घटा! रिमझिम करके बरसो। हे घटा! उस देश में जाकर बरसो, जहाँ मेरे प्रियतम क्रीड़ा कर रहे हैं ॥१॥

उनका घर-द्वार, सब सामान, तम्बू और कनात भीग जाय। उनके हृदय में उमंग पैदा हो, वे मुझे याद करें और घर आवें ॥२॥

बारह वर्ष के बाद प्रियतम घर लौटे। बरगद के नीचे उतरे। उनकी माँ चन्दन का पीढ़ा लेकर दौड़ी और बहन लोटे पानी में ॥३॥

मेरे प्रियतम ने पानी पिया, हाथ मुँह धोया। फिर पूछा—माँ! परिवार के सब लोगों को तो देखता हूँ। तर स्त्री को नही देखता हूँ ॥४॥

माँ ने कहा—बेटा! तुम्हारी स्त्री बहुत दुर्बल हो गई है। पर उसका मुख बड़ा सुन्दर है। वह सिर से पैर तक चादर तानकर धौरहर पर सो रही है ॥५॥

माँ स्त्री के द्वार पर जाकर कहती है—बहू! गढ़ की केवाड़ी खोलो न? दोपहर होने आया। बहू! उठो। देखो, तुम्हारा परदेशी तुम्हारे द्वार पर खड़ा है ॥६॥

बहू झिझककर उठी। केवाड़ी खोलकर उसने देखा और पति से कहा—यदि मैं पहले से जानती कि तुम आ रहे हो, तो हे प्रियतम! मैं धन्य-धान्य लुटाती और नाच कराती ॥७॥

हे प्रियतम! जब से तुम गये, तब से मैंने सेज नहीं बिछाई। अपने ससुर को भोजन करा मैं जमीन पर पडी लोटा करती थी ॥८॥

पति ने कहा—हे मेरी प्यारी स्त्री! मैं अपना हाल क्या कहूँ? जब से तुम से अलग हुआ हूँ, तब से मैंने पान नहीं खाया, और न किसी पराई स्त्री पर दृष्टि डाली। हे मेरी हृदयेश्वरी! तुम्हारी पीड़ा को मेरा हृदय ही जानता है, या ईश्वर ॥९॥

यह चरित्रवान् दम्पति का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन है। माँ ने पुत्र को प्रसन्न करने के लिये वह बड़ी ही सुन्दर बात कही थी कि 'हे बेटा! तुम्हारी स्त्री बहुत दुर्बल हो गई, पर उसका मुँह बड़ा सुन्दर है। अर्थात् विरह के कारण दुबली हो गई है, पर सतवंती होने से उसके मुख की कांति, मुख का तेज बढ़ गया है।'

गीत के प्रारंभ में बहू ने घटा से प्रार्थना की है कि हे घटा! मेरे

पति के देश में जाकर बरसो, जिससे उनका हृदय हुलसे। इस कथन में एक प्राकृतिक तथ्य छिपा हुआ है। घटा को देखकर, उसकी ध्वनि सुनकर, विरहियों में मिलने की आकांक्षा बड़ी प्रबल हो जाती है। कालिदास ने मेघदूत में मेघ से कहलाया है—

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां।
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणि-मोक्षोत्सुकानि॥

अर्थात् मेरी गरज में यह गुण है कि वह परदेशियों को तुरन्त अपने-अपने घर जाने का चाव दिलाती है; और उनके मन में उत्सुकता पैदा करती है कि वे अपने घर पहुँचकर अपनी-अपनी स्त्री की वेणी खोलें।

(७९)

सौना भदौंना कै रतिआ देखत डर लागइ हो।
राजा, खोलौ न बजर केवरिया अँगन हम जाइब हो॥१॥
की हमरी मइआ जगावइ बहिनि हाँक मारइ हो।
धनिआ कवन जरूर तोहें लागि अँगन तुहुँ जाबिउ हो॥२॥
नाहीं तोहरी मइआ जगावइँ बहिनि न बुलावइ हो।
राजा छोड़ि देउ हमरा अँचरवा अँगन हम जाबइ हो॥३॥
एक लात दिँही चउकठवा दुसरा लात अँगना में हो।
रामा, बाजै लागै अनँद बधैया उठन लागे सोहर हो॥४॥

सावन-भादों की रात, देखने में डर लगता है। हे राजा! बज्र ऐसी केवाड़ी खोल दो। मैं आँगन में जाऊँगी॥१॥

मेरी माँ जगा रही है, या बहन बुला रही है? हे प्यारी स्त्री! क्या जरूरत है जो तुम आँगन में जा रही हो? ॥२॥

न आपकी माँ जगा रही हैं, न बहन बुला रही है। हे राजा! आँचल छोड़ दो, मैं आँगन में जाऊँगी ॥३॥

एक पग चौखट पर रखा। दूसरा पग आँगन में। इतने में (पुत्र पैदा होने से) आनंद की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा॥४॥

८०

सुनिले कन्हैया मोर जोगी भइलें, हमहुँ जोगिनि होइ जाँव।
जनि केहु बोअहु कुसुमिया जनि केहु बोअहु कपास।
हम ना रंगइबों लाली चुनरिया पिया बिनु जग अँधियार ॥१॥
पीपर के पतवा जइसे डोलेले जइसे डोले जल के सिंवार।
हम धनि डोलिलें बलमु बिनु मोहि छाँड़िगइलें नँदलाल ॥२॥
अँगना मोरा लेखे कुंज बन, घरवा में फेंकरे सियार।
सेजिया प लोटै काली नागिन, जेहि देखि जियरा डेराय ॥३॥
बिना रे सोना कस अभरन मोती बिना कइसी सिंगार।
बिना रे मयरिया कैसन नैहर पिया बिनु कइसी ससुरार ॥४॥

सुनती हूँ, मेरे कन्हैया (पति) जोगी हो गये; अब मैं भी जोगिन हो जाऊँगी। अब कोई कुसुम का फूल न उगाओ और न कपास बोओ; मैं अब लाल रंग की चुनरी न रँगाऊँगी। प्रियतम के बिना सारा जगत अंधकारमय है ॥१॥

जैसे पीपल का पत्ता हिलता है और जैसे जलमें सेवार डोलता है, वैसे ही प्रियतम के बिना मैं डाँवाडोल हो रही हूँ। हाय! मेरे प्रियतम मुझे छोड़ कर चले गये ॥२॥

आँगन मेरे लेखे कुंजनबन-सरीखा है, घर में स्यार रो रहे हैं, सेज पर काली नागिन लोट रही है, जिसे देखकर डर लगता है ॥३॥

सोने के बिना गहना कैसा? मोती बिना सिंगार कैसा? माँ के बिना नैहर कैसा? और प्रियतम के बिना ससुराल कैसी? ॥४॥

अन्न-प्राशन का गीत

जिस दिन बच्चे को पहले-पहल अन्न खाने को दिया जाता है, उस दिन जो उत्सव होता है, उसे अन्न-प्राशन कहते हैं। यह उत्सव अब सम्पन्न और पुरानी परिपाटी पर चलनेवाले घरों ही में मनाया जाता है। साधारण गृहस्थों में अब इसका महत्त्व नहीं रह गया है। गाँवों में इस उत्सव के भी बहुत से गीत प्रचलित हैं, उनमें से एक यहाँ दिया जाता है—

(१)

आजु मोरे लीपन पोतन, औ अन्नप्रासन हो ॥१॥
सासु अरगन नेवतहु परगन नैहर सासुर,
औ अजियाउर औ ननियाउर रे ॥२॥
अरगन आयनि परगन, और ननिआउर
औ अजियाउर हो।
सासू एक नहि आये बिरन भैया, कैसे जियरा बोधउँ रे ॥३॥
सासु भेंटहिं आपन भैया, ननद आपन देवर हो।
सासू छतिया जे मोरी घहरानी, मैं केहि उठि भेंटउँ रे ॥४॥
झमकि के चढ़ल्यूँ अँटरिया, खिरिकियन झाँक्यों हो।
ननदी जनु भैया आवैं पहुनैया, पगड़िया फहरावै रे ॥५॥
दुअरइ घोड़ा हिहियाने, पथर घहराने हो।
बहुआ मिलि लेहु भैया वेदनैता,
सोहर अब सुनौ सगुन पर बैठो रे ॥६॥

(फतहपुर)

आज मेरे घर में लीपने-पोतने का काम हो रहा है। आज अन्न-प्राशन है ॥१॥

हे सासजी ! अरगन-परगन (आर्यगण और प्रजागण अथवा अपने और पराये सब), नैहर, सासुर, अजियाउर और ननियाउर सबको न्यौता भेज दो ॥२॥

अरगन-परगन वाले आये, ननिआउर और अजियाउर के लोग आये। हे सास ! मेरा भाई नहीं आया, मैं जी को कैसे धैर्य दूँ ? ॥३॥

सासजी अपने भाई को भेंट रही हैं। ननद मेरे देवर को भेंट रही हैं। हे सासजी ! मेरी छाती में आग धधक रही है, मैं उठकर किसे भेंटूँ ? ॥४॥

मैं झमककर अटारी पर चढ़ी। खिड़की से झाँका। हे ननद ! जान पड़ता है, भैया पहुनाई करने आ रहे हैं। पगड़ी फहरा रही है ॥५॥

दरवाजे पर घोड़ा हिनहिनाया; मानो पत्थर घहराया। हे बहू ! अब अपने वेदनावाले भाई को मिल लो, सोहर सुनो और सगुन पर बैठो ॥६॥

इस गीत की पहली ही कड़ी में अन्न-प्राशन की चर्चा है; नहीं तो यह गीत प्रायः प्रत्येक उत्सव में, जिसमें सगे-संबंधी न्यौते जाते हैं, गाया जा सकता है। इसमें भाई के लिए बहन के हृदय की वेदना का बड़ा मार्मिक वर्णन है।

मुण्डन के गीत

जन्म के तीसरे, पाँचवें या सातवें वर्षमें पहले-पहल जब बच्चे के सिर के बाल उतारे जाते हैं, उसे मुण्डन कहते हैं। हिन्दू-समाज के सोलह संस्कारों में यह एक संस्कार है।

पहले ज्योतिषी से पूछकर मुण्डन का दिन और समय नियत किया जाता है। फिर नियत दिन पर देव-पूजन, हवन और ब्राह्मणों और मित्रों को भोजन कराया जाता है और ब्राह्मणों को दक्षिणा दी जाती है।

मुण्डन हो जाने के बाद बच्चे की बहन को, और अगर बहन न हुई तो उसकी फूफी को, जो बाल बटोरती है, तथा मुण्डन करनेवाले नाई को नेग चुकाये जाते हैं और उन्हें खुश किया जाता है। बहन को नेग में नकद रुपये बरतन या गाय या बछिया-बछड़े दिये जाते हैं। नाई को नकद रुपये-पैसे, कोई एक बरतन या कपड़े दिये जाते हैं। नेग गृहस्थ के घर की माली हालत पर निर्भर है। ग़रीब गृहस्थ के घर में कुछ पैसों ही से बच्चे की बहन और नाई को संतोष करना पड़ता है।

घर की स्त्रियाँ टोले-महल्ले की स्त्रियों को जमाकर, सब के साथ गा-बजाकर मुण्डन संस्कार को एक सुखमय उत्सव का रूप दे देती हैं। इस प्रसंग के बहुत-से गीत उनमें प्रचलित हैं, जिनमें निकट सम्बन्धियों के परस्पर के प्रेम-भाव और मुण्डन की क्रियाओं का भी वर्णन होता है।

यहाँ मुण्डन के अवसर पर गाये जाने वाले कुछ गीत दिये जाते हैं:—

(१)

सभवहिं बैठे सिर साहब, बोलैं जच्चारानी रे।
साहेब मोरे नैहर लोचना पठाबो,
पियरिया भैया भेजें, होरिलवा के मूँड़न ॥१॥

तोहर नैहरवा धन दूरि बसै, कोसवन को गनै हो।
रानी, घर ही में रंगहु पियरिया, चौक पर बैठहु,
होरिलवा के मूंड़न रे॥२॥
तोहर पियरिया राजा नित के, निति उठि पहिरब हो।
राजा, हमरे भैया कै पियरिया सगुन के,
चउक पर बैठब, होरिलवाँ के मूंड़न हो॥३॥
हँकरहु नगर के नौवा बेगहिं चलि आवहु रे।
नौवा रँगि रँगि पीसहु हरदिया, रोचन पहुँचावहु,
होरिलवा के मूंड़न रे॥४॥
सभवहि बैठे हैं बीरन भैया, नौवा से पूछइँ रे।
नौवा केकरे भयन नन्दलाल, रोचन कहाँ पायो हो॥५॥
बड़हर कै हम नौवा, सजन घरवाँ आये हो।
तोहरी बहिनी के भये नन्दलाल,
लोचन लैके आये हो॥६॥
हरखि के उठेनि बीरन भैया, धन जी से पूँछै हो।
रानी, बहिनी के भयें नन्दलाल, लोचन हमको आवा,
पियरिया लैके जावै रे॥७॥
येहि पेटरवा के कुंजिया ना जानों कहाँ गिरि गई हो।
राजा नाहीं रे बजजवा यहि गाँव,
पियरिया कहाँ पउवो रे॥८॥
बेंचबै मैं ढाल तरुवरिया, अरे फाँड़े कै कटरिया रे।
रानी, सौ साठि पियरी रंगौबे, चौक पर पहुँचब हो॥९॥

घर के मालिक सभा में बैठे हैं। जच्चारानी ने उनसे कहा—हे स्वामी! मेरे नैहर को रोचन भेजो, ताकि मेरे भैया पियरी (पीली धोती) भेजें। बच्चे का मुण्डन है॥१॥

हे धन ! तुम्हारा नैहर बड़ी दूर है। कितने कोस है ? कौन गिनती करे। हे रानी ! घर ही में पियरी रँग डालो, और उसे पहनकर चौक पर बैठो। बच्चे का मुण्डन है ॥२॥

हे राजा ! तुम्हारी दी हुई पियरी तो हमेशा की है। सदा उठकर पहनूंगी। हे राजा ! मेरे भैया की पियरी सगुन की है। उसी को पहनकर चौक पर बैठूंगी। बच्चे का मुण्डन है ॥३॥

नगर के नाई को बुलाओ। जल्दी आओ। हे नाई ! खूब घिस-घिसकर हल्दी पीसो और रोचन ले जाओ। बच्चे का मुण्डन है ॥४॥

भैया सभा में बैठे हैं। नाई से पूछते हैं—हे नाई ! किसके पुत्र हुआ है ? रोचन कहाँ पाया ? ॥५॥

मैं बड़हर (गाँव या बडा घर) का नाई हूँ। आप सज्जन के घर आया हूँ। आपकी बहन के पुत्र हुआ है। उसी का रोचन लेकर आया हूँ ॥६॥

भैया प्रसन्न होकर उठे। उन्होंने अपनी स्त्री से पूछा—हे रानी ! बहन के पुत्र हुआ है। रोचन आया है। मैं पियरी लेकर जाऊँगा ॥७॥

स्त्री ने कहा—पेटारे की कुंजी तो न जाने कहाँ गिर गई। हे राजा ! इस गाँव में बजाज भी तो नही है, पियरी कहाँ पाओगे ? ॥८॥

मैं ढाल-तलवार बेंच दूंगा, कमर की कटारी बेंच दूंगा। हे रानी ! सैकड़ों पियरियाँ रंगाकर और लेकर चौक पर पहुँचूंगा ॥९॥

इस गीत में भाई और बहन के प्रेम का सरस वर्णन है। साथ ही स्त्री-स्वभाव की भी झलक है। भाई की स्त्री की इच्छा नही थी कि उसकी ननद को पियरी भेजी जाय।

यह गीत उस जमाने का है, जब हमारे घरों में ढाल-तलवार और कमर की कटारी थी।

(२)

ना बाबा बजना बजायो, न सुजना बुलायो।
बड़े रे कलप के लफरिया तौ चोरिया मुंड़ायो ॥१॥

हम नाती बजना बजैबै, और सुजना बुलैबै।
बड़ेरे कलप कै लफरिया, मैं हरषि मुड़ैबै ॥२॥
सोने के खड़ौवाँ भैया साहेब, बहिनि बहिनि करैं।
कहाँ गइउ बहिनि हमारि, तौ लोइया बटोरउ ॥३॥
भितराँ से निकरीं हैं बहिनि तौ हाथभरि लोइया लिहे।
देव भैया नेग हमार, तौ लोइया बटोरउँ ॥४॥
देवै गले कै तिलरिया दूनौ काने बिरिया।
देबै बहिनि सोरहौ सिंगार, बिहँसि घर जायो ॥५॥
(प्रतापगढ़)

हे बाबा! न तुमने बाजा बजवाया, न सुजनों (संबंधियों) को बुलाया। बड़े लटों की लफरी (लट) को चुपके-से मुँड़ाया ॥१॥

हे नाती! हम बाजा बजवायेंगे, सुजनों को बुलायेंगे, बड़ी लटो को बड़े हर्ष से मुँड़वायेंगे ॥२॥

भाई सोने के खड़ाऊँ पर चढ़कर बहन, बहन पुकार रहा है। हे मेरी बहन! कहाँ हो? लटें बटोरो ॥३॥

बहन भीतर से निकली। हाथों में भरकर लटें लिये है। हे भाई! मेरा नेग दो तो लटें बटोरूँ ॥४॥

भाई ने कहा—मैं तुम्हारे गले के लिये तिलरी और कानों के लिये बिरिया (कान का एक गहना) दूँगा। हे बहन! मैं सोलहों शृंगार का सामान दूँगा, तुम प्रसन्न होकर घर जाना ॥५॥

(३)

हाथी चढ़ो बाबा हाथी चढ़ो, बाबा कवन रामा हो।
तुमरे नतिया कै लगन समीप, तौ लफरी मुँड़ाओ हो ॥१॥
हाथी चढ़ो दादा हो हाथी चढ़ो, दादा कवन रामा हो।
तुमरे दुलरू कै लगन समीप, तौ लफरी मुँड़ाबउ हो ॥२॥

नौआ गा हइ कासी, तौ बाँभनु बनारस हो।
मोरी धिया गइ हैं ससुरारि, तौ कैसे मुँड़ावउँ हो ॥३॥
असी कोस कै ननदिया बधौवा लैकै आई हो।
मोरी भौजी ने हना है केवडिया, इहाँ कहाँ आइउ हो ॥४॥
की भौजी होब जागिनि, की होब भाँटिनि हो।
की होब जंगल पतुरिया, दुवारे तुम्हरे नाचौं हो ॥५॥
नाहीं ननदी मोर जागिनि, नाहीं होउ भाँटिनि हो।
ननदा, बड़े रे छयल कै बहिनियाँ, आदर बिन आइउ हो ॥६॥
(इटावा)

हे बाबा! हाथी पर चढ़ो। हाथी पर चढ़ो। तुम्हारे नाती के मुण्डन की साइत समीप है, मुण्डन करा दो ॥१॥

हे दादा! हाथी पर चढ़ो, हाथी पर चढ़ो। तुम्हारे दुलारे की साइत समीप है, मुण्डन करा दो ॥२॥

नाई तो काशी गया है, पंडित बनारस गये हैं, मेरी बेटी ससुराल गई है, मुण्डन कैसे कराऊँ? ॥३॥

अस्सी कोस पर ब्याही हुई ननद बधावा लेकर आई है। भावज ने केवाड़े बन्द कर लिये और कहा—यहाँ कहाँ आई हो? ॥४॥

ननद ने कहा—अब या तो मैं जोगिन होकर या भांटिन या जंगल की पतुरिया (नाचने वाली) होकर तुम्हारे द्वार पर नाचूँगी ॥५॥

भावज ने कहा—हे मेरी ननद! न जोगिन हो, न भांटिन हो। हे ननद! तुम बड़े छैला (उसके पति) की बहन हो, बिना सूचना दिये आई हो ॥६॥

ननद ने अपने भाई की सामाजिक मान-मर्यादा का ध्यान नहीं रक्खा और वह बिना सूचना दिये आगई, इससे उसका उचित स्वागत-सत्कार नहीं हो सका। इससे गाँव में ननद के भाई की हँसी हुई होगी। स्त्रियों को अपने कुटुम्ब की इज्जत का कितना ध्यान रहता है!

जनेऊ के गीत

जनेऊ शब्द यज्ञोपवीत का अपभ्रंश है। यज्ञोपवीत को ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। जनेऊ पहनना आर्य-जाति की बहुत पुरानी प्रथा है।

यज्ञोपवीत का यह श्लोक प्रत्येक द्विज को याद कराया जाता है—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

भावार्थ—यज्ञोपवीत परम पवित्र है, जो प्राचीनकाल में प्रजापति के साथ उत्पन्न हुआ था। यह आयु, बल और तेज का देने वाला है।

पारसी लोग भी जो आर्यों के सजातीय हैं और ईरान में जाकर बस गये थे, यज्ञोपवीत पहनते हैं। यज्ञोपवीत का उनका मंत्र यह है:—

ज़ाते मजदाओ बरत् पौरवनिम् आयभ्य ओंघनेम् स्तेहर पाएसंघेम् मैन्यु-तस्तेम वंधुहिम दायनम् मजदयास्निम्।

अर्थात्, हे मजदा, यासनिन धर्म के चिन्ह! तारों से जड़े हुए यज्ञोपवीत! तुझे पूर्वकाल में मजदा ने धारण किया है।

पूर्वकाल में, उपनयन संस्कार में यज्ञोपवीत धारण करके तब ब्रह्मचारी आचार्य के पास विद्याध्ययन के लिए जाता था। यज्ञोपवीत धारण करने के दिन से ब्रह्मचारी को कुछ व्रतों अर्थात् नियमों का पालन करना अनिवार्य हो जाता था, इसलिए इसे व्रत-बन्ध भी कहते हैं। यज्ञोपवीत धारण करने के बाद ही मनुष्य की द्विज संज्ञा होती है। नहीं तो, मनु महाराज के निर्णय के अनुसार, यज्ञोपवीत होने के पहले मनुष्य-मात्र शूद्र हैं।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते। मनुस्मृति॥

यज्ञोपवीत क्यों पहना जाता है? इसका उत्तर कौषीतकि ब्राह्मण के इस मंत्र में मिलता है—

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे।

आचार्य कहता है—हे ब्रह्मचारी! मैं तुझे दीर्घायु, बल और तेज के लिए यज्ञोपवीत से बाँधता हूँ।

यज्ञोपवीत में तीन तागे होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ तीनों आश्रमों के नियमों को अच्छी तरह पालन करने के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध होता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के साथ जन्म से ही तीन ऋण लगे हुए हैं—ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण।

जायमानो ह वै ब्राह्मणास्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते।
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति॥
(ब्राह्मण ग्रंथ)

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों तीन ऋणों से ऋणी ही पैदा होते हैं। ब्रह्मचर्य धारण करके, ऋषियों के बनाये ग्रंथों का स्वाध्याय करके, ऋषि-ऋण से, यज्ञों के द्वारा देव-ऋण से और संतान उत्पन्न करके पितरों के ऋण से छुटकारा मिलता है। सन्यासी इन तीनों ऋणों से मुक्त होता है, इससे उसे यज्ञोपवीत-धारण की आवश्यकता नहीं रहती।

यज्ञोपवीत में तीन तागे होने का एक अभिप्राय यह भी बताया जाता है कि इसका सम्बन्ध ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीन ही वर्णों से है। शूद्र के लिये यज्ञोपवीत का विधान नहीं है।

यज्ञोपवीत ९६ अंगुल लम्बा होना चाहिए। ९६ अंगुल लम्बा होने का तात्पर्य यह है—

तिथिर्वारश्च नक्षत्रं तत्वं वेदा गुणत्रयम्।
कालत्रयं च मासाश्च ब्रह्मसूत्रं च षण्नव॥

तिथि १५, वार ७, नक्षत्र २८, तत्व २४, वेद ४, गुण ३, काल ३, मास १२—कुल मिलाकर ९६ हुए। इन सब के साथ नियम निबाहने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध होने के प्रमाण-स्वरूप ९६ अंगुल का सूत्र पहना जाता है। कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि ९६ अंगुल का यज्ञोपवीत वेद के ९६००० मंत्रों के अध्ययन का एक प्रमाण है।

यज्ञोपवीत कमर मे नीचे नहीं आना चाहिए। इस सम्बन्ध में छान्दोग परिशिष्ट में लिखा है—

स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथंचन।
ब्रह्मचारिण एकं स्यात् स्नातस्य द्वे बहूनि वा॥

अर्थात्, यज्ञोपवीत स्तन से ऊपर और नाभि से नीचे न पहने। ब्रह्मचारी एक और गृहस्थ दो यज्ञोपवीत पहने।

मूत्र और पुरीष त्याग के समय यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर तीन बार लपेट लिया जाता है। यह केवल शुद्धता के लिये किया जाता है। एक लाभ यह भी है कि यज्ञोपवीत धारण करने के अवसर पर की हुई प्रतिज्ञायें—खास कर ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध की प्रतिज्ञायें—बार बार याद आती रहें। प्रतिज्ञायें ये हैं:—

१—दिवा मा स्वाप्सीः।
दिन मे मत सोना।

२—आचार्याधीनो वेदमधीष्व।
आचार्य के अधीन रहकर वेद का अध्ययन कर।

३—क्रोधानृते वर्जय।
क्रोध और झूठ को छोड़ दे।

४—मैथुनं वर्जय।
मैथुन को छोड़ दे।

५—उपरि शय्यां वर्जय।
भूमि से ऊपर पलँग आदि पर सोना छोड़ दे।

६—कौशीलव गन्धाञ्जनानि वर्जय ।

गाना-बजाना, नृत्य आदि तथा इत्र इत्यादिक का सूँघना और आँखों में अंजन लगाना वर्जित है।

७—मांसं रूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय।

मांस, रूखा-सूखा भोजन और मद्य आदि नशीली चीजों का सेवन मत कर।

८—अन्तर्ग्राम-निवासोपानछत्रधारणं वर्जय।

गाँव के बीच में बसना, जूता और छाता धारण करना वर्जित है।

९—अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेता सततं भव।

लघु शंका के सिवा कभी उपस्थ इन्द्रिय का स्पर्श मत कर। न वीर्य स्खलित होने दे। ऊर्ध्वरेता बन।

१०—सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव।

सुशील, थोड़ा बोलनेवाला और सभा में बैठने योग्य गुणों वाला बन।

समाजरूपी शरीर में वैश्य का स्थान कमर कहा गया है। अतएव वैश्य तक यज्ञोपवीत पहनने के अधिकारी हैं। शूद्रों को अधिकार नहीं है। अतः कमर से नीचे यज्ञोपवीत का पहनना वर्जित है।

यज्ञोपवीत में जो गाँठ दी जाती है, उसका नाम ब्रह्म-ग्रन्थि है। देहात में इसे ब्रह्म-गाँठ कहते हैं। गाँठें भी तीन दी जाती हैं।

यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में एक नियम और भी है। वह यह है कि यज्ञोपवीत अपने काते हुए सूत का होना चाहिए। बाजार से खरीदे हुए सूत का यज्ञोपवीत अपवित्र माना जाता है। इससे प्रत्येक द्विज को सूत कातने की प्रक्रिया का जानना अनिवार्य है। आजकल तो लोग बाजार से खरीदे हुए विलायती सूत का यज्ञोपवीत बनाते और पहनते हैं। शहरों में तो जर्मनी से बनाये यज्ञोपवीत आते और बिकते हैं। तीर्थ-स्थानों में, घाटों पर बहुत से

ब्राह्मण बैठे जनेऊ बेंचा करते हैं। वे प्रायः वही जनेऊ बनाया भी करते हैं। कपड़ा सीने की रीलें वे बाजार से खरीद लेते हैं और उसे तिहरा करके उसमें मामूली गाँठ दे लेते हैं। उनको आजकल के बहुत से अंग्रेजी पढ़े हुए बाबू लोग 'वेरी फाइन' जनेऊ कहकर खरीदते और पहनते हैं। इस प्रकार यज्ञोपवीत पहनने का उद्देश्य सर्वथा नष्ट हो गया है। अब कुछ लोग तो समाज के भय-वश, कुछ रूढ़ि-वश और कुछ अन्ध-विश्वास से जनेऊ पहनते हैं। यज्ञोपवीत की यह दुर्दशा शोचनीय है।

ब्राह्मण-बालक का यज्ञोपवीत ८ वर्ष की अवस्था में होना चाहिए। क्षत्रिय का ११ वें वर्ष में, और वैश्य का १२ वें वर्ष में यज्ञोपवीत होना शास्त्र-सम्मत है। उपनयन-संस्कार के समय के विषय में शतपथ ब्राह्मण का यह वचन है:—

बसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्। सर्वकालमेके।

ब्राह्मण का वसन्त में, क्षत्रिय का ग्रीष्म में और वैश्य का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करना चाहिए। अथवा सब ऋतुओं में भी हो सकता है। दिन में प्रातःकाल ही नियमित है।

देहातों में अब भी यज्ञोपवीत-संस्कार धूमधाम से मनाया जाता है। संस्कार में नाते-रिश्ते के प्रायः सब लोग एकत्र होते हैं। यज्ञोपवीत धारण करने के दिन से ब्रह्मचारी को केवल भिक्षा पर जीवन-निर्वाह करके विद्याध्ययन करने का नियम है। समाज का अन्न खाकर जो ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करता था, वह जीवन भर समाज का ऋण अपने ऊपर समझता था और ऋण-मुक्त होने के लिये जीवन भर समाज की सेवा किया करता था। भिक्षा का वह लक्ष्य अब केवल आधे घंटे ही में प्राप्त कर लिया जाता है। साथ ही विद्याध्ययन के पंद्रह-सोलह वर्ष भी आँगन से ड्योढ़ी तक ही समाप्त हो जाते हैं। ब्रह्मचारी विद्याध्ययन के लिये काशी जाने को तैयार होता है। दो-चार कदम चलता है कि घरवाले वापस बुला लेते हैं। इस तरह हिन्दू-समाज में यज्ञोपवीत का यह ढकोसला चला जा रहा है।

ब्रह्मचारी को भिक्षा देना पूर्वकाल में बड़े पुण्यका काम समझा जाता था। भिक्षा देने की इस प्रथा से बड़े-बड़े गुरुकुलों का खर्च सहज ही में चल जाता था। फंड के लिये न किसी अधिवेशन की आवश्यकता होती थी, और न अन्य प्रकार के किसी आयोजन की। उस प्रथा को त्याग देने ही से आज-कल शिक्षा महँगी, संकुचित और केवल स्वार्थ-मूलक हो गई है।

जनेऊ के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, वे प्रायः सोहर ही छंद के होते हैं। पर लय में कुछ अंतर होता है।

यहाँ जनेऊ के कुछ गीत दिये जाते हैं—

(१)

देहु न माता मोहिं सतुवा और गुड़ गेंड़वा।
जैहों मैं कासी बनारस वेद पढ़ि अइहों ॥१॥
नाहीं मोरे सतुवा नाहीं गुड़ गेड़वा।
तोरा दादा हैं विद्वान घर हीं बेद पढ़ि ल्यो ॥२॥
देहु न काकी मोहिं सतुवा और गुड़ गेंड़ुवा।
जैहों मैं कासी बनारस बेद पढ़ि आइहों ॥३॥
नाहीं मोरे सतुवा नाहीं गुड़ गेंड़ुवा।
तोरा काका हैं विद्वान घरहीं बेद पढ़ि ल्यो ॥४॥
देहु न बुवा मोहि सतुवा और गुड़ गेंड़ुवा।
जैहों मैं कासी बनारस वेद पढ़ि अइहों ॥५॥
नाहीं मोरे सतुवा नाहीं गुड़ गेड़वा।
तोरा फूफा हैं विद्वान घरहीं वेद पढ़ि ल्यो ॥६॥

ब्रह्मचारी कहता है—हे माता! मुझे सतुआ, गुड़ और लोटा दो। मैं काशी जाकर वेद पढ़ आऊँ ॥१॥

माता कहती है—हे बेटा! मेरे सतुवा, गुड़ और लोटा नहीं है। तेरे पिता विद्वान् हैं, उनसे ही घर पर वेद पढ़ लो ॥२॥

इसी प्रकार ब्रह्मचारी अपनी काकी और बुआ आदि से निवेदन करता

है और एक-सा उत्तर पाता है कि घर पर ही वेद पढ़ानेवाले विद्वान् हैं, यहीं वेद पढ़ लो।

यह गीत प्राचीन भारत का एक अनुपम दृश्य हमारी आँखों के आगे लाकर खड़ा कर देता है, जब एक एक घर में दो-दो, चार-चार वेदज्ञ विद्वान् रहते थे। विद्या की रुचि इतनी थी कि बालक स्वयं काशी जाकर वेद पढ़ आने के लिये आग्रह करता था। ब्रह्मचारी एक मामूली जल-पात्र के साथ घर से निकल जाता था और भिक्षावृत्ति से जीवन-निर्वाह करके गुरुकुल से पूर्ण विद्वान् होकर घर लौटता था। अब उसकी स्मृति एक सुख-स्वप्न के समान जान पड़ती है।

(२)

इमली क पेड़ सुरुहुर अवरी ढुरुहुर।
तेहि तर ठाड़ी कवनी देई दैव मनावइँ ॥१॥
जनि दैव अर्जहु गरजहु जनि दैव बरिसहु।
आवत होइहैं मोर स्वामी झीसीया भीजी जइहैं ॥२॥
केतनौ तु ए दैव गरजहु केतनौ तु बरिसहु।
हमरे जे सारे क जनेउ भिजत हम जाबइ ॥३॥
भिजे मोरे माँथे क मुरायठ हिरदै कर चंदन।
भिजे मोरे सोरहो सिगार जनेउवाँ के कारन ॥४॥

इमली का वृक्ष सीधा और घनी छाया वाला होता है। उसके नीचे खड़ी अमुक देवी देवता मना रही हैं ॥१॥

हे दैव! न गरजो, न तरजो, न बरसो। मेरे स्वामी आते होंगे, जो नन्ही-नन्ही बूँदों से भीग जायँगे ॥२॥

उस देवी का स्वामी कहता है—हे दैव! तुम कितना ही गरजो और बरसो। मेरे साले का यज्ञोपवीत है। मैं भीगता हुआ भी जाऊँगा ॥३॥

मेरे सिर की पगड़ी और हृदय का चंदन भीग रहा है। जनेऊ के लिये मेरा सोलहो शृंगार भीग रहा है ॥४॥

इस गीत में यह दिखलाया गया है कि मार्ग में चाहे जैसी भी बाधा उपस्थित हो, पर जनेऊ में अवश्य पहुँचना चाहिये।

(३)

द्वारेन द्वारे बरुवा फिरैं बखरी पूछैं बबा की हो।
द्वारेन उनके हैं कुइँया भीती चित्र उरेही हो॥
आँगन तुलसी क बिरवा बेदवन झनकारी है हो।
सभवन बैठे बाबा तुम्हरे बैठे पुरवै जनेउवा हो॥

नोट—पितामह से लेकर जितने लोग ब्रह्मचारी से बड़े दर्जे के होते हैं, हरएक का नाम लेकर इन्हीं पदों की आवृत्ति की जाती है।

ब्रह्मचारी द्वार-द्वार फिर रहा है और बाबा का घर पूछ रहा है। कोई उसको पता बता रहा है कि उनके द्वार पर कुँवा है। दीवार पर चित्र अंकित हैं। उनके आँगन में तुलसी का वृक्ष है। वेद-ध्वनि हो रही है। सभा में बैठे हुए तुम्हारे बाबा जनेऊ बना रहे हैं।

इस गीत में एक उच्च कोटि के ब्राह्मण गृहस्थ के घर की व्याख्या है। द्वार पर कुँवा, आँगन में तुलसी, दीवारों पर चित्र, घर में वेद-ध्वनि की गूँज और अपने हाथ से जनेऊ कातना यह दृश्य अब बिरले ही कहीं देखने को मिलता है।

(४)

गंगा जमुन बिच आँतर चन्दन एक रुखवा है हो।
तेहि तर ठाड़े फूफा उनके काते जनेउना हो।
सात सखी मिलि पूछैं किन्ह काते जनेउना हो।
आठ बरिस के अमुक राम उन्हें पंडित करबइ हो।
हमरे दुलरुवा अमुक राम उन्हें पंडित करबइ हो॥

गंगा और जमुना के मध्य में चन्दन का एक वृक्ष है। उसके नीचे अमुक व्यक्ति के फूफा खड़े जनेऊ कात रहे हैं। सात सखी मिलकर पूछती हैं कि

किसके लिये जनेऊ काता जा रहा है ? फूफा ने कहा—आठ वर्ष के मेरे दुलारे अमुक राम हैं, उनको पंडित बनाऊँगा।

अपने हाथ से काता हुआ यज्ञोपवीत ही पहनने का माहात्म्य है।

(५)

सोने के खड़ाऊँ राजा दशरथ ठाड़े पंडित पुकारइँ हो।
अरे अरे पंडित वशिष्ठ जी मोरी अरज ओनाव॥
आठ वरिस के रमइया उन्हें देतेउ जनेउना ॥१॥
इतना सुनिन हैं वशिष्ठ जी मलिआ बुलावइँ।
माली पानेन मड़वा छवावउ कलसा धरावउ॥२॥
आठ बरिस कै दुलरुवा मड़ये तर ठाढ़े।
सिर वाके घाम लागै पाँव भूँभुरि लागै हो॥३॥
अरे अरे माय कौसिल्ला रानी उठि भीख सँवारउ।
आठ बरिस के रमइया चन्द्र मँड़ये तर ठाड़े॥४॥

राजा दशरथ सोने के खड़ाऊँ पर खड़े हैं और पंडित को बुला रहे हैं। हे पंडित वशिष्ठ मुनि ! मेरी प्रार्थना सुनिये। आठ बरस के राम हो गये। अब इन्हें जनेऊ (यज्ञोपवीत) देना चाहिए॥१॥

इतना सुनते ही वशिष्ठ ने माली को बुलवाया और आज्ञा दी—पान का मड़वा छवाओ और कलश रखवाओ॥२॥

आठ बरस के लाड़ले राम मड़वे के तले खड़े हैं। उनके सिर पर घाम लग रहा है और पैर जलती धूल से जल रहे हैं॥३॥

हे रानी कौशल्या ! उठो और भीख की तैयारी करो। आठ बरस के राम माँड़ौ के तले खड़े हैं॥४॥

आठ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत हो जाने का नियम शास्त्रानुकूल है। राम की अवस्था आठ वर्ष की होते ही दशरथ चिंतित हुए और उन्होंने वशिष्ठ से राम को यज्ञोपवीत दिला दिया।

(६)

नदिया के ईरे तीरे बरुवा से बरुवा पुकारें।
आजा पठय देव नाव नेवरिया बरुवा चला आवइ ॥१॥
ना हमरे नाव नेवरिया नाहीं घर खेवट।
जेकर जनेउआ के साध पउँरि नदिया आवइ ॥२॥
भीजै मोर आगे की अँगिवाँ सिर कै पगिया।
भीजै मोर सौरहौ सिंगार जनेउवा के साध ।३॥
देब्यौं मैं आगे के अगिवाँ सिर कै पगिया।
देब्यौं मैं सोरहौ सिंगार जनेउवा के कारन ॥४॥

नदी के किनारे एक ब्रह्मचारी पुकार रहा है—हे पितामह! नाव भेज दो, तो मैं पार उतर आऊँ ॥१॥

पितामह ने कहा—न मेरे नाव है, न केवट। यज्ञोपवीत की जिसकी लालसा हो, वह नदी तैर कर आवे ॥२॥

ब्रह्मचारी कहता है—मेरा अँगरखा भीग रहा है, सिर की पगड़ी भीग रही है, जनेऊ के लिये मेरा सोलहो शृंगार भीग रहा है ॥३॥

पितामह ने कहा—मैं अँगरखा दूँगा। मैं पगड़ी दूँगा। मैं जनेऊ के लिये सोलहो शृंगार दूँगा ॥४॥

जनेऊ के गीतों में नदी तैर कर आने का जिक्र अक्सर मिलता है। जान पड़ता है, आठ वर्ष की उम्र तक तैरना सीख लेना ब्रह्मचारी के लिये पूर्वकाल में अनिवार्य समझा जाता था।

(७)

गयाजी में बरुआ पुकारेले हथवाँ जनेउवा ले ले
है कोई गयाजी क ठाकुर हमके जनेउवा दिहे ॥१॥
गयाजी क ठाकुर गजाधर उहे उठि बोललें।
हम अही नग्र क ठाकुर हमही जनेउवा देबों ॥२॥

काशी में बरुआ पुकारेलें हथवाँ जनेउवा लेले।
है कोई कासी के ठाकुर हमके जनेउवा दिहे ॥३॥
काशी क ठाकुर विश्वनाथ बाबा उहे उठी बोललें।
हम अही काशी क ठाकुर हमहीं जनेउवा देबों ॥४॥
विन्ध्याचल में बरुवा पुकारेले हथवाँ जनेउवा ले ले।
है कोई विन्ध्याचल क ठाकुर हमके जनेउवा दिहे ॥५॥
विन्ध्याचल क ठाकुर भवानी त उहे उठि बोलेलीं।
हम अही विन्ध्याचल क ठाकुर हमहीं जनेउवा देबों ॥६॥

अर्थ स्पष्ट है। बहुत से ब्रह्मचारी, जिनका यज्ञोपवीत संस्कार किसी कारण से घर पर नहीं होता, गया, काशी या विन्ध्याचल आदि तीर्थ-स्थानों में चले जाते हैं और यज्ञोपवीत धारण कर लेते हैं। यह प्रथा अब भी प्रचलित है। पर अब केवल ग़रीब और अनाथ ब्राह्मण ही ऐसा करते हैं; क्योंकि आजकल यज्ञोपवीत संस्कार में गृहस्थ को बहुत खर्च करना पड़ता है। जो खर्च नहीं कर सकते, वे ही तीर्थ में जाकर जनेऊ पहन लेते हैं।

(८)

करो न माया मेरी लड़ुआ और कछू सतुआ जू।
जाबौं मैं कासी बनारस वेद पढ़ि आवहिं जू ॥१॥
काहे को जैहो पूता कासी काहे बनारस जू।
घरहीं अजुल मेरे बेदी तो बेद पढ़ाय देहें जू ॥२॥
आजुल न हो मेरे अजुला तुहीं मोर अजुला जू।
आजुल अहिर गड़रिया पढ़ाय बह्मन करि लीयो जू ॥३॥

ब्रह्मचारी कहता है—हे माँ! लड्डू और कुछ सत्तू दो न? मैं काशी जाकर वेद पढ़ आऊँ ॥१॥

माँ कहती है—बेटा! काशी क्यों जाओगे? घर ही में तुम्हारे पितामह बड़े वेदज्ञ हैं, वे वेद पढ़ा देंगे ॥२॥

ब्रह्मचारी कहता है—हे पितामह ! तुम मेरे पितामह हो, तुमने अहीर गड़रियों को पढ़ाकर ब्राह्मण बना दिया है, मुझे भी पढ़ा दो ॥३॥

यह गीत उस समय का स्मरण दिला रहा है, जब विद्वान् होना ही ब्राह्मणत्व का प्रमाण था।

(९)

राजा दसरथ अँगना मूँजि कौसिल्ला रानी भल चीरैं।
लपकि झपकि चीरैं दूनौ हाथे चीरैं॥
रामचन्द्र बरुवा भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन ॥१॥
राजा दसरथ झारिन झूरिनि जाँघ बैठाइनि।
देबै बेटा सोने कै जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम ॥२॥
राजा दसरथ अँगना मूँजि सुमित्रा रानी भल चीरैं।
लपकि झपकि चीरैं दूनौं हाथे चीरैं॥
रामचन्द्र बरुवा भुइवाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन ॥३॥
राजा दशरथ झारिनि झूरिनि जाँघ बैठाइनि।
देबै बेटा सोने कै जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम ॥४॥
राजा दसरथ अँगना मूँजि केकई रानी भल चीरैं।
लपकि झपकि चीरैं दूनौं हाथे चीरैं।
रामचन्द्र बरुवा भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन ॥४॥
राजा दसरथ झारिनि झूरिनि जाँघ बैठाइनि।
देबै बेटा सोने कै जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम ॥६॥
वशिष्ठ मुनि अँगना मूँजि गुरुआइनि भल चीरैं।
लपकि झपकि चीरैं दूनौं हाथे चीरैं।
रामचन्द्र बरुवा भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन ॥७॥
वशिष्ठ मुनि झारिनि झूरिनि जाँघ बैठाइनि।
देबै बेटा सोने कै जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम ॥८॥

राजा दशरथ के आँगन में मूँज है। कौशिल्या रानी उसे अच्छी तरह चीर रही हैं। लपक-झपक कर चीरती हैं। दोनों हाथों से चीरती हैं। ब्रह्मचारी राम जनेऊ के लिए भूमि पर लोट-लोट जाते हैं ॥१॥

राजा दशरथ ने राम को उठाया। धूल पोंछी। जाँघ पर बैठा लिया और कहा—बेटा ! मैं तुम्हें पहनने के लिये सोने का जनेऊ दूँगा, जो बहुत उत्तम होता है ॥२॥

ऐसी ही बातें सुमित्रा, कैकेयी और वशिष्ठ मुनि ने भी कही गईं।

इस गीत में राम के बहाने यह बताया गया है कि बालकों में जनेऊ लेने की उत्सुकता कैसी होती है।

(१०)

काहे को हरुला काहे की है माछ।
सोने को हरुला, रूपे की है माछ।
राम लछिमन दोनों जोतैं खेत।"
काहे की डलिया काहे की है ढाँक।
राइयो रुक्मिन बीज लै जाँय।
राम लछिमन दोनों बोवैं कपास।"
एक पत्ता दो पत्ता तीसरे कपास।
काहे की है चरखी काहे की है डंडी।
चन्दन चरखी सोने की है डंडी।
राइयो रुक्मिनि ओटैं कपास॥
काहे की है धुनियाँ काहे की है ताँत।
सोने की धुनियाँ रेसम की है ताँत।
राइयो रुक्मिनि धुनैं कपास॥
काहे की है रहटा काहे की है माल।
चन्दन रहटा रेसम की है माल।

राइयो रुक्मिन कातैं सूत।
एक तागा, दो तागा, तीसरे जनेउ।
तीन तागा, चार तागा, पाँचवे जनेउ।
पाँच तागा, छः तागा, सातयें जनेउ।
सात तागा, आठ तागा, नौवें जनेउ॥
पहिलो जनेउ गनेसजी को देव।
दुसरो जनेउ ब्रह्माजी को देव।
तीसरे जनेउ महादेवजी को देव।
चौथो जनेउ विष्णुजी को देव।
पाँचवो जनेउ सब देवतन देव।
छठवों जनेउ सब पुरखन देव॥
सातवों जनेउ बरुआ को देव।
अहिर गड़रिया बम्हन करि लेव॥

यह गीत इटावा जिले का है। इसमें कपास बोने से लेकर सूत बनने और सूत से फिर जनेऊ बनने तक का क्रम वर्णित है। अन्त में कहा गया है कि इसी सूत के प्रभाव से अहीर-गड़रिये भी ब्राह्मण हो सकते हैं।

इस गीत से यह भी अभिप्राय निकलता है कि हरएक द्विज को स्वयं हल चलाना, कपास बोना, ओटना, धुनना, चरखा चलाना, सूत कातना और सूत से जनेऊ बनाना जानना चाहिए। घर-घर में चरखे की रक्षा के लिए ही तो कहीं यह नियम नहीं बनाया गया था?

(११)

गंगा किनारे बरुआ फिरैं केऊ पार उतारइ हो।
पठइ दे आजा नवरिया बरुआ चढ़ि आवइ हो॥
ना मोरे नाव न नवरिया नाहीं घर केवट हो।
जेकरे जनेऊ के साध पँवरि दह आवइ हो॥

गंगा किनारे बरुआ फिरैं केऊ पार उतारहु हो।
पठई दो पिताजी नवरिया बरुआ चढ़ि आवइ हो ॥
ना मेरे नाव न नवरिया नाहीं घर केवट हो।
जेकरे जनेउआ के साध पँवरि दह आवइ हो॥
गंगा किनारे बरुआ फिरैं केऊ पार उतारहु हो।
पठई दे भइया राम नवरिया बरुआ चढ़ि आवइ हो ॥
ना मोरे नाव न नवरिया नाहीं घर केवट हो।
जेकरे जनेउआ के साध पँवरि दह आवइ हो॥

गंगा के किनारे ब्रह्मचारी फिर रहा है कि मुझे पार उतार दो। हे पितामह ! नाव भेज दो तो ब्रह्मचारी उस पर चढ़कर इस पार आ जाय।

पितामह ने कहा—न मेरे नाव है, न केवट। जिसको जनेऊ की लालसा हो, वह दह तैरकर इधर आ जाय।

इसी प्रकार ब्रह्मचारी अपने पिता और भाई से भी प्रार्थना करता है और वही उत्तर पाता है जो पितामह ने दिया था।

पूर्वकाल में यज्ञोपवीत होने से पहले ब्रह्मचारी को तैरना जानना आवश्यक समझा जाता था। देश में नदी-नालों की अधिकता और पुलों की कमी से तैरना जानना शिक्षा का एक अंग माना जाता था।

(१२)

चनन कै बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि...देई आजी दैवा मनावईं।
दैवा आज बदरिया न होयउ आजु मोरे नतिया कै जनेउ ॥१॥
चनन कै बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि दीदी.....देई दैवा मनावईं।
दैवा आजु बदरिया न होयउ आजु मोरे पुतवा कै जनेउ ॥२॥

चनन क बिरछा हरेर तौ देखतैं सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि काकी.....देई दैवा मनावइ।
दैवा आजु बदरिया न होयउ आजु मोरे पुतवा कै जनेउ ॥३॥
चनन कै बिरछा हरेर तौ देखतैं सुहावइँ।
त्यहिं तर ठाढ़ि बहिनि.....देई दैवा मनावँइ।
दैवा आजु बदरिया न होयउ आजु मोरे भैया कै जनेउ ॥४॥

चन्दन का हरा वृक्ष है, जो देखने में बड़ा सुन्दर लग रहा है। उसकी छाया में.....देवी पितामही खड़ी होकर ईश्वर से विनय कर रही हैं—हे भगवान्! आज बदली न हो। आज मेरे पौत्र का जनेऊ है ॥१॥

यही पद दीदी, काकी और बहन के नाम से भी गाया जाता है। सबका अर्थ वही है, जो ऊपर दिया गया है।

(१३)

मलिया मौर नाहीं गाँछै बेइलिया के फूल बिना।
मोरे लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तो अपने आजा बिना ॥
मलिया मौर अब गाँछै बेइलिया के फूल पाये।
मोरे लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ आजा अब आये ॥
मलिया मौर नहिं गाँछै बेइलिया के फूल बिना।
मोरे लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तौ अपने दादा बिना ॥
मलिया मौर अब गाँछै बेइलिया के फूल पाये।
मोरे लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ दादा अब आये ॥
मलिया मौर नाहीं गाँछै बेइलिया के फूल बिना।
मोरे लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तौ अपने काका बिना ॥
मलिया मौर अब गाँछै बेइलिया के फूल पाये।
मोर लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ काका अब आये ॥

मलिया मौर नाहीं गाँछै वेइलिया के फूल बिना।
मोर लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तौ अपने फूफा बिना ॥
मलिया मौर अब गाँछै वेइलिया के फूल पाये।
मोर लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ फूफा अब आये ॥

माली लता के फूल बिना मौर नहीं बना रहा है। मेरा प्यारा लड़का भी पितामह की उपस्थिति बिना जनेऊ नहीं पहन रहा है।

इसी प्रकार दादा, काका और फूफा के नाम से अगले पद गाये जाते हैं। यज्ञोपवीत के अवसर पर इन सब का उपस्थित रहना आवश्यक होता है।

(१४)

ऊँच ओसरवा कवन रामा आले बाँस छाई।
खंभिया ओठँघली दुलहिन सुनो पिया पण्डित।
बरहा बरिसवा कै लाल भये ब्राभन कै देतेउ ॥
चाही तो ये धन चाही दस धोती अँगोछा।
चाही तौ ये धन चाही दस ब्राभन भोजन।
चाही तो ये धन चाही अमृत फल नरियल ॥
ऊँच ओसरवा कवन रामा आले बाँस छाई।
खँभिया औठँघली दीदी कवनि देई सुनो पिया पंडित।
वरहा बरिसवा के लाल भये ब्राभन कै देतेउ ॥
चाही तौ ये धन चाही दस धोती अंगोछा।
चाही तौ ये धन चाही दस ब्राभन भोजन।
चाही तौ ये धन चाही अमृत फल नरियल ॥
ऊँच बखरिया काका राम...आले बाँस छाई।
खँभिया ओठँघली चाची कवनि देई सुनौ पिया पण्डित।
बरहा बरिसवा के लाल भये ब्राभन कै देतेउ ॥
चाही तौ ये धन चाही दस धोती अँगौछा।

चाही तो ये धन चाही दस ब्राभन भोजन।
चाही तो ये धन चाही अमृत फल नरियल॥

अमुक व्यक्ति का ऊँचा ओसारा है, जो हरे बाँसों से छाया हुआ है। उसकी स्त्री खंभे की आड़ में खड़ी होकर कहती है—हे प्रियतम! प्यारा लड़का बारह वर्ष का हो गया, उसे ब्राह्मण बना दो।

पति ने कहा—हे प्यारी स्त्री! दस धोती और दस अँगोछा चाहिये। कम से कम दस ब्राह्मणों को भोजन कराने की सामग्री चाहिये। अमृत जैसा मीठा नारियल का फल चाहिये।

इसी प्रकार दीदी और चाची ने भी अपने-अपने पतियों से कहा और सब को उपर्युक्त उत्तर मिला।

यज्ञोपवीत संस्कार में साधारणतः किन-किन चीज़ों की जरूरत पड़ती है, यही इस गीत में बताया है।

(१५)

यक तो मोतिया ढुरहुर देखतै सुहावन।
बैसहि ढुरहुर बरुवा तो माँगै बरुवा नौ गुन॥
आजी मोरि मारैं गरियावैं दादुल झिझकोरैं।
आजा कवने राम परमोधैं देवै नाती नौ गुन॥
एक तौ मोतिया ढुरहुर देखतै सुहावन।
बैसहि ढुरहुर बरुआ...राम तौ माँगै नौ गुन॥
मैया मोरि मारैं गरियावैं दादुल झिझकोरैं।
दाता कवन राम परमोधैं देवै बेटा नौ गुन॥

नोट—इसमें कवन की जगह आजा, दादा, फूफा, चाचा, मामा इत्यादि का नाम जोड़ा जाता है।

जैसे मोती गोल और देखने में सुन्दर होता है, वैसा ही ब्रह्मचारी है। वह नौगुणों से युक्त यज्ञोपवीत माँग रहा है।

पितामही मारती है। दादा झकझोरते हैं। पर पितामह ढाढ़स देते हैं कि हे पौत्र ! मैं तुमको नौगुण दूँगा।

यही अर्थ आगे के पदों का भी है। अन्तर इतना ही है कि उनमें पितामह के स्थान पर क्रम से दादा, फूफा, चाचा, मामा इत्यादि के नाम जोड़े लिये जाते हैं।

यज्ञोपवीत पहनकर व्रती बनने की रुचि बालकों में बचपन ही से होती थी। इस गीत में ब्रह्मचारी ने यज्ञोपवीत माँगा। पितामही और दादा ने उसे रोका; क्योंकि वे उसे बहुत प्यार करते थे और अभी किसी व्रतमें बँधने देना नहीं चाहते थे। पर प्रपितामह, जो संस्कारों की मर्यादा के रक्षक थे, उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि उसे यज्ञोपवीत दिया जायगा। इस गीत में कुटुम्बियों की मनोदशा का चित्र है।

(१६)

गलिया कै गलिया पंडित घूमैं हथवा पोथिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ १ ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं वरुवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै, दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ २ ॥
गलिया कै गलिया नाऊ घूमैं हथवा किसवतिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ३ ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरूवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै, दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ४ ॥
गलिया के गलिया बढ़ैया घूमै हथवा पटुलिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ५ ॥

बाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरूवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ६ ॥
गलिया के गलिया कुम्हरवा घूमैं हथवा बरौवौ लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ७ ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं बरूवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ै रे।
आँगन ढोल धमाकै दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ८ ॥
गलिया के गलिया फूफा घूमैं हथवा जिनेउवा लिहे।
कवनि बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ९ ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरूवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥१०॥

पंडित हाथ में पुस्तक लिये गली-गली में घूम रहे हैं और पूछ रहे हैं—राजा दशरथ की बखरी (घर) कौन-सी है? जहाँ राम का जनेऊ होने वाला है ॥१॥

जहाँ बाँस पर धोतियाँ सूखती होंगी, ब्रह्मचारी भोजन कर रहे होंगे, पंडित वेदोच्चार कर रहे होंगे, आँगन में ढोल बज रही होगी, मानों बादल गरज रहा है, वही राजा दशरथ की बखरी है, जहाँ राम का जनेऊ है ॥२॥

इसी प्रकार हाथ में किस्बत (उस्तरा आदि रखने का थैला) लिये हुये नाई, पटुली (काठ की तख्ती, जिस पर लड़के लिखना सीखते हैं)

लिये हुये बढ़ई, कुल्हड़ लिये हुये कुम्हार और जनेऊ लिये हुये फूफा राजा दशरथ का घर पूछते हैं और वही उत्तर पाते हैं।

(१७)

ऐ कनउजवा के ब्राह्मन हमरेहूँ आएहु।
पोथिया पतरवा लैके आएहु हमरे बरत-बन्ध ॥ १ ॥
कैसे क तोहरे आइब घरवा नहिं चीन्हौं,
नाम न जानौं ॥ २ ॥
आँगन मोरे माँड़व ओसरवाँ मोरे कोहबर।
हरदी क घेवरल कवन लाल कवन लाल द्वारे आएहु ॥ ३ ॥
ऐ जवने बन सिंकिया न डोलै भँवरा न गुञ्जरइ।
ऐ तवने बन पंठत कवन राम परास डण्डा तोरैं ॥ ४ ॥
ऐ काहे की टँगिया तुहुँ कटबेउ केथुआ सिहुरबेउ।
ऐ केकरे मण्डप ओठँघउबेउ केकर बरत-बन्ध ॥ ५ ॥
ऐ सोनवाँ की टँगिया हम कटबई रुपवा सिहुरबई।
राजा दसरथ मण्डप ओठँघउबइ राजा रामचन्द्र क,
बरत-बन्ध ॥ ६ ॥
(फतहगढ़)

हे कन्नौज के ब्राह्मण! हमारे यहाँ भी आना। पोथी-पत्रा लेकर आना। हमारे यहाँ व्रतबन्ध-संस्कार है ॥१॥

मैं तुम्हारे यहां कैसे आऊँगा? मैं तो घर पहचानता ही नहीं, और नाम भी नहीं जानता ॥२॥

मेरे आँगन में माँड़ौ छाया है। ओसारे में कोहबर है। हल्दी लपेटे हुए अमुक लाल (बालक का नाम) खड़े होंगे। अमुक लाल (पिता का नाम) के द्वार पर आना ॥३॥

जिस बन में सींक नहीं डोलती, भौंरा भी गुञ्जार नहीं करता। उस

सघन बन में अमुक राम (पिता का नाम) पैठकर ढाक का डंडा तोड़ रहे हैं ॥४॥

किस चीज की बनी हुई कुल्हाड़ी से डंडे को काटोगे ? किससे छीलोगे ? किसके मंडप में सीधा खड़ा करोगे ? और किसका व्रत-बन्ध है ॥५॥

सोने की कुल्हाडी से काटूंगा। रूपे की कुल्हाड़ी से छीलूंगा। राजा दशरथ के मंडप में उसे खड़ा करूँगा। राजा रामचन्द्र का व्रतबन्ध है ॥६॥

(१८)

चतहिं बरुआ तेज चले, बइसाख में पहुँचेन हो ॥ १ ॥
मैं तोहँसे पूँछहुँ ए बरुआ, तुहुँ जावेउ कवने घर हो ॥ २ ॥
जावेउँ जावेउँ मैं बोही घराँ, जहाँ दाता बसैं सब लोग ॥ ३ ॥
जो मैं जनतेउँ ए बरुआ, हमरे घर अउबेउ हो ।
बलुहर खेत जोतउतेउँ, घन मोतिया बोअउतेउँ हो ॥ ४ ॥
मोतियन थार भरउतेउँ, भिखिया उठि देतेउँ हो ॥ ५ ॥
(जौनपुर)

बरुआ (ब्रह्मचारी) चैत में चलकर बैसाख में पहुंचे ॥१॥

हे बरुआ ! मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम किस घर को जाओगे ? ॥२॥

मैं उस घर को जाऊँगा, जहाँ के सब लोग दाता हों ॥३॥

हे बरुआ ! यदि मैं जानता कि तुम मेरे घर आओगे तो मैं बलुआ खेत जोतवाकर उसमें घनी मोती बोवा देता और मोतियों से थाल भरकर तुमको उठकर भीख देता ॥४॥

प्राचीनकाल में ब्रह्मचारियों को भिक्षा देना एक गृह-धर्म समझा जाता था। गृहस्थों में ब्रह्मचारियों को भिक्षा देने की कैसी उत्सुकता रहती थी, इस गीत में उसका आभास मिलता है।

(१९)

सभवाँ बइठल तोहे बाबा अमुक बाबा
करि घालू हमर जनेव।

बिना रे जनेउआ बाबा न सोभे कान्हा
नहिं रउरी जतिया के जोग ।। १ ।।
जाँघ नहि जोड़ थ भइया रे अमुक भइया,
जिन भइया दाहिन बाँह ।
खाली जनेउआ बरूआ न सोभे कान्हा,
न होयब जतिया के जोग ।। २ ।।
नित उठि अरे बाबू गंगा नहायब,
सुरूज अरघ हम देब हे ।
साँझ सबेरे बाबू गायत्री सुमिरब
तब होयब जतिया के जोग हे ।
जाँघ भला जोड़िहैं भइया अमुक भइया,
जिन भइया दाहिन बाँह ।। ३ ।।
(बलिया)

सभा में बैठे हुए हे बाबा (बाप का नाम) ! मेरा जनेऊ कर डालो । हे बाबा ! जनेऊ बिना कन्धा सुन्दर नहीं लगता और न मैं आप की जाति-पाँति में बैठ सकता हूँ ।।१।।

मेरे भाई (भाई का नाम), जो मेरी दाहिनी भुजा हैं, (भोजन के समय) जाँघ नहीं जोड़ते। जनेऊ बिना ब्रह्मचारी सुन्दर नहीं लगता, और न स्वजाति में बैठने योग्य होता है ।।२।।

हे बाबू ! नित्य उठकर गंगा नहाऊँगा; रोज सूर्य को अर्घ्य दूँगा और प्रातःकाल और संध्या को गायत्री का जप करूँगा, तब जाति के योग्य होऊँगा। तब भाई (नाम लेकर) जाँघ जोड़ेंगे, जो मेरी दाहिनी भुजा हैं ।।३।।

इस गीत में जनेऊ के लिये बालक की स्वाभाविक उत्सुकता प्रकट की गई है ।

(२०)

नव दुअरिया नव खंभा गड़ावे रे।
ताही नीचे सुतहि कवन बाबा सुख नींन री ॥ १ ॥
आहो पैठि जगावइँ कवन देई, सुनु पिया पंडित रे ॥ २॥
बरहा बरिस के ललनवा, बरुवा देइ घालहु रे ॥ ३ ॥
अरे धना सुलछनी बरुवा कुछु चाहेल रे।
अछत, चनन, मोतिया, गंठि बन्हन रे ॥ ४ ॥
लाख टका, लाख धोती, मोतिया गँठि बन्हन रे ॥ ५ ॥

पुत्र बारह वर्ष का हो गया है। माता अपने पति को जगाकर कह रही है कि जनेऊ कर दो। पति कह रहा है कि हे सुलक्षणा देवी। जनेऊ करने के लिये अच्छत, चंदन, मोती, लाख रुपये और लाख धोतियाँ गठ-बंधन के लिये चाहिये।

नहछू

नहछू विवाह के पहले और कहीं-कहीं पीछे भी होता है। यहाँ एक गीत दिया जाता है, जिसमें इसका कुछ वर्णन विस्तार के साथ आगया है—

(१)

घर घर घुमहि नउनिया तौ गोतिनी बुलावै।
राम लछन कै नहछु सभै कोई आयो ॥ १ ॥
पाँच पाट कै जाजिम झारि बिछाओ।
जेकरे जहाँ मनु होय तहाँ ते बैठौ ॥ २ ॥
केई दीना चुटकी मुँदरिया केई दीना रूप।
केई दीना रतन जड़ाऊ त भरिगा ह सूप ॥ ३ ॥
केकई ने चुटकी मुँदरिया कौसिल्ला रानी रूप।
सुमित्रा रानी रतन जड़ाऊ तौ भरिगा है सूप ॥ ४ ॥
पातर पातर अँगुली तौ नाउनि गोरी।
करत राम जीव कै नहछु तौ घूँघुट खोली ॥ ५ ॥
नौआ जे झगरै नउनिया से यह सब थोर।
राम लछन जी कै नहछु लेबौं मैं, घोड़ ॥ ६ ॥
जनि झगरौ नौआ रे जनि झगरौ यह सब थोर।
राम ब्याहि घर लौटैं तौ देब्यों मैं घोड़ ॥ ७ ॥
(एटा)

नाइन घर-घर घूम रही है, गोतिनों को बुला रही है, आज राम और लक्ष्मण का नहछू है, सब कोई आना ॥१॥

पाँच परत (तह) का जाजिम झाड़ कर बिछा दो। जिसका जहाँ मन हो, वह वहां बैठे ॥२॥

किसी ने अँगूठी दी, किसी ने रूपा (चाँदी) दिया, किसी ने जड़े हुये रत्न दिये और इस प्रकार सूप भर गया ॥३॥

कैकेई ने अगूँठी दी। कौशिल्या ने रूपा दिया। सुमित्रा रानी ने जड़े हुये रत्न दिये और इस प्रकार सूप भर गया ॥४॥

नाइन की उँगली पतली-पतली है और वह गौर वर्ण की है। घूंघट खोलकर वह रामचन्द्र का नहछू कर रही है ॥५॥

नाई, नाइन से झगड़ा कर रहा है कि यह सब थोड़ा है। राम-लक्ष्मण का नहछू है, मैं घोड़ा लूंगा ॥६॥

ऐ नाई! झगड़ा मत करो कि यह सब थोड़ा है। राम जब ब्याह करके वापस आयेंगे तो मैं घोड़ा दूंगी ॥७॥

इस गीत में दिखाया गया है कि जनेऊ के समय नहछू में प्रजा-गण अधिक से अधिक इनाम पाने के लिये झगड़ते हैं। उनके इस झगड़ने में भी आनन्द आता है। उन्हें निराश न कर भविष्य में फिर किसी उत्सव पर देने को कहकर राजी कर लिया जाता है।

विवाह के गीत

हिन्दुओं में विवाह एक धार्मिक प्रथा है। यह केवल वासना की तृप्ति के लिये नहीं किया जाता; बल्कि मनुष्य-धर्म का उचित रीति से पालन करना ही इसका एकमात्र उद्देश्य है। हिन्दुओं में विवाह-कर्म इतना पवित्र माना गया है कि एक बार केवल पाणि-ग्रहण कर लेने ही से स्त्री-पुरुष दोनों जीवन भर धर्म के बंधन में बँध जाते हैं। हिन्दुओं के इतिहास में कितने ही उदाहरण ऐसे हैं, जिनमें स्त्री ने पति को मन में वरण कर लिया था और उसने उसे पाणि-ग्रहण से अधिक महत्त्व दिया था। जैसा सावित्री, रुक्मिणी और संयोगिता ने किया था। वैवाहिक पवित्रता की रक्षा के ऐसे उदाहरण संसार में दुर्लभ हैं।

मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख है। जैसे—

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान्।
अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत ॥ १ ॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २ ॥
आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ ३ ॥
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ ४ ॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ ५ ॥

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्या प्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ६ ॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ ७ ॥
इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥ ८ ॥
हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ९ ॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥१०॥

अर्थात्—लोक और परलोक में चारों वर्णों के हित और अहित के साधक-रूप जो आठ प्रकार के विवाह हैं। उन्हें संक्षेप से कहता हूँ ॥१॥

१—ब्राह्म, २—दैव, ३—आर्ष, ४—प्राजापत्य, ५—आसुर, ६—गान्धर्व, ७—राक्षस, ८—पैशाच। पैशाच सब में अधम है ॥२॥

अच्छे शीलवान्, गुणवान् वर को स्वयं बुलाकर उसे भूषण-वस्त्र से अलंकृत और पूजित करके कन्या देना ब्राह्म-विवाह है ॥३॥

यज्ञ में सम्यक् प्रकार से कर्म करते हुये ऋत्विज को अलंकारादि से पूजित कर कन्या देने को दैव-विवाह कहा है ॥४॥

वर से एक या दो जोड़े गाय, बैल धर्मार्थ लेकर विधि-पूर्वक कन्या देने का नाम आर्ष-विवाह है ॥५॥

"तुम दोनों साथ मिलकर गृह-धर्म का पालन करो" वर से यह कह कर और पूजन करके जो कन्या-दान किया जाता है, वह प्राजापत्य-विवाह कहलाता है ॥६॥

कन्या के बाप या चाचा आदि को और कन्या को भी यथाशक्ति धन देकर स्वच्छन्दता-पूर्वक कन्या का ग्रहण करना आसुर-विवाह कहलाता है ॥७॥

कन्या और वर की इच्छा से उनका संयोग होना गान्धर्व-विवाह है। यह काम-भोग की इच्छा से होता है और मैथुन के लिये है ॥८॥

मारकर, घायलकर, गृह आदि को तोड़कर, रोती-विलपती कन्या को जबरदस्ती हरण कर ले जाने का नाम राक्षस-विवाह है ॥९॥

नींद में सोई हुई या मदमाती, या पागल कन्या के साथ एकान्त में उपभोग करना अत्यन्त पाप-पूर्ण पैशाच-विवाह कहलाता है ॥१०॥

इनमें पहले के चार तो श्रेष्ठ और अन्त के चार निकृष्ट हैं। हिन्दुओं के इतिहास में निकृष्ट विवाहों के भी उदाहरण मिलते हैं। जैसे—

कन्या-विक्रय के रूप में आसुर-विवाह तो आज-कल बहुत होने लगा है।

शकुन्तला और दुष्यंत का गन्धर्व-विवाह लोक-प्रसिद्ध है।

भीष्म ने काशिराज की कन्या का हरण लड़-झगड़ कर ही किया था। आल्हा-ऊदल के जमाने में इस प्रकार के राक्षस-विवाह तो क्षत्रियों में खूब होने लगे थे।

पुराणों में पैशाच-विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं।

आजकल जो विवाह प्रचलित है, उसे ब्राह्म और दैव का मिश्रण ही कहना चाहिये। परन्तु उसमें भी बाहरी आडंबर इतना मिल गया है कि उसकी सच्ची व्याख्या करनी कठिन है।

विवाह में सप्तपदी, जिसे भाँवर घूमना या फेरे लेना भी कहते हैं, मुख्य है। सप्तपदी का अर्थ बड़ा ही महत्वपूर्ण है। यहाँ सप्तपदी के वाक्य उद्धृत किये जाते हैं—

१—इष एक पदी भव। सा मामनुव्रता भव।

वर कहता है—हे वधू! इच्छाशक्ति प्राप्त करने के लिये एक पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या कहती है—मैं तुम्हारे प्रत्येक सत्य संकल्प में सहायता करूँगी।

२—ऊर्जे द्विपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

तेज प्राप्त करने के लिये दूसरा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

३—रायस्पोषाय त्रिपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

कल्याण की वृद्धि के लिये तीसरा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

४—मायोभव्याय चतुष्पदी भव। सा मामनुव्रता भव।

आनन्दमय होने के लिये चौथा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

५—प्रजाभ्यः पंचपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

प्रजा के लिये पाँचवाँ पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

६—ऋतुभ्यः षट्पदी भव। सा मामनुव्रता भव।

नियम-पालन के लिये छठाँ पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

७—सखा सप्तपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

हम दोनों में परस्पर मैत्री रहे, इसके लिये सातवाँ पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या वर के प्रत्येक आदेश के उत्तर में उसके सभी सत् संकल्पों में सहायता देने की प्रतिज्ञा करती है।

यही सात पदों की प्रतिज्ञा है जो हिन्दू स्त्री-पुरुष को जीवन भर के लिये धर्म में बाँध देती है। विवाह के इतने सुन्दर नियम संसार की शायद ही किसी अन्य जाति में प्रचलित हों।

आजकल के विवाहों में बहुत से नये रस्म-रिवाजों का मिश्रण हो गया है। जैसे, वर का जामा पहनना—यह मुसलमानों की नकल है। जामा शब्द ही विदेशी है। तरह-तरह के बाजे बजना—पूर्व काल में

वीणा आदि सुमधुर बाजे ही बजते थे। मुसलमानी काल में ताशा और दफला आया। अँगरेजी राज में अब बैंड भी विवाह का एक अंग हो गया है। इस तरह हिन्दू-विवाह की विशुद्धता जाती रही।

विवाह के गीतों में एक प्रथा का और भी वर्णन मिलता है, जो आजकल योरप में प्रचलित है। वह है, वर का कन्या के कुटुम्बियों से विवाह का प्रस्ताव करना। हमारे पास कुछ गीत ऐसे हैं, जिनमें वर कन्या के आँगन में जाकर बैठा है और आने का कारण पूछे जाने पर उसने कहा है कि इस घर में एक कुमारी कन्या है, मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ। इस प्रकार का एक गीत आगे दिया भी गया है। आजकल की प्रथा तो यह है कि कन्या का पिता वर की खोज करता है और योग्य वर मिलने पर वह कन्यादान करता है। वर के लिये कन्या के पिता की परेशानी का जैसा चित्र गीतों में खींचा गया है, वैसा शायद ही कोई महाकवि खींचने में समर्थ हो।

विवाह के गीतों में दो प्रकार के गीत हैं। एक तो कन्या के घर में गाये जानेवाले, दूसरे वर के घर में गाये जानेवाले। कन्या-पक्ष के गीत वर-पक्ष के गीतों से अधिक करुण और मधुर हैं। खासकर बेटी की विदा के गीत तो पत्थर को भी पिघला देने वाले हैं। वर-पक्ष के गीत ज्यादातर शोभा-सजावट और धूमधाम के होते हैं।

विवाह के गीतों में सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण बात यह है कि उनमें ऐसे वर-कन्या के मनोभाव वर्णित हैं, जो अल्पवयस्क नहीं होते; बल्कि युवक और युवती होते हैं। कहीं-कहीं तो वर स्वयं कन्या खोजता फिरता है, और कहीं-कहीं कन्या स्वयं वर के लिये लालायित होती है। कहीं-कहीं कन्या स्वयं यह कहती हुई मिलती है कि 'हे पिता! मेरे लिये ऐसा वर खोजना।' अल्पवयस्का कन्या ऐसा नहीं कह सकती। इससे प्रकट होता है कि ये गीत हिन्दू-समाज में बाल-विवाह प्रचलित होने से पहले के हैं। समाज बदल गया, पर गीत ज्यों के त्यों रहे। गीत स्त्री-धन है; इससे पुरुषों ने उसमें हाथ नहीं लगाया।

विवाह के गीतों में भाई-बहन के अकृत्रिम प्रेम-सम्बन्धी गीत भी बड़े मनोहर हैं। बहन अपने बेटे या बेटी के विवाह में अपने भाई और भौजाई को निमंत्रित करती है। भाई न्योता लेकर आता है। इससे बहन का हृदय उमड़ आता है। इस प्रसंग के हृद्गत भावों का वर्णन गीतों में बड़ी ही सरसता से किया गया है।

विवाह के गीतों में खाने-पीने की चीजों की एक लम्बी सूची भी रहती है। विवाह के अवसर पर चाहे सभी चीजें न बनती हों, पर वर के जीमते समय व्यंजनों के नाम तो गिना ही दिये जाते हैं।

यहाँ विवाह के कुछ गीत दिये जाते हैं—

(१)

कौन की ऊँची अँटरिया सुरुज मुख छाई।
किन घर कन्या कुँवारी त दुलहो चाहिए॥ १॥
अजुल की उँची अँटरिया सुरुज मुख छाई।
बबुल घर कन्या कुँवारी त दुलहो चाहिए॥ २॥
कौन को पूत तपसिया अँगन मेरे तप करै।
सजना को पूत तपसिया अँगन मेरे तपु करे॥ ३॥
भीतर से निकसीं अजिया थार भर मोती लिहे।
भीतर से निकसीं मैया थार भर मोती लिहें॥ ४॥
भीतर से निकसीं भौजिया थार भर मोती लिहे।
लेहु न पूत तपसिया अँगन मेरो छाँडौ॥ ५॥
कहा करौं थार भर मोतिया अँगन नहिं छाँड़उँ।
तुम घर कन्या कुँवारी तु हमका ब्याही देव॥ ६॥
बाहर ते आये बिरन भइया हाथे खड़ग लिहें।
मारौं मैं पूत तपसिया बहिन मोरी माँगइ॥ ७॥
भीतर से निकसीं लाड़ली मोतियन माँग भरे।
जिन मारौ पूत तपसिया जनम मेरो को खेइहैं॥ ८॥

यह ऊँची अटारी किसकी है ? जिसका द्वार पूर्व ओर है। किसके घर में क्वारी कन्या है ? जिसे दूल्हा चाहिये ॥१॥

यह ऊँची अटारी आजा (पितामह) की है, जो पूर्वाभिमुख छाई है। बाबा के घर में क्वारी कन्या है, जिसे वर चाहिये ॥२॥

यह किसका तपस्वी पुत्र है ? जो मेरे आँगन में तप कर रहा है। यह पुत्र सजन (समधी) का है, जो आँगन में तप कर रहा है ॥३॥

पितामही थाल भरकर मोती लिये भीतर से निकलीं। माता थाल भरकर मोती लिये भीतर से निकलीं। भावज थाल भरकर मोती लिये भीतर से निकलीं। सबने कहा—हे तपस्वी पुत्र ! यह मोती लो और मेरा आँगन छोड़ दो ॥४, ५॥

मैं थाल भरकर मोती क्या करूँ ? मैं आँगन नहीं छोड़ूँगा। तुम्हारे घर में क्वारी कन्या है, वह मुझे ब्याह दो ॥६॥

बाहर से भाई हाथ में तलवार लेकर आया। उसने कहा—मैं इस तपस्वी साले को मार डालूँगा, जो मेरी बहन माँग रहा है ॥७॥

भीतर से लाड़ में पली हुई कन्या निकली, जिसकी माँग मोतियों से भरी थी। उसने कहा—हे भाई ! इस तपस्वी को मत मारो। इसे मार डालोगे तो मेरे जीवन की नैया खेकर पार कौन लगायेगा ? ॥८॥

यह गीत उस समय का स्मरण दिला रहा है, जब वर और कन्या दोनों विवाह के लिये स्वतन्त्र थे। संसार-यात्रा सुख-पूर्वक और निर्विघ्न समाप्त करने के लिये दोनों अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल साथी चुनते थे। इस गीत में वर स्वयं कन्या की खोज में निकला है और एक ऐसे घर के आँगन में आ बैठा है, जिसमें एक क्वारी कन्या रहती है। जान पड़ता है, कन्या की स्वीकृति वह पहले ले चुका था; जैसा कि कन्या ने उस समय, जब कन्या का भाई वर को मारने चला है, आगे बढ़कर कहा है कि तुम इसको मारोगे तो मेरा जीवन खेकर कौन पार लगायेगा ? अब कन्या के माता-पिता की स्वीकृति अंतिम थी, जिसके लिये वर आया है। यह प्रथा भारत देश में नहीं है, योरप में है। वहाँ कन्या की स्वीकृति

लेकर वर उसके माता-पिता से विवाह का प्रस्ताव करता है। जब वे स्वीकार कर लेते हैं, तब विवाह होता है।

गीत में जिस प्रथा का चित्र है, वह हिन्दू-सभ्यता में एक नई वस्तु है। क्योंकि हिन्दुओं के इतिहास और काव्यों में जैसा वर्णन मिलता है, उसके अनुसार कन्या ही पहले वर पर आसक्त होती है। जैसे सावित्री सत्यवान पर, सीता राम पर, रुक्मिणी श्रीकृष्ण पर और संयोगिता पृथ्वी-राज पर पहले आसक्त हुई थीं। यही यहाँ का आदर्श है, और संस्कृत के कवि सदा इसी आदर्श को महत्त्व देते रहे हैं। गीत में इसके विपरीत जिस प्रथा का वर्णन है, वह प्रथा भी कभी हिन्दुओं में रही होगी, जो अब बिलकुल उठ गई है।

उस प्रथा का वर्णन इस गीत की प्राचीनता का सबसे प्रबल प्रमाण है।

इस गीत से यह भी स्पष्ट होता है कि विवाह कम से कम उस उम्र में होता था, जब कन्या यह कह सकती थी कि "जनम मेरो को खेइहैं" मेरा जन्म कौन खेयेगा? जिस अवस्था में कन्या के हृदय में अपने भावी जीवन की चिंता उत्पन्न हो जाती है और वह अनुभव करने लगती है कि मुझे एक ऐसे योग्य साथी की आवश्यकता है जिसके साथ मैं अपना जीवन सुख-पूर्वक बिता सकूँ, उस अवस्था में यह विवाह हुआ था, जिसका वर्णन इस गीत में है।

हमें इस गीत से और भी कई बातों का पता चलता है। जैसे, घर का द्वार पूर्व ओर होना चाहिये। देहात के लोग प्रायः पूर्व ओर द्वार रखना बहुत पसन्द करते हैं और शुभ समझते हैं। दूसरे, तलवार का उपयोग, आज जिस तरह लाठी घर-घर में है, उसी तरह पूर्वकाल में प्रत्येक पुरुष के पास तलवार होती थी।

भाई तलवार लेकर मारने क्यों दौड़ा? क्योंकि वह अभी नादान था। बहन के मनोभाव को समझ नहीं सकता था। वह तो केवल इस लिये दुखी था कि उसकी बहन को कोई उससे छीन ले जायगा। प्रकृति

कन्या को उसके भाई की पहुँच से बहुत दूर निकाल लाई है। अबोध भाई का यह क्रोध कितना करुणाजनक है!

(२)

सावन सुगना मैं गुर घिउ पालेउँ चैत चना कै दालि।
अब सुगना तू भयउ सजुगवा बेटी क बर हेरइ जाव ॥ १ ॥
उड़त उड़त तू जायो रे सुगना बैठेउ डरिया ओनाय।
डरिया ओनाय बैठा पखना फुलायउ चितया नजरिया घुमाय।२।
जे बर सुगना तु देखेउ सुन्दर जेकरि चाल गम्हीर।
जेहि घरा सुगना तु सम्पति देखेउ वहि घर रचेउ बिआह ॥३।
हेरेउँ बर मैं सजुग सुलच्छन भहर भहर मुँह जोति।
साठि बरद मैं चन्नि में देखेउं बोही घर रचहु बिआह ॥ ४ ॥

हे सुआ! तुमको मैंने सावन में गुड़-घी और चैत में चने की दाल खिला कर पाला। अब तुम समझदार हुये। जाओ, बेटी के लिये वर ढूंढ़ आओ ॥१॥

हे सुआ! तुम उड़ते-उड़ते जाना और पेड़ की डाल झुकाकर बैठना। डाल झुकाकर बैठना, पंख फुलाना और इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर देखना।

हे सुआ! जिस वर को तुम सुन्दर देखना, जिसकी चाल में गंभीरता-देखना और जिस घर में धन देखना, वहीं विवाह ठीक करना ॥३॥

सुआ कहता है—मैंने अच्छे लक्षणोंवाला और चैतन्य वर ढूंढ़ लिया है। जिसके मुँह पर ब्रह्मचर्य की आभा दमक रही है। उसके घर में साठ बैल मैंने चन्नि या चरनी (बैल जहा पर बाँधकर खिलाये जाते है) में देखे। उस घर में विवाह करो ॥४॥

इस गीत से कई बातों का पता चलता है। पहले तो यह कि देहात के लोग किस ऋतु में तोते को क्या-क्या खिलाते हैं। दूसरे, विवाह-योग्य वर और घर की व्याख्या। इस व्याख्या में वर की गंभीर चाल और

उसके मुँह की ज्योति विशेष ध्यान देने योग्य है। गंभीर चाल से वर के विचारवान् होने का और मुँह की ज्योति से उसकी युवावस्था का और विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पता चलता है। वर में ये दो विशेषतायें काफी हैं। और घर में ३० हल चलते हैं; इससे जान पड़ता है कि वह अच्छा किसान है।

(३)

बाबा जे चलेन मोर बर हेरेन पाट पितम्बर डारि।
छोट देखि बाबा करबैं न करिहैं बड़ा नाहीं नजरि समाय ॥ १ ॥
अरे अरे बाबा सुघर बर हेरेउ हम बेटी तोहरी दुलारि।
तीनि लोक माँ हम बड़ि सुन्दरि हँसी न करायउ मोरि ॥२ ॥
उसरा माँ गोड़ि गोड़ि ककरी बोवायउँ ना जानौं तीत कि मीठि।
देसवा निकरि बेटी तोर बर हेरौं ना जानौं करम तोहार ॥ ३ ॥
पूरब हेरेउँ पछुवाँ में हेरेउँ हेरेउँ में दिल्ली गुजरात।
तुमहीं जोग बर कतहुँ न पावा अब बेटी रहहुँ कुँवारि ॥ ४ ॥
पूरब हेरेउ पछुवाँ में हेरेउ हेरेउ दिल्ली गुजरात।
चारि परग भुइयाँ नगर अयोधिया दुइ बर अहैं कुँवार ॥५॥
बै बर माँगैं बेटी घोड़ा औ हाथी माँगैं मोहर पचास।
बै बर माँगैं बेटी नौलख दायज मोरे बूते देइ न जाइ ॥ ६ ॥
जेकरे न होय बाबा हाथी औ घोड़ा नहिं होय मोहर पचास।
जेकरे न होय बाबा नौ लख रूपैया ते बर हेरै हरवाह ॥ ७ ॥
हर जोति आवै कुदार गोड़ि आवै बइठइ मुँह लटकाय।
उनही क तिलक चढ़ाया मोरे बाबा बै बर दयजा न लेयँ ॥ ८ ॥
आसन देखि बाबा डासन दीहौ मुख देखि दीहौ बीरा पान।
अपनी सँपति देखि दाइज दीहौ बर देखि दिहौ कन्या दान ॥ ९ ॥

रेशमी पीताम्बर ओढ़कर बाबा मेरे लिये वर खोजने चले हैं। छोटे वर से तो वे मेरा विवाह करेंगे ही नहीं। बड़ा उनकी आँखों में समायगा ही नहीं ॥१॥

हे बाबा! सुघर वर ढूँढना। मैं तुम्हारी दुलारी बेटी हूँ। मैं तीनों लोकों में सबमें अधिक सुन्दरी हूँ। देखना, मेरी हँसी न कराना ॥२॥

बाबा ने कहा—ऊसर को गोड़-गोड़कर मैंने ककड़ी बोआई है। पर मालूम नहीं, ककड़ियाँ तीती होंगी या मीठी? इसी तरह हे बेटी! मैं देश-विदेश जाकर तुम्हारे लिये वर ढूँढ़ता हूँ। पता नहीं, तुम्हारे भाग्य में क्या बदा है? वर अच्छा मिलता है या अयोग्य ॥३॥

बाबा ने कहा—मैंने पूरब ढूँढ़ा, पश्चिम ढूँढ़ा, दिल्ली और गुजरात भी ढूँढ़ लिया। पर हे बेटी! तुम्हारे अनुरूप कहीं वर नहीं पाया। अब तुम कुमारी रहो ॥४॥

बेटी ने कहा—हे पिता! तुमने पूरब भी ढूँढ़ डाला, पश्चिम भी ढूँढ़ डाला, दिल्ली और गुजरात भी ढूँढ़ लिया; पर चार ही क़दम पर अयोध्या नगरी है, जहाँ दो वर क्वारे हैं ॥५॥

बाबा ने कहा—हे बेटी! वे वर घोड़ा-हाथी और पचास मोहरें तथा नौ लाख का दहेज माँगते हैं। मेरी हिम्मत तो इतना देने की नहीं है ॥६॥

बेटी ने व्यंग्य किया—हे पिता! जिसके हाथी-घोड़ा न हो, पचास मोहरें न हों और जो नौ लाख दहेज न दे सके, वह हल जोतनेवाला वर ढूँढ़े ॥७॥

जो हल जोतकर आवे, कुदार से खेत गोड़कर आवे तो मुँह लटकाकर बैठे। हे बाबा! उन्हीं की तिलक चढ़ाना। वे वर दहेज नहीं लेते ॥८॥

बैठनेवाला जैसा हो, वैसा डासन (बिछौना) देना। मुँह देखकर पान का बीड़ा देना। अपना धन देखकर दहेज देना। और वर देखकर कन्या-दान देना ॥९॥

इस गीत की कन्या इतनी सयानी हो चुकी है कि अपने बाबा के मन की पसंद का उसे पता है। साथ ही कन्या को यह भी पता है कि योग्य वर कहाँ-कहाँ हैं? वह अपने बाबा से कहती भी है कि तुम सब जगह तो दौड़ आये, पर वहाँ नहीं गये। वह इतनी समझदार भी हो चुकी है कि किसान के जीवन की आलोचना कर सकती है। जैसा उसने हलवाहे का मजाक उड़ाया है। खासकर मुँह लटकाकर बैठनेवाली बात तो बड़ी ही विनोद-पूर्ण है।

(४)

पहिलै मँगन सीता माँगैली से हो बिधि पुरवहु हो।
ललना माँगैली जनकपुर नैहर अवधपुर सासुर हो ॥ १ ॥
दुसर मँगन सीता माँगैली से हो बिधि पुरवहु हो।
ललना माँगैली कौसिल्ला ऐसनि सासु ससुर राजा दसरथ हो॥२॥
तिसर मँगन सीता माँगैली से हो बिधि पुरवहु हो।
ललना माँगैली पुरुष रामचंद्र देवर बबुआ लछिमन हो ॥ ३ ॥
चौथा मँगन सीता माँगैली उहो बिधि पुरवैलें हो
ललना लव कुस ऐसन मागैं पूत जनम अहिबाती हो ॥४॥

सीता ने पहला माँगन यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें, कि जनकपुर नैहर और अवधपुर ससुराल हो॥१॥

सीता ने दूसरा माँगन यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें, कि कौशिल्या ऐसी सास और राजा दशरथ ऐसे ससुर मिलें॥२॥

तीसरा माँगन सीता ने यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें, कि पति भगवान् रामचन्द्रजी हों और देवर लक्ष्मण॥३॥

चौथा माँगन सीता ने यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें कि लव, कुश ऐसे पुत्र हों और मैं जन्मभर सौभाग्यवती रहूँ॥४॥

प्रत्येक हिन्दू-परिवार में दशरथ, कौशिल्या, राम, सीता, लक्ष्मण

और भरत आदर्श-रूप होते हैं। हिन्दुओं ने अपने आदर्श को प्रत्येक घर में प्रतिविम्बित कर रक्खा है।

(५)

कौन गरहनवाँ बाबा साँझे जे लागै कौन गरहन भिनुसार।
कौन गरहनवाँ बावा औघट लागै कब धौं उगरह होइ ॥ १ ॥
चन्द्र गरहनवा बेटी साँझे जे लागै सुरुज गरहनवा भिनुसार।
धेरिया गरहनवा बेटी औघट लागै कब धौं उगरह होइ ॥ २ ॥
काँपइ हाथी रे काँपइ घोड़ा काँपइ नगरा के लोग।
हाथ में कुस लिहे काँपइँ बाबा कब धौं उगरह होइ ॥ ३ ॥
रहँसइँ हाथी रे रहँसइँ घोड़ा रहँसइँ सकल बरात।
मड़ये मुदित मन समधी रे बिहँसइ भले घर भयहु बिआह ॥ ४ ॥
गंगा पैठि बाबा सुरुज से बिनवइँ मोरे बूते धेरिया जिनि होइ।
धेरिया जनम तब दीहा बिधाता जब घर सम्पति होइ ॥ ५ ॥

कन्या पूछती है—हे पिता! कौन ग्रहण रात में लगता है? कौन दिन में? और कौन ग्रहण बेवक्त लगता है? और कब छूटता है? ॥१॥

पिता कहता है—हे बेटी! चन्द्र-ग्रहण रात में लगता है और सूर्य-ग्रहण दिन में। कन्या-ग्रहण का कोई ठिकाना नहीं कि कब लगे और कब छूटे ॥२॥

हाथी काँप रहे हैं, घोड़े काँप रहे हैं, नगर के लोग काँप रहे हैं, हाथ में कुश लिये बाबा काँप रहे हैं। न जाने कब छुट्टी मिलेगी ॥३॥

हाथी प्रसन्न हैं, घोड़े प्रसन्न हैं, सारी बरात प्रसन्न है। माँड़ों के नीचे बैठा हुआ समधी (वर का बाप) प्रसन्न है कि अच्छे गृहस्थ के यहाँ मेरे पुत्र का विवाह हुआ है ॥४॥

पिता गंगाजी में खड़े होकर सूर्य से विनय करते हैं—हे सूर्य! मेरे

बल पर कन्या न देना। कन्या का जन्म तभी हो, जब घर में सम्पत्ति हो ॥५॥

गीत के अन्त में कन्या के पिता ने कैसी मार्मिक बात कही है। जब वर और कन्या अपनी पसंद के अनुसार विवाह कर लेते थे, तब उनके पिताओं पर इतना भार नहीं पड़ता था। पर जब से पिताओं ने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है, तब से उनकी चिन्ता बढ़ गई है। और आजकल तो कन्या के पिता को इतना कष्ट, इतना अपमान सहना पड़ता है कि कन्या का पिता होना पूर्वजन्म के किसी अपराध का फल ही समझना चाहिये।

(६)

देउ न मोरी माई बाँसे क डेलैया फुलवा लोढ़न हम जाब।
फुलवा लोढ़त भइली खड़ी दुपहरिया हरवा गछत
भइली साँझ रे ॥ १ ॥
घुमरि घुमरि सीता फुलवा चढ़ावैं शिव बाबा देलेन असीस।
जौन माँगन तुहुँ माँगौ सीतल देई उहै माँगन हम देब ॥ २ ॥
अन धन चाहै जो दिहा शिव बाबा स्वामी दिहा सिरी राम।
पार लगावैं जे मोरि नवरिया जेहि देखे हिअरा जुड़ाइ ॥ ३ ॥

हे मेरी माँ! बाँस की डलिया मुझे दो। मैं फूल लोढ़ने (चुनने, तोड़ने) जाऊँगी। फूल लोढ़ने में दुपहरी हो गई और हार गाँछने (बनाने) में शाम हो गई ॥१॥

घूम-घूम कर सीता फूल चढ़ा रही हैं। शिव बाबा ने प्रसन्न होकर कहा—हे सीता देवी! जो तुम माँगो, मैं वही दूँगा ॥२॥

सीता ने कहा—हे शिव बाबा! अन्न और धन तो चाहे तुम जितना देना, पर स्वामी श्रीरामचन्द्र देना। जो मेरी नाव को खेकर पार लगावें और जिन्हें देखकर हृदय शीतल हो जाय ॥३॥

सच है, स्त्री को तो केवल एक योग्य स्वामी चाहिये, जो उसकी नाव को खेकर पार लगा दे।

(७)

पुरुब पछिम मोरे बाबा क सगरवा पुरइनि हालर देइ ।
तेहि घाटे दुलहे धोतिया पखारैं पूछैं दुलहिन देई बात ॥ १ ॥
केकर अहे तुँ नतिया रे पुतवा कौने वहिनिया क भाय ।
कौने बनिजिया चले बर सुन्दर केकरे सगरे नहाउ ॥ २ ॥
अजवा कौन सिंह क नतिया रे पुतवा कौन कुँवरि कर भाइ ।
सेन्दुर बनिजिया चले हम सुन्दरि ससुर के सगरे नहाउँ ॥ ३ ॥
येतनी बचन सुनि दुलही कौन कुँवरि धाय माया लगे जायँ ।
जे बर मोरे माया नगरा ढुँढ़ाये से बर सगरे नहायँ ॥ ४ ॥
राम रसोइयाँ भौजी कौन कुँवरि धाय भौज लग जाय ।
जे बर भौजी नगरा ढुँढ़ाये से वर सगरे नहायँ ॥ ५ ॥
आवहु ननदोइया पलँग चढ़ि बैठहु कुँचहु मोहोबे क पान ।
अपने कमिनिया क डँड़िया फँदावहु लै जाउ वैरिनि हमारि ॥ ६ ॥
की भौजी तोर नोनवा चुरायउँ की तेल दिहौं ढरकाय ।
की भौजी तोर भइया गरिआयउँ कोने गुन बैरिनि तोहारि ॥ ७ ॥
ना ननदी मोर नोनवा चुरायउ न तेलवा दिहयो ढरकाय ।
ना ननदी मोर भइया गरिआयउ बोली गुन वैरिनि हमारि ॥ ८ ॥

पूरब से पच्छिम तक खूब लम्बा-चौड़ा मेरे बाबा का तालाब है। जिसमें पुरइन (कमल का पत्ता) लहरा रहे हैं। उसी तालाब के घाट पर दुलहा धोती पछार रहा है। उससे दुलहिन बात पूछती है ॥१॥

तुम किसके नाती और किसके पुत्र हो? तुम किस बहन के भाई हो? हे सुन्दर वर! किस चीज का व्यापार करने के लिये तुम निकले हो? और किसके तलाब में नहा रहे हो? ॥२॥

वर कहता है—अमुक सिंह मेरे पितामह हैं और अमुक देवी का मैं भाई हूँ। हे सुन्दरी! हम सिन्दूर का व्यापार करने के लिये निकले हैं और अपने ससुर के तालाब में नहा रहे हैं ॥३॥

यह बात सुनते ही कन्या अपनी माँ के पास दौडकर गई और कहने लगी—माँ, जिस वर के लिये सारे शहर ढूंढ़ डाले गये, वह वर तो तालाब पर नहा रहा है ॥४॥

कन्या की भौजाई रसोई में थी। वह उसके पास जाकर बोली—भौजी! जिस वर के लिये सारे शहर ढूंढ़ डाले गये, वह वर तो तालाब पर नहा रहा है ॥५॥

भौजाई ने कहा—आओ जी ननदोई जी! पलँग पर बैठो और महोबे का पान कूंचो। अपनी कामिनी के लिये पालकी सजाओ और मेरी इस बैरिन को ले जाओ ॥६॥

ननद ने कहा—हे भौजी! तुम मुझे बैरिन क्यों कहती हो? क्या मैंने तुम्हारा नमक चुराया था? या तेल गिरा दिया था? या तुम्हारे भाई को गाली दी थी? ॥७॥

भौजाई ने कहा—हे ननद! न तुमने मेरा नमक चुराया, न तेल ढुलकाया और न मेरे भाई ही को गाली दी; केवल बोली के कारण मे तुम मेरी बैरिन हो ॥८॥

इस गीत से यह बात मालूम होती है कि कन्या अवस्था में इतनी बड़ी हो चुकी थी कि वह अपने भावी पति के रूप और गुण की प्रशंसा सुनकर उस पर हृदय से आसक्त हो चुकी थी। उधर वर भी कन्या की खोज में चला हुआ जान पडता है। पहले से उसे कन्या और उसके पिता आदि का हाल ज्ञात न होता तो वह कैसे कहता कि 'समुर के सगरे नहाऊँ'। मालूम होता है, वह कन्या को एक बार अपनी आँखों से देखने आया था।

दूसरी बात इस गीत में यह है कि भौजाई ने ननद को अपनी बैरिन बताया है। कारण पूछने पर उसने ननद को बताया है कि तुम बहुत कटुवचन बोलती हो। ननद भौजाई में प्रायः झगड़े हुआ ही करते हैं और इसमें प्रधान कारण कटुवचन ही होता है।

(८)

पिया अपने को प्यारी, पिया अपने को प्यारी,
सो अपने पिया पै सिंगार करो ॥ १ ॥
पहिरो धरम कै जेहरि, पहिरो धरम कै जेहरि,
सो भजन की दुन्दुभी बाजि रही ॥ २ ॥
ओढ़ो चुप्प चुनरिया , ओढ़ो चुप्प चुनरिया,
सो ज्ञान को घाँघरो घूम रहो ॥ ३ ॥
पहिरो अकिल की अँगिया, पहिरो अकिल की अँगिया,
सो श्रुति स्मृति दोऊ बंद लगे ॥ ४ ॥
पहिरो हरी पीरी चुरियाँ, पहिरो हरी पीरी चुरियाँ,
सो बीच बँगलियाँ अजब बनी ॥ ५ ॥
पहिरो दसहु मुँदरिया, पहिरो दसहु मुँदरिया,
सो पोरन पोरन पहिर लई ॥ ६ ॥
पहिरो शील को सूता, पहिरो शील को सूता,
सो दया की हमेल गले में डरी ॥ ७ ॥
पहिरो नेह नथुनिया, पहिरो नेह नथुनिया,
सो प्रेम को लटकन झूम रहो ॥ ८ ॥
करो मान को काजर, करो मान को काजर,
सो बिरह की बेंदी लिलार दई ॥ ९ ॥
पाँचों तत्व को तेलवा, पाँचो तत्व को तेलवा,
सो सुमति की डोरी से चोटी गुही ॥१०॥
इतनो धन पहिरो, इतनो धन पहिरो,
तब रूठे पिया को मनावै चलो ॥११॥
साईं मो तन हेरो, साईं मो तन हेरो,
सो उठ के कबीरा गुरु बाँह गही ॥१२॥

हे अपने प्रियतम की प्यारी स्त्री ! अपने प्रियतम के लिये यह शृंगार करो।

पतिव्रत-धर्म की माला पहनकर, भजन का नगाड़ा बजाकर, चुप की चुनरी, ज्ञान का घाँघरा, बुद्धि की अंगिया—जिसमें श्रुति और स्मृति दो बंद लगे हैं, हरी पीली चूड़ियाँ, दसो उँगलियों में अँगूठियाँ, शील के सूत में दया की हमेल, स्नेह की नथनी, प्रेम का लटकन, मान का काजल, विरह की बेंदी पहनकर, पाँचों तत्वों का तेल लगा कर, सुमति की डोरी से चोटी गूँथकर हे स्त्री ! अपने प्रियतम को मनाने चलो।

इस गीत का अभिप्राय यह है कि धातु के गहनों से शरीर की शोभा नहीं बढ़ सकती और न उसे देखकर पति ही प्रसन्न हो सकता है। बल्कि गुणों के गहनों ही से स्त्री की शोभा बढ़ती है। गुणवती स्त्री ही पति को प्यारी हो सकती है। इस गीत का आध्यात्मिक अर्थ भी है, जो जीव को स्त्री और ब्रह्म को पति मानकर किया जाता है।

(९)

सासु तो चली हैं निहारन झीने झीने कापड़।
केकरे मैं अरती उतारौं कवन बर सुन्दर ॥१॥
ओढ़े हैं पीत पितम्बर और बघम्बर।
सिर की मउरिया लपकत आवइ, इन्हई के अरती
उतारौ, यही बर सुन्दर ॥२॥
सासु तौ अरती उतारिन बिनती बहुत करैं।
अबै मोर धिया लरिका अजान कुछौ नाहिं जानै ॥३॥
तोरि धिया लरिका अजान कुछौ नाहिं जानै।
हमहूँ कमल कर फूल दुहूँ जन बिहँसब ॥४॥

बारीक कपड़े पहनकर सास देखने चली है वह सुन्दर वर कौन है ? मैं किसकी आरती उतारूँ ? ॥१॥

जो पीताम्बर पहने और बाघम्बर ओढ़े हैं, जिनके सिर पर मौर चमक रहा है, ये ही सुन्दर वर हैं। इनकी आरती उतारो ॥२॥

सास ने आरती उतारी और बड़ी विनती की कि अभी मेरी कन्या बहुत नादान है, कुछ नहीं जानती ॥३॥

पति ने कहा—तुम्हारी कन्या नादान है और कुछ नहीं जानती तो क्या हुआ ? मैं भी तो कमल के फूल-सा हूँ। दोनों जन प्रसन्न होंगे ॥४॥

(१०)

राजा जनक अइलें नहाई के मनहिं उदासल।
कवन चरित्र आज भइलें धनुष तर लीपल ॥ १ ॥
हम नहिं जानीला ए हरि पुछि ल सीताजी से।
सीता के सखिआ बहुती जनकजी के आँगन ॥ २ ॥
जनक सीता बलावेलें जान्ह बैठावेलें।
बेटी कवने हाथ धनुष उठवलु कवन हाथे लीपेलु ॥ ३ ॥
बाँयें हाथे धनुषा उठाइ दहिने हाथ लिपीला।
इहे चरित्र आज भइले धनुष तर लीपल ॥ ४ ॥
जनक मन पछितालनी मन में दुखित भयें।
अब सीता रहेले कुँवारी जनम कैसे बीती ॥ ५ ॥
काहे के बाबा पछिताला त मन में दुखित होला।
अब हम पुजबों भवानी त राम बर पाइब ॥ ६ ॥
कंचन थाली गढ़ावेलीं आरती साजेलीं।
चलौ न सखि फुलवारी त पूजें भवानी ॥ ७ ॥
घुमरि घुमरि सीता पूजेलीं पूजेलीं भवानी।
परसन होई न भवानी त पुरव मनोरथ ॥८॥
देबि जे हँसली ठठाई के बड़े परसन से।
पुजिहें मने क मनोरथ राम बर पावेलु ॥ ९ ॥

जनक स्नान करके उदास मन से घर आये। पूछने लगे कि आज यह क्या अद्भुत काम हुआ कि धनुष के नीचे लीपा हुआ है ॥१॥

जनक की रानी ने कहा—हे नाथ ! मैं नहीं जानती। देखिये, सीता से पूछती हूँ। जनकजी के घर में सीता की बहुत सी सखियाँ हैं ॥२॥

जनक ने सीता को बुलाया, प्यार से जाँघ पर बैठाकर पूछा—बेटी ! किस हाथ से धनुष उठाया और किस हाथ से लीपा ॥३॥

सीता ने कहा—बायें हाथ से धनुष उठाकर दाहिने से लीपा है। आज धनुष के नीचे लीपा है, यही बात है ॥४॥

जनक मन ही मन पछताने लगे कि अब सीता कुँवारी रहेगी। इसका जन्म कैसे बीतेगा ? ॥५॥

सीता ने कहा—पिता ! पछताते क्यों हो ? दुःखित क्यों होते हो ? अब मैं देवी की पूजा करूँगी और राम को वरूँगी ॥३॥

सीता ने सोने की थाली बनवाई, आरती सजाया और सखियों से कहा—सखियो ! फुलवारी में चलो, देवी की पूजा करें ॥७॥

सीता घूम-घूम कर, बार-बार देवी की पूजा करती हैं और प्रार्थना करती हैं—हे देवी ! प्रसन्न हो, मनोरथ पूर्ण करो ॥८॥

देवी बहुत प्रसन्न होकर, ठठाकर हँसी और बोलीं—बेटी ! तुम्हारे मन का मनोरथ पूर्ण होगा और तुम को राम वर मिलेंगे ॥९॥

हिन्दू-स्त्रियों में सीता के विवाह के लिये जनक के चिन्तित होने की कथा इसी तरह प्रचलित है। इससे प्रकट होता है कि सीता जब इस अवस्था को पहुँची कि बायें हाथ से धनुष उठा सकीं, तब जनक को उनके विवाह की चिन्ता हुई। आश्चर्य है कि ऐसे गीत गा-गाकर भी स्त्रियाँ नन्ही-नन्ही बच्चियों का विवाह पसंद करती हैं।

(११)

सात सखी सीता चढ़ि गईं अटरिया इन्द्र झरोखे लाग।
कौन दुल्हा कौन दुलहे क बाबा कौन दुलहे जेठ भाय ॥ १ ॥

माती हथिनिया रे घुमरत आवै घुमरि-घुमरि डारै पाँव ।
सोने कै मटुकवा बिराजत आवै वै दुलहे कर बाप ॥ २ ॥
नदिया के ईरे तीरे घोड़ा दौड़ावैं मोछिया भँवर मननाय ।
हाथे सुबरना गरे मोती माला वै दुलहे जेठ भाय ॥ ३ ॥
चनना कै डँड़िया चमाकत आवै जूमत चारिउ कहाँर ।
पीत पितम्बर झलाकत आवैं ओई अहैं दुलरू दमाद ॥ ४ ॥

सात सखियों के साथ सीता अटारी पर चढ़ गई। अटारी इतनी ऊँची थी कि उसके झरोखे से इन्द्र झाँक सकता था। सीता पूछती हैं—कौन वर है ? कौन वर का पिता है ? और कौन वर का जेठा भाई है ? ॥१।

सखियाँ कहती हैं—मतवाली हथिनी झूमती आती है, और घूम-घूम कर पाँव रखती है। उस हथिनी पर वर का बाप है, जिस के सिर पर सोने का मुकुट शोभायमान है ॥२॥

जो नदी के किनारे-किनारे घोड़ा दौड़ा रहा है, जिसकी मोंछ भौंरे के समान काली हैं, और जिसके हाथ में सोने का कड़ा और गले में मोती की माला है, वह वर का जेठा भाई है ॥३॥

चन्दन की पालकी चमकती हुई आ रही है। उसको उठाये हुए चार कहार झूमते हुए आ रहे हैं। जिसका पीला रेशमी वस्त्र झलक रहा है, वही प्यारे दामाद हैं ॥४॥

(१२)

नीले नीले घोड़वा छैल असवरवा कुरुखेते हंनइ निसान ।
खिरकी उघेरि के अम्माँ जौ देखैं धिया दस आउरि होइँ ॥ १ ॥
होइगा बियाह परा सिर सेंदुर नौ लख दाइज थोर ।
भितराँ कइ भाँड़ बाहर दइ मारीं सनरू के धिया जिनि होइ ॥ २ ॥

नीले घोड़े पर जो छैल सवार है, वह ऐसा वीर है कि कुरुक्षेत्र (रण-भूमि) में विजय का झंडा खड़ा करता है, या रणभूमि में शत्रु का झंडा

तोड़ डालता है। उसे जब खिड़की खोलकर माँ देखती हैं, तब उसका जी हुलसता है और वह चाहती है कि दश कन्यायें और होतीं तो ठीक था ॥१॥

पर जब ब्याह हो गया, माँग में सिंदूर पड गया और नौ लाख का दहेज भी थोड़ा समझा गया, तब माँ ने भीतर का बरतन-भांड़ा बाहर पटक दिया और कहा—शत्रु को भी कन्या न हो ॥२॥

इन चार पंक्तियों में कन्या के विवाह का वर्तमान चित्र बहुत अच्छी तरह खींचा गया है। तरुण और रणबाँकुरा दामाद देखकर कन्या की माँ का हृदय आनंद से उमड़ आता है, यह स्वाभाविक ही है। पर दहेज की कुप्रथा से जो कष्ट कन्या के माँ-बाप को उठाना पड़ता है, और उससे जो विक्षोभ पैदा होता है, उसका बहुत ही तथ्य-वर्णन गीत की चौथी पंक्ति में आ गया है।

गीत से यह भी मालूम होता है कि जिस समय का यह गीत है, उस समय बाल-विवाह नहीं होता था। ७, ८ वर्ष का बालक न छैल ही हो सकता है, न घोड़े की सवारी ही कर सकता है, और न कुरुक्षेत्र में झंड़ा ही गाड़ सकता है।

(१३)

घोड़े चढ़ु दुलहा तू घोड़े चढ़ु यहि रन बन में।
दुलहा बाँधि लेहु ढाल तरुवारि त यहि रन बन में ॥ १ ॥
पहिनौ पियरी पीतामर यहि रन बन में।।
दुलहा बाँधि लेहु लटपट पाग त यहि रन बन में ॥ २ ॥
कैसे के बाँधौ पाग त यहि रन बन में।
दुलहिनि मरम न जान्यों तोहार त यहि रन बन में ॥ ३ ॥
जतिया तो हमरी पंडित कै यहि रन बन में।
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन बन में ॥ ४ ॥
मारि डारेन भाई औ बाप त यहि रन बन में।
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन बन में ॥ ५ ॥

यतनी बचनिया के सुनतइ यहि रन बन में।
दुलहा घोड़े पीठि लिहेनि बैठाय त यहि रन बन में ॥ ६ ॥
यक बन गैलें दुसर बन यहि रन बन में।
दुलहा तिसरे में लागी पियास त यहि रन बन में ॥ ७ ॥
अरे अरे जनम सँघाती त यहि रन बन में।
दुलहा बुंद यक पनिया पियाव त यहि रन बन में ॥ ८ ॥
ताल औ कुँइयाँ सुखानी त यहि रन बन में।
पनिया रकत के भाव बिकाय त यहि रन बन में ॥ ९ ॥
उँचवै चढ़ि के निहारेनि यहि रन बन में।
दुलहिनि झरना बहै जुड़ पानि त यहि रन बन में ॥१०॥
दुलहिनि झरना बहै जुड़ पानि त यहि रन बन में।
दुलहिनि ठाड़े हैं मुगुल पचास त यहि रन बन में ॥११॥
अरे अरे जनम सँघाती त यहि रन बन में।
दुलहा बुंद एक पनिया पियाउ त यहि रन बन में।
दुलहा मोरी तोरी छूटै सनेहिया त यहि रन बन में ॥१२॥
यतना बचन सुनि पायेन त यहि रन बन में।
दुलहा खींचि लिहेन तरवरिया त यहि रन बन में ॥१३॥
ठाढ़े एक ओर मुगुल पचास त यहि रन बन में।
दुलहा एक ओर ठाढ़े अकेल त यहि रन बन में ॥१४॥
रामा जूझे हैं मुगुल पचास त यहि रन बन में।
राजा जीति के ठाढ़ अकेल त यहि रन बन में ॥१५॥
पतवा के दोनवा लगायनि यहि रन बन में।
दुलहिनि पनिया पियहु डभकोरि त यहि रन बन में ॥१६॥
पनिया पियै दुलहिन बैठीं त यहि रन बन में ॥
दुलहा पटुकन करैं बयारि त यहि रन बन में ॥१७॥

दुलहा मोर धरम लिहेउ राखि त यहि रन बन में।
दुलहा हम तोहरे हाथ बिकानि त यहि रन बन में ॥१८॥
यतनी बचनिया के साथ त यहि रन बन में।
दुलहिन मलवा दिहिन गरे डारि त यहि रन बन में ॥१९॥

हे दुलहा! घोड़े पर चढ़ा लो, घोड़े पर चढ़ा लो। इस निर्जन और भयानक बन में ढाल-तलवार बाँध लो ॥१॥

पीला पीताम्बर पहन लो और जल्दी-जल्दी पगड़ी बाँध लो ॥२॥

पुरुष ने कहा—मैं कैसे पगड़ी बाँधू? मैं तो जानता ही नहीं कि तुम कौन हो? ॥३॥

कन्या ने कहा—मैं तो ब्राह्मण-कन्या हूँ। मुग़लों के डर से इस जगल मे छिपी हूँ ॥४॥

मुग़लों ने मेरे भाई और बाप को मार डाला है। मैं मुग़लों के डर से इस जंगल में लुकी हूँ ॥५॥

इतना सुनते ही पुरुष ने कन्या को घोड़े पर बैठा लिया ॥६॥

वे एक बन से दूसरे में गये। तीसरे बन में कन्या को प्यास लगी ॥७॥

कन्या ने कहा—हे जीवन के संगी! बड़ी प्यास लगी है। एक बूँद पानी पिलाओ ॥८॥

पुरुष ने कहा—इस बन में सभी ताल और कुएँ सूख गये हैं। पानी तो लोहू के भाव का हो गया है ॥९॥

पुरुष ने ऊँचे चढ़कर देखा तो बन में ठंडे पानी का एक झरना बहता दिखाई दिया। उसने कहा—हे दुलहिन! ठंडे पानी का एक झरना बह तो रहा है ॥१०॥

पर वहाँ पचास मुग़ल खड़े हैं ॥११॥

कन्या ने कहा—हे दुलहा! हे जीवन के संगी! इस घोर बन में तुम मुझे एक बूँद पानी पिलाओ। हे दुलहा! नहीं तो हमारी तुम्हारी प्रीति अब छूट रही है ॥१२॥

इतना सुनते ही पुरुष ने हाथ में तलवार खींच ली ॥१३॥

उस बन में एक ओर तो पचास मुगल खड़े हैं और एक ओर अकेला दुलहा ॥१४॥

पचासों मुग़लों को मारकर दुलहा राजा युद्ध जीतकर अकेला खडा है ॥१५॥

पत्ते के दोने में दुलहे ने दुलहिन को पानी दिया और कहा—दुलहिन ! खूब तृप्त होकर पानी पिओ ॥१६॥

दुलहिन बैठकर पानी पीती है और दुलहा दुपट्टे के छोर से हवा कर रहा है ॥१७॥

दुलहिन ने कहा—हे दुलहा ! तुमने मेरा धर्म रख लिया। मैं तुम्हारे हाथ बिक गई हूँ ॥१८॥

इतना कहकर दुलहिन ने दुलहे के गले में अपनी माला डाल दी। अर्थात् उसको वरण कर लिया ॥१९॥

यह गीत मुग़लों के ज़माने का जान पड़ता है। मुगलों ने किसी ब्राह्मण की रूपवती कन्या को ज़बरदस्ती छीन लेने की नीयत से उसका घर घेर लिया, और कन्या देना अस्वीकार करने पर कन्या के बाप और भाई को मार डाला था। कन्या भागकर एक बन में छिप गई थी। मुग़ल उसे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते एक झरने के पास पहुँचे थे। उसी समय कन्या के पास से कोई हिन्दू वीर निकलता है, जो कन्या का कष्ट सुनकर उसे घोड़े पर बैठाकर ले चलता है। रास्ते में कन्या को प्यास लगती है। पानी के लिये युवक झरने के पास पहुँचता है और पचासों मुग़लों को मारकर कन्या को पानी पिलाता है। युवक उसकी थकान मिटाने का प्रयत्न भी करता है। युवक ने कन्या का धर्म और प्राण दोनों बचाये। उसके बाप और भाई की मृत्यु का बदला भी लिया तथा अकेले पचास मुग़लों से लड़कर और उसे मारकर अपनी शूरता का भी परिचय दिया। इससे हिन्दू-कन्या का हृदय स्वाभाविक कृतज्ञता से उमड़ आया। उसने वहीं उस वीर और सहृदय युवक को

सब उपकारों के बदलें में अपना हृदय समर्पण कर दिया और उसके गले में जयमाला डालकर उसे वरण कर लिया।

एक समय वह था, जब हमारे घरों में ऐसे युवक पैदा होते थे, जो पचास-पचास से अकेले लड़कर विजयी होते थे। इस गीत में उस समय की एक क्षीण-आभा वर्तमान है।

(१४)

ऊँच ऊँच बखरी उठाओ मोरे बाबा ऊँच ऊँच राखो मोहार।
चाँद सुरुज दोनों किरनी बसत हैं मिहुरै न कन्त हमार॥१॥
अम्मर सेनुरा मँगावो मोरे बाबा पिया से भरावो मोरी माँग।
सूघर बँभना से गँठिया जोरावहु जनम जनम अहिबात॥२॥
अम्मर डँड़िया फनाओ मोरे बाबा बिदवा करावो हमार
सात परग सँग चलि के हो बाबा अब मैं भइउँ पराइ॥३॥

हे बाबा! ऊँची-ऊंची बखरी (घर) बनवाओ और उसमें ऊँचे मोहार (दरवाज़े) रक्खो। जिससे मेरे स्वामी को निहुरना (झुकना) न पड़े॥१॥

हे बाबा! अमर करने वाला सिन्दूर मँगाओ और प्रियतम से मेरी माँग भराओ। सुघर ब्राह्मण से मेरी गाँठ जोड़ाओ, जिससे जन्म-जन्मान्तर तक मेरा सुहाग बना रहे॥२॥

हे बाबा! अमर करने वाली पालकी सजाओ और मुझे विदा करो। सात पग साथ चलकर अब मैं पराई हो गई हूँ॥३॥

सात पग साथ चलकर पराई हो जानेवाली कन्या धर्म के महत्त्व को समझती है। इसी से कहा है—

सतां सप्तपदी मैत्री।

सात क़दम साथ चल लेने ही से सज्जनों में मैत्री हो जाती है।

(१५)

उँच उँच कोठवाँ उठइहा मोर बाबा हो बिचबिच झँझरी लगाइ।
बियहन अइहें बाबा तिन लोक राजा हो रहिहें झँझरिया
लोभाइ हे ॥१॥
सब कोइ देखेला बाग बगइचा देखेला फूल फुलवारि हो।
रामचन्द्र देखेलें बाबा के झँझरी के अइसन झँझरी उरेह हे ॥२॥
दान दहेज सासु कुछ नाहीं लेबों हो ना लेबों चढ़ने क घोड़ हे।
जउन तिवइया यहि झँझरी उरेहले तिन्हकाँ मैं सँग लइ
जाब हो ॥३॥
दान दहेज बावू सब कुछ देबों हों देबों मैं चढ़ने क घोड़ हे।
बेटी सीता देई झँझरी उरेहली तिन्हहूँ क सँग लइ जाहु हो ॥४॥

हे बाबा! ऊंचे-ऊँचे कोठे बनवाना, और बीच-बीच में खिड़की लगवाना। तीन लोक के मालिक विवाह करने आवेंगे। वे खिड़की देखकर लुभा जायँगे ॥१॥

बरात के लोग बाग़-बगीचा और फूल-फुलवाड़ी देख रहे हैं। पर रामचंद्र बाबा की खिड़की देख रहे हैं और मोहित हो रहे हैं कि ऐसी खिड़की पर चित्र किसने बनाये हैं? ॥२॥

रामचन्द्र ने कहा—हे सास! मैं न दान लूँगा, न दहेज। न चढ़ने के लिये घोड़ा ही लूँगा। जिसने इस खिड़की पर चित्र बनाये हैं, उसे मैं साथ ले जाऊँगा ॥३॥

सास ने कहा—हे बेटा! दान-दहेज भी मैं दूँगी और चढ़ने को घोड़ा भी दूँगी। सीता बेटी ने ये चित्र बनाये हैं, उसे भी दूँगी। उसे अपने साथ ले जाओ ॥४॥

प्राचीन भारत में चित्रकला का घर-घर प्रचार था। चित्रकला का जानना कन्या की शिक्षा का एक अंग समझा जाता था। कन्यायें ऐसा चित्र बना सकती थीं, जो देखनेवालों का चित्त हरण कर लेते थे और

वर भी उत्तम चित्र की पहचान ही नहीं करते थे, बल्कि उस पर मुग्ध होने वाला हृदय भी रखते थे।

(१६)

उत्तर हेरयों दक्खिन ढूंढ्यों ढूंढ्यों में कोसवा पचास रे।
बेटी के बर नहिं पायों मालिनि मरि गयों भुखिया पियास ॥१॥
बैठो न बाबूजी चनन चौकिया पियौ न गेडुअवा जुड़ पानि रे।
कइसन घर रौरा चाही ये बाबू कइसन चाही दमाद ॥२॥
सभवा बैठ हम समधी जे चाहिल जैसे तरैया में चाँद रे।
मचिया बैठलि हम समधिन चाहिल खोलि खोलि बिरवा चबाति ॥३॥
सातहिं पाँच हम देवर चाहिल ननद जे चाही अकेल।
दमदा जे चाहिल सब कर नायक सभा बिच पंडित होय रे ॥४॥

मैंने उत्तर ढूंढ़ा, दक्खिन ढूंढ़ा, पचास कोस तक मैं ढूंढ़ता फिरा; पर हे मालिन! अपनी बेटी के उपयुक्त वर मैंने नहीं पाया। भूख-प्यास से मैं मर गया ॥१॥

मालिन के कहा—हे बाबूजी! इस चन्दन की चौकी पर बैठिये, ठंडा जल पीजिये। आपको कैसा घर और कैसा वर चाहिये? ॥२॥

बाबूजी ने कहा—हे मालिन! मैं ऐसा समधी चाहता हूँ जो सभा के बीच इस तरह बैठता हो, जैसा तारों के बीच में चन्द्रमा। और मचिया पर बैठी हुई ऐसी समधिन चाहता हूँ, जो खोल-खोलकर पान के बीड़े खाती हो।३।

मैं अधिक नहीं, पाँच-सात देवर ही चाहता हूँ और एक ही ननद। दामाद ऐसा चाहता हूँ, जो सब का नायक हो और सभा के बीच में विद्वान् हो ॥४॥

सभा के बीच में योग्य कहलाना योग्यता की एक बहुत बड़ी पहचान है।

(१७)

काहे बिनु सून अँगनवाँ ये बाबा काहे बिनु सून लखराउँ।
काहे बिनु सून दुअरवा ये बाबा काहे बिनु पोखरा तोहार ॥१॥
धिया बिनु सून अँगनवा ये बेटी कोइलरि बिनु लखराउँ।
पूत बिनु सून दुअरवा ये बेटी हंस बिनु पोखरा हमार ॥२॥
कैसे के सोहे अँगनवा ये बाबा कैसे सोहै लखराउँ।
कैसे के सोहै दुअरवा ये बाबा कैसे सोहै पोखरा तोहार ॥३॥
धरम से बेटी उपजिहैं ये बेटी सेवा से आम तैयार रे।
तप सेती पुतवा जनमिहैं ये बेटी दान से हंसा मँझधार ॥४॥
का देइ बोधब्यो बेटी ये बाबा का देइ अमवा के गाछ।
का देइ पुतवा समोधब्या ये बाबा का देइ हंसा मँझधार ॥५॥
धन देइ बिटिया समोधबै ये बेटी जल देइ समोधौं लखराउँ रे।
भुइँ देइ पुतवा समोधबै ये बेटी अन देइ हंसा मँझधार ॥६॥
का देखि मोहै जनवसवा ये बाबा का देखि रसना तोहार।
का देखि हियरा जुड़ैहै ये बाबा का देखि नैना जुड़ाय ॥७॥
धिया देखि मोहै जनवसवा ये बेटी अमवा से रसना हमार।
पुतवा से हियरा जुड़ैहैं ये बेटी हंसा देखि नैना जुड़ाय ॥८॥

कन्या ने पूछा—हे पिता! किसके बिना आँगन सूना है? और किसके बिना लखराँव (लाख आम के पेड़ों का बाग़) सूना है? किसके बिना द्वार सूना है? और किसके बिना तुम्हारा तालाब सूना है? ॥१॥

पिता ने कहा—हे बेटी! कन्या बिना आँगन, कोयल बिना लखराँव, पुत्र बिना द्वार और हंस बिना तालाब सूना है ॥२॥

कन्या ने पूछा—आँगन कैसे शोभित हो सकता है? लखराँव कैसे शोभित हो सकता है? तुम्हारा द्वार कैसे शोभित हो सकता है? और तुम्हारा तालाब कैसे शोभित हो सकता है? ॥३॥

पिता ने कहा—हे बेटी! धर्म से कन्या पैदा होती है। सेवा से आम पैदा होता है। तप से पुत्र पैदा होता है। और दान से हंस मँझधार में तैरते हैं॥४॥

कन्या ने पूछा—हे पिता! क्या देकर तुम कन्या को संतुष्ट करोगे? क्या देकर आम के वृक्ष को? और क्या देकर पुत्र को? तथा क्या देकर मँझधार में हंस को संतुष्ट करोगे? ॥५॥

पिता ने कहा—धन देकर कन्या को, जल देकर लखराँव को, भूमि देकर पुत्र को और अन्न देकर हंस को संतुष्ट करूँगा॥६॥

कन्या फिर पूछती है—हे पिता! जनवासे के लोग क्या देखकर मोहित होंगे? किस चीज़ से तुम्हारी जीभ लुभायेगी? क्या देखकर हृदय शीतल होगा? और क्या देखकर नेत्र तृप्त होंगे॥७॥

पिता ने कहा—कन्या को देखकर जनवास मोहित होगा। आम से जीभ प्रसन्न होगी। पुत्र मे हृदय शीतल होगा और हंस को देखकर नेत्र तृप्त होंगे॥८॥

पूर्वकाल में परदा नहीं था। कन्या को सब लोग देख सकते थे और उसके रूप और गुण पर मुग्ध हो सकते थे।

(१८)

कहँवहिं के गढ़ थवई जिन्ह महल उठाये।
कहँवहिं के पतिसहवा गढ़ देखन आये॥१॥
बाहर होइ गढ़ देखलों जैसे चित्र उरेहल।
भीतर होइ गढ़ देखलों जैसे कुन्दन कुँदावल॥२॥
ताही पैठि सुतले कवन बाबा रानी बेनियाँ डोलावे।
केवरहीं बोललीं कवन बेटी बाबा नींद भलि आवे॥३॥
कुछ रे सुतीला कुछ जागीला बेटी नींदो न आवे।
जाहि घरे कन्या कुँवारि बेटी नींद कैसे आवे॥४॥

लेहुना कवन बाबा धोतिया हाथे पान क बीड़ा।
करु ना समधिया से मिलनी सिर माथ नवाय ॥५॥
गिरि नवे पर्वत नवे हम तौ ना नइयो।
बेटी! तोहरे कारन हम जग में माथ नवाये ॥६॥

वह थवई (राज, स्थपति) कहाँ का था? जिसने यह महल उठाया है। वह बादशाह कहाँ के हैं? जो गढ़ देखने आये हैं ॥१॥

बाहर से गढ़ देखा, तो ऐसा जान पड़ा, मानो चित्र खींचा हुआ है। भीतर से देखा, तो ऐसा जान पड़ा, मानों कुन्दन किया हुआ है ॥२॥

उसी गढ़ में प्रवेश करके.....राम सो रहे हैं। रानी पंखी हाँक रही हैं। किवाड़े की आड़ से बेटी ने कहा—पिताजी! आपको नींद खूब आ रही है ॥३॥

पिता ने कहा—बेटी! कुछ-कुछ सो रहा हूँ, कुछ-कुछ जाग रहा हूँ। जिसके घर में क्वारी कन्या हो, भला, उसे नींद कैसे आ सकती है? ।४।

कन्या ने कहा—हे पिता! हाथ में धोती और पान का बीड़ा लेकर और सिर नवाकर समधी से भेंट करो न? ॥५॥

पिता ने कहा—गिरि नै (झुक) गया, पहाड़ नै गया; अब तक मैं नहीं झुका था। पर हे बेटी! तुम्हारे कारण मुझे सिर झुकाना पड़ा है ॥६॥

बेटी के विवाह के लिये पिता को कितनी चिन्ता होती है 'जाहि घरे कन्या कुँवरी बेटी नींद कैसे आवे' में वह बड़ी मार्मिकता से कहा गया है। इस गीत की कन्या के पिता बड़े मनस्वी जान पड़ते हैं। उन्होंने कभी किसी के सामने सिर नहीं झुकाया था, पर कन्या के पिता को सिर झुकाना ही पड़ता है।

(१९)

बाबा बाबा गोहरावौं बाबा नाहीं जागें।
देत सुनर एक सेंदुर भइउँ पराई ॥१॥

भैया भैया गोहरावौं भैया नाहीं बोलैं।
देत सुघर एक सेंदुर भइउँ पराई ॥२॥
बन माँ फूली बेइलिया अतिहि रूप आगरि।
मलियँ, हाथ पसारा तौ होबौ हमारि ॥३॥
जनि छुवो ये माली जनि छुवो अबहीं कुँवारि।
आधी राति फुलबै बेइलिया तौ होब तुम्हारि ॥४॥
जनि छुवो ये दुलहा जनि छुवो अबहीं कुँवारि।
जब मोर बाबा संकलपैं तौ होब तुम्हारि ॥५॥

बाबा, बाबा कहकर पुकार रही हूँ। बाबा जागते ही नहीं। कोई एक सुन्दर पुरुष सेंदुर दे रहा है। मैं पराई हुई जा रही हूँ ॥१॥

भैया, भैया कहकर पुकार रही हूँ। भैया बोलते ही नहीं। कोई एक चतुर पुरुष सेंदुर दे रहा है। मैं पराई हुई जा रही हूँ ॥२॥

बन में अत्यंत रूपवती लता फूली है। माली ने उस पर हाथ पसारा और कहा—तुम मेरी हो ॥३॥

हे माली! अभी मत छुओ, अभी मत छुओ। मैं अभी बालिका हूँ, कुमारी हूँ। आधीरात को जब लता फूलेगी, तब वह तुम्हारी होगी ॥४॥

हे दूल्हा! मत छुओ, मत छुओ। अभी मैं बालिका हूँ, कुमारी हूँ। जब मेरे बाबा समर्पण करेंगे, तब मैं तुम्हारी होऊँगी ॥५॥

कैसा भाव-पूर्ण यह गीत है। कन्या ने वर को 'सुन्दर और सुघर' दो विशेषणों से व्यक्त किया है। हमने ऊपर सुघर शब्द का अर्थ चतुर दे दिया है। पर सुघर शब्द अपना अलग अर्थ रखता है, जो बहुत व्यापक है। चतुर शब्द उसका पर्यायवाची नहीं हो सकता। और उस का पर्यायवाची दूसरा शब्द है भी नहीं। वर के रूप और गुण का बखान करके फिर कन्या अपनी तुलना लता से और वर की माली से करती है। स्त्री लता की तरह फूले-फले और पुरुष माली की तरह उसे सींचे, सँभाले, सँवारे और उसका सुख भोगे। कैसी अर्थ-युक्त तुलना है!

अंत में कन्या कहती है कि जब तक पिता नहीं समर्पण करता, तब तक वह दूसरे को नहीं हो सकती। इस गीत के समय में कन्या स्वतंत्र नहीं रह गई कि वह अपनी इच्छा से योग्य वर से विवाह कर सके। गीत में आदि से लेकर अंत तक करुण-रस लहरा रहा है।

(२०)

की हो दुलहे रामा अमवा लुभाने की गये बटिया भुलाइ।
कब से रसोइया लिहे हम बैठी जोवउँ मैं एकटक राह ॥१॥
दुलहिन रानी न अमवा लुभाने ना गये बटिया भुलाइ।
बाबा के बगिया कोइलि एक बोलै कोइलि सबद सुनौं ठाढ़ ॥२॥
चिठिया एक लिखि पठइन दुलहिन दिहौ कोइलरि देइ के हाथ।
तनि एक बोलिया नेवरतिउ कोइलरि परभु मोर जेवने क ठाढ़ ॥३॥
चिठिया एक लिख पठइन कोइलरि दिहौ दुलहिन देइ के हाथ।
ऐसइ बोलिया तुं बोलि क दुलहिन दुलहे न लेतिउ बिलमाय ॥४॥

हे प्रियतम! तुम क्या आम पर लुभा गये थे? या रास्ता ही भूल गये? मैं कब से भोजन बनाकर बैठी हूँ और एकटक तुम्हारी राह देख रही हूँ ॥१॥

पति ने कहा—हे मेरी प्यारी रानी! न मैं आम पर लुभाया हूँ, और न रास्ता ही भूल गया हूँ। मेरे बाबा के बाग में एक कोयल बोल रही है। मैं उसी की बोली सुन रहा हूँ ॥२॥

स्त्री ने कोयल को एक पत्र लिखकर भेजा—हे कोयल रानी! तुम जरा देर के लिये अपनी बोली बन्द करो; मेरे प्राणनाथ भोजन के लिये खड़े हैं ॥३॥

कोयल ने उत्तर लिखकर दुलहिन के पास भेजा—हे दुलहिन रानी! ऐसी ही बोली बोलकर तुम दुलहे को मुग्ध क्यों नहीं कर लेतीं? ॥४॥

आशा है, कोयल के इस उपदेश से कटुवचन बोलनेवाली दुलहिनें लाभ उठायेंगी।

(२१)

घर में से निसरेली बेटी हो कवनि देई भइली देवढ़िया धइले
ठाढ़ रे।
सुरुज के उगले किरिनिआ छिटिकले हो गोरी बदन
कुम्हिलाइ रे ॥१॥
कहतु त मोरी बेटी छत्र छवउतेउँ नाहीं तनवतेवँ ओहार रे।
कहतु त मोरी बेटी सुरुज अलोपतेउँ हो गोरी बदन रही
जाइ रे ॥२॥
काहे के मोरे बाबा छत्र छवइबा हो काहे के तनइबा ओहार रे।
काहे के मोरे बाबा सुरुज अलोपबा हो एक दिना की है बात।
आजु के दिन बाबा तोहरे मड़उआ हो बिहने सुनर बर साथ रे ॥३॥
खोरवन खोरवन बेटी दुधवा पिअवलीं हो दहिआ खिअवलीं
साढ़ीआर रे।
दुधवा क नीरव नाही दीहेलु ये बेटी चललु सुनर बर
साथ रे ॥४॥
काहे क मोरे बाबा दुधवा पिअवला हो दहिआ खिअवला
साढ़ीआर रे।
जानत रहला बेटी पर घर जइहें हो नाहक कइला मोर दुलार रे ॥५

घर से अमुक देवी निकली और ड्योढ़ी पकड़कर खड़ी हुई। सूर्य उदय हो चुका था। किरने छिटक आई थीं। कोमल कन्या का मुँह कुम्हला गया था ॥१॥

पिता ने पूछा—बेटी! कहो तो छत्र छवा दूँ, या परदा डलवा दूँ, या कहो तो किसी तरह सूर्य की धूप को रोक दूँ, जिससे तुम्हारा कोमल मुँह न कुम्हलाय ॥२॥

बेटी ने कहा—हे बाबा! क्यों तुम छत्र छवावोगे? क्यों परदा

डालोगे ? क्यों धूप को रोकोगे ? एक दिन की बात और है। आज तुम्हारे माड़ौ में हूँ। कल अपने सुन्दर वर के साथ चली जाऊँगी ॥३॥

बाबा ने कहा—हे बेटी ! मैंने कटोरे भर-भरकर तुमको दूध पिलाया और साढ़ीदार दही खिलाया। तुम ने दूध का कुछ भी विचार नहीं किया और अब सुन्दर वर के साथ चली जाओगी ? ॥४॥

बेटी ने कहा—हे बाबा ! क्यों तुमने दूध पिलाया ? क्यों साढ़ी वाला दही खिलाया ? तुम तो जानते ही थे कि बेटी पराये घर जायगी। फिर मेरा दुलार क्यों किया ? ॥५॥

(२२)

मचियहि बैठीं पुरखिनि रानी पूछैं बिटिया पतोहु,
तौ इहै नवा कोहबर।
कहँवाँ लिखौं सासू पुरइनि रे कहँवाँ लिखौ बँसवार,
तौ इहै नवा कोहबर ॥१॥
यक ओरी लिखौ बहुअरि पुरइनि रे, यक ओरी लिखौ बँसवार,
तौ इहै० ॥२॥
कहँवाँ लिखौं सासू हंसा रे हंसिनि, कहँवाँ लिखौं बन मोर,
तौ इहै० ॥३॥
कहँवाँ लिखौं सासू सुग्गा रे मैना सरगा उडति छेमकारि।
तौ इहै० ॥४॥
दनवाँ चुनत गवरैया लिखो रे गैया लिखो बछवा लगाय,
तौ इहै० ॥५॥
कलसा लिहे चेरिया लौंड़ी लिखो रे बाम्हन पोथी लिहे हाथ,
तौ इहै० ॥
गैया दुहत अहिरा छौंड़ा लिखो रे दहिया बेंचत अहिरिनि घेरि,
तौ इहै०।

आरी आरी बेली के फूल लिखो रे और लिखो पनवारि,
तौ इहैं०।
झुपसन अमली फरत लिखो रे अमवा धवधवन लाग,
तौ इहैं०।

पुरखिन रानी (घर की मालकिन) मचिया पर बैठी हैं। बेटी और पतोहू पूछ रही —यही नया कोहबर है। हे सासजी! कहाँ कमल के पत्ते का चित्र बनाऊँ? कहाँ बँसवारी (बाँस की बाड़ी) बनाऊँ? ॥१॥

सास ने कहा—हे बहू! एक ओर कमल के पत्ते बनाओ। एक ओर बँसवारी लिखो॥२॥

बहू ने पूछा—हे सास! कहाँ हंस-हंसिनी लिखूँ? कहाँ बन के मोर लिखूँ? कहाँ तोता मैना लिखूँ? कहाँ उड़ती हुई क्षेमकरी लिखूँ?

सास ने कहा—ढुरते हुये (केलि करते हुये) तोता और मैना, दाने चुगती हुई गौरैया, बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय, कलश लिये हुये दासी, पुस्तक लिये हुय ब्राह्मण, गाय दुहता हुआ अहीर का लडका, दही बेंचती हुई अहीरनी की कन्या का चित्र बनाओ। आसपास फूली हुई लता का चित्र बनाओ और पान की लता का चित्र बनाओ। गुच्छे के गुच्छे फली हुई इमली का चित्र बनाओ और पल्लवों में लगे हुये आम का चित्र बनाओ। यही नया कोहबर है।

कन्याओं को चित्रकारी की शिक्षा कैसे दी जाती थी, इसका कुछ आभास इस गीत में है।

(२३)

मैया दिया है गगरी घइलना बाबा ने आँख तरेरि।
वहि रे ताल बेटी माती हथिनियाँ जनि जाव ताल नहाइ॥१॥
बाप कहा नहिं माना है बेटी गई है ताल नहाइ।
अपनी हथिनियाँ सँभारो बनजारे चीर पहिरि घर जाउँ॥२॥

किनके हौ तुम नाती रे पुतवा कौनि बहिन केर भाइ।
कौन बनिजिया चले बर सुन्दर कौन के ताल नहाव ॥३॥
अपने बाप के नाती रे पुतवा अपनी बहिन केर भाइ।
यही हथिनियाँ में तुम्हें चढ़ाओं लै जाओं आपने देस ॥४॥
धोबी धोवै अपड़े रे कपड़े अहिर चरावै सुरा गाइ।
और बोलैहौं में बाबा की नगरिया हमको लेइँ छुटाइ ॥५॥
लूटौं में धोबिया के अपड़े रे कपड़े अहिर की लेबौं सुरा गाइ।
मारौं में बाबा की नगरिया वाले तुमको ब्याहि लै जाउँ ॥६॥
अरे अरे अहिर के बेटवा रे भैया माता से कहेउ सँदेस।
राम रसोईं में गुड़िया रे भूली धरैं पेटरिया के बीच ॥७॥

माँ ने पानी भरकर लाने के लिये गगरी (मिट्टी का घड़ा) दिया। बाबा ने आँख तरेरकर कहा—हे बेटी! उस तालाब पर मतवाली हथिनी रहती है, वहाँ नहाने न जाना ॥१॥

बेटी ने बाप का कहा नहीं माना और वह तालाब में नहाने चली गई। तालाब पर किसी बनजारे की हथिनी मिली। कन्या ने कहा—बनजारे! अपनी हथिनी को रोको तो मैं चीर पहनकर घर जाऊँ ॥२॥

कन्या ने बनजारे से पूछा—हे सुन्दर वर! तुम किसके पौत्र और पुत्र हो? किस बहन के भाई हो? किस चीज़ का व्यापार करने निकले हो? और किसके तालाब पर नहा रहे हो? ॥३॥

वर ने कहा—मैं अपने पिता-पितामह का पुत्र और पौत्र हूँ, और अपनी बहन का भाई हूँ। इसी हथिनी पर चढ़ाकर मैं तुमको अपने देश ले जाऊँगा ॥४॥

कन्या ने कहा—यहाँ धोबी कपड़े धो रहे हैं; अहीर सुरा गाय चरा रहे हैं; इनके सिवा मैं अपने बाबा के नगर से और भी बहुत से लोगों को बुला लूँगी; वे सब मुझे छुड़ा लेंगे ॥५॥

वर ने कहा—मैं धोबी के कपडे-सपड़े लूट लूँगा। अहीर की सुरा

गाय भी छीन लूँगा और तुम्हारे बाबा के नगरवालों को पीटूँगा भी; तथा तुमको ब्याह करके ले जाऊँगा ॥६॥

वर कन्या को ले चला। कन्या कहने लगी—हे अहीर के लड़के! हे मेरे भाई! मेरी माँ से यह सन्देश कह देना कि मैं रसोई-घर में गुड़िया भूल आई हूँ, उसे पिटारी में सँभालकर रख दें ॥७॥

अन्तिम पंक्तियों में कन्या के भोलेपन का खासा निदर्शन है। वह बेचारी नहीं जानती कि गुड़िया खेलते-खेलते अब वह खुद गुड़िया बन गई है और वह अब फिर गुड़िया खेलने के लिये इस घर में नहीं आयेगी।

(२४)

पुरुब पछौहाँ मोरे बाबा कै बखरिया
पड़िगै इमलिया कै छाँह।
तेही तर मोरे बाबा सोनवाँ सँकलपैं,
गढ़ै लागै सूघर सोनार ॥१॥
गढ़ौ सोनरा अंगन गढ़ सोनरा कंगन,
टीका गढ़ौ भरि माथ रे।
इतना पहिरि बेटी चौक जो बैठीं बेटी कै मन दलगीर ॥२॥
की तेरो बेटी रे दान दहेज थोर,
की रे सूघर वर छोट।
की तेरो बेटी रे सोना खराब भये,
काहे तेरो मन दलगीर ॥३॥
नाहीं मोर बाबा रे दान दहेज थोर,
नाहीं सूघर वर छोट।
सुनत हौं मोर बाबा सास दारूनिया,
एही से मन दलगीर ॥४॥

चारि दिना बेटी राजा कै रजई चारि दिना फौजदारि।
चारि दिना बेटी सास है दारुनि आखिर राज तुम्हार ॥५॥
(रायबरेली)

मेरे बाबा की बखरा का पिछवाड़ा पूरब ओर है; उस पर इमली की छाया पड़ रही है। उसी के नीचे मेरे बाबा सोना दे रहे हैं। चतुर सुनार गहने गढ़ने लगे ॥१॥

हे सुनार! कंगन गढ़ो, और कन्या के पूरे माथ पर बैठनेवाला टीका गढ़ो। इतना पहनकर बेटी चौक पर बैठी। लेकिन बेटी का मन उदास है ॥२॥

हे बेटी! दान-दहेज थोड़ा है? या सुन्दर वर छोटा है? या गहने का सोना खोटा है? तुम्हारा मन उदास क्यों है? ॥३॥

हे बाबा! न दान-दहेज कम है, न सुन्दर वर ही छोटा है। सुनती हूँ कि सास बड़ी कर्कशा है। इसीसे मन उदास है ॥४॥

हे बेटी! राजा का राज चार दिन का है, चार ही दिन की फौजदारी है, चार ही दिन कर्कशा सास हैं, फिर तो तुम्हारा ही राज है ॥५॥

अभिप्राय यह कि कुटुम्ब के अंदर का सुख-दुःख धैर्य के साथ सहते रहकर गृह-स्वामिनी बनने की तैयारी में रहो।

(२५)

अपने पिया की पियारी, अपने पिया की प्यारी।
अपने पिया पे सिंगार करी॥
अति प्रेम के लहँगा, अति प्रेम के लहँगा।
नेह की चुनरी ओढ़े चली॥
अति लाज की अँगिया, अति लाज की अँगिया।
मोहन मंत्र कसे रे कसे॥
अति भाग की बेंदी, अति भाग की बेंदी।
मोहन टीका लिलार दिहे॥

सौभाग के बीरा, सौभाग के बीरा।
मोहन कज्जल आँख दिहे॥
करपूर चंदन से, करपूर चंदन से।
बास सुगंध बढ़ाय चली॥
ननदोई कुसल से, ननदोई कुसल से।
बहनोई क सुजस बढ़ै रे बढ़ै॥
बाढ़ै देवरा तुम्हारा, बाढ़ै देवरा तुम्हारा।
भाइन बृद्धि बढ़ै रे बढ़ै॥
समधी अति ही रंगीला, समधी छैल छबीला।
समधिन रूप उजागरी॥
तिया नइया बनी है, तिया नइया बनी है।
ए पति खेवनहार अरी॥

अर्थ स्पष्ट है।

विवाह के अवसर पर, वर को जिमाते समय, यह गारी गाई जाती है।

(२६)

विमल किरतिया तोहरी कृसन जी
फिरा थी उघारी उघारी कि वाह वा॥१॥
चन्दिनि होइ गगन में पहुँची
सुरपति कीन बड़ाई कि वाह वा॥२॥
भक्ति होइ संतन में पहुँची
सन्तों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥३॥
बुद्धि होइ पँडितन में पहुँची
पँडितों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥४॥
कविता होइ कविन में पहुँची
कवियों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥५॥

दया होइ परजन में पहुँची
परजों ने कीन बड़ाई कि वाह वा ॥६॥
यकमति होइ भाइन में पहुँची
भाइयों ने कीन बड़ाई कि वाह वा ॥७॥
क्षमा होइ ब्राह्मण मे पहुँची
ब्राह्मणों ने कीन बड़ाई कि वाह वा ॥८॥
सत्य सुगन्ध समीर लै पहुँची
सब जग होइ बड़ाई कि वाह वा ॥९॥

हे कृष्ण! तुम्हारी विमल कीर्त्ति खुली-खुली घूम रही है ॥१॥
चाँदनी होकर वह आकाश में पहुँची, तो इन्द्र ने उसकी बड़ाई की ॥२॥
भक्ति होकर भक्तों में पहुँची, तो संतों ने बड़ी बड़ाई की ॥३॥
बुद्धि होकर पंड़ितों में पहुँची, तो पंड़ितों ने बड़ी बड़ाई की ॥४॥
कविता होकर कवियों में पहुँची, तो कवियों ने बड़ी बड़ाई की ॥५॥
दया होकर प्रजा में पहुँची, तो प्रजाओं ने बड़ी बड़ाई की ॥६॥
एकमति होकर भाइयों में पहुँची, तो भाइयों ने बड़ी बड़ाई की ॥७॥
क्षमा होकर ब्राह्मण में पहुँची, तो ब्राह्मणों ने बड़ी बड़ाई की ॥८॥
सत्य की सुगंध होकर हवा में पहुँची, तो सारे संसार ने बड़ाई की ॥९॥

यह गारी विवाह में, वर को भोजन कराने के अवसर पर, गाने के लिये दिअरा राज (सुलतानपुर) की स्व० राजमाता रानी रघुवंशकुमारीजी ने बनाई थी। उधर इसका प्रचार भी है। इस संग्रह में, जिसमें प्रायः सब प्राचीन गीत ही हैं, यह दिखाने के लिये कि गीत-रचना में स्त्रियों का प्रयत्न बराबर जारी है, और वे समय के अनुकूल गीत रचा करती हैं, यह गीत दे दिया गया है।

(२७)

खाइ लेहू खाइ रे लेहू दहिया से रे भात।
तोहरी ऊ बिदवा ऐ बेटी बड़े भिनु रे सार ॥१॥

बिरना कलेउवा ऐ अम्मा हँसी खुशी रे द।
हमरा कलेउवा ऐ अम्मा दिहेउ रीसीयाइ ॥२॥
हम अउ बिरना ऐ अम्मा जन्मे एक रे संग।
सँग सँग खेलेऊँ रे अम्मा खायँउ एक रे संग ॥३॥
भइआ के लिखला ऐ अम्मा बाबा कइ रे राज।
हमरा लिखला ऐ अम्मा अति बड़ी दूरि ॥४॥
अँगना घूमि आ रे घूमि बाबा जे रोवैं।
कतहूँ न देखउँ ए बेटी नेपुरवा झनकार ॥५॥

कन्या का विवाह हो चुका है। दूसरे दिन वह बिदा होनेवाली है। माँ कहती है—हे बेटी! दही से भात खा लो। कल बड़े सबेरे तुम्हारी बिदा है ॥१॥

बेटी कहती है—माँ! भाई को तो तुम बड़ी हँसी-खुशी से कलेवा देती थी; पर मेरा कलेवा तुम नाराज़ी से दिया करती थी ॥२॥

भाई और मैं, दोनों एक साथ जन्मे थे। साथ-साथ खेले और साथ-साथ खाये थे ॥३॥

भाई को तो पिता का राज लिखा है, और मुझे, हे माँ! बड़ी दूर जाना है ॥४॥

कन्या के बिदा होने पर पिता आँगन में घूम-घूमकर रो रहा है—हाय! बेटी के पाज़ेब की आवाज़ कहीं से सुनाई नहीं पड़ती ॥५॥

बेटी की बिदा का दृश्य बहुत ही करुण-रस-पूर्ण होता है। इस गीत में माँ को बेटी का प्रेमपूर्ण उलहना कि "तुम भाई को और मुझे कलेवा देने में पक्षपात करती थी", बड़ा ही हृदय-वेधक है। बेटी के बड़ी दूर जाने की बात भी हृदय को हिला देने वाली है। प्यारी बेटी के चले जाने पर बाबा का आँगन में पागल की तरह घूमना और विलाप करना स्वाभाविक ही है।

(२)

अरे अरे बेटी पियारी रानी! तोरी बोल भली।
तोरी बचन भली॥
ऐसन बबैया घर छोड़ि के बेटी! कहवाँ चली,
बेटी! कहँवाँ चली॥१॥
जैसे बना की कोइलिया, उड़ि बागाँ गईं, फुलवरियाँ गईं।
तैसे बाबा घरा छोड़ि के, अब मैं ससुरे चली,
ससुरिया चली॥२॥
घोड़वा चढ़ा भैया आगे खड़े हाथे तीर कमाँ, हाथे तीर कमाँ।
रोकहिं बहिन कै डगरिया बहिन मोरी कहवाँ चली,
बहिनी कहवाँ चली॥३॥
जाने दे भैया जाने दे बाबा लगन धरी, अम्मा साज करी।
ऐहौं मैं काजे परोजन बिरन तोरे बेटा भये,
तोरे बेटा भये॥४॥

हे मेरी प्यारी बेटी! तेरी बात बड़ी मीठी है। तू ऐसे पिता का घर छोड़कर कहाँ चली? ॥१॥

बेटी ने कहा—जैसे बन की कोयल कभी उड़कर बाग में गई, कभी फुलवारी में। वैसे ही मैं अपने पिता का घर छोड़कर ससुराल चली॥२॥

घोड़े पर चढ़ा, हाथ में तीर-धनुष लिये भाई आगे खड़ा है। उसने रास्ता रोककर कहा—हे मेरी बहन! तू कहाँ जा रही है? ॥३॥

बहन ने कहा—हे भैया! जाने दो। पिता ने विवाह ठीक किया और माँ ने तैयारी कर दी। मैं अब जा रही हूँ। कभी कोई काम-काज पड़ेगा या तुम्हारे बेटा होगा, तब आऊँगी॥४॥

हिन्दुओं में बेटी की विदा का अवसर बड़ा ही करुणा जनक होता है। यह गीत उसी अवसर का है। यह गीत जब स्त्रियाँ करुण-स्वर में गाती हैं, तब सुननेवालों का धैर्य थामे नहीं थमता।

गीतों में जहाँ कहीं छोटे भाई का वर्णन आया है, वहाँ वह तीर-धनुष या तलवार लिये हुये दिखाया गया है। कभी इस देश में छोटे बच्चे तीर-धनुष और तलवार ही से खेला करते थे।

(२९)

मोरे मन बसि गयें चतुरगुन हृदय नरायन।
सखिया सब बिसरैं तो बिसरैं मोर राम नाहिं बिसरैं ॥१॥
सब सखिया मिल पूछलीं अपनी सीतल देई से।
सीता कइसन तोहार राम बाटेन तोहैं नाहिं बिसरै ॥२॥
रेखिआ भिनत अति सुन्दर चलत धरती दलकै
बिजुली चमाकै।
सखिया हँसत देव गराजै राम नहिं बिसरैं ॥३॥
सब सखिया मिल पूछन लागीं अपनी सीतल देई से।
मोरी सीता चलतिउ अजोधिया में राम देखि आइत ॥४॥
छोटै मोट पेड़वा छिउलिया क मोतियन गहदल।
तेहिं तर राम आसन डाले ओढ़ले पीताम्बर ॥५॥
सब सखिया मिलि गइलिन चरन धोई पिअलिन।
सीता कौन तपेस्या तुँ कइलिउ राम वर पउलिउ ॥६॥
भूखल रहलिउँ एकादसिया दुवादसिया क पारन।
विधि सैं रहिउँ अइतवार राम वर पायों ॥७॥
तीनि नहायों कतिकवा तेरह बैसखवा।
माघै मास नहायों अगिन नाहिं ताप्यों।
करेउँ तिलौवा क दान, राम वर पायों ॥८॥

सीता कहतीं हैं—मेरे मन में गुणवान् राम बस गये हैं। हे सखियो! सब भूलें तो भूलें, राम नहीं भूलते ॥१॥

सब सखियाँ अपनी सीता से पूछती है—हे सीता! तुम्हारे राम कैसे हैं? जो तुम्हें नहीं भूलते ॥२॥

सीता कहती हैं—राम अभी युवक हैं। रेख भिन रही है। बहुत सुन्दर हैं। ऐसे वीर हैं कि उनके चलने से धरती हिलती है, बिजली चमकती है। हे सखियो! जब वे गंभीर हँसी हँसते हैं, तब मानो बादल गरज उठता है। वह राम मुझे नहीं भूलते ॥३॥

सब सखियाँ अपनी सीता से पूछने लगीं—हे सीता! अयोध्या चलो तो एक बार राम को देख आवें ॥४॥

छिउल का छोटा-सा पेड़ है, जो मोती ऐसे फूलों से खूब घना हो रहा है। उसी के नीचे पाताम्बर ओढ़े राम आसन पर बैठे हैं ॥५॥

सब सखियाँ मिलकर गईं, चरण धोकर पिया और सीता से पूछा—हे सीता! कौन-सी तपस्या से तुमने राम ऐसा वर पाया? ॥६॥

सीता ने कहा—एकादशी भूखी रहकर द्वादशी को पारण किया। विधिपूर्वक रविवार का व्रत किया। तब मैंने राम ऐसा वर पाया ॥७॥

तीन कार्तिक और तेरह बैसाख नहाया। माघ महीने भर स्नान किया, अग्नि नहीं तापा और तिल से बने मिष्टान्न का दान किया, तब राम ऐसा वर पाया ॥८॥

व्रत रहने और किसी खास महीने में स्नान करने से अच्छा वर मिल सकता है, इस बात पर इस समय के शिक्षित लोग विश्वास करें या न करें; पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गीत बनाने वाले के मस्तिष्क में राम और सीता का विवाह जिस अवस्था में हुआ, उस अवस्था में राम के रेख भिन रही थी, अर्थात् मूछों के स्थान पर नन्हें-नन्हें बाल निकल रहे थे। सीता ने सखियों से राम के बलवान् शरीर और प्रभाव का जो वर्णन किया है, वह भी कम महत्त्व का नहीं है। कोई स्त्री जब किसी दूसरी स्त्री से उसके पति की प्रशंसा करती है, तब वह हर्ष से बहुत ही गद्गद् हो जाती है। यही दशा सीता की भी हुई होगी।

(३०)

सासु गोसाईं बड़ी ठकुराइन लागौं मैं चेरिया तुम्हारि रे।
जौनी बनिज सासु तोरे पुत गे सो बाटा देउ बताइ ॥१॥
हाथ कै लेउ बहुआ तेलवा फुलेलवा अउर गंगाजल नीर रे।
पूँछत पूँछत तुम जायउ बहुरिया जहाँ बसे कंत तुम्हार रे ॥२॥
घोड़वा तो बाँधे वहि घोड़सरिया हथिनी लौंग की डार रे।
अपना तो सूतैं मलिनिया के कोरवा मालिन बेनिया डोलाइ रे ।३।
कहउ तो स्वामी मोरे लाउँ तेलवा फुलेलवा कहउ तो दाबउँ
पाँउ रे।
कहउ तो एक छिन बेनियाँ डोलावउं कहउ लवटि घर जाउँ ।४।
काहे का लइहो धना तेलवा फुलेलवा काहे का दबिहउ पाउँ रे।
काहे का छिनु यक बेनिया डोलइहो तुम रे उलटि घर जाउ ॥५॥
उँचवे उँचवे जायउ री रनिया खलवे पैग जनि दीन्हेउ रे।
पराये पुरुष जनि चितयउ री रनियाँ आखिर होब तुम्हार ॥६॥
उँचवे उँचवे जाबै रे स्वामी खलवें पैगु नहि द्याबं रे।
परारि पुरुष स्वामी भय्या रे भतिजवा कउने जुग होइहो
हमार ॥७॥

बहू कहती है—हे सास! हे स्वामिनी! मैं तुम्हारी दासी लगती हूँ। जिस व्यापार के लिये तुम्हारे पुत्र जिस मार्ग से गये हैं, वह मुझे बता दो ॥१॥

सास कहती है—हे बहू! हाथ में तेल-फुलेल और गंगाजल ले लो। पूछते-पूछते तुम वहाँ चली जाना, जहाँ तुम्हारा स्वामी बसता है ॥२॥

वह ढूंढ़ते-ढूंढ़ते पति के पास पहुँचती है। क्या देखती है कि घोड़ा तो घोड़सार में बँधा है और हथिनी लौंग की डार से बँधी है। पति मालिन की गोद में सो रहा है। मालिन पंखा झल रही है ॥३॥

स्त्री कहती है—हे स्वामी ! कहो तो तेल फुलेलये लगा दूं। कहो, पैर दाब दूं। कहो तो थोड़ी देर पंखी हाँक दूं या कहो तो घर लौट जाऊँ ॥४॥

पति कहता है—हे स्त्री ! क्यों तेल-फुलेल लगाओगी ? क्यों पाँव दाबोगी ? और क्यों पंखा हाँकोगी ? तुम घर लौट जाओ ॥५॥

हे मेरी रानी ! ऊँचे-ऊँचे जाना, नीचे पैर न देना। पराये पुरुष की ओर दृष्टि न डालना। अंत में मैं तुम्हारा ही होऊँगा ॥६॥

स्त्री कहती है—हे स्वामी ! मैं ऊँचे ही ऊँचे जाऊँगी, नीचे पैर न रक्खूंगी। पराये पुरुष को भाई-भतीजे के समान देखती ही हूँ। पर तुम किस युग में मेरे होगे ? ॥७॥

इस गीत में स्त्री के हृदय की महिमा चित्रित की गई है। पुरुष व्यापार करने परदेश गया। वहाँ वह एक मालिन के प्रेम में फँस गया, अपनी स्त्री को भूल गया। स्त्री बेचारी उसकी खोज में घर से निकली। खोजते-खोजते वह उस मालिन के घर पहुँची, जिसने उसके प्राणेश्वर को बिलमा रक्खा था। पतिव्रता ने पति के अपराध की ओर ध्यान ही न दिया; बल्कि सेवा करनी चाही। पति ने उसे विदा करते समय उसे जो उपदेश दिया, वह प्रत्येक सती-साध्वी का कर्त्तव्य ही है। पर स्त्री ने जो क्षमा दिखलाई है, वह अद्भुत है। वह स्त्री के उच्च मनोबल का द्योतक है। कोई पुरुष अपनी स्त्री को पर पुरुष के साथ सम्बन्ध रक्खे हुये देखकर क्षमा नहीं कर सकता। यद्यपि ऐसी दशा में क्षमा करना हम उचित नहीं समझते; पर पुरुष को भी एक स्त्री-व्रत होना चाहिये।

(३१)

पनवा कतरि कतरि भाजी बनावउ लौंगा दिहौ धौंगार।
अच्छे अच्छे जेवना बनावो मोरी कामिनि हमहूँ जाब
गंगा नहाय ॥१॥
केके तू सौंपे अनधन सोनब्रा केके तू नौरँग बाग।
केके तू सौंपे हमैं अस धनिया तूं चले गंगा नहाय ॥२॥

बाबा के सौंपेउँ अनधन सोनवा भइया के नौरँग बाग।
माया के सौंपेउ तोहें अस धनिया हम चले गंगा नहाय ॥३॥
घरही में कुँइयाँ खोदावो मोरे सइयाँ घर ही में
गंगा नहाउ।
माता पिता कै धोतिया पखारउ उनहीं हैं गंगा तोहारि ॥४॥

हे मेरी प्यारी स्त्री! पान कतर-कतर कर उसकी तरकारी बनाओ और उसको लौंग से बघार दो। आज अच्छा-अच्छा भोजन बनाओ। हे कामिनी! मैं गंगा नहाने जाऊँगा ॥१॥

हे मेरे प्राणेश्वर! अन्न, धन और सोना तुमने किसको सौंपा? नौरंग बाग किसे सौंपा है? और मेरी जैसी अपनी प्यारी स्त्री किस को सौंपी है? जो तुम गंगा नहाने चले हो ॥२॥

पति ने कहा—पिता को अन्न, धन और सोना सौंप दिया है; भाई को नौरंगबाग; और तुमको माँ के सुपुर्द करके मैं गंगा नहाने जा रहा हूँ ॥३॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम! घर ही में कुआँ खुदवा लो और घर ही में गंगा-स्नान करो। माता-पिता की धोती धोओ; वे ही तुम्हारी गंगा हैं ॥४॥

बहू ने सच कहा है। वास्तव में माता-पिता की सेवा से बढ़कर पुत्र के लिये कोई तीर्थ नहीं। अधिक हर्ष की बात तो यह है कि स्त्री अपने पति को ऐसी शिक्षा दे रही है।

(३२)

तुम पिया की पियारी रूठे पिया को मनावै चली।
तहँ ज्ञान का लहँगा प्रेम की सारी सँवारी चली॥
तहँ सत्य की चोली दृढ़ता बंधन बाँधि चली।
तहँ नाम का अभरन अंगन अंगन बाँधि चली॥
तहँ हर्ष का हरवा स्याम रूप दृग आँजि चली।

तुम अपने प्रियतम की प्यारी ! अपने रूठे हुये पति को मनाने चली हो। ज्ञान का लहँगा और प्रेम की साड़ी सँवारकर, सत्य की चोली दृढ़ता के बन्दों से बाँधकर, नाम के गहने अंग-अंग में पहनकर, हर्ष का हार, पहनकर और प्रियतम के रूप का अंजन आँखों में आँजकर, तुम अपने रूठे हुये पति को मनाने चली हो।

(३३)

मोरे पिछवरवाँ लवँगिया क वगिया लवँग फुले आधी राति रे।
वहि लवँगा कै सीतल बयरिया महँकै बड़े भिनुसार ॥१॥
तेहि तर उतरा है सोनरा बेटौना गहना गढ़ै अनमोल रे।
सभवा बैठ बाबा गहना गढ़ावैं बिछुआ में घुँघरू लगाय ॥२॥
गढ़ु सोनरा कंगन गढ़ु तुहु बेसर तिलरी में हीरा जड़ाय रे।
मानिक मोती से बेंदिया सँवारहु चमकै बेटी केर माँग ॥३॥
यतना पहिनि बेटी चौके जे बैठैं बेटी के मन दलगीर रे।
गोर वदन बेटी साँवर होइगा मुँहवा गयल कुम्हिलाय ॥४॥
की तोरे बेटी रे दायज थोरा की रे भैया बोलैं रिसियाय रे।
की तोरे बेटी रे सेवा से चुकल्यूँ काहें तोरा मुँहवा उदास ॥५॥
ना मोरे बाबा रे दायज थोरा नाहीं भैया बोलैं रिसियाय रे।
ना मोरे बाबा हो सेवा में चुकल्यो यहि गुन मुँहवा उदास ॥६॥
तब तौ कह्यो बाबा नियरे बिअहवै बिअह्यो देसवा के ओर रे।
नैहर लोग दुलभ ह्वै हैं बाबा रहबै बिसूरि बिसूरि ॥७॥
बोलिया तौ यह तुहूँ बोल्यू बेटी मरल्यू करेजवा में बान।
अगिले के घोड़वा बीरन तोर जैहैं पीछे लागे चारि कहार ॥८॥

मेरे पिछवाड़े लौंग का बाग़ है। लौंग आधीरात में फूलती है। उस लौंग से शीतल हवा आती है और बड़े सबेरे वह खूब महकती है ॥१॥

उस लौंग के नीचे सोनार का लड़का उतरा है, जो बड़े अनमोल गहने

गढ़ता है। सभा में बैठे हुये पिताजी गहना गढ़ा रहे हैं और बिछुवे में घुंघुरू लगवा रहे हैं ॥२॥

हे सोनार! कंगन गढ़ दो। बेसर बना दो। तिलरी में हीरा जड़ दो। बेंदी को मानिक और मोती से सँवार दो। जिसमें मेरी बेटी की माँग चमक उठे ॥३॥

इतने गहनें पहनकर बेटी बेदी पर बैठी। पर उसका मन बहुत उदास था। बेटी का गोरा शरीर साँवला हो गया और मुंह कुम्हला गया ॥४॥

बाप ने पूछा—हे बेटी! तू उदास क्यों है? क्या दहेज थोड़ा है? या भाई क्रोध से बोलता है? या मैं किसी सेवा में चूक गया? तेरा मुंह उदास क्यों है? ॥५॥

बेटी ने कहा—हे पिता! न तो दहेज थोड़ा है; न भाई ही क्रोध से बोलते हैं; न तुम्हीं सेवा में चूके। मैं तो इस कारण से उदास हूँ कि, ॥६॥

पहले तो तुम कहते थे कि कहीं निकट ही विवाह करेंगे। पर तुम ने तो देश के ओर विवाह दिया। मेरे लिये अब तो नैहर के लोग दुर्लभ हो जायेंगे। मैं बिसूर-बिसूरकर रह जाऊँगी ॥७॥

बाप ने कहा—बेटी! तुमने ऐसी बात कहकर मेरे कलेजे में तीर मार दिया। बेटी! घबड़ाओ नहीं। आगे-आगे तुम्हारा भाई घोड़े पर चढ़कर जायगा। उसके पीछे तुमको लाने के लिये चार कहार भी जायेंगे ।८।

(३४)

मोरे पिछरवाँ लवँगिया की बगिया लवँगा फुलै आधिराति रे।
तेहि तर उतरैं दुलहा दुलरुवा तुरहीं लवँगिया के फूल ॥१॥
भितरा से निसरैं बेटी के भैया हाथे धनुख मुख पान रे।
कस तुहूं आये मोरे दरवजवा तुरहु लवँगिया के फूल ॥२॥
भितराँ से बोली बेटी छुलाछनि हथवा गजरा मुख पान रे।
जिनि भैया डाटौ आपन बहनोइया फुलवा मैं देब्यौं बटोरि ॥३॥

मेरे पिछवाड़े लौंग का बाग है। जिसमें आधीरात में लौंग फूलती है। उस बाग़ में लौंग के नीचे प्यारे दुलहा उतरे हैं और लौंग का फूल तोड़ रहे हैं ॥१॥

भीतर से कन्या का भाई हाथ में धनुष और मुँह में पान लिये निकला। उसने पूछा—तुम कौन हो? मेरे द्वार पर क्यों आये हो? और लौंग का फूल क्यों तोड़ रहे हो? ॥२॥

भीतर से सुलक्षणा कन्या ने, जिसके हाथ में फूलों का गजरा और मुँह में पान है, कहा—हे भाई! अपने बहनोई को मत डाटो। मैं फूल बटोर दूँगी ॥३॥

स्त्री अपने पति के मान-अपमान और सुख-दुख सब में संगिनी है। भाई के मुँह से पति का अपमान होता देखकर पति का पक्ष लेना स्त्री के लिये स्वाभाविक ही है।

(३५)

सौना भदौंना की रतिया रे बाबा भइँसि छँदानेन छुटनि।
सोवत समिया मैं कैसे जगावउँ नींद अकारथ जाय ॥१॥
कहत कहत मैं हारेउँ रे राजा बात न मोरि ओनाउ।
भइँस बेंचि सामी गहना गढ़उतेउ सोतेउ गोड़वा पसारि ॥२॥
एक बचन तोसे कहौं मोरि धनियाँ जौ रे सुनौ मन लाय।
तुहऊँ बेंचि के भइँसी बेसहतेउँ पसरा चरउतेउँ आधीराति ॥३॥

स्त्री कहती है—सावन-भादों की घोर अँधेरी रात में छानी (पैर में रस्सी लगाकर खूँटे से बँधी) हुई भैंस छूट गई। हाय! मैं सोते हुये स्वामी को कैसे जगाऊँ? उनकी नींद व्यर्थ जायगी न? ॥१॥

हे मेरे राजा! मैं कहते-कहते थक गई। तुम मेरी बात सुनते ही नहीं। भैंस बेचकर तुम मेरे लिये यदि गहना गढ़ा देते, तो टाँग फैलाकर आराम से सोते ॥२॥

पति सोते-सोते सुन रहा था। उसने कहा—हे मेरी प्राणेश्वरी! तुम मेरी एक बात सुनो तो कहूँ। मेरी बड़ी लालसा है कि तुमको बेंचकर एक भैंस और खरीद लूँ और आधीरात को पसर* चराया करूँ ॥३॥

इस गीत में किसान स्त्री-पुरुष का विनोद बड़ा ही रोचक है। स्त्री को गहने का बड़ा चाव है और पुरुष को भैंस पालने का।

(३६)

बेरिया क बेर मैं बरजेउँ रे बाबा झँझरा मड़उना जिन छाये।
झँझरे मड़उना सुरज दह लगिहैं गोरा बदन कुम्हिलाय ॥१॥
कहहु त मोरी बेटी छत्र तनाऊँ कहहु त अँचल ओढ़ाय।
कहहु त मोरी बेटी मँडिल छवाऊँ काहे के लागै घाम ॥२॥
काहे के मोरे बाबा छत्र तनउबे काहे के अंचल ओढ़ाय।
काहे के बाबा मँडिल छवौबे आजे के रतिया बसेर ॥३॥
होत बिहान पह फाटत बाबा जाबै परदेसिया के साथ।
काहे के मोरे बाबा छत्र तनौबा काहे के मँडिल छवाव ॥४॥
टाटक नयनूँ खवायउँ रे बेटी दुधवा पियायउँ सढ़ियार।
एकहू न गुन मानेउ मोरी बेटी चलिउ परदेसिया के साथ ॥५॥

पुत्री कहती है—हे पिता! मैंने तुमको बारम्बार रोका कि झाँझर माड़ौ मत छवाना। झाँझर माड़ौ में सूर्य की धूप लगेगी और गोरा शरीर कुम्हला जायगा ॥१॥

पिता कहता है—हे बेटी! कहो तो छत्र तनवा दूँ। कहो तो अंचल ओढ़ा दूँ; कहो तो छत बनवा दूँ; घाम क्यों लगे? ॥२॥

पुत्री कहती है—हे पिता! क्यों छत्र तनाओगे? क्यों आँचल ओढ़ाओगे? और क्यों छत बनवाओगे? आज ही की रात तो इस घर में मेरा बसेरा है ॥३॥

* रात में भैंस चराने को पसर कहते हैं

कल पौ फटते ही मैं तो परदेशी के साथ चली जाऊँगी। क्यों तुम छत्र तनाओगे और क्यों छत बनवाओगे ॥४॥

पिता कहता है—हे बेटी! मैंने तुमको ताजा मक्खन खिलाया। साढ़ीदार दूध पिलाया। तुमने एक भी एहसान नहीं माना और तुम परदेशी के साथ चली जा रही हो ॥५॥

इस गीत में विवाहिता पुत्री के लिये पिता के हृदय की एक गहरी कलक छिपी हुई है।

(३७)

हटियै सेंदुरा महँग भये बाबा चुंदरी भये अनमोल।
यहि सेंदुरा के कारन रे बाबा छोड़ेउँ मैं देस तुम्हार ॥१॥
बाबा कहैं बेटी दस कोस बियैहौं भैया कहैं कोस पाँच।
माया कहैं बेटी नगर अजोधिया नित उठि प्रात नहाँउँ ॥२॥
बाबा दिहिनि अन धन सोनवाँ माया दिहिनि लहर पटोर।
भैया दिहिनि चढ़न कै हाँ घोड़वा भौजी ने अपना सोहाग ॥३॥
बाबा कै सोनवाँ नवै दिन खाबै फटि जैहैं लहर पटोर।
भैया कै घोड़वा नगर खोदैबों भौजी कै बाढ़ै अहिबात ॥४॥
बाबा कहैं बेटी नित उठि आयेव माया कहै छठे मास।
भैया कहैं बहिनी काज बियाहे भौजी कहैं कस बात ॥५॥

हे बाबा! बाज़ार में सिन्दूर महँगा हो गया। चुँदरी अनमोल हो गई। इसी सिन्दूर के कारण मैंने तुम्हारा देश छोड़ दिया ॥१॥

बाबा ने कहा—बेटी! तुझे दस कोस की दूरी पर ब्याहूँगा। भाई ने कहा—पाँच कोस पर। माँ ने कहा—बेटी! अयोध्या में तेरा व्याह करूँगी, जहाँ रोज प्रातःकाल उठकर स्नान करने आऊँगी ॥२॥

बाबा ने अन्न, धन और सोना दिया। माँ ने लहरदार रेशमी धोती दी। भाई ने चढ़ने के लिये घोड़ा दिया। भौजी ने अपना सुहाग दिया अर्थात सिन्दूर दिया ॥३॥

बाबा का सोना नौ ही दिन खाऊँगी। रेशमी धोती फट जायगी। भैया के घोड़े को नगर में दौड़ाऊँगी और भौजी का सुहाग बढ़ता रहेगा ॥४॥

बाबा ने कहा—बेटी! रोज़ आती जाती रहना। माँ ने कहा—छठे-छमासे आना। भैया ने कहा—कभी कोई काम-काज पड़े तो आना। भौजी ने कहा—आने की ज़रूरत ही क्या है? ॥५॥

(३८)

सोवत रहलिउँ मैं मैया के कोरवाँ मैया के कोरवाँ हो।
मोरी भौजी जे तेल लगावैं तौ मुड़वा गुँथन करैं हो ॥१॥
आई हैं नाउनि ठकुराइनि तौ बेदिया चढ़ि बैठी हो।
वे तौ ललित मेहावरि देय तौ चलन चलन करै हो ॥२॥
एक कोस गईं दुसर, कोस तिसरे मा बिन्द्राबन हो।
धना झालरि उघारि जब चितवैं मोरे बाबा के कोई नाहीं हो ॥३॥
लिल्ले घोड़े चितकाबर दुलहा जे बोले हो।
उनके हथवा सबज कमान अपान हम होई हो ॥४॥
भूँख मा भोजन खियैहौं मैं पियासे मा पानी दैहौं हो।
धनियाँ रखबों मैं हियरा लगाय बबैया बिसरि जैहैं हो ॥५॥

मैं माँ की गोद में सोया करती थी। मेरी भौजी तेल लगाकर मेरे बाल गूँथ दिया करती थी ॥१॥

यह नाइन ठकुराइन आई है। वेदी चढ़कर बैठी है। बहुत सुन्दर महावरि लगाती है और बार-बार चलने को कहती है ॥२॥

एक कोस गई, दूसरे कोस गई, तीसरे में वृन्दावन मिला। कन्या ने जब झालर उठाकर देखा तो बाबा की तरफ का कोई दिखाई न पड़ा ॥३॥

नीले चितकबरे घोड़े पर दुलहा चढ़े थे। उनके हाथ में हरे रंग का धनुष था। उन्होंने कहा—तुम्हारा मैं हूँ ॥४॥

भूख लगेगी, मैं खिलाऊँगा। प्यास लगेगी, पानी पिलाऊँगा। हे

प्यारी स्त्री ! तुमको हृदय से लगाकर रक्खूंगा। तुम अपने बाबा को भूल जाओगी ॥५॥

(३९)

मोरे पिछवारे लौंग का बिरवा लौंग चुअै आधी रात।
लौंग बिनि बिनी ढेर लगावों लादत है बनिजार ॥१।
लादि चले बनिजार के बेटा की लादि चले पिया मोर।
हमहूँ को पलकी सजावो रे पिआरे मोरा तोरा जुरा है सनेह ॥२॥
भूखेन मरिहौ पिआसेन मरिहौ पान बिना होंठ कुम्हिलाय।
कुसकी साथरी डासन पैहौ अंग छुलिय छुलि जायँ ॥३॥
भूख में सहिहौं पिआस में सहिहौं पान डारौं बिसराय।
तुम्हरे साथ पिआ जोगिनि होइहौं ना सँग माई न बाप ॥४॥

मेरे पिछवाड़े लौंग का पेड़ है। जिसमें आधीरात को लौंग चूती (टपकती) है। मैं लौंग बीन-बीन कर ढेर लगाती हूँ, और मेरा पति, जो बनजारा (वाणिज्य करने वाला) है, उसे लादता है ॥१॥

मेरा पति, जो व्यापारी का बेटा है, लौंग लादकर चला। हे मेरे प्राणप्यारे ! मेरे लिये भी पालकी सजाओ। मुझे भी साथ ले चलो। हम और तुम तो स्नेह से बँधे हैं न ॥२॥

पति ने कहा—हे प्यारी ! भूख से मरोगी। प्यास से मरोगी। पान बिना ओंठ कुम्हला जायगा। कुश की चटाई सोने को पाओगी। जिस से सारा शरीर छिल जायगा ॥३॥

स्त्री ने कहा—मैं भूख सहूँगी। प्यास सहूँगी। पान को भूल जाऊँगी। हे प्यारे ! तुम्हारे साथ मैं जोगिनी होकर रहूँगी। न अब मेरे साथ माँ है, न बाप ॥४॥

सच है, पतिव्रता को पति के सिवा गति कहाँ ? जैसे छाया काया से अलग नहीं हो सकती, वैसे ही सती अपने पति से अलग नहीं रह सकती।

(४०)

माहे सुगहा जे भोरवैं कोइलरि देई, चलौ कोइलरि हमरे देस।
अनन्दा बन छाँड़ि देव ॥१॥
माहे जो मैं चलौं सुगहा तोरे देस, कवन कवन सुख देबो।
अनन्दा बन छाँड़ि देव ॥२॥
माहे आम जे पाके महुआ जे टपकैं, डरिया बैठि सुख लेव।
अनन्दा बन छाँड़ि देव ॥३॥
माहे दुलहा जे भोरवैं दुलहिनि का, चलौ दुलहिनि हमरे देस।
बबैया घर छाँड़ि देव ॥४॥
माहे जो मैं चलौं दुलहा तोरे देस, कवन कवन सुख देबौ।
बबैया घर छाँड़ि देव ॥५॥
जोगउब जस घिउ गागरि, हिये बिच राखब।
बबैया घर छाँड़ि देव ॥६॥

सुआ कहता है—हे कोयल! हमारे देश को चलो। आनन्द-बन को छोड़ दो ॥१॥

कोयल कहती है—हे सुआ! मैं तुम्हारे देश को चलूँ, तो मुझे तुम क्या-क्या सुख दोगे? मैं आनन्द-बन छोड़ दूँगी ॥२॥

सुआ कहता है—हमारे देश में आम पके हैं। महुआ टपक रहा है। डाल पर बैठकर सुख भोगो। आनन्द-बन छोड़ दो ॥३॥

इसी प्रकार दुलहा दुलहिन को फुसला रहा है—हे दुलहिन! हमारे देश को चलो। अपने पिता का घर छोड़ दो ॥४॥

दुलहिन पूछती है—अच्छा, यदि मैं तुम्हारे देश चलूँ, तो हे दुलहा! तुम मुझे क्या-क्या सुख दोगे? ॥५॥

दुलहा कहता है—तुमको इस तरह सँभाल कर रक्खूँगा, जैसे घी का घड़ा। और तुमको मैं हृदय में रक्खूँगा। पिता का घर छोड़कर मेरे देश को चलो ॥६॥

घी के घड़े की उपमा देहात के लोगों को बड़ी प्यारी ज.न पड़ेगी। किसान घी के घड़े को बड़ी सँभाल से रखता है।

(४१)

कहवाँ ते सोना आये कहवाँ ते रूपा आये हो।
एहो कहवाँ ते लाली पलँगिया पलँगिया जगमोहन हो ॥ १ ॥
कासी ते सोना आये गयाजी ते रूपा आये हो।
एहो सँयाँ सँग लाली पलँगिया पलँगिया जगमोहन हो ॥२ ॥
भितरे ते माया जो रोवइँ अँचरे माँ आँसू पोंछइँ हो।
एहो मोरी बिटिया चली परदेस कोखिय मोरी सूनी भई ना ॥ ३ ॥
बैठक से बाबू जी रोवइँ पटुके माँ आँसू पोंछें हो।
मोरी धेरिया चली परदेस भवन मोरा सून भये ना ॥ ४ ॥
भितरे ते भैया जो रोवइँ पगड़िया माँ आँसू पोंछइँ हो।
मोरी बहिन चली परदेस पिठिया मोरी सून भई ना ॥ ५ ॥
ओबरी ते भौजी जो रोवइँ चुनरिया माँ आँसू पोंछइँ हो।
एहो मोर ननदी चली परदेस रसोइयाँ मोरी सूनी भई ना ॥ ६ ॥

सोना कहाँ से आया? रूपा कहाँ से आया? यह लाल पलँग कहाँ से आई? यह तो ऐसी सुन्दर है कि संसार का मन मोह लेती है ॥१॥

काशी से सोना आया। गयाजी से रूपा आया है। स्वामी के साथ लाल पलँग आई है, जो संसार का मन मोह लेती है ॥२॥

भीतर माँ रो रही हैं और आँचल से आँसू पोछ रही हैं। हाय! मेरी बेटी परदेश चली। मेरी कोख सूनी हो गई है ॥३॥

बैठक में बाबूजी रो रहे हैं। दुपट्टे में आँसू पोंछ रहे हैं। हा! मेरी कन्या परदेश जा रही है। मेरा घर सूना हो गया ॥४॥

भीतर भैया रो रहे हैं। पगड़ी से आँसू पोंछ रहे हैं। हा। मेरी बहन परदेश चली। मेरी पीठ सूनी हो गई ॥५॥

भीतर कोठरी में भौजी रो रही हैं। चूँदरी में आँसू पोंछ रही हैं। हा! मेरी ननद परदेश चली। मेरी रसोई सूनी हो गई॥६॥

(४२)

सोवत रहिउँ मैं मैया के कोरवाँ निंदिया उचटि गई मोरि।
केकरे दुआरे मैया बाजन बाजै केकर रचा है बियाह॥ १॥
तुहीं बेटी आउरि तुहीं बेटी बाउरि तुहीं बेटी चतुर सयानि।
तुमरे दुआरे बेटी बाजन बाजै तुमरइ रचा है बियाह॥ २॥
नाहीं सिखेन मैया गुन अवगुनवाँ नाहीं सिखेन राम रसोइँ।
सासु ननद मोरी मैया गरियावैं मोरे बूते सहि नहिं जाइ॥ ३॥
सिखि लेउ बेटी गुन अवगुनवाँ सिखि लेउ राम रसोइँ।
सासु ननद तोरी मैया गरियावैं लै लिहौ अँचरा पसारि॥ ४॥

मैं माँ की गोद में सो रही थी। मेरी नींद उचट गई। हे माँ! किसके दरवाजे पर बाजा बज रहा है? किसका विवाह होगा? ॥१॥

माँ ने कहा—बेटी! तुम्हीं बावली हो, तुम्ही सयानी हो। हे बेटी! तुम्हारे ही दरवाजे पर बाजा बज रहा है। तुम्हारा ही ब्याह होगा॥२॥

बेटी ने कहा—हे माँ! न मैंने कोई गुण सीखा, न अवगुण। और न रसोई बनाना सीखा। ससुराल में सास और ननद जब मेरी माँ को गालियाँ देंगी, तब मुझसे तो सहा नहीं जायगा॥३॥

माँ ने कहा—बेटी! गुण-अवगुण सब सीख लो। रसोई बनाना भी सीख लो। हे बेटी! यदि सास और ननद गाली दें, तो आँचल पसार कर ले लेना॥४॥

क्षमा-शीलता की कैसी मनोहर शिक्षा माता ने पुत्री को दी है! क्षमा ही गृहस्थी की शान्ति का मूल है।

(४३)

कोठा उठाओ बरोठा उठाओ चौमुख रचहु दुआर।
बड़े बड़े पण्डित रे बेहन ऐहैं निहुरैं न कंत हमार॥ १॥

रोजै तो बेटी मोरी चौपरिया आजु काहे मन है उदास।
की तोर बेटी रे अन धन थोर हैं की पायेउ दायेज थोर।
की तोर बेटी रे सुन्दर बर नाहीं काहेक मन है उदास ॥ २ ॥
नाहीं मोर बाबा अन धन थोर भे नाहीं पायउँ दायेज थोर।
नाहीं मोर बाबा सुन्दर बर नाहीं सुनि परैं दारुनि सासु ॥ ३ ॥
राजा कै राज रोज रे बेटी परिजा के छठि मास।
सासु कै राज दसै दिन बेटी आखिर राज तुम्हार ॥ ४ ॥

कोठा उठाओ। बरामदा तैयार करो। चारोंओर द्वार लगाओ। बड़े-बड़े पण्डित विवाह में आयेंगे। देखो, मेरे स्वामी को झुकना न पड़े ॥१॥

हे बेटी! रोज तो तू मेरी चौपाल में खुश रहती थी। आज तेरा मन उदास क्यों है? क्या तेरे अन्न-धन की कमी है? या दहेज कम मिला? या तेरा वर सुन्दर नही? तू उदास क्यों है? ॥२॥

बेटी ने कहा—हे बाबा! न मेरे अन्न-धन की कमी है, न दहेज ही कम मिला और न वर ही कुरूप है। सुनती हूँ, मेरी सास बड़े कठोर स्वभाव की है। इसी से मैं उदास हूँ ॥३॥

बाप ने कहा—राजा का राज कभी खाली नहीं रहता। प्रजा का राज छः महीने का होता है, पर हे बेटी! सास का राज तो दस दिन का है, अन्त में तो तेरा ही राज होगा। अर्थात् दस दिन का दुःख सह लेना, पीछे तो तुम्हीं मालकिन होगी ॥४॥

(४४)

अरे अरे कारी कोइलिया तुहैं किन भोरवा।
ऐसन अनन्द बन छोड़ि बिन्द्रावन तू जे चलिउ ॥ १ ॥
काह कहौं मोरी मैया वही सुगवा भोरवा।
ऐसन अनन्द बन छोड़ि बिन्द्राबन हम जे चलेन ॥ २ ॥
अरे अरे बेटी दुलहिन देई तुहैं किन भोरवा।
ऐसन बबैया घर छोड़ि सजन घर तूं जे चलिउ ॥ ३ ॥

काह कहौं मोरी माई वही दुलहा भोरवा।
ऐसन बबैया घर छोड़ि सजन घर हम जे चलेन ॥ ४ ॥
गलियाँ खेलत मोर भैया झपटि घर आयेन।
छेंका है बहिनि कै राह बहिनि मोर कहँवा चलिउ ॥ ५ ॥
जाने दे ये भैया जाने दे हम तौ फन्दे परी।
काज परे हम ऐबै ये भैया पाँव उठाय ॥ ६ ॥

हे काली कोयल ! तुम्हें किसने फुसलाया ? जो तुम ऐसा आनन्द बन छोड़कर वृन्दावन को चली ॥१॥

हे माँ ! क्या कहूँ ? उसी तोते ने फुसला लिया है। इसीसे ऐसा आनन्द-वन छोड़कर मैं वृन्दावन जा रही हूँ ॥२॥

हे बेटी ! तुम्हें किसने फुसलाया ? जो तुम अपने बाबा का ऐसा घर छोड़कर सजन के घर जा रही हो ॥३॥

हे माँ ! क्या कहूँ ? उसी दूल्हे ने मुझे फुसलाया, जो पिता का ऐसा सुखदायक घर छोड़कर मैं सजन के घर जा रही हूँ ॥४॥

गली में खेलता हुआ मेरा छोटा भाई झपटकर घर आया और बहन का रास्ता छेंककर पूछने लगा—मेरी बहन ! कहाँ जा रही हो ? ॥५॥

बहन ने कहा—हे भाई ! मुझे जाने दो। मैं तो अब फंदे में पड़ गई हूँ। जब कोई काम-काज तुम्हारे यहाँ पड़ेगा, तब मैं आऊँगी। यह लो, मैं चली ॥६॥

(४५)

ऊँच नगर पुर पाटन बाबा हो
बसि गइलें कोइरी कोंहार हो।
महला के आरी पासे बसि गइले हेलवा
डलवा बीने अनमोल हो।
हमैं जोगे डलवा बिन हु भइया हेलवा
साग बेंचन हम जाब हो ॥ १ ॥

एक बने गइलों दुसरे बने गइलों
तीसरे बने लागेले बजार हो।
अपना महल मँइले रजवा पुकारेल
काह बेंचन तुहुँ जाहु रे॥ २॥
केथुआ के तोरी डाल डलइया
केथुआ क परेला ओहार हो।
केथुआ के तोरे सिर कं गेंडुरिया
काहे बेंचन तुहुँ जाउ रे॥ ३॥
बाँसन के मोरे डाल डलइला रे
पाटन परेला ओहार रे।
रेसम के मोरे सिर के गेंडुरिआ
साग बेंचन हम जाब हो॥ ४॥
आवहु कोइरिनि हमरी महलिया रे
पियहु सुरही गाइ के दुध रे।
सोवहु कोइरिनि हमरी सेजरिया
कचरहु मगही ढोली पान रे॥ ५॥
अइसन बोली राजा फेरि जनि बोलेउ
भइलीं धरम कइ बेर रे।
जोहत होइहें मोरीं सासु ननदिया
दुधवा दुहन कइ जूनि रे॥ ६॥
पोहता पोहन कइ टटिया बनइबें हो
मुरई के बेवँड़ा देब रे।
अपनो कोइरी लेइ सुतबों सेजरिया
हँसि खेलि करिबों बिहान हो॥ ७॥

हे बाबा! पाटन नगर ऊँचाई पर बसा हुआ है। उसमें कोइरी और

कुम्हार बस गये हैं। महल के आसपास हेला (महतरों की एक शाखा, जो देहात में सूप और डलिया बनाया करते हैं) बस गये हैं, जो अनमोल डलिया बिनते हैं। हे हेला भाई! मेरे लिये एक डलिया बना दो। उसमें साग रखकर बेंचने जाऊँगी ॥१॥

साग बेंचने के लिये वह एक बन में गई, दूसरे बन में गई, तीसरे बन में बाजार लगता था। बाजार के राजा ने अपने महल में से पुकारा—तुम क्या बेंचने जा रही हो? ॥२॥

किस चीज की तुम्हारी डलिया है? उस पर किस कपड़े का ओहार (परदा) पड़ा है? तुम्हारे सिर पर गेंडुली (घड़े के नीचे रखने के लिये गोल बटी हुई घास) किस चीज की है? तुम क्या बेंचने जा रही हो? ॥३॥

कोइरिन ने कहा—मेरी डलिया तो बाँस की है। उस पर रेशम का ओहार पड़ा है। मेरे सिर पर रेशम की गेंडुली है। मैं साग बेंचने जा रही हूँ ॥४॥

राजा ने कहा—हे कोइरिन! मेरे महल में आओ न? मजे से सुरा गाय का दूध पिओ। मेरी सेज पर सुख से सोओ और मघई (मगध का) पान कचरो (खाओ) ॥५॥

कोइरिन ने कहा—हे राजा! एक बार बोल लिया तो बोल लिया, फिर ऐसी बात न बोलना। धर्म की बेला (संध्या) हुई है। मेरी सास और ननद मेरी राह देखती होंगी। अब दूध दुहने की बेला आ गई है ॥६॥

मुझे तुम्हारा महल नहीं चाहिये। पोस्ते (अफीम के पौधे) की टट्टी बनवाऊँगी। उसमें मूली का बेंवड़ा लगवाऊँगी। अपने कोइरी को लेकर सेज पर सोऊँगी और हँस-खेलकर सबेरा कर दूँगी ॥७॥

ग़रीबिनी अपने झोंपड़े में, अपनी मामूली आमदनी ही में संतुष्ट है। चरित्र बेंचकर वह न सुरा गाय का दूध चाहती है, न महल, और न सुख की सेज। पोस्ते की टट्टी में मूली का बेंवड़ा उसे राजमहल से कहीं अधिक मनोहर लगता है। सच है—

टूटि खाट घर टपकत टटिऔ टूटि।
पिय कै बाँह सिर्हनवाँ सुख कै लूटि॥

महल में राजा हैं, पर 'पिय' तो नहीं है। जहाँ 'पिय' हैं, वहीं सुख है।

(४६)

अरे अरे काला भवँरवा आँगन मोरे आवो।
भवँरा आजु मोरे काज बियाह नेवत दै आवो॥ १॥
नेवत्यों मैं अरगन परगन औ ननिआउर।
एक नहि नेवत्यों बिरन भैया जिनसे मैं रूठिऊँ॥ २॥
सासु भेंटैं आपन भइया ननद आपन बीरन।
भौंरा छतिया उठी घहराय मैं केहि उठि भेंटौं॥ ३॥
अरे अरे काला भवँरवा आँगन मोरे आवो।
भँवरा फिरि से नेवत दै आवो बीरन मोर आवैं॥ ४॥
अरे अरे जागिनि भाँटिनि जानि कोई गावो।
आजु मोरा जियरा बिरोग बीरन नहि आये॥ ५॥
अरे अरे चेरिया लौंऊँड़िया दुवारा झाँकि आवो।
केहकर घोड़ा ठहनाय दुवारे मोरे भीर भये॥ ६॥
अरे अरे रानी कौसिल्ला बीरन तुमरे आये।
उनहीं के घोड़ा ठहनाय दुवारे अति भीर भये॥ ७॥
आगे आगे चौरा चँगेरवा पियरी गहागह।
लिल्ले घोड़े भैया असवार तो डँड़िया भवुज मोरी॥ ८॥
अरे अरे जागिनि भाँटिनि सभै कोई गावो।
मोरे जिअरा भये हैं हुलास बिरन मोर आये॥ ९॥
अरे अरे सासु गोसाईं करहिया चढ़ावो।
आजु मोरा जियरा हिलोरैं बीरन मोर आये॥१०॥

अस जिन जानौ बहिनी त भैया दुखित अहैं।
बहिनी बेंचबौं मैं फाँड़े क कटरिया चौक लइ अइबेउं ॥११॥
अस जिन जानौ ननदी की भौजी दुखित अहैं।
ननदी बेंचबौं मैं नाके क बेसरिया पिअरिया लइके
अइबैं ॥१२॥
कहवाँ उतारौं चौरा चँगेरवा पियरी गहागह।
कहवाँ भेंटौं बीरन भैया तौ कहवाँ भवुज मोर ॥१३॥
ओवरी उतारौ चौरा चँगेरवा पियरी गहागह।
डेवढ़ी भेंटौं बीरन भैया तौ अगना भवुज मोर ॥१४॥
लहँगा लै आये बीरन भैया पिअरी कुसुम कै।
अँगिया लै आई मोरि भौजी चौक पर कै चूंदरि ॥१५॥
हँसि हँसि पहिरिन ओढ़िन सुरुज मनाइन।
बढ़इ ववैया तोर बेल मान मोर राखेउ ॥१६॥

हे काले भौंरा! मेरे आँगन में आओ। हे भौंरा! आज मेरे यहाँ विवाह का कार्य है। तुम जाकर निमन्त्रण दे आओ ॥१॥

स्त्री मन में अनुभव करती है—मैंने गाँव और परगने भर को न्योता दिया। पर भाई को नहीं न्योता दिया, जिनसे मैं रूठी हूँ ॥२॥

सास और ननद अपने-अपने भाइयों से भेंट कर रही हैं। मेरी छाती घहरा उठती है। हाय! मेरे भाई नहीं आये। मैं किसको भेंटू? ॥३॥

वह पछताती है और कहती है—हे काले भौंरा! मेरे आँगन में आओ। हे भौंरा! भाई को फिर से न्योता दे आओ कि वह आवे ॥४॥

अरी जागिनो! अरी भाटिनो! कोई गाओ मत। आज मेरे मन में बड़ा दुःख है। मेरा भाई नहीं आया ॥५॥

अरी दासियो! जाओ, द्वार पर झाँककर देख आओ। किसका घोड़ा हिनहिना रहा है? मेरे द्वार पर किसलिये भीड़ हुई है? ॥६॥

दासियों ने कहा—हे रानी कौशिल्या! तुम्हारे भाई आ गये।

उन्हीं का घोड़ा हिनहिना रहा है और उन्हीं के लिये द्वार पर भीड़ लगी है ॥७॥

आगे-आगे चावल से भरा हुआ चँगेरा (बाँस या मूंज का बना हुआ बड़ा टोकरा) और गहरे रंग की पीली धोती है। उसके पीछे नीले घोड़े पर सवार मेरा भाई है और पालकी में मेरी भौजाई है ॥८॥

अरी जागिनी! अरी भाटिनो! सभी गाओ। आज मेरे हृदय में हर्ष उमड़ रहा है। मेरा भाई आया है ॥९॥

अरी मालकिन सासजी! कढ़ाई चढ़ाओ। आज मेरे हृदय में आनन्द उमड़ रहा है। मेरा भाई आया है ॥१०॥

भाई ने कहा—हे बहन! ऐसा मत समझना कि भाई ग़रीब है। मैं अपने कमर की कटारी बेंचकर चौक ले आता ॥११॥

भौजाई ने कहा—हे ननद! ऐसा मत समझना कि भौजाई ग़रीब है। मैं अपने नाक की बेसर बेंचकर पियरी (पीली साड़ी) ले आती ॥१२॥

यह चावल भरा हुआ चँगेरा कहाँ उतारूँ? और यह पियरी कहाँ रक्खूं? मैं अपने प्यारे भाई से कहाँ भेंट करूँ? और अपनी भौजाई से कहाँ मिलूँ? ॥१३॥

चावल का चँगेरा कोठरी में रख दो। पियरी भी वहीं रख दो। बैठक में भाई से और आँगन में भौजाई से भेंट करो ॥१४॥

भाई लहँगा और कुसुंभी रंग की पियरी ले आये हैं। भौजाई चोली और चौक पर पहनने की चूनरी ले आई हैं ॥१५॥

स्त्री ने हंस-हँसकर कपड़े पहने। फिर वह सूर्य को मनाने लगी—हे सूर्य! मेरे बाबा की लता खूब फैले; जिन्होंने आज मेरा मान रख लिया ॥१६॥

इस गीत में भाई से रूठी हुई बहन के मन का उतार-चढ़ाव ऐसा चित्रित किया गया है कि कोई महाकवि वैसा क्या कर सकेगा? ससुराल में बहू को अपने मायके के मान-अपमान का बड़ा ख्याल रहता है। सास और ननद को अपने भाइयों से मिलते देखकर बहू का रूठा हुआ हृदय

अपने भाई के लिए छटपटाने लगा। अंत में भाई आया तो बहन ने उसके लिए कितना हर्ष प्रकट किया है, यह एक-एक पंक्ति से छलक रहा है।

भाई का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है कि—'मैं गरीब हूँ तो क्या हुआ? मैं अपने कमर की कटारी बेंचकर न्योता लेकर आता।' अहा! कभी कटारी भी हमारा धन था। और वह शरीर और धन ही की नहीं, सामाजिक अभिमान की भी रक्षा करता था।

(४७)

आधे तलवा माँ हंस चूनैं आधे माँ हंसिनि।
तबहूँ न तलवा सोहावन एक रे कमल बिन रे॥ १॥
आधे बगिया माँ आम बौरे आधे माँ इमली बौरे हों।
तबहूँ न बगिया सोहावनि एक रे कोइलि बिन रे॥ २॥
आधी फुलवरिया गुलबवा आधी म केवड़ा गमकइ।
तबहूँ न फुलवा सोहावन एक रे भँवर बिन॥ ३॥
सोने क सुपवा पछोरैं मोतिया हलौरैं।
तबहूँ न पुरुष सोहावन एक रे सुनरि बिन॥ ४॥
आधे माड़ौ माँ गोत बैठैं आधे माँ गोतिन बैठैं हो।
तबहूँ न माड़ौ सोहावन एक रे ननद बिन रे॥ ५॥
बेदिया ठाड़ पण्डितवा कलस कलस करै हो।
बेदिया ठाड़ कन्हैया बहिनि गोहरावैं हो॥ ६॥
कहाँ गइउ बहिनी हमारि कलस मोर गोंठौ हो।
निचवा से डोलिया उँचवा गये पात खहराने हो॥ ७॥
अँगना से भैया भीतर गये भौजी से मत करैं हो।
धनिया आवति हैं बहिनि हमारि गरब जिनि बोलेउ
निहुरि पैयाँ लागेउ हो॥ ८॥

आवौ ननदी गोसाँइनि पैयाँ तोरे लागी हो।
बैठो माँझ मड़ौवा कलस मोर गोंठौ हो ॥ ९ ॥
भौजी तीनिउ बरन मोर नेग तीनिउ हम ले बैहो।
लेबै भौजी सोरहौ सिंगार रहँसि घर जाबै हो ॥१०॥
देबिउँ मैं तीनिउ नेग औ सोरहो सिंगारउ।
हमरे हरी जी क परम पियारि तोहार मन राखब ॥११॥

आधे ताल में हंस चुन रहे हैं, आधे में हंसिनी चुन रही हैं। फिर भी कमल बिना ताल सुन्दर नहीं लगता है ॥१॥

आधे बाग में आम बौरे हैं, आधे में इमली फूल रही है। पर कोयल बिना बाग सुन्दर नहीं लगता है ॥२॥

आधी फुलवारी में गुलाब खिल रहा है, आधी में केवड़ा महक रहा है। पर बिना भौंरे के फुलवाड़ी सुहावनी नहीं लगती है ॥३॥

घर में इतना धन है कि सोने के सूप में मोती पछोरे और हलोरे जाते हैं। पर एक सुन्दरी स्त्री बिना पुरुष शोभायमान नहीं लगता ॥४॥

आधे माँड़ौ में गोत्रवाले बैठे हैं, आधे में गोतनियाँ हैं। फिर भी एक ननद बिना माँड़ौ सूना-सा लगता है ॥५॥

वेदी पर खड़े-खड़े पण्डित 'कलश लाओ' 'कलश लाओ' की पुकार मचाये हुए हैं। वेदी पर खड़ा हुआ भाई बहन को पुकार रहा है ॥६॥

मेरी बहन कहाँ है? बहन! आओ और कलश गोंठो (चित्रित करो)। इतने में नीचे से डोली ऊपर आई और पत्ते खड़खड़ाये ॥७॥

भाई आँगन से अपनी स्त्री की कोठरी में गया और स्त्री को समझाने लगा—हे मेरी प्यारी स्त्री! मेरी बहन आ रही है। देखना, उसके सामने अभिमान की कोई बात न बोलना। झुककर, उसका पैर छूकर, उसे प्रणाम करना ॥८॥

ननद के आने पर स्त्री ने कहा—हे ननद! आओ। मैं तुमको पैर छूकर प्रणाम करती हूँ। माँड़ो के मध्य में बैठो और कलश गोंठो ॥९॥

ननद कहती है—हे भौजी ! मेरे तीन नेग हैं। मैं तीनों लूँगी। हे भौजी ! मैं सोलहों शृंगार की चीजें लूँगी, और प्रसन्न होती हुई घर जाऊँगी ॥१०॥

भौजाई ने कहा—हे ननद ! मैं तुमको तीनों नेग दूँगी और सोलहों शृंगार की चीजें भी दूँगी। तुम मेरे प्राणनाथ की परम प्यारी बहन हो। मैं तुम्हारा मन अवश्य रक्खूँगी ॥११॥

जान पड़ता है, बहन बेचारी गरीब थी। इसीसे भाई ने लपककर अपनी स्त्री को पहले ही से सावधान कर दिया कि बहन के सामने गर्व की कोई बात न बोलना। बल्कि नम्रतापूर्वक झुककर प्रणाम करना। धन में हीन, किन्तु पद में मान्य व्यक्ति को धनी कुटुम्बी का अभिमान असह्य हो जाता है। धनी होने पर जो जितना ही नम्र होता है, समाज में उसकी उतनी ही इज्जत बढ़ती है।

अन्त में, बहू ने जो यह भाव प्रकट किया है कि "मेरे प्रियतम को जो प्रिय है, मैं उसका मन अवश्य रक्खूँगी।" इसमें प्रियतम के लिये बहू के हृदय में अकृत्रिम और अगाध प्रेम प्रकट होता है। जो अपने को प्रिय है, उसकी प्रत्येक वस्तु प्रिय होने ही से सच्चे प्रेम का आनन्द मिल सकता है।

(४८)

हाथ लेले लोटिया काँधे लेले धोतिया पोथिया लिहले ओरमायजी।
चलले चलल विप्र गइले अयोधिया ठाढ़ भइले दसरथ द्वार जी।
तोहरा घरे राजा राम दुलरुआ मोरा घरे सीता कुँआरि जी ॥१॥
नौ लाख घोड़ा नौ लाख हाथी नौ लाख तिलक दहेज जी।
सीता ऐसन बारे दुलहिन देबों जासे होइहैं अवध अँजोर जी ॥२॥
अइसन बोली जनि बोली ये विप्र मोरा बूते सहलो न जाय जी।
समुचे अजोधिया के राम दुलरुआ मोरा बूते कहलो न जाय जी।३।

हाथ में लोटिया ले लिया; कंधे पर धोती और बगल में पुस्तक लटका ली। चलते-चलते ब्राह्मण अयोध्या पहुँचा और दशरथ महाराज

के द्वार पर खड़ा हुआ। ब्राह्मण ने कहा—हे राजा! तुम्हारे घर में प्यारे राम हैं और हमारे घर में कुँवारी सीता हैं ॥१॥

नौ लाख घोड़ा, नौ लाख हाथी और नौ लाख रुपये तिलक में दिये जायेंगे। सीता ऐसी दुलहिन दूँगा, जिससे सारे अयोध्या में प्रकाश छा जायगा ॥२॥

महाराज दशरथ ने कहा—हे ब्राह्मण! ऐसा वचन मत बोलो। मुझ से सहा नहीं जाता। राम सारी अयोध्या के प्यारे हैं। अकेला मैं कुछ कह नहीं सकता ॥३॥

गीत की अन्तिम पंक्ति से मालूम होता है कि गीत रचनेवाले की राय में राजा अपने पुत्र का विवाह भी प्रजा की सम्मति बिना नहीं कर सकता। तुलसीदास ने भी दशरथ के मुँह से ऐसा ही कहलाया है —

जो पाँचहिं मत लागै नीका।
करहु हरषि हिय रामहि टीका ॥

राजाओं को इस गीत पर ध्यान देना चाहिए।

(४९)

अरी अरी कारी कोइलि तोर जतिया भिहावन रे।
कोइलरि बोलिया बोलउ अनमोल त सब जग मोहै रे ॥ १ ॥
अरी अरी कारी कोयलिया आँगन मोरे आवहु रे।
आजु मोरे पहिला बियाहु नेवत दै आवहु रे ॥ २ ॥
नेउतेउँ मैं अरगन परगन अरे ननिआउर रे।
कोइलरि एकु न नेउतेउँ बीरन भइया जिनसे मैं रूठिउँ रे ।३।
अरी अरी सखिया सहेलरि मंगल जनि गावहु रे।
सखिया आजु मोरा जियरा उदास बीरन नाहीं आए रे ॥४॥
आगे के घोड़वा भइया मोरे डोलिया भउज रानी रे।
एहो बीच में सोहैं भतिजवा तौ भरिगा हैं माड़उ रे ॥ ५ ॥

कहवाँ उतारौं बीरन भइया कहवाँ भउज रानी रे।
रामा कहवाँ उतारौं भतिजवा तौ भरिगा है आँगनु रे ॥ ६ ॥
द्वारे उतारौ वीरन भइया महले भउज रानी रे।
रामा अंगने माँ खेलैं भतिजवा तौ भरिगा है माड़ऊ रे ॥ ७ ॥
अरी अरी सखिया सहेलरि मंगलु अब गावहु रे।
आजु मोरा जियरा हुलास बीरन भइया आये हैं रे ॥ ८ ॥
अरी अरी नाउनि बारिनि नेगु अब माँगहु रे।
आजु मोरा जियरा हुलास बीरन भइया आये हैं रे ॥ ९ ॥

हे काली कोयल ! तुम्हारी जाति देखने में तो बड़ी भयानक लगती है। पर तुम ऐसी मीठी बोली बोलती हो कि उस पर सारा संसार मुग्ध हो जाता है ॥१॥

हे काली कोयल ! मेरे आँगन में आओ। आज मेरे घर में पहला विवाह है। तुम न्योता दे आओ ॥२॥

मैंने परगने भर को, सब संबधियों को न्योता दिया। हे कोयल ! पर मैं अपने भाई से रूठी हूँ। उसको न्योता मत देना ॥३॥

हे सखी सहेलियो ! मंगल-गीत न गाओ। हे सखियो ! आज मेरा मन उदास है। मेरा भाई नहीं आया है ॥४॥

अहा ! आगे के घोड़े पर मेरा भाई और पीछे की डोली में मेरी भावज रानी आ रही हैं। अहो ! बीच में मेरा भतीजा है। इनसे सारा माड़ौ (मंडप) भर गया है ॥५॥

भाई को कहाँ उतारा जाय ? भावज रानी को कहाँ उतारा जाय ? भतीजे को कहाँ उतारा जाय ? जिनसे आँगन भर गया है ॥६॥

भाई को द्वार पर उतारो। भावज रानी को महल में डेरा दो। भतीजा तो आँगन में खेलता रहेगा, जिनसे माँड़ौ भर गया है ॥७॥

हे सखी सहेलियो ! मंगल गाओ। आज मेरा मन बहुत प्रसन्न है। मेरा भाई आया है ॥८॥

हे नाइनो ! हे बारिनो ! अब मुँह-माँगा नेग लो। आज मेरा मन बहुत प्रसन्न है। मेरा भाई आया है ॥९॥

(५०)

हे पाँच पान नौ नरियल।
सरगै जे बाटे आजा परपाजा,
दादा औ चाचा तुमरौ नेवता ॥
भुइयाँ भवानी पाटन कै देवी,
बिजलेश्वरी माता काली माई,
डिवहार बाबा तुमरौ नेवता ॥
बिंध्याचल कै देवी तुमरौ नेवता ॥
घर क देवी शायर भवानी तुमरौ नेवता ॥
साँप गोजर बीछी कूछी तुमरौ नेवता।
आँधी पानी लड़ाई झगड़ा,
डीमी धींगा तुमरौ नेवता ॥
ओंठ बिचकावनि भौंह सिकोरनि,
तुमरौ नेवता ॥
इसरा बिसरा कन्या कुमारी,
तुमरौ नेवता ॥
हे ओऊ जे अम्मा लाये जे अम्मा
बौरे हैं आजु ॥
पाँच पान नौ नरियल !

यह गीत स्त्रियों का निमंत्रण-गीत है। ब्याह आदि शुभ-अवसरों पर कहीं-कहीं यह गाया जाता है।

इसमें 'ओंठ बिचकावनि' और 'भौंह सिकोरनि' ये दो शब्द खास ध्यान देने योग्य हैं। कुछ स्त्रियों का ऐसा स्वभाव होता है कि वे दूसरे

की बढ़ती नहीं सह सकतीं। जब उनसे कोई किसीके यहाँ उत्सह आदि होने का जिक्र करता है, तब वे बड़ी उपेक्षा से मुँह बिचका देती हैं, या भौं मटका देती हैं। ऐसं स्त्रियों को भी इसलिये निमंत्रण दिया गया है कि ये भी संतुष्ट रहें और विघ्न न डालें।

(५१)

आँखि तोरी देखूँ ये दुलहा अमवा की फँकिया रे
भौंह तोरी चढ़ली कमान रे।
यतनी सुरति तुहूँ पायो दुलरुआ केहि गुन रह्यो कुँआर रे ॥ १ ॥
बाबा मोरे गयनि कमरू के देसवा रे पितिया गयनि
मेवाड़ रे।
जेठ भैया गयनि जीरा की लदनिया यहि गुन
रह्यों कुँआर रे ॥ २ ॥
दखिन के देसवा से लिखि पढ़ि आयूँ चिठिया
लिख्यों समुझाय रे।
आवहु बाबा रे आवहु काका आवहु सग जेठ भाइ रे ॥ ३ ॥
बाबा मोरे लेइ आये मोहरा पचास रे पितिया लेइ
आये हाथी घोड़ रे।
जेठ भैया लायेनि झारि पितम्बर अब मोरा रचा है बिआह रे॥४॥

हे दूल्हा! आँखें तो तुम्हारी आम की फाँकों की तरह हैं, और भौंहे चढ़ी हुई कमान की तरह। हे प्यारे! तुमने इतनी सुन्दरता पाई है; पर तुम क्वारे क्यों रह गये? ॥१॥

वर कहता है—मेरे बाबा कामरूप देश को गये थे। मेरे चचा मेवाड़ गये थे। जेठे भाई जीरा लादने गये थे। इस कारण से मैं क्वारा रह गया ॥२॥

मैं दक्षिण देश से पढ़-लिखकर लौटा, तब मैंने सब को चिट्ठियाँ लिखीं कि बाबा आओ, काका आओ, जेठे सगे भाई आओ ॥३॥

मेरे बाबा पचास मोहर लेकर आये। काका हाथी-घोड़ा ले आये। और जेठे भाई पीताम्बर ही पीताम्बर ले आये। अब मेरा विवाह हो रहा है ॥४॥

इस गीत से तो यह स्पष्ट ही मालूम होता है कि वर का विवाह तब हुआ था, जब वह दक्षिण से अच्छी तरह पढ़-लिखकर घर आया था और उसने स्वयं पत्र लिखकर अपने बाबा, काका और भाई को बुलाया और अपने विवाह के लिये उनसे कहा। वह आजकल की तरह विवाह का खिलौना नहीं था।

(५२)

लाली तोरी अँखिया ए बाबू काली तोरी केस।
कौने लोभे ऐल्या ए बाबू देसवा के ओर ॥ १ ॥
मोरे देसा बाटीं हो सासू अगुनी बहुत।
गुनिया लोभे ऐलीं ए सासू देसवा के ओर ॥ २ ॥
मैं तौसे पूछों ए बाबू हिरदै केरी बात।
कैसे कैसे रखव्या ए बाबू गुनिया केरे मोल ॥ ३ ॥
गुनिया के रखबै सासू हिरदैया लगाय।
मीठी मीठी बोलिया सासू मन हरि लेब ॥ ४ ॥

हे बाबू! तुम्हारी आँखे लाल-लाल हैं, केश काले हैं। तुम किस लोभ से इतनी दूर आये हो? ॥१॥

हे सास! मेरे देश में गुणहीन बहुत हैं। मैं गुणवन्ती की खोज में इतनी दूर आया हूँ ॥२॥

हे बाबू! मैं तुमसे हृदय की बात पूछती हूँ—तुम गुणवन्ती को कैसे रक्खोगे? ॥३॥

हे सास! मैं गुणवन्ती को हृदय से लगाकर रक्खूंगा और मीठी-मीठी बातों से उसका मन हर लूंगा ॥४॥

वर गुणवन्ती की खोज में दूर-दूर तक फिरा था। वर को समाज में

अधिकार था कि अपनी पसन्द के अनुसार अपनी जीवन-सहचरी को चुन ले। यह अधिकार न्याय-युक्त था और आजकल भी वर और कन्या को ऐसा ही अधिकार मिलना चाहिये।

(५३)

मोरे के अँगना तुलसिया रे अरे पतवन झालरि रे।
तेहिं तर ठाढ़ दुलह रामा दैवा मनावइँ रे ॥१॥
अरे का तू दैवा गरजौ अरे बिजुली तड़ापउ रे।
दैवा भिजतै बिआहन जाब पराई धेरिया बेहि लैबै रे ॥२॥
नदिया के ईरे तीरे दुलहा अरे दुलहा पुकारइँ रे।
ससुरा पठै देउ नैया नेवरिया मैं तेहि चढ़ि आवउँ रे ॥३॥
नाहीं मोरे नैया नेवरिया नाहीं मोरे केवट रे।
जो मोरी धेरिया क चाहै पइरि गंगा आवइ रे ॥४॥
भीजै मोरा अंग कै अँगरखा औ सिर कै पगड़िया हो।
ससुरा भीजै मोरा सोरहौ सिंगार तोहरे धेरियाके कारन हो ॥५॥
देब मैं अँग कै अँगरखा औ सिर कै पगड़िया रे।
दुलरू देबै मैं सोरहौ सिंगार पइरि गंगा आवहु रे ॥६॥

मेरे आँगन में तुलसी का वृक्ष है, जो पत्तों से खूब हरा-भरा हो रहा है। उसके तले वर खड़ा है और दैव से कह रहा है ॥१॥

हे दैव! चाहे कितना ही गरजो और चाहे कितना ही चमको; मैं भीगते ही विवाह करने जाऊँगा और दूसरे की कन्या को ब्याह कर लाऊँगा ॥२॥

नदी के किनारे वह पुकार रहा है—हे सुसरजी! नाव भेज दीजिये, मैं उस पर चढ़कर उस पार आ जाऊं ॥३॥

ससुर ने कहा—न मेरे नाव है, न केवट। जो मेरी कन्या चाहता है, उसे नदी तैर कर आना चाहिये ॥४॥

वर कहता है—मेरा अंगरखा भीग जायगा। मेरी पगड़ी भीख जायगी। हे ससुर! तुम्हारी कन्या के लिये मेरा सोलहो शृंगार भीग जायगा ॥५॥

ससुर कहता है—भीगने दो। मैं अंगरखा दूंगा, पगड़ी दूंगा, हे प्यारे! मैं शृंगार की सब सामग्री दूंगा यदि तुम गंगा तैरकर आओगे ॥६॥

पूर्वकाल में विवाह होने के पहले वर की योग्यता की जाँच की जाती थी। जैसे, रामायण में धनुर्भंग और महाभारत में लक्ष्य-वेध-द्वारा जाँच की गई थी। गीतों के काल में वह प्रथा उठ गई-सी जान पड़ती है। उस समय सड़कें बहुत कम थीं और नदी पार करने के लिये हरएक व्यक्ति को तैरना जानना बहुत जरूरी समझा जाता रहा होगा। इसीलिये जनेऊ और विवाह के गीतों में तैरने की कला में निपुण होने की ओर संकेत किया गया है। इसी गीत में भी वही है।

(५४)

बाजत आवै ककरहिली के बाजन घुमरत आवै निसान।
राम लखन दूनौं पूछत आवैं कवन जनक दरवाज ॥१॥
जनक दुवारे चनन बड़ रुखवा हथिनी बाँधी सउ साठ।
भितिया तौ उनके रे चित्र उरेहे उहै जनक दरवाज ॥२॥
भितराँ से निकरी हैं जनक कहारिन हाथे घइला मुख पान रे।
पनिया भरउँ मैं सब के रे रजवा बतिया न कहहुँ तुम्हारि ॥३॥
मैं तुमसे पूंछौ जनक कहारिन किन यह चित्र उरेहु।
जवनी सीतल देई क ब्याहन आयो तिन यह चित्र उरेहु ॥४॥
उठहु न दादुलि उठहु न राजा उठहु न कुँवर कँधाइ।
ऐसी सितल देई क हमना सो ब्याहउ करहिं बरइली क कारु ॥५॥

ककरहिली (?) का बाजा बजता आ रहा है। झूमता हुआ झण्डा आ रहा है। राम-लक्ष्मण दोनों पूछते आ रहे हैं, कि जनक का द्वार कौन-सा है ॥१॥

जनक के दरवाजे पर चन्दन का बड़ा वृक्ष है। साठ सौ हथिनिया बँधी हैं। दीवारों पर चित्र अंकित हैं। वही जनक का द्वार है॥२॥

भीतर से जनक की कहारिन निकली, जिसके हाथ में घड़ा और मुँह में पान है। वह कहती है—मैं इस राजा के कई पीढ़ी से पानी भरती आ रही हूँ; पर मैं इस घर की बात किसी से कहती नहीं॥३॥

राम ने पूछा—हे जनक की कहारिन! मैं तुमसे पूछता हूँ कि यह चित्र किसने लिखा है? कहारिन ने कहा—जिस सीता देवी को तुम ब्याहने आये हो, उसीने यह चित्र लिखा है॥४॥

राम कहते हैं—हे पिता! उठो। हे राजा! उठो। हे कुंवर कन्हैया! उठो। ऐसी सीता का विवाह मुझसे करो॥५॥

इस गीत में दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। एक तो कहारिन की दृढ़ता—वह कई पीढ़ियों से पानी भरती आ रही है। घर का सब भेद जानती है, पर किसी से कहती नहीं। इस गीत में अच्छे नौकरों का यह एक बड़ा सुन्दर लक्षण वर्णित है। दूसरे चित्रकला का आदर—पूर्वकाल में चित्रकला का ऐसा महत्व था कि जो कन्या अच्छा चित्र खींचना जानती थी, उसके अन्य गुणों के देखने की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। चित्रांकण देखकर ही लोग उस पर मुग्ध हो जाते थे।

(५५)

बाजत आवै ककरैला कै बाजन घुमड़त आवैं निसान।
राम लखन दूनौं पूछत आवैं कवन जनक दरबार॥ १॥
गौंवाँ के आसे पासे घन बँसवरिया आँगन नेबुला अनार।
भितिया तौ उनके रे पुतरी उरेही उहै होय जनक दुवार॥ २॥
भितराँ से निकरी हैं जनका कहांरिन राम लिहिन बुलवाय।
के यह पुतरी उरेहा कहांरिन हमसे कहउ अरथाय॥ ३॥
घर घर जनकजी पनियाँ भरावैं हमसे दुतैया नाहीं होय।
आवति हैं राजा जनका कै बारिनि उनसे पूंछेव अरथाय॥ ४॥

भितराँ से निकसी हैं जनक कै बारिन राम लिहिन बुलवाय।
के यह पुतरी उरेहा है बारिन हमसे कहौ अरथाय ॥ ५ ॥
घर घर जनकजी पतरी देवावैं हमसे दुतैया नाहीं होय।
आवति हैं राजा जनका कै नाउनि उनसे पूँछेव अरथाय ॥ ६ ॥
भितरा से निकसी हैं जनक कै नाउनि राम लिहिन बुलवाय।
के यह पुतरी उरेहा है नाउनि हमसे कहौ अरथाय ॥ ७ ॥
घर घर जनकजी विजय करावैं हमसे दुतैया नाहीं होय।
जौने रानीयवाँ का ब्याहन आयौ ते यह पुतरी उरेह ॥ ८ ॥

ककरैला (?) का बाजा बजता आ रहा है और झंडा लहराता आ रहा है। राम-लक्ष्मण दोनों भाई पूछने आ रहे हैं कि जनक का द्वार कौन-सा है? ॥१॥

गाँव के आसपास घनी बँसवारी (बाँसो का कुञ्ज) है। आँगन में नीबू और अनार लगे हैं। दीवारों पर चित्र बने हुये हैं। वही जनक का द्वार है ॥२॥

भीतर से जनक की कहारिन निकली। राम ने उसे बुलवा लिया और पूछा—हे कहारिन! यह चित्र किसने बनाया है? मुझे समझाकर कहो ॥३॥

कहारिन ने कहा—हे कुँवरजी! मैं तो राजा जनक के घर में पानी भरती हूँ। मुझे इधर की बात उधर लगाने नहीं आती। राजा जनक की बारिन आती है। उससे अच्छी तरह पूछ लीजिये ॥४॥

भीतर से जनक की बारिन निकली। राम ने उसे बुलवाकर पूछा—हे बारिन! यह चित्र किसने बनाया है? ॥५॥

बारिन ने कहा—मैं तो राजा जनक के घर में पत्तल देने का काम करती हूँ। मुझसे दूती का काम नहीं हो सकता। आप राजा जनक की नाइन से पूछ लीजिये। वह आ रही है ॥६॥

भीतर से राजा जनक की नाइन निकली। राम ने उसे बुलवाकर पूछा—हे नाइन! यह चित्र किसने बनाया है? ॥७॥

नाइन ने कहा—मैं राजा जनक के घर में रसोई जिमाने का काम करती हूँ। मुझसे दूती का काम नहीं हो सकता। आप जिस रानी को ब्याहने आये हैं, उसी ने चित्र बनाया है ॥८॥

कहारिन ने नहीं बताया, बारिन ने नहीं बताया, पर नाइन ने बता दिया। नाइन के पेट में बात नहीं पचती। नाई-नाइन के इस स्वभाव से घबराकर ही चाणक्य को लिखना पड़ा था—

नराणां नापितो धूर्तः

अर्थात् मनुष्यों में नाई धूर्त होता है।

इस गीत में एक ओर तो नाइन कहती जाती है कि मुझसे दूती का काम नहीं हो सकता। दूसरी ओर धीरे से बताती भी जाती है कि किसने चित्र बनाया है।

मुख्य बात जो इस गीत में हमें जो मिलती है, वह है स्त्रियों में चित्र-कला का प्रचार। पूर्वकाल में चित्रकला हिन्दुओं के घर-घर में थी। विवाह होने के पूर्व ही कन्या को इस कला में दक्ष हो जाना पड़ता था।

(५६)

नदिया के ईरे तीरे दुलहे पुकारेल केवट नइया लेइ आउ रे।
केवट हो तू त यार हमारा रे हाली नेवरिआ लेइ आउ रे ॥१॥
अपटि झपटि केवटा नइआ ले आवेला झटपट पार उतारु रे।
तुहु त मोरे बाबू पार उतरी गइल के हमरे दाम चुकाइ रे ॥२॥
मतली हथिनिआ हमरे बाबा जे आवेले उहे तोहरे दाम चुकाइ रे।
अल्हरे बछेड़वा हमरे भइआ जे आवेलें उहे तोहरे दाम चुकाइ रे ॥३॥
कब हम देखब बाग बगइचा रे कब हम देखब ससुरारि रे।
कब हम देखब रानी दुलहिनिआ हो नयना जइहें जुड़ाइ रे ॥४॥

गोंईड़े दखव बाबू बाग बगइचा हो दुअरे देखव ससुरार रे।
मड़बे देखव बाबू रानी दुलहिनि आहो जेहि देखी हृदया जुड़ाइ रे ॥५॥
मँड़ये में धीरे धीरे पुछेला कवन दुलहे सुन धन वचन हमारि रे।
कवनी है साली रे कवनी है सरहज कवनी हइ सासु हमारि रे॥६॥
लालइ ओढ़न लालइ डासन लालइ परेला ओहार रे।
जेकरे लिलारे प्रभु सोने कटि कुलिआ हो उहे हइ भउजी हमारि रे॥७॥
हरिअर ओढ़न हरिअर डासन हरिअर परल ओहार रे।
जेकरे ही दाँतें प्रभु सोने कवतिसिआ हो उहे हैं बहिनी हमारि रे ॥८॥
पीअर ओढ़न पीअर डासन पीअर परेला ओहार रे।
जेकर ही नैना प्रभु नीर ढुरतु हैं उहे हैं अम्माँ हमारि रे ॥९॥

नदी के किनारे दुल्हा पुकार रहा है—हे केवट! नाव ले आओ। जल्दी तैयार होकर नाव ले आओ ॥१॥

हे केवट! झपटकर नाव ले आओ और मुझे पार उतार दो। केवट ने दूल्हे को पार उतार कर कहा—हे बाबू! आप तो पार उतर गये, अब मेरी उतराई कौन देगा? ॥२॥

दूल्हे ने कहा—मदमाती हथिनी पर मेरे पिता आ रहे हैं, वे उतराई देंगे। अल्हड़ बछेड़े पर मेरे भाई आ रहे हैं, वे उतराई देंगे ॥३॥

दूल्हा सोच रहा है—मैं बाग-बगीचे कब देखूंगा? अपनी ससुराल कब देखूंगा? दुलहिन रानी को कब देखूंगा? जिसे देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे ॥४॥

किसी ने कहा—हे बाबू! गाँव के पास पहुँचकर तुम बाग-बगीचा देखोगे। घर के द्वार पर पहुँचकर ससुराल देखोगे। मंडप के नीचे दुलहिन रानी को देखोगे। जिसे देखकर तुम्हारा हृदय शीतल होगा ॥५॥

मंडप में दूल्हा धीरे-धीरे दुलहिन से पूछने लगा—हे प्यारी स्त्री! मेरी बात सुन। मेरी साली कौन है? सरहज कौन है? और मेरी सास कौन है? ॥६॥

दुलहिन कहती है—जो लाल रंग की ओढ़नी ओढ़े हैं, लाल ही जिसका बिछौना है, जिसके आगे लाल रंग का परदा पड़ा है और जिसके माथे पर लाल रंग की टिकुली (टीकी, बिन्दी) है, वह मेरी भौजी है ॥७॥

जो हरे रंग की ओढ़नी ओढ़े है, हरे रंग का जिसका बिछौना है, जिसके आगे हरे रंग का परदा पड़ा है, और जिसके बत्तीसों दाँत सोने से मढ़े हैं, वह मेरी बहन है ॥८॥

और जो पीला ओढ़े है, पीला बिछाये है, जिसके आगे पीला परदा पड़ा है और जिसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं, वही मेरी माँ है ॥९॥

गीतों की दुनिया में विवाह इतनी बड़ी अवस्था में होता था कि वर-कन्या मंडप के नीचे निस्संकोच होकर बातें कर सकते थे। इस गीत में माँ का जो वर्णन कन्या ने किया है, वह बहुत ही स्वाभाविक है। बेटी के लिए माँ का प्रेम अद्भुत होता है।

(५७)

उवहु सुरुज मन उवहु सुरुज मन तुमहिं बिन जग अँधियार।
तुमहिं बिन गौवाँ खरिकवा न लेहैं अहिरा दुहन नाहीं जाय ॥१॥
उठौ भैया साहेब उठौ भैया साहेब तुमहिं बिन माड़ौ सून।
तुमहिं बिन दुलहा चौक नाहीं बैठैं तुमहिं बिन माड़ौ सून ॥२॥
तुमहिं बिन हथिया हौदवा न लेहैं तुमहिं बिन माड़ौ सून।
उठौ बप्पा साहेब उठौ बप्पा साहेब तुमहिं बिन माड़ौ सून ॥३॥
तुमहिं बिन दुलहा चौक नाहीं बैठैं तुमहिं बिन माड़ौ सून।
तुमहिं बिन हथिया हौदवा न लेहैं तुमहिं बिन माड़ौ सून ॥४॥
उठौ फूफा साहेब उठौ फूफा साहेब तुमहिं बिन माड़ौ सून।
तुमहिं बिन दुलहा चौक नाहीं बैठैं तुमहिं बिन माड़ौ सून ॥५॥

हे सूर्यमणि! उदय हो, उदय हो। तुम्हारे बिना सारा संसार अंधकारमय है। तुम्हारे बिना गायें खरके (गोष्ठी) में न आयेंगी, और न अहीर उन्हें दुहने जायगा ॥१॥

हे भाई साहब ! उठो, उठो। तुम्हारे बिना माड़ौ सूना है। तुम्हारे बिना दुलहा चौक में नहीं बैठेगा और न हाथी पर हौद रक्खा जायगा। तुम्हारे बिना माड़ौ सूना है ॥२॥

यही पिता और फूफा के नाम से बार-बार दुहराया जाता है।

(५८)

दुअरे हे आवत दुलहा पुकारें सुनहु नउनी मोरी बात।
अरे के हईं सासु रे के सगि सरहजि कवनी हईं कामिनि हमारि ॥१॥
हाथ जे रंगल गोड़ जे रंगल रँगल बतिसवो दाँत।
अरे सारी राती सोहागे क मातिल उहे हईं कामिनि तुहारि ॥२॥
सोने के थार में आरति साजें उहे हईं सासु तुहारि।
अरे पनवाँहि फुलवा क सेजिआ बिछावें उहे हईं सरहज तुहारि ॥३॥
कोहबर आवत दुलहा पुकारें सुन सरहज मोरी बात।
अरे बारी ननदिआ क यह गति देखिहु ठाढ़ी रहेले मुरुझाय ॥४॥
तब जाइ भउजी रे ननदी सिखवलीं सुनहु ननद मोरी बात।
अरे पुरुषु भँवरवा के बेनिआ डोलावौ अँचरन करहु बयारि ॥५॥
तूं भौजी भैया क जाइ सिखावहु भउजि न करहु दुताइ।
अरे जैसे हैं फूल फले फुलवरिआँ भँवरा रहँसि रस लेइ।
बैसहीं भउजी रे तोर ननदोइआ बिहँसत बिरओ न लेइ ॥६॥

द्वार पर आकर दूल्हे ने कहा—हे नाइन ! मेरी बात सुन। ससुराल में मेरी सगी सरहज कौन है ? और मेरी कामिनी कौन है ? ॥१॥

नाइन ने कहा—जिसके हाथ मेहँदी से रंगे हैं, जिसके पैर महावर से रँगे हैं, और जिसके बत्तीसों दाँत रँगे हैं, जो सारी रात सोहाग के मद से मतवाली थी, वही तुम्हारी कामिनी है ॥२॥

सोने के थाल में जो आरती सजा रही हैं, वे तुम्हारी सास हैं। और जो पान और फूल की मेज बिछा रही हैं, वह तुम्हारी सरहज (साले की स्त्री) हैं ॥३॥

कोहबर में आकर दूल्हे ने कहा—हे सरहज! मेरी बात सुनो। अपनी किशोरी उमरवाली ननद का हाल तो देखो, खड़ी-खड़ी मुरझा रही है ॥४॥

तब सरहज ने ननद को जाकर समझाया। हे ननद! मेरी बात सुनो। भ्रमर-रूपी पति को पंखा हाँको और आँचल से हवा करो ॥५॥

ननद ने कहा—हे भौजी! बहुत दुताई (कुटनीपन) मत करो। जाकर भैया को सिखाओ। जैसे फूल फुलवाड़ी में फूलता है और भौंरा आनंद से रस लेता है, वैसे ही हे भौजी! तेरा यह ननदोई हँसता है, और बीड़ा देती हूँ, तो नहीं लेता ॥६॥

यह विनोद है। प्रेम-रस से पूर्ण है। इसमें युवावस्था में विवाहित स्त्री-पुरुष का वाग्विलास है।

(५९)

पाने क पात झलामिल बाबा सासू निहारैं दमाद।
कौन दुलहा कौन जेठ भैया कवन दुलहा जी के बाप ॥१॥
छोटी मोटी हथिनी माहवत बाबा सोनवाँ मिढ़ल दूनौं दाँत।
सोने कै छत्र बिराजति आवै दै होयें दुल्हाजी के बाप ॥२॥
पातल घोड़वा पतल असवारवा बाँधे सतरँगिया कै पाग।
दाँते बतिसिया गले मोहनमाला वई होयँ दुलहा जिव कै
जेठ भाय ॥३॥
छोट मोट डँड़िया चनन केर बाबा छोटै छोट चारि कहाँर।
माथे पर मौर झलाकत आवै वई होयँ दुलरू दमाद
देखि लेव दुलरू दमाद ॥४॥

झिलमिलाते हुए पान के पत्ते की ओट से सासु दामाद को देख रही है और पूछती है—दूल्हा कौन है? दूल्हे का जेठा भाई कौन है? और दूल्हे का बाप कौन है? ॥१॥

छोटी-सी मतवाली हथिनी है। उसके दोनों दाँत सोने से मढ़े हुये हैं। उस पर जो सवार है और जिनके ऊपर सोने का छत्र सुशोभित है, वही दूल्हाजी के पिता हैं ॥२॥

पतले घोड़े पर जो पतला सवार है और जो सतरंगी पाग बाँधे है, जिसके दाँतों में बतीसी लगी है, जिसके गले में मोहन माला लटक रही है, वही दूल्हा जी के जेठे भाई हैं ॥३॥

छोटी-सी पालकी को चार छोटे-छोटे कहार उठाये हुए हैं। उसमें जो सवार है, और जिनके माथे पर मौर झलक रहा है, वही प्यारे दामाद हैं। प्यारे दामाद को देख लो ॥४॥

इसमें दूल्हा, उसके बाप और जेठे भाई की शोभा का वर्णन है।

(६०)

हाथी में साजौं घोड़ा में साजौं साजिले मुलुक पचास हे।
एक में साजिले राजा दुलह बाबू जैसे दुजी के चाँद हे ॥१॥
बाट मिलिये गैली मालिनि बिटिया कहु मालिन साँची बात हे।
कौन हई सासू कवन हईं सरहज कौन हईं कामिनी हमार हे ॥२॥
सोने के मुसरा जिनहीं घुमावेली उहे हईं सासु तोहार हे।
पान के बीड़ा जिनहीं खियावेली सेहि हईं सरहज तोहार हे ॥३॥
हाथे मेहँदी पाँव में मेहँदी दाँत बतीसो लाल हे।
सिर पर ओढ़े कुसुम रँग चादर सेहि हईं कामिनी तोहार हे ॥४॥

मैंने हाथी सजाया, घोड़ा सजाया, पचासों देशों के लोगों से बरात सजाई, तथा अपने एक दूल्हे राजा को सजाया जो द्वितीया के चन्द्रमा की तरह सुन्दर हैं ॥१॥

रास्ते में मालिन की कन्या मिली। दूल्हे ने पूछा—हे मालिन! सच बता, कौन मेरी सास है? कौन मेरी सरहज (साले की स्त्री) है? और कौन मेरी कामिनी है? ॥२॥

मालिन की कन्या ने कहा—सोने का मुशल हाथ में लेकर जो घुमा रही हैं, वही आपकी सास हैं। जो पान का बीड़ा खिला रही हैं, वह आपकी सरहज है ॥३॥

जिनके हाथ-पाँव मेहँदी से लाल हैं, जिनके बत्तीसो दाँत लाल हैं, और जो सिर पर कुसुम्मी रंग की चादर ओढ़े हैं, वही आपकी कामिनी है ॥४॥

द्वार-पूजा के समय सास मुशल लेकर वर के ऊपर से घुमाती है, इसे परछन करना कहते हैं।

दाँत रँगने की प्रथा स्त्रियों में बहुत पुरानी जान पड़ती है। उत्तर प्रदेश ही में यह रिवाज ज्यादा है।

(६१)

सोने के पिढ़वाँ रे राम नहइलेनी झटकीला लम्बी हीं केस रे।
निकली न आवहु माई कवसिल्ला देई राम क अरती उतारु रे ॥१॥
का मैं राम क अरती उतारउँ मन मोर बहुत उदास रे।
आजु क रतियाँ मैं कैसे बितइबई राम चलेन ससुरार रे ॥२॥
जिन माई ऊमिल जिन माई धूमिल जिन मन करहु उदास रे।
आजु की रतियाँ जनक के दुअरवाँ काल होबै दास तोहार रे ॥३॥
जब राजा राम बिआहन चललेन माता सूरुज माथ नाव रे।
राम बिअही जब घर के लवटिहैं तोहैं देबैं दुधवा क धार रे ॥४॥
भइल बिआह परल सिर सेन्दुर हाथ जोड़ी सीता ठाढ़ रे।
अइसन आसीष दीहेउ मोरे बाबा भेलसों अजोधिया क राज रे ।५।
दुधवा नहायो बेटी पुतवन फलेऊ कोखियन झालर लागु रे।
बरह बरिस राम बन के सिधरिहैं तोहके रवन हर लेइ रे ॥६॥

बाउर भइल तू बाबा जनक रिखि के तोर हरला गेयान रे।
इहई बचन बाबा अगुमन बोलतेउ मरतिउँ जहर विष खाइ रे।७।
बाउर भइलू तू बेटी रे सीता देई केन तोर हरला गेयान रे।
जो कुछ लिखल बेटी तोहरे लिलरवाँ से कैसे मेटल जाइ रे।।८।।
जब बरिअतिया अवधपुर में आइली माता सूरज माथ नाव रे।
पुतवा पतोहिया नयन भर देखेउँ धन धन भाग हमार रे।।९।।
मिलहु न सखिया रे मिलहु सहेलरि मिलहु सकल रनवास रे।
जस जस मोरे माता अरती उतारईं राम नयन ढूरै आँसु रे।।१०।।
किया तोहें राम जनक गरियवलें किया तोर दायज थोर रे।
किया तोर राम सीता नाहीं सुन्दर काहे नयन ढूरै आँसु रे।।११।।
नाहीं मोरी माता जनक गरियवलें नाहीं मोर दायज थोर रे।
नाहीं मोर माता सीता नाहीं सुन्दर समुझि नयन ढूरै आँसु रे।१२।
सोने के सिंघोरवाँ माई सीता बिअहलीं दायज मिलल तीन लोक रे।
लछमी सीता रानी मोर घर आइनि हमके लिखल बनबास रे।१३।

सोने के पीढ़े (पाटे, छोटी चौकी) पर राम ने स्नान किया है। वह अपने लंबे बालों को झटक रहे हैं। हे कौशिल्या माता! तुम निकल क्यों नही आती? आकर राम की आरती उतारो।।१।।

कौशिल्या कहती हैं—मैं राम की आरती क्या उतारूँ? आज मेरा मन बहुत ही उदास है। हाय! मैं आज की रात कैसे बिताऊँगी? आज राम ससुराल जायँगे।।२।।

राम कहते हैं—हे माँ! मन को धूमिल न करो। उदास मत हो। आज की रात तो मैं जनक के द्वार पर बिताऊँगा और कल तुम्हारी सेवा में हाजिर रहूँगा।।३।।

राम जब ब्याह करने चले, तब माता ने सूर्य देवता को माथ नवाया और कहा—हे सूर्य! राम विवाह करके सकुशल घर लौट आयेंगे तो मैं तुमको दूध की धार चढ़ाऊँगी।।४।।

ब्याह हो गया। सिर में सिंदूर पड़ गया। सीता हाथ जोड़कर खड़ी हुईं और अपने पिता जनक से प्रार्थना करने लगीं—हे पिता ! ऐसा आशीर्वाद देना, जिससे मैं अयोध्या का राज सुख से भोगूं ॥५॥

जनक ने कहा—हे बेटी ! दूध से नहाओ; पुत्रों से फलों; बहुत संतानवाली होओ। पर बारह वर्ष के बाद राम बनको जायँगे और तुमको रावण हर ले जायगा ॥६॥

सीता ने कहा—हे पिता जनक राजर्षि ! तुम भोले हुये हो क्या ? किसने तुम्हारा ज्ञान हर लिया है ? तुम यही बात पहले बोलते तो मैं विष खाकर मर जाती न ? ॥७॥

जनक ने कहा—बेटी ! तू बावली हुई है क्या ? तेरी बुद्धि किसने हर ली है ? अरी बेटी ! जो कुछ तेरे ललाट पर लिखा है, वह कैसे मेटा जा सकता है ? ॥८॥

जब बरात अयोध्या में आयी, तब माता ने सूर्य को सिर नवाया और कहा—मैंने आँख भरकर अपने पुत्र और पतोहू को देखा, मेरा भाग्य धन्य है ॥९॥

हे सखियो ! आओ न ? सब रनिवास मिलकर आओ न ? देखो ! माता जैसे-जैसे आरती उतार रही हैं, वैसे-वैसे राम के आँसू ढुर रहे हैं ॥१०॥

कोशिल्या ने पूछा—बेटा ! क्या तुमको जनक ने गाली दी है ? या दहेज कम मिला है ? या तुम्हारी सीता सुन्दरी नहीं है ? आँसू क्यों ढुर रहे हैं ? ॥११॥

राम ने कहा—हे माता ! न तो जनक ने गाली दी; न दहेज ही कम मिला और न सीता ही कुरूपा है। एक बात याद करके आँखों से आँसू गिर रहे हैं ॥१२॥

सीता का विवाह सोने के सिंधोरे (सिंदूर रखने का पात्र) से हुआ। तीनों लोक मुझे दहेज में मिले। और लक्ष्मी के समान रानी सीता घर आईं। पर मुझे बनवास लिखा है ॥१३॥

(६२)

कोइली जे बोलै अमवा केरा बगिया भौंरा बोलले कचनार जी।
दुलरुइता दुलहा ससुर जी के बगिया,
हाथे धनुष मुख पान जी ॥१॥
काहे लोभ गैलो बबुआ अमवा की बगिया,
काहे लोभ गैलो ससुरार जी।
अमवा लोभे गइलूँ अम्मा अमवा की बगिया
धनी लोभे गैलूँ ससुरार जी ॥२॥
क्या क्या खैलो बाबू अमवा की बगिया
क्या क्या खैलो ससुरार जी।
अमवा फलल खैलूँ अमवा की बगिया
खाँड़ दूध खैलूं ससुरार जी ॥३॥
नवईं महीना तोहिं बावू कोखिया रखवूँ
अवरू दस दुधवा पिलाय जी।
दूध पानी बाबू एकौ न दिहले कइसे चिन्हल ससुरार जी ॥४॥
दूध पानी अम्मा जबै हम दीहब जबै धनी लैवौं लिआय जी।
हमहूँ जे होइबों अम्मा बाबू जी सेवकिया
धनी होइबों दासी तोहार जी ॥५॥

कोयल आम के बाग में बोल रही है और भौंरा कचनार के वृक्ष पर बोल रहा है। प्यारे दूल्हा ससुरजी के बाग में बोल रहे हैं, जिनके हाथ में धनुष और मुँह में पान है ॥१॥

हे बेटा! तुम किस लोभ से आम के बाग में गये थे? और किस लोभ से ससुराल गये थे? पुत्र ने कहा—हे माँ! आम के लिये मैं बाग गया था और स्त्री के लिये ससुराल गया था ॥२॥

माँ ने पूछा—हे बेटा! आम के बाग में क्या खाया? और ससुराल

में क्या खाया ? बेटे ने कहा—आम के बाग में आम फले थे, वहाँ आम खाया और ससुराल मे दूध और खांड़ँ खाया ॥३॥

माँ ने कहा—हे बेटा ! नौ महीने मैंने तुमको पेट में रक्खा और दस महीने दूध पिलाया। तुमने बदले में न हमको दूध ही दिया, न पानी ही। तुमने ससुराल को कैसे पहचाना ? ॥४॥

पुत्र ने कहा—हे माँ ! मैं तुमको दूध और पानी देने के लिये ही स्त्री को लिवा लाना चाहता हूँ। मैं पिताजी की सेवा करूँगा और मेरी स्त्री तुम्हारी दासी होकर रहेगी ॥५॥

पुत्र का लक्ष्य कितना सुन्दर है !

(६३)

केथुवन छाइला अरइल खरइल केथुवन छाइला प्रयाग हो।
केवन छाइला इहे गज ओवरि भँवरा पइठि मननाइ हो ॥१॥
पनवन छाइला अरइल खरइल फुलवन छाइला प्रयाग हो।
बेतवन छाइला इहे गज ओवरि भँवरा पइठि मननाइ हो ॥२॥
तहुँ पईठी सुतेल दुलरू कवन रामा पयँते कवनि देई रानि हो।
मोही तोसे पुछेलों ससुरजी के धेरिया हो काहें तोर
बदन मलीन हो ॥३॥
माई तोहारि प्रभु मारे गरियावे बहिनी बोलेंली बिरही
बोल हो।
लहुरा देवर मारेला लाली छरियवा वोही गुन
बदन मलीन हो ॥४॥
माई के वेचवों धनी हाटी बजरिया बहिनी बिदेसिआ
के हाथ हो।
भइया के मारौं धनी रतुली कमनियाँ हम तुहुँ वेल-
सब राज हो ॥५॥

माई तोहारि प्रभु जी सिर कै पछेवड़ा हो बहिनी तोहारि
सिर पाग हो।
भइया तोहार साहेब दाहिनी बँहियाँ हम तरवा कइ धूरि हो ॥६॥

अरैल (प्रयाग के निकट एक स्थान) किससे छाया है? प्रयाग किससे छाया है? और यह कोठरी किसने छाई है? जिसमें भौंरा प्रवेश करके गुञ्जार करता है ॥१॥

अरैल पान से छाया है। प्रयाग फूल से छाया है। और यह कोठरी बेंतों से छाई है, जिसमें भौंरा प्रवेश करके गुञ्जार करता है ॥२॥

उस कोठरी में प्रवेश करके दुलारे अमुक राम सोते हैं। जिनके पैरों के पास अमुक देवी बैठकर सेवा कर रही है। पति पूछता है—हे मेरे ससुरजी की कन्या! मैं तुझसे पूछता हूँ—तेरा मुँह उदास क्यों है? ॥३॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम! तुम्हारी माँ मारती है और गाली देती है। तुम्हारी बहन ताने मारती है। तुम्हारा छोटा भाई लाल छड़ी से मारता है। इसी कारण से मैं उदास रहती हूँ ॥४॥

पति ने कहा—हे प्यारी स्त्री! मैं माँ को बाजार में बेंच दूँगा। बहन को किसी परदेशी को दे डालूँगा। भाई को लाल कमान से मार डालूँगा और हम तुम सुख से राज भोगेंगे ॥५॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम! माँ तो तुम्हारे सिर की पछेवड़ा (?) हैं। बहन तुम्हारे सिर की पगड़ी हैं। और भाई तो हे मेरे मालिक! तुम्हारी दाहिनी भुजा हैं। मैं तुम्हारे पैर की धूल हूँ ॥६॥

उत्तेजित पति को बहू ने कैसी नम्रता से शांत किया है। ऐसी ही बहुओं से गृहस्थी की शोभा है।

(६४)

बना मेरो कुञ्जन से बनि आये—बना मेरो।
सिरे सोहै मलमल की पगिया मौरा में छबि आई—बना मेरो ॥१॥
माथे सोहै मलयागिरि चन्दन सुरमा में छबि आई—बना मेरो ॥२॥

काने सोहै सूरत को मोती चुन्नी में छबि आई—बना मेरो ॥३॥
अंगे सोहै खासे का जोड़ा नीमा में छबि आई—बना मेरो ॥४॥
फाँड़े सोहै गुजराती फेटा लरिया में छबि आई—बना मेरो ॥५॥
पायँ सोहै सकलाती जूता मोजे में छबि आई—बना मेरो ॥६॥

आज मेरा दूल्हा कुञ्ज में से शृंगार करके आया है।

दूल्हे के सिर पर मलमल की पगड़ी सुशोभित है। मौर में छवि आ गई है ॥१॥

माथे पर मलयागिरि का चंदन सुशोभित है। सुर्मे में शोभा आई हुई है ॥२॥

कान में सूरत का मोती सुशोभित है। चुन्नी में रूप खिल पड़ा है ॥३॥

कमर में गुजराती फेंटा सुशोभित है। दुपट्टे में सौन्दर्य उमड़ पड़ा है ॥४॥

बदन में खासे का जोड़ा सुशोभित है। नीमा में मनोहरता है ॥५॥

पैर में मखमल का जूता सुशोभित है। मोजे में लावण्य आ गया है ॥६॥

इस गीत में दो-तीन बातें विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो उन स्थानों के नाम, जहाँ की खास-खास चीजें मशहूर थीं। जैसे गुजरात का फेंटा और सूरत का मोती। गीतों के ज़माने में उत्तर प्रदेश में गुजरात से फेंटे बनकर आते होंगे और गाँव-गाँव में प्रसिद्धि पाये होंगे। सूरत के जौहरी तो अब भी प्रसिद्ध हैं। वहाँ से मोती इधर आते रहे होंगे। दूसरे सकलाती शब्द। यह शब्द बहुत पुराना है। पृथ्वीराजरासो में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। जैसे—

तिनं पक्खरं पीठ हय जीन सालं।
फिरंगी कती पास सुकलात लालं ॥

अर्थात् उनके घोड़ों की काठियों के जीन ऊनी शाल के थे। कितने ही फिरंगियों के पास लाल मखमल के जीन थे।

सकलात अंग्रेज़ी के Scarlet Cloth का अपभ्रंश जान पड़ता है। बिलायती लाल रंग का मखमल, जान पड़ता है, जो भारत में रासो

की रचना के समय ही से आने लगा था और गाँव गाँव में अपने अपभ्रंश रूप 'सकलात' के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के काग़ज़ों में Scarlet Cloth का ज़िक्र बारंबार आया है। कम्पनी का राज गया, पर गीतों में उसका यह शब्द अभी तक पाया जाता है।

(६५)

जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी।
मैं तेरे दिल में बसौंगी॥
हाँ हाँ रे बने तेरे सिर कै पगिया होंगी।
पेंचा होइके रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगी।
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी॥१॥
हाँ हाँ रे बने तेरे माथे कै चन्दन होंगी।
सुर्मा होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगी॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी॥२॥
हाँ हाँ रे बने तेरे काने कै मोती होंगी।
चुन्नी होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगी॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी॥३॥
हाँ हाँ बने तेरे फाँड़े कै फेंटा होंगी।
पटुका होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगी॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी॥४॥
हाँ हाँ रे बने तेरे पाँयें कै मोजा होंगी।
मेंहँदी होइ कै रहँसि रहौंगीं—मैं तेरे दिल में बसौंगी॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी॥५॥
हाँ हाँ रे बने तेरे सेज कै चन्दा होंगी।
चन्दा होइ कै छिटकि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगीं॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी॥६॥

मैं वर को जाने न दूंगी; पकड़कर रक्खूंगी । हे वर ! मैं तेरे दिल में बसूंगी।

हे वर ! मैं तेरे सिर की पगड़ी होऊँगी और पगड़ी की पेंच होकर मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूंगी ॥१॥

हे वर ! मैं तेरे माथे का चन्दन होकर रहूँगी। मैं तेरी आँखों में सुर्मा होकर रहूँगी। तेरे दिल में बसूंगी ॥२॥

हे वर ! मैं तेरे कान का मोती होऊँगी। मैं चुन्नी होकर मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूंगी ॥३॥

हे वर ! मैं तेरे फाँड़ का फेंटा होऊँगी। दुपट्टा होकर मैं मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूंगी ॥४॥

हे वर ! मैं तेरे पैर का मोजा होऊँगी। मैं मेहँदी होकर मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूंगी ॥५॥

हे वर ! मैं तेरे सेज की चाँद होऊँगी। चाँद होकर मैं छिटक रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूंगी ॥६॥

दुलहिन की कैसी सुन्दर भावना है !

(६६)

आज सोहाग कै रात चंदा तुम उइहौ।
चंदा तुम उइहो सुरुज मति उइहौ ॥१॥
मोर हिरदा बिरस जनि किहेउ मुरुग जनि बोलेउ।
मोर छतिया बिहरि जनि जाइ तु पह जिनि फाटेउ ॥२॥
आजु करहु बड़ी राति चंदा तुम उइहौ।
धिरे धिरे चलि मोरा सुरुज बिलम करि अइहौ ॥३॥

आज सोहाग की रात है। हे चन्द्र ! तुम उदय होना; पर हे सूर्य ! तुम उदय मत होना ॥१॥

हे मुर्गे ! तुम आज न बोलना। बोलकर मेरे हृदय को विरस मत करना। हे पौ ! तुम आज न फटना। कहीं मेरी छाती न फट जाय ॥२॥

हे चाँद ! तुम आज बड़ी रात करना और उदय होना। हे मेरे सूर्य ! तुम आज धीरे-धीरे चलकर देर मे आना ॥३॥

इसे लिखते समय मुझे 'प्रवीण राय' का यह कवित्त याद आया था—

कूर कुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखौं,
चुनि दै चिरैयन को मूँदि राखौं जलियों।
सारँग में सारँग सुनाइ के प्रबीन बीना
सारँग दै सारँग की जोति करौं थलियों ॥
बैठि परयंक पै निसंक ह्वै कै अंक भरौं
करोंगी अधर पान मैन मत्त मिलि यों।
मोंहि मिले इन्द्रजीत धीरज नरिन्द्र राय
एहो चंद आज नेकु मंद गति चलियो ॥

(६७)

नाहक गौन दिहे मोर बाबा बालक कंत हमार रे।
चीलर अस दुइ देवर हमरे बलमा मुसे अनुहार रे ॥१॥
तेलवा लगायउँ बुकउवा लगावउँ खटिया प दिहेउँ ओलारि रे।
नेपे नेपे आइ बिलरिया सवतिया लै गई बलमा हमार रे ॥२॥
सासु मोरी रोवैं ननद मोरी रोवैं रोवइ हमारि बलाइ रे।
कोठवा में ढूँढ़ेउँ अटरिया में ढूँढ़ेउँ खटिया तरे रिरिआइ रे ॥३॥

मेरे बाबा ने मेरा गौना नाहक ही किया। मेरा पति तो अभी बिल्कुल बालक है। मेरे दो देवर हैं, जो चीलर (कपड़े की सफेद जूँ) जैसे हैं, और मेरा पति चूहे की तरह है ॥१॥

मैंने पति को उबटन लगाया, तेल लगाया और खाट पर सुला दिया। हाय ! बिल्ली सौत की तरह चुपके-चुपके आई और मेरे पति को उठा ले गई ॥२॥

मेरी सास रो रही हैं। मेरी ननद रो रही हैं। मैं क्यों रोऊँ ? मेरी

बला रोवे। अंत में मैंने भी कोठे पर ढूंढ़ा, अटा पर खोजा तो देखा कि बालम तो खाट के नीचे पड़ा रिरिआ रहा है ॥३॥

राम! राम! पति का इससे अधिक वीभत्स चित्र कोई क्या खींचेगा? इस गीत की स्त्री युवती है, पति बालक। ऐसे अनमेल विवाह का जो परिणाम होना चाहिये, वह 'रोवइ हमारि बलाय' में साफ़-साफ़ उतर आया है। पति के लिये स्त्री के हृदय में कोई सहानुभूति नहीं है। ऐसे बेमेल विवाहों में धर्म की रक्षा धर्म-शास्त्र कहाँ तक कर सकेगा? यह विचारणीय है।

(६८)

बरहै बरिसवा कै मोरि रँगरैली असिया बरसि क दमाद।
निकरि न आवै तू मोरि रँगरैली अजगर ठाढ़ दुवार ॥१॥
बाहर किचकिच आँगन किचकिच बुढ़ऊ गिरे मुँह बाय।
सात सखी मिलि बुढ़ऊ उठावैं बुढ़ऊ क सरग दिखाय ॥२॥

बारह बरस की प्यार में पली हुई मेरी कन्या है और अस्सी वर्ष का दामाद है। ऐ प्यार में पली हुई मेरी बेटी! बाहर निकल आओ न? देखो, द्वार पर अजगर खड़ा है ॥१॥

बाहर कीचड़, आँगन में कीचड़, बुड्ढा दामाद मुँह बाकर गिर पड़ा। सात सखियाँ मिलकर उस बुड्ढे को उठा रही हैं, पर उसे तो स्वर्ग दिखाई पड़ रहा है,

इस गीत में वृद्ध-विवाह का मजाक उड़ाया गया है। बुड्ढे को अजगर बताना बड़ा सरस और अर्थ-पूर्ण है। जैसे अजगर चल-फिर नहीं सकता वैसे बुड्ढा भी। जैसे अजगर शिकार को निगल जाता है; वैसे ही बुड्ढा भी अबोध कन्या के जीवन को निगल जायगा।

(६९)

बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार।
लरिका भतार लेके सुतलीं ओसरवाँ।
बनवारी हो, रहरी में बोलेला सियार ॥१॥

खोले के तो चोली बंद खोले ला केवार।
बनवारी हो, जरि गैले एँडी मे कपार ॥२॥
रहरी में सुनि के मियरा कै बोलिया।
बनवारी हो, रोवे लगले लरिका भतार ॥३॥
अँगना से माई अइली, दुअरा से बहिना।
बनवारी हो, के मारल बबुआ हमार ॥४॥

हे बनवारी! मेरा स्वामी लड़का है। ओसारे में मैं उसे लेकर सोई। उसी समय गियार अरहर के खेत में बोला ॥१॥

खोलना तो था चोली का बंद, वह खोलने लगा केवाड़। मेरा तो एँड़ी से कपाल तक जल उठा ॥२॥

अरहर के खेत में सियार की बोली सुनकर तो वह रोने लगा ॥३॥

आँगन से माँ दौड़ी, बाहर से बहन; किसने मेरे बबुआ को मारा है? ॥४॥

यह बालक पति के साथ एक युवती बहू की मनो-वेदना का चित्र है।

(७०)

मोरे पिछवरवाँ बाँस बसेरी कोइली लीन्ह बसेर।
छोड़उ न कोइली मोरा पिछवरवा जाव नंदन बन लेउ ॥१॥
मँड़वन मँड़वन घूमैं दूलहे राम बाप कोइलि हम लेब।
कोइली बेटे न माटी की मिलिहै ना चढ़ि हाट बिकायँ ॥२॥
कोइली तौ होइ हैं समधीजी के मँड़यें जिन घर कन्या कुवांरि
गलियन गलियन घूमैं दुलहे राम कौन है ससुर दुवार।
सोने के कलस पर दियना जरत है वह देखो ससुर दुवार ॥३॥
मँड़वे की थूनी लागे ठाढ़ि दुलहिन देइं दुलहे जो पूछत बात।
तुम्हरे दादुलिजी के सोने धौराहर हमहूँ का देव बसेर ॥४॥

(मुरादाबाद)

मेरे पिछवाड़े बँसवारी है, जिसमें कोयल ने बसेरा लिया है। हे कोयल! तुम मेरा पिछवाड़ा छोड़कर जाकर नंदनवन में बसेरा लो न? ॥१॥

अमुक राम (वर का नाम) माँड़ौ माँडौ घूम रहे हैं। हे बाप! मैं कोयल लूँगा। बेटा! कोयल न मिट्टी की बनती है, न बाजार में बिकती है। कोयल तो समधीजी के माँड़ौ के नीचे मिलेगी, जिनके घर में कन्या कुमारी है ॥२॥

दूल्हाराम गली-गली में घूम रहे हैं, और पूछ रहे हैं कि ससुरजी का द्वार कौन है?

सोने के मुँडेर पर दिया जल रहा है, वही समुरजी का द्वार है ॥३॥

माँड़ौ की थून से लगकर दुलहिन खड़ी है। दूल्हे ने कहा—तुम्हारे पिता के घर का धौराहर सोने का है, उसमें मुझे भी बसेरा लेने दो ॥४॥

इस गीत में दूल्हा दुलहिन स्वयं अपनी जोड़ी चुन रहे हैं।

(७१)

कनक दियट दियना बरै, दियना बरा है अकनस।
आहो दूलह दूलही गज चौकी।
दूलह के चीरा सोनहूला जैसे संझा पलास कै टेसू,
आहो रँगहु न बाबुल खिचड़िया ॥१॥
ससुर मनावन वै चले बाबुल लेहु न गजवा पचास
से हाथ उठावहू न।
गज धरि राखउ गजसार में हमरे गज हैं अनेक
बाबा नाहीं भूखल हाथी हउद के ॥२॥
सार मनावन बै चले जीजा लेहु न तुरङ्ग पचास
आहो हाथ उठावहू भई देर से।
धरि राखउ घोड़ घोड़सार में हमरे घोड़े हैं अनेक
बाव भूखे नहीं हम घोड़े जीन को ॥३॥

सासु मनावन बै चली बावुल लेहु न मानिक मुँदरिया
से हथवा उठावहु न।
धरि राखउ हीरा मोती सासु जी हीरन भरा है अमार
आहो नहीं भूखे मुँदरी माल के ॥४॥
सरहज मनावन बै चली बाबुल लेहु न हथना बिजायठ
से हाथ उठावहु न।
धरि राखउ अपना बिजायट, गहनन भरी है सँदूक
वीवी नाहीं विजायठ साध है ॥५॥
सारी मनावन बै चली जीजा हमरे न फुटही कउड़िया
का तोहरे भेंट दें।
जीजा आपन याद देइ जाहू आहो जीजा अपने परेम
भेंट देऊँ से हथवा उठावहु न ॥६॥
इतना वचन नौसे सुनलै आहो सुनहु न पवलैं
से चौकी वइठ जेवना से जेवलैं से पान लेइ द्वारे गये ॥७॥
(पीलीभीत)

सोने की दीयटि पर दिया जल रहा है। दिया आकाश में जल रहा है। अहो! दूल्हा-दुलहिन गज-चौकी पर हैं।

दूल्हे के सिर का चीरा सुनहले रंग का है, जैसे शाम के वक्त ढाक का फूल। हे बाबू! खिचड़ी खाओ न? ॥१॥

ससुर मनाने चले। हे बेटा! पचास हाथी ले लो और हाथ उठाओ।

हे बाबा! हाथी को हाथी-शाला में रख छोड़ो। मैं हाथी और हौदे का भूखा नहीं हूँ।

साला मनाने आये। हे जीजा! पचास घोड़े लो और हाथ उठाओ, बड़ी देर हो रही है।

हे बाबू! अपने घोड़े घोड़साल में रख छोड़ो। हमारे यहाँ बहुत-से घोड़े हैं। मैं घोड़े और जीन का भूखा नहीं हूँ ॥३॥

सास मनाने आई। हे बेटा! मानिक की अंगूठी लो और हाथ उठाओ।

हे सासजी! अपने हीरा-मोती अपने पास रख छोड़ो। हीरों का तो हमारे यहाँ अम्बार लगा है। मैं अँगूठी और धन-दौलत का भूखा नहीं हूँ ॥४॥

मरहज मनाने आई। हे बाबू! हाथ का बिजायठ लो और हाथ उठाओ।

अपने बिजायठ रख छोड़ो। गहनों से संदूक भरा है। हे बीबी! बिजायठ की मुझे साध नहीं ॥५॥

साली मनाने आई। हे जीजा! हमारे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। तुमको भेंट क्या दूँ? अपनी याद छोड़ जाओ। अपने प्रेम में जो भेंट हम दें, सो लो और हाथ उठाओ ॥६॥

दुल्हे ने इतना वचन सुना। सुनने भी न पाये कि चौकी पर बैठ गये। भोजन किया और पान खाकर बाहर गये ॥७॥

इस गीत में धन के मुकाबले में प्रेम और नम्रता का महत्व दिखाया गया है।

(७२)

मेरी लाडो सोबे अटारियाँ, तले झूमर ऊपर बालियाँ ॥१॥
लाडो सोय-साय जब जागिये,
अपने दादल से बर माँगिये।
दादल एक कहा मेरा मानियो, साँवरा वर मत ढूँढ़ियो ॥२॥
पोती मन करै मन पछतावला,
तेरी दादी गोरी दादा साँवला ॥३॥
बेटी सोय-साय जब जागिये, अपने पीता से बर माँगिये।
पिता एक कहा मेरा मानियो, साँवरला वर मत ढूँढ़ियो ॥४॥
बेटी मत करै मन पछतावला,
तेरी अम्मा गोरी पिता साँवला ॥५॥

बेटी सोय-साय जब जागिये, अपने भाई से बर माँगिये।
भैया एक कहा मेरा मानियो, साँवरला वर मत ढूँढ़ियो ॥६॥
बहन मन करै मन पछतावला,
तेरी भाभी गोरी भैया साँवला ॥७॥

मेरी लाड़ली बेटी अटारी पर सोती है। उसके कान मे नीचे झूमर लटक रही है, ऊपर बालियाँ हैं ॥१॥

सो-साकर बेटी जगी, तब उसने अपने दादा से वर माँगा। हे दादा! मेरा एक कहना मानना कि साँवला वर न ढूँढ़ना ॥२॥

हे बेटी! मन में पछता न; तेरी दादी गोरी है और दादा साँवला ॥३॥

बेटी सो-साकर जगी, तब उसने अपने पिता से वर माँगा। हे पिता! मेरा एक कहना मानना कि साँवला वर न ढूँढ़ना ॥४॥

हे बेटी! मन मे पछता न, तेरी माँ गोरी है और पिता साँवला ॥५॥

बेटी सो-साकर जब जगी, तब उसने अपने भाई से वर माँगा। हे भाई! मेरा एक कहना मानना; मेरे लिए साँवला वर न ढूँढ़ना ॥६॥

हे बहन! मन में पछता न; तेरी भावज गोरी है और भैया साँवला ॥७॥

सारा खान्दान ही साँवला था, तब बेटी के साथ सहानुभूति तो किसकी होती? पर इस गीत मे कन्या के मन की थाह तो मिल ही जाती है कि कन्या गोरे रंग के वर को विशेष पसन्द करती है।

(७३)

पाँच पंडा बोल बाबुल उन घर कन्या न औतरैं।
एक निर्धनि या जिन देउ बाबुल, रहन देउ कुवाँरी।
निधनी जब तड़प बोलै अनुख मेरे जिय को सहै ॥१॥

एक हरजोतिया जिन देउ बाबुल रहन देउ कुवाँरी।
हरजोतिया हर जोत आवै, माँगे नौ दस रोटियाँ।
भरके कठौता छाँछ माँगे अनुख मेरे जिय को सहै ॥२॥
एक जुआरिहिं जिन देउ बाबुल, रहन देउ कुवाँरि।
इब्र हारे द्रव्य हारे कबहूँ की बेरा हमें हारे,
लाज तुम्हें आय है ॥३॥
एक पढ़े पंडित देउ बाबुल जासें महा सुख पाय हैं।
हाथ धोती बगल पोथी
देखि सब जग सीस नवाय है ॥४॥
(इटावा)

हे बाबा! पाँच पांडवों को सुमिरो। उनके घर कन्या नहीं पैदा होती।

हे बाबा! धनहीन को कन्या न देना; बल्कि क्वाँरी रहने देना। धनहीन जब तडपकर बोलेगा तब झुँझलाहट कौन सहेगा? ॥१॥

हल जोतनेवाले को भी कन्या न देना; बल्कि कुमारी रहने देना। वह हल जोतकर आयेगा, नौ-दस रोटियाँ माँगेगा, कठौता भरकर मट्ठा माँगेगा, तब झुँझलाहट कौन सहेगा? ॥२॥

जुआरी को भी कन्या न देना; चाहे कुमारी रहने देना। लाज-शरम हारेगा, धन-दौलत हारेगा, कभी मुझे भी हार देगा, तुमको लज्जा आयेगी ॥३॥

अच्छे पढ़े-लिखे पंडित को देना; जिससे खूब सुख पाऊँगी। जिसके हाथ में धोती और बगल में पोथी होगी, सारा संसार उसे देखकर सिर झुकायेगा ॥४॥

कन्या की इच्छा कितनी सुन्दर है!

(७४)

लाड़ो की अम्मा अरज करे हो मेरा लायक़ सा,
समधी ढूँढ़ियो, कुलकी मेरी समधिन ढूँडियो।
चन्द्र-बदन से लड़का ढूँडो मेरे कान्हा की उन्हार ॥१॥
जो तुम ढूँडो भोंडी मूरत के बुरैली सूरत के,
मरूँगी ज़हर विष खाय।
मरूगी आख धतूरा खाय तोरी सेजों न दूँगी पैर ॥२॥
(मेरठ)

दुलारी बेटी की माँ उसके पिता से बिनती करती है कि योग्य समधी ढूँढ़ना। कुलवन्ती समधिन ढूँढ़ना। चंद्रमा के समान मुँह वाला वर ढूँढ़ना, जैसा मेरा कान्ह (कृष्ण या पुत्र) है ॥१॥

यदि तुम भोंडी सूरत-शकल का, भद्दे रूप-रंग का वर ढूँढ़ोगे तो मैं विष खाकर, मदार और धतूरा खाकर मर जाऊँगी और तुम्हारी सेज पर कभी पैर न रक्खूँगी ॥२॥

माता को भी कन्या के वर के बारे में कितनी चिंता रहती है, इस गीत में यह दिखाया गया है। सेज पर पैर न रखने की सज़ा साधारण नहीं है।

(७५)

लील लील घोड़वा कँवर असवरवा रे,
कुरखेते उठ गइली धूर रे।
चन्द्र झरोखवन ठाढ़ी रे माता नीहारेली,
धीया दस आवर होय रे ॥१॥
हथिया त आबेले अनती से गनती रे,
घोड़वा जे आये सौ साठि।
मारे वरतिया के कसमस रहीवो न सूझै,
पावन खेह उधीराय रे ॥२॥

होत बिहान परल सीर सेनुर,
नव लाख दाहेज थोर रे।
भीतरी कै गेंडुवा बहर दै मरली,
सतरू के धीया जनी होइ हमे ॥३॥
समधी जे बइठैलें लाली पलँगिया हो,
आप प्रभु सथरी बिछाइ रे।
समधी जे छाँटै लै लमी लमी बतीया रे,
आप प्रभु सीर नवाइ रे ॥४॥
ई धीअवा मोरी अयेरनी बयेरनी,
ई धीया, सत्रु हमारि रे।
ई धीअवा मोर नग्र लुटावली,
अवरो हरली मोर गेयान रे ॥५॥

(गाज़ीपुर)

कुंवर (वर) नीले घोड़े पर असवार है। घोड़े की टापों से ऐसी धूल उड़ी, जैसी कुरुक्षेत्र में उड़ी थी। माता चन्द्राकार झरोखे पर खड़ी होकर देख रही है। वह प्रसन्न होकर कहती है कि और भी दस कन्यायें हों ॥१॥

हाथी तो अनगिनती आये। साठ सौ घोड़े आये। बरातियों की कसमस से राह नहीं दिखाई पड़ रही है। उनके पैरों से बहुत धूल उठ रही है ॥२॥

सबेरा होते-होते कन्या की माँग में सिन्दूर पड़ा, तब नौ लाख दहेज भी कम समझा गया। माता ने भीतर का लोटा भी बाहर पटक दिया और कहा—शत्रु के भी कन्या न हो ॥३॥

समधी लाल पलँग पर बैठे हैं। मेरे प्रभु (कन्या के पिता) चटाई बिछाकर बैठे हैं। समधी लम्बी-लम्बी बातें छाँट रहे हैं, मेरे प्रभु सिर नवाये बैठे हैं ॥४॥

यह कन्या मेरी बैरिन है। इसने मेरा नगर लुटवा लिया और मेरी सुध-बुध भी हर ली ॥५॥

विवाह की धूम-धाम और दहेज की कुप्रथा से कन्या की माता के हृदय मे जो उतार-चढ़ाव होता है, इस गीत में उसका सच्चा चित्र खींचा गया है।

(७६)

बाबल तेरा सींकों का घरवा रे, बाबल चिड़ियाँ तोड़ गईं।
बेटी और छवाय लूँगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥१॥
बाबल तेरा चौका जो सूना रे, बाबल तेरी धीय बिना।
बेटी बांमनी लँगाय लूँगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥२॥
बाबल तेरा पानी जो भिनकै रे, बाबल तेरी धीय बिना।
बेटी कहारी लगा लूँगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥३॥
बाबल मेरा डोला जो अटका रे, बाबल तेरे महल में।
बेटी दो ईंट खिचाय दूँगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥४॥
बाबल मेरी गुड़िया जो सूनी रे, पिताजी तुमरी बेटी बिना।
बेटी मेरी पोती जो खेलें री, लाडो घर जाओ आपने ॥५॥

(मेरठ)

हे बाबा! तेरा घर सीकों का बना है। उसे चिड़ियाँ तोड़ गईं। हे बेटी! दूसरा छवा लूँगा, तुम अपने घर जाओ ॥१॥

हे बाबा! तेरी कन्या के बिना तेरी रसोई सूनी है। हे बेटी! ब्राह्मणी लगा लूँगा, तुम अपने घर जाओ ॥२॥

हे बाबा! तेरी कन्या के बिना तेरा पानी-घर भिनक रहा है। हे बेटी! कहारिन लगा लूँगा, तुम अपने घर जाओ ॥३॥

हे बाबा! तेरे महलों में मेरा डोला अटक गया है। हे बेटी! दो ईंटे और जुड़वा लूँगा, तुम अपने घर जाओ ॥४॥

हे पिताजी! तेरी बेटी बिना गुड़ियाँ सूनी हो जायँगी। हे बेटी! मेरी पोती खेलेगी। तुम अपने घर जाओ॥५॥

कन्या विवाह के बाद पराई हो जाती है। पिता उसे घर में नहीं रख सकता।

(७७)

हरो हरो गुबरा पीअरो है माटी,
रनीआँ ने महल लीपाओ।
महलन उपर कागा जो बोलैं, कागा के बचन सुहाउनें॥१॥
उड़ौ न कागा तुम्है दिहैं धागा,
सोनवा मढ़ईयौं तोरी चोंच।
जो रे बीरन घर आवैरे रूपा मढ़इयौं तोरी पाँख॥२॥
कागा बिचारे जनौं न पाये वीरन ठाढ़े हैं दुआर।
वीरन आये कुछ न लाये सासु ननद मन रूठी॥३॥
जेठानी नीसो दिन बोला रे बोले बीर मोर चले हैं रिसाय।
हाथन मेंहदी पायेन जेहरी कैसे मनामैं राजा बीर॥४॥
सासु ननदिआ पैइओं तोरी लागौं,
तुमहीं मनावो राजा बीर।
हाथा की मेंहदी धोई तुम डारो पायेन डारो उतार
झपट मनावो राजा बीर॥५॥
घोड़न की बाघा पकरे बेटी जो रोमैं,
वीर मोरे धूपे नवारी।
धूप नेवारौं बहिनी बागा बगीचा, और ददुली केरे देस॥६॥
ऊँचे चढ़ि चढ़ि माया जो हैरैं अवत बहिन औ भाय।
छूछे डोलीआ छूछे कहरवा, टूटे पूत घर आमैं॥७॥

बैठो न पूत मोरे लाले पलिंग पर, कहो बहिन केरी बात।
बहिनी के रोवे में छतीआ फटत है, बरसत बड़े बड़े मेघ ॥८॥
कैसे उपजे पूत सपूत बहिनी रोवत कैसे छाड़ी।
करो न माया मोरी पूरीआ कचोरीआ,
बहिनी चलन हम जान ॥९॥
करो न भौजा मोरी डबीआ पोटरीया, बहिनी चलन हम जान।
उचे चढ़ि चढ़ि बहिनी जो हेरैं, आवत वीर हमार ॥१०॥
वीर आये चीर लाये, सासु ननद हँसि बोलीं।
सासु का हरो ननद का पीअरो, हमका दखिन केरो चीर ॥११॥
मैलो कुचैलो छोरौ न बहिनी, पहिरो दखिन वाली चीर।
ऊँचे पलिंग पर जनि बैठो वीर, पूछौ न सजन हमार ॥१२॥
पठवौ न साजन बहिनी हमारी, सामन रहे दिन चार।
सामन सब बेटी झूला जो झूलैं, भादों गरुये गंभीर ॥१३॥
कुआँ सबै बेटी नेवरता जो खेलैं, कातिक गौरी सेरामै।
अगहन सबै बेटी गौने जो जहियैं,
तब हम बहिन पठामै ॥१४॥
(आगरा)

ताजा गोबर और पीली मिट्टी, दोनों मिलाकर बहू रानी ने महल लिपवाया। महल के ऊपर कौवा बोल रहा है। कौवे के वचन बड़े सुहावने हैं ॥१॥

हे कौवा! उड़कर जाओ न? तुमको धागा (रेशम का तागा गले में बाँधने के लिये) दूँगी; सोने से तुम्हारी चोंच मढ़ाऊँगी; मेरे भैया घर आयेंगे तो तुम्हारे पंख चाँदी से मढ़ाऊँगी ॥२॥

कौवा अच्छी तरह बोल भी न पाया था कि भाई दरवाजे पर खड़े हैं। भाई आये, और कुछ नहीं लाये; इससे सास और ननद मन में रूठ गई हैं ॥३॥

निठुर जेठानी ने बोली मारी। मेरे भाई नाराज होकर चले गये। मेरे हाथों में मेंहदी लगी है, पैरों में जेहरी (एक गहना) है, बाहर जा नहीं सकती। मै भाई को कैसे मनाऊँ ? ॥४॥

हे सासजी और ननदजी ! तुम्हारे पैर लगती हूँ, तुम्हीं राजा भाई को मना लो। दोनों ने कहा—हाथों की मेंहदी धो डालो और जेहरी उतार डालो, झपटकर राजा भाई को मना लो न ? ॥५॥

घोड़े की बाग पकड़कर बहन रोने लगी कि हे भाई ! धूप में न जाओ। भाई ने कहा—हे बहन ! (रास्ते के) बाग-बगीचों में और अपने बाप के देश में धूप मिटा लूँगा ॥६॥

ऊँचे पर चढ़कर माँ देखने लगी कि बहन और भाई आ रहे हैं। पर उसने देखा कि छूँछी डोली, छूँछे कहार और रूठे पुत्र घर आ रहे हैं ॥७॥

हे पुत्र ! मेरी लाल पलँग पर बैठो और बहन की बात सुनाओ। हे माँ ! बहन का रोना सुन कर तो छाती फटती है, जैसे बड़े-बड़े बादल बरसते हैं ॥८॥

हे पुत्र ! तुम कैसे सपूत उपजे, जो रोती हुई बहन को छोड आये ? हे माँ ! पूरी और कचौड़ी बना दो, मैं बहन को लाने जाऊँगा ॥९॥

हे मेरी भावज ! डिबिया और पोटरी (गठरी) तैयार कर दो, मैं बहन को लाने जाऊँगा। ऊँचे पर खड़ी होकर बहन देख रही है कि मेरे भाई आ रहे हैं ॥१०॥

भाई आये, चीर लाये। सास और ननँद ने हँसकर बात की। सास को हरे रंग की, ननँद को पीले रंग की साड़ी और मेरे लिए दक्खिनी चीर लाये ॥११॥

हे बहन ! मैला-कुचैला कपड़ा उतार डालो न ? दक्खिनी चीर पहनो। हे भाई ! ऊँची पलँग पर अब चढ़कर न बैठो और मेरी बिदाई के लिए मेरे सजन को पूछो ॥१२॥

हे सजन ! मेरी बहन को विदा कर दो। अब सावन के चार ही

दिन रह गये हैं। सावन में सब बेटियाँ झूला झूलती हैं। भादों में बड़ी बरसात होती है॥१३॥

क्वार में सब बेटियाँ नेवरता (?) खेलती हैं और कातिक में गौरी (गोबर की बनी पार्वती) की मूर्ति सिराती हैं। अगहन में जब सब बेटियाँ गौने जाने लगेंगीं, तब मैं बहन को भेज दूँगा॥१४॥

पहली बार बहन को घर ले जाने के लिये उसका भाई आया था, पर कुछ ले नहीं आया था; इससे बहन की ससुराल में उसकी कुछ कदर नहीं हुई। लेकिन दूसरी बार जब साड़ियाँ और कुछ खाने-पीने की चीजें लेकर आया, तब उसकी बड़ी आवभगत हुई।

(७८)

एक ही घरवा के बत्तीस दुआर हो,
बत्तीसों दुअरवा पर मरिच के गाँछ।
सेर भर मरिच हो सासू सिलवटी धरी देइ हो
मरिच पीसत हो सासू धूपे आठो अंग हो॥१॥
जेहूँ तोरा बहुआ रे धूपल आठो अंग हो।
अपना बाबा घर से चेरिया बोलाउ॥२॥
हमरा बाबाजी के का करबू जोर हो।
नाचेला नचनियाँ रे, भइया बकसले घोड़॥३॥
मोरा पिछुअरवा कहँरवा हित भइया हो।
अइसनी लोलारी बहुअवा नइहर पहुँचाव॥४॥
झररे झरोखा चढ़ी अम्मा निरेखे हो।
कस देखो बेटी के डँडिया झलकत आवे हो॥५॥
किया बेटी चोरनी रे, किया बेटी चटनी हो।
किया बेटी दीहलु हो सासू के जवाब॥६॥
नाहीं बेटी चोरनी हो नाहीं बेटी चटनी हो।
इन बेटी दीहली हो सासू के जवाब॥७॥

एक भर अइलु हो बेटी दुई भर जाहू हो।
ढँकले ओहारल बेटी सासुर जाहू ॥८॥
(आजमगढ़)

एक घर के बत्तीस दरवाजे हैं। बत्तीसों दरवाजों पर मिर्च के पेड़ हैं। सेर भर मिर्च पीसने के लिए सास ने सिल पर रख दिया। हे सासजी! मिर्च पीसते-पीसते आठो अंग बेदम हो जाते हैं ॥१॥

हे बहू! मिर्च पीसने से तुम्हारे आठों अंग थक जाते हैं तो नैहर से दासी बुलाओ ॥२॥

हे सासजी! मेरे पिता पर तुम्हारा क्या जोर है? उनके यहाँ नचनियाँ नाचते हैं और मेरा भाई उनको घोड़ा इनाम देता है ॥३॥

हे मेरे पिछवाड़े बसे हुए कहार भाई! ऐसी लड़ाका बहू को नैहर पहुँचा दो ॥४॥

झाँझर झरोखे पर से माँ देख रही है। बेटी की यह पालकी कैसी झलकती आ रही है ॥५॥

हे बेटी! तुम चोरी करती हो? या चटोरी हो? या तुमने सास को जवाब दिया है? ॥६॥

न बेटी चोर है, न चटोरी। हे माँ! इस बेटी ने सास को जवाब दिया है ॥७॥

हे बेटी! जिस तेजी से आई हो, उससे दूनी तेजी से वापस जाओ। ओहार खोले बिना ही ससुराल वापस जाओ ॥८॥

इस गीत में यह दिखाया गया है कि कन्या यदि ससुराल से अपने किसी दोष-वश आई हो तो माता उसका आदर नहीं करती।

(७९)

जुगुति से परसौ जी ज्योनार—करि करि के सतकार। पेड़ा बरफी और अमिरती, खाजे खुरमा घेवर परसो, गुप-चुप सोहन हलुआ परसौ, कलाकन्द की बरफी परसौ,

मक्खन बरा जलेबी परसौ, पेठा और इन्दरसे परसौ, बूंदी और बतासे परसौ, खुर्चन और मलाई परसौ, खोया बालू-साही परसौ, खुरुमा लड्डुआ सब के परसौ, दालमौठ अरु मठरी परसौ, तरे तिकोना सब के परसौ, बूरा मिश्री जल्दी परसौ, रबड़ी दही सबी कै परसौ, सिखरन दूध लाय के परसौ, पुड़ी कचौड़ी लुचुई परसौ, खरी कचौड़ी सब के परसौ, वेसन बरा पकौड़ी परसौ, हापड़ के तुम पापड़ परसौ, मालपुआ अरु पूआ परसौ, दाल भात सन्नाटी परसौ, मूंग समूची सब के परसौ, कढ़ी करायल रौतो परसौ, खट्टे मिट्ठे बरा परोसौ, सुरुभी को घिउ गड्डुअन परसौ, रसगुल्ला रसदार।

जुगति से परसौ जी ज्योंनार ॥१॥

सोया मेथी मरसो परसौ, सरसौं अरु चौरय्या परसौ, पालक पोय भसूंड़े परसौ, मूरी मिरचैं सब के परसौ, हरी-हरी तुम धनियाँ परसौ, कटहर बड़हर लौकी परसौ, कद्दू और करेला परसौ, रायलभेरा भाटा परसौ, भिंडी घिआ तुरैया परसौ, पेठा की तरकारी परसौ, आलू और रतालू परसौ, पृथ्वीकन्द चचेंड़ा परसौ, अदरख की तरकारी परसौ, केला की तरकारी परसौ, धनियाँ की तुम चटनी परसौ, बथुआ की तरकारी परसौ, पोदीना की चटनी परसौ, छिरिका गलका अमरस परसौ, आम अचारी सूखा परसौ, दाख मुरब्बा सब के परसौ, अदरख कमरख सब के परसौ, सबी खटाई सब के परसौ, हा हा करि करि जल्दी परसौ, सत्य भाव से सब के परसौ, करि करि के सतकार।

जुगति से परसौ जी ज्योंनार ॥२॥

सिलहट की नारंगी परसौ, फरुखाबादी मिठवा परसौ, सेव तूत सहतूत चिरौंजी चिलगोजा अखरोटन परसौ, प्रागराज की सकड़ी परसौ, गरी छुहारे पिस्ता परसौ, नरम मखाने सब के परसौ, खिन्नी और लुकबठन परसौ, अनन्नास अंगूरन परसौ, जल्द चिरौंजी सब के परसौ, मूँगफली भरि दोना परसौ, किसमिस आम टिकारी परसौ, नौधा अरु तरबुजवा परसौ, चपटा और मालदहा परसौ, मोहन भोग बम्बई परसौ, गोला आमुनि जामुनि परसौ, खरबुजवा तुम सब के परसौ, सोया हिंगहा जुगिया परसौ, देसी आम सबी के परसौ, कंचन भरि भरि थार। पुरोहित करि करि के सतकार। परासौ सब तर बारंबार।

जुगति से परसौ जी ज्योंनार ॥३॥

गंगा जल जमुना जल परसौ, नदी नरबदा को जलु परसौ, सरजू का जलु सब कै परसौ, सिंध सरसुती को जलु परसौ, कावेरी कृश्ना जलु परसौ, मानसरोवर को जलु परसौ, नदी गंभीरी को जलु परसौ, फलगू महानदी को परसौ, ठंडे जल सब ही के परसौ, हा हा करि करि सब के परसौ, बिनती करि करि भोजन परसौ, हाथ जोरि के सब के परसौ, प्रेम प्यार करि सब के परसौ, छोटे बड़े सबी के परसौ, आदर करि करि सब के परसौ, समधी लमधी के ढिग परसौ, चारों भाइन के ढिग परसौ, गुरु वशिष्ठ तर जल्दी परसौ, ऋषि मुनियों तर जल्दी परसौ, सबै देवतन के ढिग परसौ, हाथ धुलाओ पान खवाओ, आभूषण वस्तर पहिरावौ, जनवासे सब को पहुँचावौ, करि करि बाहन त्यार। गावैं तुलसीदास गँवार, जुगति से परसौ जी ज्योंनार ॥४॥

इस गीत में भोजन के चोष्य, चर्व्य, लेह्य, और पेय, सब प्रकार के पदार्थों के नाम गिनाये हैं। पता नहीं, इसके रचयिता "तुलसीदास गँवार" वही सुप्रसिद्ध तुलसीदास हैं, या गीत को प्रचलित करने के लिये किसी चतुर ने यह 'गँवारपन' किया है। गीत में जिन पदार्थों के नाम आये हैं, वे ये हैं—

पेड़ा, बरफ़ी, अमिरती, खाजा, खुरमा, घेवर, गुपचुप, सोहन-हलुआ, कलाकन्द, मक्खन, बरा, जलेबी, पेठा, इन्दरसा, बूंदी, बतासा, खुर्चन, मलाई, खोवा, बालूशाही, लड्डू, दालमोट, मठरी, तिकोना (समोसा), वूरा, मिश्री, रबडी, दही, सिखरन, दूध, पूरी, कचौड़ी, लुचुई, खस्ता, कचौड़ी, बेसन का बरा, पकौड़ी, हापड़ के पापड़, मालपुआ, पूआ, दाल, भात, मूँग, कढ़ी, रायता, खट्टे मीठे बरे, गाय का घी, रसगुल्ला, सोआ-मेथी-मरसे का साग, सरसों, चौराई का साग, पालक-पोई का साग, भसींड़, मूरी, मिर्च, हरी धनियाँ, कटहर, बड़हर, लौकी, कद्दू, करेला, भाँटा, भिंडी, घिया-तुरोई, कोहँड़ा, आलू, रतालू, जमींकन्द, चचेंड़ा, अदरक, केला, बथुआ, पोदीना, अमरस, आम का अचार, दाख का मुरब्बा, कमरख, सिलहट की नारंगी, फर्रुखाबाद की मिठाई, सेव, शहतूत, चिरौंजी, चिलगोजा, अखरोट, प्रयाग की सकड़ी गड़ी, छुहारा, पिस्ता, मखाना, खिन्नी, लुकाट, अनन्नास, अँगूर, मुँगफली, किसमिस, आम, तरबूज, गोल-चपटा-मालदह-मोहनभोग और बम्बई आम, जामुन, खरबूजा, हिंगहा, ? जुगिया, ? गंगा, जमना, नर्मदा, सरयू, सिन्धु, सरस्वती, कावेरी, कृष्णा, मानसरोवर, गंभीरी, फलगू, महानदी आदि नदियों का ठंडा जल।

इस गीत में खाने-पीने की प्रायः सभी खास-खास चीज़ों के नाम आ गये हैं। साथ ही हिन्दुस्तान भर की सुप्रसिद्ध नदियों के नाम भी आ गए हैं। गानेवालियों को खाने-पीने की चीज़ों के नाम ही नहीं, बल्कि भूगोल की यह शिक्षा भी गीतों के द्वारा मिलती रहती है।

जाँत के गीत

आटा पीसने की चक्की का नाम जाँत है। चक्की, चूल्हा और चरखा देहात में घर-घर होते थे। चक्की में आटा पीस लिया, चूल्हे पर रोटियाँ पका लीं, इन कामों से अवकाश मिला तो चरखे पर कपड़ों के लिए सूत तैयार कर लिया, बस, इन तीनों चकारों की बदौलत देहात के लोग बहुत ही सुखी और स्वतंत्र थे। स्त्रियाँ चक्की पीसती थीं। इससे उनकी तंदुरुस्ती ठीक रहती थी और उनके बच्चे हृष्ट-पुष्ट होते थे। चक्की पीसते समय वे जो गीत गाती थीं, उनसे जीवन की धारा शुद्ध होती रहती थी, समय का सदुपयोग होता था, परिश्रम करने की आदत बनी रहती थी और पैसे की बचत होती थी।

हाथ की चक्की का काम अब देहातों में भी मशीन की चक्की ले रही है। स्त्रियों के हाथ कोमल होते जा रहे हैं; परिश्रम करने की आदत छूटती जा रही है; स्त्रियों का स्वास्थ्य शिथिल पड़ता जा रहा है; पिसाई के पैसे ही अब नहीं देने पड़ते, बल्कि मशीन की चक्की की बदौलत अब गृहस्थों के घरों में डाक्टर भी घुसे चले आ रहे हैं और गृहस्थी पर उनकी फ़ीस और दवा का भार भी बढ़ता जा रहा है।

मशीनें हमारे जाँतों को तो फोड़ ही रही हैं; वे जाँत के गीतों को भी पीस रही हैं। इसे तो व्यक्तिगत हानि नहीं, बल्कि राष्ट्रीय हानि कहना चाहिये; क्योंकि गीत हमारे घरों में सच्चरित्रता के रक्षक, स्त्रियों के सदाचार के पोषक और शुद्धता के स्रोत थे। उनका नाश होना वैसा ही शोकजनक है, जैसा घोर वन में पगडंडी का छूट जाना या घोर अंधकार में हाथ से दीपक का छिन जाना। वह दिन निकट ही है, जब चरखे के लिए

आज जैसा देश-व्यापी आन्दोलन चल रहा है, वैसा ही, बल्कि उससे भी अधिक प्रबल, आन्दोलन चक्की की रक्षा के लिए करना पड़ेगा।

चक्की के बाद चूल्हे का नम्बर है। चूल्हा छुआछूत का कवच पहन कर हमारे घरों के मध्य भाग में बैठा है। पर यह कवच बहुत पुराना हो गया है। जगह-जगह से फट रहा है। बढ़ती हुई पश्चिमी सभ्यता का जंग हमारे गरीब चूल्हे को एक दिन चूर-चूर कर देगा। और लोग होटलों में या बाजार से रोटियाँ खरीद कर खाने लगेंगे।

तीसरा नम्बर चरखे का है। इस देश में अंगरेजी राज से पहले चरखा हमारे प्रत्येक घर में वैसा ही आवश्यक पदार्थ था, जैसा चूल्हा। चरखा क्या गया, हमारे घरों से लक्ष्मी का निवास उठ गया।

जाँत पीसने का समय रात का तीसरा पहर है। स्त्रियाँ शाम को ही पीसने के लिए नाज अलग रख लेती हैं, और पहर छः घड़ी रात रहे उठकर वे जाँत लेकर बैठ जाती हैं। जाँत के दोनों ओर आमने-सामने बैठकर जब दो स्त्रियाँ पीसती हैं, तब पीसने में अधिक आसानी होती है। महल्लों में जाँत पीसने का सहयोग भी चलता रहता है। एक स्त्री दूसरी स्त्री का आटा पिसा आती है तो बदले में वह भी आकर पिसा जाती है। गरीब और कर्कशा स्त्रियों को प्रायः सहयोग नहीं मिलता; क्योंकि गरीब स्त्रियों को गरीबी के कारण इतना अवकाश नहीं मिलता कि वे ठीक समय पर बदला चुका आवें। और कर्कशा से किसी की पटती नहीं।

जाँत के गीत जाँत पीसने की थकावट को सोखते रहते हैं। साथ ही पीसनेवालियों के मन को प्रेम, करुणा और उदारता से भिगोकर कुटुम्बियों के असहनीय बर्त्ताव के कारण पैदा हुए विक्षोभ को निकालते भी रहते हैं। जाँत के गीतों के एक-एक शब्द स्त्री-सदाचार की नींव की एक-एक ईंट हैं।

जाँत के गीतों में छोटी-छोटी कथायें ऐसी गुँथी हुई हैं, जैसे किसी सूत में फूल। जाँत के गीत उत्तेजक नहीं, बल्कि बहुत कोमल, बहुत मधुर और चिरस्थायी प्रभाव छोड़ जानेवाले होते हैं।

जाड़ों की ठंडी और लम्बी रात के सन्नाटे में, उषाकाल के मंद-मंद समीर में, जाँत के गीत दूर से सुननेवालों को बड़े मधुर जान पड़ते हैं। देहात में किसी भी गाँव में निकल जाइये, रात के पिछले पहर में बहुत से घरों से जाँत की घुर-घुर ध्वनि और उस ध्वनि के साथ एक-एक कड़ी पर दम लेकर गाया हुआ जाँत का गीत सुनने को मिल जायगा।

देहात में कहीं-कहीं ठाकुरों के घरों में आटा पीसने का काम चमारिनें भी करती हैं। और चमारिनें निरवाही भी करती हैं। इससे जाँत और निरवाही के बहुत से गीत एक हो गये है, अर्थात् वे दोनों अवसरों पर गाये जाते हैं। हमने निरवाही के गीतों की एक ध्वनि निश्चित कर के उन्हें जाँत के गीतों से अलग छाँट दिये हैं; पर वे जाँत पर भी गाये जा सकते हैं।

यहाँ जाँत के कुछ चुने हुए गीत दिये जाते हैं—

(१)

जेठै कै दुपरिया त भुभुरी तलाफै हो राम।
अरे रामा राम जे सीता के निसारेनि गरुये गरभ से हो राम ॥१॥
रोवहिं सीता अछन करि औ बिलखाहिं हो राम।
अरे रामा के मोरे आगे पीछे होइहैं केइ रे होइहैं धगरिन हो राम।२।
बन से निकसीं बन तपसिन सीतहिं समुझावहिं हो राम।
सीता हम तोरे आगे पीछे होबै हमहिं होब्यों धगरिन हो राम।३।
रोवहिं सीता अछन करि अउ बिलखाहिं हो राम।
अरे रामा के लइहैं बेले कै लकड़िया त रतिया बिपति कै हो राम ४
हथवा गेड़ुवा लिहे ऋषि मुनि सीतहिं समुझावहिं हो राम।
सीता हम लउबै बेले कै लकड़िया त रतिया सोहावनि हो राम।५।
चैतै कइ तिथि नौमी रामा जग्गि रोपैं हो राम।
रामा बिना रे सीतहि जग्गि सूनी सीतहि लइ आवउ हो राम।६।

अगवाँ के घोड़वाँ बसिठ मुनि पछवाँ भरत लाल हो राम।
रामा अल्हड़े बछेड़वा लखनलाल सीता क मनावैं चले हो राम ।७।
पतवा क दोनवाँ लगाइनि गंगाजल पानी हो राम।
अरे रामा सीता धोवैं गुरुजी के पाँव त मथवाँ चढ़ावहिं हो राम ८
एतनी अकिलि सीता तोहरे त बुद्धि क आगरि हो राम।
सीता रामहिं कस बिसराइउ अजुध्या तजि दीह्य हो राम। ९।
सोनवाँ की नइयाँ राम तायनि लाइ भूँजि काढ़ेनि हो राम।
गुरु अस कै रामा मोहि डाहेनि सपने ना चित मिलै हो राम १०
तोहरा कहल गुरु मानब अजोधिया क जाबै हो राम।
गुरु ऐसनै पुरुष की सनेहिया त बिधि न मिलावैं हो राम ॥११॥

जेठ की दुपहरी है। धूल जल रही है। राम ने सीता को ऐसे समय में घर से निकाला, जब वे गर्भ के भार से शिथिल थीं ॥१॥

वन में सीता बिसूर-बिसूर कर रोती और कलपती है—हाय राम! (बच्चा होने पर) कौन मेरे आगे-पीछे होगा, अर्थात् कौन देख-भाल करेगा? कौन धगरिन (चमारिन, जो बच्चे का नाल काटती है) होगी? ॥२॥

सीता का विलाप सुनकर वन की तपस्विनियाँ निकलीं। वे सीता को समझाने लगीं—हे सीता! चिन्ता मत करो। हम तुम्हारी देख-भाल करेंगी और हमी धगरिन होंगी ॥३॥

सीता विलाप करती हैं—हे राम! बेल की लकड़ी कौन लायेगा? रात बड़ी विपत्ति की होगी ॥४॥

हाथ में कलश लिये हुए ऋषि-मुनि सीता को समझाते हैं—हे सीता! हम बेल की लकड़ी ला देंगे। रात सुहावनी हो जायगी ॥५॥

चैत महीने की नवमी तिथि को राम ने यज्ञ आरंभ किया। हे राम! सीता को ले आओ। सीता के बिना यज्ञ सूनी रहेगी ॥६॥

आगे के घोड़े पर बशिष्ठ मुनि, उनके पीछे भरत और अल्हड़ बछेड़े पर लक्ष्मणजी सीता को मनाने चले ॥७॥

पत्ते का दोना लगाकर, उसमें गंगाजल लेकर सीता गुरुजी के चरण धोती हैं और माथे चढ़ाती हैं ॥८॥

गुरुजी कहते हैं—सीता ! तुम्हें इतनी समझ है ! तुम तो बुद्धि की आगर हो ! भला, तुमने राम को कैसे भुला दिया ? अयोध्या को तुमने छोड़ ही दिया ? ॥९॥

सीता कहती हैं—हे गुरु ! राम ने मुझे सोने की तरह आग में डाला, तपाया, जलाया और भूना । मुझे ऐसा डाहा कि सपने में भी अब उनसे मन न मिलेगा ॥१०॥

पर हे गुरु ! आपका कहना मानूँगी । अयोध्या चलूँगी । पर जब पुरुष का ऐसा ही प्रेम है, तो ब्रह्मा उससे न मिलावें, तभी ठीक है ॥११॥

इस गीत के पद-पद में करुणा भरी है । सीताजी का अंतिम जीवन बहुत ही कष्टमय रहा । गर्भावस्था में वे बन में अकेली छोड़ दी गईं । उस समय की उनकी व्याकुलता का वर्णन और तपस्विनियों और ऋषि-मुनियों का आश्वासन इस गीत में वर्णित है । कैसा मनोहर दृश्य है ! इधर एक दुखिया ने पुकारा, उधर सहायता के लिए उत्तम से उत्तम श्रेणी के स्त्री-पुरुष सामने खड़े । सहानुभूति का यह भाव एक उच्चकोटि के समाज का आदर्श है ।

राम ने यज्ञ ठाना । यज्ञ में पुरुष के साथ स्त्री का रहना आवश्यक है । वशिष्ठ, भरत और लक्ष्मण सीता को मनाने चले । लक्ष्मण के अल्हड़ स्वभाव को गाँव की स्त्री-कवि ने भी खूब ताड़ लिया है । वशिष्ठ और भरत को तो उसने घोड़े पर बैठाया, पर लक्ष्मण को अल्हड़ बछेड़े पर ।

अब आगे एक हिन्दू-स्त्री के हृदय की महत्ता देखिये । सीताजी ने गुरु का स्वागत किया । वन में वर्त्तन कहाँ ? सीताजी ने पत्ते का दोना बनाया और उसमें गंगाजल लेकर उन्होंने गुरुजी का पैर धोया और माथे चढ़ाया । निरपराधिनी होने पर भी घर से निकाली जाने की ग्लानि से उन्होंने क्रोध-वश शिष्टाचार की उपेक्षा नहीं की । सीता ने पूज्य पुरुष का सत्कार करने में विमनता और असमर्थता नहीं प्रकट की ।

गुरुजी ने सीताजी की बुद्धि की प्रशंसा की। सीताजी ने भी अपने मन का दुःख साफ़-साफ़ कह दिया। जिस स्त्री-कवि ने यह गीत बनाया, वह आदर्श-वादिनी नहीं थी। इसी से उसने ठीक-ठीक वही मनोभाव प्रकट किये हैं, जो पति से परित्यक्ता स्त्री के लिए स्वाभाविक हैं।

(२)

मोरँग मोरँग मैं सुन्यों मोरँग ना जानौं हो राम।
रामा मोरा पिया चले मोरँग देसवा त हम कैसे जीयब राम ॥१॥
के काँ तु सौंपेउ अन धन के काँ तुँ लछिमी हो राम।
अरे पिया ! के काँ तुँ सौंपेउ नौरँग बगिया त तुम चले मोरँग हो राम ॥ २ ॥
बाबा के सौंपेउँ अन धन माईहि सौंपेउँ लछिमी हो राम।
अपने भैया क सौंपेउँ नौरंग बगिया त हम जाबै मोरँग हो राम ॥३।
देइ गये चनन चरखवा ओठँगने क मचिया हो राम।
अरे पिया! देइ गये अपनी दोहइया धरम जिनि छोड़िउ हो राम।।४॥
धुनै लागे चनन चरखवा ओठँगने क मचिया हो राम।
अरे पिया! छूटै चाहै तोहरी दोहइया धरम चाहै डोलइ हो राम ५
मन कै बिरोगी तिरियवा त सासूजी से पूँछइ हो राम।
सासू! बिना रे पुरुष कै तेवइया उमिरि कैसे बितिहैं हो राम ॥ ६॥
तुलवा क अँगिया सिआवहु छतीसा बंद लावहु हो राम।
बहुअरि ! जिअरा में राखहु बिरोग बैस बिति जैहैं हो राम ॥ ७ ॥
उपराँ जे लाइउँ बेइलिया त निचवाँ सदाफल हो राम।
हमरे हरीजी कै लाई बेइलिया बेइलि कुम्हिलानी हो राम ॥ ८ ॥
आवहु सखिया सहेलरि मिलिजुलि आवउ हो राम।
हमरे हरीजी कै लाई बेइलिया बेइलि हम सींचब हो राम ॥ ९ ॥

बेइलि सींचि सिंचाई बेइलि तर ठाढ़ी भई हो राम।
अरे रामा ! आई गई हरि कै सुरतिया त ठाढ़ी मुरझाइ गिरी
हो राम ॥१०॥
बरहें बरिस पर लौटेन त दुआरे खटिया बैठनि हो राम।
आपनि मैया बुलाइ भेद पूँछहिं त धना मोरी कौने रँग हो राम ११
तोरी धन अँगवा कै पातरि मुहवाँ कै सुन्दरि हो राम।
बेटा ! बड़े रे घरे कै बिटियवा दुनौं कुल राखहि हो राम ॥१२॥
कबहूँ न हँसि कै पैठी बिहँसि नाहीं निकसी हो राम।
बेटा! महले दिआ नाहीं बारीं त निदरिया नाहीं सोई हो राम ।१३।
अब धन ! हँसि कै पैठौ बिहँसि कै निकसौ हो राम।
मोरि धन ! महले दिआ अब लेसहु सोवहु सुख-निदिया हो राम१४

मोरंग, मोरँग तो सुना है, पर यह नहीं जानती कि मोरँग कहाँ है ? मेरे प्रियतम मोरँग देश जा रहे हैं। अब मैं कैसे जीऊँगी ? ॥१॥

स्त्री पति से पूछती है—तुमने अन्न-धन किसे सौंपा ? लक्ष्मी अर्थात् मुझको किसे सौंपा ? हे प्रियतम ! तुमने अपना नौरंग बाग़ किसे सौपा ? जो तुम मोरँग जा रहे हो ॥२॥

पति ने कहा—बाबा को अन्न-धन, माँ को लक्ष्मी और छोटे भाई को नौरंग बाग सौंपकर मैं मोरँग जा रहा हूँ ॥३॥

पति के चले जाने पर स्त्री उसे याद कर रही है—प्रियतम मुझे चन्दन का चरखा दे गये। पीठ टेकने के लिए मचिया दे गये और अपनी शपथ दिला गए कि धर्म मत छोड़ना ॥४॥

पति को परदेश गये बहुत दिन हो गये। तब स्त्री कहती है—चन्दन का चरखा घुनने लगा। मचिया भी घुनने लगी। हे प्रियतम ! तुम्हारी शपथ भी अब छूटना चाहती है। धर्म डिगना चाहता है ॥५॥

स्त्री का चित्त चञ्चल हुआ। विरह की मारी वह सास के पास पहुँची और पूछने लगी—हे सास ! पुरुष के बिना स्त्री की उम्र कैसे बीतेगी ? ॥६॥

सास ने कहा—तूल (लाल रंग के कपड़े) की चोली सिलाओ और बन्द लगाओ। हे बहू ! मन में अपने पति का विरह बनाये रक्खो, इससे उम्र कट जायगी ॥७॥

स्त्री का चित्त स्थिर हुआ और वह फिर मन बहलाने का प्रयत्न करने लगी। ऊपर यह लता लगी है। नीचे सदाफल है। मेरे प्राणेश्वर की लगाई यह लता कुम्हला गई है ॥८॥

हे सखियो ! हे सहेलियो ! मिल-जुलकर आओ। मेरे प्राणेश्वर की लगाई हुई लता को मैं सींचूँगी ॥९॥

स्त्री ने लता को सींचा। फिर वह उसके नीचे खड़ी हुई। उसे अपने प्राणनाथ की याद आई। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी ॥१०॥

बारह वर्ष के बाद पति घर आया। वह बाहर खटिया बिछाकर बैठा। अपनी माँ को बुलाकर वह पूछने लगा—मेरी स्त्री का रंग-ढंग कैसा है ? ॥११॥

माँ ने कहा—बेटा ! तेरी स्त्री बड़े घर की कन्या है। उसने दोनों कुलों की मर्यादा रक्खी है। उसका शरीर दुर्बल है, पर मुँह सुन्दर है ॥१२॥

न तो वह कभी हँसकर भीतर आई, न विहँसकर बाहर निकली। बेटा ! न तो उसने कभी महल में दीपक जलाया और न वह नींद-भर सोई ॥१३॥

सास अब बहू से कहती है—बहू ! अब हंसकर घर के भीतर जाओ। विहँसकर बाहर निकलो। महल में दीपक जलाओ और सुख की नींद सोओ ॥१४॥

इस गीत में एक विरहिणी का वर्णन है। पहले रेल नहीं थी। आजकल की तरह साफ़ और सुरक्षित सड़कें भी नहीं थीं। रास्ते में चोर-डाकुओं का भय बना ही रहता था। परदेश जाकर लौट आना पुनर्जन्म समझा जाता था। लोग एक बार परदेश जाकर, दस-बारह वर्ष रहकर, अच्छी

तरह धन कमाकर लौटते थे, जिससे दुबारा न जाना पड़े। इससे एक लम्बे समय का बियोग स्त्री-पुरुष को सहना पड़ता था। आजकल तो उस समय के विरह की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पुरुष अपनी स्त्री को भरण-पोषण के लिए दस-बारह वर्षों का प्रबन्ध करके तब परदेश जाता था। स्त्री रात-दिन पति को बिसूरती रहती और उसके लौटने के दिन गिना करती थी। उन दिनों के रास्ते खतरे से खाली नहीं थे। इसलिए कुशल-मंगल के पत्रों का इन्तज़ार आजकल की अपेक्षा कहीं अधिक रहता था। ग्राम-गीतों में उन्हीं दिनों की छाया वर्तमान है।

इस गीत में कई बातें बड़े महत्त्व की हैं। एक तो यह कि पुरुष को बाग का भी शौक़ था, जिसका देहात में आजकल अभाव-सा है। दूसरे, चरखा गृहस्थ-जीवन का एक आवश्यक अंग था। चरखे की चर्चा बहुत से ग्राम गीतों में आई है। यह हिन्दुस्तान में वियोगिनियों और विधवाओ का बहुत पुराना साथी है। तीसरे, स्त्री-धर्म की रक्षा के लिए सास की बताई हुई औषधि। सास का यह कहना कि विरह को सदा मन में जाग्रत रक्खो, इससे तुम्हारा धर्म बच जायगा, बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। चौथे, सास का यह कहना कि बहू बड़े घर की कन्या है, इसने दोनों कुलों की मर्यादा रक्खी है। इस एक ही वाक्य में बहू का सम्पूर्ण गौरव गुँथा हुआ है, जो प्रत्येक हिन्दू-नारी के लिए गर्व की बात है। सास ने बहू की जो दिन-चर्या बयान की है, वह भी कम महत्त्व की नहीं। पति के वियोग में हिन्दू-नारी का हास-परिहास और शृंगार सचमुच बन्द हो जाते हैं। भला, विरहिणी को नींद कहाँ?

इस गीत से पति-परायणा स्त्रियाँ बहुत शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। कन्याओं को इस प्रकार के गीतों-द्वारा लड़कपन ही से यह बात मालूम होती रहती है कि पति के परदेश जाने पर अपने सतीत्व को बनाये रखने के लिए उनमें कितनी दृढ़ता होनी चाहिए।

मोरँग—गीतों में मोरंग का नाम बहुत आता है। मोरंग शब्द भूषण की कविता में भी आया है। जैसे—

मोरँग जाहु कि जाहु कुमाऊं सिरी नगरै कि कवित्त बनाये।

मोरँग बिहार में सारन और चम्पारन जिलों का वह भाग था, जो हिमालय की तराई तक चला गया है। मुग़लों ने सन् १६६४ और १६७६ में इसे जीता था। किसी जमाने में युक्तप्रांत के लोग नौकरी-चाकरी की तलाश में मारंग जाया करते रहे होंगे। वही वर्णन गीतों में है। आजकल तो इस स्थान की कोई गिनती ही नहीं।

(३)

सोने के खरउवाँ राजा राम कउसिला से अरज करइँ हो राम।
हुकुम न देउ मोरी मैया मैं बन क सिधारउँ हो राम ॥ १ ॥
जौने राम दुधवा पिआयउँ घिऊ सेनि अवटेउँ हो राम।
अरे मोरा भितराँ से बिहरै करेजवा मैं कैसे बन भाखउँ हो राम २
राम तो मोर करेजवा लखन मोरी पुतरिव हो राम।
अरे रामा, सीता रानी हाथे कर चुरिया मैं कैसे बन भाखउँ
हो राम ॥ ३ ॥
राम गए दुपहरिया लखन तिजहरियउँ हो राम।
सीता मोरी गईं सँझलौके मैं कैसे जियरा बोधउँ हो राम ॥ ४ ॥
पोयउँ मैं घिये क सोहरिया दुधे कर जाउरि हो राम।
अरे रामा, यतना जेंवन मोर बिख भा राम मोर बन गये हो राम ५
चारि मँदिल चारि दीप बरै हमरा अकेल बरइ हो राम।
रामा, मोरे लेखे जग अधियार राम मोर बन गए हो राम ॥ ६ ॥
भितराँ से निकसीं कउसिला नैनन नीर बहइ हो राम।
रामा राम लखन सीता जोड़िया कवने बन होइहैं हो राम ॥७॥
घर घर फिरहिं कउसिला त लरिका बटोरहिं हो राम।
लरिकौ छन एक रचहु धमारि राम बिसरावहुँ हो राम ॥ ८ ॥
रामा बिना सूनि अजोधिया लखन बिन मन्दिल हो राम।
मोरी सीता बिन सूनी रसोइयाँ कइसे जिअरा बोधब हो राम ॥९॥

मंदिल दीप जरइबै औ सेजिया लगइबै हो राम।
रामा, आधी रात होरिला दुलरबै जनुक राम घरहिन हो राम ॥१०॥
सवना भदवना क दिनवा घुमरि घन बरसइँ हो राम।
रामा राम लखन दूनों भइया कतहुँ होइहैं भीजत हो राम ॥११॥
रिमिकि झिमिक दयू बरसइ मोरे नाहीं भावइ हो राम।
दैवा वोहि बन जाइ जनि बरिसहु जहाँ मोर लरिकन हो राम ॥१२॥
राम क भीजै मटुकवा लखन सिर पटुका हो राम।
मोरी सीता क भीजै सेंदुरवा लवटि घर आवउ हो राम ॥१३॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए रामचंद्र अपनी माता कौशल्या से निवेदन कर रहे हैं—हे माँ! आज्ञा दो न? मैं वन को जाऊँ ॥१॥

कौशल्या कहती हैं—जिस राम को मैंने दूध में घी औटाकर पिलाया, उसे वन जाने की आज्ञा कैसे दूँ? मेरा भीतर ही भीतर कलेजा फटा जा रहा है ॥२॥

राम तो मेरे प्राण हैं; लक्ष्मण आँख की पुतली और सीता मेरे हाथ की चूड़ी। मैं इन्हें वन जाने को कैसे कहूँ? ॥३॥

राम दोपहर को, लक्ष्मण तीसरे पहर को और मेरी सीता रानी गोधूलि-वेला में वन को गईं। मैं कैसे धीरज धरूँ? ॥४॥

मैंने घी की पूरी पोई थी और दूध की खीर पकाई थी। हाय! मेरे राम वन को चले गए। मुझे सारा भोजन विष-सा लगता है ॥५॥

चारों मंदिरों में चार दीपक जल रहे हैं। मेरे मंदिर में एक ही जल रहा है। पर मेरे लेखे सारा संसार अंधकारमय लगता है; क्योंकि मेरे राम वन को चले गए ॥६॥

कौशल्या भीतर से निकलीं। उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। वह बिसूर रही हैं—हाय! राम, लक्ष्मण और सीता किस वन में होंगे? ॥७॥

कौशल्या घर-घर फिर कर लड़के जमा करती और कहती हैं—

हे लड़को ! तुम हिल-मिलकर कुछ देर खेलो-कूदो। जिससे मैं थोड़ी देर के लिए तो राम को भूल जाऊँ ॥८॥

राम के बिना मेरी अयोध्या सूनी है, लक्ष्मण के बिना महल और सीता के बिना रसोई। मैं कैसे धीरज धरूँ ? ॥९॥

रात को मैं दीपक जलाऊँगी, सेज बिछाऊँगी, और आधी रात को अपने पुत्र को प्यार करूँगी। मानो मेरे राम घर ही में हैं ॥१०॥

सावन भादों के दिन हैं। बादल घूम-घूमकर बरस रहे हैं। हाय ! राम, लक्ष्मण दोनों भाई कहीं भीगते होंगे ॥११॥

यह बादल रिम-झिम बरस रहा है। मुझे अच्छा नहीं लगता। हे बादल ! तुम उस बन में जाकर न बरसना, जहाँ मेरे लड़के हैं ॥१२॥

राम का मुकुट भीग रहा है, लक्ष्मण का दुपट्टा। और मेरी सीता की माँग का सिंदूर भीग रहा है। अब तुम तीनों घर लौट आओ ॥१३॥

यह गीत करुण-रस से ओतप्रोत है। ऐसा हृदय-द्रावक वर्णन न तो वाल्मीकि ने किया है, न कालिदास और भवभूति ने, और न तुलसी और सूरदास ही ने। कौशल्या के दुःख का स्त्रियों ने बड़ी गहराई से अनुभव किया है। यही कारण है कि इस कविता में स्वाभाविकता यथेष्ट मात्रा में है; कोरी कवि की कल्पना नहीं है। राम के बन जाने पर कौशल्या की मनोदशा का वर्णन हिन्दी के किसी कवि ने इतना सुन्दर नहीं किया है।

(४)

उतरत चइत चढ़त वैसखवा रे,
गरमी महिनवाँ चूनर भीजै हो राम ॥ १ ॥
बाट के बटोहिया तुहीं मोर भइया रे,
हमरा सनेसवा लिहे जायो हो राम ॥ २ ॥
जाइ कह्यो मोरे हरीजी के अगवाँ रे,
बारे क बेनिया हमें भेजै हो राम ॥ ३ ॥

जाइ कह्यो मोरी धना जी के अगवाँ रे,
बाँसे क बेनियवा लइके हाँकैं हो राम ॥ ४ ॥
जाइ कह्यो मोरे हरीजी के अगवाँ रे,
बेनिया बिनावत लागे छ महिनवा हौ राम ।५।
जाइ कह्यो मोरी धना जी के अगवाँ रे,
रतिया हँकिहैं दिना चोरैहैं हो राम ॥ ६ ॥
बेनिया डोलावत आइ गै निनरिया रे,
परि गै है सासू कै नजरिया हो राम ॥ ७ ॥
खाउँ न बहुअरि तोरा भैया भतिजवा रे,
कवन छयल बेनिया दीहेसि हो राम ॥ ८ ॥
काहे का खाबू सासू भैया भतिजवा रे,
हमरै बिदेसिया बेनिया भेजें हो राम ॥ ९ ॥
ना हम मनबै ना पतियइबै,
हम लेबै तोहँसे किरियवा हो राम ॥१०॥
मोरे पिछवरवाँ बढ़ैआ भैया मितवा रे,
भैया चनना लकड़िया चीर देवो हो राम ॥११॥
मोरे पिछवरवाँ लोहरा भैया मितवा रे,
भैया धरम करहिया गढ़ि देवो हो राम ॥१२॥
मोरे पिछवरवाँ तेलिया भैया मितवा रे,
भैया करुअहि तेल पेरि देवहु हो राम ॥१३॥
बाट के बटोहिया तुहीं मोर भइया रे,
हमरो सनेसवा लीहे जायो हो राम ॥१४॥
जाइ कह्यो मोरे सइयाँ के अगवाँ रे,
तोरी धन चढ़लीं किरियवा हो राम ॥१५॥

जब सासू डारी हैं करहिया में तेलवा रे,
आइ परिन परदेसिया हो राम ॥१६॥
केकरि अही मैया धेरिया पतोहिया रे,
केकरी तिरियवा किरिया लेबू हो राम॥१७॥
हमरी अहीं पूता धेरिया पतोहिया रे,
तोहरी तिरियवा किरिया लेबै हो राम ॥१८॥
काहे का लेबू मैया धना से किरियवा रे,
मैया हमहीं बेनियवा पठावा हो राम ॥१९॥

चैत उतरते बैसाख चढ़ा। गरमी का महीना आ गया। चूनरी भीग जाती है ॥१॥

हे राह चलनेवाले भाई! मेरा संदेशा लिये जाना ॥२॥

जाकर मेरे स्वामी से कह देना—मेरे लिये वे बालों की एक पंखी भेज दें ॥३॥

पति ने कहा—मेरी स्त्री को जाकर कह देना कि बाँस की पंखी ले कर हाँके ॥४॥

स्त्री ने कहलाया—मेरे प्राणनाथ से कह देना—बाँस की पंखी बनवाते-बनवाते तो छः महीने लग जायँगे ॥५॥

पति ने बाल की पंखी खरीद कर भेज दी और कहलाया—रात में हाँकना और दिन में छिपाकर रख देना ॥६॥

एक दिन पंखी हाँकते-हाँकते उसे नींद आ गई, और उस पर सास की दृष्टि पड़ गई ॥७॥

सास ने कहा—ऐ बहू! मैं तेरा भाई-भतीजा खा जाऊँ। सच बता, तुझे यह पंखी किस छैले ने दी? ॥८॥

बहू ने कहा—सासजी! मेरा भाई भतीजा क्यों खाओगी? यह पंखी परदेशी ने भेजी है ॥९॥

सास ने कहा—मैं विश्वास नहीं करूँगी। मैं तुमसे शपथ लूँगी ॥१०॥

बहू ने कहा—मेरे पिछवाड़े बसे हुए बढ़ई भाई ! चन्दन की लकड़ी चीर दो ॥११॥

मेरे पिछवाड़े बसे हुए लोहार भाई ! धर्म की एक कढ़ाई गढ़ दो ॥१२॥

मेरे पिछवाड़े बसे हुए तेली भाई ! सरसों का तेल पेर दो ॥१३॥

हे राह चलनेवाले भाई ! मेरा संदेशा लिए जाओ ॥१४॥

मेरे स्वामी से कहना—तुम्हारी स्त्री शपथ पर चढ़ी है ॥१५॥

जैसे ही सास ने कढ़ाई में तेल डाला, वैसे ही स्त्री का पति विदेश से आ गया ॥१६॥

उसने पूछा—माँ ! किसकी कन्या और किसकी पतोहू और किसकी बहू है ? जिससे तुम शपथ लेने जा रही हो ॥१७॥

माँ ने कहा—मेरी कन्या, मेरी पतोहू और तुम्हारी बहू है, जिससे मैं शपथ लूँगी ॥१८॥

शपथ का कारण जानकर पति ने कहा—माँ ! मेरी स्त्री से शपथ क्यों लोगी ? यह पंखी तो मैंने ही भेजी थी ॥१९॥

यकायक पति के आजाने से स्त्री बेचारी का संकट टल गया। पति की अनुपस्थिति में बहू पर सास कैसी निगरानी रखती है, इस गीत में उसका एक अच्छा उदाहरण दिया गया है। इसी नियंत्रण का फल है कि हिन्दुओं की बहू-बेटियों का चरित्र अन्य जातियों से कहीं अधिक ऊँचा और सुरक्षित है।

(५)

मोरे पिछवरवाँ रे घनी बँसवरिया रे,
जुड़ि जुड़ि आवा थीं बयरिया हो राम ॥ १ ॥
जेहि तरा मोर हरी सेजिया बिछावैं रे,
आइ न जातू हमरी सुनरिया हो राम ॥ २ ॥
कैसे के आवों हरी तोहरी सेजरिया रे,
सासू घरा बाटीं बड़ी दारुनि हो राम ॥ ३ ॥

इतनी बचन सुनि पियवा बढ़ैता रे,
घोड़े पीठि भइन असवरवा हो राम ॥ ४ ॥
जाइ कै उतरेन वहि मधुबनवाँ रे,
कैसे पावौं हरी कै दरसवा हो राम ॥ ५ ॥
मचिऐ बैठीं मोरी सासू बढ़ैतिन रे,
कौने ओढ़रे बन जाओं हो राम ॥ ६ ॥
छोरहु न बहुअरि चटकी चुनरिया रे,
पहिरो फटही लुगरिया हो राम ॥ ७ ॥
हथवा के लेहौ बहुअरि कुचरी डेलरिया रे,
धै लेव हेलिनी कै भेसवा हो राम ॥ ८ ॥
खोरिया बहारेहु अब घोड़सरिया रे,
हरि कै बैठना बहारेहु हो राम ॥ ९ ॥
मोढ़वा बैठि हरि देखिन हेलिनिया रे,
मन ही मना रे मुसकायँ हो राम ॥१०॥
कहँवै कै तू अहिउ हेलिनिया रे,
कौनी नगरिया क जाबिउ हो राम ॥११॥
मथुरहि कै अही हम हेलिनिया रे,
गोकुला नगरिया हम जाबै हो राम ॥१२॥
तब तो मोरी बहुअरि पनवा न कूँचिउ रे,
हमरी सेजरिया नाहीं सोवौ हो राम ॥१३॥
अब कस बहुअरि बदल्यू रुपवा रे,
हेलिनी बनी बन आयहु हो राम ॥१४॥
तब तौ रहेउँ सैंयाँ बारी लरिकवा रे,
अब भयेउँ बारी बयसवा हो राम ॥१५॥

मोरे पिछवरवाँ सोनरा भैया मितवा रे,
सोरहो सिंगार गढ़ौ गहना हो राम ॥१६॥
मोरे पिछवरवाँ रँगरेजा भैया मितवा रे,
धना जोगे रगहु चुनरिया हो राम ॥१७॥
मोरे पिछवरवाँ कहँरा भैया मितवा रे,
डँड़िया फनाय महल पहुँचावो हो राम ॥१८॥

मेरे पिछवाड़े घनी बँसवारी है, जिसमें से ठंडी-ठंडी हवा आया करती है ॥१॥

उसी के नीचे मेरे स्वामी अपनी सेज बिछाये हैं और बुलाते हैं कि हे मेरी सुन्दरी ! आ क्यों नहीं जाती ? ॥२॥

स्त्री ने कहा—हे स्वामी ! कैसे आऊँ ? घर में बड़ी कर्कशा सास है ॥३॥

इतना सुनते ही पति घोड़े पर सवार होकर चला गया ॥४॥

स्त्री सोचती है—हाय ! मेरे स्वामी मधुबन में जाकर उतरे हैं। मैं उनका दर्शन कैसे पाऊँगी ? ॥५॥

मेरी सास मचिए पर बैठी हैं। मैं किस बहाने बन में जाऊँ ? ॥६॥

हे बहू ! तुम गहरे रंग की चुनरी उतारकर अलग रख दो और फटी हुई धोती पहन लो ॥७॥

हाथ में झाड़ू और टोकरी लेकर भंगिन का भेस बना लो ॥८॥

गली में झाड़ू लगाकर फिर घोड़साल बहारना। फिर अपने स्वामी की बैठक साफ कर देना ॥९॥

मोढ़े पर बैठे हुए स्वामी ने भंगिन को देखा और वे मन ही मन मुसकुराये ॥१०॥

पति ने पूछा—तुम कहाँ की भंगिन हो ? और कहाँ जाओगी ? ॥११॥

स्त्री ने कहा—मैं मथुरा की भंगिन हूँ, गोकुल जाऊँगी ॥१२॥

पति ने कहा—मेरी प्यारी स्त्री ! तब तो तुमने मेरा दिया हुआ पान भी नहीं खाया और न मेरी सेज पर पैर ही रक्खा ॥१३॥

हे बहू ! अब तुमने यह रूप कैसे बदला ? भंगिन बनकर तुम बन में कैसे आई ? ॥१४॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम ! तब मैं छोटी उम्र की नादान थी। अब मैं सयानी हो गई हूँ ॥१५॥

पति प्रसन्न हुआ। उसने कहा—मेरे पिछवाड़े बसे हुए सोनार भाई ! मेरी स्त्री के लिए सोलहो श्रृंगार के गहने तो गढ़ दो ॥१६॥

मेरे पिछवाड़े बसे हुए रंगरेज भाई ! मेरी स्त्री के लिए चूनरी तो रंग दो ॥१७॥

मेरे पिछवाड़े बसे हुए कहार भाई ! मेरी प्राणप्यारी को पालकी में ले चलकर महल में पहुँचा तो दो ॥१८॥

(६)

बयार बहेला पुरवइया त सींकियो ना डोलेला हो राम।
अहो रामा, मोरा परभू गइलें बिदेसवा कइसे जियरा बोधब
हो राम ॥ १ ॥
अँगुरिन मँगिया निकरिबूँ नयन भरी काजर हो राम।
अहो रामा, अस कहि जियरा बुझइबों कि जस हरि घरे
बाड़ैं हो राम ॥ २ ॥
होइतों मैं जल कै मछरिया जलहीं बीचे रही जइतों हो राम।
अहो रामा, मोरा हरि अइतें असननवाँ चरन चूमि लेइतीं
हो राम ॥ ३ ॥
सठिया कुटीय भात रन्हितों मुँगीय दरी दलिया हो राम।
अहो रामा, मोरा प्रभू अइतें जेंवनवाँ नजर भरी देखि लेतों
हो राम ॥ ४ ॥

होतों मैं घर के लउँड़िया घर ही बीचे रहि जइतों हो राम ।
अहो रामा, मोरा प्रभू अइतें सुतनरवाँ त सेजिया बिछाइ
देतीं हो राम ॥ ५ ॥

पूर्वा हवा इतनी मन्द-मन्द बह रही है कि सींक भी नहीं हिलती है। हाय ! मेरे स्वामी परदेश जा रहे हैं। मैं जी को ढाढ़स कैसे दूँगी ? ॥१॥

उँगलियों से माँग काढ़ लूँगी और आँखों में काजल दे लूँगी। मन को ऐसा समझाऊँगी कि जैसे मेरे भगवान् घर ही में हैं ॥२॥

हे राम ! मैं जल की मछली क्यों न हुई ? मैं जल में रहती और जब मेरे प्राणनाथ स्नान करने आते, तब मैं उनके चरण चूम लेती ॥३॥

साठी चावल कूटकर भात रीन्हती और मूँग दलकर दाल बनाती। मेरे प्रभु भोजन करने आते, तो मैं आँख भरकर उन्हें देखती ॥४॥

हा ! मैं घर की दासी क्यों न हुई ? मैं घर ही में रहती और जब स्वामी शयनागार में आते, तो मैं उनकी सेज बिछा देती ॥५॥

प्रेम-विह्वला स्त्री की सुन्दर तरंगें हैं।

(७)

सभको के पकइले पुड़िया त कुअर के जउरिया ये राम ।
उहो रे रसोइया बिख भइले त कुँअर मोरे बिदेसे गइले ये राम १
सासु मोरे बोलेलीं बिरहिया त केकर कमइया खइबू ये राम ।
ससुरु के जनमल बाड़े लछन देवर उनहीं के कमइया खइबों
ये राम ॥ २ ॥
उहो देवर दिहले जबबिया जे हमरो त बिअहिया बाड़ी ये राम ।
काँख तर लेइलीं लुगरिया त बाबा देसे चली गइलीं ये राम ॥३॥
सभवा बइठल तुहूँ बाबा त विपतल धिय हउवै ये राम ।
टुटली मड़इया हम के देत्योत विपती गँवाइत ये राम ॥ ४ ॥

टुटही मड़इया बेटी टूटी गइलें जाहु बेटी अपना माई आगे
ये राम।
अम्मा फटही लुगरिया हमके देतिउ त विपती गँवाइत ये राम।
फटही लुगरिया बेटी फाटि गइले जाहु अपना भाई आगे ये राम ५
भइया बीता यक जगहिया हमके देतेउ त बिपती गँवाइलीतो
ये राम ॥ ६ ॥
बीता एक जगहिया जोताइले जाहु अपना भउजी आगे ये राम।
भउजी पिछली टिकरिया हमके देतिउ त बिपती गंवाइलीतो
ये राम ॥ ७ ॥
जवन टिकरिया नन्द तुहें देबो से हो मोर लड़िका खइहें ये राम।
जवने डगरिया तुहूँ अइलू तवने चली जाहु ये राम ॥ ८ ॥
एक बने गइलीं दुसरे बने गइलीं तिसर बनवा भइले ठाढ़ ये राम।
बन में निकसी बघिनिया त मोरा जियरा भछि लीये ये राम ॥९॥
जवने डगरिया तु अइलू तवने चली जाहु ये राम।
तोरा बिरहा कै मारलि देहिया मैं भछि काउ पाउब ये राम ॥१०॥
बरहे बरिस पर मोर हरि लौटे लइ आये गहना चुनरिया हो
राम ॥११॥
पहिर ओढ़ि धन रोवन लागीं पिया बोले चलु नैहरवा हो राम १२
आगि लगै पियां वोहि नैहरवा बिपति में केउ न संघाती हो राम १३

सब के लिये पूरियाँ पकीं और कुँवर के लिए खीर बनी। हाय! कुँवर विदेश चले गए। मुझे तो यह रसोई विष ऐसी लगती है ॥१॥

सास ताना मारती है कि किसकी कमाई खाओगी? मैंने कहा—मेरे ससुर के दूसरे पुत्र लक्ष्मण, जो मेरे देवर लगते हैं, मैं उन्हीं की कमाई खाऊँगी ॥२॥

हाय! उस देवर ने भी जवाब दे दिया। उसने कहा—मेरे भी तो

स्त्री है। यह सुनकर बहू ने काँख में धोती दबा ली और वह अपने पिता के देश को चली गई ॥३॥

पिता सभा में बैठे थे। कन्या ने कहा—पिता ! तुम्हारी कन्या बिपत्ति में है। तुम अपनी टूटी हुई झोपड़ी मुझे दे देते तो मैं अपनी विपत्ति के दिन काट देती ॥४॥

पिता ने कहा—बेटी ! वह झोपड़ी तो टूट गई। अपनी माँ के पास जाओ।

बेटी माँ के पास पहुँचकर बोली—माँ ! अपनी फटी हुई धोती मुझे दे देती तो मैं अपनी विपत्ति के दिन काट देती ॥५॥

माँ ने कहा—बेटी ! वह धोती तो चिथड़े-चिथड़े हो गई। अपने भाई के पास जाओ। बहन भाई के पास जाकर बोली—भैया ! एक बीता जगह मुझे दे देते तो मैं अपनी विपत्ति के दिन काट देती ॥६॥

भाई ने कहा—एक-एक बीता जमीन तो मैं जोतवाता हूँ। तुम को कहाँ से दूँ ? अपनी भावज के पास जाओ। ननद भावज के पास जाकर बोली—भौजी ! पिछली टिकरी (रोटी) मुझे दिया करती तो मैं अपनी विपत्ति के दिन काट देती ॥७॥

भावज ने कहा—ननद ! जो टिकरी मैं तुम्हें दूँगी, उसे तो मेरे लड़के खायँगे। तुम जिस राह से आई हो, उसी राह से वापस जाओ ॥८॥

वह एक बन में गई। दूसरे में गई। तीसरा बन सामने आया। बन में से बाघिनी निकली। स्त्री ने कहा—हे बाघिन ! तू मुझे खा ले ॥७॥

बाघिनी ने कहा—जिस राह से तू आई है, उसी से वापस जा। विरह की मारी हुई तेरी देह खाकर मैं क्या पाऊँगी ? ॥१०॥

बारह वर्ष पर स्वामी लौटे। स्त्री के लिए गहना और चूनरी ले आये ॥११॥

स्त्री गहना पहनकर और चूनरी ओढ़कर खड़ी हुई। उसी वक्त उसे अपने दुःख के दिन याद आये और वह रोने लगी। पति ने समझा—नैहर की याद आई है। उसने कहा—मेरी प्यारी स्त्री ! चलो, नैहर चलो ॥१२॥

स्त्री ने कहा—हे प्राणनाथ ! नैहर में आग लगे। विपत्ति में कोई किसी का साथी नहीं ॥१३॥

(८)

बारह बरिस के मैना रानीआ हु रे जी।
सोलह बरिस के गोपी आसिक रे जी ॥ १ ॥
होत भिनुसार मैना अँगना बहोरली।
बढ़नी भेजावा गोपी आसिक रे जी ॥ २ ॥
अपनी खिड़किया मैना झारै लागी केसिया।
कँगही भेजावैं गोपी आसिक रे जी ॥ ३ ॥
अपने ओसरवाँ मैना मुड़वा बन्हावेली।
अयना भेजावे गोपी आसिक रे जी ॥ ४ ॥
कवन करन गोपी भेजेला कँगहिआ।
कवन करन के दरपनवा रे जी ॥ ५ ॥
केसिआ झरन के मैना भेजली कँगहिआ।
मुँहवा देखन के दरपनवा रे जी ॥ ६ ॥
जब रे मैना चलेली ससुररिआ।
गोपी धरले डोली क बँसवा हु रे जी ॥ ७ ॥
छोड़ू छोड़ू गोपी रे मोर बँसवा।
देखिहै ससुरवा सब लोगवा हु रे जी ॥ ८ ॥
तुहू तो जालू मैना अपना ससुरवा।
हमरा के का कही जालू रे जी ॥ ९ ॥
हाथे के लीहे गोपी लोटिया कान्हे के धोतिया।
जोगिया के भेष धर के आइत रे जी ॥१०॥
गवना के चुनरी धुमिल नाहीं भइली।
गोपी आसिक बँसीआ बजावले रे जी ॥११॥

अँगना बहारइ त चेरिआ लउँड़िया।
जोगिया के भीख डाली आवहु रे जी ॥१२॥
चेरिआ के हथवा के भीख नाहीं लेबो।
जिन्हीं रे बोलेली तिन्हीं दिहलू रे जी ॥१३॥
तरे कइली सोनवा उपर तिल चाउर।
जोगिआ भीख डावै चली मैना हु रे जी ॥१४॥
तोहरे करमवाँ के कहों गोपी आसिक।
चुल्लू भर पनिआँ में डूबहु रे जी ॥१५॥
आसिक के आस छोड़ी देहू गोपी भैया।
तुहूँ तो धरम केरा भइआ हु रे जी ॥१६॥

मैना रानी बारह वर्ष की है। और सोलह वर्ष का गोपी है जो उस पर प्रेम रखता है ॥१॥

सबेरा होते ही मैना जब आँगन बुहारने लगती थी, तब गोपी उसके लिये अच्छा-सा झाड़ू भेजता था ॥२॥

जब मैना अपनी खिड़की में बैठकर अपने लंबे केशों को साफ करने लगती थी, तब गोपी उसके लिये एक सुन्दर कंघी भेज देता था ॥३॥

जब मैना अपने ओसारे में जूड़ा बँधाने लगती थी, तब प्रेमी गोपी उसके लिये एक बढ़िया दर्पण भेज देता था ॥४॥

गोपी कंघी और दर्पण क्यों भेजता था? ॥५॥

गोपी बाल झाड़ने के लिए कंघी और मुँह देखने के लिये दर्पण भेजता था ॥६॥

जब मैना ससुराल जाने लगी, तब गोपी पालकी का बाँस पकड़कर खड़ा हुआ ॥७॥

मैना ने कहा—हे गोपी! मेरी पालकी के बाँस छोड़ दो। ससुराल के लोग देखेंगे. तो क्या कहेंगे? ॥८॥

गोपी ने कहा—हे मैना ! तुम तो अपनी ससुराल जा रही हो, मुझे क्या कहे जा रही हो ? ॥९॥

मैना ने कहा—हे गोपी ! हाथ में लोटा लेकर और कंधे पर धोती रखकर साधू का भेस धरकर आना ॥१०॥

अभी गौने की साड़ी मैली भी न होने पाई थी कि प्रेमी गोपी ने आकर बाँसुरी बजाही तो दी ॥११॥

मैना की ससुराल की दासियाँ आँगन में झाड़ू लगा रही थीं। मैना ने उनसे कहा—साधू को भीख दे आओ ॥१२॥

गोपी ने कहा—मैं तो दासी के हाथ से भीख न लूँगा। जिसने भीख भेजा है, उसी के हाथ से लूँगा ॥१३॥

मैना नीचे सोना, उसके ऊपर तिल और चावल रखकर साधू को भीख देने चली ॥१४॥

मैना ने कहा—गोपी ! मैं तुम्हारे भाग्य को क्या कहूँ ? चिल्लू भर पानी में तुमको डूब मरना चाहिये ॥१५॥

हे गोपी ! अब तुम इश्क की आशा छोड़ दो। तुम तो मेरे धर्म के भाई हो ॥१६॥

हताश प्रेमिक गोपी का अनुभव संसार के लिये नया नहीं है। बहुत-से युवक गोपी की तरह धोखे में रहते हैं।

(९)

पानी के पियासल जिरवा गइली पनीघटवा रे
घर के भसुर बटिआ रोकेले हु रे जी ॥ १ ॥
छोड़ु छोड़ु भसुरारे मोर पानीघटवा रे
बरसले पनीआँ भीजले मोर चुनरी हु रे जी ॥२॥
जउँ तोरा आहो रे जिरवा भीजीहे चुनरिया रे
हमरो दुपटवा ओढ़ि लेव हु रे जी ॥३॥

तोहरे दुपटवा भसुर अगिया धधाके हु रे
हमरे चुनरिया सीतल बयारिया हु रे जी ॥४॥
झीन झीन गोहुँआ जिरवा बाँस के चँगेलिया
जिरवा पीसले जँतसरिया हु रे जी ॥५॥
एक झींक हथवा दुसर झींक जँतवा
देवरा हमरा सनेसवा लेइ जाव हु रे जी ॥६॥
पँसवा खेलत तुहुँ जैसिंह रजवा रे
तोरी धना रोवे जँतसरिया हु रे जी ॥७॥
पसवा लड़वलन राजा बेल रे बबूर तर
झपटि क अइले जँतसरिया हु रे जी ॥८॥
ओटाले उठावलनी जाँघ बइठवलनी
अपनी रूमलिया आँसु पोंछे हु रे जी ॥९॥
किया हो जिरवा माई गरिअवलिन
किया हो बहिनिया बिरहा बोले हु रे जी ॥१०॥
नाहीं मोको अहो रे राजा सासू गरिअवलीं
नाहीं हो बहिनिआँ बिरहा बोले हु रे जी ॥११॥
जौन भसूरा मोरा अँगुठा न देखलन
तौन भसूरवा बटिआ रोके हु रे जी ॥१२॥
लेखे दे बिहान जिरवा लागे दे बजरिआ
रैनी चढ़ाइ भइआ मारब रे जी ॥१३॥
भइआ मरले जयसिंह अकसर होइबा
धनिया मरले दूसर धनिया मिलिहे रे जी ॥१४॥
मुँहमाँ रूमलिआ देके हँसले जयसिंह रजवा रे
अइसन छुलाछनि जिरवा धनियाँ हु रे जी ॥१५॥

जीरा प्यासी थी। पानी लाने के लिए वह पनघट पर गई। उसके जेठ ने रास्ता रोक लिया ॥१॥

जीरा ने कहा—हे जेठ! मेरा पनघट छोड़ दो। पानी बरस रहा है। मेरी चूनरी भीग रही है ॥२॥

जेठ ने कहा—हे जीरा! तुम्हारी चूनरी भीग रही है, तो तुम मेरा दुपट्टा ओढ़ लो ॥३॥

जीरा ने कहा—हे जेठ! तुम्हारे दुपट्टे में आग धधक रही है। मेरी चूनरी से शीतल वायु आ रही है ॥४॥

बाँस की चँगेली में गेहूँ लेकर जीरा जाँत के घर में बहुत बारीक आटा पीस रही है ॥५॥

एक झींक हाथ में ले रक्खा है। दूसरा जाँत में डाल दिया है। इतने में उसका देवर आया। जीरा ने कहा—हे देवर! मेरा संदेशा लेकर जाओ ॥६॥

देवर संदेशा लेकर जीरा के पति के पास गया—हे जयसिंह! तुम तो यहाँ बैठकर पाँसा खेल रहे हो। तुम्हारी स्त्री जाँत के घर में रो रही है ॥७॥

यह सुनते ही जयसिंह ने पाँसा तो बेल और बबूल के वृक्ष के नीचे फेंक दिया। और वे झपटकर जाँत-घर में जा पहुँचे ॥८॥

जयसिंह ने स्त्री को ओटा (seat) से उठाकर जाँघ पर बैठा लिया और रुमाल से स्त्री के आँसू पोंछकर पूछा—॥९॥

जीरा! क्या मेरी माँ ने तुमको गाली दी है? या मेरी बहन ने ताना मारा है? ॥१०॥

जीरा ने कहा—हे राजा! न तो मेरी सास ने गाली दी है, न मेरी ननद ही ने ताना मारा है ॥११॥

जेठजी, जो कभी मेरा अँगूठा भी न देखते थे, मेरा रास्ता रोके हुए थे ॥१२॥

जयसिंह ने कहा—हे जीरा! सबेरा होने दो और बाजार लगने दो। मैं तुम्हारे जेठ को मार डालूँगा ॥१३॥

जीरा ने कहा—हे राजा ! जेठजी को मारकर तुम अकेले हो जाओगे। और मुझे मार डालोगे, तो फिर तुम दूसरा विवाह कर लोगे ॥१४॥

स्त्री की बात सुन कर जयसिंह मुँह पर रुमाल रखकर हँसने लगे और बोले—मेरी प्यारी स्त्री जीरा ऐसी ही सुलक्षणा है ॥१५॥

(१०)

ननदी भउजिया खेलली सुपेलिया न रे
अरे भउजी बोलेली बिरहिया रे जी।
अरे इहे चलनिया डोम घर जइबू न रे ॥१॥
यतना बचन ननदी सुनही न पवलीन रे।
ननदी चलि भैली गिरही धवरोहर न रे ॥२॥
अरे कोई होत परभूजी के मितवा न रे।
बेगे खबरिया पहुँचाइत न रे ॥३॥
गलिया के गलिया फिरेला डोमवा न रे।
हम हैं परभूजी के मितवा न रे ॥४॥
बेगे खबरिया पहुँचइबो न रे।
तोहरे त बाड़े रानी माटी धवरोहर न रे।
हमरे तो बाड़े ईंट धवरोहर न रे ॥५॥
आपन गहनवा काढ़ बान्ह लेहु न रे।
रानी पोखरा के पिंड़िया चली आवहु न रे ॥६॥
एक बने गइली दूसरे बने गइली न रे।
अरे भेंट भइली गौवा चरवहवा न रे ॥७॥
सुनहु न मोर भइया गोरू चरवहवा न रे।
भैया कहाँ बाटे डोम धवरोहर न रे ॥८॥
मैं तोसे कहिल रनियाँ ये रनियाँ न रे।
रनियाँ इहे हौए डोम धवरोहर न रे ॥९॥

गइली रनियाँ अँगना बीच ठाढ़ भइली न रे।
अरे बइठे के बाँस के छिलकवा न रे ॥१०॥
मैं तोसे पूछलों डोमवा न रे।
डोमवा कहाँ पवले अइसन रनियाँ न रे ॥११॥
पहिरू न रनिया रे दूनों कान तरिवन न रे।
बेंचि आउ सुपवा सुपेलिया न रे ॥१२॥
पूरुब बेचिहे रनियाँ पच्छिम बेचिहे न रे।
हरदी नगरिया मत बेचिहे न रे ॥१३॥
पूरुब छोड़ली रानी पच्छिम न रे।
रानी चलि भइली हरदी नगरिया न रे ॥१४॥
गलिया के गलिया फिरेली डोमिनियाँ न रे।
केहू लिही सुपवा मउनियाँ न रे ॥१५॥
अपने महलिया चढ़ि रजवा निरेखे न रे।
हम लेबों सुपवा मउनियाँ न रे ॥१६॥
ठीकहि ठीक मोल बतलैहे डोमिनियाँ न रे।
ठीक ठीक मोलवा बताइब रजवा न रे ॥१७॥
मउनी के मोल ननदीजी के झुलवा न रे।
सुपली के मोल राजा हाथ रुमलिया न रे ॥१८॥
यतना बचन राजा सुनहि न पवले न रे।
अरे डोमवा के धई लै आवहु न रे ॥१९॥
आइल डोमवा देहरिया चढ़ि बइठल न रे।
अरे नै नै करेला सलमवा न रे ॥२०॥
ठीकहि ठीक बतलैहे डोमवाँ न रे।
हमरे ही जोग रानी बाड़ी न रे ॥२१॥

ठीक ठीक बतलैबो राजा हो न रे।
रौरे जोग रानी नाहीं बाड़ी न रे॥२२॥
जूठ मोर खइली पीठ लागि सुतली न रे।
राजा रौरे जोग नाहीं बाड़ी न रे॥२३॥
यतना बचन राजा सुनहि न पवले न रे।
अरे डोमिनि धै के लै आवौ न रे॥२४॥
अइली हो डोमिनि अँगन बिच बइठली न रे।
ठीक ठीक बतलैहै डोमिनिया न रे॥२५॥
हमरे लायक रानी बाड़ी न रे।
ठीक ठीक बतलैबों राजा हो न रे।
राजा रौरे जोग रानी बाड़ी हो न रे॥२६॥
जूठ नाहीं खैलीं हो पीठि लगल नाहीं सुतलीं न रे।
राजा रौरे जोग रानी बाड़ी न रे॥२७॥
जहुँ तुहुँ रनियाँ रे जूँठ नाहीं खैलू न रे।
रनियाँ हमें आगे देहु परिच्छा न रे॥२८॥
जहुँ तुहुँ अगिया सत के होइबू न रे।
आग तिल नाहीं जरे मोर देहियाँ न रे॥२९॥
लहकल अगिया जुड़ाइली हो न रे।
अरे ताही बीच खड़ी सत्ती रनियाँ न रे॥३०॥
गावँ के बाहेर रजवा पोखरा खनवले न रे।
अरे ताही बिच डोम भठीअवलेनि न रे॥३१॥

ननद भौजाई सुपेली खेल रही थीं। भौजाई ने व्यंग से कहा—ननद! तुम्हारी ऐसी ही चाल रहेगी तो तुम डोम (भंगी) के घर जाओगी॥१॥

ननद को यह बात बहुत बुरी लगी। वह धौराहर पर से गिरकर प्राण देने के लिए चल खड़ी हुई॥२॥

उसने कहा—अरे ! क्या कोई मेरे प्रभु (स्वामी) का मित्र है ? जो मेरा समाचार उन तक जल्दी पहुँचा दे ? ॥३॥

डोम गली-गली में फिरकर सफ़ाई कर रहा था। उसने कहा—मैं तुम्हारे स्वामी का मित्र हूँ ॥४॥

स्त्री ने कहा—तो जल्दी खबर पहुँचाओ न ? डोम ने कहा—तुम्हारा धौरहर तो मिट्टी का है। मेरा धौरहर ईंट और चूने का है ॥५॥

तुम अपना गहना-गट्ठी बाँध लो और तालाब के किनारे-किनारे चली आओ ॥६॥

वह एक बन में गई। दूसरे वन में गई। वहाँ उसे गोरू चरानेवाले मिले ॥७॥

उनसे उसने पूछा—हे गोरू चरानेवाले भाई ! डोम का धौरहर कहाँ है ? ॥८॥

डोम, जो साथ ही था, उसने कहा—हे रानी ! मैंने तुमसे कहा था न ! यही तो डोम का धौरहर है ॥९॥

रानी आँगन में जाकर खड़ी हुई। बैठने के लिए उसे बाँस का छिलका मिला ॥१०॥

लोगों ने डोम से पूछा—डोम ! तुमने ऐसी सुन्दर रानी कहाँ पाई ? ॥११॥

डोम ने रानी से कहा—रानी ! दोनों कानों में बाँस के छिलकों का बना हुआ कुण्डल पहन लो और सूप-सुपेली बेंच आओ ॥१२॥

हे रानी ! पूरब और पश्चिम बेंचने जाना। पर हलदी नगर में बेचने के लिए मत जाना ॥१३॥

रानी न पूरब गई, न पश्चिम। वह हलदी नगर ही की ओर चल निकली ॥१४॥

रानी गली-गली घूमकर बेंचने लगी—कोई सूप और मौनी (छोटी डलिया) लेगा ? ॥१५॥

राजा अपने महल से देख रहा था। उसने कहा—सूप और मौनी मैं लूँगा ॥१६॥

ठीक-ठीक दाम बताना। रानी ने कहा—हाँ, हे राजा! ठीक ही ठीक बताऊँगी ॥१७॥

मौनी का दाम ननद का झुलवा (जाकट) है, और सूप का दाम राजा के हाथ की रुमाल है ॥१८॥

राजा इतना वचन सुनने भी न पाया था कि बोला—डोम को पकड़ लाओ ॥१९॥

डोम आया और ड्योढ़ी के चबूतरे पर बैठा। उसने झुक-झुककर सलाम किया ॥२०॥

राजा ने पूछा—डोम! ठीक ही ठीक बताना—रानी! मेरे पास रहने योग्य है, कि नहीं? ॥२१॥

डोम ने कहा—हे राजा! मैं ठीक ही ठीक बताऊँगा। रानी आपके योग्य नहीं रह गई ॥२२॥

रानी ने मेरा जूठा खाया। पीठ से लग कर सोई। रानी अब आपके योग्य नहीं रही ॥२३॥

राजा ने यह सुनकर कहा—डोमिन को पकड़ लाओ ॥२४॥

डोमिन आकर आँगन में बैठी। राजा ने कहा—हे डोमिन! ठीक-ठीक बतलाना ॥२५॥

रानी मेरे योग्य है, कि नहीं? डोमिन ने कहा—हे राजा! मैं सच-सच बताऊँगी। रानी आपके योग्य अवश्य है ॥२६॥

न तो रानी ने जूठा खाया और न वह पीठ लगकर सोई। रानी आपके योग्य अवश्य है ॥२७॥

राजा ने रानी से पूछा—यदि तुमने सचमुच जूठा नहीं खाया तो अग्नि-परीक्षा दो ॥२८॥

रानी ने आग से कहा—हे अग्नि! यदि तुम में सत हो, तो मेरा शरीर तिल भर भी न जले ॥२९॥

दहकती हुई आग ठंडी पड़ गई। रानी उसी के बीच में खड़ी है ॥३०॥

राजा ने गाँव के बाहर तालाब खुदवाया और उसी में डोम को गड़वा दिया ॥३१॥

(११)

यक सुधि आइ गइली जेंवत क रे
मोरा धईल जेंवन बसियां गइले हो।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया क ॥१॥
यक सुधि आइ गइली पनिया भरत क रे।
अरे फुटतै घरिल डुबि जातो रे।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया क ॥२॥
यक सुधि आइ गइली बिरवा जोरत क रे।
अरे खैर सोपारी मैं भूलि गईं रे।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया क ॥३॥
यक सुधि आइ गइली सेजिया सोवत क रे।
अरे डसती नगिन मरि जातो रे।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया क रे ॥४॥

मैं जैसे ही भोजन करने बैठी, मुझे अपने साँवले सिपाही की याद आ गई। मेरा भोजन रक्खा ही रक्खा बासी हो गया ॥१॥

पानी भरते समय यकायक उसकी याद आगई। मेरी ऐसी दशा हो गई कि घड़ा फूट जाता और कुँएँ में जा पड़ता ॥२॥

पान का बीड़ा जोड़ते समय उसकी याद आ गई, तो मैं उसमें खैर और सुपाड़ी रखना ही भूल गई ॥३॥

सेज पर सोते समय उसकी याद आगई तो मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि काली नागिन ने डस लिया है और मैं मरी जा रही हूँ ॥४॥

(१२)

बदरिया झिमकत आवै मोरे राजा।
साँझ भई दिया बाती की बेरिया,
राजा दुहावै लागें गइया, मैं जेवना बनावउँ
मोरे राजा ॥१॥
आधी रात चपरसिया क फेरा,
राजा बिछावयँ सुख-सेजा, मैं जँतवा बहारौं
मोरे राजा ॥२॥
भोर भये चुहचुहिया जो बोलै, राजा सँवारें
सिर पागा, मैं जाँते पर जूझन लागउँ
मोरे राजा ॥३॥

बदली चमकती आ रही है। शाम हुई। दीपक जलाने की बेला आई। राजा गाय दुहाने लगे और मैं भोजन बनाने लगी ॥१॥

आधी रात को पहरेदार का फेरा हुआ। मेरे राजा सुख-शय्या बिछाने लगे। मैं जाँत का घर बहारने लगी ॥२॥

सबेरा हुआ। चुहचुहिया (एक पक्षी) बोलने लगी। राजा अपनी पगड़ी सँवारने लगे और मैं उठकर जाँत पर जूझने लगी ॥३॥

इस गीत में शाम से लेकर सबेरे तक स्त्री की दिन-चर्या वर्णित है। हिन्दू-गृहस्थों की रहन-सहन देहात में इतनी खराब हो गई है कि सचमुच जब घर के और पड़ोस के लोग सो जाते हैं, और रात को पहरेदार आकर जगाता है तब पति चोर की तरह धीरे-धीरे उठकर स्त्री के घर में जाता है। वह तो सुख की सेज बिछाने लगता है। स्त्री बेचारी को अवकाश कहाँ ? वह सबेरे आटा पीसने की तैयारी में लग जाती है। पति सबेरे उठकर चला जाता है। स्त्री बेचारी सचमुच जाँत पर जूझने लगती है।

(१३)

झीने झीने गोहुवाँ बाँसे कै डेलरिया
ननदी भौजैया गोहुवाँ पीसैं मोरे राम ॥१॥
रोजै तो आओ देवरा दुइ रे सिपहिया
आज कइसे आयउ अकेलवा मोरे राम ॥२॥
कैसेन भीजी देवरा तोरी रे पनहिया
कैसेन तेगवा तोरी भीजी मोरे राम ॥३॥
सितियन भीजी भौजी मोरी रे पनहिया
हरिनी सिकरवा तेगवा भीजा मोरे राम ॥४॥
देहु न बताई देवरा रे गोसइयाँ
तुहैं छोड़ि कहूँ न जाबै मोरे राम ॥५॥
कहवैं मार्‌यो कहवैं बहायउ
कहाँ कै चिल्हरिया मड़राय मोरे राम ॥६॥
उँचवैं मारेउँ खलवैं बहायउँ
सरगे चिल्हरिया मड़रानी मोरे राम ॥७॥
बन में चनन कै लकड़ी बटोर्‌यों
चितवै किहौं तैयार मोरे राम ॥८॥
जाहु जाहु देवरा अगिया लै आओ
स्वामी क आगि हम देबै मोरे राम ॥९॥
जौ तुम होउ स्वामी सच क बिअहुता
अँचरा अगिनिया लइ उठौ मोरे राम ॥१०॥
अँचरा भभकि उठा सतिना भसम भई
देवरा मींजै दूनौ हाथ मोरे राम ॥११॥
जौ हम जनतेउँ भौजी दगवा कमाबिउ
काहे क मरतेउँ सग भैया मोरे राम ॥१२॥

बाँस की डलिया में छोटे-छोटे गेहूँ हैं। ननद-भौजाई गेहूँ पीस रही हैं ॥१॥

देवर को घर में आया देखकर भौजाई ने पूछा—देवर! रोज तो तुम दोनों भाई साथ आते थे, आज अकेले कैसे आये? ॥२॥

हे देवर! तुम्हारी जूती कैसे भीगी? और तुम्हारी तलवार में रक्त कहाँ से लगा है? ॥३॥

देवर ने कहा—हे भौजी! ओस से मेरी जूती भीगी है और हरिनी के शिकार में मेरी तलवार खून से भीग गई है ॥४॥

स्त्री सारा रहस्य समझ गई। उसने पूछा—हे देवर! सच-सच बता क्यों नहीं देते? मैं तुम्हे छोड़कर दूसरे के पास नहीं जाऊँगी ॥५॥

अपने बड़े भाई को तुमने कहाँ मारा? कहाँ फेंका? कहाँ की चील उनके ऊपर मँडला रही है? ॥६॥

देवर ने सच-सच बता दिया। उसने कहा—मैंने उन्हे ऊँचे पर मारा। नीचे ढकेल दिया और वहाँ आकाश में चील्ह मंडला रही थी ॥७॥

बन में चन्दन की लकड़ी बटोरकर मैंने चिता तैयार की है ॥८॥

भौजाई ने कहा—हे देवर! जाओ, जाकर आग ले आओ। मैं अपने हाथ से स्वामी को आग दूँगी ॥९॥

देवर आग लेने चला गया। इधर स्त्री अपने पति की लाश के पास खड़ी होकर विनती करने लगी—हे स्वामी। हे प्राणनाथ! जो तुम मेरे सचमुच विवाहित पति हो और मैं पतिव्रता होऊँ तो तुम मेरे आँचल से आग लेकर उठो ॥१०॥

आँचल से आग भभक उठी। सती नारी भस्म हो गई। देवर दोनों हाथ मींजने लगा ॥११॥

देवर ने कहा—हे भौजी! जो मैं जानता कि तुम इस तरह छल करोगी तो मैं अपना सगा भाई क्यों मारता? ॥१२॥

मालूम होता है, बड़े भाई की स्त्री पर छोटा भाई मुग्ध था। उसने उस स्त्री के लिये अपने बड़े भाई को मार डाला। पर सती स्त्री हाथ न

आई। उसने अपने धर्म-बल से आग उत्पन्न की और पति के शव के साथ सती होकर धर्म बचाया। इस देश में ऐसी सती स्त्रियाँ हो चुकी हैं, जो अपने आँचल से अग्नि उत्पन्न कर सकती थीं।

यह गीत अंग्रेजी राज से पहले का मालूम होता है; क्योंकि उन दिनों तलवार बाँधकर चलने में कोई कानून बाधक नहीं था।

(१४)

लिखि लिखि पतिया के भेजलन कुँअरसिंह,
ए सुन अमरसिंह भाय हो राम।
चमड़ा के टोड़वा दाँत से हो काटे कि,
छतरी के धरम नसाय हो राम ॥१॥
बाबू कुँअरसिंह औ भाई अमरसिंह,
दोनों अपने हैं भाय हो राम।
बतिया के कारण से बाबू कुँअरसिंह,
फिरंगी से हो रेढ़ बढ़ाय हो राम ॥२॥
दानापुर से जब सजलक हो कम्पू,
कोइलवर में रहे छाय हो राम।
लाख गोला तुहुँ कै गनि के मरिहौं,
छोड़ बरहखा के राज हो राम ॥३॥
रोवत बाड़े बाबू तो कुँअरसिंह,
मुखवा पर धर के रुमाल हो राम।
लेली लड़इआ हम तो बूढ़ा हो समय में।
अब कउन होइहें हवाल हो राम ॥४॥

कुँवरसिंह ने पत्र लिखकर अमरसिंह के पास भेजा—हे भाई! सुनो! चमड़े का कारतूस दाँत से काटने से क्षत्रिय-धर्म चला जायगा ॥१॥

कुँवरसिंह और अमरसिंह दोनों भाई थे। बात के कारण कुँवरसिंह ने अंग्रेज़ों से लड़ाई ली थी॥२॥

दानापुर से जब अंग्रेज़ों का कैम्प उठा तो कोइलवर में डेरा पड़ गया। अंग्रेज़ों ने कहा—मैं तुम को गिनकर लाख गोले मारूंगा। नहीं तो बड़हरवा का राज छोड़ दो॥३॥

कुँवरसिंह मुँह पर रूमाल रखकर रो रहे हैं—हाय! मैंने वृद्धावस्था में लड़ाई छेड़ी है। न जाने क्या दशा होगी॥४॥

बाबू कुँवरसिंह ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। ये आरा के पास जगदीशपुर के बड़े भारी ज़मींदार थे। ये चार भाई थे—कुँवरसिंह, दयालसिंह, राजपतिसिंह और अमरसिंह। उपर्युक्त गीत में पहले और चौथे भाई की बातचीत का वर्णन है।

१८५७ के गदर में कुँवरसिंह ने विद्रोही सिपाहियों का साथ दिया था। कुँवरसिंह बड़े ही रण-कुशल और साहसी थे। उन्होंने कई बार अंग्रेज़ सेनापतियों को परास्त किया था। उन्होंने आज़मगढ़ पर आक्रमण करके अंग्रेजों के हाथ से उसे जीत लिया था। आज़मगढ़ जिले में अंग्रेज़ों से और कुँवरसिंह से कई लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें कुँवरसिंह विजयी हुये। २०वीं अप्रेल, १८५७ को डगलस की सेना से इनका सामना हो गया। इसी युद्ध में एक तोप के गोले से इनकी जाँघ और बाँह में गहरी चोट आई। बाँह तो एक प्रकार से टूट ही गई थी। ये मूर्छित होकर हाथी पर गिर पड़े। महावत हाथी को युद्ध-स्थल से दूर ले गया। कुँवरसिंह हाथी पर से उतारे गये। होश में आने पर कुँवरसिंह ने अपना टूटा हुआ हाथ काटकर गंगाजी में फेंक दिया। वहाँ से वृद्ध कुँवरसिंह खाट पर सुलाकर २१ अप्रेल को जगदीशपुर लाये गये। जहाँ इनके भाई अमरसिंह कई हजार सिपाहियों के साथ थे। वहीं आहत-अवस्था में भी कुँवरसिंह ने २३ अप्रेल को कप्तान ले ग्रैण्ड की सेना को तहस-नहस कर डाला। ले ग्रैण्ड मारे भी गये। इसी घटना के तीसरे दिन कुँवरसिंह पंचत्व को प्राप्त हुये। इनके बाद अमरसिंह ने विद्रोह का झंडा हाथ में लिया।

बिहार में कुँवरसिंह के गीत घर-घर में गाये जाते हैं। कितने ही बिरहे, कितने ही जाँत के गीत, कितने ही खेत के गीत कुँवरसिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं, जो जनता के मानस-पटल पर भारत की स्वतंत्रता का एक धुँधला प्रकाश डाले हुये हैं।

(१५)

कृष्ण सुदामा दोनों पढ़ने को निकले,
बाँधे कृष्ण कल्यौवा हो राम।
धीरे-धीरे खोलि गठरिया सुदामा,
मूँठी भर चना उन फाँके हो राम ॥१॥
छोटे कन्हैया बड़े हैं सुदामा,
छोटे का हिस्सा उन खाया हो राम।
जेहि के दुआरे कान्हा हथिया बँधे रहैं,
तेहि द्वारे कुत्ता बसेरा हो राम ॥२॥
जिनके रहे कान्हा सोने की महलिया,
तेहि घर छानी न छप्पर हो राम।
जेहि की रसोइया कान्हा खिरिया बखिरिया,
तेहि खर फुटहा न दाना हो रामा ॥३॥
जेहि के घरे कान्हा सोने के थारा,
तेहि घर मट्टी का कुम्भा हो राम।
यक दिन बोलीं सुदामा की स्त्री,
जाय कन्हैयाजी तें बिनवो हो राम ॥४॥
कैसे के जाऊँ रानी मित्र से मिलने,
ना अंग धोती न लँगोटी हो राम।
अँचरा फारि रानी उन्हें पहिराइन,
हाथ में कुम्भा पकराइन हो राम ॥५॥

एक खेत में साँवाँ के तन्दुल,
मूठी भर साँवाँ उन बाँधा हो राम।
जाय सुदामा पहुँचे कृष्न दुअरवा,
पठवें राजा दरबनिया हो राम ॥६॥

जाइ के भीतर खबर जनाओ
आये हैं मित्र तुम्हारे हो राम।
पूजा करत श्री कृष्ण मुसुकाने,
आये हैं मित्र हमारे हो राम ॥७॥

कुम्हड़ा मँगाय मोहर भरि रुकुमिनि,
दीन्ही सुदामा के करवा हो राम।
घर कुम्हड़ा ले जाओ सुदामा,
यहि से मिलिहैं अहार हो राम ॥८॥

लै कुम्हड़ा चले मथुरा बजरिया,
बेचिन बनिया के हाथ हो राम।
कुम्हड़ा लै बनिया घर धरि आयो,
सेर भर दै के अनाज हो राम ॥९॥

हँसिया मँगाय कुम्हड़ा चीरिस जो बनिया,
मोहरें गईं छितराय हो राम।
जोनिहि बटिया चले सुदामा,
मोहरें दिहिन छिटकाय हो राम ॥१०॥

बटिया चलत आँखि मूंदे सुदामा,
अँधरा चलैं कैसे बाट हो राम।
पूजा करत 'श्रीकृष्नजी बोले,
सुनहु बात मेरी रुकमिनि हो राम ॥११॥

जब हम देहिंगे राज सुदामहिं,
तबहीं पैहैं अहार हो राम।
नहवाय खोवाय पहिराय पितम्बर,
दहिने अँग लिहिन बैठारि हो राम ॥१२॥

मूठी खोलि जब देखी कन्हैया,
पूँछै लागे भाभी कुछु पठइन हो राम।
एक फंका मारिन दूसर फंका मारिन,
रुकमिनि पकरिन हाथ हो राम ॥१३॥

तीनों लोक इनहिन को देहौ,
का अमल रहिहै तुम्हार हो राम।
पहिरि पितम्बर हाथ लिहे कुम्भा,
मनहि चले पछितात हो राम ॥१४॥

जहँवाँ हती वह राम मड़ैया,
तहवाँ भूप उतरे आय हो राम।
जहँवाँ हतो तुलसी का पेड़वा,
तहँवाँ कंचन खम्भ हो राम ॥१५॥

जहँवाँ हती मोरी दुर्बल ब्राह्मणी,
तहँवाँ खड़ी यक रानी हो राम।
जो गावै यह सुदामा चरित्तर,
होइ दरिद्र सब दूरि हो राम ॥१६॥

कृष्ण और सुदामा दोनों पढ़ने को निकले। कृष्ण ने कलेवा बाँध रक्खा था। सुदामा ने चुपके से धीरे-धीरे गठरी खोली और मूँठी भरकर चना चबा लिया ॥१॥

कृष्ण छोटे थे और सुदामा बड़े। सुदामा ने अपने से छोटे का भाग

खा लिया। परिणाम यह हुआ कि जिस सुदामा के द्वार पर हाथी बँधे थे, अब वहाँ कुत्ते बैठने लगे ॥२॥

जिस सुदामा के महल सोने के थे, अब उसके घर पर फूस के छप्पर भी नहीं रहे। जिस सुदामा के घर में खीर और बखीर (चावल, गुड़ और दूध से बनी हुई खीर) बना करती थी, अब वहाँ फूटा दाना भी नसीब नहीं होता ॥३॥

जिस सुदामा के घर में सोने की थालियाँ थीं, वहाँ अब मिट्टी के ठीकरे से काम निकलता है। सुदामा की स्त्री ने एक दिन कहा—तुम अपने मित्र श्रीकृष्ण से जाकर कहो ॥४॥

सुदामा ने कहा—हे मेरी रानी! मित्र से मिलने मैं कैसे जाऊँ? न मेरे धोती है, न लँगोटी। स्त्री ने आँचल फाड़कर सुदामा को पहनाया और हाथ में मिट्टी की एक हाँड़ी पकड़ा दी ॥५॥

एक खेत में मुठी भर साँवा के दाने बीनकर उसने अँगोछे में बाँधकर सुदामा को दिया। सुदामा कृष्ण के द्वार पर जाकर पहुँचे। उन्होंने द्वारपाल से इत्तला कराई ॥६॥

हे द्वारपाल! भीतर जाकर श्रीकृष्ण को खबर करो, तुम्हारे मित्र आये हैं। श्रीकृष्ण पूजा करते थे। सुदामा के आने का समाचार सुनकर वे मुसकुराये—अहा! मेरे मित्र आये हैं ॥७॥

रुक्मिणी ने कुम्हड़ा मँगाकर उसमें मोहर भरा, और सुदामा के हाथों में रखकर कहा—हे सुदामा! इसे घर ले जाओ। इसी से तुमको आहार मिलेगा ॥८॥

सुदामा कुम्हड़ा लेकर मथुरा के बाजार में गये और उन्होंने उसे एक बनिये के हाथ बेंच डाला। एक सेर अनाज देकर बनिये ने कुम्हड़ा खरीद लिया और वह उसे अपने घर रख आया ॥९॥

बनिये ने हँसिया मँगाकर कुम्हड़ा चीरा। चीरते ही चारों ओर मोहरें ही मोहरें छितरा गईं। जब ये मोहरें भी सुदामा को न मिलीं, तब रुक्मिणी ने सुदामा के रास्ते में मोहरें बखेरवा दीं ॥१०॥

राह चलते हुये सुदामा ने यह देखने के लिये आँख मूँद ली कि देखें, अंधे लोग कैसे चलते हैं? तब श्रीकृष्ण, जो पूजा कर रहे थे, बोले—हे रुक्मिणी! मेरी बात सुनो ॥११॥

मैं जब दूँगा, तभी सुदामा को आहार मिल सकता है। श्रीकृष्ण ने सुदामा को नहला-धुलाकर, खिला-पिलाकर, पीताम्बर पहनाकर अपनी दाहिनी ओर बैठा लिया ॥१२॥

श्रीकृष्ण ने सुदामा की गठरी ले ली और पूछा—भाभी ने मेरे लिये क्या भेजा है? यह कहकर उन्होंने एक फाँका साँवा का चावल खा लिया। दो फाँका खा लिया। तीसरा खाने जा रहे थे कि रुक्मिणी ने हाथ पकड़ लिया ॥१३॥

रुक्मिणी ने कहा—वाह! तुम इन्हीं को तीनों लोक दे दोगे, तो तुम्हारी अमलदारी कहाँ रहेगी? सुदामा बिदा हुये। पीताम्बर पहने हुये, हाथ में वही हाँड़ी लिये हुये, पछताते हुये घर चले ॥१४॥

घर आकर क्या देखते हैं? जहाँ उनकी झोपड़ी थी, वहाँ मालूम होता है, कोई राजा आकर उतरा है। जहाँ तुलसी का पेड़ था, वहाँ सोने का खंभा लगा है ॥१५॥

जहाँ उनकी दुबली-पतली ब्राह्मणी थी, वहाँ एक रानी खड़ी है। यह सुदामाचरित्र जो गावे, उसकी सब दरिद्रता दूर हो जाय ॥१६॥

(१६)

मोरे पिछरवाँ कुम्हरवा की बखरी,
अच्छी अच्छी मेटुकी भँवायो जी ॥१॥
असकै चाक चलाये रे कुम्हरवा,
दहिया बेंचन हम जाइब जी ॥२॥
असकै चाक चलैहौं गुजरिया,
दहिया लेवैया लोभि जावै जी ॥३॥

मोरे पिछवारे दरजिया की बखरी,
अच्छी अच्छी चोलिया सिआयो जी ॥४॥
असकै सुइया चलाये रे दरजिया,
चारि चिरैया दुइ मोरें जी ॥५॥
कँहँवा बनावों चारि चिरैया,
कँहँवाँ बनाओं दुइ मोरें जी ॥६॥
अँगिया बनाओ चारि चिरैया,
अँचरे बनाओ दुइ मोरें जी ॥७॥
उठते बोलें चरि चिरैया,
बैठत कुहकें दुइ मोरें जी ॥८॥
एक घर नाँघि दूसर घर नाँघ्यों,
तिसरे में मिले हैं कन्हैया जी ॥९॥
छोड़ो कन्हैया बहियाँ हमारी,
हमरे ससुर बड़े जालिम जी ॥१०॥
तुमरे ससुर को मैं हथिया पठैहौं,
तुमको बैठरिहौं अपने राजहिं जी ॥११॥
छोड़ो कान्हा बहियाँ हमारी,
जेठ बड़े उतपाती जी ॥१२॥
तुमरे जेठ को मैं घोड़वा पठैहौं,
तुमका बैठरिहौं अपने राजहिं जी ॥१३॥
छोड़ो कन्हैया बहियाँ हमारी,
हमरे देवर जंजाली जी ॥१४॥
तुमरे देवर को मैं मुरली पठैहौं,
तुमका बैठैहौं अपने राजहिं जी ॥१५॥

छोड़ो कन्हैया बहियाँ हमारी,
सइयाँ हमरे दुख दारुन जी ॥१६॥
तुमरे बलम का मैं करिहौं बियहवा,
एक गोरी एक साँवर जी ॥१७॥
तनी यक पिछउँड़ होइ जाओ कान्हा,
जमुना में खेलिहों डुबैया जी ॥१८॥
एक बुड्डी मारिन दुसर बुड्डी मारिन,
गोरिया उतरि गई पारै जी ॥१९॥
पूंछन लागे गइया चरवहवा,
बखरी गुजरिया बताओ जी ॥२०॥
जाइ के बैठे कान्हा कुअँवाँ जगत पर,
पूँछहिं कुँआँ पनिहारिन जी
बखरी गुजरिया बताओ जी ॥२१॥
जेहि के दुआरे कान्हा बाँधे हैं पँड़रुवा,
वही गुजरिया की बखरी जी ॥२२॥
हाथ में चुड़िला पाँव में बिछिया,
पहिरिन चटक चुनरिया जी ॥२३॥
निहुरें निहुरे गुजरी अंगना बहारैं,
पीछे ठाढ़े कन्हैया जी ॥२४॥
लागीं कहन परोसिन उनसे,
पीछे बहिन तुमरी ठाढ़ी जी ॥२५॥
ना तो चचा के ना तो बबा के,
दुसरी बहिन कहाँ पावा जी ॥२६॥
तुमरा बियाह बहिनि हमरा जनमवा,
दुसरी बहिनि तुम पायो जी ॥२७॥

दूनौं बहिनि मिलि पिसना जो पीसैं,
हाथ घुमावैं मरदाने जी ॥२८॥
दोनों बहिनि मिलि कुटना जो कूटैं,
मूसर उठावैं मरदाने जी ॥२९॥
दूनौं बहिनि मिलि रोटिया बनावैं,
थपकी चलावैं मरदाने जी ॥३०॥
दूनौं बहिनि मिलि जेंवन जो बैठी,
कौर उठावैं मरदाने जी ॥३१॥
एक दिन बीता दुसर दिन बीता,
कान्हा कहेन मुसुकाई जी ॥३२॥
जीजा की खटिया बरौठा में डारौ,
हम तुम सूतब महलिया जी ॥३३॥
खटिया बइठि कान्हा रस भरि चितवैं,
भौंहाँ चलावैं मरदाने जी ॥३४॥
समुझि समुझि मन हँसी गुजरिया,
झपटि के भागि दुवारे जी ॥३५॥
भागो कन्हैया जिअरा बचाओ,
आइगे ससुर बड़ जालिम जी ॥३६॥
भागो कन्हैया जिअरा बचाओ,
आइगे देवर जंजाली जी ॥३७॥
भागो कन्हैया जिअरा बचाओ,
आइगे जेठ उतपाती जी ॥३८॥
भागो कन्हैया जिअरा बचाओ,
आइगे सैयाँ बड़ दारुन जी ॥३९॥

ओढ़नी उतारि कान्हा अँगना में फेंकेनि,
लहँगा उतारि जँतसारी जी ।।४०।।
हालाहाली टिकुली उतारै न पायनि,
कूदि गयेन डँड़वारी जी ।।४१।।
हथवा बजाय कै हँसी गुजरिया,
ठहरौ न कान्हा रस लूटौ जी ।।४२।।
टिकुली देखि के हँसै बजरिया,
कान्ह बहुत खिसियानेनि जी ।।४३।।

मेरे पिछवाड़े कुम्हार का घर है। हे कुम्हार ! तुम बहुत अच्छी तरह चाक चलाना और सुन्दर मटुकी बना देना। मैं दही बेंचने जाऊँगी ।।१,२।।

कुम्हार ने कहा—हे गूजरी ! मैं ऐसा चाक चलाऊंगा और ऐसी सुन्दर मटुकी बना दूंगा कि दही लेनेवाला लुभा जायगा ।।३।।

मेरे पिछवाड़े दरजी का घर है। हे दरजी ! अच्छी-अच्छी चोली सी देना ।।४।।

हे दरजी ! ऐसी सुई चलाना, जिससे चार चिड़ियाँ और दो मोरों का बूटा निकल आये। दरजी ने पूछा—चार चिड़ियाँ कहाँ बनाऊँ ? और दो मोर कहाँ ? ।।५,६।।

स्त्री ने कहा—चारों चिड़ियाँ तो चोली पर बना देना और दोनों मोर आँचल में ऐसा बनाना कि जब मैं उठूं, तब चारों चिड़ियाँ बोलने लगें। और जब बैठूं, तब दोनों मोर कुहकने लगें ।।७,८।।

गूजरी दही बेंचने निकली। एक घर में बेंचकर दूसरे घर में गई। तीसरे में गई। वहाँ उसे श्रीकृष्ण मिल गये। उन्होंने गूजरी की बाँह पकड़ ली। गूजरी ने कहा—हे कृष्ण ! मेरी बाँह छोड़ दो। मेरे ससुर बड़े क्रोधी हैं ।।९,१०।।

कृष्ण ने कहा—मैं तुम्हारे ससुर के लिये हाथी भेजूंगा और तुम को पटरानी बनाऊँगा ।।११।।

गूजरी ने फिर कहा—हे कृष्ण ! मेरी बाँह छोड़ दो। मेरे जेठ बड़े उत्पाती हैं ।।१२।।

कृष्ण ने कहा—तुम्हारे जेठ के लिये मैं घोड़ा भेजूँगा और तुम को राजगद्दी पर बैठाऊँगा ।।१३।।

गूजरी ने फिर कहा—हे कृष्ण ! मेरी बाँह छोड़ दो। मेरे देवर बड़े प्रपंची हैं ।।१४।।

कृष्ण ने कहा—तुम्हारे देवर के लिए वंशी भेजूँगा और तुम को राजगद्दी पर बैठाऊँगा ।।१५।।

गूजरी ने फिर कहा—हे कृष्ण ! मेरी बाँह छोड़ दो। मेरे स्वामी बड़े ही कठोर स्वभाव के हैं ।।१६।।

कृष्ण ने कहा—मैं तुम्हारे स्वामी का दो विवाह करा दूँगा। एक स्त्री साँवली होगी, दूसरी गोरी ।।१७।।

गूजरी ने छुटकारे का जब कोई उपाय नहीं देखा, तब उसने कहा—हे कृष्ण ! जरा तुम मुँह उधर कर लो। मैं जमुनाजी में एक डुबकी ले लूँ ।।१८।।

कृष्ण ने उसे डुबकी मारने के लिये छोड़ दिया। एक डुबकी के बाद दूसरी डुबकी मारकर वह पानी ही पानी में उस पार हो गई, और अपने घर चली गई ।।१८।।

श्रीकृष्ण उसका घर खोजते हुये चले। उन्होंने गोरू चरानेवालों से पूछा—हे भाई ! दही बेचनेवाली गूजरी का घर मुझे बता दो ।।२०।।

कृष्ण कुएँ की जगत पर जाकर बैठे। उन्होंने पनिहारिन से पूछा—हे पनिहारिन ! मुझे गूजरी का घर बता दो ।।२१।।

पनिहारिन ने कहा—हे कृष्ण ! जिसके द्वार पर भैंस के पँड़वे बँधे हैं, वही गूजरी का घर है ।।२२।।

कृष्ण ने हाथों में चूड़ियाँ, पाँवों में बिछुवे और शरीर पर चटकीली चूनरी पहन ली ।।२३।।

गूजरी झुकी हुई अपने आँगन में झाड़ू लगा रही थी। पीछे मुड़कर वह देखती है तो कृष्ण खड़े हैं ।।२४।।

पड़ोसिन ने गूजरी से कहा—देखो, तुम्हारी बहन खड़ी है ।।२५।।

गूजरी ने कहा—न तो मेरी कोई चचेरी बहन है, न कोई सगी है। यह बहन कहाँ से आई? ।।२६।।

कृष्ण ने कहा—हे बहन! तुम्हारा विवाह हो जाने के बाद मेरा जन्म हुआ था। इस प्रकार मैं तुम्हारी दूसरी बहन हूँ ।।२७।।

दोनों बहनें मिलकर आटा पीसने लगीं। दूसरी बहन का हाथ मर्द की तरह चलता था ।।२८।।

दोनों बहनें मिलकर कूटने बैठीं। दूसरी बहन का हाथ मर्द की तरह उठता था ।।२९।।

दोनों बहनें मिलकर रोटी बनाने लगीं। दूसरी बहन की थपकी मर्द की तरह पड़ती थी ।।३०।।

दोनों बहनें मिलकर भोजन करने बैठीं। दूसरी बहन मर्द की तरह कौर उठाती थी ।।३१।।

एक दिन बीता। दूसरा दिन बीता। तीसरे दिन कृष्ण ने मुसकुरा कर कहा ।।३२।।

जीजाजी की खाट बरौठे (बरांडे) में डाल दो। हम तुम महल में सोवें ।।३३।।

खाट पर बैठकर कृष्ण रसीली चितवन से देखने लगे और मर्द की तरह भौं चलाने लगे ।।३४।।

गूजरी को पहले ही से शक था। वह ताड़ गई। कृष्ण की चतुराई समझ-समझकर वह मन ही मन मुसकुरा रही थी। इतने में वह झपटकर दरवाजे की ओर भागी ।।३५।।

उसने कहा—हे कृष्ण! भागकर अपनी जान बचाओ। मेरे महा-क्रोधी ससुर आ गये ।।३६।।

भागो, भागो, हे कृष्ण! अपनी जान बचाओ। मेरा प्रपंची देवर आ गया ।।३७।।

भागो, भागो, हे कृष्ण! अपनी जान बचाओ। मेरे उत्पाती जेठ आ गये ॥३८॥

भागो, भागो, हे कृष्ण! अपनी जान बचाओ। मेरे भयानक, निष्ठुर स्वभाववाले स्वामी आ गये ॥३९॥

कृष्ण ने ओढ़नी उतारकर आँगन में फेंक दिया और लहँगा जाँत के घर में। पर जल्दी में उनको टिकुली (बेंदी) उतारने का मौका न मिला। वे डँड़वार (पाख) कूदकर घर से बाहर हो गये॥४०, ४१॥

कृष्ण को भागता हुआ देखकर गूजरी ताली बजाकर हँसने लगी और बोली—कृष्ण! भागे कहाँ जाते हो? आओ न? रस लूटो ॥४२॥

बाज़ार के लोग कृष्ण के माथे पर टिकुली (बेंदी) देखकर हँसने लगे। कृष्ण बहुत खिसिया गये ॥४३॥

हिन्दी की पुरानी कविता में पर-स्त्री से प्रेम के सारे क़िस्से कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध किये गये हैं। स्त्रियों ने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया है। पर पुरुष-कवियों ने जहाँ कृष्ण को सदा जिताया और गोपियों को लज्जित किया है, वहाँ इस गीत की रचयित्री ने गूजरी द्वारा कृष्ण को खूब ही छकाया है, और पुरुष-कवियों से अच्छा बदला लिया है।

गूजर अहीरों की एक जाति है जो राजपूताना और उसके आस-पास के प्रांतों में अधिकता से बसी हुई है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी ज़िलों के बरसाती गीतों में 'गुजरी' और 'गूजरिया' शब्द बहुत आते हैं। संभवतः लोगों ने इसे 'गोपी' शब्द का पर्यायवाची समझ रक्खा है; पर गूजर गोपों से भिन्न जाति है और उनके ही नाम से 'गुजरात' प्रान्त का नाम पड़ा है।

(१७)

छोटी मोटी तुलसी गछिया लम्बी लम्बी पतिया
फरे फुले तुलसी सोहावन रे खी ॥१॥
नुहरी नुहरी हम अँगना बहरलों
देवरा निरेखो मोर मुहवाँ रे खी ॥२॥

काहे बिन भौजी हो ओंठ झुहरइले
काहे बिन नैंना नीर ढारलु रे खी ॥३॥
पान बिनु बबुवा हो ओंठ झुहरइले
राउर भइया बिन नैंना नीर ढरिला रे खी ।४॥
पीसहु भौजी हो जीरवा रे सतुवा
हम जइबो भइया के मनावन रे खी ॥५॥
यक बन गइले दुसर बन गइले
अरे तिसर बने भइया धुनियाँ लावेंले रे खी ॥६॥
छोड़ि देहु भइया हो मन के किरोधवा
भौजी रोअली छतिया फारेल रे खी ॥७॥
कैसे मैं छोड़ूँ बबुवा मन के किरोधवा
तोर भौजी बोलली छतिया फाटेला रे खी ॥८॥
झँझरे झरोखा चंदा बियही रे निरखले
स्वामी के मनाय देवरा आवेला रे खी ॥९॥
अइसन देवर जी के पैर धोइ के पियबों
गइल सेंदुर गोहरावले रे खी ॥१०॥

तुलसी का छोटा-सा पौधा है। जिसकी पत्तियाँ लम्बी-लम्बी हैं। फूलने-फलने पर तुलसी बड़ी सुन्दर लगती है ॥१॥

मैं झुककर आँगन बुहार रही थी। देवर मेरा मुँह देखता है ॥२॥

देवर ने पूछा—हे भौजी! तुम्हरा ओंठ सूखा क्यों है? तुम्हारे नेत्रों से आँसू क्यों गिर रहे हैं? ॥३॥

भौजी ने कहा—पान बिना ओंठ सूखे हैं और हे देवर! आपके भाई बिना मेरे नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं ॥४॥

देवर ने कहा—हे भौजी! जीरा डालकर सत्तू पीस दो। मैं भैया को मनाने जाऊँगा ॥५॥

देवर एक बन को पार कर गया। दूसरे बन को पार कर गया। तीसरे में क्या देखता है कि भाई धूनी रमाये बैठे हैं ।।६।।

छोटे भाई ने कहा—हे भाई! मन का क्रोध छोड़ दो। भौजी का विलाप सुनकर हम लोगों की छाती फट रही है ।।७।।

बड़े भाई ने कहा—हे बबुआ! मैं क्रोध कैसे छोड़ूँ? तुम्हारी भौजी की कर्कश बोली से मेरी छाती फट जाती है ।।८।।

झँझरे झरोखे से चंदा (स्त्री का नाम) देख रही है कि देवर स्वामी को मनाकर साथ ले आ रहा है ।।९।।

चंदा मन ही मन कहती है—ऐसे देवर का पैर धोकर पीने को जी चाहता है। जो मेरे गये हुये सुहाग को पुकारकर वापस लाया ।।१०।।

बहुत से ऐसे पति हैं, जिनका कर्कशा स्त्री से पाला पड़ा है और जो रोज़ही धूनी रमाने की सोचा करते हैं।

(१८)

गहिरी नदिया ये हरीजी, अगम बहे राम पनियाँ।
पियवा जे चलले मोरँग देसवा बिहरेला करेजुवा ।।१।।
जो हम जनतों ये हरीजी जाइब पर रे देसवा।
कसि के बँधतों ये निरमोहिया प्रेम केरा रे डोरीया ।।२।।
मुँह तोरा देखों ये हरीजी नान्हीं नान्हीं रेखिया।
आँख तोरा देखों ये हरीजी अमवाँ केरे फँकिया ।।३।।
ओंठ तोरा देखों ये हरीजी चुएला रतनारीया।
हाँथ तोरा देखों ये हरीजी लच्छी रेसमवाँ ।।४।।
घर में रोवे घरनी ये हरीजी जंगल में रोवे राम हरीना।
बन में रोवे चकवा चकइया बिछोहवा कइल राम रतिया।।५।।

गहरी नदी है, जिसमें अथाह पानी बह रहा है। हाय! मेरे प्राणनाथ

मोरँग देश को जा रहे हैं। वियोग के दुःख से मेरा कलेजा फटा जा रहा है ।।१।।

हे मेरे ईश्वर ! यदि मैं जानती कि तुम विदेश जाओगे, तो हे निर्मोही ! मैं तुम को प्रेम की रस्सी से कसकर बाँध देती ।।२।।

हे प्राणेश्वर ! तुम्हरा मुँह देखती हूँ, तो उस पर अभी छोटी-छोटी रेख उठ रही है। आँखें देखती हूँ, तो आम की फाँकी-जैसी हैं ।।३।।

ओंठ देखती हूँ तो मालूम होता है, जैसे कोई रत्न है और उससे सौंदर्य टपक रहा है। तुम्हारा हाथ देखती हूँ, तो मालूम होता है, रेशम का लच्छा है ।।४।।

हे प्रियतम ! घर में तुम्हारी स्त्री रो रही है। बन में हरिण रो रहा है। बन में चकवा-चकई रो रहे हैं, जिन्हें रात में राम ने वियोग का दुःख दिया है ।।५।।

(१९)

सूतल रहलों मैं अपने ओसरवा
तिरिया जे बोलल कुबोल ये जदुबंसी
होइ जाहु जोगिया फकीर ये जदुबंसी ।।१।।
मोरा पिछुअरवाँ बढ़इया हित भइया
अरे चन्दन बिरिछिया काटि देहु ये जदुबंसी ।।२।।
चन्दन काटि भइया सारँगी बनावहु
अरे हम होइबों जोगिया फकीर ये जदुबंसी ।।३।।
गुदड़ी लगवलन भभूती रमवलन
अरे होइ गइलन जोगिया फकीर ये जदुबंसी
जदुबंसी के जियरा उदास ये जदुबंसी ।।४।।
सगरे नगरिया जोगिया घूम फिर अइलन
अरे बहिनी दुअरिया भइले ठाढ़ ये जदुबंसी ।।५।।

अँगना बहारति चेरिया लउँड़िया
अरे जोगिया के भिच्छा देइ आव ये जदुबंसी ॥६॥
चेरिया के हथवा रे गुह गोबरानी
अरे जिन्ह रे भेजा तिन्ह देव ये जदुबंसी ॥७॥
तरे कइलीं सोनवाँ ऊपर तिल चाँउर
अरे जोगिया के भिच्छा देइ आई ये जदुबंसी ॥८॥
रोवली बहिनी पटोरवे पोंछे कोरवा
अरे ई तो हवैं भइया हमार ये जदुबंसी ॥९॥
हम तुहूँ भइया हो एके कोखे जमलीं
अरे पियलीं मयरिया जी के दूध ये जदुबंसी
अरे काहे भइल जोगिया फकीर ये जदुबंसी ॥१०॥
तोहरे लिखल बहिनी अपनाहीं रजवा
अरे हमरो लिखल जोगिया फकीर ये जदुबंसी ॥११॥
छोड़ि देहु भइया हो सारँगी गुदरिया
अरे हमरे दुअरिया धुनियाँ लाव ये जदुबंसी ॥१२॥
तोहरो कलेउआ बहिनी तोहें घर बाढ़ो
अरे हम तो हैं जोगिया फकीर ये जदुबंसी ॥१३॥

मैं अपने ओसारे में सो रहा था। कर्कशा स्त्री ने कटु वचन कहा कि जोगी हो जाओ ॥१॥

मेरे पिछवाड़े बसे हुये बढ़ई भाई ! चंदन का वृक्ष काट दो ॥२॥

मुझे चंदन की सारंगी बना दो। मैं जोगी होऊँगा ॥३॥

गुदड़ी लेकर, राख लपेटकर, वह जोगी हो गया। पर उसका चित्त बहुत उदास था ॥४॥

जोगी सारे शहर में घूम-फिरकर अपनी बहन के द्वार पर खड़ा हुआ ॥५॥

नौकरानी आँगन बुहार रही थी। बहन ने उससे कहा—जोगी को भीख दे आओ ।।६।।

नौकरानी भीख देने आई। जोगी ने कहा—तुम्हारा हाथ गंदा हो रहा है। जिसने भेजा है, वही आकर दे ।।७।।

बहन नीचे सोना और ऊपर तिल और चावल रखकर भीख देने निकली ।।८।।

बहन ने देखा—अरे! यह तो मेरे भाई हैं। वह रेशमी साड़ी के आँचल से आँख का कोना पोंछकर रोने लगी ।।९।।

उसने कहा—हे भाई! हम तुम एक कोख से पैदा हुये हैं। हम दोनों ने एक ही माँ का दूध पिया है। तुम भैया! जोगी क्यों हो गये? ।।१०।।

जोगी ने कहा—हे बहन! तुमको राज भोग करना लिखा है। मुझे फ़कीरी लिखी है ।।११।।

बहन ने कहा—हे भाई! तुम सारंगी और गुदड़ी फेंक दो और मेरे द्वार पर धूनी रमाकर बैठ जाओ ।।१२।।

जोगी ने कहा—बहन! तुम्हारा भोजन तुम्हारे घर में बढ़ता रहे। मैं तो अब फ़कीर हूँ ।।१३।।

जोगी किंगरी (सारंगी) बजाकर या पाँच पैर की गौ आदि दिखलाकर भीख माँगनेवालों की जाति है। इसमें हिन्दू मुसलमान दोनों होते हैं। दोनों गेरुआ कपड़ा पहनते हैं, और श्रवण, शिव-पार्वती आदि की कथायें गाया करते हैं।

कर्कशा स्त्रियाँ बड़ी दुःखदायिनी होती हैं। घाघ ने कहा—

नसकट खटिया बतकट जोय।
जो पहिलौंठी बिटिया होय।।
पातर कृषी बौरहा भाय।
घाघ कहैं दुख कहाँ समाय।।

छोटी खाट, जिसपर सोनेवाले का पैर खाट से बाहर निकला रहे और एँड़ी के ऊपर वाली नस दबती हो, बात काटनेवाली स्त्री, पहले ही पहल कन्योत्पत्ति, हलकी खेती, पागल भाई, ये सब इतने दुःखद हैं, कि इनका दुःख कहाँ समा सकता है?

मालूम होता है, गीत के पुरुष को किसी 'बतकट जोय' से पाला पड़ा था, जो उसके गृह-त्याग का कारण हुआ।

(२०)

कवनी उमिरिया सासू निबिया लगायेन,
कवनी उमिरिया गये बिदेसवा हो राम ॥१॥
खेलत कूदत बहुवरि निबिया लगाये,
रेखिया भिनत गै बिदेसवा हो राम ॥२॥
फरि गै निबिया लहसि गै डरिया,
तबहू न आये तोर बिदेसिया हो राम ॥३॥
बरहे बरिसवा पै मोर हरि लौटे,
बर तर डारा है गोनिया हो राम ॥४॥
मैया लइ के धाई हैं चनन पिढ़ैया,
बहिनी लइ के धाईं जूड़ पनिया हो राम ॥५॥
धइ राखो मइया रे अपनी पिढ़इया,
नाहीं देखेंवँ पतरी तिरियवा हो राम ॥६॥
तोहरी तिरियवा बेटा गरभ गुमानी,
जाइ सोवहीं धौरहरा हो राम ॥७॥
गोड़वा धोवावत बहिनी लागे चुगुलिया,
भैया! भौजी से लेहु किरियवा हो राम ॥८॥
मोरे पिछवरवाँ बढ़इया भइया मितवा रे,
धर्म चइलवा चीरि लावो हो राम ॥९॥

मोरे पिछवरवाँ लोहर भइया मितवा रे,
धर्मी कढ़इया गढ़ि लावो हो राम ॥१०॥
मोरे पिछवरवाँ तेलिया भइया मितवा रे,
धरम कै तेल पेर लावो हो राम ॥११॥
मोरे पिछवरवाँ कोंहरवा भइया मितवा रे,
धरम गगरिया गढ़ि लावो हो राम ॥१२॥
मोरे पिछवरवाँ नउवा भइया मितवा रे,
नैहरे खबरिया जनावो हो राम ॥१३॥
जाइ कह्यो मोरे बाबा के अगवाँ रे,
तोरी धिया चढ़ीं हैं किरियवा हो राम ॥१४॥
आज एकादसिया बिहान दुवादसिया,
तेरसि के लेइहैं किरियवा हो राम ॥१५॥
आगे आगे आवै घी कै गगरी हो,
पीछे से आवैं बीरन भइया हो राम ॥१६॥
जीतल धेरिया नैहर चली अइहैं,
हरले क भरवा झोंकउबै हो राम ॥१७॥
बरि गई अगिया औ भभकी करहिया रे,
बहिनी खड़ी किरिया देइँ हो राम ॥१८॥
हे मोर सुरुज हमार पति राखेउ,
जौ हम होईं सतवन्ती हो राम ॥१९॥
जब बहिनी चली हैं गंगा किरियवा,
तब गगरी गइली झुराइ हो राम ॥२०॥
जब बहिनी चली हैं सूरुज किरियवा हो,
उवल सुरुज गये छिपाइ हो राम ॥२१॥

जब बहिनी गई हैं अगिनि किरियवा हो,
खौलल तेल जूड़ पनिया हो राम ॥२२॥
एक दाईं डारै दुसर दाईं डारै,
तिसरे उतरि गई परवाँ हो राम ॥२३॥
हथवा रुमलिया लैकै हँसै बीरन भइया,
बहिनी के डोलिया सजाओ हो राम ॥२४॥
मुहवाँ पटुकवा दैकै रोवैं मोर राजा,
सतवंती धन नइहर जैहैं हो राम ॥२५॥
भल छल किहिउ मोरी बहिनी हो राम,
डासल सेजिया उड़ासेउ हो राम ॥२६॥
खाइ क देबै बेटा दुधवा रे भतवा,
कइ देबै दूसर बिअहवा हो राम ॥२७॥
अगिया लगाओ मैया दुसरे बिअहवा,
बजर पड़ै ससुररिया हो राम ॥२८॥
बारिह बरिस तक मोरि बाट जोहिन,
छुटि गई मोरि सतवंती हो राम ॥२९॥
चाँद सुरिज अस मोरी रानी छुटि गै,
के घर बसल उजाड़ा हो राम ॥३०॥

बहू कहती है—हे सासजी! तुम्हारे परदेशी पुत्र ने किस उम्र में यह नीम लगाया था? और किस उम्र में वे परदेश गये थे? ॥१॥

सास ने कहा—खेलने-कूदने की उम्र में उन्होंने नीम लगाया था और रेख भिनते वे परदेश गये थे ॥२॥

बहू कहती है—नीम फलने भी लगी। डाल लहलहा उठी। हाय! फिर भी तुम्हारा परदेशी नहीं आया ॥३॥

बारह वर्ष पर मेरे प्राणेश्वर लौटे और बरगद के नीचे उतरे ॥४॥

माँ चंदन का पीढ़ा और बहन ठंडा पानी लेकर दौड़ी ।।५।।

बेटे ने कहा—माँ अपना ठंडा पानी अलग रक्खो। मैं अपनी दुबली-पतली स्त्री को नहीं देखता हूँ ।।६।।

माँ ने कहा—बेटा ! तुम्हारी स्त्री बड़ी अभिमानिनी है। वह धौरहर पर सो रही है।७७।।

पैर धुलाते वक्त बहन ने चुगली खाई—भैया ! भौजी से शपथ लेना कि उसकी चाल-चलन ठीक थी, या नहीं ? ।।८।।

पति ने कहा—मेरे पिछवाड़े बसे हुये हे बढ़ई भाई ! हे मित्र ! धर्म का चैला चीरकर लाओ ।।९।।

हे लोहार भाई ! धर्म की कढ़ाई गढ़कर लाओ ।।१०।।

हे तेली भाई ! धर्म का तेल पेरकर लाओ ।।११।।

हे कुम्हार भाई ! धर्म की गगरी (मिट्टी का घड़ा) बनाकर लाओ ।।१२।।

बहू ने कहा—मेरे पिछवाड़े बसे हुये नाई भाई ! मेरे नैहर को खबर दो ।।१३।।

मेरे बाबा के सामने जाकर कहना कि तुम्हारी कन्या सत पर चढ़ी है ।।१४।।

आज एकादशी है। कल द्वादशी है। परसों तेरस को सत की जाँच होगी ।।१५।।

आगे-आगे घी का घड़ा आ रहा है। पीछे-पीछे मेरा भाई आ रहा है ।।१६।।

बाबा ने कहलाया है—यदि कन्या सतवंती निकलेगी, तो नैहर आ जायगी। यदि चरित्रहीना प्रमाणित होगी, तो जीवन भर उसे भार झोंकना पड़ेगा ।।१७।।

आग जल गई। तेल खौलने लगा। बहन पास खड़ी होकर शपथ देने लगी ।।१८।।

उसने कहा—यदि मैं सतवन्ती हूँ, तो हे सूर्य देवता ! तुम मेरी लाज रखना ।।१९।।

यह कहकर जब बहू गंगाकी शपथ करने लगी, तब उसके सत के प्रताप से गगरी का गंगाजल सूख गया ।।२०।।

जब बहू सूर्य की शपथ लेने लगी, तब सूर्य छिप गया ।।२१।।

जब बहू अग्नि की शपथ खाने लगी, तब खौलता हुआ तेल ठंडा पानी हो गया ।।२२।।

बहू ने तेल में एक बार हाथ डाला। दूसरी बार डाला। तीसरी बार में वह पार हो गई; अर्थात् शपथ पूरा हो गया ।।२३।।

हाथ में रुमाल लेकर भाई हँस रहा है और कह रहा है—बहन के लिये जल्दी पालकी सजाओ ।।२४।।

बहू कहती है—मुँह पर डुपट्टा डालकर मेरे राजा रो रहे हैं— हाय ! मेरी सती स्त्री अब नैहर चली जायगी ।।२५।।

मेरे पति अपनी बहन से कह रहे हैं—हे बहन ! तुमने मुझे खूब धोखा दिया। तुम ने बिछी हुई सेज को उड़ास (उठा) दिया ।।२६।।

माँ ने कहा—बेटा ! आओ, दूध-भात खा लो। चिन्ता मत करो। मैं दूसरा विवाह कर दूँगी ।।२७।।

बेटे ने कहा—माँ ! दूसरे विवाह में आग लगे। नई ससुराल पर वज्र पड़े ।।२८।।

हाय ! बारह वर्ष तक जिसने मेरी राह देखी, वह सतवन्ती मुझ से छूट गई ।।२९।।

हाय ! चाँद ऐसी सुन्दर और सूर्य ऐसी निष्कलंकिनी मेरी रानी मुझ से छूट गई। हाय ! किसने मेरे बसे हुये घर को उजाड़ दिया ? ।।३०।।

(२१)

झिलमिल बहेला बयार पवन भल डोलि रही।
डोले नवरँगिया के डार कोइलिया कुहुक रही ।।१।।
बाबा गइले परदेसवा बड़ा सुखु देइ के गये।
अँगना चननवा के गाछ हिंडोलवा लाके गये ।।२।।

सइयाँ गये परदेसवा बड़ा दुख देइ के गये।
छतिया बजर केवरिया जँजिरिया लाके गये ॥३॥
बाट तोरा जोहेला बटोहिया काहे धन नीर ढरी।
किया तोरा नइहर दूर किया घर सासु लड़ी ॥४॥
नाहीं मोरा नइहर दूर नाहीं घर सासु लड़ी।
हमरा बलमुआ परदेस वोही हम सोच खड़ी ॥५॥
गलवा में देबों गलहार मोतियन माँग भरी।
छोड़ परदेसिया के आस हमारे सँग साथ चली ॥६॥
अगिया लगै गलहार बजर परै मोती लड़ी।
तोहरो ले पिया मोरा सुन्दर गुलाब क फूल छड़ी ॥७॥
कटबों चननवाँ के गाछ पलँगिया बिनाइब हो।
ताही पर पिया के सोवाइब बेनिया डोलाइब हो ॥८॥
धन सतवंती नारि धरम कै जोति खड़ी।
भेस बदलि पिय ठाढ़ देखि धन मुरछि परी ॥९॥

एक वियोगिनी कहती है—

मन्द-मन्द हवा बह-रही है और बड़ी सुहावनी लगती है। नारंगी की डाल हिल रही है। कोयल कूक रही है ॥१॥

बाबा परदेश गये। बड़ा सुख दे गये। आँगन में चन्दन के वृक्ष पर हिंडोला डाल गये ॥२॥

स्वामी परदेश गये। बड़ा दुःख दे गये। छाती पर बज्र ऐसा किवाड़ा लगाकर साँकल चढ़ा गये ॥३॥

हे स्त्री! यह पथिक तुम्हारी राह देख रहा है। तुम्हारी आँखों से आँसू क्यों गिर रहे हैं? क्या तुम्हारा नैहर दूर है? या घर में सास ने कुछ कहा है? ॥४॥

स्त्री ने कहा—न मेरा नैहर दूर है, और न सास ने ही कुछ कहा है।

मेरे प्रियतम परदेश गये हैं। मैं उन्हीं की सोच में खड़ी हूँ ॥५॥

पथिक ने कहा—हे पद्मिनी! मैं तुम्हारे गले के लिये हार दूँगा। तुम्हारी माँग में मोतियों से भर दूँगा। अपने परदेशी पति की आशा छोड़कर तुम मेरे साथ चली चलो ॥६॥

स्त्री ने कहा—तुम्हारे हार में आग लगे और मोती की लड़ी पर वज्र गिरे। मेरे प्राणनाथ तुम से कहीं अधिक सुन्दर हैं, जैसे गुलाब की फूल-छड़ी ॥७॥

चन्दन के वृक्ष को काटकर मैं पलँग बिनवाऊँगी। उस पर प्राणनाथ को सुलाकर मैं पंखी हाँकूँगी ॥८॥

यह सुनते ही पथिक ने वेश बदल डाला। वह तो उसका पति ही था। उसने कहा—हे सतवन्ती स्त्री! तुम को धन्य है। तुम धर्म की ज्योति की तरह खड़ी हो। प्रियतम को यकायक देखकर स्त्री हर्ष के मारे मूर्च्छित हो गई ॥९॥

(२२)

आवत देखे मैं दुइ हो सिपहिया,
एक साँवर एक गोर हो राम।
गोर हयेनि मोरि माई क पुतवा,
साँवर ननद जी के भैया हो राम ॥१॥
मचियहिं बैठिनि मोरी सासु बढ़इतिनि,
काउ बनावउँ जेवनार हो राम।
कौनी कोठिलवहिं बहुअरि सरली कोदइया,
मेंड़वा मसउढ़े क सगवा हो राम ॥२॥
अगिया लगावों सासु सरली कोदइया,
बजर परै मसौढ़े के सगवा हो राम।
खोलि देबइ सासु भिनवाँ क चउरा,
मुँगिया दरि दरि पहितियउ हो राम ॥३॥

जेंवन बैठे हैं सार बहनोइया,
सरवा के ढुरै अँसुइया हो राम।
की तू समझेउ भैया माता कै कलेउवा,
की हो बहुवा जीव के सेजिया हो राम ॥४॥

नाहीं हम समझेउँ मैया के कलेउवा,
नाहीं बहुवा जीव कै सेजिया हो राम।
चाँद सुरुज अस बहिनी सँकलपेउँ,
जरि जरि भइलि कोइलिया हो राम ॥५॥

देहु न बहिनी हमका ढाल तरवरिया,
सौजा अहेरवा हम जाबैं हो राम।
एक बन गये दुसरे बन गये,
तिसरे में मारेन बहनोइया हो राम ॥६॥

केथुवा डुबलि भैया पाँव कै पनहियाँ,
केथुवा डुबलि तरवरिया हो राम।
सितिया डुबलि बहिनी पाँव कै पनहियाँ रे,
रकत डुबलि तरवरिया हो राम ॥७॥

हम तो मारे बहिनी सग बहनोइया,
तुहँ से कहेउँ साँची बतिया हो राम।
कहँवहिं मारे भैया सग बहनोइया,
कवने बिरौआ ओठँघायहु हो राम ॥८॥

उचवहिं मारे बहिनी नीचवहिं ढकेले,
चन्दन बिरौआ ओठँघायहुँ हो राम।
के न मोर छैहैं भैया राँड़ कै मड़इया,
के न बितैहैं दिन रतिया हो राम ॥९॥

हम तोरि छौबै बहिनी राँड़ कै मड़ैया,
भौजी बितावै दिन रतिया हो राम।
दिन भरि भैया भौजी चरखा कतैहैं,
साँझि बेर देइहैं बूँद मँड़वा हो राम॥१०॥

मैं दो सिपाहियों को आते देखती हूं। एक साँवला है, दूसरा गोरा। गोरा तो मेरी माँ का पुत्र है और साँवला ननदजी का भाई॥१॥

मनस्विनी सास मचिये पर बैठी हैं। बहू ने पूछा—हे सास! क्या जेवनार बनाऊँ? सास ने कहा—देखो, किसी कोठिले में सड़ा हुआ कोदौ का चावल होगा और मेंड़ पर से ममूढे का साग खोंट लाओ॥२॥

बहू ने कहा—सड़े हुये कोदौ के चावल में आग लगाती हूँ, और ममूढे के साग पर बज्र गिरे। मैं बारीक चावल खोलकर दूँगी और मूँग दलकर उसकी दाल बनाऊँगी॥३॥

साले और बहनोई भोजन करने बैठे। साले की आँखों से आँसू गिरने लगे।

बहनोई ने पूछा—भाई! रोते क्यों हो? क्या तुम्हें माँ के हाथ का कलेवा याद आया है? या बहूजी की सेज याद आई है?॥४॥

साले ने कहा—हे भाई! न तो मुझे माँ का कलेवा याद आ रहा है, और न बहू की सेज। मैंने तुम को चाँद और सूर्य ऐसी बहन दी थी। तुमने उसे इतना कष्ट दिया कि वह दुःख में जल-जलकर कोयल (या कोयला) हो गई॥५॥

भोजन के उपरांत भाई ने बहन से कहा—बहन! मेरी ढाल-तलवार लाओ। मैं शिकार खेलने जाऊँगा। साले बहनोई शिकार खेलने निकले। एक वन के बाद वे दूसरे वन में गये। तीसरे वन में साले ने बहनोई को मार डाला॥६॥

घर आने पर बहन ने भाई से पूछा—हे भाई! किस चीज़ से तुम्हारे पाँव का जूता भीगा है? और किस चीज़ से तलवार भीगी है? भाई ने

कहा—हे बहन! ओस से मेरा जूता और रक्त से मेरी तलवार भीगी है ॥७॥

बहन! मैं तुम से क्यों छिपाऊँ? मैंने अपने सगे बहनोई को मार डाला है। बहन ने पूछा—हे भाई! तुमने अपने सगे बहनोई को कहाँ मारा? और कहाँ किस चीज़ के सहारे खड़ा कर रक्खा है? ॥८॥

भाई ने कहा—ऊँचे पर मारकर नीचे ढकेल दिया है और फिर लाश को चदन वृक्ष के सहारे खड़ी कर दी है। बहन ने कहा—हे भाई मुझ अभागिनी राँड़ की झोंपड़ी अब कौन छायेगा? किसके साथ मेरे दिन और रात बीतेंगे? ॥९॥

भाई ने कहा—हे बहन! मैं तुम्हारी झोंपड़ी छा दिया करूँगा। और तुम्हारी भौजी तुम्हारा समय बितायेगी। बहन ने कहा—हे भाई! भौजी दिन भर मुझ से चरखा कतायेगी और शाम को एक बूँद चावल का माँड़ खाने को दे देगी ॥१०॥

बहन के दुःख को देखकर बहनोई को मार डालने-जैसी मूर्खता का समर्थन नहीं किया जा सकता। यद्यपि ऐसी घटनायें आल्हा-ऊदल के ज़माने के इतिहास में और राजपूताने के इतिहास में हो चुकी हैं; पर कहीं भी बहनोई की मृत्यु के बाद, बहन को जो कष्ट भोगने पड़े हैं, उनका इलाज भाई नहीं कर सका है।

(२३)

बेइलि एक हरि लायेनि दुधवा सिंचायेनि।
आप हरि भयें बनजारा बेइलि कुम्हिलानि ॥१॥
मिलहु रे सखियाँ सहेलरी मिलिजुलि चलहु न।
सखिया हरिजी की लावलि बेइलिया सींचि जगावहु ॥२॥
एक घरिला सींचीं नौरँगिया दुसरे घरिला बेइलिया।
आइ गई हरिजी की सुधिया नैन आँसू ढूरें ॥३॥

सरगा उड़इ एक चिल्हिया सरब गुन आगरि।
चिल्हिया जहँ पठवों तहँ जातेउ सनेहिया लइ अवतेउ ॥४॥
उड़लि उड़लि चिल्हि गइ बरधिया पर बोलै।
सोअत बाटअ के जागत बरधिया के नायकै।
तोरि धनि चिठिया पठायेनि उठहु किन बाँचहु ॥५॥
बाये हाँथे चिठिया ले लिहलेनि दहिने हाथे बाँचैं।
ढुरै नयनवन आँसू पटुकवन पोंछैं ॥६॥
लादे बाटी इरची मिरिचिया और झीना कापड़।
चीलि टूटै वन की वरधी कि टँगिया नउज घर आवइँ ॥७॥

मेरे स्वामी एक लता लगाये थे। उसे उन्होंने दूध से सिचाया था। वे व्यापार करने चले गये। लता सूख गई ॥१॥

हे सखी सहेलियो! आओ, मिलजुल कर चलो। मेरे प्राणनाथ की लगाई हुई लता सूख रही है, उसे सींचकर फिर जगावें ॥२॥

स्त्री ने एक घड़ा पानी नारगी मे डाला। दूसरा घड़ा लता में डाला। इतने में स्वामी की सुधि आ गई और उसके नेत्रों से आँसू बह चले ॥३॥

आकाश में एक चील्ह उड़ रही थी, जो सर्व-गुण-सम्पन्न थी। स्त्री ने उससे कहा—हे चील्ह! मैं जहाँ भेजूँ, वहाँ तुम जाकर प्रेम का संदेशा ले आती ॥४॥

चील्ह उड़ती-उड़ती वहाँ गई, जहाँ स्त्री का पति था और उसके बैल के ऊपर बैठकर बोली—हे बैल के स्वामी! सोते हो? या जागते? ॥५॥

तुम्हारी स्त्री ने पत्र भेजा है। उठकर बाँचो, न? पुरुष ने बायें हाथ से चिट्ठी ली और दाहिने हाथ से थामकर पढा। उसकी आँखों मे आँसू बहने लगे और उसे वह अपने दुपट्टे से पोंछने लगा ॥६॥

उसने सन्देशा कहलाया—हे चील्ह! जाकर कह देना कि मैं मिर्च और महीन कपड़े लादे हूँ। इनके बिक जाने ही पर आऊँगा। यह सन्देशा

सुनकर स्त्री ने कहा—हे चील्ह ! राम करे, उनके बैल की टाँग टूट जाय। वे घर आवे, चाहे न आवें ।।७।।

'नउज' का ठीक अर्थ देनेवाला शब्द हिन्दी में दूसरा नही है।

(२४)

ननद भावज मिलि पनिया को निकरीं,
अँचरा उड़ि उड़ि जाय हो राम ।।१।।
मैं तोसे पूँछौं मैना ननदिया,
अँचरा कवन गुन उड़ै हो राम ।।२।।
बाउ बहै पुरवइया हो सजनी,
अँचरा उड़ि उड़ि जाय हो राम ।।३।।
मैं तोसे पूँछौं मैना ननदिया,
अँचरा कवन गुन धूमिल हो राम ।।४।।
बटुली माँजन गयूँ बाबा की महलिया,
बटुली कलिखवा अँचरा करिया हो राम ।।५।।
मैं तोसे पूँछौं मैना ननदिया,
मुँहवाँ कवन गुन पियरा हो राम ।।६।।
हरदी पिसन गयूँ भैया की महलिया,
वही के लगे से मुँह पियरा हो राम ।।७।।
सभवहिं बैठे हैं ससुर हमारे,
ननदी गवन दै डारौ हो राम ।।८।।
ऐसा कह्यौ बहुआ मैके पहुँचैहौं,
मोरी मैना लरिका नदान हो राम ।।९।।
मूचियहिं बैठीं हैं सासु बढ़इतिन,
मैना गवन दै डारो हो राम ।।१०।।

ऐसा कह्यौ बहुआ खाल खिंचैहौं,
मोरी मैना लरिका नदान हो राम ॥११॥
सारि पंसा खेलत जेठ हमारे,
मैना गवन दै डारौ हो राम ॥१२॥
ऐसा कह्यौ भैहो जीभ खिंचैहौं,
मोरी मैना लरिका नदान हो राम ॥१३॥
गेंदवा खेलत हैं देवरा हमारे,
मैना गवन दै डारौ हो राम ॥१४॥
ऐसा कह्यौ भौजी नैहर पहुँचैहौं,
मोरी मैना लरिका नदान हो राम ॥१५॥
भोजना जेंवत के सैयाँ हमारे,
मैना गवन दै डारौ हो राम ॥१६॥
मोरे पिछवरवाँ पंडित भैया मितवा,
मैना गवन सोधि देहु हो राम ॥१७॥
आजु एकादसिया बिहान दुआदसिया,
तेरसि को बनहि गवनवा हो राम ॥१८॥
जब रे बरतिया आई दुअरवाँ,
मैना की कमर पिराय हो राम ॥१९॥
जब रे बरतिया आई अँगनवाँ,
मैना के भये नन्दलाल हो राम ॥२०॥
मुँहँवाँ पटुक दै के हँसहिं बजनियाँ,
ब्याह बजावैं कि बधैया हो राम ॥२१॥
मुँहँवाँ पटुक दैके हँसहिं कहरवा,
तिन मूँड़ कैसे लैके जाबै हो राम ॥२२॥

मुँहँवाँ पटुक दे के रोवैं मैना के स्वामी,
मैया आगे कवन जवाब हो राम ॥२३॥
मुँहँवाँ पटुक दै के रोवैं मैना के बाबा,
मोरे मुँह लागी करिखिया हो राम ॥२४॥
मुँहँवाँ पटुक दैके रोवैं मैना के भैया,
द्वै कुल बोरयो मैना बहिनी हो राम ॥२५॥
मुँह अँचरा दैके रोवैं मैना की भौजी,
हमरी कहनिया नाहीं मान्यो हो राम ॥२६॥
एक गाँव नाँघे दुसर गाँव नाँघे,
तिसरे में परी ससुरारि हो राम ॥२७॥
आरति लैके निकरीं मैना की सासू,
केहि कर जाया होरिलवा हो राम ॥२८॥
दिन भरि बीतै मैया दंर दरबरवाँ,
राति रह्यों ससुरारि हो राम ॥२९॥

ननद और भौजाई पानी के लिये घर से निकलीं। ननद का आँचल उड़-उड़ जाता था ॥१॥

हे मैना ननद! मैं तुम से पूछती हूँ कि तुम्हारा आँचल किस कारण से उड़ा करता है? ॥२॥

मैना ने कहा—पूर्वा हवा बह रही है, उसी से आँचल उड़ जाया करता है ॥३॥

हे मैना ननद! मैं तुमसे पूछती हूँ कि तुम्हारा आँचल मैला क्यों है? ॥४॥

मैना ने कहा—मैं बाबा के आँगन में बटलोई माँजने गई थी, उसकी कालिख लग गई। इससे आँचल धूमिल हो गया ॥५॥

हे मैना! मैं तुमसे पूछती हूँ कि तुम्हारा मुँह पीला क्यों है? ॥६॥

मैना ने कहा—भैया के महल में मैं हलदी पीसने गई थी। मुँह में हलदी लग गई है। इससे वह पीला हो गया है ॥७॥

बहू ने घर आकर सभा में बैठे हुये अपने ससुर से कहा—मेरी ननद का गौना दे डालो ॥८॥

ससुर ने झिड़ककर कहा—बहू ! फिर ऐसा कहोगी तो तुमको नैहर भेज दूँगा। मेरी मैना तो अभी नादान बच्ची है ॥९॥

सास मचिये पर बैठी थीं। उससे बहू ने कहा—मैना का गौना दे डालो ॥१०॥

सास ने घुड़ककर कहा—बहू ! फिर ऐसा कहोगी तो खाल खिचा लूँगी। मेरी मैना तो अभी अबोध बालिका है ॥११॥

बैठक में जेठ पाँसा खेल रहे थे। बहू ने उनसे कहा—मैना का गौना दे डालो ॥१२॥

जेठ ने डपटकर कहा—बहू ! फिर ऐसा कहोगी तो जीभ पकड़कर खिचा लूँगा। मैना तो अभी अनजान बच्ची है ॥१३॥

देवर गेंद खेल रहा था। बहू ने उससे कहा—हे देवर ! मैना का गौना दे डालो ॥१४॥

देवर ने कहा—हे भौजी ! ऐसा कहोगी तो तुमको नैहर भेज दूँगा। मेरी बहन मैना तो अभी बिल्कुल बच्ची है ॥१५॥

स्वामी को जिमाते समय स्त्री ने कहा—मैना का गौना दे डालो। स्वामी ने स्वीकार कर लिया ॥१६॥

उन्होंने अपने पिछवाड़े बसे हुये पंडित से कहा—हे मित्र ! मैना के गौने की साइत तो विचार दो ॥१७॥

पंडित ने कहा—आज एकादशी है, कल द्वादसी है, तेरस को गौना बनता है ॥१८॥

जब मैना के गौने की बरात द्वार पर आई, तब मैना की कमर दुखने लगी ॥१९॥

बरात जब आँगन में आई, तब मैना के पुत्र हुआ ॥२०॥

बाजा बजानेवाले मुँह पर दुपट्टा रखकर हँस रहे हैं कि ब्याह के बाजे बजायें? या पुत्र-जन्म का बधावा बजायें? ॥२१॥

कहार मुँह पर दुपट्टा रखकर हँस रहे हैं कि हे राम! हम दो के बजाय तीन प्राणियों को कैसे ले जायँगे? ॥२२॥

मैना का स्वामी मुँह पर दुपट्टा रखकर रो रहा है—हाय! मैं माँ के आगे क्या जवाब दूंगा? ॥२३॥

मैना के बाबा मुँह पर दुपट्टा रखकर रो रहे हैं—हाय! मेरे मुँह मे कालिख लगी ॥२४॥

मैना का भाई मुँह पर दुपट्टा रखकर रो रहा है—हाय! मैना ने दोनों कुलों की इज्जत डुबो दी ॥२५॥

मुँह पर आँचल रखकर मैना की भौजी रो रही है—हाय! मेरा कहना पहले किसी ने नहीं माना ॥२६॥

एक गाँव नाँघने पर दूसरा गाँव मिला। उसे नाँघने पर तीसरे गाँव में ससुराल मिली ॥२७॥

मैना की सास आरती लेकर निकली। पर बालक को देखकर अकचका गई—है! यह बालक किसका है? ॥२९॥

बेटे ने बहू की लाज रख ली। उसने कहा—माँ! दिन भर तो मैं राज-दरबार में रहता था और रात को ससुराल में ॥२८॥

संभव है, मैना के पति ने सच्ची ही बात कही हो। पर यदि विवाह के साथ ही मैना का गौना भी दे दिया गया होता तो यह परिस्थिति पैदा ही न होती। पुरुष ने अपनी माँ के सामने सफ़ाई दी; पर बाजा बजानेवालों और कहारों का उपहास वह नहीं रोक सका। और ये लोग ऐसी बातों को दूर-दूर तक फैलाने में बड़ा रस अनुभव करते हैं। अतएव विवाह के नियम-संबंधी त्रुटि से दो कुलों की बदनामी सहज में हो गई।

इस गीत में एक बात ध्यान देने की और है। बहू ने घर के सब बड़ों से अनुरोध किया कि मैना का गौना दे डालो। पर किसी ने ध्यान नही दिया। अंत में भोजन कराते समय उसने स्वामी से कहा। तब स्वामी मान गया।

स्त्रियाँ बड़ी ही समय-चतुर होती हैं। यह प्रायः देखा जाता है कि जब स्त्रियों को गहने, कपड़े या किसी ख़ास चीज के लिये कुछ कहना होता है अथवा किसी की शिकायत या सिफारिश करनी होती है, तब वे पति से कहने के लिये भोजन ही का समय चुनती हैं। क्योंकि परम्परा से प्राप्त किये हुये अनुभवों मे वे जानती हैं कि भोजन करते समय या भोजन के उपरान्त ही मनुष्य अन्य समय से अधिक संतुष्ट और उदार हो जाता है।* बहुत से पुरुष भी इस रहस्य को जानते हैं, और उनको जब किसी से कुछ सहानुभूति प्राप्त करनी होती है, तब उससे वे भोजन के उपरांत ही मिलने का समय पसंद करते हैं; और कई अंशों में वे सफल हो भी जाते हैं।

(२५)

सबकी नगरिया गोविन्दा बँसिया बजायव,
हमरी नगरिया काहे न आयव हो राम ॥१॥
कैसे क आवौं सँवली तोहरी नगरिया,
कुकुरा भूकैं पहरू जागै हो राम ॥२॥
कुकुरा का देइ गोविन्दा दुधवा रे भतवा,
पहरू का मदिरा मतैबै हो राम ॥३॥
चलहु सँवली तू हमरे सँगहिया,
दूनौ जने करबै बिहरवा हो राम ॥४॥
कैसे क चलौं गोविन्दा तुहरे संगहिया,
बारा होरिलवा कोरवाँ रोवै हो राम ॥५॥
अबहीं तो संवली नई हो नोसर,
कहवाँ तू पायव होरिलवा हो राम ॥६॥
हमरा देवरवा गोविन्दा लड़िका नदनवा,
उहई होरिलवा कोरवाँ रोवै हो राम ॥७॥

कैसे क चलौं गोविन्दा तुहरे सँगहिया,
अँचरा मोरे राजा के तरवाँ हो राम ॥८॥
लेहु न सँवली छुरिया कटरिया,
काटि अँचरा चली आवहु हो राम ॥९॥
हमरे घराँ साँवल महला दुमहला—सोरह जिय गैयाँ,
तुहरे घर एक कोठरिया हो राम ॥१०॥
लाये हैं गोविन्दा डोलिया कहरवा,
चढ़ि के जे सँवली चलली हो राम ॥११॥
एक कोस गइली दुसर कोस गइली,
तीसरे मँ गोविन्दा कै झोपड़िया हो राम ॥१२॥
एक गोड़ ओसरवाँ, दुसरवा अँगनवाँ,
रोवै सँवलो रानियवा हो राम ॥१३॥
तब तो कहेउ गोविन्दा महला दुमहला,
हमरा देखत है झोपड़िया हो राम ॥१४॥
तब तो कहेउ सोरह गैया हमरा हैं,
अब देखत है सुअरी कै गोंठिया हो राम ॥१५॥
भल छल किहेउ गोविन्दा हो राम,
नहकै छोड़ेन अपना राजा हो राम ॥१६॥
छोड़ो साँवल चुँदरी पहिरो धन गुदरी,
मड़वा तुं खुंदिया मकुनिया हो राम ॥१७॥
खुँदिया क पोवउ मोटी मोटी रोटिया,
दूनो जने खाइ के सोई हो राम ॥१८॥
मुड़वा ठठावै साँवल रानी,
कैसे कै कटिहौं अपना दिनवा हो राम ॥१९॥

कैसे मैं जियबौं अपने राजा बिनु,
मोरा बारा देवरवा रोवत होइहै हो राम।
ईहे पसिया ठगि लावा हो राम ॥२०॥

हे गोविन्द! सब के गाँव में तो तुम वंशी बजाते हो, मेरे गाँव में कभी क्यों नहीं आते? ॥१॥

गोविन्द ने कहा—हे श्यामसुन्दरी! कुत्ते भूँकते हैं। पहरेवाले जागते रहते हैं। मैं तुम्हारे गाँव में कैसे आऊँ? ॥२॥

स्त्री ने कहा—हे गोविन्द! मैं कुत्ते को दूध-भात देकर चुप कर दूँगी और पहरेवालों को शराब पिलाकर मतवाला कर दूँगी ॥३॥

गोविन्द ने कहा—हे सुन्दरी! तुम मेरे साथ चलो न? दोनों जन मौज करेंगे ॥४॥

स्त्री ने कहा—हे गोविन्द! तुम्हारे साथ कैसे चलूँ? छोटा बालक गोद में रो रहा है ॥५॥

गोविन्द ने कहा—वाह! अभी तो तुम नई नवेली हो। तुम्हें बालक कहाँ से मिल गया? ॥६॥

स्त्री ने कहा—हे गोविन्द! मेरा देवर अभी बालक है। वही रोता है। और हे गोविन्द! एक कारण यह भी तो है कि मेरा आँचल मेरे राजा के नीचे दबा हुआ है, मैं तुम्हारे साथ कैसे चल सकती हूँ? ॥७,८॥

गोविन्द ने कहा—हे सुन्दरी! मुझसे छुरी कटारी ले लो और आँचल काटकर चली आओ ॥९॥

हे सुन्दरी! मेरा महल दो मंजिला है। मेरे यहाँ सोलह गायें हैं। तुम्हारे तो एक ज़रा-सी कोठरी है ॥१०॥

गोविन्द डोली और कहार बुला लाया। साँवली उस पर चढ़कर चली ॥११॥

वह एक कोस गई। दो कोस गई। तीसरे कोस में गोविन्द की झोपड़ी मिली ॥१२॥

सुन्दरी ने एक पैर ओसारे में रक्खा, दूसरा आँगन में। श्यामा रानी रोने लगी ।।१३।।

उसने कहा—हे गोविन्द! तब तो तुमने कहा कि मेरे दुमंजिला महल है। मैं तो एक झोपड़ी देख रही हूँ ।।१४।।

तब तो तुमने कहा कि मेरे सोलह गाये हैं। मैं तो यहाँ सुअरियों का बाड़ा देख रही हूँ ।।१५।।

हा! गोविन्द! तुमने मेरे साथ बड़ा छल किया। मैंने नाहक ही अपने राजा को छोड़ा ।।१६।।

गोविन्द ने कहा—अब चूनरी तो उतारकर रख दो, गूदड़ी पहन लो। मडुवा खून्दकर (मूसल से कुचलकर) मकुनी (मोटी रोटी' जो बहुत रूखी होती है और प्रायः ग़रीब लोग ही उसे खाते हैं) बनाओ ।।१७।।

मडुवा खून्दकर मोटी-मोटी रोटी पोओ। हम दोनों खाकर सुख से सोयें ।।१८।।

श्यामा रानी अपना सिर पीट रही है। हाय! मेरे दिन कैसे कटेंगे ।।१९।।

मैं अपने राजा के बिना कैसे जीऊँगी। हाय! मेरा बच्चा देवर रोता होगा। यह पासी मुझे ठग लाया ।।२०।।

घर के झंझटों से ऊबकर, लड़-झगड़कर या मामूली प्रलोभन मे फँसकर, बहुत-सी स्त्रियाँ किसी भिखमंगे या साधारण आदमी के साथ निकल जाती हैं। पीछे वे बहुत पछताती हैं। लोक-लज्जा-वश वे लौट तो सकती नहीं। लौटें भी, तो हिन्दुओं का सामाजिक बन्धन इस प्रकार का है कि वे कुम्टुब में रक्खी नहीं जा सकतीं। इससे कितनी ही स्त्रियों का जीवन मन की तरंग में दुख से पूर्ण हो जाता है।

(२६)

रामा बारह बरिस क उमिरिया त
हरि मोरा बिदेसे गइलें हो राम।

रामा बारह बरिस पर अइलेनि
बगिया मँ गोनी डालेनि हो राम।
रामा नगर बोलाइ भेद पुछलें
धनिया कवने रंगे हो राम ॥१॥

बाबू राउर धन हथवा क साँकरि
मुँहवाँ क तेजवंती हो राम।
बाबू बड़े रे घरे कै बिटियवा
तीनौ कुलवा राखेलि हो राम ॥२॥

उहवाँ से गोनिया उठवलें न
दुअरा प गोनी ढारें हो राम।
रामा चेरिया बोलाइ भेद पुछलें
धनिया कौने रंगे हो राम ॥३॥

बाबू राउर धनी आँगुठ मोरि चले
घूँघुट काँढ़ि चले हो राम।
बाबू बड़े रे सहेबवा क धिअवा
तीनहुँ कुलवा तारेली हो राम ॥४॥

उहवाँ से गोनिया उठवलेनि
अँगना में गोनी ढारें हो राम।
रामा मइया ले दउड़लिं पिढ़वा
बहिनिया लेइ पनिया हो राम ॥५॥

रामा मइया बोलाई भेद पुछलें
धनिया कौने रंगे हो राम।
बेटा तोरी धना भरलि बिरोग
नजरि नीचे कै चले हो राम ॥६॥

बेटा देहियाँ तो गइलि झुराइ
पै मुँहाँ जोति बाढ़लि हो राम।
बेटा बड़े रे सजनवाँ क धिअवा
तीनौं कुलवा राखेली हो राम ॥७॥

उहवाँ से गोनियाँ उठवलेनि
सेजिया प गोनी ढारें हो राम।
रामा सूतल धनियाँ जगवलेनि
जाँघे बइठउलेनि हो राम ॥८॥

रामा बहियाँ पकरि भेद पुछलें
कहु धना कूसल हो राम।
परभू रउरा बिन पान न खइलीं
सोपरिया नाहीं तुरलीं हो राम ॥९॥

परभू आँगन मेरा लेखे रन बन
दुआ सपन भइलें हो राम।
स्वामी सेजिया प लोटै काली नागिन
त रउरे दरस बिनूं हो राम।
त रउरे सरन बिनूं हो राम ॥१०॥

मेरी बारह वर्ष की अवस्था में मेरे प्राणनाथ विदेश गये। बारह वर्ष के बाद लौटे तो बाग़ में डेरा डाला। उन्होंने नगर के लोगों को बुलाकर पूछा—मेरी स्त्री की चाल-ढाल कैसी रही है? ॥१॥

नगर के लोगों ने कहा—हे बाबू! आप की स्त्री हाथ की बड़ी सँकरी, अर्थात् समझ-बूझकर खर्च करनेवाली है, फ़ज़ूलखर्च नहीं है। उसके मुँह पर बड़ा तेज है। हे बाबू! बड़े घर की बेटी है। उसने तीनों कुलों की रक्षा की है ॥२॥

पति वहाँ से डेरा उठाकर अपने द्वार पर आया और उसने दासी को बुलाकर पूछा—मेरी स्त्री का रंग-ढंग कैसा रहा? ॥३॥

दासी ने कहा—हे बाबू! आप की स्त्री अंगूठा दबाकर चलती है, घूँघट काढ़कर चलती है। वह बड़े मालिक की कन्या है। उसने तीनों कुलों का उद्धार किया है॥४॥

वहाँ से डेरा उठाकर पति आँगन में गया। उसे देखते ही माता बैठने के लिए पीढ़ा लेकर और बहन पानी लेकर दौड़ी॥५॥

उसने माँ से पूछा—मेरी स्त्री की चाल-चलन कैसी है? माँ ने कहा—बेटा! तेरी स्त्री तेरे विरह से भरी हुई सदा नीची नज़र करके चलती है॥६॥

हे बेटा! उसका शरीर तो सूख गया है, पर उसके मुँह पर पातिव्रत-धर्म की ज्योति जगमगा रही है। वह बड़े सज्जन की कन्या है। उसने तीनों कुलों की रक्षा की है॥७॥

पति वहाँ से उठकर अपने सोने के घर में गया। उसकी स्त्री सो रही थी। उसने जगाकर उसे गोद में बैठा लिया और बाँह पकड़कर पूछा—कहो, कैसी हो? स्त्री ने कहा—हे नाथ! आप के बिना मैंने न पान खाया, न सुपारी तोड़ी॥८,९॥

आँगन तो मेरे लिए बियाबान जंगल और द्वार स्वप्न हो गया था। आपके बिना शय्या काली नागिन के समान लगती थी॥१०॥

इस गीत से प्रकट होता है कि स्त्री के ऊपर अपने पिता, ससुर और पति तीनों के कुलों की मर्यादा-रक्षा का भार है। वह स्त्री धन्य है, जिसके मन की प्रशंसा दासी से लेकर नगर की साधारण जनता तक करे।

स्त्री पर पुरुष का सन्देह प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। यह गीत जब बना, उसके पहले भी यह सन्देह था और अब भी है। एक ओर यह सन्देह, दूसरी ओर धैर्य की पराकाष्ठा। बारह-बारह वर्ष तक स्त्री पति की राह देखती, दिन गिनती बैठी रहती थी। एक तो यही दुःख क्या कम था? उस पर चरित्र विषयक सन्देह। स्त्री ही में इतना सब सहने की शक्ति है।

पुरुषों में लक्ष्मण सरीखा ही कोई विवाहित पुरुष इतने वर्षों का ब्रह्मचर्य रख सकता है। इतने पर भी उसके चरित्र पर कोई सन्देह करे तो वह क्रोध को रोक सकेगा या नहीं, इसमें भी सन्देह है। विधाता ने स्त्री के हृदय में वह अद्भुत शक्ति दी है, जिसकी तुलना संसार में नहीं की जा सकती।

(२७)

बारह बरिसवा गे अम्मा मोरो गौना के भेलई गे जान।
जान केकर तीरियवा झारे लामी केसिया गे जान ॥१॥
तोरो जे हथुन बबुआ भाभो से भभोइया गे जान।
जान उदई सिंह तीरियवा झारे लामी केसिया गे जान ॥२॥
बारह बरिसवा गे अम्मा तोरो घरवा बस गइले गे जान।
जान कबहु ना जेवँली भाभी हाथ रसोइया गे जान ॥३॥
सठिया क कूटि टिकुला भतवा बनौलीन गे जान।
जान मुगिया दरली कैली दाल गे जान ॥४॥
मचिया बैठली रौरा सासु हे बढ़ैतिन गे जान।
जान जेमवथुन नरायन सिंह भैसुरवा गे जान ॥५॥
सब कोई जेमैं हो राम घर से अँगनवाँ गे जान।
जान भैसुर पापी बैठई भंसाघर देहरिया गे जान ॥६॥
सब कोई जेमैं हो राम पाँचो पकवनवा गे जान।
जान भैसुर पापी निरेखई टिकुला के सुरतिया गे जान ॥७॥
हाथ के जे लेलुहें टिकुला तेल हे फुलेलवा गे जान।
जान चली भैलु सामी के सेजरिया गे जान ॥८॥
एके हाथे लगवहु के टिकुला तेल से फुलेलवा गे जान।
जान दोसर हाथे पोंछे नैना लोरवा गे जान ॥९॥

बहियाँ अवटलु हे टिकुला जँघाया अबटल गे जान।
जान पीठवा अबटैते पोंछई नैना लोरवा गे जान ॥१०॥
किये तोरा आहो धनी अम्मा मोरा मरलिन गे जान।
जान किये गोतीन देलथुन तेरो बनबसवे गे जान ॥११॥
नए मोरा आहे स्वामी मासु मोरा मरलिन गे जान।
जान नए नन्दो देलथीन हमे के गरियवा गे जान ॥१२॥
जान नए गोतीन देलथीन हमे बनबसवे गे जान।
जान हमरे करनवे रौरे जीव जाएन गे जान ॥१३॥
कहाँ गेल किये भेल गाँव चौकीदरवा गे जान।
जान जल्दी बोलावहु उदई सिंह भैया गे जान ॥१४॥
कहाँ गेल किये भेल उदई सिंह बबुवा गे जान।
जान चलु बबुआ नरायन सिंह कचहरिया गे जान ॥१५॥
किये भैया मरिहेन किये गरिअइहेन गे जान।
जान किये भइया देलथीन हमे बनबसवे गे जान ॥१६॥
नए भैया मरिहै नाहीं बनबसवे गे जान।
जान चलु बबुआ हरिनी सिकरवे गें जान ॥१७॥
हमरो सो जोड़वा हो भैया धोबी घर पलटावन गे जान।
जान किए लेइ जैअइ हरिनी सिकरवा गे जान ॥१८॥
हमरो सो जोड़वा हो बबुआ तुहूँ पेन्ही लेह गे जान।
जान से ही पेन्ही जाहु हरिनी सिकरवा गे जान ॥१९॥
हमरो सो तेगवा हो भैया घर छूटी गेलइ गे जान।
जान किये लेई जैअई हरिनी सिकरवा गे जान ॥२०॥
हमरो सो तेगवा हो बबुआ तुहूँ लेइ लहु गे जान।
जान सेई लेई चलु हरिनी सिकरवा गे जान ॥२१॥

हमरो सो घोड़वा हो भैया घोड़ घोड़सरवा गे जान।
जान कथी चढ़ी जाबई हरिनी सिकरवा गे जान ॥२२॥
हमरो जे घोड़वा हो बबुआ तुहूँ चढ़ी लेहु रे जान।
जान सेहु चढ़ी चलु हरिनी सिकरवा गे जान ॥२३॥
ऊँची रे झरोखा चढ़ी टिकुला निरेखइ गे जान।
जान केकर घोड़वा रोअइत आवइ गे जान ॥२४॥
सब के घोड़वा ए राम सइँत आवई गे जान।
जान सामी जी के घोड़वा रोअइत आवई गे जान ॥२५॥
मचिया बैठली रौला सासु हे बढ़ैतिन गे जान।
जान देखु सासु सिर के सेनुरवा गे जान ॥२६॥
तोहरो सेनुरवा हे पुतहू बड़ा रे मलीनवा गे जान।
जान तोहर सामी मारें पड़ें गेलथुन गे जान ॥२७॥
अतना बचनिया जबे सुनलीन टिकुला गे जान।
जान ठोकी देली बजरी केवँरिया गे जान॥२८॥
कहाँ गेलु किए भेलु टिकुला बढ़ैतीन गे जान।
जान खोलु टिकुला बजरी केवरिया गे जान ॥२९॥
दुरी जाव कुतवा दूरी जो बिलरिया गे जान।
जान दूरी जो सहरिआ लोगवा गे जान ॥३०॥
नए छीकी कुतवा नए छीकी बिलैया गे जान।
जान गये जी सहरवा के लोगवा गे जान ॥३१॥
जान हमरे हती उदई सिह क भैया गे जान।
तोहर छोड़ी हे भैसुर अन कर न होईबा गे जान ॥३२॥
जान सामी जी के मुँहवा देखलवहु गे जान।
हमरा जे खातिर हे भैसुर डोलवा फनवल गे जान ॥३३॥

जान अपना घोड़वा बेसाहल गे जान।
लाली लाली डोलिया में सबुजी ओहरिया गे जान॥३४।
जान लागी गैली बतीसो कहरिया गे जान।
एक कोस ऐली हे भैसुर दुई कोस ऐली गे जान॥३५॥
कतहुँ न देखी केदली के बनवा गे जान।
जान कौना बने चील्ही मेंड़राय छै गे जान॥३६॥
कौन बने मरली गे भैसुर कौना बने लेरौली गे जान।
जान कौन बीरीछिये सामी ओठँघवली गे जान॥३७॥
बिजू बन मरली हे भाभो कुंज बन लेरवली गे जान।
जान चनन बिरिछवे भैया ओठँघवली गे जान॥३८॥
तोहर छोड़ी हे भैसुर अन कर न होएब गे जान।
जान नगरी पइसी अगिया ले आवहु गे जान।
जान चनन छेइये लकड़ी मँगावहु गे जान॥३९॥
सत के त हत हे सामी धरम के बिअहुआ गे जान।
जान अँचरवे अगिया ले धधकहु गे जान॥४०॥
सत के त हतै हे सामी धरम के बिअहुआ गे जान।
जान दूनो मिली सत्ती होइ जवँहीं गे जान॥४१॥

हे माँ! बारह वर्ष मेरा गौना आये हो गया; पर मैंने आज तक नहीं देखा था। यह किसकी स्त्री लम्बी-लम्बी अलकें साफ़ कर रही है? ॥१॥

माँ ने कहा—हे बेटा! तुम्हारे छोटे भाई उदयसिंह की बहू अपने बाल सुलझा रही है॥२॥

बेटे ने कहा—हे माँ! तुम्हारा घर बसे हुए बारह वर्ष हो गये। पर मैंने आज तक भ्रातृ-वधू के हाथ का भोजन नहीं किया॥३॥

साठी चावल कूटकर टिकुला (भ्रातृ-वधू का नाम) ने भात बनाया और मूँग दलकर दाल बनाई ।।४।।

मचिये पर मनस्विनी साम बैठी हैं । और नारायणसिंह जेठ जीम रहे हैं ।।५।।

सब कोई तो रसोई-घर से बाहर आँगन में जीमते हैं । पर जेठ रसोई-घर की देहली में बैठकर जीमता है ।।६।।

सब कोई तो पाँचो पकवान जीमते हैं; पर पापी नारायणसिंह टिकुला का रूप देखता है ।।७।।

टिकुला हाथ में तेल-फुलेल लेकर अपने स्वामी के घर में गई ।।८।।

टिकुला एक हाथ से तेल-फुलेल लगाती है, और दूसरे हाथ से आँखों के आँसू पोंछती है ।।९।।

टिकुला ने स्वामी की बाँहों में तेल लगा दिया । जाँघ में लगा दिया । पीठ में लगाते वक्त वह आँसू पोंछने लगी ।।१०।।

उदयसिंह ने पूछा—मेरी प्यारी स्त्री ! तुम्हें मेरी माँ ने मारा है ? या तुम्हारी जेठानी ने तुम्हें घर से निकाल दिया है ?।।११।।

टिकुला ने कहा—हे मेरे प्रियतम ! न तो मेरी साम ने मुझे मारा है, और न ननद ने गरिआया है ।।१२।।

और न जेठानी ने घर से निकाला है । हे मेरे नाथ ! मेरे कारण आपकी जान जायगी ।।१३।।

टिकुला और उदयसिंह की ये बातें हो ही रही थीं कि नारायणसिंह ने पुकारा—गाँव का चौकीदार क्या हुआ ? कहाँ गया ? जल्दी उदयसिंह भाई को बुला लाओ ।।१४।।

चौकीदार ने कहा—बबुआ उदयसिंह कहाँ गये ? क्या हुये ? बबुआ चलो, नारायणसिंह बुला रहे हैं ।।१५।।

उदयसिंह ने कहा—भैया मुझे मारेंगे ? या गाली देंगे ? या घर से निकाल देंगे ?।।१६।।

चौकीदार ने कहा—न मारेंगे, न घर से निकालेंगे। हरिन के शिकार में चलने के लिए बुला रहे हैं ॥१७॥

उदयसिंह ने नारायणसिंह के पास पहुँचकर कहा—भैया! मेरे कपड़े तो धोबी के घर धुलने गये हैं। मैं क्या पहनकर हरिन के शिकार में चलूँ?॥१८॥

नारायणसिंह ने कहा—मेरे कपड़े पहनकर शिकार में चलो ॥१९॥

उदयसिंह ने फिर कहा—हे भाई! मेरी तलवार तो घर ही पर रह गई। मैं क्या लेकर शिकार में चलूँ?॥२०॥

नारायणसिंह ने कहा—मेरी तलवार लेकर हरिन के शिकार को चलो ॥२१॥

उदयसिंह ने फिर बहाना किया—हे भाई! मेरा घोड़ा भी तो यहाँ नहीं है। वह तो मेरे घुड़साल में है। किस पर चढ़कर मैं शिकार को चलूँ? ॥२२॥

नारायणसिंह ने कहा—मेरा घोड़ा ले लो और शिकार में चलो ॥२३॥

शिकार में नारायणसिंह ने उदयसिंह को मार डाला। ऊँचे झरोखे में टिकुला देख रही है। हाय! किसका घोड़ा रोता हुआ आ रहा है? ॥२४॥

हाय! सब के घोड़े तो हँसी-खुशी से आ रहे हैं। मेरे स्वामी का घोड़ा रोता हुआ आ रहा है ॥२५॥

मनस्विनी सास मचिये पर बैठी थी। टिकुला ने उसके पास जाकर कहा—हे सास! मेरे सिर के सिन्दूर को तो देखो ॥२६॥

सास ने कहा—हे मेरी पतोहू! तुम्हारा सिन्दूर बड़ा मलिन हो गया है। जान पड़ता है, तुम्हारे स्वामी मारे गये ॥२७॥

टिकुला इतना सुनते ही बज्र की तरह केवाड़ी बन्द करके बैठ रही ॥२८॥

नारायणसिंह ने आकर द्वार खटखटाया—टिकुला कहाँ गई? क्या हुई? टिकुला अपनी बज्र ऐसी केवाड़ी खोल दो न?॥२९॥

टिकुला ने कहा—कुत्ते हो, या बिल्ली? या शहर के लोग हो? भाई! भाग जाओ ।।३०।।

नारायणसिंह ने कहा—न कुत्ता है, न बिल्ली और न शहर ही का कोई व्यक्ति है ।।३१।।

मैं तो उदयसिंह का भाई हूँ। टिकुला ने कहा—हे जेठ! मैं तुमको छोड़कर दूसरे की तो होऊँगी नहीं ।।३२।।

हे जेठ! मेरे स्वामी का मुँह तो मुझे दिखला दो। हे जेठ! मेरे लिए डोली फना दो ।।३३।।

आपके लिए घोड़ा खरीदा ही हुआ है। लाल रंग की डोली में हरे रंग का ओहार(परदा) लग गया ।।३४।।

बत्तीस कहार डोली को उठाने के लिए तैयार हो गये। टिकुला ने कहा—हे जेठ! एक कोस आई, दो कोस आई ।।३५।।

पर कदली बन नहीं दिखाई पड़ा। हे जेठ! किस बन में चील्ह मँडला रही है? ।।३६।।

हे जेठ! किस बन में आपने मारा? और किस बन में लाश को रक्खा? और किस वृक्ष से मेरे नाथ की लाश को ओठँगा दिया है? ।।३७।।

जेठ ने कहा—बिजू बन (विजन बन) में मैंने मारा। कुंज बन में लाश को पौढ़ाया। और चन्दन के वृक्ष से लाश को ओठँगा रक्खा है ।।३८।।

टिकुला ने कहा—हे जेठ! तुमको छोड़कर मैं और किसी की तो होऊँगी नहीं। तुम शहर में जाकर आग ले आओ। हे जेठ! चन्दन काट कर लकड़ी ले आओ ।।३९।।

टिकुला अपने प्राणनाथ की लाश के पास खड़ी होकर बोली—हे नाथ! यदि तुम मेरे सत के स्वामी हो और धर्म से विवाहित हो, तो मेरे आँचल से आग होकर धधक उठो ।।४०।।

उदयसिंह टिकुला के सत का स्वामी और धर्म से विवाहित था। दोनों पति-पत्नी एक साथ सती हो गये ।।४१।।

(२८)

छव महिना के बेटी रजलो,
रजलो के मइआ मरि हो जाय।
बरहा बहिस मैं दुधवा पिअवलों,
रजलो मोगलवा से हो लोभाय ॥१॥
गेहुवाँ के रोटिया बनवलीं,
उपर मुरगिया कै रे झोर।
जेवहिं बइठले मोगलवा,
रजलो बेनियाँ हो डोलाय ॥२॥
सूप अइसन डाढ़ी मोगलवाक,
ये बरधा अइसन आँखि।
ओही मुहें लिहलन मोगल चुमवाँ,
रजलो के छूटि उकिलाइ ॥३॥

रजलो बेटी छः महीने की थी, जब उसकी माँ मर गई। मैंने बारह बरस तक रजलो को दूध पिलाकर पाला-पोसा। अब वह मुग़ल के प्रेम में फंस गई ॥१॥

रजली ने गेहूँ की रोटी बनाई। ऊपर से मुर्गी के अंडे का शोरवा रख दिया। मुग़ल जीमने बैठा। रजलो पंखी हाँकने लगी ॥२॥

मुग़ल की दाढ़ी सूप जैसी है और आँखें बैल जैसी। उसी दाढ़ीवाले मुँह से मुग़ल ने रजलो का मुँह चूमा तो रजलो को क़ै हो गई ॥३॥

(२९)

भारी भइले राम अँखिया।
अमवाँ मोजरि गइले महुवा टपके निरमोहिया।
कत दिन बटिया जोहइबे रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥१॥

बाट बटोहिया रे तुहूँ मोह भइया रे निहमोहिया।
हमरो सनेस लेले जइहे रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥२॥

हमरो सनेसवा रे प्रभु समुझइहे निरमोहिया।
तोरी धना अलप वयस की रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥३॥

तोहरा बलमुआँ के चीन्हहुँ न जानहुँ निरमोहिया।
कइसे कहबी समुझाइ रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥४॥

हमरा बलमुआँ के टेढ़ी टेढ़ी पगिया निरमोहिया।
जुलुफी झारेला टेढ़ी पाग रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥५॥

हमरा बलमुआँ के लाली लाली अँखिया निरमोहिया।
घुरुम घुरुम दूनों आँखि रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥६॥

हमरे बलमुआँ के घुठी भर धोतिया निरमोहिया।
जइसे चले मीर उमराव रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥७॥

चिठिआ जे लिहलन मन मुसुकइले निरमोहिया।
वाँचे लगले बरहो बियोग़ रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥८॥

बाट बटोहिआ रे तुहूँ मोरा भइया रे निरमोहिया।
हमरो सनेसवा लेले जइहे रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥९॥

हमरो सनेसवा रे धना समुझाइह निरमोहिया।
चरखा कातिह कुल राखिह रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥१०॥

हे राम! मेरी आँखें थक गईं।

आमों में बौर आ गये। महुवा टपकने लगे। हे निर्मोही! हे धन के लोभी मेरे परदेशी पति! तुम कबतक मुझसे बाट जोहाओगे?॥१॥

हे पथिक! तुम मेरे भाई हो। उस निर्मोही और लोभी मेरे प्राण-नाथ के पास मेरा एक संदेशा लेते जाओ॥२॥

हे पथिक! मेरा यह संदेशा समझाकर कहना कि तुम्हारी स्त्री छोटी अवस्था की है॥३॥

पथिक ने कहा—हे बहन! मैं तो तुम्हारे पति को जानता नहीं, न पहचानता ही हूँ। तुम्हारा संदेशा कैसे कहूँगा?॥४॥

स्त्री ने कहा—हे पथिक! मेरे प्यारे टेढ़ी पगड़ी बाँधते हैं। वे जुल्फ (अलक) के बड़े शौकीन हैं॥५॥

मेरे प्राणेश्वर की आँखें रतनारी हैं। दोनों आँखें यौवन के मद से मतवाली रहती हैं॥६॥

मेरे प्राणनाथ घुटने तक धोती पहनते हैं। और ऐसे ठाट से चलते हैं, जैसे कोई मीर और उमराव चलता है॥७॥

पथिक ने चिट्ठी ले जाकर स्त्री के पति को दिया। पति चिट्ठी लेकर मुसकुराया और वियोग का विस्तृत वर्णन बाँचने लगा॥८॥

उसने पथिक से कहा—हे राह चलनेवाले भाई! मेरा संदेशा लेते जाओ॥९॥

मेरी स्त्री को समझाकर कहना कि चरखा कातकर कुल और कुल की मर्यादा की रक्षा करे॥१०॥

यह गीत उस जमाने का है, जब मुग़लों का राज था और मीर और उमरावों का अकड़कर चलना आदर्श समझा जाता था।

पति ने चरखे को कुल और कुल की मर्यादा का एकमात्र रक्षक बताया है। किसी समय चरखा सचमुच स्त्रियों का धर्म-रक्षक था।

(३०)

जेहि दिन गोपीचन्द तुमरो जनम भयो,
बाजै तबला निसान हो राम ॥१॥
हरियर गोबरा मँगाय के गोपीचन्द,
अँगना बेदी लिपाये हो राम ॥२॥
हँकरौ नगर के नाउनि बारिनि नगर बोलौवा दै आवै
हो राम ॥३॥
सतरंज खँड़रू झारि बिछावो,
सुघर सहेलियाँ बोलावो हो राम ॥४॥
नगर नगर के नौवा औ बरिया,
जाइ पण्डित लै आवो हो राम ॥५॥
बैठो बराभन चन्दन चौकिया,
गोपीचन्द रासि गनाओ हो राम ॥६॥
थार भर मोती लैके निकरे हैं राजा,
सोने का टका वहिमा डारे हो राम ॥७॥
बायें हाथ पण्डित बेद बिचारैं,
दहिने हाथ पोंछें अँसुवा हो राम ॥८॥
बारह बरस के जब गोपीचन्द होइहैं,
तेरही लगत होइहैं जोगिया हो राम ॥९॥
जारौं बारौं बेद तुम्हारो, पुत्रहि दोख लगाये हो राम ॥१०॥
कागज होइ राजा फारि क फेंकौं,
कर्म न मेटो जाय हो राम ॥११॥

लिखनेवाले लिखि गये साईं, को है मेटनहार हो राम ॥१२॥
ग्यारह बहस के जब गोपीचन्द भये,
पढ़ि उतरे सब सार हो राम ॥१३॥
बारह बरस के जब गोपीचन्द भये,
ब्याहे चम्पा देवी नारि हो राम ॥१४॥
नौ लख हथिया दस लख घोड़वा,
बिस लख साथ बरात हो राम ॥१५॥
घर को गोपीचन्द खेलि साहि पाँसा आये,
मैया से मागैं कल्यौवा हो राम ॥१६॥
सोने के थारा मैया भोजना परोसिन,
अँचरन झलहिं बयरिया हो राम ॥१७॥
करत बयरिया मैया अँसुआ जो ढारैं,
गोपीचन्द पोंछैं आँसू पटुका हो राम॥१८॥
की तुमरे मैया अन धन थोरे भये,
की बहुआ गरियावें हो राम ॥१९॥
ना मैया मोरे अन धन थोरे भये,
ना बहुआ गरियावें हो राम ॥२०॥
बाप तुमारे रहे सुरति तुमारी,
उन भये रावल जोगिया हो राम ॥२१॥
जेंइ उठि गोपीचन्द ठाढ़े अँगनवाँ,
मैया से माँगैं गुदड़िया हो राम ॥२२॥
खोलि पेटारा मैया गुदड़ी निकारिन,
गोपीचन्द को दिहिन पहिराय हो राम ॥२३॥

सोने के खड़ौंवाँ गोपीचन्द रनियाँ महल गये,
रनियाँ पकरिन दाहिन बहियाँ हो राम॥२४॥
कबहूँ न आयो राजा रंग महल में,
कबहूँ न खेल्यो सारि पाँसा हो राम॥२५॥
तुम रानी रहियो रंग महल में,
भैया खेलेंगे सारि पाँसा हो राम॥२६॥
गोद में हमरे होरिलवा न गोपीचन्द,
उनहूँ रहों जी बेलम्हाय हो राम॥२७॥
मैके से बिरना बोलाय हो रनियाँ,
अपने नइहर चलि जायो हो राम॥२८॥
माई बिनु कैसा मैका गोपीचन्द,
को मोहि हियरे लगै है हो राम॥२९॥
बिन मैया के मैका रे गोपीचन्द,
बिन सैंया ससुरारि हो राम॥३०॥
चन्द्र बिना चाँदनी कैसी गोपीचन्द,
दीपक बिनु कैसी ज्योति हो राम॥३१॥
राजा बिनु कैसा राज रे गोपीचन्द,
बिनु गोरस कैसा भोग हो राम॥३२॥
जोगी होइ के रमि चले राजा गोपीचन्द,
हमरी कौनि हवलिया हो राम॥३३॥
सोने के खड़ौआँ गोपीचन्द मैया महल गये,
मैया के पकरें पाँव हो राम॥३४॥
उत्तर, दक्षिण, पश्चिम जायो,
पूरब दिसि जनि जायो हो राम॥३५॥

उत्तर दक्षिण पश्चिम ना गये,
पूरब दिसा जाइ बैठे हो राम ॥३६॥
सरंगी बजाय गोपीचन्द गावें भरथरी,
भिक्षा बहिन लै आयो हो राम ॥३७॥
धावो चेरिया धावो लौंड़िया,
भिक्षा जोगी लै डारहु हो राम ॥३८॥
चेरिया के हाथ में ना लेहौं भिक्षा
सन्मुख बहिनि भिक्षा डारैं हो राम ॥३९॥
वै हैं रानी वै पटरानी, कैसे भिक्षा लै डारैं हो राम ॥४०॥
जेठ ससुर को परदा करिहैं,
जोगी का होय कैसे परदा हो राम ॥४१॥
इतने वचन सुनि दौरी जो चेरिया,
लाई बाँस उठाय हो राम ॥४२॥
बाँस उठाय चेरिया जोगी को मारैं,
जाहु जोगी घर अपने हो राम ॥४३॥
एक दिन हमरे वै रहे चेरिया,
सतरँज झारि बिछायो हो राम ॥४४॥
जोगी का बेष धरे बाँस मार्‌यो,
बहिनि के आगे खबर जनावो हो राम ॥४५॥
रोवत चेरिया महल में आई,
गोपीचन्द ठाढ़े दुआर हो राम ॥४६॥
थार भर मोती लै के निकरी बहिनियाँ,
देखिन गोपीचन्द सुरतिया हो राम ॥४७॥
की तुमरे भैया अन धन थोरे भये,
की हो भावज गरिआवैं हो राम ॥४८॥

ना मोरे बहिनी अन धन थोरे भये,
ना तुमरी भावज गरियावें हो राम ॥४९॥
हमरी सुरति बहिनी बाप हमरे रहे,
उनहूँ भये रावल जोगी हो राम ॥५०॥
थार पटकि बहिनी सिर धुनि मारे,
उलटी खाँय पछाड़ हो राम ॥५१॥
जाय के गिरीं बहिनी गोपीचन्द आगे,
गिरतै प्राण गँवाये हो राम ॥५२॥
जो गावे यह गोपीचन्द भरथरी,
माता बचन सोई मानै हो राम ॥५३॥

हे गोपीचंद ! जिस दिन तुम्हारा जन्म हुआ, उस दिन तबला और डंका बजता था ॥१॥

उस दिन ताजा गोबर मँगवाकर आँगन में बेदी लिपाई गई थी ॥२॥

नगर के नाई और बारी को बुलाओ । वे नगर में सबको निमंत्रण दे आवें ॥३॥

बड़ी-बड़ी दरियाँ और जाजिम फाड़कर बिछाओ और चतुर सखियों को बुलाओ ॥४॥

गाँव गाँव के नाई और बारी ! जाकर पंडितों को साथ लिवा लाओ ॥५॥

हे ब्राह्मणो ! चन्दन की चौकी पर बैठो और गोपीचन्द की राशि का विचार करो ॥६॥

राजा थाल भरकर मोती लेकर निकले । उसमें सोने की मुहरें भी डाले हुये थे ॥७॥

पंडित बायें हाथ में पुस्तक लेकर राशि का विचार कर रहे थे और दाहिने हाथ से आँसू पोंछते जाते थे ॥८॥

पंडित ने कहा—बारह वर्ष की अवस्था समाप्त होने पर तेरहवें में गोपीचंद जोगी हो जायँगे ॥९॥

राजा ने कहा—तुम्हारे पोथी-पत्रे जल जायँ। तुमने मेरे पुत्र पर नाहक ही यह दोष लगाया है ॥१०॥

पंडित ने कहा—हे राजा! कागज़ हो तो उसे फाड़कर फेंक भी दिया जा सकता है। पर कर्म तो नहीं टल सकता ॥११॥

हे राजा! विधाता ने जो लिख दिया है, उसे कौन मेट सकता है? ॥१२॥

ग्यारह वर्ष के होने तक गोपीचंद सब विद्या पढ़कर समाप्त कर चुके ॥१३॥

बारह वर्ष की अवस्था होने पर गोपीचन्द का विवाह चम्पा देवी से हुआ ॥१४॥

उनकी बरात में नौ लाख हाथी, दस लाख घोड़े और बीस लाख मनुष्य गये थे ॥१५॥

गोपीचंद पाँसा खेलकर आये और माँ से कलेवा माँगने लगे ॥१६॥

माँ ने सोने के थाल में भोजन परोस दिया और स्वयं पास बैठकर वह आँचल से हवा करने लगीं ॥१७॥

हवा करते-करते माता के आँसू गिरने लगे। गोपीचंद दुपट्टे से पोछने लगे ॥१८॥

गोपीचंद ने पूछा—माँ! क्या तुमको अन्न-धन की कमी है? या बहू ने गाली दी है? ॥१९॥

माँ ने कहा—हे बेटा! न मेरे अन्न-धन की कमी है, न बहू ही गाली देती है ॥२०॥

हे बेटा! तुम्हारे बाप तुम्हारी ही शक्ल के थे। वे जोगी हो गये थे ॥२१॥

गोपीचंद जीम करके उठे। आँगन में खड़े हुए। और माँ से गूदड़ी माँगने लगे ॥२२॥

माँ ने पेटारा खोलकर गूदड़ी निकाली और गोपीचंद को पहना दी ॥२३॥

गोपीचंद सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए अपनी रानी के महल में गये। रानी ने बाँह पकड़कर कहा—॥२४॥

हे राजा! न तो तुम कभी रंग-महल में आये और न कभी पाँसा खेले ॥२५॥

गोपीचंद ने कहा—हे रानी! तुम रंग-महल में रहो। भैया पाँसा खेलेंगे ॥२६॥

रानी ने कहा—हे राजा! मेरी गोद में तो बालक भी नहीं, जिससे मन लगा रहता ॥२७॥

गोपीचंद ने कहा—हे रानी! नैहर से भाई बुलाकर नैहर चली जाना ॥२८॥

रानी ने कहा—हे गोपीचंद! माँ के बिना नैहर कैसा? कौन छाती से लगायेगा?॥२९॥

हे गोपीचंद! बिना माँ का नैहर और बिना पति की ससुराल किस काम की?॥३०॥

चाँद के बिना चाँदनी, दीपक के बिना प्रकाश, राजा बिना राज और दूध बिना भोजन किस काम का? ॥३१,३२॥

हे राजा गोपीचंद! तुम तो जोगी होकर जा रहे हो, मेरी क्या दशा होगी?॥३३॥

सोने के खड़ाऊँ पर राजा गोपीचंद माँ के महल में गये। उन्होंने माँ का पैर पकड़ लिया ॥३४॥

माँ ने कहा—हे बेटा! उत्तर, दक्षिण और पश्चिम जाना। पर पूर्व दिशा में मत जाना ॥३५॥

गोपीचंद न उत्तर गये, न दक्षिण और न पश्चिम। वे पूर्व ही गये ॥३६॥

गोपीचंद सारंगी बजाकर गाने लगे। उन्होंने बहन के द्वार पर भीख माँगी ॥३७॥

बहन ने कहा—हे दासियो! हे सेवकिनियो! दौड़ो। भिक्षा ले जाकर जोगी की झोली में डाल दो ॥३८॥

गोपीचंद ने कहा—मैं नौकरानी के हाथ की भिक्षा नहीं लेता। मेरी बहन सामने आकर मुझे भिक्षा दे ।।३९।।

नौकरानियों ने कहा—वे तो रानी हैं, पटरानी हैं। वे सामने कैसे आ सकती हैं ?।।४०।।

गोपीचंद ने कहा—जेठ और ससुर से परदा हो सकता है, जोगी से कैसा परदा ?।।४१।।

दासी यह बात सुनते ही उठकर दौड़ी और बाँस उठा लाई ।।४२।।

उसने बाँस उठाकर जोगी को मारा और कहा—अपने घर जाओ ।।४३।।

गोपीचंद ने कहा—हे दासियो ! एक दिन वे थे, जब तुम मेरे लिए बढ़िया दरियाँ झाड़कर बिछाती थीं ।।४४।।

आज तुमने मुझे जोगी के भेस में देखकर बाँस मारा। जाओ, मेरी बहन के आगे समाचार कहो ।।४५।।

दासियाँ गोपीचंद को पहचानकर रोने लगी। उन्होंने जाकर गोपीचंद की बहन से सारा हाल कहा कि गोपीचंद द्वार पर खड़े हैं ।।४६।।

बहन थाल भर मोती लेकर निकली। गोपीचंद का वेश देखकर उसने कहा—।।४६।।

भाई ! तुम्हें अन्न-धन कम हो गया ? या मेरी भौजाई तुम्हें गाली देती है ? तुम जोगी क्यों हो गये ?।।४८।।

गोपीचन्द ने कहा—न मेरे अन्न-धन की कमी हो गई, न तुम्हारी भावज ने ही गाली दी है ।।४९।।

बात यह है कि मेरी ही जैसी सूरत के मेरे पिता थे, वे भी जोगी हो गये थे ।।५०।।

यह सुनते ही बहन ने थाल पटक दिया। वह सिर धुनती हुई पछाड़ खाकर गोपीचंद के आगे गिर पड़ी। गिरते ही उसके प्राण निकल गये ।।५१-५२।।

गोपीचन्द भरथरी का वृत्तान्त जो गावे, उसे माता का वचन मानना चाहिये ।।५३।।

गोपीचन्द भरथरी के नाम से कई प्रकार के गीत उत्तरप्रदेश में प्रचलित हैं; उनमें से यह एक है। जोगी लोग इस प्रकार के गीत प्रायः गाते हैं।

(३१)

गोपीचन्द रजवा क परि गइ बिपतिया रे
बिपति के परे हरवा जोतें हो राम ॥१॥
चलहु न पिया हो हमरे नैहरवा रे
चलु वहाँ विपति गँवउबइ हो राम ॥२॥
एक बन गइलीं दुसर बन गइलीं रे
बाँउँ रे दहिने बोलै कगवा हो राम ॥३॥
हमरा कनहवा धनवाँ तुहूँ नाहीं मनलेउ रे
आखिर असगुनवा भएन हो राम ॥४॥
जब रानी गइलीं गँउवाँ के गोयड़वाँ हो
भउजी मोरी हनइ लगलीं बजर केवड़िया हो राम ॥५॥
खोलउ न भउजी चँदना केवड़वा रे
बूँद एक पनिया हमका देतिउ हो राम ॥६॥
हमरा घइलवा ननदा फूटि फाटि गइल बा
बूँद एक पनिया कैसे देई हो राम ॥७॥
खोलउ न भउजी चँदना केवड़वा रे
फटही लुगरिया हमका देतिउ हो राम ॥८॥
हमरी लुगरिया ननदा धरल बा पेटरिया रे
सवना भदवना पोतना करबइ हो राम ॥९॥
आहु रे दैवा आहु बिधाता हो राम
हमरे करमवा का लिखि भेजेउ हो राम ॥१०॥

हमरा कहनवा धना तुहू नाहीं मनलेउ हो
बिपति के परले केउ न आपन हो राम ॥११॥
चलहु न धनिया अपने के देसवा रे
चरखा ले बिपति गँवउबै हो राम ॥१२॥

राजा गोपीचंद पर विपत्ति पड़ गई। विपत्ति पड़ने पर वे हल जोत कर निर्वाह करने लगे ॥१॥

रानी ने कहा—हे राजा! चलो। मेरे नैहर में चलकर रहो और वहाँ विपत्ति के दिन बिताओ ॥२॥

दोनों एक बन पार कर गये। दूसरा बन पार कर गये। तीसरे में बायें और दाहने कौआ बोलने लगा ॥३॥

राजा ने कहा—रानी! तुमने मेरा कहना नही माना। अशकुन हुआ न?॥४॥

जब रानी गाँव के निकट पहुँची, उसे दूर ही से देखकर उसकी भौजाई वज्र ऐसा केवाड़ा बंद करने लगी ॥५॥

ननद ने कहा—भौजी! चंदन के किवाड़े खोलो न? मुझे एक बूँद पानी दो ॥६॥

भौजाई ने कहा—हे ननद! मेरा घड़ा तो फूट गया है। एक बूँद पानी कहाँ से दूँ! ॥७॥

ननद ने कहा—हे भौजाई! चंदन की किवाड़ी खोलो न? मुझे अपनी फटी पुरानी लुगरी ही दे दो ॥८॥

भौजाई ने कहा—हे ननद! मेरी लुगरी तो पेटारी में बंद है। सावन-भादों में उसका पोतना (रसोई-घर लीपने का चिथड़ा) बनाऊँगी ॥९॥

ननद रोने लगी—हाय राम! हाय विधाता! तुमने हमारे भाग्य में क्या लिख दिया! ॥१०॥

राजा ने कहा—हे रानी! तुमने मेरा कहा नही माना। विपत्ति पड़ने पर कौन अपना होता है? ॥११॥

हे रानी ! चलो, अपने देश में चलें। वहाँ चरखा चलाकर, सूत कात-कर, विपत्ति के दिन काटेंगे ।।१२।।

(३२)

केरे देले गोहुमाँ हो रामा, केरे देले चँगेरिआ।
कउनी बइरिनिआ हो रामा, भेजल जँतसरिआ ।।१।।
सासु देले गोहुमाँ हो रामा, ननदी चँगेरिआ।
गोतनी बइरिनिआ हो रामा, भेजल जँतसरिआ ।।२।।
जँतवो न चलइ हो रामा, मकरी न डोलइ।
जाँता के धइले हो रामा, रोवइ जँतसरिया ।।३।।
घोड़वा चढ़ल हो लछुमन करइ पुछसरिआ।
केकरी तिरिअवा हो रामा, रोवइ जँतसरिआ ।।४।।
तोहूँ नएँ जानल हो लछुमन तोहरे तिरिअवा।
जँतवा के दूखे हो हामा, रोवइ जँतसरिआ ।।५।।
घोड़वा जे बँधलन हो लछुमन, बर रे बरुनिआ।
झपसि पइसल हो लछुमन नैंना पोंछे लोरवा ।। ६ ।।
केरे देले गोहुमाँ हो साँमर, केरे देले चँगेरिआ।
कउनी बैरिनिआँ हो रामा भेजल जँतसरिआ ।। ७ ।।
सासु देले गोहुमाँ जी परभू, ननदी चँगेरिआ।
गोतनी बैरिनिआँ जी परभू, भेजले जँतसरिआ ।। ८ ।।
जँतवो न चले जी परभू, मकरी न डोलइ।
जाँता के धइले जी परभू, रोवौं जँतसरिआ ।। ९ ।।
वहिआँ पकरलन लछुमन, जँघिआ बइठओलन।
अपने गँमछवे हो लछुमन, पोंछें नैना लोरवा ।।१०।।

किसने गेहूँ दिया? किसने चँगेरी (डलिया) दी? किस बैरिन ने मेरी स्त्री को जाँत के घर में भेजा? ॥१॥

सास ने गेहूँ दिया। ननद ने चँगेरी दी। जेठानी बैरिन ने जाँत के घर में भेजा ॥२॥

हाय! जाँत नहीं चल रहा है। न मकरी ही हिल रही है। स्त्री जाँत का हत्था पकड़कर रो रही है ॥३॥

लक्ष्मण घोड़े पर चढ़कर आया। वह पूछने लगा—किसकी स्त्री जाँत के घर में रो रही है? ॥४॥

लक्ष्मण! तुम नहीं जानते क्या? तुम्हारी ही स्त्री तो है जो जाँत के घर मे रो रही है ॥५॥

लक्ष्मण ने बरगद की जटा से घोड़े को बाँध दिया। वह आँखों के आँसू पोछता हुआ जाँत के घर मे झपटकर गया ॥६॥

लक्ष्मण ने स्त्री से पूछा—किसने गेहूँ दिया? किसने चँगेरी दी? और किस बैरिन ने तुम को जाँत के घर में भेजा? ॥७॥

स्त्री ने कहा—सास ने गेहूँ दिया। ननद ने चँगेरी दी। और जेठानी ने मुझे जाँत के घर में भेजा ॥८॥

हे स्वामी! मुझ से न जाँत चलता है, और न मकरी ही टस से मस होती है। मैं क्या करूँ? जाँत को पकड़कर जाँत के घर में अकेली रो रही हूँ ॥९॥

लक्ष्मण ने स्त्री की बाँह पकड़कर उसे गोद में बैठाया और अपने अँगौछे से वह स्त्री के आँसू पोंछने लगा ॥१०॥

(३३)

ओखली चावल छाँटती, बातें कहति बनाय।
आवेगा मोगल छोकड़ा, यों डालूँगी कूट ॥ १ ॥

जाहु मोगल के छोकड़ा, जाहु घरहि अपान।
सुनेगा मोरा बाबा जी, तुझको फाँसी दिलाय ॥ २ ॥
उड़ि उड़ि पतिया जाय तू यह सनेस लेइ जान।
बाबा से कहियो समुझाइ के बेटी पड़ी बन्दीखान ॥ ३ ॥
उड़ि उड़ि पतिया जाय तू यह सनेस लेइ जान।
भइआ से कहियो समुझाइ के बहिनी पड़ी बन्दीखान ॥ ४ ॥
उड़ि उड़ि पतिया जाय तू यह सनेस लेइ जान ॥
कंत से कहियो समुझाइ के, दुलहिन पड़ी बन्दीखान ॥५॥
आगे घोड़ा मोरे बाबा के, पीछे बीरन भाव।
तेहि पीछे आवे मोरा कन्तजी, बेटी लेंगे छोड़ाइ ॥६॥
आगे घोड़ा मोरे बाबा के पीछे बीरन भाइ।
तेहि पीछे आवे मेरा कन्तजी बहिनी लेंगे छोड़ाइ ॥ ७ ॥
लेहु मोगल के छोकड़ा रूपया लेहु बहूत।
बेटी को मेरी छोड़ दे जैसे कंचन थाल ॥ ८ ॥
लेहु मोगल के छोकड़ा मोती लेहु बहूत।
बहिनी को मेरी छोड़ दे जैसे कंचन थाल ॥ ९ ॥
लेहु मोगल के छोकड़ा मोहर लेहु बहूत।
दुलहिन को मेरी छोड़ दे जैसे कंचन थाल ॥१०॥
रुपया हमारे बहुत है अशर्फी भरा है सन्दूक।
सुन्दर को मैं ना छोड़ों जैसे गले का हार ॥११॥
सुन्दर बोली क्रोध कर कमर कटारी खींच।
लेहु मोगल के छोकड़ा यह है गले का हार ॥१२॥

एक स्त्री ओखली में चावल छाँट रही थी। वह बातें भी बनाती जाती थी कि मुगल का छोकरा आवेगा तो इसी तरह उसे भी कूट डालूँगी ॥१॥

मुग़ल का छोकरा, जो उस स्त्री पर आसक्त था, आ गया। स्त्री ने कहा—हे मुग़ल के लड़के! तुम अपने घर चले जाओ। मेरे पिताजी सुनेंगे तो तुमको फाँसी दिला देंगे ।।२।।

मुग़ल का छोकरा उसे पकड़ ले गया और कैदखाने में डाल दिया। स्त्री ने पत्र लिखकर भेजा– हे पत्र! तुम उड़कर जाओ और मेरे बाबा को समझाकर कहो कि तुम्हारी बेटी बंदीखाने में पड़ी है ।।३।।

हे पत्र! तुम उड़कर जाओ और मेरे भाई को कहो कि तुम्हारी बहन बंदीखाने में पड़ी है ।।४।।

हे पत्र! तुम उड़कर जाओ और मेरे स्वामी से कहना कि तुम्हारी स्त्री बंदीखाने में पड़ी है ।।५।।

आगे के घोड़े पर मेरे बाबा आये। पीछे के घोड़े पर मेरे भाई। और उनके पीछे मेरे स्वामी आये। बाबा कहते थे—बेटी को छुड़ा लेंगे ।।६।।

आगे के घोड़े पर मेरे बाबा आये। पीछे के घोड़े पर मेरे भाई। उनके पीछे मेरे स्वामी आये। भाई कहता था—बहन को छुड़ा लेंगे ।।७।।

बाबा ने कहा—हे मुग़ल के बच्चे! बहुत-सा रुपया लो और सोने के थाल जैसी मेरी कन्या को छोड़ दो ।।८।।

भाई ने कहा—हे मुग़ल के बच्चे! बहुत-सा मोती लो और सोने के थाल जैसी मेरी बहन को छोड़ दो ।।९।।

स्वामी ने कहा—हे मुग़ल के बच्चे! बहुत-सी मोहरें लो और सोने के थाल जैसी मेरे स्त्री को छोड़ दो ।।१०।।

मुग़ल के लड़के ने कहा—रुपया हमारे पास बहुत है। और अशर्फियों से तो सन्दूक भरे पड़े हैं। मैं इस सुन्दरी को न छोड़ूँगा। यह तो मेरे गले की हार है ।।११।।

उसकी यह बात सुनकर स्त्री को बड़ा क्रोध आया। उसने कमर से कटारी खींचकर कहा—ले मुग़ल के बच्चे! यह तेरे गले का हार है ।।१२।।

उसने मुग़ल के लड़के को मार डाला। बाप, भाई और पति कायर थे। स्त्री ने अपने बल से अपने धर्म की रक्षा की।

(३४)

बरिसहु बरिसहु देव हे आजु केर रतिया।
आरे पिया के जतरवा सेहु बिलमावहु रे की ॥ १ ॥
जब तु मनवलू हे धनी हे मेघ हे मनवलू।
आरे छतवा बेसाहि के हमे पथ जाएब रे की ॥ २ ॥
देवहुँ रे डोमवा रे भैया रे डाला भरी रे सोनवा।
अरे आज की रैनिया छत्ता जनि बीनहु रे की।
अरे पिया के जतरवा तुहुँ बिलमावहु रे की ॥ ३ ॥
आरे जब तू मनवलू धनी हे डोम हे मनवलू।
अरे कमरी बेसाहि के हमें पंथ जाएब रे की ॥ ४ ॥
देवउँ रे भेड़िहर भैया रे कान दुनु रे सोनवा।
अरे आज की रैनिया कमरो जनि बीनहु रे की।
अरे पिया के जतरवा तुहूँ बिलमावहु रे की ॥ ५ ॥
अरे जब तू मनवलू धनि हे भेड़िहर मनवलू।
अरे नैया खेवइ के हमे पंथ जाएब रे की ॥ ६ ॥
अरे देइब रे केवटा हाथ के मुँदरिया।
आरे अब की भदउँआँ नैया जनि खोलहु रे की।
आरे पिया के जतरवा तुहुँ बिलमावहु रे की ॥ ७ ॥
आरे जब तुहुँ धनिया हे केवटा मनवलू।
आरे हिलते डुबइते हम पंथ जाएब रे की ॥ ८ ॥

स्त्री कहती है—बादलो! आज की रात बरसो। मेरे प्राणनाथ को यात्रा से रोको ॥१॥

पति कहता है—यदि तुम बादलों को मनाती हो, तो मैं छाता खरीद कर चला जाऊँगा ॥२॥

स्त्री डोम से कहती है—हे डोम भाई ! मैं तुम को डाल भरकर सोना दूँगी। आज की रात तुम छाता न बिनो ।।३।।

पति कहता है—यदि तुम डोम को मनाती हो, तो मैं कम्बल खरीद कर चला जाऊँगा ।।४।।

स्त्री कहती है—हे गडरिये भाई ! मैं तुमको दोनों कानों में पहनने के लिये सोना दूँगी। आज की रात कम्बल मत बिनो ।।५।।

पति कहता है—जब तुम गडरियों को मना रही हो, तो मैं नाव खेकर चला जाऊँगा ।।६।।

स्त्री कहती है—हे केवट ! मैं तुमको हाथ में पहनने की अँगूठी दूँगी। तुम इस भादों के महीने में नाव न खोलना ।।७।।

पति कहता है—हे मेरी प्यारी स्त्री ! यदि तुम केवट को मनाती हो, तो मैं पानी में हिलता हुआ, डूबता-उतराता, किसी तरह चला ही जाऊँगा ।।८।।।

(३५)

कौन फूल फुलेला घरी रे पहरवा।
अरे कौन फूल फुले आधी राती, त भौंरा लुभाई ।।१।।
अढ़उल फूल फुलेला घरी रे पहरवा।
अरे चम्पाफूल फुले आधी राती, त भौंरा लुभाई ।।२।।
तोको देबों भौंरा दूध भात खोरवाँ।
अरे हरी आगे खबर जनाऊ, त फागुन आई ।।३।।
उड़ल उड़ल भौंरा गइले उहे देसवाँ।
अरे जाई बैठे हरी जी के पाग, त फागुन आई ।।४।।
पाग से उतरले हरी जाँघे बइसवलें।
अरे पुछे लागे धन कुसलात, त फागुन आई ।।५।।
तोरी धना ए हरी बेदने बेआकुल।

अरे ओही गुने भौंरा भेजई, त फागुन आई ।।६।।
कोठवा ऊपर कोठरी य झरोखवा से चितईला।
आ हो राजा रउरे सरीखे क सिपहिया कतहुँ नाहीं देखीला हो।।७।।

कौन फूल पहर घड़ी रात रहे और कौन फूल आधी रात में फूलता है? जिस पर भौंरा लुभाया रहता है ।।१।।

अड़हुल पहर रात रहे फूलता है और चम्पा आधी रात में फूलता है ।।२।।

हे भौंरा! मैं तुमको कटोरें में दूध-भात खाने को दूंगी। तुम जाकर मेरे प्राणनाथ को खबर जनाओ कि फागुन आ गया ।।३।।

भौंरा उड़ते-उड़ते उस देश में गया, जहाँ स्त्री का प्रियतम था और उसकी पाग पर बैठ गया ।।४।।

प्रियतम ने पाग से उसे उतारकर जाँघ पर बैठा लिया और अपनी स्त्री का हाल-चाल पूछा ।।५।।

भौंरे ने कहा—हे हरि! तुम्हारी प्राणप्यारी स्त्री बहुत व्याकुल है। 'फागुन आ गया' यह कहने ही के लिये उसने भौंरे को भेजा है ।।६।।

स्त्री ने कहा है—हे स्वामी! कोठे के ऊपर जो कोठरी है, उसमें जो खिड़की है, उस खिड़की में से झाँकती रहती हूँ। पर हे हरि! तुम्हारे सरीखा कोई पथिक कहीं दिखाई नहीं पड़ता ।।७।।

वर्षा-ऋतु के गीत

सावन का महीना बड़ा ही सुहावना होता है। आकाश नीले बादलों से घिरा रहता है। घटायें हाथियों के समूह की तरह क्षितिज पर से उमड़ती हुई आती हैं। वायु कर्तव्य-निष्ठ सेनापति की भाँति उन्हें एक ओर से दूसरे छोर तक भेजता रहता है। बीच-बीच में बक-पंक्ति की शोभा चित्त को मोहे लेती है। कभी घटा घहराती है, कभी बिजली चमकती है, कभी छप्-छप् बूँदें गिरने लगती हैं, मानों कोई अप्सरा नृत्य कर रही है।

नाले बहने लगते हैं। नदियाँ उमड़ चलती हैं। तालाब छलकने लगते हैं। कुल वृक्ष, लता और पौधे धो उठते हैं। सब के पत्ते निखर आते हैं। खेत और जंगल सब हरियाली से भर जाते हैं। बीच-बीच में जो स्थान नीचे होते हैं, वे पानी से भर जाते हैं। मानों हरियाली में किसी ने दर्पण जड़ दिये हैं।

पृथ्वी पर तरह-तरह के नये जीव पैदा हो जाते हैं। सब अपनी-अपनी बोलियाँ बोलने लगते हैं। झींगुर की 'झीं' 'झीं' और मेढ़क की 'टर्र' 'टर्र' से दिशायें भर जाती हैं। पशु कलोल करने लगते हैं। पक्षी कलरव करने लगते हैं। मोर नाचते हैं, कोयल कूकती है। मानों सोई हुई प्रकृति जाग उठती है।

किसान अपने हरे-भरे खेत के किनारे अपने भविष्य की कल्पनाओं में मस्त दिखाई पड़ता है। ग्वाला मैदान में अपनी गायें-भैंसें लिये बिरहा गाने में बेसुध हो रहा है। कहार डोलियों में कन्याओं को उनके नैहर की ओर लिये जाते हुए और मर्म-वेधी गीत गाते हुए दिखाई पड़ते हैं।

कुछ स्त्री और पुरुष धान के खेत में काम करते हुए मिलते हैं। जिनमें

स्त्रियाँ अपने कलकंठों से, लहराती हुई पूर्वा हवा में मादकता भरती हैं और आस-पास के पुरुष-स्त्रियों में मूक-वेदना जगाती रहती हैं।

सावन में बहुत से मेले होते हैं। मेले में जाते हुए स्त्री-पुरुषों के झुंड के झुंड गीत गाते चलते हैं। कन्याओं के कई त्योहार भी सावन और भादों में पड़ते हैं। वे गुड़ियों का विवाह करती हैं, रंग-बिरंगे कपड़े पहनती हैं; और गा बजाकर गाँव को स्वर्ग बना देती हैं। उनमें भी गीतों ही का प्राधान्य रहता है। स्थान-स्थान पर नाग-पंचमी और तीज के मेले लगते हैं, जिनमें कजलियाँ गाई जाती हैं। मिर्जापुर में कजली का बड़ा प्रसिद्ध मेला होता है।

पानी बरसता रहता है. तब खेती का कोई विशेष काम नहीं होता। किसान लोग किसी चौपाल में बैठकर आल्हा सुनते हैं; रात में रामायण गाते हैं, और अपने जीवन में वीर पुरुषों और साधु-संतों के कल्याणकारी चरित्रों और अनुभवों की छाप लेते हैं।

सावन के गीतों में सबसे सुन्दर गीत निरवाही और हिंडोले के होते हैं। हिंडोले पर छोटे भाई के साथ बैठकर जब कन्यायें गाती हैं, तब उनके कोमल कंठ से जो स्वर-लहरी निकलती है, उसे सुनकर सचराचर के प्राण स्तम्भित हो जाते हैं।

आषाढ़ में बोये हुए खेत जब अच्छी तरह जम आते हैं, तब सावन में उनमें उगी हुई घास और दूसरे व्यर्थ पौधे उखाड़कर फेंक दिये जाते हैं। इस काम को खेत निराना या निरवाही कहते हैं। यह काम प्रायः चमारिनें करती हैं। अतएव इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, वे मुख्यतः चमारिनों ही के समझे जाने चाहियें।

निरवाही

(१)

एक दैयाँ अउता भैया हमरेउ के देसवाँ रे ना।
भइया हमरिउ खबरिया लइ जातेउ रे ना॥ १॥

तोहरे के देसवाँ बहिनी ढाँक ढँकुलिया रे ना।
बहिनी रहिया में बाघ बघिनिया रे ना॥ २॥
हथवाँ में लेत्या भइया ढाल तरुवरिया रे ना।
भइया काउ करतै बाघ बघिनिया रे ना॥ ३॥
आवत देखौं मैं दुइ रे सिपहिया रे ना।
रामा एक रे गोरा एक साँवर रे ना॥ ४॥
गोरऊ तो मोरी माई क पुतवा रे ना।
रामा सँवरू ननँदजी क भैया रे ना॥ ५॥
मचियै बैठी हैं सासु बढ़ैतिन रे ना।
सासू काउ रे बनाई जेवनरवा रे ना॥ ६॥
कोठिलहि बहुवा रे सरली कोदइया रे ना।
बहुअरि, मेंड़वा चँकौड़े क सगवा रे ना॥ ७॥
अगिया लगावौं सासू सरली कोदइया रे ना।
सासू बजर परै मेंड़वा के सगवा रे ना॥ ८॥
हमरे तो आये सासू भैया पहुनवा रे ना।
सासू केथुवा क देई पानी पिनवाँ रे ना॥ ९॥
घुटने क देहु बहुवरि फुटही मेलियवा रे ना।
बहुवरि, औरो गड़हिया क पनिया रे ना॥१०॥
कुँचने क देहु बहुवरि पिपरे क पतवा रे ना।
बहुवरि, ओहि माँ चिरइया क लेंड़वा रे ना॥११॥
सोवने क देहु बहुवरि टुटह झिलँगवा रे ना।
बहुवरि औरौ चुवनी चौपरिया रे ना॥१२॥
अगिवा लगावौं सासू तोरी पहुनइया रे ना।
मोरे जियरा में भैया क बसेरवा रे ना॥१३॥

बहुअरि रीन्हि डारीं मुँगिया क दलिया रे ना।
बहुअरि मोती सारी झिनवाँ क भतवा रे ना।। १४।।
मैदा चालि चालि लुचुई बनाई रे ना।
बहुअरि खोंटि लाई बथुवा क सगवा रे ना।।१५।।
सोने की थरिया में जेवना परोस्यों रे ना।
रामा उपरा से घियना कै धरिया रे ना।।१६।।
रामा जेवन बैठे सार बहनोइया रे ना।
रामा भइया क ढूरै अँसुइया रे ना।।१७।।
की भइया समझे है माई कल्योना रे ना।
भैया की रे भउजि जूड़ि बोलिया रे ना।।१८।।
ना हम समझे बहिनी माई कल्योना रे ना।
बहिनी नाहीं बहू कै जूड़ि बोलिया रे ना।।१९।।
चन्दा सुरुज ऐसी बहिनी संकल्प्यो रे ना।
रामा जरि जरि भई है कोइलिया रे ना।।२०।।
बैठो न मोरे भइया मलिनी ओसरवाँ रे ना।
भैया मोरा दुख कहै मालिन घेरिया रे ना।।२१।।
कै मन कूटौं भैया कै मन पीसौं रे ना।
भैया कै मन सिझवउँ रसोइया रे ना।।२२।।
सबका खिआवौं भैया सबका पिआवौं रे ना।
भैया बचि जाथै पिछली टिकरिया रे ना।।२३।।
भैया ओहू माँहे ननदी कल्योना रे ना।
भैया ओहू माँहे गोरू चरवहवा रे ना।।२४।।
भैया ओहू माँहे कुकुरा बिलरिया रे ना।
भैया ओहू माँहे देवरा कल्योना रे ना।।२५।।

सबका ओढ़ावौं भैया सबका पहिरावौं रे ना।
भैया बचि जाथै फटही लुगरिया रे ना ॥२६॥
भैया ओहू माँहे ननदी ओढ़निया रे ना।
भैया ओहू माँहे देवरा कछोटिया रे ना ॥२७॥
सासू खाँची भरि बसना मँजावैं रे ना।
सासू पनियाँ पताल से भरावैं रे ना ॥२८॥
सासू तो ए भइया बुढ़िया डोकरिया रे ना।
भइया मुँहवाँ में जहर कै गँठिया रे ना ॥२९॥
ननदी तो ए भइया बन कै कोइलिया रे ना।
ननदी आपनि बागाँ उड़ि जइहैं रे ना ॥३०॥
जेठानी तो ए भइया कारी बदरिया रे ना।
भइया छिन बरसै छिन घाम रे ना ॥३१॥
देवरानी तो ए भइया कोने कै बिलरिया रे ना।
भइया छिन निकरै छिन पैठे रे ना ॥३२॥
मूँड़ देखौ ए भइया मोरा मूँड़ देखौ रे ना।
भइया जैसे कुकुरिया क पुँछिया रे ना ॥३३॥
पीठि देखौ ए भइया मोरी पीठि देखौ रे ना।
भइया जैसे है धोबिया क पटवा रे ना ॥३४॥
कपड़ा तौ देखौ भइया मोर पहिरनवाँ रे ना।
भइया जैसे सवनवाँ कै बदरी रे ना ॥३५॥
लोहवा जरै जैसे लोहरा दुकनियाँ रे ना।
मोरी बहिनी जरै ससूररिया रे ना ॥३६॥
ई दुख जिनि कह्यो भौजी के अगवाँ रे ना ॥
भौजी दुइ चारि घर बाँटि ऐहैं रे ना ॥३७॥

ई दुख जिनि कह्यो माई के अगवाँ रे ना।
माई छतिया-बिहरि मरि जैहैं रे ना ॥३८॥
ई दुख जिनि कह्यो बाबा के अगवाँ रे ना।
बाबा सभवाँ बइठि पछितैहैं रे ना ॥३९॥
ई दुख जिनि कह्यो बहिनी के अगवाँ रे ना।
बहिनी हलिया सुनि ससुरे न जैहैं रे ना ॥४०॥
ई दुख कह्यो भैया अगुवा के अगवाँ रे ना।
भैया जिन मोरी करी अगुवइया रे ना ॥४१॥
ई दुख कह्यो भैया बभना के अगवाँ रे ना।
भैया जिन मोरी लगन बिचारेउ रे ना ॥४२॥
सब दुख बाँधउ भैया अपनी मोटरिया रे ना।
भैया जहवाँ खोलेउ तहवाँ रोयेउ रे ना ॥४३॥

(जौनपुर)

बहन कहती है—हे भैया! एक बार मेरे देश में भी आते और मेरी भी खबर ले जाते ॥१॥

भाई ने कहा—हे बहन! कैसे आऊँ? राह में बाघ-बाघिन हैं ॥२॥

बहन ने कहा—हे भैया! ढाल-तलवार हाथ में ले लेते तो बाघ-बाघिन क्या करते? ॥३॥

भाई बहन के यहाँ गया। बहू भाई को आता हुआ देखकर कहती है—
मैं दो जनों को आता हुआ देख रही हूँ। एक गोरा है, दूसरा साँवला ॥४॥
गोरा मेरा भाई है और साँवला ननद का भाई अर्थात् मेरा पति है ॥५॥
मनस्विनी सास मचिये पर बैठी हैं। हे सासजी! जेवनार क्या बनाऊँ ॥६॥
हे बहू! कोठिले में सड़ा हुआ कोदौ है और मेंड़ पर चकौड़ का साग है ॥७॥

हे सासजी! तुम्हारे सड़े हुए कोदौ में आग लगे, और चकौड़ के साग पर बज्र गिरे ॥८॥

हे सासजी ! मेरे भाई पाहुने आये हैं। उनको जलपान क्या दूँ ? ।।९।।

हे बहू ! पीने के लिए फूटी हुई मेटी (मिट्टी की लोटिया) में गढ़े का पानी दे दो ।।१०।।

कूँचने के लिए पीपल के पत्ते में चिड़िया का बीट भरकर देदो ।।११।।

सोने के लिए टूटा हुआ झिलँगा, चूती हुई चौपाल दे दो ।।१२।।

हे सासजी ! तुम्हारी पहुनई को आग लगे। मेरा भाई मेरे जी में बसा है ।।१३।।

बहू ने मूँग की दाल डाली; और महीन चावल का मोती-ऐसा भात रींधा ।।१४।।

मैदा छानकर उसने लुचुई बनाई और बथुए का साग खोंट लाई ।।१५।।

सोने की थाली में भोजन परोसकर उसमें ऊपर से घी की धार डाल दी ।।१६।।

साले-बहनोई दोनों खाने बैठे। खाते-खाते भाई की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली ।।१७।।

हे भाई ! क्या तुम्हें माँ के हाथ का कलेवा याद आ रहा है ? या भौजी की मीठी-मीठी बातें याद आ रही हैं ? ।।१८।।

हे बहन ! न तो मुझे माँ के हाथ का कलेवा याद आ रहा है, और न स्त्री की मीठी-मीठी बातें ही ।।१९।।

चाँद और सूर्य की-सी बहन मैंने संकल्पी थी, पर दुःख से जल-जलकर यह कोयल-जैसी काली हो गई है ।।२०।।

हे भैया ! मालिन के ओसारे में तो एक बार जाकर बैठो। उसकी कन्या तुम से मेरे दुःख का सब हाल कहेगी ।।२१।।

हे भैया ! कै मन कूटती हूँ, कै मन पीसती हूँ, कै मन की रसोई बनाती हूँ ।।२२।।

सबको खिलाती हूँ, सबको पिलाती हूँ; अन्त में जो सबसे पीछे वाली टिकरी (छोटी रोटी) बच रहती है ।।२३।।

उसमें से ननद के लिए कलेवा रखना पड़ता है। चरवाहे को देना पड़ता है ।।२४।।

कुत्ते-बिल्ली को टुकड़ा देना पड़ता है और देवर के लिए कलेवा रखना पड़ता है ।।२५।।

सबको ओढ़ाती हूँ, सबको पहनाती हूँ। सबके ओढ़ने और पहनने से जो कटा-फटा कपड़ा बच रहता है ।।२६।।

उसमें से ननद की ओढ़नी और देवर की कछोटी के लिए देना पड़ता है ।।२७।।

सासजी खाँची भर बरतन मुझसे मँजवाती हैं और पाताल तक गहरे कुँवे से पानी भराती हैं ।।२८।।

हे भाई ! सासजी बुढ़िया डोकरी हैं, लेकिन उनके मुँह में ज़हर की गाँठ है ।।२९।।

हे भाई ! ननद तो बन की कोयल है। वह अपने बाग़ को उड़ जायगी ।।३०।।

हे भाई ! जेठानी तो काली घटा है। क्षणभर में बरसती है, क्षणभर मे घाम हो जाता है ।।३१।।

हे भाई ! देवरानी कोने की बिल्ली है। कभी बाहर निकलती है, कभी भीतर जा बैठती है ।।३२।।

हे भाई ! मेरा सिर तो देखो, लटें कुतिया की पूंछ की तरह हो गई हैं ।।३३।।

हे भाई ! पीठ तो देखो, जैसे धोबी का पाटा ।।३४।।

हे भाई! मेरा कपड़ा तो देखो, जिसे पहने हूँ; जैसे सावन की बदली ।।३५।

भाई ने कहा—हाय ! लोहा लोहार की दूकान में जल रहा है और मेरी बहन ससुराल में जल रही है ।।३६।।

बहन कहने लगी—हे भैया ! यह दुःख भौजी के सामने न कहना; नहीं तो वह दो-चार घरों में बाँट आयेगी ।।३७।।

हे भैया ! यह दुःख माँ से भी मत कहना; नहीं तो वह छाती फाड़कर मर जायगी ।।३८।।

हे भैया ! यह दुःख बाबा से भी मत कहना; नहीं तो वे गाँव के लोगों के बीच बैठकर पछतायेंगे ।।३९।।

हे भैया ! यह दुःख बहन के सामने भी न कहना; नहीं तो यहाँ का हाल सुनकर वह ससुराल न जायगी ।।४०।।

हे भैया ! यह दुःख अगुवा से कहना, जिसने इस घर में लाकर मेरा विवाह कराया ।।४१।।

हे भैया ! यह दुःख उस ब्राम्हण से कहना, जिसने लग्न शोधकर विवाह कराया था ।।४२।।

अन्त में बहन कहती है—हे भैया ! सब दुःखों को गठरी में बाँध लो (किसीसे न कहना); जहाँ खोलना वहाँ रो देना ।।४३।।

एक नव-विवाहिता वधू का भाई उससे मिलने आया है। बहन ने भाई से अपनी ससुराल की गृहस्थी का जो मार्मिक वर्णन किया है, वही इस गीत में गाया गया है।

इस गीत में कितनी मर्म-व्यथा भरी है ! कितनी अन्तर्पीडा व्याप्त है ! पढ़कर ही आँखों में आँसू आ जाते हैं। लहराती हुई पूर्वा हवा में, धान का खेत निराते समय खेतमें और चक्की पीसती हुई स्त्रियों—मुख्यकर चमारिनों—के ऊँचे कण्ठ से यह गीत सुनकर मन की अजीब हालत हो जाती है।

इस गीत में अत्युक्ति का एक भी शब्द नहीं है। गाँवों मे कितने ही घरों की ऐसी ही दशा है। कितने ही घरों में बहुओं को वर्णनातीत दुःख है। खाने का कष्ट, पहनने का कष्ट, व्यंग्य और ताने का कष्ट, मार-पीट का कष्ट, कहाँ तक गिनाये जायँ, बहुएँ बेचारी मूक पशु की भाँति सब सहती रहती हैं। पुरुष इतने कष्ट कभी नहीं सह सकते।

इस गीत में कष्टों का जो वर्णन है, उसके सिवा दो बातें विशेष महत्व की हैं। एक तो बहू का अपने मायके के लिए विशेष ध्यान। वह भाई से कहती है कि मेरे कष्टों का हाल मेरी भावज से न कहना, नहीं तो वह दो-चार

घरों में बाँट आयेगी। माँ, बहन और बाबा से भी कुछ कहने को रोकती है। उसकी शिकायत तो अगुवा और ब्राह्मण से है, जिन्होंने इस घर में लाकर उसे दुःख में डाला है।

दूसरे, बहू की सहनशीलता। उसे अपने पति के घर के मानापमान का भी ध्यान है। वह भाई से कहती है कि मेरा दुःख किसी से न कहना। मैं अब तो इस घर में बँध ही गई हूँ, जैसे होगा, निबाहूँगी। उसका अन्तिम वाक्य सहन-शीलता की पराकाष्ठा दिखाता है।

यह गीत किसने बनाया? क्या किसी अक्षर और मात्रा गिननेवाले कवि ने? या पिंगल और अलंकार के किसी उद्भट विद्वान् ने? नहीं, यह प्रकृति की रचना है। यह हाहाकार स्त्री-कण्ठ से आप से आप फूट निकला है। दुखिया बेचारियों की पुकार जब किसी ने न सुनी, तब उनके हृदय की वेदना हलकी करने के लिये, उन पर दया करके, कविता-देवी ने स्वयं यह गान गाया है।

न जाने कितने दिनों से विवाह के स्वार्थी दलालों—अगुवा और ब्राह्मण—के विरुद्ध स्त्रियाँ खेतों-खलियानों, गली-कूचों और मेलों-ठेलों में पूरे ज़ोर से चिल्ला रही हैं, पर पुरुषों ने क्या ध्यान दिया? स्त्रियों के इस हाहाकार को किसी ने सुना?

(२)

हमरे बबैया जू के सात बेटौवा रे ना।
रामा सातौ के चंदा बहिनिया रे ना ॥ १ ॥
रामा सातौ भैया चले परदेसवा रे ना।
रामा चंदा बहिनी लागी गोहनवाँ रे ना ॥ २ ॥
फिरि जाव फिरि जाव चंदा बहिनिया रे ना।
बहिनी तुहें लौबे चंदा हरौवा रे ना ॥ ३ ॥
बरहे बरिसवाँ प लौटे सातौ भैया रे ना।
रामा ठाढ़ भै चंदा के मोहरवाँ रे ना ॥ ४ ॥

भीतर बाटिउ कि बहिरे बहिनिया रे ना।
रामा थामि लेतिउ चंदा हरौवा रे ना ॥ ५ ॥
मोरे पिछवरवाँ पंडित भैया मितवा रे ना।
भैया चंदा क सोधौ गवनवाँ रे ना ॥ ६ ॥
आजु एकादसिया भियान दुवादसिया रे ना।
रामा तेरसी का वनथै गवनवाँ रे ना ॥ ७ ॥
पहिले पहिल चंदा आई है गवनवाँ रे ना।
रामा उनकै ससुरा माँगैं पनिया रे ना ॥ ८ ॥
पनिया अँड़ोरत झलकै चंदा हरौवा रे ना।
चंदा कहाँ पाइउ चंदा हरौवा रे ना ॥ ९ ॥
हमरे बबैया जू के सात बेटौवा रे ना।
बाबा ओई दिहे चंदा हरौवा रे ना ॥१०॥
पहले पहिल चंदा आई है गवनवाँ रे ना।
उनकै जेठवा माँगैं जूड़ पनियाँ रे ना ॥११॥
पनियाँ अँड़ोरत झलकै चन्दा हरौवा रे ना।
चन्दा कहाँ पाइउ चन्दा हरौवा रे ना ॥१२॥
हमरे बबैया जू के सात बेटौवा रे ना।
जेठवा ओई दिहे चन्दा हरौवा रे ना ॥१३॥
पहिले पहिल चन्दा आई है गवनवाँ रे ना।
उनकर समिया माँगैं जूड़ पनियाँ रे ना ॥१४॥
पनियाँ अँड़ोरत झलकै चन्दा हरौवा रे ना।
बहुआर कहाँ पाइउ चन्दा हरौवा रे ना ॥१५॥
हमरे बबैया जू के सात बेटौवा रे ना।
सामी ओई दिहे चन्दा हरौवा रे ना ॥१६॥

केउ नाहीं मानै चन्दा का बतिया रे ना।
रामा चन्दा से माँगैं सब किरिया रे ना ॥१७॥
मोरे पिछवरवाँ लोहरा भइया मितवा रे ना।
भैया धरम करहिया गढ़ि देवउ रे ना ॥१८॥
मोरे पिछवरवाँ बढ़ैया भैया मितवा रे ना।
भैया चनना चइलिया चिरि देउ रे ना ॥१९॥
मोरे पिछवरवाँ तेली भैया मितवा रे ना।
भैया करुवहिं तेल पेरि देवउ रे ना ॥२०॥
नैहरे का साथी मोरा भैया सुगनवा रे ना।
भैया जाइ कहौ भैया आगे हलिया रे ना ॥२१॥
ऊँचे ऊँचे बैठे मोरे ससुरे के लोगवा रे ना।
रामा खलवाँ बैठे भैया बाबा रे ना ॥२२॥
बड़ी बड़ी पागा बान्हें ससुरे के लोगवा रे ना।
रामा भैया बाबा बान्हें अँगउछवा रे ना ॥२३॥
रामा तेही बिच चढ़ी है करहिया रे ना।
रामा तेही ढिग ठाढ़ी सती चन्दा रे ना ॥२४॥
जौ चन्दा बहिनी तूँ पक्की ठहरबू रे ना।
बहिनी तोहें जोगे डँड़िया फनौबै रे ना ॥२५॥
जौ चन्दा बहिनी तूँ कच्ची ठहरबू रे ना।
तोहँका जिअतइ गड़ना गड़ौबे रे ना ॥२६॥
जौ मोरा सामी होइँ मोरे जिउ का बसिया रे ना।
रामा आगि होइ जाउ जूड़ पलवा रे ना ॥२७॥
जौ चन्दा डारिनि करहिया में हथवा रे ना।
रामा जैसे गंगाजल पनिया रे ना ॥२८॥

मुँहवाँ रुमलिया दैके रोवें ओकर समिया रे ना।
रामा मोर सती मोका छोड़ि जइहै रे ना ॥२९॥
इतनी बात देखि भैया बढ़ैता रे ना।
रामा बहिनी जोगे डँड़िया फनावें रे ना ॥३०॥
यक बन गई दूसर बन गई रे ना।
रामा तिसरे में मिलीं बन-तपसिन रे ना ॥३१॥
बहियाँ पकरि समुझावें बन-तपसिन रे ना।
बेटी सामी कर धरौ न गुनहवाँ रे ना ॥३२॥

मेरे पिता के सात पुत्र थे। सातों भाइयों की एक बहन थी, जिसका नाम चन्दा था ॥१॥

सातों भाई जब परदेश जाने लगे, तब चन्दा उनके पीछे-पीछे चली ॥२॥

भाइयों ने कहा—चन्दा बहन ! लौट जाओ, लौट जाओ। हम तुम्हारे लिए चन्द्रहार लायेंगे ॥३॥

बारह वर्ष के बाद सातो भाई लौटे और चन्दा के द्वार पर खड़े हुए ॥४॥

भाइयों ने पुकारा—चन्दा बहन ! भीतर हो कि बाहर ? चन्द्रहार थाम लो ॥५॥

भाइयों के घर के पिछवाड़े एक ज्योतिषीजी थे। भाइयों ने उन्हें बुलाकर कहा—हे मित्र ! चन्दा के गौने की साइत शोध दो ॥६॥

ज्योतिषीजी ने कहा—आज एकादशी है। कल द्वादशी। परसों त्रयोदशी को साइत है ॥७॥

चन्दा पहले-पहल गौने आई। उसके ससुर ने उससे पानी माँगा ॥८॥

पानी देते समय उसके चन्द्रहार की झलक देखकर ससुर ने पूछा—चन्दा ! तुमको यह चन्द्रहार कहाँ मिला ? ॥९॥

चन्दा ने कहा—मेरे पिता के सात पुत्र हैं। उन्होंने मुझे यह चन्द्रहार दिया है ॥१०॥

११, १२, १३, १४, १५, १६ पद्यों मे चन्दा के जेठ और पति ने भी ऐसे ही प्रश्न किये। चन्दा ने सबको एक ही उत्तर दिया।

किसी ने चन्दा की बात का विश्वास नहीं किया। सबने उसके सतीत्व पर सन्देह किया। सबको यह सन्देह हुआ कि किसी जार पुरुष ने इसे यह चन्द्रहार दिया है। सब उससे शपथ लेने को उद्यत हुए ।।१७।।

चन्दा शपथ के लिए तैयार हुई। उसके पिछवाड़े लोहार रहता था। उसने लोहार को बुलाकर कहा—हे लोहार भाई! मेरे लिए एक धर्म की कढ़ाई बना दो ।।१८।।

उसके पिछवाड़े बढ़ई रहता था। चन्दा ने उसे बुलाकर कहा—हे भाई! मेरे लिए चन्दन की लकड़ी चीर दो ।।१९।।

उसके पिछवाड़े तेली रहता था। उसे बुलाकर चन्दा ने कहा—हे भाई! कड़ुआ तेल पेर कर दो ।।२०।।

चन्दा नैहर से एक सुआ साथ लाई थी। उसने उसे अपने भाई के पास भेजा कि जाकर सब हाल कह आओ ।।२१।।

चन्दा का हाल पाकर उसके पिता और भाई आये। चन्दा की ससुराल के लोग ऊँचे बैठे और उसके पिता और भाई नीचे बैठे ।।२२।।

ससुराल के लोग बड़े-बड़े पाग बाँधकर बैठे थे और चन्दा के पिता और भाई केवल अँगोछा लपेटे थे ।।२३।।

उन्हीं के बीच कढ़ाई चढ़ी थी। उसके पास सती चन्दा खड़ी थी ।।२४।।

भाई ने कहा—चन्दा बहन! जो तुम सत की पक्की ठहरोगी तो हम तुम्हें धूमधाम से पालकी में बैठाकर घर ले चलेंगे ।।२५।।

यदि तुम कच्ची ठहरोगी तो तुमको जीती ही गाड़ लेंगे ।।२६।।

चन्दा ने अग्नि से कहा—जो मेरे स्वामी मेरे हृदय के वासी हों, तो हे आग! तुम बर्फ़ की तरह ठंढ़ी हो जाओ ।।२७।।

चन्दा ने कढ़ाई में हाथ डाला। तेल गङ्गाजल की तरह ठंढा था ।।२८।।

चन्दा का स्वामी मुँह पर रुमाल रखकर रोने लगा—हाय! ऐसी सतवन्ती स्त्री मुझे छोड़कर चली जायगी ।।२९।।

सत की परीक्षा में बहन को उत्तीर्ण पाकर उसका भाई फूला नहीं समाया। उसने बहन को घर ले चलने के लिये पालकी सजाई ॥३०॥

चन्दा एक बन पार कर गई। दूसरा बन पार कर गई। तीसरे में उसे बन की तपस्विनियाँ मिली ॥३१॥

तपस्विनियों ने चन्दा की बाँह पकड़कर समझाया—बेटी! स्वामी का अपराध भूल जाना चाहिए ॥३२॥

यह गीत यहीं समाप्त हो गया। तपस्विनियों की बात मानकर चन्दा अवश्य अपने स्वामी के पास लौट गई होगी। इस गीत का कथानक सत्य हो या मिथ्या, इससे हमको बहस नहीं। हम तो केवल इस बात पर मुग्ध हैं कि यह गीत कितनी ही बहनों के सतीत्व का रक्षक है। ईश्वर करे, सती चन्दा का-सा आत्मबल और अपने सत से अग्नि को शीतल कर देने का तेज सब बहनों को प्राप्त हो।

हिन्दू-स्त्री का सतीत्व ही सर्वस्व है। उस सतीत्व-रक्षा के लिए स्मृतिकारों ने जो बंदिशें की हैं, कवियों ने जो उदाहरण तैयार किये हैं, सो तो हुई हैं; स्त्रियों ने स्वयं भी उसकी रक्षा का प्रयत्न किया है। इस प्रकार के गीत उनके प्रयत्न के प्रमाण हैं।

इस गीत में हिन्दू-समाज के जीवन की एक छटा और भी वर्तमान है। हिन्दुओं में सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा प्रचलित है। कुटुम्ब का प्रत्येक व्यक्ति कुटुम्ब की मर्यादा-रक्षा का जिम्मेदार है। चन्दा यद्यपि विवाहिता होकर दूसरे कुटुम्ब में गई है। पर उसके चरित्र की जिम्मेदारी उसके माता-पिता और भाई के ऊपर से कम नहीं हुई है। यदि चन्दा का चरित्र उज्ज्वल न निकलता, तो उसके स्वामी और ससुर को उतना अपमान न सहना पड़ता जितना उसके पिता और भाई को। केवल सन्देह पर ही यह परिणाम हुआ कि उसके पिता और भाई उसकी ससुरालवालों से नीचे बैठाये गये। ससुरालवाले बड़े-बड़े पग्गड़ बाँधकर बैठे थे, पर चन्दा के पिता और भाई शर्म के मारे केवल अँगोछे लपेटकर आये थे। न्याय के अनुसार यद्यपि चन्दा का पति ही उसके यश-अपयश का भागी है, पर यहाँ तो उसका

भाई ही सबसे अधिक ज़िम्मेदार माना गया है। चरित्र-हीना प्रमाणित होने पर वह चन्दा को ज़मीन में जीती गाड़ लेने की धमकी देता है; इससे यह स्पष्ट है कि चन्दा चरित्रहीना साबित होती तो उसके पति की अपेक्षा उसके भाई और पिता को अधिक लज्जित होना पड़ता। हिन्दू-समाज की रचना इसी प्रकार की हुई है।

अन्त में तपस्विनियों का उपदेश बड़ा ही मार्मिक है। स्त्री को पति के अपराध को क्षमा कर देना चाहिए। यही गृहस्थी का मूल मंत्र है, जो इस गीत-द्वारा एक कान से दूसरे कान तक पहुँचाया जाता है।

(३)

अपने ओसारे कुसुमा झारै लम्बी केसिया रे ना।
रामा तुरुक नजरिया पड़ि गई रे ना॥१॥
धाउ तुहूँ नयका रे धाउ तुहूँ पयका रे ना।
रामा जैसिंह क पकरि ले आवउ रे ना॥२॥
जौ तुहूँ जैसिंह राजपाट चाहउ रे ना।
जैसिंह अपनी बहिनी हमका ब्याहउ रे ना॥३॥
यतना बचन सुनि घरवै का लौटेनि रे ना।
जैसिंह गोड़े मूड़े तानेनि चदरिया रे ना॥४॥
बैठी जगावहि कुसुमा बहिनिया रे ना।
भइया तोरा धरमवा नाहीं जइहै रे ना॥५॥
उठौ भइया रे करहु दतुइनिया रे ना।
भइआ तोरा पति राखैं भगवनवाँ रे ना॥६॥
जो तुहूँ मिरजा रे हमहिं लोभानेउ रे ना।
मिर्जा बाबा क गँउवाँ भूइयाँ बकसौ रे ना॥७॥

हँसि हँसि मिरजा रे गँउवाँ भुइयाँ बकसै रे ना।
रामा रोइ रोइ बिलसै कुसुमा क बाबा रे ना ॥८॥
जौ तुहूँ मिरजा रे हमहिं लुभानेउ रे ना।
मिर्जा काका जोगे हथिया बेसाहौ रे ना ॥९॥
हँसि हँसि मिरजा रे हथिया बेसाहै रे ना।
रामा रोइ रोइ चढ़ैं कुसुमा क काका रे ना ॥१०॥
जौ तुहूँ मिरजा रे हमहिं लुभानेउ रे ना।
मिरजा भैया जोगे घोड़वा बेसाहौ रे ना ॥११॥
हँसि हँसि मिरजा रे घोड़वा बेसाहै रे ना।
रामा रोइ रोइ चढैं कुसुमा क भैया रे ना ॥१२॥
जौ तुहूँ मिरजा रे हमहिं लुभानेउ रे ना।
मिरजा तिरिया जोगे गहना गढ़ावउ रे ना ॥१३॥
हँसि हँसि मिरजा रे गहना गढ़ावइ रे ना।
रामा रोइ रोइ पहिरै कुसुमा क भौजी रे ना ॥१४॥
जो तुहूँ मिरजा रे हमहिं लोभानेउ रे ना।
मिरजा चेरिया जोगे चुनरी रँगावउ रे ना ॥१५॥
हँसि हँसि मिरजा रे चुनरी रँगावै रे ना।
रामा रोइ रोइ पहिरैं कुसुमा क चेरिया रे ना ॥१६॥
एक कोस गई दुसर कोस गई रे ना।
रामा तिसरे में लागी पिअसिया रे ना ॥१७॥
घर ही में कुइयाँ खनौबै मोरी कामिनि रे ना।
कामिनि पिअहु गेंड़ुवा ठँडा पानी रे ना ॥१८॥
तोहरे सगरे पनिया नित उठि पीअब रे ना।
मिरजा बाबा क सगरवा दुर्लभ होइहैं रे ना ॥१९॥

यक घोंट पीइनि दुसर घोंट पीइनि रे ना।
रामा तिसरे में गई सरबोरवा रे ना ॥२०॥

अपनेओसारे में कुसुमा अपने लंबे केश साफ़ कर रही थी। उस पर एक तुर्क की दृष्टि पड़ गई ॥१॥

तुर्क ने अपने नौकरों और सिपाहियों से कहा—दौड़कर जाओ और जयसिंह को पकड़ लाओ ॥२॥

उसने जयसिंह से कहा—जयसिंह ! यदि तुम राज-पाट चाहते हो तो अपनी बहन को मेरे साथ ब्याह दो ॥३॥

यह वचन सुनकर जयसिंह घर लौट आये और शोक के मारे सिर से पैर तक चादर ओढ़कर पड़ रहे ॥४॥

कुसुमा भाई के पास बैठकर जगाने लगी—हे भाई ! उठो, तुम्हारा धर्म नहीं जायगा ॥५॥

हे भाई ! उठो, दातुन कर लो। तुम्हारी लाज भगवान् रक्खेंगे ॥६॥

कुसुमा ने मिरजा (तुर्क) से कहा—हे मिरजा ! जो तुम मुझपर मोहित हुए हो, तो मेरे बाबा को गाँव और भूमि दो ॥७॥

मिरज़ा ने प्रसन्न मन से कुसुमा के बाबा को गाँव और भूमि दिया। कुसुमा के बाबा ने रो-रोकर उन्हें लिया ॥८॥

कुसुमा ने मिरज़ा से कहा—हे मिरज़ा ! जो तुम मुझ पर मोहित हो, तो मेरे काका के लिए हाथी खरीद दो ॥९॥

मिरज़ा ने प्रसन्न मन से कुसुमा के काका के लिए हाथी खरीद दिया। कुसुमा का काका रोता हुआ हाथी पर चढ़ा ॥१०॥

कुसुमा ने मिरज़ा से कहा—हे मिरज़ा ! तुम मुझ पर लुभाने हो, तो मेरे भाई के लिये घोड़ा खरीद दो ॥११॥

मिरज़ा ने प्रसन्न मन से उसके भाई के लिये घोड़ा खरीद दिया। जिस पर उसका भाई रोता हुआ चढ़ा ॥१२॥

कुसुमा ने कहा—हे मिरज़ा ! जो तुम मुझपर मुग्ध हुए हो, तो स्त्री के योग्य गहने गढ़ा दो ।।१३।।

मिरज़ा ने प्रसन्न मन से गहना गढ़ा दिया । जिसे रो-रोकर कुसुमा की भौजाई ने पहना ।।१४।।

कुसुमा ने कहा—हे मिरज़ा ! जो तुम मुझ पर मोहित हो, तो दासी के लिए चूनरी रँगा दो ।।१५।।

मिरज़ा ने चूनरी रँगा दी । जिसे रो-रोकर कुसुमा की दासी ने पहना ।।१६।।

कुसुमा मिरज़ा के साथ एक कोस गई । दो कोस गई । तीसरे में उसे प्यास लगी ।।१७।।

मिरज़ा ने कहा—हे मेरी कामिनी ! घर ही में मैं कुँवा खोदवा दूँगा । तुम सुराही का ठंढा पानी पीना ।।१८।।

कुसुमा ने कहा—हे मिरज़ा ! तुम्हारे कुँएँ का पानी तो रोज़-रोज़ पीऊँगी । पर यह मेरे बाबा का खुदाया हुआ सागर दुर्लभ हो जायगा ।।१९।।

कुसुमा सागर मे पानी पीने गई । उसने एक घूँट पिया । दो घूँट पिया । तीसरे घूँट के साथ वह सागर में कूद पड़ी ।।२०।।

इस प्रकार कुसुमा ने प्राण देकर अपने धर्म की रक्षा की । इस गीत में उस समय की किसी घटना का वर्णन है, जब भारत में मुसलमानी शासन था और मुसलमान शासक किसी हिन्दू की सुन्दरी कन्या देखकर उसे जबर-दस्ती छीन लिया करते थे । उस समय के अत्याचार की एक स्पष्ट झलक इस गीत में मौजूद है । घटना सत्य जान पड़ती है; क्योंकि उत्तरप्रदेश और बिहार दोनों प्रान्तों में इस घटना को लेकर गीत रचे गये हैं । और खेत निराते समय अब भी मजदूरिनें इस गीत को गा-गाकर भगवती कुसुमा के सतीत्व-रक्षा की महिमा हिन्दू-कन्याओं को सुनाया करती हैं ।

यह गीत बिहार में आटा पीसते समय इस प्रकार गाया जाता है—

आठहि काठ केरि नैया रे नैया;
इँगुरे ढरल चारो पलवा हू रे जी ।

तेहि घाटे उतरेला मिरिजा सहेबवा;
जेहि घाटे भगवति नहाले हू रे जी।
पनिया भरति पनिभरनि बिटियवा;
केकर बहिनि करे असननिया हू रे जी।
गाँव केर गौंआ होरिलसिंघ रजवा;
उन्हकर बहिनि करे असननिया हू रे जी।
धाव तुहूँ नौआ, धाव चपरसिया;
होरिलसिंघ क पकड़ि ले आवहू रे जी।
पनिया भरत पनिहारिनि बिटियवा;
होरिलसिंघ मकनिया कहाँ बाड़े हू रे जी।
उत्तर मुँहे उतराहुत उनका;
दुआरे चननवा का गछिया हू रे जी।
होरिलसिंघ मुसुक चढ़ावहू रे जी।
जब रे होरिलसिंघ गइले मिरिजा पसवा;
नइ-नइ करेला सलमिया हू रे जी।
लेहु न होरिलसिंघ डाल भरि सोनवा;
भगवति बहिनिया मोहि बकसहु हू रे जी।
आगि लगहु मिरिजा डाल-भर सोनवा;
मोरा कुले भगवति ना जामेले हू रे जी।
घर में से निकसि अँगना ठाढ़ि भइली;
अँगना ठाढ़िय भौजी रोवेली हू रे जी।
आग लगहु भगवति तोहरि सुरतिया;
तोहरा कारन सामी बान्हल हू रे जी।
लेहु ना भौजी घर गिहिथनवा;
होरिल छोड़ावन हम जाइब हू जी रे।

जब भगवति गइलि मिरिजा के पसवा;
नइ-नइ करेलि सलमिया हू रे जी।
जौं तुहुँ मिरिजा हमरा सें लोभिया;
होरिलसिंह के मुसुक छोड़ावहु हू रे जी।
जौं तुहुँ मिरिजा हमरा सें लोभिया;
हमरा जोगे चुनरि रँगावहु हू रे जी।
जौं तुहुँ मिरिजा हमरा सें लोभिया,
हमरा जोगे गहना गढ़ावहु हू रे जी।
जौं तुहूँ मिरिजा हमरा सें लोभिया,
हमरा जोगे डँड़िया फनावहु हू रे जी।
हँसि-हँसि मिरिजा गहना गढ़ौले,
रोइ-रोइ पेन्हे बेटी भगवति हू रे जी।
हँसि-हँसि मिरिजा चुनरि रँगौले,
रोइ-रोइ पेन्हे बेटी भगवति हू र जी।
हँसि-हँसि मिरिजा डँड़िया फनौले,
रोइ-रोइ फाने बेटी भगवति हू रे जी।
एक कोस गइलि, दूसर कोस गइली,
लागि गइल मधुरि पियसिया हू रे जी।
गोड़ तोर लागीला अगिला कहरवा,
बुन एक पनिया पियावहु हू रे जी।
मिरिजा गड़ुअवे पनिया पियहू हू रे जी।
तोरा गड़ुए मिरिजा निति उठि पिअबों,
बाबा के सगरवा दुरलभ भइले हू रे जी।
एक चिरुआ पियलि, दूसर चिरुआ पियलि,
तिसरे गइलि तरबोरवा हू रे जी।

रोवेला मिरिजवा मुड़वा ठठावाला,
मोरि बुधि छरे छोड़ी भगवति हू रे जी।
रोइ-रोइ मिरिजा रे जलिया लगावेले,
बझि गइल घोंघवा सेवरवा हू रे जी।
हँसि-हँसि होरिलसिंह जलिया लगावेले,
बझि गइले भगवति बहिनिया हू रे जी।
हँसेला होरिलसिंह मुँहे खाइ पनवा,
तीन कुल राखे बहिनिया भगवति हू रे जी।

यह गीत उत्तर प्रदेश के गीत से कुछ अधिक विस्तार-पूर्वक है। पर मूल घटना में अंतर नहीं है। हाँ, बिहार के गीत की अंतिम पंक्तियाँ उत्तर-प्रदेश के गीत में नहीं हैं, जिनके बिना रस की पूर्णता नहीं होती थी। भगवती ऐसी बहन पाकर होरिलसिंह या जयसिंह को पान खाकर हर्षित होना ही चाहिए।

यह गीत अंग्रेज़ों को इतना पसंद आया कि Light of Asia के रचयिता, अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि सर एडविन आर्नाल्ड ने इसका अंग्रेज़ी पद्य में अनुवाद कर डाला। जिसे नवंबर १९१८ में, हिन्दी-भाषा के परम प्रेमी सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने इंगलैंड के School of Oriental Studeis में एक व्याख्यान में सुनाया था।

फैजाबाद, बलिया और बिहार के कई ज़िलों में यही गीत कहीं भगवती कहीं कुसुमा या कुसमी के नाम से और घटनाओं के थोड़े रूपान्तर से प्रचलित है।

बिहार में यह गीत एक प्रकार से और गाया जाता है। उसकी प्रारंभ की पंक्तियों से गीत में वर्णित घटना के समय का भी पता चलता है। जैसे—

पूरब पछिमवाँ से अइले रे फिरँगिया
दानापुर में बारिक उठावल रे की।

बरिक उठवलक खिरकी करवलक
चारो ओर पलटन बसवलक रे की ।।
उही कोरे मिरजा रे झिझरी खेलत हैं
जाही कोरे भगवति नहाइल रे की ।।
नजर परत मिरजा बोलले सहेबवा से
होरिलसिंह क पकरि मँगावहु रे की ।।

इत्यादि । आगे की कथा वैसी ही है, जैसी भगवती के गीत में वर्णित है । जान पड़ता है, जब पहले-पहल अंग्रेज़ लोग दानापुर में आये और उन्होंने वहाँ अपनी छावनी डाली, उस समय ऐसी कोई घटना अवश्य हुई है, जिसका ज़िक्र प्रान्त भर में गीतों-द्वारा व्याप्त हो गया है, और जिस से भगवती या कुसुमा बहन अमर हो गई है ।

(४)

ऊँची अटारी उरेही चित्रसारी हो ना ।
रामा किन धन पुतरी उरेह्या हो ना ।।१।।
लहुरी पतोहिया पूता तोरी भैंहो हो ना ।
रामा उन धन पुतरी उरेह्य हो ना ।।२।।
इतना बचन जब सुने राजा जेठवा हो ना ।
रामा गोड़े मूड़े तानेनि दुपटवा हो ना ।।३।।
उठौ न पूता मोरे हाथ मुँह धोवउ हो ना ।
रामा खाय लेहु दुधवा औ भतवा हो ना ।।४।।
कैसे कै मैया मोरी हाथ मुँह धोई हो ना ।
मैया लहुरी पतोहिया मन बसी हो ना ।।५।।
लहुरी पतोहिया पूता भयहो हो ना ।
रामा वह तो तिलँगवा की जोइया हो ना ।।६।।

लै आवो छोटका ढाल तरवरिया हो ना।
छोटे भैया क खबरिया हम जाबै हो ना ॥७॥
लइ लेहु जेठा ढाल तरवरिया हो ना।
जेठा हम तौ बाटी राम रसोइयाँ हो ना ॥८॥
एक बन गइले दुसर बन गइले हो ना।
रामा तिसरे में भैया कै फउजिया हो ना ॥९॥
सोओ न भैया मोरे सुख की निदरिया हो ना।
भैया तुम्हरा पहरवा हम देबैं हो ना ॥१०॥
डोलै लागीं जुड़ली बयरिया हो ना।
रामा आइ गई सुख की निदरिया हो ना ॥११॥
रामा हनै लागे भैया क करेजवा हो ना।
जेठा सग भैया मारि घर लौटैं हो ना ॥१२॥
अँगने हो कि भितरे हो छोटका हो ना।
रामा खोलि देहु चँदन केवरिया हो ना ॥१३॥
कहवाँ मारेउ जेठा कहवाँ ढकेलेउ हो ना।
जेठा कहवाँ कै चील्हि मड़रानी हो ना ॥१४॥
ऊँचे मारेउँ खलवाँ ढकेलेउँ हो ना।
रामा सरगे चिल्हरिया मेड़रानी हो ना ॥१५॥
तुहैं छाँड़ि जेठा न और क होबै हो ना।
जेठा हरिजी कै लोथिया मँगाओ हो ना ॥१६॥
तुहैं छाँड़ि जेठा न और क होबै हो ना।
जेठा चन्दन चइलिया चिरावउ हो ना ॥१७॥
तुहैं छाँड़ि जेठा न और क होबै हो ना।
जेठा नगर से घियना मँगावउ हो ना ॥१८॥
तुहैं छाँड़ि जेठा न और क होबै हो ना।

जेठा रचि रचि सरा रोपावउ हो ना ।।१९।।
रामा जो हम होई सतवंती हो ना ।
मोरे अँचरा भभकि उठै अगिया हो ना ।।२०।।
बरै लागी लकड़ी भसम भई छोटका हो ना ।
रामा जेठवा मिजैं दूनौ हथवा हो ना ।।२१।।
जौ हम जनत्यों छोटका इतना छल करबिउ हो ना ।
रामा काहे मरतेउँ सग भैया हो ना ।
रामा काहें तोरतेउँ दाहिन बहियाँ हो ना ।।२२।।

ऊँची अटा पर सुन्दर चित्रों से सुशोभित चित्रशाला है । पुत्र ने माता से पूछा—हे माँ ! यह सुन्दर चित्र किसने बनाया ? ।।१।।

माँ ने कहा—हे बेटा ! मेरी छोटी पतोहू, जो तुम्हारी भ्रातृ-वधू लगती है, उसने यह चित्र बनाया है ।।२।।

जेठ ने जब यह सुना, तब वह सिर से पैर तक दुपट्टा तानकर सो रहा ।।३।।

माँ ने कहा—हे बेटा ! उठो न; हाथ-मुँह धोकर दूध-भात खा लो ।।४।।

पुत्र ने कहा—हे माँ ! मैं कैसे हाथ-मुँह धोऊँ ? तुम्हारी छोटी पतोहू मेरे मन में बस गई है ।।५।।

माँ ने कहा—बेटा ! वह तो तुम्हारी भ्रातृ-वधू है । उसे तो छूना भी पाप है । और वह तो सिपाही की स्त्री है । उसका पति तो फौज में नौकर है ।।६।।

जेठ ने कहा—हे छोटी बहू ! ढाल-तलवार लाओ । मैं छोटे भाई की खबर लेने जाऊँगा ।।७।।

छोटी बहू ने कहा—हे जेठजी ! ढाल-तलवार स्वयं ले लीजिये । मैं तो रसोई बना रही हूँ ।।८।।

ढाल-तलवार लेकर बड़ा भाई एक बन में गया । दूसरे बन में गया । तीसरे में उसके भाई की सेना का पड़ाव था ।।९।।

उसने छोटे भाई से कहा—हे भाई ! लाओ, तुम्हारा पहरा मैं दे लूगा। तुम आज सुख की नीद सो लो ।।१०।।

ठंढी हवा चलने लगी। छोटे भाई को सुख की नीद आ गई ।।११।।

बड़े भाई ने छोटे भाई के कलेजे में तलवार घुसेड़ दी। छोटे भाई को मारकर वह घर आया ।।१२।।

उसने द्वार पर से पुकारा—छोटी बहू ! आँगन में हो ? कि कोठरी में ? चंदन के किवाड़े जरा खोल तो दो ।।१३।।

छोटी बहू सब भेद समझ गई। उसने पूछा—हे जेठ जी ! तुमने उन्हें कहाँ मारा ? कहाँ ढकेला ? और कहाँ की चील्ह उनके ऊपर मँड़ला रही है ? ।।१४।।

जेठ ने कहा—हे छोटी बहू ! मैंने उसे ऊँचे मारा और नीचे ढकेल दिया तथा उसके ऊपर आकाश में चील मँडला रही है ।।१५।।

छोटी बहू ने कहा—हे जेठजी ! मैं तुम्हे छोड़ दूसरे की नही होऊँगी। तुम मेरे प्राणनाथ की लाश तो मँगा दो ।।१६।।

हे जेठजी ! मैं तुम्हे छोड़कर दूसरे की नही होऊँगी। चंदन की लकड़ी तो चिरा दो। शहर से घी तो मँगा दो। अच्छी तरह से चिता तो रच दो ।।१७, १८, १९।।

जेठ ने सब कुछ कर दिया। छोटी बहू पति की चिता के पास खड़ी होकर बोली—हे मेरे पति देवता ! यदि मैं सतवन्ती होऊँ, तो मेरे आँचल मे आग भभक उठे ।।२०।।

लकड़ी जल उठी। छोटी बहू भस्म हो गई। जेठ दोनों हाथ मलने लगा ।।२१।।

उसने कहा—छोटी बहू ! जो मैं जानता कि तुम इतना छल करोगी, तो मैं अपना सगा भाई क्यों मारता ? अपनी दाहिनी भुजा क्यों तोड़ता ? ।।२२।।

इस गीत से कितनी ही बातों का पता चलता है। एक तो यह कि पूर्व-काल में प्रत्येक घर में चित्रशाला होती थी। दूसरे यह कि स्त्रियाँ ऐसे सुन्दर चित्र खींचती थीं कि उन्हें देखकर पुरुष मोहित हो जाते थे। तीसरे, सती

धर्म की महिमा। छोटी बहू ने प्राण देकर अपना धर्म बचाया और उसका जेठ अधर्म-पथ पर चलकर अंत में पश्चात्ताप करके हाथ मलता ही रह गया।

(५)

बरहै बरिसवा क लचिया सुनरिया रे ना।
लचिया खिरकी बैठि लेइ बयरिया रे ना॥१॥
घोड़वा चढ़ल आवैं एक रजपुतवा रे ना।
रामा पड़ि गइलैं लाची पै नजरिया रे ना॥२॥
घोड़वा त बाँधे राजा कदमे की डरिया रे ना।
राजा चलि गइलें कुटनी महलिया रे ना॥३॥
देब्यों मैं कुटनी रे पाँच मोहरिया रे ना।
कुटनी लचिया भोरइ लइ आवउ रे ना॥४॥
कैसे क लचिया क भोरवों रजपुतवा रे ना।
राजा लचिया सोवै सामी कोरवा रे ना॥५॥
हथवा क लेउ कुटनी चिपरी गोइँठिया रे ना।
कुटनी अगिया ओढ़र लचिया भोरवउ रे ना॥६॥
भीतर बाटू की बाहर लचिया रे ना।
लचिया सब सखी जाथीं नहौने रे ना॥७॥
इतनी बचन सुनि लचिया लवँगिया रे ना।
सासू जाति बाटी सगरे नहौने रे ना॥८॥
सगरे क पनिया बहुअरि लागै पतरेंगवा रे ना।
बहुअरि घर हीं करो असननवा रे ना॥९॥
गुड़ुई खेलत मोरी लहुरी ननदिया रे ना।
ननदी जात बाटी सगरे नहौने रे ना॥१०॥

भौजी बाबा मोरा सगरा खोदैहैं रे ना।
भौजी भैया मोरा घटवा बँधैहैं रे ना ॥११॥
तब मोरी भौजी तुँ सगरे नहायउ रे ना।
भौजी घर हीं करौ असननवा रे ना ॥१२॥
केहूक कहनवा लाची मनही न आवै रे ना।
लाची खोलि लिहीं रतुली पेटरिया रे ना ॥१३॥
ओढ़ि पहिरि लचिया आई ओसरवा रे ना।
सासू जाति बाटिउँ, सगरे नहनवा रे ना ॥१४॥
जहाँ जहाँ लचिया करै बैठकवा रे ना।
तहाँ तहाँ राजा घोड़ ठमकावैं रे ना ॥१५॥
एक्कउ बुड़ुकिया लचिया मरइउ न पाये रे ना।
राजा इतने में चुनरि उठावैं रे ना ॥१६॥
देऊ न राजा काहें हमरी चुनरिया रे ना।
राजा मोर माँसु खाइँ मछरिया रे ना ॥१७॥
जौ हम देई लचिया तोहरी चुनरिया रे ना।
लचिया हमरे गोहनवाँ चली चालउ रे ना ॥१८॥
जौ हम चली राजा तोहरे गोहनवाँ रे ना।
राजा तोहैं ले सुन्दर मोर बिअहवा रेना ॥१९॥
जे कै मरर मरर करै जुतवा रे ना।
जे कै एँड़िया बरन परदनिया रे ना ॥२०॥
यतना सुनत राजा मुँह बिचुकायनि रे ना।
लचिया तुहैं ले सुन्दरि मोरि बिअहिया रे ना ॥२१॥
जे कै भहर भहर करइ बरवा रे ना।
जे कै मुनरी बरन करिहइयाँ रे ना ॥२२॥

सुन्दरी लाची की अवस्था बारह वर्ष की थी। वह एक दिन खिड़की पर बैठकर हवा ले रही थी ॥१॥

घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजकुमार उधर से आ निकला। लाची पर उसकी नज़र पड़ गई ॥२॥

कदम्ब की डार से घोड़ा बाँधकर वह कुटनी के घर पहुँचा ॥३॥

उसने कुटनी से कहा—हे कुटनी! मैं तुमको पाँच मोहरें दूगा। तुम लाची को बहकाकर लाओ ॥४॥

कुटनी ने कहा—हे राजा! लाची को कैसे बहकाऊँ? वह तो अपने स्वामी की गोद में सोती है। अर्थात् अपने पति की बहुत प्यारी है ॥५॥

राजा ने कहा—हाथ में उपले लो और आग लेने के बहाने उसके घर में जाकर उसे बहका लाओ ॥६॥

कुटनी ने लाची के घर जाकर पुकारा—लाची! भीतर हो या बाहर? सब सखियाँ नहाने जा रही हैं ॥७॥

इतना सुनते ही लाची ने सास से कहा—मैं तालाब मे नहाने जा रही हूँ ॥८॥

सास ने कहा—हे पतले अङ्गवाली मेरी पतोहू! तालाब का पानी लगता है। घर पर ही स्नान कर लो ॥९॥

फिर लाची ने गुड़िया खेलती हुई अपनी छोटी ननद से कहा—हे ननद! मैं तालाब में नहाने जा रही हूँ ॥१०॥

ननद ने कहा—हे भौजी! मेरे बाबा नया तालाब खोदवायेंगे और भैया घाट पक्का करायेंगे ॥११॥

तब हे भौजी! तुम उसमें नहाना। आज तो घर में ही नहा लो ॥१२॥

किसी का कहना लाची के मन में नहीं बैठा। उसने अपनी लाल रंग की पेटारी खोल ली ॥१३॥

लाची पहन-ओढ़कर ओसारे में आई और सास से बोली—सास-जी! मैं तालाब में नहाने जा रही हूँ ॥१४॥

रास्ते में जहाँ-जहाँ लाची सुस्ताने के लिए बैठती थी, राजकुमार भी वहीं-वहीं घोड़ा ठहरा लेता था ।।१५।।

लाची तालाब में एक भी डुबकी न लगा पाई थी कि राजकुमार ने उसकी चूनरी उठा ली ।।१६।।

लाची ने कहा—हे राजकुमार ! मेरी चूनरी दे दो । पानी के भीतर मछलियाँ मेरा मांस नोच रही हैं ।।१७।।

राजा ने कहा—हे लाची ! हम तभी तुम्हारी चूनरी दे सकते हैं, जब तुम हमारे साथ चली चलो ।।१८।।

लाची ने कहा—हे राजकुमार ! हम तुम्हारे साथ क्यों चलें ? तुमसे अधिक सुन्दर तो मेरा विवाहित पति ही है ।।१९।।

चलते वक्त जिसका जूता मरर-मरर करता है, और एँड़ी की तरह लाल किनारेदार जिसकी धोती है ।।२०।।

लाची की यह बात सुनकर राजकुमार ने मुँह बिचका लिया और खिसियाकर कहा—लाची ! तुमसे कहीं सुन्दरी मेरी विवाहिता स्त्री है ।।२१।।

जिसके बाल लहकते हैं और जिसकी कमर अँगूठी की तरह गोल है ।।२२।।

यह खेत निराते समय का एक गीत है । इसके अन्त में विनोद की मात्रा खूब है । राजकुमार के प्रस्ताव पर लाची ने राजकुमार को जो जवाब दिया, वह गाँव की हरएक पति की प्यारी स्त्री के लिए मनोरंजक है । लाची ने राजकुमार की बातें सुनकर न उसे गालियाँ दी, न शोर मचाया; बल्कि अपने पति की सुन्दरता पर उसने अपनी पूर्ण आसक्ति प्रकट की । कुटनी ने जो कहा था कि वह अपने पति की गोद में सोती है, इसलिए बहक नहीं सकती, सो सच निकला । वह अपने पति की धोती और जूते पर आसक्त थी, जो देहाती शौक़ीनों की ख़ास चीज़ें हैं ।

राजकुमार, जो इतनी दूर तक पीछे-पीछे आकर निराश हुआ था, अपने रूप की निन्दा सुनकर खिसिया गया । उसने अपने मन को अपनी सुन्दर

स्त्री की ओर मोड़ा, जो लाची से अधिक सुन्दरी थी। इस प्रकार दोनों का धर्म बचा। पर रहा मज़ाक ही।

(६)

अपनी खिड़किया लचिया झारे लामी केसियाँ
हो ना।
लचिया पड़ि गैले जयसिंह नजरिया हो ना ॥१॥
अपनी खिड़किया लचिया करे दतुइनिया हो ना।
लचिया पड़ि गैले जयसिंह छिटिकवा हो ना ॥२॥
ओते चलु ओते चलु जयसिंह रजवा हो ना।
जयसिंह पड़ि जैहैं दतुवन छिटिकवा हो ना ॥३॥
अवतू न मोरी लाची हमरी सेजरिया हो ना।
लाची रानी होइ के सब सुख विलसौ हो ना ॥४॥
अइसनि बोल जनि बोलहु रजवा जयसिंह हो ना।
राजा हम तौ धरम कै बिटिया हो ना ॥५॥
उहवाँ से गइले जयसिंह कुटनी महलिया हो ना।
बुढ़िया लाची के भोरइ मोही आनहु हो ना ॥६॥
लचिया त सुतले रजवा स्वामी जी के कोरवाँ हो ना।
रजवा छव रे महिना के अलवंतिआ हो ना ॥७॥
लेहु न कुटनी रे डाल भरि सोनवा हो ना।
कुटनी लाची के भोराइ मोहीं आनहु हो ना ॥८॥
हथवा के लेलें बुढ़िया गोइँठा चिपरिया हो ना।
बुढ़िया अगिया बहाने लाची किहाँ अइली हो ना ॥९॥
बाहर बाड़ू कि भीतर लचिया अलवंतिया हो ना।
लचिया सब सखी जाले गंगा नहनवा हो ना ॥१०॥

बरहा बरसि पर लगली परबिआ हो ना।
लाची तुहूँ चलबू गंगा असननवाँ हो ना ॥११॥
मचिया बैठलि तुहूँ सासु बढ़ैतिन हो ना।
सासू हम जैबों गंगा असननवाँ हो ना ॥१२॥
इतनी बोली जनि बोलहु वहुआ हो ना।
वहुआ छव रे महीना के अलवंतिया हो ना ॥१३॥
एक कोसे गइली लाची दुइ कोसे गइली हो ना।
रामा पड़ि गइले जयसिंह नजरिया हो ना ॥१४॥
उहवाँ से जयसिंह भेजे हरकरवा हो ना।
रामा ताही पीछे घोड़ उड़वले हो ना ॥१५॥
घोड़ा से उतरि जयसिंह लाची किहाँ अइले हो ना।
जयसिंह लपकी धइले दाहिन बहियाँ हो ना ॥१६॥
छोड़ छोड़ जयसिंह हमरो अँचरवा हो ना।
जयसिंह तोहरा से सुन्दर मोर रजवा हो ना ॥१७॥
अइसनि बोली जनि बोलौ रानी लचिया हो ना।
लाची चली चलु हमरी सेजरिया हो ना ॥१८॥
अतना बचन लाची सुनहि न पवली हो ना।
लाची काढ़ि कटरिया जिउआ लिहली हो ना ॥१९॥
उहवाँ से चलली लाची घर के पहुँचली हो ना।
राम सासु गरिआवे बाबामुअनी हो ना ॥२०॥
जनि सास बाबा खाहु जनि सासु भइया खाहु हो ना।
सासु बटिआ रोकेला बटपरवा हो ना ॥२१॥

अपनी खिड़की पर बैठकर लाची एक दिन अपने लंबे-लंबे बाल झाड़ने लगी। यकायक उस पर जयसिंह की दृष्टि पड़ गई।।१।।

लाची एकदिन अपनी खिड़की पर बैठकर दातुन कर रही थी कि जयसिंह पर दातुन के छींटे पड़ गये ।। २ ।।

लाची ने कहा—हे राजा जयसिंह ! ज़रा हट जाओ । हट जाओ । दातुन के छींटे पड़ जायँगे ।। ३ ।।

जयसिंह ने कहा—हे लाची ! मेरी सेज पर आओ न ? रानी होकर सब सुख भोगो ।। ४ ।।

लाची ने कहा—हे राजा जयसिंह ! ऐसी बात न बोलो । मैं तो तुम्हारी धर्म-पुत्री हूँ ।। ५ ।।

जयसिंह वहाँसे चलकर कुटनी के घर गये और उससे बोले—हे बुड्ढी ! लाची को बहकाकर ले आओ ।। ६ ।।

कुटनी ने कहा—हे राजा ! लाची तो अपने स्वामी की गोद में सोती है और छः महीने की गर्भवती है ।। ७ ।।

जयसिंह ने कहा—हे बुड्ढी ! डलिया भरकर सोना लो और लाची को किसी तरह बहकाकर ले आओ ।। ८ ।।

कुटनी हाथ में गोबर की उपली लेकर आग लेने के बहाने लाची के घर आई ।। ९ ।।

उसने कहा—हे लाची ! बाहर हो ? कि भीतर ? सब सखियाँ गंगा नहाने जा रही हैं ।। १० ।।

बारह वर्ष पर यह पर्व लगा है । हे लाची ! तुम भी गंगा नहाने चलो ।।११ ।।

लाची राज़ी हो गई । सास मचिये पर बैठी थी । लाची ने कहा—हे सास ! मैं गंगा नहाने जाऊँगी ।। १२ ।।

सास ने कहा—हे लाची ! यह तुम क्या कहती हो ? अरे ! तुमको तो छः महीने का गर्भ है ।। १३ ।।

लाची एक कोस गई, दो कोस गई । इतने में उस पर जयसिंह की दृष्टि पड़ गई ।। १४ ।।

जयसिंह ने उसे रोकने के लिये हरकारा भेजा और उसके पीछे अपना घोड़ा उड़ाया ।। १५ ।।

घोड़े से उतरकर जयसिंह लाची के पास आया और लपककर उसने लाची की बाँह पकड़ ली ।। १६ ।।

लाची ने कहा—हे जयसिंह ! मेरा आँचल छोड़ दो। मेरा पति तुमसे कहीं अधिक सुन्दर है ।। १७ ।।

जयसिंह ने कहा—हे लाची रानी ! ऐसी बोली मत बोलो। हे लाची ! मेरी सेज पर चली चलो ।। १८ ।।

लाची ने यह सुनते ही कटार निकालकर जयसिंह को मार डाला ।। १९ ।।

लाची वहाँ से चलकर घर आई। सास ने कहा—तेरा बाबा मर जाय। तू कहाँ थी ? ।। २० ।।

लाची ने कहा—हे सास ! न तुम मेरे बाबा को खाओ, न भैया को। राह में डाकू ने रोक लिया था ।। २१ ।।

किसी ज़माने में लाची-जैसी साधारण स्त्रियों में भी इतना साहस होता था कि वे कटार बाँधती थीं और अपने सतीत्व की रक्षा के लिये उससे अत्याचारी का संहार कर सकती थीं।

(७)

पनिया क गइउँ वहि पनिघटवा हो ना।
रामा मेघवा धरेसि मोरि बहियाँ हो ना ।।१।।
छोड़ छोड़ मेघे ननदोइया हो ना।
मेघा लहुरी ननदिया तोहें देबइ हो ना ।।२।।
कूदत कूदत मेघे गये ससुरिया हो ना।
सरहज बिदा कइ दे अपनी ननदिया हो ना ।।३।।

कैसे बिदा करौं मेघे ननदोइया हो ना।
मेघे नाहीं तोहरे लुगवा झुलउवा हो ना ॥४॥
कूदत कूदत मेघे गयनि बजरिया हो ना।
मेघे अच्छा अच्छा कपड़ा बेसाहेनि हो ना ॥५॥
कूदत कूदत मेघे गये ससुररिया हो ना।
सरहज बिदा कइ दे अपनी ननदिया हो ना ॥६॥
कैसे बिदा करौं मेघे ननदोइया हो ना।
मेघे तोहरे न घर न दुअरिया हो ना ॥७॥
कूदत कूदत मेघे गयेन बढ़इया भैया हो ना।
बढ़ई अच्छी अच्छी लकड़ी कटावहु हो ना ॥८॥
बढ़ई छाइ देउ हमका महलिया हो ना।
बढ़ई हम लउबै आपनि सुन्दरिया हो ना ॥९॥
कूदत कूदत मेघे गये ससुररिया हो ना।
सरहज बिदा कइ दे अपनी ननदिया हो ना ॥१०॥
कैसे क बिदा करौं मेघे ननदोइया हो ना।
मेघे नाहीं तोरे पंच परमेसर हो ना ॥११॥
कूदत कूदत मेघे गये गँउवाँ के गोयँड़वाँ हो ना।
पंचो कइ न देता हमरी बरतिया हो ना ॥१२॥
कूदत कूदत मेघे गये ससुररिया हो ना।
मेघे उतरि परेनि जनवसिया हो ना ॥१३॥
आरी आरी बैठेनि पंच परमेसर हो ना।
अरे रामा बिचवाँ में मेघे ननदोइया हो ना ॥१४॥
रामा उपरा से चिल्हिया जे झपटै हो ना।
रामा मेघऊ क लैकर भागेसि हो ना ॥१५॥

मैं पानी के लिये उस पनघटपर गई थी। वहाँ मेढक ने मेरी बाँह पकड़ ली ।। १ ।।

मैंने कहा—हे मेढक ननदोई! छोड़ो, छोड़ो। मैं तुमको अपनी छोटी ननद दूँगी ।। २ ।।

मेढक कूदता-कूदता ससुराल गया और बोला—हे सरहज (साले की स्त्री)! अपनी ननद को विदा कर दो ।। ३ ।।

सरहज ने कहा—हे मेढक! मैं अपनी ननद को कैसे विदा करूँ? न तुम कोई धोती लाये हो, न झुलवा (जाकट) ।। ४ ।।

मेढक कूदता-कूदता बाज़ार पहुँचा और उसने अच्छे-अच्छे कपड़े खरीदे ।। ५ ।।

फिर वह कूदता-कूदता ससुराल पहुँचा और बोला—हे सरहज! अपनी ननद को विदा कर दो ।। ६ ।।

सरहज ने कहा—हे मेढक! मैं अपनी ननद को कैसे विदा करूँ? न तुम्हारे घर है, न द्वार ।। ७ ।।

मेढक कूदता-कूदता बढ़ई के घर पहुँचा और बोला—बढ़ई भाई! अच्छी-अच्छी लकड़ी कटाओ ।। ८ ।।

मेरे लिये महल तैयार कर दो। मैं अपनी सुन्दरी को लाने वाला हूँ ।। ९ ।।

मेढक कूदता-कूदता फिर ससुराल पहुँचा और बोला—हे सरहज! अपनी ननद को विदा कर दो ।। १० ।।

सरहज ने कहा—हे मेढक! मैं अपनी ननद को कैसे विदा करूँ? तुम्हारे साथ तुम्हारी बिरादरी के पंच तो हई नहीं हैं ।। ११ ।।

मेढक कूदता-कूदता गाँव के खेड़े (समीप) पहुँचा और गाँववालों से बोला—हे पंचो! मेरी बरात कर दो न? ।। १२ ।।

मेढक कूदता-कूदता फिर ससुराल पहुँचा और जनवासे में उतर पड़ा ।। १३ ।।

अगल-बगल तो पंच लोग बैठे। बीच में मेढक ननदोई बैठा ।। १४ ।।

इतने में ऊपर से चील झपटी और वह मेढक को लेकर भाग गई ।। १५ ।।

यही दशा मनुष्य की है। मनुष्य संसार में रहने के लिये कितने प्रपंच किया करता है। लालसाएँ पूरी होने नही पाती कि मौत आ पहुँचती है। सच है—

सेठजी को फिक्र थी यक एक के दम कीजिये।
मौत आ पहुँची कि हज़रत! जान वापस कीजिये॥

(८)

कौनी उमिरिया सासू निमिया लगायेनि रे ना।
सासू कौनी उमिरिया गै बिदेसवा रे ना॥१॥
खेलत कूदत बहुअरि निमिया लगायेनि रे ना।
बहुअरि मोछिया भिनत गै बिदेसवा रे ना॥२॥
फरै लागी निमिया लहासें लागी डरिया रे ना।
सासू तबहूँ न लौटे तोर बिदेसिया रे ना॥३॥
बरहे बरिसवा प लौटे परदेसिया रे ना।
रामा ठाढ़ भये जूड़ी जूड़ी छैहाँ रे ना॥४॥
माई उठीं लै के चनना पिढ़ैया रे ना।
रामा बहिनी गेंडुववा जूड़ पनिया रे ना॥५॥
थोरा पियै पनिया रे हिरिफिरि चितवैं रे ना।
माई नाहीं देखौं पतरी तिरियवा रे ना॥६॥
भैया तोरी बहू गरबा गुमानी रे ना।
रामा वै तौ सोवैं घवरहरे रे ना॥७॥
रामा वै तौ करइँ नइहरवा रे ना॥८॥
देउ न मैया एक पतरी छड़ियवा रे ना।
मैया तिरिया हेरन हम जावै रे ना॥९॥
यक बन गयनि दुसर बन गयनि रे ना।
रामा तिसरे माँ गोरू चरवहवा रे ना॥१०॥

मैं तोसे पूछौं भैया गोरू चरवहवा रे ना।
भैया तिरिया यकौ यहिँ की जाई रे ना॥११॥
मन बैरागे लट छिटकाये रे ना।
रामा रोवत नैहरे जाइ रे ना॥१२॥
ऊँचे घरा कै नीच दुअरिआ रेना।
रामा माई धिया तेल लगावें रे ना॥१३॥
हो देखा माई रे हो देखा माई रे ना।
माई ऊ के आ घोड़ा असवरवा रे ना॥१४॥
जूड़ै पनिया दिहिउ मोरी माई रे ना।
रामा जूड़ै जूड़ै दिहिउ जवबवा रे ना ॥१५॥
आप दूप जिनि कहिउ माई रे ना।
माई फिनि हम सासुर जावै रे ना॥१६

बहू पूछती है—हे सासुजी! उन्होंने अर्थात् तुम्हारे पुत्र ने किस उम्र में यह नीम का पेड़ लगाया था? और किस उम्र में वह विदेश गये? ॥१॥

सासु ने कहा—हे बहू! खेलने-कूदने के समय उन्होंने यह नीम लगाई थी और रेख भिनते समय वे परदेश गये ॥ २ ॥

बहू कहती है—हाय! नीम फलने लगी। डालें सुन्दर लगने लगीं। तो भी तुम्हारा परदेशी नहीं लौटा ॥ ३ ॥

बारहवें वर्ष परदेशी घर आया, और नीम की शीतल छाया में खड़ा हुआ ॥ ४ ॥

माँ चंदन का पीढ़ा लेकर उठी और बहन लोटे में ठण्ढा पानी ॥ ५ ॥

वह थोड़ा पानी पीता है और इधर-उधर घूम-फिरकर देखता है। उसने कहा—हे माँ! मैं अपनी कृशांगी स्त्री को नहीं देखता हूँ ॥ ६ ॥

माँ ने कहा—हे बेटा! तुम्हारी स्त्री तो अभिमानिनी है। वह धौर-हरे (घर के सबसे ऊपरी भाग) पर सोती है ॥ ७ ॥

और आज-कल तो वह यहाँ है भी नहीं। नैहर गई है ॥ ८ ॥

बेटे ने कहा—माँ! मुझे मेरी पतली छड़ी दो। मैं स्त्री को खोजने जाऊँगा ॥ ९ ॥

वह एक बन गया। दूसरे में गया। तीसरे मे गोरू के चरवाहे मिले ॥ १० ॥

उनसे पूछा—हे भैया! क्या कोई स्त्री इधर से जाती हुई तुम लोगों ने देखी है? ॥ ११ ॥

चरवाहों ने कहा—हाँ; एक विरहिणी लट छिटकाये रोती हुई इधर मे गई है ॥ १२ ॥

एक ऊँचा मकान है, जिसका नीचा दरवाजा है। दरवाजे पर माँ और बेटी तेल लगा रही हैं ॥१३॥

बेटी ने कहा—अरी माँ! वह देख, वह देख। वह घोड़े पर सवार कौन आ रहा है? ॥ १४ ॥

हे मेरी माँ! इन्हें ठण्डा पानी देना; और ठण्डा उत्तर देना ॥ १५ ॥

इन्हे कोई कटुवचन न कहना। मैं फिर ससुराल जाऊँगी ॥ १६ ॥

यह गीत उस समय का है, जब बारह-बारह वर्ष बाद लोग परदेश से कमाकर लौटते थे। स्त्री बेचारी को इतना लम्बा समय कभी नैहर में और कभी ससुराल मे रहकर काटना पड़ता था।

(९)

पतले सिकिया का एकले बढ़निया,
प झुकवन बहारै रे आँगनवा ॥१॥
अँगना बहारत छिटकी गरमिया,
प मथवन चूवै रे पासिनवा ॥२॥
द्वारे से आये पिया पतरेंगवा,
प पोंछै लागे अपनी रूमलिया ॥३॥
भीतर से बोली हैं सासु बढ़ैतिन,
प भयो पूत मेहरी कै गूलमवाँ ॥४॥

हमरा तौ भैले सासु ओही रे दिनवा,
प घूमेन सात रे भाँवँरिया ॥५॥
हमरा भैले सासु ओही रे दिनवा,
प मँगियन पड़ा रे सेंदुरवा ॥६॥

पतली सींकों की एक बढ़नी (झाड़ू) थी। जिससे स्त्री झुककर आँगन बुहार रही थी ॥ १ ॥

आँगन बुहारते समय गरमी छिटकी। जिससे उसके माथे से पसीना चूने लगा ॥ २ ॥

बाहर से पतले शरीरवाला पति आया और वह रूमाल से स्त्री के माथे का पसीना पोंछने लगा ॥ ३ ॥

सास ने देख लिया। वह कहने लगी—वाह वा! बेटा! तुम तो औरत के गुलाम होगये ॥ ४ ॥

बहू ने कहा—हे सासजी! ये तो उसी दिन से मेरे हो गये, जिस दिन मेरे साथ सात भाँवर घूमे ॥ ५ ॥

हे सास! ये तो उसी दिन से मेरे हो गये, जिस दिन से मेरी माँग में सिन्दूर पड़ा ॥ ६ ॥

(१०)

पुरुब देस ते आये हैं जोगिया हो ना।
माया जोगिया माँगै थे बसेरवा हो ना ॥१॥
जोगिया मोरे घर धेरिया पतोहिया हो ना।
धेरिया पतोहिया लागै मोर बिटियवा हो ना ॥
बूढ़ा तुमहूँ लागौ मतवा हमारी हो ना ॥२॥
जब जब जोगिया बँसुरी बजावै हो ना।
रामा रैमत ठाढ़ी ओनाइ हो ना ॥३॥

बापा जगावैं उठो धेरिया रैमत हो ना।
धेरिया भई है दुधहँड़ी की जुनिया हो ना ॥४॥
दोहनी तो देहैं बापा लहुरी बहिनिया हो ना।
बाबा हम तो जोगियै चित लावा हो ना ॥५॥
माता जगावैं उठौ रैमत धेरिया हो ना।
धेरिया भई है कलेउना की जुनिया हो ना ॥६॥
माया कलेवना तौ खैहैं छोटकी बहिनिया हो ना।
माया हम तौ जोगियै चित लावा हो ना ॥७॥
भैया जगावैं रैमत बहिनी हो ना।
बहिनी भई है गोबरवा की जुनिया हो ना ॥८॥
गोबरा उठावैं भैया छोटी बहिनिया हो ना।
भैया हम तो जोगियै चित लावा हो ना ॥९॥
भौजी जगावै रैमत ननदी हो ना।
ननदी भई है रसोंइया की जुनिया हो ना ॥१०॥
भौजी जाइ रसोइयैं छोटी बहिनिया हो ना।
भौजी हम तौ जोगियै चित लावा हो ना ॥११॥
बहिनी जगावैं रैमत बहिनियाँ हो ना।
बहिनी भई है गुड़ुइया कै जुनिया हो ना ॥१२॥
गुड़ुई तौ खेलै बहिनी सथिनिया हो ना।
बहिनी हम तौ जोगियै चित लावा हो ना ॥१३॥
आधी रात जोगिया बँसुरी बजावै हो ना।
रामा रैमत क लैगा उढ़ारी हो ना ॥१४॥

बेटी माँ से कहती है—हे माँ! पूर्व दिशा से जोगी आये हैं, जो ठहरने के लिये जगह चाहते हैं ॥ १ ॥

माँ ने कहा—हे जोगी ! मेरे घर में कन्या और बहू हैं। जोगी ने कहा—हे वृद्धा ! कन्या और बहू है तो क्या हुआ ? वे तो मेरी कन्या-जैसी हैं। और तुम भी तो मेरी माँ-सरीखी हो ।। २ ।।

जोगी जब-जब बाँसुरी बजाता था, तब-तब रैमत खड़ी होकर ओनाया (कान लगाकर सुना) करती थी ।। ३ ।।

बाप रैमत को जगाता—हे बेटी ! उठो। दूध दुहने की बेला हो गई ।। ४ ।।

रैमत कहती—हे पिता ! दूध दुहने की हाँड़ी छोटी बहन दे देगी। मेरा मन तो जोगी में लगा हुआ है ।। ५ ।।

माँ रैमत को जगाती—हे बेटी ! उठो। कलेवा कर लो ।। ६ ।।

रैमत कहती—हे माँ ! मेरी छोटी बहन कलेवा कर लेगी। मेरा मन तो जोगी में लगा हुआ है ।। ७ ।।

भाई रैमत को जगाता—हे बहन ! उठो। गाय-भैंसों के नीचे से गोबर उठाने का वक्त हो गया ।। ८ ।।

रैमत कहती—हे भैया ! छोटी बहन गोबर उठा लेगी। मैंने तो जोगी में मन लगाया है ।। ९ ।।

भौजाई जगाती—हे ननद ! उठो। रसोई बनाने की बेला हो गई ।। १० ।।

रैमत कहती—हे भौजी ! छोटी बहन रसोई बना लेगी। मेरा मन तो जोगी में लगा है ।। ११ ।।

छोटी बहन जगाती—हे बहन ! उठो। आओ, गुड़िया खेलें ।। १२ ।।

रैमत कहती—हे बहन ! सखियों के साथ गुड़िया खेल लो। मैंने तो जोगी से मन लगा रक्खा है ।। १३ ।।

आधीरात को जोगी ने बाँसुरी बजाई और रैमत को वह उढ़ार (पराई स्त्री को चुपके से लेकर भागना) ले गया ।। १४ ।।

आजकल के जोगी, साधु, फकीर किस तरह बहू-बेटियों को निकाल ले जाते हैं, यह गीत उसका एक चित्र है। साधु-संतों के भेस में लम्पट

लोग गृहस्थों के घरों में टिकते हैं। किसी को माँ और किसी को बेटी कह-कर अपनी सचरित्रता दिखलाते हैं और मौका पाकर किसी को ले भागते हैं। ऐसी घटनायें देहात में होती ही रहती हैं। भेस की पूजा हिन्दू-जाति को बड़ी ही हानि पहुंचा रही है।

(११)

जो मैं होतिउँ बनकी कोइलिया, बनै रे बन रहतिउँ हो ना।
मोरा हरि जाते अहेरिया, तौ सबद सुनौतिउँ हो ना॥

यदि मैं बन की कोयल होती, तो वन ही में रहती। मेरे प्राणनाथ जब शिकार खेलने जाते, तब मैं उनको अपना शब्द सुनाती।

(१२)

काँचिनि इँटिया कै नीची हो जगतिया हो ना।
रामा पनिया भरै इक सुन्दरि हो ना॥१॥
घोड़वा चढ़ा आवै हो राजा पुतवा हो ना।
सुन्दरि एक बुन्दवा पनिया पियावहु हो ना॥२॥
कैसे के पनियाँ पियावौं राजा पुतवा हो ना।
रामा मोरी जतिया तो है जुलहिनिया हो ना॥३॥
जोलहिन लागौ न हमरे गोहनवाँ हो ना।
जोलहिन तोहँका राखब जैसे घिउ गागरि हो ना॥४॥
अपनी महल से उनकै बियही निहारै हो ना।
सासू तोरा पूता उढ़री लै आवैं हो ना॥५॥
चुप रहु बियही तु चुप रहु बियही हो ना।
रामा उढ़री आवै गोबरा काढ़ै हो ना॥६॥
गोरी गोरी बहियाँ हरी हरी चुरिया हो ना।
सासू कौन हाथे गोबरा मैं काढौं हो ना॥७॥

कुसुम क सरिया छोड़ू उढ़री हो ना।
उढ़री पहिरि ले फटही लुगरिया हो ना ॥८॥
लुगरी पहिरि धन गोबरा काढ़ैं हो ना ॥९॥
जीरा ऐसी फुफुनी दिउलिया ऐसी मँगिया हो ना।
सासू कौने मुड़े गोबरा मैं ढोऊँ हो ना ॥१०॥
गेहुँवा कै रोटिया अरहरि कै दलिया हो ना।
रामा जेवना बनावै ऊहैं बियही हो ना ॥११॥
माई आजू क जेवनरवा नाहीं बना हो ना ॥१२॥
मकरा कै रोटी करेथुवा क सगवा हो ना।
रामा जेवना बनावै ऊहैं उढ़री हो ना ॥१३॥
जंवन बैठे उनही राजपुतवा हो ना।
माई आजु कै जेवन खूबै बना हो ना ॥१४॥
उढ़री बियही दोनों करैं झोंटी क झोंटा हो ना।
रामा राजा बैठि डेहरी झंखैं हो ना ॥१५॥
कवनि को मारौं माई कौनि क निसारौं हो ना ॥१६॥
बियही मारो पूता बियही क निसारौ हो ना।
उढ़री का तिलरी पहिरावौ हो ना ॥१७॥
सोनवा क टकवा मैं तोका देबूँ हो ना।
गोड़िया रखुई के परवा लगावौ हो ना ॥१८॥
बियही क नाव प्रभू परवा लगावै हो ना।
रामा उढ़री बूड़ैं मँझधरवा हो ना ॥१९॥
उँढ़री के ममऊ दहिजरू के नाती हो ना।
रामा बियही क धर्मा मनाओ हो ना ॥२०॥

कच्ची ईंट की बनी हुई नीची जगत थी। उस पर एक सुन्दरी पानी भर रही थी ।। १ ।।

घोड़े पर सवार एक राजपूत उधर से निकला। उसने कहा—हे सुन्दरि! एक बूँद पानी पिला दो ।। २ ।।

सुन्दरी ने कहा—हे राजपूत! मैं पानी कैसे पिलाऊँ? मैं तो जाति की जुलाहिन हूँ ।। ३ ।।

राजपूत ने कहा—जुलाहिन! तुम मेरे साथ चली चलो न? मैं तुमको इस तरह रक्खूँगा, जैसे घी का घड़ा ।। ४ ।।

जुलाहिन राजपूत के साथ उढ़र गई। राजपूत उसे लेकर घर गया। राजपूत की विवाहिता स्त्री ने दूर से देखकर कहा—हे सासजी! तुम्हारे पुत्रजी तो एक उढ़री ला रहे हैं ।। ५ ।।

सास ने कहा—लाने दो, बहू! तुम चुप रहो। वह आकर गोबर काढ़ा करेगी ।। ६ ।।

उढ़री की गोरी-गोरी बाँहों में हरी-हरी चूड़िया थीं। उसने सास से पूछा—हे सास! मैं गोबर कैसे उठाऊँ? ।। ७ ।।

सास ने कहा—कुसुंभी रंग की साड़ी तो उतारकर रख दो। यह लुगरी (फटी पुरानी धोती) पहन लो ।। ८ ।।

उढ़री लुगरी पहनकर गोबर काढ़ने लगी ।। ९ ।।

जीरे की तरह नीबी और दिये की लौ की तरह माँगवाली उढ़री ने कहा—हे सास! मैं मूँड़ पर कैसे गोबर ढोऊँ? ।। १० ।।

विवाहिता स्त्री ने गेहूँ की रोटी और अरहर की दाल बनाया ।। ११ ।।

पति ने जीमते समय कहा—आज का भोजन अच्छा नहीं ।। १२ ।।

मडुवे की रोटी और करेथुवा का साग उढ़री ने बनाया ।। १३ ।।

पति ने जीमते वक्त कहा—आज का भोजन बड़ा स्वादिष्ट बना है ।। १४ ।।

उढ़री और विवाहिता दोनों झोंटे पकड़कर गुत्थम-गुत्था हो गईं। पति ड्योढ़ी में बैठकर झंख रहा है ।। १५ ।।

हे माँ! किसे मारूँ? किसे निकालूँ? ।। १६ ।।

माँ ने ताना मारते हुये कहा—बेटा ! विवाहिता को मारो। विवाहिता को निकालो। उढ़री को तिलड़ी (एक गहना) पहनाओ ।। १७ ।।।

पति ने गोड़िया (एक जाति) को बुलाकर कहा—हे गोड़िया ! मैं तुमको मोहर दूँगा । तुम इस उढ़री को पार लगा दो ।। १८ ।।

विवाहिता की नाव को भगवान पार लगाते हैं । पर उढ़री मँझधार में डूब जाती हैं ।। १९ ।।

ऐ उढ़री के मामा ! दाढ़ीजार के नाती ! तुम अपनी विवाहिता का धर्म मनाओ ।। २० ।।

(१३)

अगिला सुगवा रुनझुन पछिला सुगवा चोर।
हमरा खेत में आयउ सुगऊ दागब दूनौं ठोर।।
बाबा क खेत त खायउ सुगवा हमरा खेत बचाइ।
घोंघे घोंघे भात देबइ सुतुही में दालि देबइ
हाली हाली हो।

आगे का सुआ सुन्दर है, पीछे का चोर है । मेरे खेत में आओगे, तो तुम दोनों की चोंचें जला दूँगा । बाबा के खेत को तो खाना, मेरे खेत को बचा देना । मैं तुमको घोंघों में भरकर भात और सीपों में भरकर दाल दूँगा और जल्दी-जल्दी खिलाऊँगा ।

यह गीत खेत की मेंड़ पर बैठकर गाया जाता है । किसान पक्षियों को भी अपने ही जैसा ज्ञानी जीव समझता है ।

हिंडोले के गीत

(१)

बिरना नान्हीं नान्हीं पतिया
अमिलि कइ बलैया लेउँ बीरन ॥१॥
बिरना पतरी जोरै बरिया पूत, ,, ॥२॥
बिरना पतरी जेवैं बीरन मोर, ,, ॥३॥
बिरना मुँगिया दरिय दरि दालि, ,, ॥४॥
बिरना मोतीसारी चउरे क भात, ,, ॥५॥
बिरना उपरा घिअन कइ धार, ,, ॥६॥
बिरना तेहि पै निबुल रस गार, ,, ॥७॥
बिरना माया जे हाँकैं बयारि, ,, ॥८॥
बिरना भौजी डेहरि धरे ठाढ़ि, ,, ॥९॥
बिरना बहिनी खड़ी बतलाय, ,, ॥१०॥
बिरना देसवा भये हैं तुरकान, ,, ॥११॥
बिरना घाटे बाटे मोगल पठान, ,, ॥१२॥
बिरना धरम बचावै भगवान, ,, ॥१३॥
बिरना पँडित दुआरे एक नीम, ,, ॥१४॥
बिरना तेहि तर उतरे हैं साठि, ,, ॥१५॥
बिरना छोरि लेइहैं बिटिया कुँवारि, ,, ॥१६॥
बिरना धरम बचावैं भगवान, ,, ॥१७॥
बिरना सुनतै रकत भइ आँखि, ,, ॥१८॥

भइया थरिया दिहेनि सरकाय, बलैया लेउँ बीरन ॥१९॥
बिरना लै लिहें ढाल तरुवारि, ,, ॥२०॥
बिरना मुगुल की ओरी सब साठि, ,, ॥२१॥
मोरा भइया अकेलवइ ठाढ़, ,, ॥२२॥
बिरना भौजी बोलै विष बोल, ,, ॥२३॥
ननदा हमकाँ किहिउ अँधियार, ,, ॥२४॥
बिरना जूझि मरे मुगुल पठान, ,, ॥२५॥
मोर भइया समर जीति ठाढ़, ,, ॥२६॥
बिरना मइया के बहै दूधा-धार, ,, ॥२७॥
बिरना भउजी के हिरदा हुलास, ,, ॥२८॥
बिरना कोखिया बखानउँ मयरि कै, ,, ॥२९॥
जेकर पुतवा समर जीति ठाढ़, ,, ॥३०॥
बिरना मँगिया बखानउँ भउजि कै, ,, ॥३१॥
जेकर समिया समर जीति ठाढ़, ,, ॥३२॥
बिरना भगिया बखानउँ बहिनि कै, ,, ॥३३॥
जेकर भइया समर जीति ठाढ़, ,, ॥३४॥

(सुलतानपुर)

इमली की नन्ही-नन्हीं पत्तियाँ हैं ॥ १ ॥।
बारी का लड़का उनसे पत्तल बना रहा है ॥ २ ॥
उस पत्तल पर मेरा भाई जीम रहा है॥ ३ ॥
मूंग दलकर दाल बनाई है॥ ४ ॥
मोती-सरीखे चावलों का भात है॥ ५ ॥
उस पर घी की धार पड़ी है॥ ६ ॥
उस पर नीबू निचोड़ दिया गया है॥ ७ ॥
माँ पंखा हाँक रही है॥ ८ ॥

भावज देहली पर खड़ी है।। ९ ।।
बहन बात कर रही है ।। १० ।।
हे भाई ! सारा देश तुर्कों से भर गया है।। ११ ।।
रास्ते और घाट सब मुग़लों और पठानों ने घेर लिये हैं ।। १२ ।।
भगवान ही अब धर्म की रक्षा करें।। १३ ।।
पंडित के दरवाजे पर नीम का पेड़ है ।। १४ ।।
उसके नीचे साठ मुग़ल और पठान उतरे हैं ।। १५ ।।
वे पंड़ित की क्वारी लड़की को छीन ले जायँगे ।।१६।।
हे भाई ! भगवान् ही उसका धर्म बचावें ।।१७।।
यह सुनते ही भाई की आँखें रक्त के समान लाल हो गई ।।१८।।
भाई ने थाली सरका दी ।।१९।।
दौड़कर उसने ढाल-तलवार ली ।।२०।।
मुग़लों की ओर सब साठ हैं ।।२१।।
मेरा भाई अकेला ही खड़ा है ।।२२।।
भावज ज़हर ऐसी बात बोल रही है ।।२३।।
हे ननद ! तुमने मेरे जीवन को अन्धकारमय कर दिया ।।२४।।
मुग़ल और पठान लड़े और मारे गये ।।२५।।
मेरा भाई युद्ध जीतकर खड़ा है ।।२६।।
माँ की छाती से दूध की धारा बह रही है ।।२७।।
भावज के हृदय में हर्ष उमड़ आया है ।।२८।।
माँ की कोख को धन्य है ।।२९।।
जिसका पुत्र युद्ध जीतकर खड़ा है ।।३०।।
भावज के सुहाग को धन्य है ।।३१।।
जिसका स्वामी युद्ध जीतकर खड़ा है ।।३२।।
बहन के भाग्य को धन्य है ।।३३।।
जिसका भाई युद्ध जीतकर खड़ा है ।।३४।।
यह गीत उस ज़माने की याद दिलाता है, जब मुग़लों के अत्याचार

से हिन्दू माता-पिता का हृदय हिल उठा था। क्योंकि युवती और सुन्दरी कन्याओं को मुग़ल जबरदस्ती छीन ले जाते थे। मुग़लों का शासन था; शासकों के पास हिन्दुओं की न पहुँच थी, न सुनवाई थी और न उनसे न्याय की आशा थी। गाँवों मे भयंकर आतङ्क छाया रहता था। गीतों में बहुतसी कन्याओं के आत्म-हत्या कर लेने के प्रमाण मिलते हैं। कन्याओं की रक्षा में बहुत से पिताओं और भाइयों के जूझ मरने के भी वर्णन मिलते हैं। उसी समय से हिन्दुओं में कन्याओं को बहुत छोटी उम्र मे विवाहिता बना देने की प्रथा चल निकली और परदे की आवश्यकता भी दृढ़ हो गई।

उपर के गीत मे जिस दृश्य का चित्रण हुआ है, वह बड़ा ही मनोमोहक है। कभी हमारे घरों मे ऐसे वीर युवक थे, जो साठ-साठ शत्रुओं से लड़कर विजयी होते थे। और अपनी भुजाओं के बल पर उनको इतना भरोसा था कि साठ शत्रु हैं, यह सुनकर भी वे विचलित नहीं होते थे और खाना छोड़कर उनसे लड़ने को निकल पड़ते थे। भावज की मनोदशा भी ध्यान देने योग्य है। विजयी पुत्र के लिए माता की छाती से दूध की धारा का फूट निकलना अनहोनी बात नहीं है। अन्त में अपने वीर पुत्र, पति और भाई को देखकर माता, स्त्री और बहन की कोख, सुहाग और भाग्य की सराहना के बहाने बहन ने प्रत्येक भाई को उत्साहित किया है कि वह इसी तरह अपनी बहन के धर्म की रक्षा करे।

(२)

टांड़े से मेंहदी चली वर मेंहदी के लम्बे लम्बे पात;
मेंहदी भीनैलै ॥१॥
लहुरा देवर मेरो लड़िला वारी, ले आयो बैल लदाय;
मेंहदी भीनैलै ॥२॥
लावहु सील सिलावटी वारी, रगरि रगरि मेंहदी पीसहु;
मेंहदी भीनैलै ॥३॥

देवरा लगावै कानी आँगुरी वारी भाउज भरि दूनूं हाथ,
मेंहदी भीनैलै ॥४॥

झमकि अँटरिया चढ़ि गईं वारी, केहि देखलाऊँ दूनूं हाथ,
मेंहदी भीनैलै ॥५॥

लट छटका मेरे पाटिया वारी है कोउ लसकर जात,
मेंहदी भीनैलै ॥६॥

वही लसकरिया में यों कह्या तेरी मइया मरी घर जाहु,
मेंहदी भीनैलै ॥७॥

मइया मरी हैं मरी जान दे वारी गयो है घर का बलाय,
मेंहदी भीनैलै ॥८॥

वही लसकरिया में यों कह्यो वारी बहिनी मरी घर जाहु,
मेंहदी भीनैलै ॥९॥

बहिनी मरी मरि जान दे वारी बँचि गया दान दहेज,
मेंहदी भीनैलै ॥१०॥

वोहि लसकरिया में यों कह्यो तेरी धनियाँ मरी घर जाहु,
मेंहदी भीनैलै ॥११॥

धनियाँ मरी है घरा खोय गया वारी लड़िकै गए हैं खराब,
मेंहदी भीनैल ॥१२॥

कागद फेंकै चउतरा मसिहानी दिहिनि ढरकाय,
मेंहदी भीनैलै ॥१३॥

लेहु राजा आपनि चाकरी वारी धनिया मरी घरा खोय,
मेंहदी भीनैलै ॥१४॥

घरा खोय गया, वारी लड़िके गए हैं खराब,
मेंहदी भीनैलै ॥१५॥

मइया के देखै तलाव पर वारी बहिन चने के खेत,
मेंहदी भीनैलै ॥१६॥
लड़िके भूलैं लै पालना वारी वोई घना सीझहीं रसोई,
मेंहदी भीनैलै ॥१७॥
झमकि अटरिया चढ़ि गई वारी खोलि देखलावैं दोउ हाथ,
मेंहदी भीनैलै ॥१८॥
कवन छलहारिन छल किया वारी छल से लिया है बोलाय,
मेंहदी भीनैलै ॥१९॥
अइसा काम न कीजीए वारी आई रोजी फिरि जाय,
मेंहदी भीनैलै ॥२०॥
(अलीगढ़)

टाँड़े से मेंहदी चली। उसके पत्ते लम्बे-लम्बे हैं ॥१॥

मेरा छोटा देवर बड़ा लाड़ला है, वह बैल पर लादकर मेहदी लाया। मेहदी भिन रही है ॥२॥

सिल-सिलवट लाओ। रगड़-रगड़कर मेहदी पीसो ॥३॥

देवर ने छोटी उँगली मे लगाया और भावज ने दोनों हाथ भरकर ॥४॥

बहू झमककर अटारी पर चढ़ गई। उसे शौक चराया कि हाथ की मेंहदी किसें दिखलाऊँ ॥५॥

वह लट छिटकाकर खड़ी हुई। उसने देखा, कोई लश्कर (फौज) जा रही है ॥६॥

किसी से उसने कहा—हे! उस लश्कर में (उसके पति को) यों कहना कि तुम्हारी माँ मर गई है, घर जाओ ॥७॥

पति ने सुनकर कहा—माँ मर गई है, मर जाने दे। घर की बला गई ॥८॥

बहू ने कहा—अच्छा, यों कहना कि बहन मर गई घर जाओ ॥९॥

पति ने कहा—उँः; बहन मर गई, मर जाने दे। दान दहेज बचा ॥१०॥

अच्छा, उस लश्कर में यों कहना कि तुम्हारी स्त्री मर गई; घर जाओ ॥११॥

हाय! स्त्री मर गई, गृहस्थी चौपट हो गई; लड़के बेसंभाल के हो गये ॥१२॥

यह सुनकर पति ने कागज़ चबूतरे पर फेंक दिया और स्याही ढुलका दी ॥१३॥

हे राजा! अपनी नौकरी लो। स्त्री मर गई, घर बिगड़ गया ॥१४॥

घर बिगड़ गया; लड़के खराब गये। पर पति ने (घर आकर) माँ को तालाब पर देखा, और बहन को चने के खेत में ॥१६॥

उसने देखा—लड़के पालने में झूल रहे हैं और बहू रसोई बना रही है ॥१७॥

बहू झमककर अटारी पर चढ़ गई और वहाँ से उसने पति को मेंहदी से लाल हुये अपने दोनों हाथ दिखलाये ॥१८॥

पति ने कहा—किस छल करनेवाली ने छल किया और मुझे छल से बुला लिया? ॥१९॥

हे प्यारी! ऐसा काम नहीं करना चाहिये। लगी हुई जीविका इससे चली जाती है ॥२०॥

इस गीत में प्रियतम को एक अल्हड़ नवेली बहू की मेंहदी दिखाने की उत्सुकता और दाम्पत्य-प्रेम की छटा दिखाई गई है।

यह गीत हिंडोले पर गाने का है।

(३)

करूँ कौन जतन अरी ए री सखी
मोरे नयनों से बरसे बादरिया ॥१॥
उठी काली घटा बादल गरजै,
चली ठंडी पवन मेरा जिया लर,
थी पिया मिलन की आस सभी,
परदेस गये मोरे साँवरिया ॥२॥
सब सखियाँ हिंडोले झूल रहीं,
खड़ी भीजूँ पिया तोरे आँगन में,
भर दे रे रँगीले मनमोहन,
मेरी खाली पड़ी है गागरिया ॥३॥

(फर्रुखाबाद)

हे सखी! क्या उपाय करूँ? मेरे नेत्रों से घटा बरस रही है ॥१॥

काली घटा उठी है, बादल गरज रहे हैं, ठंढी हवा चल रही है; मेरा जी काँप रहा है। प्रियतम के मिलने की आशा थी, वे परदेश चले गये ॥२॥

सब सखियाँ हिंडोला झूल रही हैं। हे प्रियतम! मैं तुम्हारे आँगन में खड़ी भीग रही हूँ। हे रँगीले मनमोहन! मेरी गगरी खाली पड़ी है, इसे भर दो ॥३॥

बड़ा भाव-पूर्ण गीत है। यह खेत निराते समय मलार राग में जब गाया जाता है, तब सारी दिशायें मतवाली हुई-सी जान पड़ती हैं।

यह गीत मुझे फर्रुखाबाद से मिला है; पर सूबे भर में गाया जाता है।

(४)

मोरे पिछवरवाँ लिलहिया कै बखरिया,
तनिक पिया चूनरी राँगउता ॥१॥

चुनरी रँगत मोरे छुटाला पसिनवाँ
तनिक धना बेनिया डोलवतू ॥२॥
बेनिया डोलत मोरी मुरकी कलइया,
तनिक धना बायेदा बोलवता ॥३॥
बयदा तो अइलें पलँग चढ़ि बइठे,
से माँगै लागे साठी हो रूपयवा ॥४॥
कहाँ पावों बयदा हो साठी रुपइया,
मेहरिया भइलीं जीव कै जावलवा ॥५॥
जौ तोरे पियवा हो जीव कै जवलवा,
तौ हम चली जाबै हो नईहरवा ॥६॥
जौ तुहूँ जाबू धना अपने नैहरवा,
हमहुँ चला अउबै हो ससुररिया ॥७॥
जौ तुहूँ पीया मोरे जाबा ससुररिया,
हमहुँ होबै ताले कै माछरिया ॥८॥
जौ तुँ धना होबिउ ताले कै मछरिया,
से हम होबै ताले कै बाकुलवा ॥९॥
जौ तुँ होबेउ पिया ताले कै बकुलवा,
से हम होबै बन कै रे चीरइया ॥१०॥
जौ तुँ होबिउ धना बन कै चिरइया,
हमहुँ होबै बन कै रे बाहेलिया ॥११॥
जीतल ए राजा! तुहई लड़इया,
से हम धना हारीं हो साजनवा ॥१२॥

(मिर्जापुर)

मेरे पिछवाड़े रँगरेजका घर है। हे प्यारे पति ! एक चूँदडी रँग देते? ॥१॥

चूंदड़ी रँगने में मेरे पसीना छूटता है। हे प्यारी ! ज़रा बेनिया (बाँस की बनी पंखी) हाँक देती ।।२।।

बेनिया हाँकने से तो मेरी कलाई मुरक गई। वैद्य को बुलाओ ।।३।।

वैद्य आये। पलँग पर चढ़कर बैठे। साठ रुपये माँग रहे हैं ।।४।।

हे वैद्य ! साठ रुपये कहां पाऊँ ? स्त्री जी का जवाल हो गई ।।५।।

हे प्रियतम ! मैं तुम्हारे जी का जवाल हूँ, तो मैं नैहर चली जाऊँगी।।६।।

हे धन ! तुम नैहर चली जाओगी, तो मैं ससुराल चला आऊँगा ।।७।।

हे प्रियतम ! तुम ससुराल चले जाओगे, तो मैं ताल की मछली हो जाऊँगी ।।८।।

हे धन ! तुम ताल की मछली हो जाओगी, तो मैं ताल का बगुला बन जाऊँगा ।।९।।

हे प्रियतम ! तुम ताल के बगुला बन जाओगे, तो मैं बन की चिड़िया होकर उड़ जाऊँगी ।।१०।।

हे धन ! तुम बन की चिड़िया होकर उड़ जाओगी, तो मैं बन का वहेलिया (चिड़िया फँसानेवाला) हो जाऊँगा ।।११।।

हे साजन राजा ! इस लड़ाई में तुम्ही जीते और मैं हारी ।।१२।।

इस गीत में दम्पत्ति का एक दूसरे के प्रति हार्दिक प्रेम दिखाया गया है।

यह गीत हिंडोले पर गाया जाता है। इसका नाम कजली है। इसके गाने का स्वर वर्षा-ऋतु में बहुत ही मधुर लगता है।

(५)

धीरे बहु नदिया तैं धीरे बहु,
मोरा पिया उतरइ दे पार ।।१।।
काहेन की तोरी नइया रे, काहे की करुवारि।
कहाँ तोरा नइया खेवइया रे, के धन उतरइँ पार ।।२।।

धरमें कइ मोरी नइया रे, सत कइ लगी करुवारि।
सैयाँ मोरा नइया खेवइया रे, हम धन उतरब पार ॥३॥

स्त्री कहती है—हे नदी! तू धीरे-धीरे बह। मेरे पति को पार उतरने दे ॥१॥

नदी ने पूछा—तेरी नाव किस चीज़ की है? पतवार किस चीज़ का है? तेरी नाव का खेनेवाला कौन है? और कौन स्त्री पार उतरेगी? ॥२॥

स्त्री उत्तर देती है—मेरी नाव धर्म की है, जिसमें सत का पतवार लगा है। नाव का खेनेवाला मेरा स्वामी है, और मैं स्त्री पार उतरूँगी ॥३॥

यह गीत जिस समय मन्द-मन्द स्वर से, मलार राग में, गाया जाता है, हृदय तरंगित हो उठता है। स्त्री-कवि के रचे हुए इस भावपूर्ण गीत की तुलना हिन्दी के उच्च से उच्च कवि की कविता से की जा सकती है।

(६)

टुटही मड़इया बुनिया टपकइ रे,
के सुधि लेवै हमार ॥१॥
जेठा छवावइँ आपन बँगला रे,
देवरा छवावइँ चउपारि।
हमरा मँदिलवा केन छवइहैं रे,
जेकर पियवा बिदेस ॥२॥

स्त्री कहती है—झोपड़ी टूटी हुई है। बूंद-बूंद टपक रही है। मेरी सुध कौन लेगा? ॥१॥

जेठ अपना बँगला छवा रहे हैं और देवर अपनी चौपाल। हा! मेरा घर कौन छवायेगा? जिसका प्रियतम परदेश में है ॥२॥

(७)

छोटी मोटी दुहनी दुधे कै
बिना रे अगिनि बाफ लेइ। बलैयाँ लेउँ बीरन॥
इहै दूध पियै बीरन मोरा,
बिरना लड़ै मुगलवा के साथ। ,, ॥

बहन कहती है—छोटी-सी दुहनी (जिस बर्तन में दूध दुहा जाता है) है, उसमें ऐसा ताजा दूध भरा है कि आग बिना ही उसमें से भाप निकल रही है। आह! यही दूध मेरा भाई पीता है, जो मुग़लों से लड़ता है।

कैसा मर्मवेधी भाव है। एक समय था, जब हरएक घर में कन्याओं को जबरदस्ती छीन ले जानेवाले मुग़लों से लड़ने के लिये बच्चे तैयार किये जाते थे। खाने-पीने के पदार्थों के साथ साहस और शौर्य की कल्पना कैसी मनोहर है!

(८)

बाबा निबिया क पेड़ जिनि काटेउ,
निबिया चिरैया बसेर— बलैया लेउँ बीरन॥१॥
बाबा बिटियउ जिनि केउ दुख देउ
बिटिया चिरैया की नाइँ ,, ॥२॥
सब रे चिरैया उड़ि जइहैं, ,,
रहि जइहै निबिया अकेलि— ॥३॥
सब रे बिटियवा जइहैं सासुर,
रहि जइहै माई अकेलि ,, ॥४॥

कन्या ससुराल जा रही है। घर के सामने नीम का पेड़ है, जो शायद उसी का लगाया होगा।

वह कहती है—हे बाबा! नीम का यह पेड़ मत काटना। इस पर चिड़ियाँ बसेरा लेती हैं॥१॥

हे बाबा ! बेटियों को भी कोई कष्ट न देना। बेटी और पंछी की दशा एक-सी है ॥२॥

सब चिड़ियाँ उड़ जायँगी, नीम अकेली रह जायगी ॥३॥

सब बेटियाँ अपनी-अपनी ससुराल चली जायँगी, माँ अकेली रह जायगी ॥४॥

नीम के साथ माँ की और पक्षियों के साथ कन्याओं की तुलना करके उदासीनता का जो चित्र इस गीत मे अंकित है, कविता की दृष्टि से वह साधारण कोटि का नहीं है। हिन्दी-कविता में चिड़ियों के बसेरे की याद संसार की क्षणभंगुरता दिखाने में की जाती है। पर इस गीत में वह बिल्कुल एक नये रूप में है।

(९)

ठाढ़ी झरोखवा मैं चितवउँ,
नैहरे से केउ नाहीं आइ ॥१॥
ओहिरे मयरिया कैसन बपई रे
जिन मोरी सुधियौ न लीन ॥२॥
ओहिरे बहिनिया कैसन बीरन,
ससुरे में सावन होइ ॥३॥
अगिले के घोड़वा बबैया मोरा,
पिछवाँ के बिरना हमार ॥४॥
भला रे मयरिया भल बपई रे,
अब मोरी सुधिया जे लीन ॥५॥
कँवरी ले आवइँ बबैया मोरा,
जेकरि बिटिया दुलारि ॥६॥
चुनरी ले आवइँ बिरन मोरा,
जेकरि बहिनी दुलारि ॥७॥

कन्या कहती है—झरोखे के पास खड़ी मैं देख रही हूँ। नैहर से कोई नहीं आया ॥१॥

हाय! वे माँ-बाप कैसे हैं? जिन्होंने मेरी सुध तक न ली ॥२॥

अरे! उस बहन का वह भाई कैसा? जिसका सावन ससुराल में बीतेगा ॥३॥

कन्या देख रही है—आगे के घोड़े पर मेरे पिता है, और पीछे के घोड़े पर मेरा भाई ॥४॥

आह! मेरे माँ-बाप कैसे भले है, जिन्होंने मेरी सुध ली है ॥५॥

मेरे पिता काँवर लाये हैं, जो अपनी कन्या को बहुत चाहते है ॥६॥

मेरा भाई चूँनरी लाया है, जिसको अपनी बहन बहुत प्यारी है ॥७॥

उत्तर प्रदेश मे यह चाल है कि श्रावण में विवाहिता कन्यायें अपने पिता के घर बुलाई जाती है। श्रावण प्रारंभ होते ही कन्यायें अपने घर की राह देखने लगती है। इस गीत में उसी समय का वर्णन है।

(१०)

दूरिहिँ देस जनि फरेहु करेरुवा,
के तोहें तोरन जाइ—करेरुवा ॥१॥
दूरिहिँ देस जनि बरेहु बिटियवा,
के तोहें आनन जाइ—बहिनिया ॥२॥
हमका तो अनिहें भैया पियारे भैया,
जेकरि बहिनि दुलारी—हिँडोलवा ॥३॥

हे करेरुवा! बहुत दूरी पर मत फलना। कौन तुम्हें तोड़ने जायगा? ॥१॥

कन्या का विवाह दूर देश में नहीं करना। कौन लाने जायगा? ॥२॥

बहन कहती है—मुझे तो मेरे अमुक भाई लाने जायँगें, जिन्हें अपनी बहन बहुत प्यारी है ॥३॥

करेरुवा एक फल होता है, जो कही-कही दसहरे के दिन खाया जाता है। इसका खाना पुण्य समझा जाता है।

(११)

गलिया क गलिया फिरइ मनिहरवा,
के लइहैं मोतिया क हार—हिँडोलवा ॥१॥
मोतिया क हार लइहैं भैया हो....भैया,
जेकर बहिनी दुलारी—हिँडोलवा ॥२॥
पाछे लागी ठुनकइँ बहिनी....रानी,
एक लर हमहूँ क देहु—मोर बिरना ॥३॥
एक लर टुटि हैं सहस मोती गिरि हैं,
कुलि लर बहिनि तुँ लेउ—हिँडोलवा ॥४॥

गली-गली में मणिहार फिर रहा है—मोतियों का हार कौन लेगा ? ॥१॥

मोती का हार तो मेरे अमुक भाई लेंगे, जिन्हे अपनी बहन से बड़ा स्नेह है ॥२॥

भाई के पीछे-पीछे अमुक देवी ठुनुक रही है—हे भैया ! एक लड़ मुझे भी खरीद दो ॥३॥

भाई ने कहा—एक लड़ तोड़ने मे हज़ारों मोती गिर जायँगे। लो, तुम पूरी की पूरी माला ही ले लो ॥४॥

बहनें सदा हाथ फैलाये रहती है कि भाइयों से कुछ मिले। यह गीत भी किसी बहन का बनाया है जो भाई को उत्साहित करती है कि थोड़ा माँगने पर भी अधिक देना।

(१२)

प्रेम पिरित रस बिरवा रे, तुम पिया चलेउ लगाइ।
सींचन कइ सुधिया राखेउ, देखेउ मुरझि न जाइ ॥१॥

किन रे लगावा नौरँगिया रे, के धौं नेबुआ अनार।
किन रे लगावा रस बिरवा रे, देखेउ मुरझि न जाइ ॥२॥
जेठवा लगावा नवरँगिया रे, देवरा नेबुआ अनार।
उन पिया बोये रस बिरवा रे, देखेउ मुरझि न जाइ ॥३॥
प्रेम पिरित रस बिरवारे॥

हे प्रियतम! तुम प्रेम और प्रीतिरस का पौधा लगा चले हो। सींचने की सुध करना। देखना, कहीं वह मुरझा न जाय ॥१॥

किसने नारंगी लगाई है? किसने नीबू और अनार? ये रसके पौधे किसने लगाये हैं? देखना, कहीं मुरझा न जायँ ॥२॥

जेठ ने नारंगी लगाई है। देवर ने नीबू और अनार। मेरे प्रियतम ने रस का पौधा लगाया है। देखना, कहीं मुरझा न जाय ॥३॥

यह गीत प्रेमरस से ओत-प्रोत है। सावन में झूला झूलते समय जब कोई विरहिणी यह गीत मधुर कंठ से गाती है, तब सुननेवालों का हृदय सिहर उठता है।

सुप्रसिद्ध कवि रहीम के एक नौकर की नवविवाहिता वधू ने उसके पास एक बरवा लिख भेजा था—

प्रेम प्रीति कौ बिरवा, चलेहु लगाइ।
सींचन की सुधि लीजौ, मुरझि न जाइ॥

इसमें जो बिरवा शब्द आ गया है, उसी से बरवै छंद का नाम पड़ा है, ऐसी कहावत है। इस बरवै और ऊपर के गीत का भाव एक ही है।

(१३)

मेहँदी चुनन गइलिउँ बगिया रे,
लहुरे देवरवा के साथ। मेहँदी० ॥१॥
चुनि चुनि भरलेउँ डलरिया रे,
धइलिउँ मैं सिलिया के माथ। ,, ,, ॥२॥

रगि रगि पिसिलिउँ मेहँदिया रे,
उठायउँ रेंड़वा के पात। ,, ,, ॥३॥
देवरा के दिहेउँ कानी अँगुरी रे,
अपुना क भरि भरि हाथ। ,, ,, ॥४॥

मैं छोटे देवर के साथ मेंहदी चुनने बाग मे गई थी ॥१॥

मेंहदी के पत्ते तोड़-तोड़कर मैंने अपनी डलिया भर ली और सिल के मत्थे पर उसे रखकर खूब घिस-घिसकर पीसा ॥२॥

फिर उसे रेंड़ के पत्ते पर उठा लिया। ॥३॥

देवर की केवल कनिष्ठिका उँगली मे और अपने हाथ भरकर मैंने मेंहदी लगाई ॥४॥

सावन भादों मे उत्तर भारत मे हाथ-पैर मे मेंहदी लगाने का रिवाज है। नववधुएँ और कन्यायें इस काम में खास भाग लेती हैं। हाथ-पैर रँगने की चाल इस देश में बहुत पुरानी है। संस्कृत और हिन्दी के काव्यों में महावर का वर्णन बहुत आता है। मेंहदी से हाथ-पैर तो लाल हो ही जाते है, साथ ही एक लाभ यह भी होता है कि बरसात में पैर की उँगलियाँ अधिक पानी या कीचड़ के संयोग मे सड़तीं नही।

(१४)

सुनो सखी सइयाँ जुगिया भये, हमहूँ जोगिनि हुय जायँ ॥१॥
जुगिया बजावे बीना बाँसुरी, जोगिनि गावे मल्हार ॥२॥
जुगिया के लाले लाले कपड़े, जोगिनि के लम्बे लम्बे केस ॥३॥
साँप ने छोड़ी आपन कींचुली, जमुना छोड़ी है कछार ॥४॥
सइँयाँ ने छोड़े आले जोवना, जे दुख सहे न जायँ ॥५॥
सइयाँ हमारे परदेसवाँ, किस पै करिहौं सिंगार ॥६॥

हे सखी! सुनो। स्वामी तो जोगी हो गये। मैं भी जोगिनी हो जाऊँगी ॥१॥

जोगी बीन और बाँसुरी बजा रहा है। जोगिनी मलार गा रही है ॥२॥

जोगी के लाल-लाल कपड़े हैं और जोगिन के लम्बे-लम्बे केश हैं॥३॥

साँप ने केंचुल छोड़ दी है और जमना नदी ने अपना कछार छोड़ दिया है ॥४॥

स्वामी ने उठते हुये यौवन वाली स्त्री छोड़ दी है। यह दुःख सहा नही जाता ॥५॥

मेरे स्वामी परदेश में हैं। मैं किसके लिये शृङ्गार करूँ? ॥६॥

(१५)

सावन माँ कुस कास जामे भादौं दुबिया हरेरि रे।
माया निठूरिन नींद कैसे आवे बीरन को न पठाइया रे॥१॥
बीरन आये कुछऊ न लाये सासु ननँद घर रूठि रे।
जेठानिन बैरिन बोल बोलै बीरन चले घर आपने॥२॥
उँचवा चढ़ि चढ़ि माया निहारैं मोरी धिया धौं केती दूरि रे।
रूठे पुतवा भूखे हैं घोड़वा छूँछे हैं चारिउ कहार रे॥३॥
आवउ न पूता मोरे बइठौ अँगनमाँ कहउ बहिनि कै हाल रे।
का कही अपनी मायन आगे कहत सूनत दुखु लाग रे॥४॥
पूत हो तुम भयउ कपूते रोवत बहिनि आये छाँड़ि रे।
जौ मोरी धेरिया के दादुलि होते हँसत खेलत लइ अवतें रे॥५॥

ससुराल में बहन चिंता करती है—

सावन में कुश-कास जम आये। भादौं में दूब हरी-हरी हो आई। निर्दयी माँ को नीद कैसे आती है? जो उसने भाई को नही भेजा ॥१॥

भाई आये तो, पर लाये कुछ नहीं। सास और ननद घर में रूठ

गई। बैरिन जेठानी व्यंग बोली। जिससे मेरा भाई नाराज़ होकर घर लौट गया ॥२॥

ऊँचे स्थान पर खड़ीहोहोकर माँ देखती है—मेरी बेटीअब कितनीदूर पर है? पर पुत्र तो रूठा है, घोड़ा भूखा है, चारों कहार खाली हैं ॥३॥

बेटा! आओ आँगन में बैठो और अपनी बहन का हाल बताओ न? बेटा कहता है—माँ! अपनी माँ के आगे क्या कहूँ? बहन का हाल कहते-सुनते दुःख लगता है ॥४॥

माँ कहती है—ऐ पुत्र! तुम कपूत हो, जो रोती हुई बहन को छोड़ आये। जो मेरी बेटी के पिता होते, तो उसे हँसते-खेलते घर लाते ॥५॥

भाई बहन को बिदा कराने गया था। पर जैसा दस्तूर है, वह बहन के ससुराल वालों के लिये मिठाई आदि कुछ ले नहीं गया था। इससे बहन की सास-ननद और जेठानी मुँह फुला बैठी और उसके भाई को उल्टी-सीधी सुनाने लगी। नौजवान भाई जोश मे आकर बहन को लिये बिना ही वापस गया। माँ बेटी की प्रतीक्षा कर रही थी। जब डोली खाली देखी, तब उसका हृदय उमड़ आया। उसे अपने पति की याद आई, जिसका देहान्त हो चुका था—हाय! वे होते तो कन्या को अवश्य लाते।

कैसी मर्म-भेदिनी स्मृति है!

(१६)

करूँ कौन जतन अरी ए री सखी मोरे नयनों से बरसेबादरिया।१।
उठी काली घटा बादल गरजै चली ठंडी पवन मेरा जिया लरजे।२।
थी पिया मिलन की आस सबी परदेस गये मोरे साँवरिया ॥३॥
सब सखियाँ हिँडोले झूल रहीं खड़ी भीजूँ पिया तोरे आँगन में ॥४।
भर दे रे रँगीले मन मोहन मेरी खाली पड़ी हैं गागरियाँ ॥५॥

हे सखी! मै क्या उपाय करूँ? मेरी आँखों से घटा बरस रही है ॥१॥

काली घटा उठ रही है। बादल गरज रहे हैं। ठंडी हवा चल रही है। मेरा हृदय काँप रहा है ॥२॥

प्यारे से मिलने की आशा थी। पर हाय! वे तो परदेश गये ॥३॥

सब सखियाँ हिंडोले झूल रही हैं। मैं हे प्रियतम! तुम्हारे आँगन में खड़ी भीग रही हूँ ॥४॥

हे रंगीले मनमोहन! मेरे घड़े खाली पड़े हैं। इन्हें भर दे ॥५॥

(१७)

गढ़ पर परेला र हिंडोलवा सब सखि झूलन जायँ।
हम धन ठाढ़ी रे जगत पर ॥१॥
बाट बटोहिया तुहूँ मोरा भैया पियवा से कहित बुझाय।
गढ़ पर परेला रे हिंडोलवा० ॥२॥
बाट बटोहिया तुहूँ मोरा भैया धनियाँ से कहिए बुझाय।
सखि सँग झूलि हैं हिंडोलवा जोबना के रखिहैं छिपाय।
हमहुँ अएब छव मास ॥३॥

किले पर हिंडोला पड़ा है। सब सखियाँ झूलने जा रही हैं। मैं जगत पर खड़ी हूँ ॥१॥

हे राह चलनेवाले भाई! मेरे प्राणनाथ को समझाकर कहना—किले पर हिंडोला पड़ गया है ॥२॥

पति ने कहा—हे राह चलनेवाले भाई! मेरी प्यारी स्त्री से कह देना—सखियों के साथ हिंडोला झूलना। लेकिन यौवन को छिपाकर रखना। मैं छः महीने मे आऊँगा ॥३॥

(१८)

घेरि घेरि आवै पिया कारी बदरिया,
दैवा बरसै हो बड़े बड़े बूँद। बदरिया बैरिन हो ॥१॥
सब लोग भीजैं घर अपने,
मोरा पिया हो भीजैं परदेस। बदरिया बैरिन हो ॥२॥
दुलहिन हो रानी हो चीठी लिखि भेजैं,
घर आओ हो ननदजी के भाय। बदरिया बैरिन हो ॥३॥

हे प्रियतम! काली घटा घेर-घेर आती है। बादल बड़े-बड़े बूँद बरसते हैं। घटा मेरी बैरिन है ॥१॥

सब लोग अपने घर में भीगते हैं। मेरे प्राणेश्वर परदेश में भीग रहे हैं ॥२॥

दुलहिन रानी ने चिट्ठी लिखकर भेजा है—हे ननदजी के भाई! घर आओ ॥३॥

(१९)

आसौं के सवनवाँ सैयाँ घरे रहो,
घरे रहो ननद के बीर। आसौं के० ॥ १ ॥
सावन गरजै चमाकै हो,
छतियाँ दरद उठै मोर।
ऐसे उमँग रितु बरखा में,
निरमोही दरदौ न बूझ। आसौं के० ॥ २ ॥

हे प्रियतम! हे मेरी प्यारी ननद के भाई! इस बार के सावन में तुम घर ही रहो ॥१॥

सावन गरज रहा है। चमक रहा है। कैसी उमंग वाली ऋतु है! हाय! निर्मोही पति मेरी पीड़ा को नहीं समझता ॥२॥

(२०)

माई तलवा कुहकइ मोर।
माई जेठरा भइअवा जिनि पठये सावन नीअर।
माई सार बहनोइया एकै होइहैं सावन नीअर ॥ १ ॥
माई बभना क पुत जिनि पठये सावन नीअर।
माई पोथिया बाँचन लगि हैं सावन नीअर ॥ २ ॥
माई लहुरा भइयवा पठये सावन नीअर।
माई रोइ गाइ बिदवा करइहैं सावन नीअर ॥ ३ ॥

हे माँ ! ताल में मोर कुहक रहा है। सावन निकट है। हे माँ ! जेठे भाई को मत भेजना। साले-बहनोई दोनों एक हो जायँगे ।।१।।

हे माँ ! ब्राह्मण के बेटे को भी मत भेजना। वह यहाँ कथा बाँचने लगेगा ।।२।।

हे माँ ! छोटे भाई को भेजना। वह रो-गाकर बिदा करा ही लेगा ।।३।।

(२१)

सावन घन गरजै।
कीधर की घटा ओनई, कीधर बरिसै गँभीर।
हमरा ललन परदेसिया, भीजत होइहैं कवने देस ।।
सावन घन गरजै ।। १ ।।
जेहि घर हिंगिया न महँकै, जिरवा क कवन धोंगार।
जेहि घर सासु दरुनियाँ, बहुवा क कवन सिंगार ।।
सावन घन गरजै ।। २ ।।
खस कै बँगला छवौतिउँ, चौमुख रखतिउँ दुवार।
हरि लैकै सोउतिउँ अँटरिया, झोंकवन आवति बयार ।।
सावन घन गरजै ।। ३ ।।
अतलस लहँगा पहिरतिउँ, चुनरी बरनि न जाय।
झमकि कै चढ़तिउँ अटरिया, चौमुख दियना बराय ।। ४ ।।

सावन का बादल गरज रहा है। एक तरफ घटा छा रही है। एक तरफ़ गहरी बरसात हो रही है। हाय ! मेरे प्यारे परदेशी किसी देश मे भीगते होंगे ।।१।।

जिस घर में हींग न हो, उस घर में जीरे की छौंक से क्या होगा ? जिस घर में कर्कशा सास है, उस घर में बहू क्या शृङ्गार करे ? ।।२।।

हा ! मेरे प्रियतम घर होते तो मैं खस का बँगला छवाती, जिसमें

चारोंओर द्वार रखती, हवा के लहरे आते रहते और मैं अपने प्राणनाथ के साथ अटारी पर सोती ॥३॥

अतलस का लहँगा पहनती। चूनरी ऐसी पहनती, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। चारोंओर दीपक जलाकर मैं झमककर अटा पर चढ़ती ॥४॥

(२२)

बूँदन भीजै मोरी सारी,
मैं कैसे आऊँ बालमा ॥ १ ॥
एक तौ मेंह झमाझम बरसै,
दूजे पवन झकोर ॥ २ ॥
आऊँ तो भीजै मोरी सुरँग चुनरिया,
नाहिंत छुटत सनेह ॥ ३ ॥
नाहीं डर बहुअरि भीजै क चुनरिया,
डर बहुअरि छुटै क सनेह ॥ ४ ॥
सनेह से चुनरी होइहैं बहुअरि,
चुनरी से नाहिन सनेह ॥ ५ ॥

हे प्यारे! मैं कैसे आऊँ? मेरी साड़ी बूँदों से भीग जायगी ॥१॥

एक तो झमाझम मेह बरस रहा है। दूसरे जोर से हवा चल-रही है ॥२॥

मैं आती हूँ, तो मेरी रंगदार चूनरी भीगती है। नहीं आती हूँ, तो स्नेह छूटता है ॥३॥

हे बहू! चूनरी भीगने का डर नहीं, स्नेह छूटने का डर है ॥४॥

हे बहू! स्नेह से तो बहुत-सी चूनरी होंगी; पर चूनरी से स्नेह नहीं होगा ॥५॥

(२३)

बिरना कासे कुसे कै पटवा अँग छिलीया छीली जाय।
बलैया लेउँ बीरन ॥ १ ॥
बिरना पैंयाँ तोरे लागों बिरन भैया पटवाकै झलुवा डरावो।
बलैया लेउँ बीरन ॥ २ ॥
एसों कै पटवा महँग भये वहिनी अगवाँ डरैबै पँचडोर।
बलैया लेउँ बीरन ॥ ३ ॥
हमतउ जाबै सजन घर भैया झुलिहैं धनियाँ तुहार।
बलैया लेउँ बीरन ॥ ४ ॥
धनिया भेजबै नैहर क बहिनी तुहुँका अनन हम जाब।
बलैया लेउँ बीरन ॥ ५ ॥

हे भैया ! कास-कुस की रस्सी हिंडोले में लगी है, जिससे अंग छिल जाया करता है ॥१॥

हे भैया ! मैं तुम्हारा पैर छूती हूँ, रेशम का झूला डलवा दो ॥२॥

हे बहन ! इस साल तो रेशम बड़ा महँगा है। अगले साल पाँच डोरी का झूला डलवा दूँगा ॥३॥

हे भैया ! अगले साल तो मैं अपने साजन के घर चली जाऊँगी। तब तुम्हारी स्त्री झूलेगी ॥४॥

हे बहन ! मैं अपनी स्त्री को नैहर भेज दूँगा और तुमको विदा कराने आऊँगा ॥५॥

(२४)

मोरी धानी चुनरिआ इतर गमके।
धना बारी उमिरिया नैहर तरसै ॥ १ ॥
सोने के थारा मैं जेवना परोसेवँ,
मोरा जेवनवाला बिदेस तरसै ॥ २ ॥

झँझरे गंडुववा गंगा जल पानी,
मोरा घूँटनवाला बिदेस तरसै ॥ ३ ॥
लवँगा इलयची के बीड़ा जोड़ाएवँ,
मेरा कूँचनवाला बिदेस तरसै ॥ ४ ॥
कलिआ चुनि चुनि सेजा लगाएवँ,
मेरा सूतनवाला बिदेस तरसै ॥ ५ ॥

धानी रंग की मेरी चादर में इत्र महँक रहा है। स्त्री की उम्र अभी नई है, पर वह नैहर में तरस रही है ॥१॥

सोने के थाल में भोजन परोसती हूँ, पर जीमनेवाला विदेश में तरस रहा है ॥२॥

सुराही में गंगाजल रखती हूँ, पर पीनेवाला परदेश में है ॥३॥

लौंग और इलायची डालकर पान का बीड़ा बनाती हूँ, पर खानेवाला परदेश में है ॥४॥

कली चुन-चुनकर फूलों की सेज बिछाती हूँ, पर मेरा सोनेवाला परदेश में है ॥५॥

(२५)

अरे सावन मेंहदी बोवायउँ रे, अरे भादौं माँ दुइ दुइ पात।
सैंया मोरा छाये रे बिदेसवा रे, सींचौं मैं नयन निचोर॥

मैंने सावन में मेंहदी बोआई। भादौं में उसमें दो-दो पत्ते निकल आये। मेरे प्रियतम परदेश में छाये हैं। मैं आँखें निचोड़-निचोड़ कर सींच रही हूँ।

(२६)

ससुरे में सावन होय, कौने निरमोहिया कि घेरिया ॥ १ ॥
कौने बरन तोरी मैया, कौने बरन तोरे बाप।
कौने बरन तोरे भैया, जिन सुधि न लीन्ही तुम्हार ॥ २ ॥

कँकड़ यसि मोरी मैया, पथरा यस मोर बाप।
लोहे बजर यस भैया, जिन सुधि लीन्हीं न हमारि॥ ३॥
आइ गये डोलिया कहरवा, आइ गये बीरन हमार॥ ४॥
गँगा यसि मोरी मैया, जमुना यस मोर बाप।
चान्द सुरुज यस भैया, जिन सुधि लई है हमारि॥ ५॥

हा! यह किस निर्मोही की कन्या है? जिसका सावन ससुराल में बीत रहा है ॥१॥

भला, तेरी माँ कैसी है? तेरा बाप कैसा है? और तेरा भाई कैसा है? जिन्होंने तेरी सुध भी न ली ॥२॥

मेरी माँ कंकड़ जैसी है। मेरा बाप पत्थर जैसा है। मेरा भाई लोहा और वज्र ऐसा है। किसी ने मेरी सुध नहीं ली ॥३॥

अहा! डोलीं और कहार आ गये। मेरा भाई भी आ गया ॥४॥

मेरी माँ गंगा-जैसी है। मेरा बाप जमना-जैसा है। मेरा भाई चाँद-सूर्य-जैसा है। जिन्होंने मेरी सुध ली है ॥५॥

(२७)

उतरत असाढ़ सुनौ री सखी लागे हैं सावन मास।
मगरे पै कागा बोलन लागे॥ १॥
कागा न हो मोरे कागा मैया ढिग कहेउ सनेस।
ससुरे सावन बेटी ना करै॥ २॥
हुँअना से उड़े हैं कागा महलन पहुँचे जाय।
निकरौ न मैया मोरी बाहिरी बेटी के वचन सुनि लेउ।
ससुरे सावन बेटी ना रहै॥ ३॥
बबली तो जोगिया हो गये, काकुल है निरमोही।
भैया तुम्हारे बेटी चकरी गये परुको में लैहौं बुलाय।
यसौं के सावन बेटी उहीं रहो॥ ४॥

हे सखी ! सुनो। आषाढ़ उतरते ही सावन का महीना लगा। मुड़ेर पर कागा बोलने लगा ॥१॥

हे मेरे प्यारे काग ! मेरी माँ से यह संदेशा कहना कि सावन में तुम्हारी बेटी ससुराल में न रहने पावे ॥२॥

काग वहाँ से उड़कर महल में पहुँचा। उसने कहा—हे माँ ! बाहर आओ न ? अपनी बेटी का संदेशा सुन लो। बेटी सावन में ससुराल में न रहेगी ॥३॥

माँ ने कहा—उसके बाबा तो साधू हो गये। काका निर्मोही हैं। भाई नौकरी पर गया है। अगले साल मे बुला लूंगी। बेटी ! इस साल वहीं रहो ॥४॥

(२८)

ताल किनारे महल मोर सुन्दर,
तेहि बिच पुरइनि हाले रे ॥ १ ॥
तेहि चढ़ि जोहौं नैहरवा की बटिया,
मोरा नैहरवा नियरे की दूरि रे ॥ २ ॥
आवत देखेउँ सासु दुइ असवरवा,
एक रे साँवर एक गोर हो ॥ ३ ॥
हमरे तो आये सासु भैया रे पहुनुवाँ,
का रे भोजन कैहाँ देउँ रे ॥ ४ ॥
भोजना देउ बहू अकड़ी कोदैया,
औ मुनमुनिया कै दाल रे ॥ ५ ॥
बजर परै सासु अकड़ी कोदैया,
औ मुनमुनिया कै दाल रे ॥ ६ ॥
देहुरी निकारि सासु मेहिया के चउरा,
औ राज मुंगिया कै दाल रे ॥ ७ ॥

हमरे तो आये सासु भैया पहुनवाँ,
का रे घुंटन कैहाँ देउँ रे॥ ८॥
घुंटने क देउ बहुआ फुटही मेलियवा,
औरौ गड़हिया कै पानी रे॥ ९॥
अगिया लगाओं सासु फुटही मेलियवा,
बजर परे गड़ही क पानि रे॥ १०॥
घुंटने का देबै सासु भँभरा गेंडुववा,
औरौ गंगाजल पानी रे॥११॥
हमरे तो आये सासु भैया रे पहुनवाँ,
का रे कूंचन कैहाँ देउँ रे॥१२॥
कुँचने क देउ बहुवा पिपरे की पतिया,
औरौ चिरैया क लेंड़ रे॥१३॥
अगिया लगावों सासु पिपरे की पतिया,
बजर परै चिरई क लेंड़ रे॥१४॥
कूंचै को देबै सासु मघई के पनवा,
औरौ लवाँग इलायची॥१५॥
हमरे तो आये सासु भैया रे पहुनवाँ,
कारे सोवन कैहाँ देउँ रे॥ १६॥
सोवने को देउ बहुआ टुटली झिलँगवा,
औ चुवनी चौपारि रे॥१७॥
अगिया लगाओं सासु टुटहे झिलँगवा,
बजर परे चुवनी चौपारि रे॥१८॥
सूतने को देबै सासु रतली पलँगिया,
औ चनना छिरकि चौपारि रे॥१९॥

बैठो न ए भैया रतली पलँगिया,
कहो नैहरवा कै हाल रे ॥२०॥
तोहरे नैहर बहिनी छेम कुसलिया,
तोहरे कुसल कैहाँ आयों रे ॥२१॥
सासु तो ये भैया बुढ़िया डोकरिया,
आजु मरै की काल्हि रे ॥२२॥
ननदी तो ए भैया बन की कोइलिया,
आज उड़ै की तो काल्हि रे ॥२३॥
जेठानी तो ए भैया कारी बदरिया,
छिन बरसै छिन घाम रे ॥२४॥
देवरानी तो ए भैया कोने कै बिलरिया,
छिन निकरै छिन पैठै रे ॥२५॥
मूड़ देखो ए भैया मूड़ देखो भैया,
जैसे कुकुरिया कै पूंछि रे ॥२६॥
पीठि देखो भैया तो पीठि देखो भैया,
जैसे है धोबिया क पाट रे ॥२७॥
कपड़ा देखो भैया कपड़ा देखो भैया,
जैसे सवनवा कै बादरी रे ॥२८॥
नौ मन कुटना रे नौ मन पिसना,
नौ मन सेंकौं रोसोइं रे ॥२९॥
पिछली टिकरिया भैया हमरा भोजनवाँ,
ओहूमाँ कुकरू बिलारि रे ॥३०॥
ई दुख मति कहो बाबा के अँगवा,
सभवा बैठ मुरझाइँ रे ॥३१॥

ई दुख मति कहो माई के अगवाँ,
छतिया फारि मरि जाइ रे ॥३२॥
ई दुख जनि कहेउ भौजी के अगवाँ,
ओवरी बैठि ठट्टा मारै रे ॥३३॥
ई दुख बाँधेउ भैया गरुई गठरिया,
भैया जहवाँ खोलेउ तहाँ रोएउ रे ॥३४॥

ताल के किनारे मेरा सुन्दर महल है। तालाब में कमल के पत्ते लहराते रहते हैं ॥१॥

उस महल पर चढ़कर मैं अपने नैहर की राह देखा करती हूँ। मेरा नैहर निकट है ? या दूर ? ॥२॥

हे सास ! मैं दो सवारों को आता देखती हूँ। एक साँवला है, दूसरा गोरा ॥३॥

हे सास ! मेरा भाई पाहुना आया है। क्या भोजन दूँ ? ॥४॥

हे बहू ! खराब कोदौ का भात और घटिया अरहर की दाल बना दो ॥५॥

हे सास ! कोदौ और अरहर पर बज्र गिरे ॥६॥

हे सास ! बारीक चावल और मूँग की दाल निकाल दो। वही मैं खाने को दूँगी ॥७॥

हे सास ! मेरा भाई पाहुना आया है। पीने को क्या दूँ ? ॥८॥

हे बहू ! फूटी हुई हँड़िया में गड़ही का पानी पीने को दे दो ॥९॥

हे सास ! फूटी हुई हँड़िया और गड़ही के पानी में आग लगे ॥१०॥

मैं सुराही में गंगाजल लेकर पीने को दूँगी ॥११॥

हे सास ! मेरा भाई मेहमान आया है। उसे कूँचने को क्या दूँ ? ॥१२॥

हे बहू ! पीपल के पत्ते में चिड़ियों की बीट रखकर दे दो ॥१३॥

हे सास ! पीपल के पत्ते और चिड़ियों की बीट में आग लगाती हूँ ॥१४॥

मैं मघई पान और लौंग-इलायची का बीड़ा कूँचने को दूँगी ॥१५॥

हे सास ! मैं अपने पाहुने भाई को सोने के लिये क्या दूँ ? ॥१६॥

हे बहू ! टूटा हुआ झिलँगा (खाट) और टपकनेवाली चौपाल दे दो ॥१८॥

हे सास ! टूटे झिलँगे में आग लगे और चूनेवाली चौपाल पर बज्र गिरे ॥१८॥

मैं भाई को सोने के लिय लाल पलँग और चन्दन का छिड़काव की हुई चौपाल दूँगी ॥१९॥

हे भाई ! इस साल पलँग पर बैठो और नैहर का हाल कहो ॥२०॥

हे बहन ! तुम्हारे नैहर में सब कुशल-मंगल है। तुम्हारा ही हाल-चाल लेने आया हूँ ॥२१॥

हे भाई ! सास तो बुढ़िया है, डोकरी है। आज मरे या कल ॥२२॥

ननद बन की कोयल है। आज उड़ जाय या कल ॥२३॥

जेठानी काली घटा है। क्षण भर में बरसने लगती है, क्षण भर में धूप निकल आती है ॥२४॥

देवरानी कोने की बिल्ली है। कभी बाहर निकल आती है, कभी वहीं बैठी रहती है ॥२५॥

हे भाई ! मेरा सिर देखो, जैसे कुत्ती की पूँछ है ॥२६॥

मेरी पीठ देखो, जैसे धोबी का पाटा है ॥२७॥

मेरा कपड़ा देखो, जैसे सावन की घटा है ॥२८॥

नौ मन कूटती हूँ, नौ मन पीसती हूँ, नौ मन की रसोई करती हूँ ॥२९॥

सब के खा चुकने के बाद जो टिकरी बची रह जाती है, वही मेरा आहार है। उसमें भी कुत्ते-बिल्ली को टुकड़े देने पड़ते हैं ॥३०॥

हे भाई ! यह दुःख मेरे बाबा के सम्मुख न कहना। वे सभा में बैठे हुये मूर्च्छित हो जायँगे ॥३१॥

हे भाई ! माँ के आगे भी यह दुःख मत कहना। वह छाती फाड़-कर मर जायगी ॥३२॥

हे भाई! यह दुःख मेरी भौजी के आगे भी न कहना। वह कोठरी में बैठकर ठट्ठा मारेंगी ॥३३॥

हे भाई! यह दुःख अपनी भारी गठरी में बाँधे रखना, और जहाँ खोलना, वहाँ रो देना ॥३४॥

इसी प्रकार का एक गीत निरवाही के गीतों में पहले दिया जा चुका है। इस गीत में उससे कई बातें अधिक हैं। एक तो यह कि वह बेचारी मार भी खाती है। मार खाते-खाते उसके सिर पर कुत्ती की पूँछ की तरह चमड़ी उपट आई है। उसकी पीठ धोबी के पाटे की तरह काली हो गई है। कपड़ा सावन की घटा की तरह मैला हो गया है। अंत में बहन कहती है—हे भाई! यह दुःख अपनी गठरी में बाँधे रखना, और जहाँ खोलना, वहाँ रो देना, यह कितना मर्म-वेधी वाक्य है! सास, ननद, जेठानी और देवरानी का वर्णन भी बहू ने बहुत रोचक किया है।

(२९)

ताल में कुहकै तलही चिरैया सुन सावन,
सावन बहिन ससुरार। सवनवाँ भादौं नेरे ॥ १ ॥
देहु न हो माई जरिहुल सतुअवा सुनु सावन,
सावन बहिन आनन हम जाइब। सवनवाँ० ॥ २ ॥
आँगन बहोरत चेरिया लउँड़िया,
आवत बहू जी के बीर। सवनवाँ० ॥ ३ ॥
झूठी तू चेरिया झूठी लउँड़िया,
झूठा सहर सब लोग। सवनवाँ० ॥ ४ ॥
खिरकी से बहिनी जे चितवैं,
बीरन बेइलि नीचे ठाढ़। सवनवाँ० ॥ ५ ॥
देहु न सासु मोरी अपनी चदरिया,
बीरन मिलन हम जाइत। सवनवाँ० ॥ ६ ॥

हमरा चदरिया बहू बसा है पेटारा,
का देउँ भैया भेंटन का। सवनवाँ० ॥ ७ ॥
देहु जेठनिया अपनी चुनरिया,
बीरन मिलन हम जावैं। सवनवाँ० ॥ ८ ॥
हमरा चुनरी दुलहिनि धोबी के घाट,
बहुअरि का देउँ बीरन मिलन का। सवनवाँ० ॥ ९ ॥
मचिया बैठल सासु बढ़इतिन,
बीरन भोजन कछु देव। सवनवाँ० ॥१०॥
कोठिया राखल सरली कोदैया,
खेतवा मसवरे कै साग। सवनवाँ० ॥११॥
अगिया लगावों सास सरली कोदैया,
बजर परै तोरे साग। सवनवाँ० ॥१२॥
मुँगिया दरि दरि दलिया रिन्हैबै,
रुचि रुचि भिनवा कै भात। सवनवाँ० ॥१३॥
पनवा मोरि मोरि सगवा बनइबों,
लौंगन की धौंगार। सवनवाँ० ॥१४॥
जेंवन बैठे सार बहनोइया,
जेंवत चलावैंलै बात,
बहिनि बिदा कै देव। सवनवाँ० ॥१५॥
कस कै बिदा करउँ भैया हो,
गंगा जमुना बहहिं अथाह। सवनवाँ० ॥१६॥
सींक चीरि चीरि नाउ बनैबै,
हम बीरन उतरब पार। सवनवाँ० ॥१७॥
देहु सासु तुहूँ अपनी असिसिया,
भैया बहिन उतरी पार। सवनवाँ० ॥१८॥

देहु सवति तुहूँ अपनी असिसिया,
भैया बहिन उतरौं पार। सवनवाँ० ॥१९॥
देहिन सवतिया अपनी असिसिया,
भैया बहिनि बूड़ौ मँझधार। सवनवाँ० ॥२०॥
सासु जानहि बहू नैहर गैली,
माइ जानै बेटी ससुराल। सवनवाँ० ॥२१॥

ताल में पानी की चिड़ियाँ कुहकने लगी। सुनो, सावन आ गया। भादौ भी नज़दीक ही है ॥१॥

हे माँ! जीरा डालकर बनाया हुआ सत्तू दो न? मैं बहन को लाने जाऊँगा ॥२॥

दासियाँ आँगन बुहार रही थीं। उन्होंने कहा—बहूजी के भाई आ रहे हैं ॥३॥

बहू ने कहा—तुम दासियो! झूठी हो। इस शहर के लोग ऐसे ही झूठे होते हैं ॥४॥

बहू ने खिड़की में झाँककर देखा तो भाई सचमुच फूल (गुलेचीन) के वृक्ष के नीचे खड़ा है ॥५॥

हे सास! मुझे अपनी चादर दो। मैं भाई से मिलने जाऊँगी ॥६॥

हे बहू! मेरी चादर तो पेटारे में रक्खी है। भाई से भेंट करने के लिये क्या दूँ? ॥७॥

हे जेठानी! अपनी चूनरी दे दो, मैं भाई से भेंट कर आऊँ ॥८॥

हे दुलहिन! मेरी चूनरी तो धोबी के घाट गई है। भाई से भेंट करने को मैं क्या दूँ? ॥९॥

मनस्विनी सास मचिये पर बैठी थीं। बहू ने कहा—हे सास! भाई के लिये कुछ खाने को दो ॥१०॥

कोठी में सड़ी हुई कोदौ है और खेत में मसौढ़े का साग है ॥११॥

हे सास। सड़ी हुई कोदौ में आग लगे और मसौढ़े के साग पर वज्र गिरे ॥१२॥

मैं तो मूँग दलकर उसकी दाल बनाऊँगी और स्वादिष्ट बारीक चावल का भात। पान कतरकर उसका साग बनाऊँगी और उसमें लौंग की छौंक दूँगी ॥१३॥१४॥

साले और बहनोई जीमने बैठे। उसी समय साले ने यह बात चलाई कि मेरी बहन को विदा कर दो ॥१५॥

बहनोई ने कहा—हे भाई! कैसे विदा करूँ? गंगा-जमना अथाह बह रही है ॥१६॥

बहू ने कहा—सींक चीरकर नाव बनाकर हम भाई-बहन पार उतर जायँगे ॥१७॥

हे सास! आशीर्वाद दो। हम भाई-बहन पार उतर जायँ ॥१८॥

हे सौत! तुम भी आशीर्वाद दो कि हम भाई-बहन पार उतर जायँ ॥१९॥

सौत ने आशिष दिया—तुम भाई-बहन दोनों मँझधार में डूब जाओ ॥२०॥

सास तो जाने कि बहू नैहर गई है और माँ जाने कि बेटी ससुराल में है ॥२१॥

सौतिया-डाह जगत-प्रसिद्ध है। फिर भी बहु-विवाह की प्रथा कायम है।

(३०)

भरिगै है ताल तलैया फूलि गई है कास।
बाबा कै रहिया बिसरि गई तो सावन मास॥ १ ॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवाँ रहा नहीं जाय।
जाय कहो मोरे बाबा आगे मोहिं लै जायँ॥ २ ॥
बाबा जे पठवा सनेसवा तो चउरा लदाइ।
खाइ न रहो मोरी बेटी तो सावन मास॥ ३ ॥

ऐसे सवनवाँ के बिचवाँ रहा नाहीं जाय।
जाइ कहो मोरी मैया आगे मोहिं लै जाय॥ ४॥
मैया जे पठवा सनेसवा तो पियरी रँगाइ।
पहिरि न रहो मोरी बेटी तो सावन मास॥ ५॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवा रहा नाहीं जाय।
जाइ कहो मोरे चाचा आगे मोहिं लै जायँ॥ ६॥
चाचा जे पठवा सनेसवा तो मुँगिया लदाय।
खाइ न रहेउ मोरी बेटी तो सावन मास॥ ७॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवाँ रहिया न जाय।
जाइ कहो मोरी चाची आगे मोहिं लै जायँ॥ ८॥
चाची जे पठवा सनेसवा तो पुरिया पोवाइ।
खाइ न रहेउ मोरी बिटिया तो सावन मास॥ ९॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवाँ रहा नाहीं जाय।
जाइ कहो मोरे भैया आगे मोहिं लै जायँ॥१०॥
भैया जे पठवा सनेसवा तो झुलवा डराइ।
झूलि न रहेउ मोरी बहिनी तो सावन मास॥११॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवाँ रहा नाहीं जाय।
जाइ कहो मोरी भौजी आगे मोहिं लै जायँ॥१२॥
भौजी जे पठवा सनेसवा महुरवा कै गाँठि।
खाइ न रहेउ मोरी ननदी तो सावन मास॥१३॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवाँ रहा नाहीं जाय।
जाइ कहो मोरे मैया आगे हमहिं लै जायँ॥१४॥
मैया जे पठवा सनेसवा तो डोलिया कहार।
आइ न रहो मोरी बहिनी तो सावन मास॥१५॥

डोलिया जे अरभा बरोठवा कहार पूत ठाढ़।
सुसुकि सुसुकि रोवै बेटी तो कब नैहर जाब ॥१६॥

ताल-तलैया भर गये। कास फूल गई। सावन का महीना आ गया। पर बाबा नही आये। जान पड़ता है, राह भूल गये ॥१॥

ऐसे सावन मे मुझसे ससुराल में रहा नही जाता। जाकर मेरे बाबा से कहो—मुझे ले चले ॥२॥

बाबा ने ऊँट या गाड़ी पर चावल लादकर भेजा है और कहलाया है—इसे खाकर, बेटी! इस बार के सावन में वहीं रहो ॥३॥

ऐसे सावन मे मुझसे यहाँ रहा नही जाता। जाकर मेरी माँ से कहो—मुझे बुला ले ॥४॥

माँ ने पीली धोती रँगकर भेजी है और कहलाया है—इस सावन में बेटी! वहीं रहो ॥५॥

इसी प्रकार कन्या ने अपने चचा और चाची को भी कहलाया। चचा ने मूँग लदाकर भेजी और चची ने पूरियाँ पोकर भेजीं और कहलाया—इस बार के सावन मे वही रहो ॥६,७,८,९॥

मेरे भाई के आगे जाकर कहो—मुझ से इस सावन मे यहाँ रहा नही जाता। मुझे ले जाओ ॥१०॥

भाई ने हिंडोला डलवा दिया और कहा—बहन! वहीं झूलकर यह सावन बिता दो ॥११॥

मेरी भौजी से जाकर कहो—इस सावन में मुझ से यहाँ रहा नहीं जाता। मुझे बुला लो ॥१२॥

भौजी ने ज़हर की गाँठ भेज दी और कहलाया है—ननद! इसे खाकर वहीं रहो ॥१३॥

मेरी माँ से जाकर कहो। इस सावन में मुझसे यहाँ रहा नहीं जाता। मुझे बुला लो ॥१४॥

माँ ने डोली और कहार भेजा और कहलाया—हे बेटी! सावन में यहाँ आ जाओ न? ॥१५॥

डोली बरौठे में रक्खी है। कहार खड़े हैं। बेटी सिसक रही है कि कब नैहर जाऊँगी ॥१६॥

सावन में नैहर जाने के लिये कन्याओं का जी बहुत ललचता है।

(३१)

बिदवा कै दे मोरे राजा,
कजरिया खेलै जावै रे नैहरवा।
जो तू बारी धना जाएउ नैहरवा,
प टीका धरि जाएउ रे सेजरिया।
टिकवा कै पतिया चमाके सारी रतिया,
प जनु धना बाटीं रे सेजरिया ॥ १ ॥

जो तू बारी धना जाएउ नैहरवा,
तिलरिया धरि जाएउ रे सेजरिया।
तिलरी कै जुगुनी चमाके सारी रतिया,
प जनु धना बाटीं रे सेजरिया ॥ २ ॥

जो तुम बारी धना जाएउ नैहरवा,
बेसरिया धरि जाएउ रे सेजरिया।
बेसरि कै झुलनी चमाकै सारी रतिया,
प जनु सुन्दर बाटीं रे सेजरिया ॥ ३ ॥

जो तुम बारी धना जाएउ नैहरवा,
बाजूइया धरि जाएउ रे सेजरिया।
बजुआ कै चुन्नी चमाकै सारी रतिया,
प जनु रानी बाटीं रे सेजरिया ॥ ४ ॥

जो तुम बारी धना जाएउ नैहरवा,
पछेलवा धरि जाएउ रे सेजरिया।
पछेला केर रउआ चमाके सारी रतिया,
प जनु रानी बाटीं रे सेजरिया॥ ५॥
जो तुम बारी धना जाएउ नैहरवा,
पयल धरे जाएउ रे सेजरिया।
पायेल केर बच्ची वाजे सारी रतिया,
प जनु धना बाटीं रे सेजरिया॥ ६॥
जो तुम बारी धना जाएउ नैहरवा,
कड़ा धरे जाएउ ले सेजरिया।
कड़वा कै घुंडी चमाकै सारी रतिया,
प जनु धना बाटीं रे सेजरिया॥ ७॥

हे मेरे राजा! मुझे विदा कर दो। मैं कजली खेलने नैहर जाऊँगी।

हे मेरी किशोर अवस्थावाली प्यारी स्त्री! तुम नैहर जाना तो सेज पर टीका छोड़े जाना। जिससे सारी रात उसकी पत्ती चमकती रहे और मैं समझता रहूँ कि मेरी स्त्री सेज ही पर है ॥१॥

हे मेरी प्यारी कामिनी! तुम नैहर जाना तो तिलड़ी सेज पर छोड़े जाना। तिलड़ी का जुगनू सारी रात चमकता रहेगा, तो मैं समझूँगा कि मेरी स्त्री सेज पर है ॥२॥

हे मेरी लाडली! तुम नैहर जाना, तो बेसर छोड़ जाना। उसकी झुलनी की चमक देखकर मैं समझूँगा कि मेरी प्यारी स्त्री घर ही पर है ॥३॥

हे मेरी प्यारी! तुम नैहर जाना, तो बाजू छोड़े जाना। उस पर जड़ी हुई चुन्नी सारी रात चमकेगी, तो मैं समझूँगा कि मेरी प्यारी स्त्री यहीं है ॥४॥

हे मेरी हृदयेश्वरी! तुम नैहर जाना, तो हाथ का कड़ा छोड़े जाना।

उसके रवें की चमक सारी रात देखकर मैं समझूंगा कि मेरी स्त्री यहीं है ।।५।।

हे मेरी प्यारी स्त्री ! तुम नैहर जाना, तो पाजेब छोड़े जाना। उसकी ध्वनि सुनकर मैं समझूंगा कि मेरी स्त्री यही है ।।६।।

हे मेरी प्यारी स्त्री ! तुम नैहर जाना तो कड़ा रक्खे जाना। कड़े की घुंडी की चमक देखकर मैं समझूंगा कि मेरी स्त्री यहीं है ।।७।।

(३२)

एक करैली हम बोवा अरे करैली पसरी बबैया जिउ के देस ।। १ ।।
पसरत पसरत पसरि गई पसरी है रन बन देस ।। २ ।।
सात अइल केर चुल्हिया सातौ माँ अकली दुआरि ।। ३ ।।
एक पर रीझै उर्दा भात अरे करैली यक पर सुहावन दूध ।। ४ ।।
उर्द भात जरि बरि जाय रे करैली दुधवा गयल उतिराय ।। ५ ।।
उर्द भात खैहैं देवर मोर दुधवा पियैं सग भाय ।। ६ ।।
रखिया बहावन हम गयनि रे करैली भैया बिरछ तरे ठाढ़ ।। ७ ।।
सासू गोसाईं पैयाँ तोरी लागौं कहो सासू मैया भंटन हम जाब।८।
हम का जनी बौहरि हम का जनी पूँछि लेव जेठनिया हँकारि ।९।
जेठानी गोसाईं पैयाँ तोरी लागौं रे करैली कहहु दीदी भैया
भेंटन हम जाब ।।१०।।
हम का जनी बौहरि हम का जनी रे करैली पूँछि लेव नन-
दिया दुलारि ।।११।।
ननदी गोसाईं पैयाँ तोरी लागौं रे करैली कहहु तो ननदी
भैया भेंटन हम जाब ।।१२।।
हम का जनी भौजी हम का जनी रे करैली जितना बखरवा में
धनवा उतना कूटे जाव
तब भौजी भैया भेंटन जाव ।।१३।।

जितना डेहरवा में गेहुँवा उतना पीसे जाव
तब भौजी भैया भेंटन जाव ॥१४॥
जितना पिपरवा में पतवा उतना रोटिया पोये जाव
तब भौजी भैया भेंटन जाव ॥१५॥

मैंने करैली की एक लता लगाई थी। वह बाबा के देश तक फैल गई है ॥१॥

फैलते-फैलते वह अरण्य मे, देश में, सर्वत्र फैल गई है ॥२॥

सात मुँह का चूल्हा है, उसमे एक ही द्वार है ॥३॥

एक मुँह पर उर्द और भात रींझ रहा है। दूसरे पर सुन्दर दूध ॥४॥

उर्द और भात जल-बल गया और दूध उतरा आया ॥५॥

उर्द भात मेरा देवर खायगा और दूध मेरा सगा भाई पियेगा ॥६॥

मैं चूल्हे की राख घूर में फेंकने गई थी। वहाँ देखा तो वृक्ष के नीचे भैया खड़े है ॥७॥

हे सासजी ! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। कहो तो भाई से भेंट कर आऊँ॥८॥

हे बहू ! मैं क्या जानूँ ? जेठानी को बुलाकर पूछ लो ॥९॥

हे जेठानी ! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। आज्ञा दो, तो भाई से मिल आऊँ ॥१०॥

हे बहू ! मै क्या जानूँ ? दुलारी ननद से पूछ लो ॥११॥

हे प्यारी ननद ! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। कहो तो भाई से मिल आऊँ ॥१२॥

हे भौजाई ! मैं क्या जानूँ, दखार मे जितना धान है, उतना कूट-कर तब भाई से भेंट करने जाओ ॥१३॥

जितना कोठिला मे गेहूँ है, उतना पीसकर तब भाई से मिलने जाओ ॥१४॥

पीपल में जितने पत्ते है, उतनी रोटियाँ पोकर तब भाई से मिलने जाओ ॥१५॥

बहुओं को ससुराल में कितनी साँसत भोगनी होती है, इस गीत में भी उसका उल्लेख है। सास जो बात नहीं करना चाहती, उसे वह दूसरों पर टाल देती है। ननद तो बहू के लिये छुरी लिये तैयार ही रहती है। धान कूटना, गेहूँ पीसना, पानी भरना, बरतन माँजना, कपड़े धोना, फटी धोतियाँ सीना, आँगन बटोरना, चूल्हा सैंतना (लीपना), राख और कूड़ा-करकट ले जाकर घूर में फेंकना यह सब काम अकेली बहू को करने पड़ते हैं। इस पर भी सास और ननद की झिड़कियाँ अलग से सहनी पड़ती हैं। नैहर से आये हुये कुटुम्बियों से इच्छापूर्वक मिलने नहीं दिया जाता। बहू बेचारी कभी बीमार होती है, तो उस पर यह इलज़ाम लगाया जाता है कि काम न करने के लिये बहाना कर रही है। बहू का इतिहास असहनीय दुःखों और भयानक वेदनाओं से भरा हुआ है।

(३३)

सावन की हरियाली है तीज,
निकरीं कुअँरि वइठीं दहलीज,
बारी के छोड़ के बालम चले ॥ १ ॥

सुनहु न हो हमरे दलपति जेठ,
तोहरे बीरन गढ़ छाये बिदेस,
न लिखें चिठिया न भेजें सँदेस,
बारी के छोड़ के बालम चले ॥ २ ॥

खोजेहु हो बाँम्हन दर दरबार,
खोजेहु हो बाँम्हन हाट बजार,
खोजेहु तमोली के चउतरा ॥ ३ ॥

न मिलें हो राजा हाट बजार,
न मिलें हो राजा दर दरबार,
मिले तमोली के चउतरा ॥ ४ ॥

कहहु न हो बाँम्हन कुसल कुसल,
पहिला कुसल हमरे माई अवार,
दुसरा कुसल हमरे कुल परिवार,
तिसरा कुसल नाजो कामिनी ॥ ५ ॥
कुसल तं हो राजा कुसल कुसल,
बहुत दुखित नाजो कामिनी ॥ ६ ॥
अन्न न खाइँ नाजो पहिरै न चीर,
सेजिया के देखत नाजो आवै ले पीर,
राजा आवन उन चाहती ॥ ७ ॥
लेहु न हो बाँम्हन लहर पटोर,
लेहु न हो बाँम्हन गहना करोर,
हमरो आवन बड़ी दूर है ॥ ८ ॥
लेहु न हो रानी लहर पटोर,
लेहु न हो रानी गहना करोर,
राजा आवन बड़ी दूर है ॥ ९ ॥
आग लगाओं बाँम्हन लहर पटोर,
बजर परै वही गहना करोर,
राजा आवन हम चाहती ॥१०॥

सावन की हरियाली तीज है। बहू घर में से निकलकर देहली में बैठकर सोचने लगी—हाय ! मुझ अल्प-वयस्का को छोड़कर प्रियतम परदेश चले गये ॥१॥

हे मेरे जेठ दलपति ! सुनो। तुम्हारे भाई विदेश में छाये है। न चिट्ठी भेजते है, न संदेशा कहलाते है ॥२॥

जेठ ने खोजने के लिये ब्राह्मण भेजा—हे ब्राह्मण ! सब दरबारों में खोजो। हाट-बाजार में खोजो। तम्बोली के चबूतरे पर भी खोजो ॥३॥

न तो राजा दरबार में मिले। न हाट-बाज़ार में। मिले तो तम्बोली के चबूतरे पर ॥४॥

राजा ने पूछा—हे ब्राह्मण! कुशल कहो। पहली कुशल मेरी माँ की बताओ। दूसरी कुशल कुल-परिवार की। तीसरी कुशल मेरी प्यारी स्त्री की बताओ ॥५॥

ब्राह्मण ने कहा—हे राजा! और सब तो कुशल से हैं। आप की स्त्री आपके वियोग में बहुत दुःखी है ॥६॥

न अन्न खाती है। न अच्छे कपड़े पहनती है। बिछौने को तो देखते ही वह बेहद पीड़ा से विकल हो जाती है। वह आप का आना चाहती है ॥७॥

राजा ने कहा—हे ब्राह्मण! यह रेशमी कपड़े लो। करोड़ों के गहने लो। मेरा आना तो बड़ी दूर है ॥८॥

ब्राह्मण कपड़े और गहने लेकर बहू के पास गया। बहू ने कहा—इन रेशमी कपड़ों में आग लगे। इन करोड़ों के गहनों पर बज्र गिरे। मैं तो अपने राजा को चाहती हूँ ॥९,१०॥

(३४)

कनक अटारी दियना बरै, दियना बरा है अकास।
अरे हो रानी राजा सारी पासा खेलहीं ॥ १ ॥
हाथ से सारी पासा गिर परा, मुखहूँ से गिरा है तमोल।
अरे हो रानी राजा भये अनबोलना ॥ २ ॥
काढ़ि पेटारे से चोलना, सो लेइ बेड़िनी के देइँ।
अरे हो रानी राजा भये अनबोलना ॥ ३ ॥
आज के दिहो राजा चोलना, काल्हि के दीहो मेरो राज।
राजा जनम भये अनबोलना ॥ ४ ॥
कनक अटारी धना ऊतरी, हनि दीनो बजर केवाड़।
अरे हो रानी राजा भये अनबोलना ॥ ५ ॥

सासु मनावन वै चलीं, दस पाँच बेटवा बटोरि।
दुलहिनि बेटाजी से काहें अनबोलना ॥ ६ ॥
सोने कै मचिया गढ़ावती, लट छाड़ि मैं लगिहौं पाँय।
अम्मा करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥ ७ ॥
ससुर मनावन वै चले, पलकिन छुटा है कहाँर।
दुलहिनि बेटाजी से काहें अनबोलना ॥ ८ ॥
अच्छे अच्छे हौदा गढ़उतिउँ, हाथिन हौदा लगावउँ।
बाबा करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥ ९ ॥
जेठ मनावन वै चले, दस पाँच बेटवा बटोरि।
दुलहिनि भैयाजी से काहें अनबोलना ॥१०॥
अच्छे अच्छे घोड़वा सजावती, भाँति भाँति करौं पकवान।
जेठजी करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥११॥
जेठानी मनावन वै चलीं, दस पाँच चेलिका बटोरि।
दुलहिनि बाबूजी से काहें अनबोलना ॥१२॥
अच्छी अच्छी चुनरी रँगावती, लट छोड़ि के लागिहौं पायँ।
जीजी करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥१३॥
देवर मनावन वै चले, दस पाँच संगी बटोरि।
भाभीजी भैयाजी से काहें अनबोलना ॥१४॥
सोने कै लटुवा गढ़वतिउँ, खेलत खुनत घर जाहु।
बाबू करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥१५॥
ननद मनावन वै चलीं, दस पाँच सखिया बटोरि।
भाभी भैयाजी से काहें अनबोलना ॥१६॥
अच्छी अच्छी गुड़िया गढ़वतिउँ, खेलत खुनत घर जाहु।
बीबी करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥१७॥

बेड़िनी मनावन वै चलीं, खिरकी बाहर होइ ठाढ़ि।
रानी राजाजी से काहें अनबोलना ॥१८॥
जाहु वेड़िनि घर आपने, मरिहौं पिढ़वा कै मार।
बेड़िनि तोरे कारन भये अनबोलना ॥१९॥
राजा मनावन वै चले, हाथे बिरवा लिहे अनमोल।
रानी काहे कारन किहो अनबोलना ॥२०॥
विष की कियारी राजा तुम बोयो, अब कैसे फिरि पछिताहु।
राजा करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥२१॥
मन क बिरोग रानीं छोड़ि दो, बेड़िनी क दीन्हयो मैं निकारि।
रानी करौ न जनम अनबोलना ॥२२॥

सोने की अटा पर दीपक जल रहा है। राजा रानी पासा खेल रहे हैं ॥१॥

राजा के हाथ से पासा गिर पड़ा। मुख से पान भी गिर पड़ा। रानी राजा से नही बोलती है ॥२॥

राजा ने पेटारे से चोली निकालकर बेड़िन को दे दी ॥३॥

रानी ने कहा—आज तो हे राजा ! तुम चोली दे रहे हो। कल राज दे दोगे ॥४॥

रानी सोने की अटा से नीचे उतर आई और बज्र ऐसा किवाड़ा बंदकर बैठ रही ॥५॥

दस पाँच बेटों को बटोर कर सास मनाने चली। हे दुलहिन ! बेटा से तुमने बोलना क्यों छोड़ दिया ? ॥६॥

दुलहिन ने कहा—हे सास ! मैं तुमको सोने की मचिया बनवा दूँगी। मैं लट खोले हुये तुम्हारे पैर लगूँगी। तुम चली जाओ। मै राजा से नहीं बोलूंगी ॥७॥

इसी प्रकार ससुर, जेठ जेठानी, देवर, भौजाई, ननद आदि सब

मनाने के लिये आये। बहू ने प्रत्येक की खुशामद करके उन्हें लौटा दिया ॥८से १७॥

बेड़िन मनाने के लिये आई। खिड़की मे बाहर खड़ी होकर उसने पूछा—हे रानी! राजा से तुमने बोलना क्यों छोड़ दिया? ॥१८॥

रानी ने कहा—हे बेड़िन! तुम अपने घर लौट जाओ। नही तो मैं तुमको पीढ़ा उठाकर मारूँगी। तेरे ही कारण मै राजा से नही बोलती हूँ ॥१९॥

सब के बाद में राजा हाथ मे अनमोल बीड़ा लिये हुये मनाने आये। उन्होंने रानी से कहा—हे रानी! तुमने बोलना क्यों छोड़ दिया? ॥२०॥

रानी ने कहा—हे राजा! विष की क्यारी तुमने बोई है और अब पछताते क्यों हो? हे राजा! मैं जन्मभर के लिये तुमसे बोलना छोड़ दूँगी ॥२१॥

राजा ने कहा—हे रानी! मन का क्रोध छोड़ दो। मैंने बेड़िन को निकाल दिया। तुम न बोलने का हठ छोड़ दो ॥२२॥

राजा का चरित्र अच्छा नहीं था। राजा ने एक बेड़िन रख ली थी। एक दिन रानी की चोली राजा ने बेड़िन को दे दी। रानी ने उसी दिन से राजा से बोलना छोड़ दिया। सब मनाने आये, पर रानी ने सत्याग्रह नहीं छोड़ा। अन्त मे राजा मनाने गया, और बेड़िन को निकाल दिया। जब राजा ने सच्चरित्र होने की शपथ खाई, तब रानी ने हठ छोड़ा। लम्पट पतियों को इसी प्रकार सुधारना चाहिये।

(३५)

परदेसी पीतम काहे लिखी छूंछी पातियाँ।
दाना पानी हमको नाहीं रोइ रोइ काटी रातिया॥
सिगरी रैनि हमैं रोउति गुजरी भोरु होत उइरी चाकिया॥१॥
मन भरि हमने पीसि बटोरो, ताहूँ दिखावै मोको लाठिया।
रोके रहत प्रान यहि तन में पीतम तोरि सुरातिया॥२॥

(पीलीभीत)

हे परदेसी प्रियतम ! खाली कुशल-क्षेम लिखकर क्या भेजूं ?

घर में दाना-पानी कुछ नहीं हैं। रो-रोकर रात काटती हूँ। सारी रात रोते-रोते कटती है। भोर होते ही चक्की पर बैठ जाती हूँ ॥१॥

मनभर पीसकर मैंने तैयार किया, उस पर भी (सास) मुझे लाठी दिखाती है। हे प्रियतम ! तुम्हारी याद ही मेरे शरीर में प्राण को रोके रहती है ॥२॥

कर्कशा सास बहू को बहुत दुःख देती है। बहुओं के प्रत्येक गीत में उनकी यह फरियाद सुनाई पड़ती है।

(३६)

हमने कही थी लाला गिरी पड़ों रे
बंदरा मानस हो धारी देह जी।
अब लों ना खाई थी संटी फूल की अब पड़ै डंडों
की मार रे जी। धोरी मेरा चालता चलो ॥१॥

कागज हो तो बाँच लूँ बै तिरिया
करम ना बाँचा जाय जी।
हमारे करम में डोसी लिखी तुम धन करो अपना
राजरे जी। धोरी मेरा चालता चलो ॥२॥

किसके हैं यह जौ चना किसके हैं ये कुवाँ बाग जी।
किसकी है तू कामनी नूओं से बीनै साग जी।
धोरी मेरा चालता चलो ॥३॥

जेठा हमारे के जौ चना ससुर हमारे के कुवाँ बाग जी।
पिया अपने को हम कामनी नओं से बीनै साग जी।
धोरी मेरा चालता चलो ॥४॥

खेती खेती कर रहे खेती से ना हेत जी।
मिर्गा ने बालम तुम्हारा सब चुग लिया खेत जी।
धोरी मेरा चालता चलो ॥५॥

(शाहजहाँपुर)

हरवाहा कहता है:—

मैं ने कहा था, हे लाला (बैल)! तू गिर पड़ेगा। बंदर ने मनुष्य का शरीर पाया है। अबतक तुमने फूल की पंखड़ी खाई थी, अब डंडों की मार पड़ रही है। मेरे बैल! चलते चलो ॥१॥

काग़ज़ पर लिखा हो तो बाँच सकता हूँ; पर हे स्त्री! कर्म का लेख नहीं बाँचा जा सकता। मेरे कर्म में मारे-मारे फिरना लिखा है। हे धन! तुम अपना राज करो। हे मेरे बैल! चलते चलो ॥२॥

ये जौ और चने किसके हैं? ये कुँवे और बाग किसके हैं? और हे कामिनी! तू किसकी है जो नहों से साग खोट रही है? हे मेरे बैल! चलते चलो ॥३॥

जौ और चने मेरे जेठ के हैं। कुँवे और बाग मेरे ससुरजी के हैं। मैं अपने प्यारे की कामिनी हूँ। नहों से साग खोंट रही हूँ। हे मेरे बैल! चलते चलो ॥४॥

खेती-खेती तो बक रहे हो, पर तुमको खेती से प्रेम नहीं है। हे बालम! तुम्हारा सारा खेत मृग ने चर लिया है। हे मेरे बैल! चलते चलो ॥५॥

इस गीत में कई रसीले दोहे और भी हैं। गानेवाले बीच-बीच में अपनी रुचि के दोहे और छन्द मिलाकर गाया करते हैं।

यह गीत जौ-गेहूँ के खेत जोतते वक्त हलवाहे गाते हैं।

(३७)

एहौ रतन कुआँ मुख साँकरै अलबेली भरै पनिहार।
तौ अरी अरी कुँअना की पनिहारी
काहे ठाढ़ी बदन मलीन।१॥
कै तेरो हार कुँअल गिरौ अरी कै तेरी बिछुरी पनिहार।
तौ न मेरो हार कुँअल गिरौ अरी न बिछुरी पनिहार॥२॥
तौ मेरो जो बिछुरे रहिया दो जने एक दरजी एक मनिहार।
तौ कहारा तो ल्याबे लरका दरजी कौ
अरे कहारा लिवावै मनिहार॥३॥
तौ कौन की चोलीया अमाने भई
अरे कौन के ढीलै भए हार।
तौ गोरिया की चोलीया अमाने भई
अरे सम्बरी कै ढीले भए हार॥४॥
तेरे पान जो चाबे पिया हौंसिया
अरे चोली में परि गई पीक।
तौ अरे अरे भइया धोबीया मेरी
चोली के दाग छुटाओ॥५॥
जो तेरी चोली के दाग छुटैहैं
तो हम खैर रो कहा तुम देऊ।
तौ देहौं तो हाथ की मुँदरी अरे और हिए की हार॥६॥
सिल धर फोरहें तेरी मुँदरी
अरी समद बुआऊँ तेरो हार।
लैहों ओ लैहों तेरी चोली अरी लैहों जी पिव को सिंगार॥७॥
तौ डाढ़ी जो जारों तेरे बाप की
तेरी मूछें तो देऊँ झागार।

जब घर आवे बारे लछमन देवरा
तोहें बरिया से देहौं बँधाय ॥८॥
(झाँसी)

सँकड़े मुँहवाले रत्न के कुँवें से अलबेली पनिहारिन पानी भर रही है। हे कुँवें की पनिहारिन! तुम्हारा मुँह उदास क्यों है ॥१॥

तुम्हारा हार कुँवें में गिर पड़ा है? या तुम्हारी पनिहारिन सखी बिछुड़ गई है? न मेरा हार कुँवें में गिरा है और न सखी पनिहारिन ही से मेरा बिछोह हुआ है ॥२॥

मेरे दो जन, एक दर्जी और दूसरा मनीहार, राह भूल गये है, (यही चिन्ता है)। कहार दर्जी के लड़के को बुला देगा और वही मनिहार को ले आयेगा ॥३॥

किसकी चोली अमाने पर हुई? और किसके हार ढीले पड़े हैं? गोरी की चोली अमाने पर हुई है और साँवली के हार ढीले पड़ गये हैं ॥४॥

हौसलेवाले पिया पान खाते हैं। चोली पर पीक पड़ गई है। अरे, धोबी भाई! मेरी चोली के दाग छुड़ा दे ॥५॥

धोबी ने कहा—तुम्हारी चोली का दाग छुड़ा दूँ तो तुम मुझे क्या दोगी? मैं तुमको हाथ की अँगूठी और गले का हार दूँगी ॥६॥

तुम्हारी अँगूठी को पत्थर से फोड़ूँ, और हार समुद्र में फेंक दूँ। मैं तो तुम्हारी चोली लूँगा और तुम्हारे पिया का शृङ्गार लूँगा ॥७॥

मैं तेरे बाप की दाढ़ी जला दूँगी। तुम्हारी मूँछें झुलस दूँगी। मेरा लक्ष्मण देवर घर आयगा, तो तुझे पेड़ से बँधवा दूँगी ॥८॥

इस गीत में पति के प्रति बहू की एकनिष्ठा दिखाई गई है। किसी भी प्रलोभन से उसका मन चलायमान नहीं होता है।

यह गीत फागुन से बैसाख तक चने और गेहूँ के खेत काटते वक्त गाया जाता है।

कजली

कजली ज्यादातर सावन और भादों के महीनों ही में, जबकि स्त्रियों के कई त्योहार पड़ते हैं, उनमें और हिंडोले पर गाई जाती है। मिर्जापुर में यह बड़े समारोह से मनाई जाती है। इसमें कुछ स्त्रियाँ, खासकर वयस्क कन्यायें, और बहुयें, एक पंक्ति में खड़ी होकर ढुर-ढुर कर (झुक-झुककर) साथ गाती हुई कुछ दूर जाती हैं, और गाती हुई फिर लौट आती हैं। कभी-कभी हिंडोले के आस-पास जमा होकर गाती हैं। त्योहारों में पूजन के समय और मेलों में राह चलते समय भी गाती हैं। पुरुष भी इसे गाते हैं।

इसमें प्रायः स्त्री-पुरुषों के प्रेम-संबंधी कल्पनायें और कुछ में ज्ञान-वैराग्य की बातें भी होती हैं।

कजली कई प्रकार के रागों में गाई जाती है।

नीचे कजली के केवल रागों के उदाहरण मात्र दिये जाते हैं। अर्थ स्पष्ट है।

(१)

हरिहरि बेला फूलै अधिरात चमेली भिनुसहरा रे हरी।
बेला चमेली के सेजा बिछाइउँ
हरि हरि, राजा सोवैं अधिरात गमक जब पावइँ, रे हरी॥

(२)

बरसै ओरिया क बुंदवा ठाढ़ी भीजै गूजरी॥
चुन चुन कलियाँ मैं सेजा बिछायउँ रामा,
सेजाँ नाहीं सूतै ठाढी भीजै गूजरी॥

(३)

इसी को कहते इस्टेसन, सुनो मोर बलमू॥टेक॥
हरदम लगा है आना जाना—यहाँ प बना मुसाफिरखाना;
गाड़ी खुलती है छन छन। सुनो०॥

(४)

गोरी गोरी बहिया सबुज रँग चुनरी हमैं तजि चाले हो बीदेसवाँ।
चला जात पीयवा चितवन नाहीं बताये जातै गुनवा रे औगुनवा ॥
की तोर पियवा मैं जेवना बिगारेउँ की सेज नायउँ हो बिसभोरवा॥
नाहीमोर धनिया रे जेवना बिगारिउ नाहीं सेजनायउ हो बिसभोरवा
फागुन मास धना हमरा फगुववा हमै तजि गइऊ हो नैहरवाँ ॥
सावन मास धना तोहरी कजरिया तोहइँ तजि चलेऊँ हो बीदेसवा।

(५)

बूढ़ा बड़ी जहर कै कूँड़ा बाइस रोटी झटके जायँ।
ऊँचे खाले से मिट्टी लाई चूल्हा लिहें बनवाइ।
कठवति भरिके पिसान सानइ कोंचा लिहेनि पकाइ ॥बूढ़ा०॥
हाँड़ी भरि के दाल पकाई नून जहर होइ जाइ।
दुइ दुइ रोटी मुँह में ढूँसइ उँटिया अस पगुराइ ॥बूढ़ा०॥
इन्द्रपुरी से बिमान आये बैठी प्रेम लगाइ।
जम के दूत आइ जब घेरे बूढ़ा दिहीं मुँह बाय ॥बूढ़ा०॥

(६)

पिया नहिं आये भवनवाँ, अरे सावनवाँ ॥टेक॥
गौना ले आये घर बैठाये आप गये मधुबनवाँ ॥
दिन भरि बैठीमैं आँखि बिछाये राति में देखौं सपनवाँ ॥

(७)

बैठी नीर भरे नैनन में पिय परदेस को जावेंगे।
दहकति आगि बिरह की मन में फिरि कब आवेंगे ॥

(८)

मुँह देखै क पियवा लोभान बाय, जिया अकुलान बाय ना ॥
कैसे मिलूँ जाय सासू के अगवाँ मोरिउ तो मतिया हेरान बाय ॥
जिया अकुलान बाय ना ॥

(९)

करके परदेसी से प्रीति सखी अब क्यों पछताती हो ?
छोड़ गये सो फिर न मिलेंगे क्यों अकुलाती हो ?

(१०)

पहने धानी रँग की सारी, सोने की सी मूरत प्यारी।
देखे मन मथि डारै, मोरे वारे बलमू॥

कोल्हू के गीत

देहात में ऊख पेरने के लिये पहले पत्थर के कोल्हू चलते थे। पेरनेवाले रात के तीसरे पहर में उठकर बैलों को जोत देते थे, और उनके पीछे लगे हुए लम्बे काठ पर बैठकर, जाड़े की लम्बी और ठंडी रात के सन्नाटे में, बड़े ही मर्मभेदी गीत गाते थे। वे गीत क्या हैं? प्रेम, विरह और करुण-रस के अद्भुत इतिहास हैं।

आजकल लोहे के कोल्हू चल पड़े हैं। अब हाँकनेवाले को बैलों के पीछे पैदल चलना पड़ता है। अब रात या दिन के किसी समय में भी कोल्हू चलाया जा सकता है। इसलिये रात के वे गीत भी अब समाप्त हो चले।

तेल का कोल्हू तेली के घर के अंदर चलता है। इससे तेली का गीत उसके घर के अंदर ही गूंजकर रह जाता है। पर गन्ने का कोल्हू किसान के घरके सामने, खुली हवा में, चलता है। इससे उसके गीत गानेवाले का ऊँचा स्वर सन्नाटे को चीरता हुआ दूर तक चला जाता है। गन्ना जाड़े ही में पेरा जाता है।

पहले तेली अच्छा गीत गा लेते थे। अब वे भी धीरे-धीरे समय के प्रवाह में विलीन होते जा रहे हैं। ईख और तेल पेरने के दोनों तरह के कोल्हुओं के कुछ गीत यहाँ दिये जाते हैं—

(१)

अमवा महुलिया घन पेड़ जेही रे बीचे राह परी।
रामा तेहि तर ठाढ़ी एक तिरिया मनै माँ बैराग भरी ॥१॥

पूछै लागें बाट के बटोहिया अकेली धन काहे रे खड़ी।
भैया, चले जाहू बाट के बटोहिया हमें रे तुहें काह परी ॥२॥
की रे तुहें सासु ससुर दुख की नैहर दूरि बसै।
भैया, नाहीं हमें सास ससुर दुख नाहीं नैहर दूरि बसै ॥३॥
भैया हमरा बलम परदेस मनें माँ बैराग भरी।
बहिनी तोहरा बलम परदेस तुहें कुछु कहि न गये ॥४॥
भैया दै गये कुपवन तेल हरपवन सेन्दुर।
भैया दै गये चँदन चरखवा उठाइ गजओबरि ॥५॥
भैया दै गये अपनी दुहइया धरम जिनि छोड़िउ।
भैया चुकै लागे कुपवन तेल हरपवन सेन्दुर ॥६॥
भैया घुनै लागे चँदन चरखवा ढहइ गजओबरि।
भैया चुकै लागी मोरि उमिरिया हरीजी नाहीं आयेन ॥७॥

आम और महुवे के घने पेड़ों के बीच से राह पड़ी है। उस राह के बीच में एक स्त्री खड़ी है, जिसका मन बहुत उदास है ॥१॥

राह चलनेवालों ने उससे पूछा—हे स्त्री, तू यहाँ अकेली क्यों खड़ी है? स्त्री ने कहा—हे राह के चलनेवाले! अपने रास्ते जाओ। मुझसे तुम्हें क्या पड़ी है? ॥२॥

राह के चलनेवाले ने नहीं माना। वह पूछने लगा—क्या तुझे सास-ससुर दुःख देते हैं? या नैहर दूर है? स्त्री ने कहा—न मुझे सास-ससुर दुःख देते हैं, न नैहर ही दूर है ॥३॥

हे भाई! मेरे पति-देवता परदेश गये हैं। उन्ही की याद में मैं उदास हूँ। पथिक ने कहा—बहन, क्या तेरा पति परदेश जाते समय कुछ कह नहीं गया? ॥४॥

स्त्री ने कहा—भैया! मेरे पति मुझे कुप्पों में तेल और सिंधौरे में सेन्दुर भरकर दे गये थे। चन्दन का चरखा भी दे गये थे और बैठने के लिये कोठरी बना गये थे ॥५॥

अपनी शपथ दिला गये थे कि धर्म मत छोड़ना। पर उनको गये इतने दिन बीत गये कि कुप्पों का तेल और सिंधौरे का सेन्दुर समाप्त होने चला। चरखा भी घुनने लगा ।।६।।

कोठरी भी ढह रही है। हे भाई! मेरी उम्र भी चुकने लगी। पर मेरे प्राणेश्वर अभी नहीं आये ।।७।।

देखिए, एक विरहिणी का यह कैसा स्वाभाविक वर्णन है। इसमें कवि-कल्पित विरहावस्था का वह वर्णन नहीं है जिसमें विरहिणी आग उगल रही है या बरफ़ की चद्दर की आड़ करके तब सखियाँ उसके पास खड़ी होकर मिजाज़ का हाल पूछती हैं। जिन्हें देहात का अनुभव है, उन्हें यह वर्णन बड़ा सरस जान पड़ेगा। घर के पिछवाड़े आम और महुवे के पेड़ लगाने की चाल देहात में है। उन पेड़ों के बीच से जो राह जाती है, वह छायादार और बड़े ही एकान्त की होती है। स्त्री का पेड़ों के नीचे खड़ी होकर अपने प्रियतम का बिसूरना कितना करुणा-जनक है, इसे सहृदय रसिक-जन ही अनुभव कर सकते हैं। ऐसे गीत उस समय के हैं जब परदा नही था, मन मे पाप नही था। एक अपरिचित पथिक को अपना भाई समझकर कोई भी स्त्री अपनी मनोव्यथा बता सकती थी।

(२)

कौनी की जुनिया तेलिनि घनिया अरे लगावे
अरे कौनी जुनिया ना।
कोइलरि सबद सुनावै कि कौनी जुनिया ना ।।१।।
आधी की रतिया तेलिनि घनिया लगावै
कि पिछली रतिया ना।
कोइलरि सबद सुनावै कि पिछली रतिया ना ।।२।।
कोइलरि सबद सुनि कै जागै साँवर गोरिया
बढ़निया लैके ना।
सुन्दरि अँगना रे बहारैं बढ़निया लैके ना ।।३।।

अँगना बहारि सुन्दरि घुरवा लैपवारिन, घइलना लैके ना।
सुन्दरि चलीं सागर पनियाँ घइलना लैके ना ॥४॥
घैला बोरी बोरि धन धरलीं कररवा कि जोहै लागीं ना।
परदेसीजी की बटिया कि जोहै लागीं ना ॥५॥

किस बेला मे तेलिन घानी लगाती है ? और किस बेला में कोयल शब्द सुनाती है ? ॥१॥

आधी रात में तेलिन घानी लगाती है और पिछली रात में कोयल शब्द सुनाती है ॥२॥

कोयल का शब्द सुनकर सुन्दरी जागती है और बढ़नी (झाड़ू) लेकर आँगन बुहारती है ॥३॥

आँगन बुहारकर कूड़ा-करकट वह घूर पर फेंक आती है और फिर घड़ा लेकर तालाब में पानी भरने जाती है॥४॥

घड़े भर-भर कर किनारे पर रख देती है। फिर वह सुन्दरी अपने परदेशी पति की बाट जोहने लगती है ॥५॥

परदेशी पति की बाट जोहने में कितना सुख है, कितनी मिठास है, यह लिखकर बताया नहीं जा सकता। कल्पना की सीमा से यह बहुत दूर है। यह अनुभव की वस्तु है। जिसका कोई प्रियतम है और वह दूर देश में है, वही इस सुख का अधिकारी है।

अब भी देहात में भले घरों की बहुवें बड़े सबेरे उठकर आँगन बुहारती हैं। देहात की स्त्रियों में एक विश्वास चला आता है कि सूर्योदय से पहले आँगन बुहारने से घर मे लक्ष्मी का निवास होता है। यह विश्वास और इसके अनुकूल कार्य का क्या परिणाम होता है ? इसका कोई ठीक-ठीक प्रमाण हमारे पास नहीं। पर इतना हम भी मानते हैं कि प्रातःकाल उठकर झुके-झुके आँगन बुहारना युवती बहुओं के स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभदायक है।

एक अमेरिकन लेखक Bernarr Macfadden ने Preparing for Motherhood नाम की बहुत ही उपयोगी पुस्तक लिखी है। उसमें वे २५७वें पृष्ठ पर एक अमेरिकन विदुषी स्त्री का निजी अनुभव उसी के शब्दों में इस प्रकार देते हैं:—

I want to tell you that your breasts are bound to be larger while you are nursing your baby. But they go back to normal size again, if only you exercisc the muscles in the way I shall tell you.

I want to tell you that making beds, sweeping floors, and doing all kinds of housework is perfectly splendid exercise bringing into play practically all the muscles in the body.

Really, there are very few exercises a woman can take that tore up the abdomen muscles the way sweeping does.

अर्थात्, 'मैं तुमको यह कहना चाहती हूँ कि जब तुम बच्चे को दूध पिलाओगी तो यह निश्चय है कि तुम्हारे स्तन पहले की अपेक्षा लम्बे हो जायँगे। पर यदि तुम मेरे बतलाये हुए तरीके से चलोगी तो वह फिर पहले जैसे हो सकते हैं।

बिस्तरे बिछाना, फर्श पर झाड़ू लगाना और घर के दूसरे छोटे-मोटे काम करना, ये सचमुच बड़ी ही लाभदायक कसरतें हैं जो शरीर के सब अंगों को सहज ही में ठीक रखती हैं।

सचमुच स्त्री के शरीर को ठीक रखनेवाली कसरतों में झाड़ू देने से बढ़कर शायद ही कोई हो।'

हमने किसी से यह भी सुन रक्खा है कि झुककर झाड़ू देने से स्त्री के शरीर की कुछ ऐसी नसें दबती हैं, जिनके दबने से चेहरे का सौन्दर्य बढ़ता है, और स्त्री अधिक समय तक युवती बनी रहती है।

(३)

मोर कौड़ी क लोभी फिरौ घर को।
बेरिया की बेर तुहें बरजौं नयकवा कि
हमका गोहन ले लियाय॥ १॥
गँठिया जोरि तोरि बरधी लदउबै कि
डेरवा प भोजन बनाय॥ २॥
उपराँ से छोड़बै घियना की धरिया कि
अँचरन झलबै बयारि॥ ३॥
जौ धन होतिउ बेइलिया के फुलवा
लेतेउँ पगड़िया की पेंच॥ ४॥
तू धन अहिउ बारी बयसवा क
कि हँसिहैं सँघाती लोग॥ ५॥
बेरिया क बेरि तोहें बरजौं नयकवा
कि उतर बनिज जिनि जाहु॥ ६॥
उतर क पनिया जहर विष माहुर
लागे करेजवा में धाय॥ ७॥
पनिया पियत स्वामी तू मरि जाबा
हम धन होबै अनाथ॥ ८॥
दँतवा कटाय पिया कोठवा पटौबै
छतिया क बजर कवार॥ ९॥
दोनों नैन बिच हटिया लगौबै
घरहीं करो रोजगार हो॥१०॥
अँवरि बँवरि क कोल्हुवा रे नैका
बेल बबुर कै जाठि॥११॥

जठिया के ऊपर ढेंकुवा पिहीकै
वैसे पिहीकै जिया मोर ॥१२॥
आधी की रात पीतम ठोंकले कँधेलिया
कि छतिया कुहूकै मोरि ॥१३॥
चुटकी काटि छोटी ननदी जगावै
तोर बनिजरवा बनिज जाय ॥१४॥
जेकरि ऊँच नजरिया रे नैका
औ कुलतारनि जोय ॥१५॥
ते काहे जैहैं बनिज बिदेसवाँ
घरहीं सवाई होय ॥१६॥
मोर कौड़ी क लोभी फिरौ घर को।

हे कौड़ी के लालची मेरे पति! घर लौटो।

हे नायक! मैं बार-बार तुमको कहती हूँ कि मुझे भी साथ लेते चलो ॥१॥

हाथ से हाथ पकड़कर मैं तुम्हारा बैल लदाऊँगी, और डेरे पर भोजन बनाऊँगी ॥२॥

भोजन परोसकर ऊपर से उसमें घी की धार छोड़ूँगी और आँचल से हवा करूँगी ॥३॥

हे मेरी प्यारी पत्नी! यदि तुम फूल होती, तो मैं पगड़ी की पेंच में रख लेता ॥४॥

तुम तो हो नवयौवना सुन्दरी। तुमको साथ देखकर मेरे संगी-साथी हँसेंगे ॥५॥

हे मेरे प्यारे नायक! मैंने तुमको बार-बार रोका कि व्यापार के लिये उत्तर की ओर मत जाओ ॥६॥

उत्तर का पानी विष जैसा हानिकारक होता है और दौड़कर कलेजे में लगता है ॥७॥

हे स्वामी ! उत्तर का पानी पीकर यदि तुम कहीं मर गये, तो मैं तो अनाथ हो जाऊँगी ।।८।।

हे प्रियतम ! मैं अपने दाँत कटवाकर उससे कोठा पटवा दूँगी। उसमें अपनी छाती का वज्र ऐसा किवाड़ा लगा दूँगी ।।९।।

दोनों आँखों के बीच बाज़ार लागाऊँगी। तुम घर ही में व्यापार करो ।।१०।।

हे मेरे नायक ! बँवरि (एक वृक्ष का नाम) के कोल्हू में बेल या बबूर की जाठ हो। उस पर जैसे ढेंकुवा पिहिकता (रोता) है, वैसा ही मेरा हृदय पिहिक रहा है ।।११,१२।।

आधी रात होने पर पति ने कँधेली (बैल पर लादी जानेवाली बोरी) ठोंकी। उस समय मेरी छाती दहल उठी ।।१३।।

मेरी छोटी ननद ने मुझे चुटकी काटकर जगाया और कहा—तुम्हारा बनजारा तो जा रहा है ।।१४।।

हे नायक ! जिसकी दृष्टि ऊँची है, जिसके घर में कुलवंती स्त्री है ।।१५।।

वह व्यापार के लिये विदेश क्यों जाता है ? उसे तो घर ही में एक का सवाया हो जाता है ।।१६।।

इस गीत मे उन वृक्षों के नाम भी आ गये हैं, जिनसे कोल्हू और उसके अंग-प्रत्यंग मज़बूत बनते हैं।

अन्त में नज़र ऊँची होनेवाली बात बड़े महत्त्व की है। बहुत प्राचीन कवि देवीदास कहते हैं—

कीरति को मूल एक रैन दिन दान देबो
धरम को मूल एक साँच पहिचानिबो।
बढ़िबे को मूल एक ऊँचो मन राखिबो है,
जानिबे को मूल एक भली बात मानिबो ।।

ब्याधि मूल भोजन उपाधि मूल हाँसी 'देवी'
दारिद को मूल एक आलस बखानिबो।
हारिबे को मूल एक आतुरी है रन माँझ
चातुरी को मूल एक बात कहि जानिबो॥

'मन ऊँचा रखना' और 'नजर ऊँची रखना' एक ही बात है।

(४)

आजु के गैला भौंरा कहिया ले लौटबे कतिक दिना रे,
जोहौं तोरी बटिया कतिक दिना रे॥१॥
गनत गनत मोरी अँगुरी भल खियानी चितवत रे
मोरे नैनवाँ ढुरै अँसुवा कि चितवत रे॥२॥
एक बना गई हैं दूसरे बना गई हैं तीसरे बना रे
मिल्यो गोरू चरवहवा तीसरे बना रे॥३॥
गोरू चरवहवा तुहीं मोर भैया कतहूँ देखे रे
मोर भँवरवा परदेसिया कतहूँ देखे रे॥४॥

हे प्रियतम! आज के गये हुये तुम फिर कब लौटोगे? कबतक मैं तुम्हारी बाट जोहती रहूँ? ॥१॥

दिन गिनते-गिनते तो मेरी उँगली घिस गई। राह देखते-देखते मेरी आँखों से आँसू गिरने लगे ॥२॥

स्त्री अपने प्रियतम को ढूंढने के लिये एक बन में गई, दूसरे में गई, तीसरे में गोरू चरानेवाले मिले ॥३॥

उनसे स्त्री ने पूछा—हे गोरू चरानेवाले भाई! तुमने कहीं मेरे परदेशी प्रियतम को देखा है? ॥४॥

(५)

एक फूल फूलै खड़ी दुपहरिया दूसर फूल फूलै आधी राति
हो गोरिआ॥१॥

फुलवा बिनि बिनि मैं रसा गरायों हौदा भरा रस होय
हो गोरिया ॥२॥
वही रसा का मैं चुनरी रँगायों, चुनरी भई रँगदार
हो गोरिया ॥३॥
चुनरी पहिरि मैं ओलर्यों ओसरवाँ पियवा क मन ललचाय
हो गोरिया ॥४॥
चोर की नैया पिया लुकि लुकि आवैं जेकरे मैं बारी बियाही
तेऊ पख फोरवा ॥५॥

एक फूल ठीक दुपहरी में फूलता है। एक फूल आधी रात में फूलता है ॥१॥

फूल बीन-बीनकर मैंने रस निचोड़वाया। एक नाँद भरकर रस हुआ ॥२॥

उसी रस में मैंने चूनरी रँगाई, जो बड़ी ही रंगदार हुई ॥३॥

चूनरी पहनकर मैं ओसारे में सोई। प्रियतम का मन ललचा रहा था ॥४॥

मेरे प्रियतम चोर की तरह छिप-छिपकर आते थे। देखो, जिनकी मैं विवाहिता हूँ, वे भी पाख फोड़नेवाले चोर की तरह आते हैं ॥५॥

हिन्दू-घरों में विवाह के बाद पति-पत्नी स्वतंत्रतापूर्वक मिलने नहीं पाते। देहात में तो पति को सचमुच चोर ही की तरह पत्नी के घर में जाने को मिलता है। पति की दशा में परिवर्तन की बड़ी आवश्यकता है।

(६)

सोवत सुगना कोइलरि हो रामा कोइलरि जगावै,
चलहु सुगनवा हमरे देस हो रामा ॥१॥
जौ हम चली कोइलरि तोहरे हो रामा तोहरे के देसवा,
कौन कौन फल खाब हो रामा ॥२॥

हमरे के देस सुगना तीन पेड़ हो रामा तीन पेड़ रुखवा,
अमवा महुलिया अनार हो रामा ॥३॥
आमा भल खाबै महुलिया हो महुलिया रस चुहकब
हो रामा,
झोंपवन कटबै अनार हो रामा ॥४॥
अपुना तो कोइलरि बैठीं अमवा हो रामा अमवा घवदिया,
हम का पठावैं गोहुवाँ खेत हो रामा ॥५॥
साठि बिगहवा क यक्कै हो रामा यक्कै गोहूँ खेतवा,
पसिया बेटौना रखवार हो रामा ॥६॥
एक बाली काट्यों दूसर बाली हो रामा तीसरे लपक्यों,
पसिया बेटौना मारै बान हो रामा ॥७॥
रोवैं कोइलरि छछन्द करैं हो अरे पखंड करैं कोइलरि,
मरिगा सुगनवाँ ऐसन मीत हो रामा ॥८॥
नथिया बेंचि चनना हो रामा चनना लकड़िया,
झुलनी बेंचि घियना आगि हो रामा ॥९॥
बीच डगरिया में चितवा हो चितवा रोपायँव,
जरै सुगनवा ऐसन मीत हो रामा ॥१०॥

सोते हुए सुए को कोयल ने जगाकर कहा—हे सुआ! मेरे साथ चलो ॥१॥

सुए ने कहा—हे कोयल! मैं तुम्हारे देश चलूँ, तो वहाँ कौन-कौन से फल खाऊँगा? ॥२॥

कोयल ने कहा—हे सुआ! मेरे देश में तीन पेड़ होते हैं—आम, महुवा और अनार ॥३॥

सुआ सोचता है—मैं आम खूब खाऊँगा। महुआ खूब चखूँगा और अनार के गुच्छे के गुच्छे काटूँगा ॥४॥

कोयल स्वयं तो आम के घौद पर बैठी । मुझे गेहूँ के खेत में भेज दिया ।।५।।

साठ बीघे का एक ही खेत था। पासी का लड़का रखवाली कर रहा था ।।६।।

मैंने गेहूँ की एक बाली काटी। दूसरी बाली काटी। तीसरी के लिये लपका ही था कि पासी के लड़के ने तीर मारा ।।७।।

कोयल रोने लगी। पाखंड करने लगी—हाय! मुआ ऐसा मित्र मर गया ।।८।।

कोयल कहती है—नथ बेंचकर तो मैंने चन्दन की लकड़ी खरीदी और झुलनी बेंचकर घी और आग ।।९।।

बीच रास्ते में चिता तैयार करा दी। हाय! सुवा ऐसा मीत जल रहा है ।।१०।।

कोई व्यक्ति किसी स्त्री के प्रेम में फँसकर, अपना घर छोड़कर, उसके साथ चला गया था। वहाँ वह घटना-चक्र से मर गया। उसी की करुण-कथा इस गीत में है।

(७)

अपने बपैया जी कै रेसमा दुलारी कि सेर सेर लौंगा चबाय
बहुअरि रेसमा ।।१।।
रेसमा क सोहै एक लील कै लहँगवा चोलिया सोहै बूटेदार
बहुअरि रेसमा ।।२।।
ओढ़ि पहिरि रेसमा चली हैं बजरिया रूमि झूमि परे कोतवाल
बहुअरि रेसमा ।।३।।
की तुँ हौ रेसमा रे सँचवा कै ढारी की तुहें गढ़ला सोनार
बहुअरि रेसमा ।।४।।
दढ़िया मैं जारों भैया तोर कोतवलवा मनइउ का गढ़ला सोनार
बहुअरि रेसमा ।।५।।

जनम दिहिन मोर माई रे बपवा सुरति दिहिन भगवान
बहुअरि रेसमा ॥६॥

रेसमा अपने बाप की ऐसी दुलारी थी कि सेर-सेर भर लौंग चबाया करती थी ॥१॥

रेसमा को नीले रंग का लहँगा और बूटेदार चोली बहुत खिलती थी ॥२॥

पहन-ओढ़कर रेसमा बाज़ार को गई। वहाँ उस पर कोतवाल लट्टू हो गया ॥३॥

कोतवाल ने पूछा—हे रेसमा! क्या तुम साँचे में ढाली गई हो? या सोनार ने तुम्हें गढ़ा है? ॥४॥

रेसमा ने कहा—अरे कोतवाल! तेरी दाढ़ी जल जाय। भला, आदमी को भी कहीं सुनार गढ़ता है? ॥५॥

मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म दिया है और भगवान ने रूप दिया है ॥६॥

(८)

बेरिया क बेर तुहैं बरजौं कुरमियवा,
मनगौ उखुड़िया जिन बोया हो लालनवाँ ॥१॥
चारि महीना कुरमी खेते खरिहनवाँ,
जड़वा बितावैं कोल्हुअरियाँ हो लालनवाँ ॥२॥
सोरहो सिंगार कै के गई कोल्हुअरवाँ,
कुरमी लुकाने पतउरवाँ हो लालनवाँ ॥३॥
पैयाँ मैं लागौं भैया बरदा तिलँगिया,
सैला तोराय घर आओ हो लालनवाँ ॥४॥
सैला तो हमरा कुरमिन बेलवा बबुरवा,
कैसे क तोराय घर आओं हो लालनवाँ ॥५॥
टुटतै ढेंकुवा फुटतै कपरवा,
हरदी ओढ़रे घर अउतैं हो लालनवाँ ॥६॥

कूल्ह तोरा टूटे जाठि तोरी फाटे,
रस बहि लागै पौदरवाँ हो लालनवाँ ॥७॥

हे कुरमी ! मैं बार-बार तुमको रोकती हूँ कि ईख मत बोओ ॥१॥

चार महीना तो तुम खेत और खलिहान में रहते हो, और जाड़ा कोल्हुवारे में बिता देते हो ॥२॥

सोरह सिगार करके कुरमिन कोल्हुवारे में गई। उसे देखकर कुरमी पत्तों में लुक गया ॥३॥

कुरमिन विफल-मनोरथ होकर बैल से कहने लगी—हे बैल भैया ! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। तुम अपना सैला तुड़ाकर घर आओ, ताकि तुम्हें पकड़ने के लिये कुरमी भी घर आये ॥४॥

बैल ने कहा—हे कुरमिन ! हमारा सैला तो बेल और बबूल का है, अर्थात् मजबूत लकड़ी का है। उसे कैसे तोड़कर घर आऊँ ? ॥५॥

तब कुरमिन आप ही आप कहने लगी—यह ढेंकुआ टूट जाता और कुरमी का कपाल फट जाता तो हल्दी लगाने के लिये वह जरूर घर आता ॥६॥

फिर झुझलाकर कहती है—तेरा कूल्हा टूट जाय, तेरी जाठ फट जाय, तेरी ऊख का रस बहकर पौदर में चला जाय ॥७॥

इस गीत में कोल्हू के सम्बन्ध के कई शब्द आये हैं। जैसे कोल्हुवार, अर्थात कोल्हूबाड़ा—जहाँ कोल्हू-सम्बन्धी काम-काज होते हैं। पतउर—वह स्थान जहाँ भट्ठे में झोंकने के लिये सूखे पत्ते जमा रहते हैं। सैला—एक लकड़ी जो बैल की गर्दन को रोके रखती है। ढेंकुआ—एक लकड़ी जो कोल्हू के बीच में खड़ी लकड़ी के नोकदार सिरे से लगी रहती है और कभी छूटकर गिरती है तो कोल्हू चलाने वाले के सिर पर आ पड़ती है। साथ ही यह भी मालूम हो गया कि सैले बेल या बबूल की लकड़ी के बनते हैं। यहाँ तक तो शिक्षा की बातें हुईं। अब मूल विषय पर आइए। कुरमी (खेती करनेवाली एक जाति-विशेष) बारहों

महीने खेत ही में पड़ा रहता है। ईख की खेती में पूरे साल भर मेहनत करनी पड़ती है। युवती कुरमिन बहुत रोकती है कि ईख की खेती मत करो, पर कुरमी मानता ही नहीं। कुरमिन बेचारी कहाँ तक पति का वियोग सहे। आखिर को एक रात को वह सोलह शृङ्गार करके अपने दुलहे के पास जा पहुँची। कुरमी कोल्हू हाँक रहा था। भला, उसे स्त्री के साथ हँसने-बोलने की कहाँ फ़ुरसत? वह पतौरे में जा छिपा। कुरमी की स्त्री की बुद्धि ही कितनी? उसे पति को रिझाने की कला क्या मालूम? वह बैल से प्रार्थना करने लगी—तुम मैला तोड़कर घर भाग आओ। और यह मनाने लगी कि ढेंकुआ कहीं टूटता और बालम का सिर फूटता तो वह चोट पर हल्दी लगाने के लिये ही घर आता।

(९)

पैड़ तेरी सुहाई रै भाई बधिये!
कधी पातर नाचन आई रै—धोरी मेरा चालता चलो॥१॥
पैड़ तेरी में गारा रे भाई बधिये!
कधी सावन बरसै सारा रै—धोरी मेरा चालता चलो॥२॥
साड़ सावन के खड्ड खाये रे भाई बधिये!
वह बल कहाँ गँवाये रै—धोरी मेरा चालता चलो॥३॥
कुँड़ी आई भागों रे भाई बधिये!
कधी बाँधे बैल के भागों रै—धोरी मेरा चालता चलो॥४॥
कोठे ऊपर कोठरी रै, उसमें काला नाग।
काटे से तो बच गई रै, अपने पिया के भाग॥
धोरी मेरा चालता चलो॥५॥
कोठे ऊपर कोठरी रे, खड़ी सुखाऊँ केस।
सैयाँ दिखाई दे गया रै धरे जोगी का भेस।
मैं सैयाँ के सँग चली, धरि जोगिन का भेस॥
धोरी मेरा चालता चलो॥६॥

काया की किश्ती बनी रै, माया की हुनियार।
उठा भँवर गुंजार कै रै, नैया घेरी आय॥
धोरी मेरा चालता चलो ॥७॥
राम बढ़ाये सब बढ़ै रे, बल कर बढ़ा न कोय।
बल करके रावण बढ़ा, छिन में दिये खोय।
धोरी मेरा चालता चलो ॥८॥
गंग जमन की रेती रै,
अरे ईख बिना क्या खेती रे—धोरी मेरा चालता चलो ॥९॥
(बिजनौर)

हे बैल! तेरी 'पैड़' (चक्कर) मुझे बड़ी सुहावनी लगती है। ऐसा जान पड़ता है कि पातर (नाचनेवाली वेश्या) नाचने आई है। हे मेरे बैल! चले चलो ॥१॥

बैल भाई! तुम्हारी पैड़ से रस ऐसा चूता है, जैसे सावन बरस रहा है। हे मेरे बैल! चले चलो ॥२॥

हे बैल भाई! असाढ़-सावन के खर तुमने खाये थे, वह बल तुमने कहाँ गँवा दिया? हे मेरे बैल चले चलो ॥३॥

हे बैल भाई! कुंडी (नाँद, जिसमें रस जमा होता है) में झाग उतरा आया है। क्या बायें बैल के भाग्य से ऐसा हुआ है? हे मेरे बैल! चले चलो ॥४॥

कोठे पर कोठरी है, उसमें काला नाग बैठा है। अपने पिया के भाग्य से मैं उसके काटने से बच गई। हे मेरे बैल! चले चलो ॥५॥

कोठे पर कोठरी है। मैं खड़ी होकर केश सुखा रही थी कि मेरा सैयाँ जोगी के भेस में मुझे दिखाई दे गया। मैं जोगिन का भेस धरकर उसके साथ हो ली। हे मेरे बैल! चले चलो ॥६॥

काया की नाव में माया की पतवार लगी है। भौंर बड़े वेग से उठा है। उसने मेरी नाव घेर ली है। हे मेरे बैल! चले चलो ॥७॥

सब राम के बढ़ाने ही से बढ़ते हैं, अपने बल से कोई नहीं बढ़ता। अपने बल पर रावण बढ़ा, उसे राम ने पलभर में नष्ट कर दिया। हे मेरे बैल! चले चलो ॥८॥

ईख न बोये, तो खेती क्या है? गंगा और यमुना की रेती है। हे मेरे बैल! चले चलो ॥९॥

इस गीत में अपने बैलों के लिये 'भाई' का प्यारा सम्बोधन, दायें और बायें दोनों बैलों के लिये कुछ रसीले ताने, पति का अपनी प्यारी पत्नी के लिये जोगी होना, पत्नी का उसके साथ जोगिन होकर चल देना, भव-सागर के तूफान का अनुभव, राम में दृढ़ आस्था और अन्त में किसान के लिये गन्ने की खेती का महत्व आदि अनेक बातें ध्यान देने की हैं।

वसन्त-ऋतु के गीत

वसन्त के गीत वसन्त-पंचमी ही से शुरू हो जाते हैं। गाँव के लोग ज्यादातर रात के समय महल्ले में किसी पड़ोसी की बैठक में जमा हो जाते हैं और देर तक ढोलक, मजीरा और करताल पर होली, चौताल आदि गाने गाया करते हैं। फागुन में कबीर भी गाया जाता है, पर यह बैठकर नही गाया जाता, और न इसके लिये किसी बाजे की जरूरत होती है। इसके भाव और शब्द ऐसे अश्लील होते हैं कि उन्हे लिखने मे भी शर्म मालूम होती है। इसमें ज्यादातर स्त्री-पुरुषों के संभोग का वर्णन होता है। फागुन में स्त्री को देखते ही लोग लाज-शरम सब धोकर पी जाते हैं। खैरियत इतनी ही है कि होली के बाद फिर कोई कबीर नही गाता। कहीं यह सालभर गाया जाता तो स्त्रियों का तो राह चलना कठिन हो जाता।

फागुन में प्रायः सभी गीत शृंङ्गार-रस के होते हैं। वसन्त-ऋतु में नवीन रस की वृद्धि होती भी है। अतएव उसका प्रमाण किसानों के गीतों में मिलना बिलकुल स्वाभाविक है।

वंसत के गीत चैत तक चलते हैं। चैत के गीतों के स्वर फागुन के गीतों के स्वर से भिन्न होते हैं। चैत के गीतों के स्वर मे विशेष कोमलता होती है।

यहाँ वसंत-ऋतु के गीतों के कुछ नमूने दिये जाते हैं:—

चौताल

(१)

पूजन चली गौरि भवानी, जनक सुकुमारी।
फल वो फूल दूब दधि अच्छत धरि कँचन की थारी॥
सिया सङ्ग एक सखी सयानी सोइ देखि गई फुलवारी॥१॥

वाही समय सुमन बन देखन गये रहे दोउ भाई।
देखो सखि अतुलित दोउ बालक,
तहाँ काम कोटि छबि छाई ॥२॥
भाँति भाँति की पाँत लगी है, रुचिर फुली फुलवारी ॥
कोकिल बेनु सुधा सम बोलत,
तहाँ घूमि रहे बनवारी ॥३॥
कठिन कठोर पिनाक शम्भु के पिता परन अति भारी।
तुलसिदास बलि आस चरन के हो,
तहाँ कठिन स्वयम्बर ठानी ॥४॥

(२)

मन मुदित सकल महतारी, निरखि सुत चारी ॥टेक॥
कौसिल्ला कैकई सुमित्रा हिय हरखाय दुलारी।
बार बार पय पान करावत मनि बसन अनेकन बारी। निरखि०।
कबहु पालने घालि झुलावत गावत राग रसारी।
कबहुँक लै उछंग मुख चूमत घूमत निज भवन मँझारी। निरखि०।
नाम धराय छेदाय कान सब जाति करम करि डारी।
नृप दसरथ दै दान द्विजन कहँ पूजत गुरु गौरि पुरारी। निरखि०।
जोगवत मनहुँ प्रान निसि बासर सब गृह काज बिसारी।
तुलसिदास सब नाचत गावत सुर मुनि नर दै दै तारी। निरखि०।

होली

आइउँ पिताजी की चोरी, भला केउ रँग न छाँड़ै।
पहिलिन होरी ससुरजी से खेल्यों
खेल्यों घुँघुटवा की ओट ॥भला०॥

दुसरिन होरी जेठजी से खेल्यों
खेल्यों बरोंठवा की ओट ।।भला० ।।
तीसर होरी देवरजी से खेल्यों
खेल्यों नयनवा की ओट ।।भला० ।।
चौथी होरी बलमजी से खेल्यों
खेल्यों जोबनवा की ओट ।।भला० ।।

चैती

(१)

सुगना बोलै रे हमरी आटरिया, हो रामा।
कागा बोलै कोइली बोलै अरे बोलेला भिंगरजवा, हो रामा।
सुगना० ।।
का तूँ कागा बोलिया बोले, अरे, बलमा परदेसवाँ हो रामा।।
सुगना० ।।

(२)

काहे फिरत बौरानी हो रामा, सखि नैहर में।
आइ गये तोरे गौने क दिनवाँ बहुत रहत अलसानी हो रामा।
खेलत खात बरस बहु बीते सो सब ह्वैहै कहानी हो रामा।।

(३)

कौना मास फूलेला गुलबवा हो रामा,
कि कौना रे मासे ।।
बेला फूले चमेली फूले अवरु फूलेला कचनरवा हो रामा ।।
गेंदवा जो फूले रामा माघ रे फगुनवाँ
चैत मासे फूलेला गुलबवा हो रामा ।।

कबीर

अररररररर—कबीर।
संतौ सुनि ल मोरि कबीर।
पलँग बिछौना सरग पठावैं, जब नर करैं सराध।
पलँग क वस्तु न दान देत कोउ, कैसे मिटिहै साध।
भला, हम सरग सोइ के का करबै॥

ग्राम-कथायें

ग्राम-गीतों में गृहस्थ के एक कुटुंब के मन की तरंगों के मिले-जुले चित्र मिलते हैं, और ग्राम-कथाओं में एक-एक व्यक्ति का चरित्र अंकित होता है।

गाँवों में छोटी और बड़ी अनेक तरह की कथायें प्रचलित हैं। कुछ में किसी के प्रेम और विरह की और कुछ मे सतीत्व-रक्षा, वीरता, शरणागत की रक्षा, वैराग्य और आत्मत्याग की कथायें होती हैं।

कुछ सुप्रसिद्ध प्राचीन कथाओं के भी गीत मिलते हैं। जैसे, सरवन, सीता-वनवास, कृष्ण-सुदामा, गोपीचंद भरथरी और राजा ढोलन आदि।

गाँव में जब कोई अद्भुत घटना घटती है, तब तत्काल उसके गीत भी बन जाते हैं। शायद ही इस सूबे का कोई पुराना गाँव ऐसा मिले, जहाँ कोई न कोई घटना गीत-बद्ध न हुई हो।

कहीं-कहीं लड़ाइयों के गीत भी मिलते हैं। जैसे, सुलतानपुर जिले में कालाकाँकर के राजा और गोरखों की लड़ाई का गीत, जो १८५७ में हुई थी, मिलता है।

सती होनेवाली या सत की रक्षा के लिये किसी तरह प्राण दे देनेवाली देवियों के गीत तो इफरात मिलते हैं।

ग्राम-कथाओं के गीत चक्की पर और खेत निराते समय भी गाये जाते हैं।

यहाँ नमूने के तौर पर कुछ गीत दिये जाते हैं:—

(१)

कहवाँ उपजी पुरइन कहवाँ घोंघिला सिँवार।
कहवाँ उपजे खँड़ेरइया उधैभवना के बाप ॥१॥
तलवै उपजी पुरइन नदिया घोंघिला सिँवार।
माया कोखी उपजे खँड़ेरइया उधैभवना के बाप ॥२॥
मायाजी पोवा है पूरी बहिनी औटा है दूध।
खाइ न लेउ खँड़ेरइया जाइ क है बड़ी दूर ॥३॥
पहिलै कौर उठाइन निकला माछी औ बार।
दूसरै कौर उठाइन तो अहिरै लावा गोहार ॥४॥
छिंकतै घोड़वा पलानेनि छिकतै भे असवार ॥५॥
छिँकतै पैठे रन में ह्वैगे गीध मसान।
गरुहे तो राजा तिलवई ॥६॥
घोड़वा के काटौं चारों खुरी दनवाँ विष देउँ मिलाय।
कहवाँ गवाँये खँड़ेरइया, गरुहे तो राजा तिलवई ॥७॥
काहे कटबे चारो खुरी काहे दनवाँ विष देउ मिलाय।
तोहरे पुतवा चुलबुल पैठें रन घंघार,
ह्वैगे गीध मसान। गरुहे तो राजा तिलवई ॥८॥
पइयाँ में लागौं सासु बढ़ैतिन,
तोहरी पेटरिया में चुंदरी मोहिं चुनि पहिराव।
मोहिं तो चले इन्द्रासन तोहरे पुतवा के साथ।
मारि परौं जमधरना कै उबही तरवार।
गरुहे तो राजा तिलवई ॥९॥
ननद गुसाँइन भौजइया तोहरी लागौं
तोहरी कजरौटी में काजर, मोरि आँखि भरि देउ।

मोंहि तो चले तोहरे भइया के साथ,
मारि परौं जमधरना कै उबही तरवार।
गरुहे तो राजा तिलवई ॥१०॥
जेठानी गुसाँइन देवरनिया तुमही इतना जस लेउ।
तोहरी अँगरौटी में सेंदुर मोरि माँग भरि देउ।
मोंहि तो चले तोहरे देवरा के साथ।
मारि परौं जमधरना के उबही तरवार।
गरुहे तो राजा तिलवई ॥११॥
रोवैं अटहिन पटहिन रोवैं कुँइयाँ पनिहारि।
रोवै लछिया तँबोलिन जेकर पनवा सुखान
गरुहे तो राजा तिलवई ॥१२॥
(रायबरेली)

पुरइन कहाँ उपजी? घोंघा और सेवार कहाँ उपजे? और उदय-भानु के पिता खाँड़ेराय कहाँ जन्म लिये? ॥१॥

ताल में पुरइन उपजी; नदी में घोंघा और सेवार उपजे; और माता की कोख से उदयभानु के पिता खाँड़ेराय ने जन्म लिया ॥२॥

माँ ने पूरी बनाई; बहन ने दूध औटा; हे खाँड़ेराय! खा न लो? बड़ी दूर जाना है ॥३॥

खाँड़ेराय ने पहला कौर उठाया। उसमें मक्खी और बाल निकले। दूसरा कौर उठाया, उसी वक्त अहीर ने 'गोहार' (गायों के हरण किये जाने की पुकार) लगाई ॥४॥

घोड़ा पलानते वक्त और घोड़े पर सवार होते वक्त भी छींक हुई। खाँड़ेराय रण में पैठे, तब भी छींक हुई। वे गीधों और श्मशान के आहार हो गये। हाय! तिलवई के गर्वीले राजा ॥५,६॥

घोड़ा खाली पीठ रण से भागकर आया। उसे देखकर खाँड़ेराय की माँ ने कहा—घोड़े! मैं तुम्हारे चारों सुम कटवा दूंगी और दाने में

विष मिलवा दूँगी। तूने तिलवई के गर्वीले राजा खाँड़ेराय को कहाँ गँवाया ? ॥७॥

घोड़े ने कहा—चारों सुम क्यों कटाओगी ? और दाने में विष क्यों मिलवाओगी ? तुम्हारे पुत्र बड़े चुलबुले हैं। बिना आगा-पीछा देखे भयंकर रण में पिल पड़े थे। हाय ! तिलवई के गर्वीले राजा गिद्धों और श्मशान के आहार हो गये ॥८॥

खाँड़ेराय की स्त्री ने कहा—हे बढ़ैतिन (बड़ा हित करनेवाली) सास ! तुम्हारी पेटारी में चूंदरी है, चुनकर मुझे पहनाओ। मुझे तो तुम्हारे पुत्र के साथ इन्द्रलोक जाना है। या तो जमधरना से या खुली तलवार से मारकर अपना अन्त कर लूगी। हाय ! तिलवई के गर्वीले राजा ॥९॥

हे ननद ! मैं तुम्हारी भौजाई हूँ। अपने कजरौटे का काजल मेरी आँखों में भर-भरकर दे दो। मुझे तुम्हारे भाई के साथ जाना है। या तो जमधरना से या खुली तलवार से मैं अपना अंत करूँगी। हाय। तिलवई के गर्वीले राजा ॥१०॥

हे जेठानी ! मैं तुम्हारी देवरानी हूँ। इतना यश लो कि अपनी इँगुरौटी के सिंदूर से मेरी माँग भर दो। मुझे तुम्हारे देवर के साथ जाना है। हाय ! तिलवई के गर्वीले राजा ॥११॥

महलवालियों से लेकर पनिहारिन तक रो रही हैं। लछिया तम्बोलिन भी रो रही है, जिसका पान अब सूख जायगा। हाय ! तिवलई के गर्वीले राजा ॥१२॥

जान पड़ता है, खाँड़ेराय की स्त्री सती हो गई। गाय की गोहार लगना पुराने समय के क्षत्रियों का एक ऐसा कर्तव्य माना जाता था, जिसे कोई अच्छे कुल का क्षत्रिय छोड़ नहीं सकता था। खाँड़ेराय की आलोचना घोड़े ने कर ही दी है। पर घोड़े और गधे यह नही समझ सकते कि शत्रुओं से अकेले लड़कर खाँड़ेराय कहीं विजयी होते तो उनको कितना सुख होता।

(२)

राजा अजीतसिंह के भई एक कन्या,
नाम धराइन दौलत देवी हो राम ॥१॥
बारह बरिस राजा पोखरा खोदावैं,
वहिमाँ पानी नाहीं निकरे, हो राम।
धाउ तोहूँ नौवा धाउ तोहूँ बरिया,
काशीजी के पडित लै आवो हो राम ॥२॥
बैठौ पंडित चन्दन चौकिया,
बाँचहु करम की रेख हो राम।
थार भरि मोती सुरुख दुसाले
सोने का टका दछिना देहौं हो राम ॥३॥
लौटि पौटि पंडित पोथिया बिचारैं,
पोखरा माँगै दौलत बेटी हो राम।
पोथी बाँचत पडित अँसुवा जो ढारैं,
राजा से कहत जीभ दाबि हो राम ॥४॥
कहा कहौं मैं राजा अजीतसिंह,
पोखरा माँगै दौलत बेटी हो राम।
द्वारे से राजा भीतर गये धीरे धीरे,
बैठे सीस नवाय हो राम ॥५॥
पूँछन लागीं अजीतसिंह रनियाँ,
कौन संकट राजा जियरा हो राम।
काह कहौं मैं रनिया सतवन्ती,
पोखरा माँगइ दौलत बेटी हो राम ॥६॥
दसहि महीना रानी उदर में राख्यो,
सात सोत दूध पिआयहु हो राम।

दहिने हाथ रानी दौलत उठाइन,
राजा को दिहिन पकराय हो राम ॥७॥
धावो तुम नाउनि धावो तुम बारिनि,
नगर बुलौवा दै आवो हो राम।
पोखरा के आसपास लागी कचेहरी,
राजा कुस पैंती पहिरिन हो राम ॥८॥
पंडित बैठिके सँकलप बोलैं,
दौलत पोखरा तर बोरिन हो राम।
जैसेन दौलत को पोखरा में डारिन,
पनियाँ उठो हहराय हो राम ॥९॥
पोखरा के आसपास रोवैं अजीतसिंह,
हमरे अकेवल धेरिया हो राम।
पोखरा के आसपास समुझावैं सतवन्ती,
नाम तुमरा दौलत राखिन हो राम ॥१०॥

(सीतापुर)

राजा अजीतसिंह के एक कन्या हुई; जिसका नाम दौलत देवी रक्खा गया ॥१॥

राजा ने बारह वर्ष तक एक तालाब खुदवाया, पर उसमें पानी नहीं निकला। हे नाऊ! दौड़ो; हे बारी! दौड़ो; काशीजी से पंडित बुला लाओ ॥२॥

हे पंडित! चंदन की चौकी पर बैठो और मेरे भाग्य में क्या लिखा है, बाँचो। आपको थाल भरकर मोती, लाल रंग का दुशाला और सोने की मुहरें दक्षिणा में दूँगा ॥३॥

पंडित ने पन्ने उलट-पुलटकर पोथी में देखा कि तालाब तो दौलत देवी की बलि माँगता है। पोथी बाँचकर पंडित आँसू गिराने लगे और जीभ दबाकर उन्होंने राजा से कहा ॥४॥

हे राजा अजीतसिंह ! मैं क्या कहूँ ? तालाब तो दौलत बेटी की बलि माँगता है। राजा यह सुनकर बाहर से धीरे-धीरे भीतर गये और सिर नवाकर बैठे ।।५।।

अजीत सिंह की रानी पूछने लगी—हे राजा ! जी पर क्या संकट है ? राजा ने कहा—हे सतवंती रानी ! मैं क्या कहूँ ? तालाब दौलत बेटी की बलि माँगता है ।।६।।

रानी ने दस महीने तक दौलत को पेट में रक्खा और सात सोतों का दूध पिलाया था। उसे दाहिने हाथ से उठाकर रानी ने राजा को पकड़ा दिया ।।७।।

हे नाउन ! हे बारिन ! दौड़ो और नगर में बुलौवा दे आओ। तालाब के आसपास सभा जुड़ गई और राजा ने कुश की पैंती पहन ली ।।८।।

पंडित ने बैठकर संकल्प का मंत्र पढ़ा और दौलत को तालाब में डुबो दिया। जैसे ही दौलत को तालाब में डुबोया गया, वैसे ही पानी हहराकर निकला ।।९।।

तालाब के आसपास अजीतसिंह रो रहे हैं—हाय ! मेरे तो एक कन्या ही थी। तालाब के आसपास सतवंती रानी राजा को समझा रही है कि तुम्हारा नाम दौलत बेटी ने रख लिया ।।१०।।

इस देश में कभी सती होने और बलि-प्रदान की प्रथा भी थी। दोनों प्रथायें अब अँग्रेजी राज में गैरक़ानूनी ठहरा दी गई और प्रायः बन्द हो गई हैं। पर गीतों में उनकी यादगार अब भी कायम है। ऊपर के गीत में तालाब में पानी निकालने के लिये एक कन्या की बलि दिये जाने का वर्णन है।

(३)

सात बहिनि चन्दा सिँकिया जे चीरैं,
सिँकिया चिरैं ए रे रुदौली के घाट जी।
आइगै लस्कर मुगल कै
चन्दा परी बन्दिखान जी ।।१।।

अब रितु आई गोरी भींजन की
चन्दा परी बन्दिखान जी।
रुपिया पइसा क ढेर लागी हैं,
मोहरा जे लागी हैं लाख जी ॥२॥
छोड़ि न देउ चन्दा बेटी,
बेटी छोड़ि देव हमार जी।
रुपिया न लेबै पइसा न लेबै
मोहरा न लेबै लाख जी।
एक न छोड़बइ चन्दा रानी
जेहि सँग करब बिआह जी ॥३॥
हँसि हँसि मोगला डोलिया फनावै
रोई रोई चन्दा से रहि नहिं जाइ जी।
जाहु ददुल घर आपने
राखिहौं पगड़ी तुम्हार जी ॥४॥
डोलिया फँदाय मोगला लै जे गया,
लैगा अपने मकान जी।
गेहूँ चना कै रोटिया पोआवा
उपराँ से गइया कै माँठ जी।
जेंइ न ले चन्दा रानी रानी इहै जेवनार जी ॥५॥
रोय रोय चन्दा रानी ये कहैं
सुन मोगले मोरी बात जी।
हम धन सीझी रसोइयाँ
उठि के करहु जेवनार जी ॥६॥
हँसि हँसि मोगला लकड़ी मँगावै,
रोइ रोइ चन्दा से रहि नहिं जाय जी।

चिता बारि चन्दा जरि गईं
चन्दा तो होई गईं राख जी ॥७॥
चन्दा कै चिता अस धधकै
धूँवा से भरिगा भँडार जी।
जरिगै मोगला कै दाढ़ी
उहौ होइगा तमाम जी ॥८॥

(बाराबँकी)

चंदा अपनी छः बहनों के साथ रुदौली के घाटपर सीक (सरकंडे) चीर रही थी, इतने में मुगलों का लश्कर आ पहुँचा और उन्होंने चंदा को पकड़ लिया ॥१॥

इधर वर्षा-ऋतु आगई; उधर चंदा बन्दीखाने में पड़ी है। रुपयों की ढेरी लगी है। लाख मुहरें रक्खी हैं। हे मुग़ल ! मेरी बेटी को छोड़ दो ॥२॥

न हम रुपया लेंगे, न पैसा; और न लाख मुहरें। चंदारानी को हम नही छोड़ेंगें। इसके साथ व्याह करेंगे ॥३॥

मुग़ल हँस-हँसकर डोली तैयार करा रहा है और रोते-रोते चंदा से रहा नही जाता है ॥४॥

चंदा ने कहा—हे दादा ! अपने घर जाओ, मै तुम्हारी पगड़ी की लाज रक्खूंगी ॥५॥

मुगल डोली में बैठाकर चंदा को अपने घर ले गया। गेहूँ और चने की रोटी बनवाकर उसने ऊपर से उस पर गाय का मट्ठा डलवाया और कहा—हे चंदारानी ! यह जेवनार जें न लो ? ॥५॥

रो-रोकर चंदारानी ने कहा—हे मुग़ल। मेरी बात सुन। मै खाना बनाऊँ और तुम उठकर खाओ ॥६॥

हँस-हँसकर मुग़ल ने ईंधन मँगाया। चंदा से रोते-रोते रहा नहीं जाता। चंदा चिता जलाकर जल मरी और राख हो गई ॥७॥

चंदा की चिता ऐसी धधकी कि घरभर में धुँवा भर गया। मुगल की भी दाढ़ी जल गई और वह भी मर मिटा ॥८॥

यह गीत उस जमाने की याद दिलाता है, जब मुग़लों के अत्याचार से गाँवों के हिन्दू काँप उठे थे। पुरुष इतने निर्बल हो चुके थे कि जल मरने डूब मरने या कटार खाकर मर जाने के सिवा कन्याओं को और कोई सहारा ही न था।

ऐसे गीतों में पुराने समय की कन्याओं की धर्म-रक्षा की बड़ी ही मर्म-वेधक कथायें सुरक्षित हैं।

(४)

रामा सखिया दीन दोठे चनवा, चनव लै गयों भरसइयाँ।
रामा गर्भा के मातलि भुजइन चनवा दीहिस झलाय ॥१॥
रामा सासुजी क पूता हरवहिया चनवा लै गयौं हरवहिया।
रामा सासुजी के पुतवा बड़ा रिसिहा
चनवा दिहिन छितराय ॥२॥
रामा चनवा बीनत होइगे साँझ,
रामा सासु गरिआवें, बीरन भइया।
काहे के सासु गरिआवा बीरन भइया,
नइहरे में बीरन दुलरुआ ॥३॥
देउ न मोरि सासु सोने के घइलना
हम सागर पनिया को जावँ।
रामा गगरी तो धरिन कगरवाँ
अपना बुड़ली सगरवा में ॥४॥
अपने महल चढ़ भइयाजी सोवें, माया एक सपंन
हम तो देखा, माया बहिन जे बुड़ली सगरवा ॥५॥
देउ न मोरे माया सोने के छड़िअवा,
माया बहिन खबरिया हम जावैं ॥६॥

सँझइन मोर भइया घोड़वा पलाने भोरवा भयें असवार।
एक बन गयें दुसर बन गये
तीसरे में पाइन सगरवा ॥७॥
घोड़वा तो बाँधिन कगरवाँ अपुवा तो बुड़लें सगरवा ॥८॥
एक बुड़ बुड़लें दुसर बुड़ बुड़लें
तीसरे में पाइन बहिनिया।
रामा जाँघ तोपि बहिनी के ठाड़ करें,
अँगने अहु के भीतरे सासुजी कहाँ गई बहिनि हमारि ॥९॥
तुमरी बहिन पूता पनिया के गईं
वहहीं लगावैं छठि मास ॥१०॥
एक ओरिया बैठे मोरे ससुरे के लोगवा
एक ओरिया बिरना अकेल।
तोहरा कहा बहिनी एकौ न मनबै
तोहसे किरिया हम लेब ॥११॥
हँकड़ौ न नगरा के लोहरा रामा
धरम करहिया गढ़ि लाव।
हँकड़ौ न नगरा के बढ़ई रामा,
रामा धरम चइलि चीरि ल्याउ ॥१२॥
एक ओरिया बैठे मोरे ससुरे के लोगवा,
एक ओरिया बिरना अकेल।
हँकड़ौ न नगरा के तेलिया धरम तेल पेरि ल्याउ ॥१३॥
बरै लागि अगिनी धधकि लागै तेलवा
रामा घुमरि घुमरि देइँ किरिअवा ॥१४॥
मुँहना पटुक दै के रोवै तिलँगवा
धन पति लिहिन हमारि।

मुहना पटुक दैके हँसैं बिरन भइया
बहिनी भलि पति राखिउ हमारि ॥१५॥
हँकड़ौ न नगरा के कँहरा
मोरि बहिनी जोगे डँडिया फन्नाउ।
हँकड़ौ न नगरा के सोनरा
मोरि बहिनी जोगे गहना लै आउ ॥१६॥
हँकड़ौ नगर रँगरेजवा
मोरि बहिनी जोगे चुँदरी लै आउ।
घूमि घूमि देखै भइया मुँहवा,
ओंठवा न खुसिया समाइ।
(झाँसी)

सखियों ने कुछ चने दिये। मैं चने लेकर भाड़ पर गई। अभिमानिनी भुजइन ने चने झौंस डाले ॥१॥

सासुजी के पुत्र हरवाही करते हैं। मैं चने लेकर उनके पास गई। सासजी के पुत्र बड़े क्रोधी हैं। उन्होंने चने फेंक दिये ॥२॥

चने बटोरने में शाम हो गई। सास मेरे छोटे भाई को गालियाँ देने लगीं। हे सास! मेरे छोटे भाई को गालियाँ क्यों देती हो? मेरे नैहर में उसका बड़ा दुलार होता है ॥३॥

हे सास! सोने का घड़ा दो न? मैं पानी के लिये तालाब पर जाऊँ। बहू ने गगरी तालाब के किनारे रख दी; और वह तालाब में कूदकर डूब गई ॥४॥

भाई अपने महल की अटारी पर चढ़कर सो रहा था। उसने एक सपना देखा कि बहन तालाब में डूब गई। उसने माँ से कहा ॥५॥

हे माँ! सोने की छड़ी दो न? मैं बहन की खबर लेने जाऊँगा ॥६॥

मेरे भाई ने शाम ही से घोड़ा पलानकर तैयार रक्खा और सबेरा

होते ही वह घोड़े पर सवार हो गया। एक बन पार कर गया, दूसरा बन पार कर गया, तीसरे बन में तालाब मिला ॥७॥

तालाब की कगार पर घोड़े को बाँधकर वह तालाब में डूबा। एक डुबकी ली, दूसरी डुबकी ली, तीसरी डुबकी में उसने बहन को पाया ॥८॥

जाँघ की आड़ में बहन को छिपाकर भाई ने पूछा—हे सास जी। आँगन में हो कि घर के भीतर ? मेरी बहन कहाँ गई ? ॥९॥

हे बेटा ! तुम्हारी बहन पानी लेने गई है। वह तो वही छः महीने बिताया करती है ॥१०॥

एक ओर मेरी ससुराल के लोग बैठे हैं; एक ओर मेरा भाई अकेला। भाई ने कहा—हे बहन ! मैं तुम्हारी एक बात न मानूँगा। मैं तुमसे शपथ लूँगा ॥११॥

नगर के लोहार को बुलाओ। हे लोहार ! धर्म की कढ़ाई गढ़कर लाओ। नगर के बढ़ई को बुलाओ। हे बढ़ई। धर्म का चैला चीरकर लाओ ॥१२॥

नगर के तेली को बुलाओ। हे तेली ! धर्म का तेल पेरकर लाओ। एक ओर मेरी ससुराल के लोग बैठे हैं, एक ओर मेरा भाई अकेला ॥१३॥

आग जलने लगी। तेल धधकने लगा। बहू उसके चारोंओर घूम-घूमकर, तेल में हाथ डाल-डालकर, शपथ देने लगी ॥१४॥

तिलंगा (बहू का पति) मुँह पर दुपट्टे का सिरा डालकर रोने लगा—हे धन ! तुमने मेरी पत ले ली। मुँह पर दुपट्टे का छोर रखकर मेरा भाई हँसने लगा—हे बहन ! तुमने मेरी पत रख ली ॥१५॥

नगर के कहारों को बुलाओ। कहारो ! मेरी बहन के लिये डाँड़ी तैयार करके लाओ। नगर के सुनार को बुलाओ। सुनार ! मेरी बहन के लिये गहना लाओ ॥१६॥

नगर के रँगरेज को बुलाओ। रँगरेज ! मेरी बहन के लिये चुँदरी ले आओ। घूम-घूमकर भाई सभावालों के मुँह देखता है। खुशी उसके ओठों में नहीं समाती ॥१७॥

हिन्दू-परिवारों में बहू के चरित्र पर बड़ी कड़ी दृष्टि रक्खी जाती है। कन्या की सच्चरित्रता की जिम्मेदारी उसके पिता और ससुर दोनों उठाते हैं। लेकिन अगर उसके चरित्र पर कोई कलंक लगता है, तो ससुरालवालों से ज्यादा उसके पिता और भाई लज्जा अनुभव करते हैं।

पुराने ज़माने में जलते हुए तेल में हाथ डलवाकर सत की परीक्षा ली जाती थी। कहा जाता है कि सच्चे का हाथ नहीं जलता था; भगवान जानें, इसमें सचाई कहाँ तक है। आज के जमाने में तो इस पर विश्वास ही नहीं जमता। पर इतना तो स्पष्ट है कि परीक्षा बड़ी कड़ी थी और उस परीक्षा में निष्कलंक साबित होना अवश्य गर्व की बात होगी। गीत में भाई की खुशी का ओठों में न समाना बिल्कुल स्वाभाविक है।

ग्राम-गाथायें

राह-चलतों के गीत छोटे-छोटे होते हैं; पर चौपाल में गाये जाने-वाले गीत बड़े लंबे-लंबे होते हैं। उनको ग्राम-गाथा या वीर-गाथा कहा जा सकता है। उनमें ज्यादातर वीर और शृङ्गार-रस होता है।

भारतवर्ष के हरएक प्रांत में गाथाएँ मिलती हैं। पंजाब में हीर-राँझा, मारवाड़ मे ढोला-मारू, उत्तर प्रदेश में आल्हा, बिहार में लोरिक और छत्तीसगढ़ में ढोला और रसालू बहुत ही लोकप्रिय गाथाएँ हैं। यहाँ आल्हा का संक्षिप्त परिचय दिया जाना है:—

आल्हा

उत्तर प्रदेश मे आल्हा एक कंठस्थ काव्य है। आल्हा का छंद, उसके गाने का स्वर, साथ के बाजे, सब में निरालापन होता है।

आल्हा वीर-रस-प्रधान काव्य है। यह गाँव की किसी बड़ी चौपाल में, यदि पानी न बरसता हो तो किसी खुले मैदान या बाग में, गवाया जाता है। आल्हा गानेवाले को गाँव के लोग घेरकर बैठ जाते हैं और उसके मुँह की ओर टकटकी लगाकर, उसके मुँह से निकली हुई एक-एक कड़ी का रस पीने लगते हैं।

आल्हा गाना आजकल एक पेशा-सा हो गया है। गानेवाले बरसात शुरू होते ही घर से निकलते हैं। गाँवों मे पहुँचकर किसी ज़मींदार या शौकीन सेठ-साहूकार के यहाँ डेरा डालते हैं। उनकी खोराक बँधी हुई है, एक रुपया रोज़ और दोनों वक्त पक्का खाना। गाँववालों को खबर हो जाती है, और आल्हा की ढोलक की एक खास तरह की पहचानी हुई आवाज़ सुनते

ही वे घर के काम-काज छोड़कर मीलों चलकर आ जुटते हैं। गानेवाला सुननेवालों से कुछ ऊँचे, खाट पर या तख्ते पर, बैठकर गाता है। ढोलक वह खुद बजाता है। ढोलक के साथ मजीरा भी कभी-कभी बजाया जाता है। मजीरा बजानेवाला ढोलक से भिड़कर बैठता है।

आल्हा का एक अध्याय 'पँवारा' कहलाता है। यही मराठी में 'पोवाड़े' कहा जाता है।

जितनी भीड़ गाँवों में आल्हा सुनने के लिये होती है, उतनी रामायण, महाभारत या भागवत सुनने के लिये भी नहीं होती। आल्हा को यह लोक-प्रियता उसकी सामयिकता के कारण मिली है। एक तो उसकी भाषा बिलकुल देहात की होती है; दूसरे विषय भी वीररस का होता है, जो सालभर तक खेतों में चुपचाप काम करते-करते थके हुये किसानों में नया रस भरता है। इससे आल्हा के लिये उनका आकर्षित होना बिलकुल स्वाभाविक है।

कहा जाता है कि पहले-पहल महोबे के राजा परिमाल के राज-कवि जगनिक ने आल्हा बनाया; पर आजतक उसकी कोई प्रति कहीं प्राप्त नहीं हुई। अब तो जितने गाने वाले हैं, सब अपना-अपना आल्हा अलग गाते हैं। इस तरह यह गले ही गले में एक चलता-फिरता महाकाव्य बन गया है, और संसार में शायद यह अपने ढंग का एक ही महाकाव्य है भी।

इस महाकाव्य का कोई स्थिर स्वरुप नहीं है। इससे यह कभी मर नहीं सकता। भाषा का चोला बदलता हुआ यह सदियों से, ७-८ सौ वर्षों से, समय के साथ चला आ रहा है।

आल्हा में महोबे के राजा परमाल के दो वीर सरदार आल्हा और ऊदल की लड़ाइयों के वर्णन गाये जाते हैं। दोनों भाई बड़े वीर थे और ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। उनका जिक्र 'पृथ्वीराज रासो' में भी मिलता है।

आल्हा में यद्यपि बावन लड़ाइयों का हाल गाया जाता है, पर वह कितना बड़ा काव्य है, इसका हद-हिसाब नहीं है। यह महीनों

गाया जाता है; तो भी कुछ गाने के लिये रह ही जाता है; क्योंकि गाने वाला होशियार हो तो वह छंद बनाता और गाता चलता है। आल्हा गानेवाले प्रायः अपढ़ होते हैं और यह सचमुच ताज्जुब की बात है कि वे कभी-कभी महाकवियों से ज्यादा ऊँची उड़ान ले लेते हैं।

आल्हा यद्यपि उस ज़माने का काव्य है, जब भारत में हिन्दुओं का राज्य था। पर आल्हा में कई मुसलमान भी बड़े सच्चे और बहादुर साथियों की तरह अपने मित्रों की सहायता करते हुए गाये गये हैं, इससे हिन्दू-मुसलमान दोनों आल्हा को बड़े चाव से सुनते हैं।

एकबार दिल्ली के राजा पृथ्वीराज ने बेतवा नदी के घाट पर कन्नोज के राजा जयचंद के भतीजे लाखन को घेर लिया था। लाखन ऊदल का बड़ा मित्र था और महोबे जा रहा था।

पृथ्वीराज की सेना बड़ी भारी थी। लाखन के साथी कुछ देर तक लड़कर भाग गये और लाखन पृथ्वीराज की सेना में घिर गया। यह खबर आल्हा-ऊदल की माता देवलदेवी को मिली, तब उसने अपने दोनों पुत्रों को लाखन की मदद के लिये ललकारा। उधर अकेले पड़कर भी लाखन ने बड़ी वीरता दिखलाई।—

यहाँ 'नदी बेतवै की लड़ाई' का एक अंश नमूने के तौर पर दिया जाता है :—

सुमिरन करके अजैपाल को, लैकै रामचन्द्र को नाम।
खींचि सिरोही लाखनि राना, समुहें गोल गये समुहाय।
जैसे भिड़हा भेड़न पैठै, जैसे सिंह बिड़ारै गाय।
तैसेइ लाखनि दल में पैठे, रन में कठिन करैं तरवारि।
पान तमोली जैसे कतरै, जैसे खेती लुनै किसान।
सुआ सोपारी जैसे कतरै, त्यों दल काटि करो खरिहान।
डेढ़ पहर भर चली सिरोही, नदिया बहीं रकत की धार।
देवि सारदा दहिने हुइ गईं, मुर्चा हटो पिथौरा क्यार।

अकिले लाखनिकी डपटिन में, कोई कुँवर न आड़ो पाँव।
भगे सिपाही दिल्ली वाले, अपने डारि डारि हथियार।
हियाँ की बातें हियनें छाड़ो, अब आगे को सुनौ हवाल।
घोड़ा प्यावन रुपना बारी, नदिया बितवै पहुँचो जाय।
पानी लाल देखि नदिया को, तब ऊँचे चढ़ि देखन लाग।
बिजुली चमकै ज्यों बादल में, तस रन चमकि रही तरवारि।
देखि हाल यह रुपना चलिभै, औ डेरन पर पहुँचो जाय।
देवै ठाढ़ी थी तम्बू में, सो रुपना से पूछन लागि।
काहे अनमन हो रूपन तुम, सो तुम साँची देउ बताय।
बोलो रुपना तब उदास हुइ, माता कछू कही ना जाय।
मनहि हमारे अस आवत है, मारे गये कनौजी राय।
बिकट लड़ाई भइ नद्दी पर, नदिया बही रकत की धार।
देवै चलि भइ तब तँबुआ से, औ ऊदन तें पहुँची जाय।
सूरत देखी जब माता की, ऊदन तुरतै कियो प्रणाम।
बोली देवै तब ऊदन से, बेटा सुनौ हमारी बात।
साथ तुम्हारे लाखनि आये, सो तुम अकिले दए पठाय।
खबरि लै आओ तुम लाखनि की, नदिया कठिन चलै तरवारि।
रुपना बारी से सुधि मिलि गइ, दल में घिरे कनौजी राय।
जो कहुँ लाखनि मारे जैहैं, तौ जग हुइहै हँसी तुम्हारि।
हम समुझायो बहु आल्हा को, उन नहिं मानी बात हमारि।
यह सुनि ज्वाब दओ ऊदन ने, माता समुझि लेउ मन माहि।
आल्हा पठवैं तो जावैं हम, जेठो भाई पिता समान।
बिन आज्ञा के हम ना जैहैं, माता बचन करो परमान।
बड़ो बीर हैं लाखनि राना, पांडव नकुल केर अवतार।
परिहैं असमो जब लाखनि को, तब वह खबर दिहैं पहुँचाय।

फिरि समझावौ रनि देवै ने, बेटा सुनो बात धरि ध्यान।
बारह रानिन को इकलौता, औ सोरह को सर्व सिंगार।
आस लकड़िया है जैचन्द को, सो तुम अकिले दए पठाय।
रानी तिलका ओ जैचन्द ने, सौंपो तुमहिं मान बिसवास।
सो तुम बैठे हौ सुख से यहँ, ऐसो तुम्हें मुनासिब नाहिं।
मित्र तुम्हारो मारो जैहैं, तुमको बार बार धिक्कार।
कही न मानत तुम माता को, हे कलजुगहा पुत्र हमार।
हुकुम न मानौ तुम दोनों ने, हमरे जीवन को धिक्कार।
अब हम जानी अपने मनमाँ, दोनौं पुत्र कपूत हमार।
देखौ करनी रामचन्द्र की, जिनको नाम प्रगट जग माहिं।
सौती माता की आज्ञा से, चौदह वर्ष रहे बन माहिं।
होती बिटिया जो मेरे यक, केहु राजा घर देति बियाहि।
कुम्मक लौती त्यहि राजा की, औ लाखनि को लेति बचाय।
सुनिके ऊदन लज्जित हुइ गए, औ माता से कहा सुनाय।
हमहिं बुलाओ नहिं लाखनिने, कैसे खबरि लेयँ हम जाय।
यह सुनि देबै उठि ठाढ़ी भइ, औ सुनमाँ पै पहुँची जाय।
हाल सुनाओ सब लाखनि को, औ आल्हा को कहो स्वभाव।
हम समुझाओ दोउ भैयन को, उन नहिं मानौ हुकुम हमार।
बात हमारी अब मानौ तुम, औ ऊदन को देउ पठाय।
यह सुनि सुनमाँ बघऊदन को, बाँदिहि भेजि लओ बुलवाय।
तुरत प्रणाम कियो ऊदन ने, सुनमाँ चौकी दई डराय।
बैठे ऊदन जब चौकी पर, तब सुनमाँ ने कही सुनाय।
माता देबै सी ना मिलिहैं, भाई न मिलैं बीर मलिखान।
मित्र कनौजी सो ना मिलिहैं, चाहै धरौ कोटि अवतार।
छाँड़े बैठक जिन जैचन्द की, छाँड़ी गङ्ग केर अस्नान।

छाँड़ो दर्शन फूलमती के, छाँड़ी महल पद्मिनी नारि।
संग तुम्हारो उन छाँड़ा ना, आये यहाँ पराये काज।
प्रीति फतिंगा को साँची जस, जो जरि जात दिया के साथ।
प्रीति कनौजी की साँची है, जिन नहिं तजो तुम्हारो साथ।
पूरे छत्री जो दुनियाँ में, सो दै देत आपनो प्रान।
लाखनि संकट सहत सीस पर, पै नहिं खबरि देत सकुचाय।
लावौ खबरि जाय नदिया की, जहँ घिर गये कनौजी राय।
नाहि होय इच्छा तुम्हरी जो, तौ तुम सुनो हमारी बात।
भेष जनाना धरि बैठो घर, हमका देउ ढालि तरवारि।
घोड़ बेंदुला हमको दै देउ, औ सब कपड़ा देहु मँगाय।
अबहीं जइहैं हम नदिया पर, लैहैं खबरि कनौजी क्यार।

अर्थ स्पष्ट है।

शीतला माता के गीत

घर में जब किसी को शीतला (चेचक) निकलती है, तब देवी की पूजा होती है और स्त्रियाँ गीत गाती हैं। दो गीत यहाँ दिये जाते हैं:—

(१)

निमिया की डार मइया लगली हिंडोरवा कि झूली झूली।
मइया गावेली गीत, कि झूली झूली ॥ १ ॥
झुलतै झूलत मइआ लागली पियसिआ कि चली भइलें।
मलहरिया अवास कि चली भइलें ॥ २ ॥
सुतल वाड़ी की जागल ए मालिन
उठि थोडा पनिया पिआउ ॥ ३ ॥
कैसे मैं पनिया पिआऊँ ऐ जगतारन मइया!
मोरा गोद बलका तोहार हो ॥ ४ ॥
गोद के बलकवा मालिन भुइयाँ सुतवहू
उठि तनिक पनिआ पिआउ ॥ ५ ॥
बलका उतार मालिन भुइयाँ सुतावेला कि निर्मल पानी।
मइया क पिआवेला कि निर्मल पानी ॥ ६ ॥
जैसे क मालिन हमरा जुड़वले
तैसे ही तोर पुतो हिया जुड़ाइ कि ओइसने ॥ ७ ॥

(बलिया)

नीम की डाल पर हिंडोला पड़ा है। माँ (शीतला) झूलती-झूलती गीत गा रही हैं ॥१॥

झूलते-झूलते उन्हें प्यास लगी है और वे मालिन (मालाहारी) का घर ढूँढती-ढूँढ़ती उसके घर पहुँची ।।२।।

मालिन ! सो रही हो कि जग रही हो ? उठो, थोड़ा पानी पिलाओ ।।३।।

हे जगत का उद्धार करने वाली माता ! मैं कैसे पानी पिलाऊँ ? मेरी गोद में तो तुम्हारा बालक है ।।४।।

मालिन ! गोद के बालक को भूमि पर सुला दो और उठकर मुझे पानी पिलाओ ।।५।।

मालिन गोद के बालक को धरती पर सुलाकर उठती है और शीतला माता को निर्मल जल पिलाती है ।।६।।

हे मालिन ! जैसे तुमने मुझे जुड़वाया, वैसे ही तुम्हारा पुत्र तुम्हारे हृदय को शीतल करे ।।७।।

इस गीत में शीतला रोग में शीतल उपचार करने का इशारा है। साथ ही अतिथि-सेवा की महिमा भी दिखाई गई है।

(२)

नभ फूलै फुलवरिया हो देवी कइसे क लोढ़ौं फूल।
केहिके भेजौं कियरियाँ कइसे गाछ पावौं ।। १ ।।
चाहों अकास क तरई देवी भूई परे।
भाग क फूटल देवी बालू भीत उठावौं ।। २ ।।
अँखिया क फूटल देवी देखन जहान चाहों।
गोड़वा क पँगुल देवी परबत नाँघि चाहौं ।। ३ ।।
तोहार चरनवाँ हो देवी पकरत पार पावौं !
यहि दुःख सागर देवी नइया पार लावौ।
तोहार बलकवा कोइछें रोवत आइ देखउ।
अँसुआ पोछहु देवी आस पूरी करउ ।।

हे देवी ! फुलवारी तो आकाश में फूल रही है, मैं फूल कैसे तोड़ूं ? किसे क्यारी में भेजूं और फूल के पौधे को कैसे पाऊँ ?

हे देवी ! जमीन पर पड़ी-पड़ी मैं आकाश के तारे चाहती हूँ। हे देवी ! मैं अभागिनी बालू की भीत उठा रही हूं।

हे देवी ! मैं अन्धी हूँ, पर दुनिया देखना चाहती हूँ। पैर की तो पंगुल हूँ, पर पहाड़ नाँघना चाहती हूँ।

हे देवी ! तुम्हारे चरण पकड़कर ही मैं पार पा सकूंगी ! हे देवी ! इस दुख-सागर में मेरी नाव को पार लगाओ।

हे देवी ! तुम्हारा बालक मेरे आँचल में पड़ा रो रहा है। आकर देखो।

हे देवी ! इसके आँसू पोंछ दो और मेरी आशा पूरी करो।

इस स्तुति में कातर का-सा रस भरा हुआ है।

बारहमासा

बारहमासा वह गीत है, जिसमें बारहों महीनों का वर्णन रहता है। देहात के लोग बारहमासों का गाना और सुनना बहुत पसंद करते हैं। क्योंकि एक साथ ही वे बारह महीनों के सुख-दुख का सीन देखने लगते हैं, और उसके साथ अपने-अपने अनुभव मिलाकर वे एक नवीन सुख का रस लेने लगते हैं। कुछ बारहमासे यहाँ दिये जाते हैं:—

(१)

चैत अजोध्या में जनमें राम। चन्दन सों लिपवायउँ धाम।
सुबरन कलस धरे भरवाय। धरे घटमण्डल
पठाये अरी बैरन कैकेई। बन बालक मेरे ॥ १ ॥
बैसाखे रुत भीषम घाम। पवन चलत जैसे बरसत आग।
जैसे जल बिन तड़पत मीन। पिआसे होइहैं लछमन राम।।
काऊ बिरिछ तरे। यही दुख दीने कैकेई। पठाये० ॥ २ ॥
जेठ मास लू लागत अंग। राम लखन अरु सीता संग।
हरि के चरन जैसे कमल समान। धधकै धरती औ असमान।
चलैं पगु कैसे ॥ पठाये० ॥ ३ ॥
आषाढ़ मास घन गरैजे घोर। चहक बिहंगन कूकत मोर।
कलपै कौसल्या अवधपुर धाम। बन भीजैं मेरे लछमन राम।
काऊ बिरिछ तरे ॥ पठाये० ॥ ४ ॥
सावन में सर साधे तीर। भौंरन गूँजत फिरत भुजंग।
ठाढ़ी कौसल्या अवधपुर धाम। बन भीजैं मेरे लछमन राम।
झमकि झरि लागै ॥ पठाये० ॥ ५ ॥

भादों मेघा पड़ै अपार। घर बैठे सगरो संसार।
बड़ी बड़ी बुँदिया बरसत नीर। भीजत ह्वैहैं श्रीरघुबीर।
रैनि अँधियारी ।। पठाये० ।। ६ ।।
आयल ये सखि ! मास कुवार। धर्म करै सगरो संसार।
आज जो होते अजोध्या में लछमन राम। न्योतती बाम्हन
देती दान। थार भर मोती ।। पठाये० ।। ७ ।।
कातिक मास सखि आई दिवारी। घर दिवला लेसहि नर नारी।
मेरी अजोध्या पड़ी अँध्यारी। सब सखियाँ मिलि
गगा नहावैं। करौं मैं कैसे ।। पठाये० ।। ८ ।।
अगहन कुँवारी करती सिगार। सिमाती बसतर सोने के तार।
पाट पटम्बर कुलही के मानि। माथे चीरा जड़े कलीदार।
गले बैजन्ती ।। पठाये० ।। ९ ।।
पूस मास घन पड़े तुषार। रैनि चलै जस खड़ग की धार।
बिन ओढ़ना मोरे लछमन राम। कलपैं कौसिल्या
अवधपुर धाम। कैसे करें मो जनम जरी के ।। पठाये० ।। १० ।।
माघ मास ऋतु होन बसंत। सुत बिदेस तन तज गये कंत।
बैठे भरतजी ढोरैं चौंर। आजु जो होते मोरे लछमन राम।
जनम के जोड़ी। पठाये ।। ११ ।।
फागुन रंग चले सब कोई। ऐसी ऋतु मैं गँवावौं रोई।
बैठे भरतजी घोरैं अबीर। केहि पर छिरकों बिना रघुबीर।
दीन्ह दुख कैकेई। पठाये० ।। १२ ।।

कौशल्या विलाप करती है—

श्रीरामचन्द्रजी ने चैत्र महीने में अयोध्या में जन्म लिया। उस समय मैंने चन्दन से सारा राजभवन लिपवाया था। सोने के कलश

भराकर रखवाये थे। हाय! कैकेयी बैरिन ने मेरे बालक को बन भेज दिया ॥१॥

वैशाख में भयानक घाम होता है। ऐसी लू चलती है, जैसे आग बरसती है। जैसे पानी बिना मछली तड़पती है। राम-लक्ष्मण प्यासे होंगे। किसी वृक्ष के नीचे खड़े होंगे। हा! कैकेयी ने मुझे यह दुःख दिया ॥२॥

जेठ महीने में शरीर में लू लगती है। राम, लक्ष्मण और सीता साथ हैं। राम के चरण कमल की तरह कोमल हैं। आकाश से लेकर पृथ्वी तक धधक रहा है। हाय! वे खाली पैर कैसे चलते होंगे? ॥३॥

आषाढ़ में ज़ोर से बादल गरज रहे हैं। पक्षी चहक रहे हैं। मोर कूक रहे हैं। कौशल्या अयोध्या के महल में कलप रही है—हाय! मेरे राम-लक्ष्मण किसी वृक्ष के नीचे भीग रहे होंगे ॥४॥

सावन में तालाब तीर सन्धान रहे हैं। भौंरे गूँज रहे हैं। साँप फिर रहे हैं। कौशल्या अयोध्या के राजमहल में खड़ी पछता रही है—हाय! झड़ी लग रही है। मेरे राम-लक्ष्मण बन में भीग रहे होंगे ॥५॥

भादों में अपार वृष्टि हो रही है। सारा संसार घर बैठा है। पानी की बड़ी-बड़ी बूँदें बरस रही हैं। हा! अँधेरी रात में राम कहीं भीगते होंगे ॥६॥

हे सखी! कुआर का महीना आया। सारा संसार धर्म कर रहा है। हा! आज जो अयोध्या में राम-लक्ष्मण होते तो मैं ब्राह्मणों को निमंत्रित करके थाल भरकर मोती दान देती ॥७॥

कार्तिक में दिवाली आई। सब स्त्री-पुरुष अपने-अपने घर में दीपक लेस रहे हैं। हाय! मेरी अयोध्या अन्धकार में पड़ी है। सब सखियाँ मिलकर गंगा नहा रही हैं। हाय! मैं क्या करूँ? ॥८॥

अगहन में कुमारियाँ शृङ्गार करती हैं। जरी के तारों से वस्त्र सिलाती हैं। रेशमी कपड़े पहनती हैं। माथे पर सुन्दर चीर और गले में बैयजन्ती माला पहनती हैं ॥९॥

पौष में भयानक जाड़ा पड़ता है। रात तो तलवार की धार के समान काटती है। हाय! मेरे राम लक्ष्मण बिना ओढ़ने के हैं। कौशल्या अवधपुर में झंख रही है। हाय! मुझ जन्म भर जलनेवाली के बेटे दुःख कैसे सहन करते होंगे?॥१०॥

माघ में बसंत ऋतु आती है। पुत्र विदेश में हैं। पति शरीर त्याग गये। भरतजी बैठे हुये चमर ढुरा रहे हैं। हा! आज जो कहीं राम-लक्ष्मण होते! जो मेरे जन्म के संगी थे॥११॥

फागुन में सब कोई रंग चला रहे हैं; हाय! ऐसी ऋतु को मैं रोकर गंवा रही हूँ। भरतजी बैठे हुये अबीर घोल रहे हैं। पर राम तो हैं नहीं, किस पर छिड़कें? कैकेयी ने यह दुःख दिया॥१२॥

माताओं के इतिहास में कौशल्या की हृदय-वेदना खास स्थान रखती है। स्त्रियों ने पुत्र-वियोग के इस दुःख को बड़ी गहराई से अनुभव किया है।

(२)

आली री बिन श्याम सुन्दर सो कल न परै रे।
पहिला मास लग्यो कातिक आन। विरह बिथा तन लागत बान।
जिय मोरा तलफत निकसत प्रान। केहि विधि राखौं पापी प्रान।
सो कल न०॥ १॥

आये री सखि अगहन मास। का पर राखौं जीवन आस।
सो श्याम विना मोहि सूनो है धाम। बिन पिउ नीक न येकौ काम।
सो कल न०॥ २॥

पूस मास पाला परत तुसार। बिन पिय जाड़ा न जाय हमार।
लपटि कैसे सोवौं बिन रघुबीर। हनि हनि मारै करेजवा में तीर।
सो कल न०॥ ३॥

माघ मास रितु लागे बसन्त। अजहूँ न पायो पिया तेरो अन्त।
लिखौं कैसे पाती को लै के जाय। को निर्मोही को देइ समुझाय।
सो कल न० ॥ ४ ॥

फागुन में सब घोरैं अबीर। मैं कैसे घोरौं बिना रघुबीर।
जरौं जैसे होरी उठत जैसे लूक। बिरह अगिनि तन दीनो है फूँक।
सो कल न० ॥ ५ ॥

चैत मास बन फूले हैं फूल। हमरा बलम हम का गये भूल।
खड़ी सरजू माँ मींजत हाथ। ऐसे समय पिय छोड़्यो है साथ।
सो कल न० ॥ ६ ॥

बैसाख मास गवने की बहार। दिन सब बीत्यो ठाढ़े दुआर।
कब वह ऐहैं न रहै मन धीर। रहि रहि उठत करेजे में पीर।
सो कल न० ॥ ७ ॥

जेठ मास बरसाइत होय। बर पूजन निकरीं सब कोय।
सखी सब करकै सोरहौ सिंगार। मथवा क बेंदिया अजब बहार।
सो कल न० ॥ ८ ॥

असाढ़ मास बहु बरसत मेह। परयो फफोला सारी देह।
बिरह तन जरिगै लागी है लूक। बरखा फुहार दियो तन फूँक।
सो कल न० ॥ ९ ॥

सावन मास में हरियर रूख। हमरा कँवल गये बिना पिउ सूख।
भूलों कैसे भूला बिनु रघुबीर। तलफत प्रान न निकरत तीर।
सो कल न० ॥१०॥

भादौं मास गरुव गँभीर। हमरे नयन भरि आये हैं नीर।
जिया मोर डूबै औ उतिराय। हमरा खेवैया परदेस में छाय।
सो कल न० ॥११॥

कुवार मास बन बोल्यो मोर। उठु उठु गोरिया बलमु आये तोर।
आयौ पिया पूज्यो है आस। याही ते गावों बारह मास।
सो कल न० ॥१२॥

हे सखी! श्यामसुन्दर के बिना चैन नही पड़ रही है।

पहला महीना कातिक का लगा। शरीर में विरह का बाण लग रहा है। जी तड़प रहा है। प्राण निकल रहे है। मैं इस पापी प्राण को कैसे रखूं? ॥१॥

हे सखी! अगहन का महीना आया। किस पर जीने की आशा रक्खू? श्याम के बिना मेरा घर सूना है। प्रियतम के बिना कोई काम अच्छा नही लगता ॥२॥

पौष मे पाला पड़ता है। हा! प्यारे के बिना मेरा जाड़ा नही जा सकता। राम के बिना किससे लपटकर सोऊँ? विरह कस-कसकर कलेजे में तीर मार रहा है ॥३॥

माघ महीने में बसंत आया। पर हे प्रियतम! तुम्हारी यात्रा का अन्त नही आया। कैसे पत्र लिखूं? कौन लेकर जायगा? निर्मोही पति को कौन समझायेगा? ॥४॥

फागुन में सब अबीर घोलते हैं। हाय! राम के बिना मै कैसे घोलूं? होली की तरह जल रही हूँ। लूक की तरह उठ रहा है। विरह की आग ने शरीर को फूंक दिया है ॥५॥

चैत्र में बन में फूल फूले है। हाय! मेरे प्राणनाथ मुझे भूल गये। सरयू में खड़ी-खड़ी हाथ मीज रही हूँ। ऐसे वक्त में प्राणनाथ ने मेरा साथ छोड़ दिया है ॥६॥

बैसाख में गौने की बहार है। सारा दिन द्वार पर खड़े-खड़े बीत जाता है। रह-रहकर कलेजे मे पीर उठ रही है। वे कब आयेंगे? ॥७॥

जेठ महीने में वर की साइत होती है। बट-पूजन के लिये सब निकलती हैं। सखियों ने सोलह शृंङ्गार कर रक्खा है। माथे की बेंदी अजब बहार दे रही है ॥८॥

आषाढ़ में पानी बहुत बरसता है। सारी देह में फफोले पड़ रहे हैं। विरह की लू लगने से मेरा सारा शरीर जल गया है। वर्षा के फुहारे से शरीर और भी जल रहा है ॥९॥

सावन में सब वृक्ष हरे हो गये। पर मेरा हृदय-कमल प्रियतम बिना सूख गया है। राम के बिना मैं कैसे झूला झूलूँ? प्राण तड़प रहे हैं। विरह का तीर नहीं निकल रहा है ॥१०॥

भादौं का महीना बड़ा गंभीर होता है। मेरी आँखों में आँसू भर आये हैं। मेरे प्राण डूब रहे हैं और उतरा रहे हैं। मेरी नाव का खेनेवाला विदेश में हैं ॥११॥

कुवार का महीना आया। वन में मोर बोलने लगे। हे गोरी! उठ। देख, तेरा पति आया है। प्रियतम आ गये। आशा पूरी हुई। इसी से बारहमासा गा रही हूँ ॥१२॥

(३)

कन्हैया नहीं आये, कन्हैया के लीआई ॥
सीतल चन्दन अंग लगावति, कामिनि करत सिंगार।
जा दिन ते मनमोहन बिछुड़े, सुनकै मास आसार (ढ़)।
कन्हैया नहीं० ॥ १ ॥
एक त गोरिया अँगवा क पातरि, दुसरे पिया परदेस।
तिसरे मेह झमाझम बरसै, सावन अधिक अँदेस।
कन्हैया नहीं० ॥ २ ॥
भादौं रैनि भयावनि ऊधो, गरजै अरु घहराय।
लवका लवकै ठनका ठनकै, छतिया दरद उठि जाय।
कन्हैया नहीं० ॥ ३ ॥
क्वारै कामिनि आस लगावै, जोहै पिया की बाट।
अबकी बार जो हरि मोर अइहैं, हियरा क खुलिहै कपाट।
कन्हैया नहीं० ॥ ४ ॥

कातिकै पूरनमासी ऊधो, सब सखी गंगा नहायँ।
हम अस अवला परम सुनरिया, काके गोहनवाँ जायँ।
कन्हैया नहीं० ॥ ५ ॥

अगहन ठाढ़ि अँगनवाँ ऊधो, चहुँदिसि उपजा धान।
पिया बिनु करके मोर करेजवा, तन से निकरत प्रान।
कन्हैया नहीं० ॥ ६ ॥

पूसहि फुहवा परिगै ऊधो, भींजि गई तन चीर।
चकई चकवा बोली करतु है, वहि जमुना के तीर।
कन्हैया नहीं० ॥ ७ ॥

माघ कड़ाका जाड़ा ऊधो, सब सखी रुइया भराय।
हमरा बलमु परदेस रहतु हैं, पिया बिन जाड न जाय।
कन्हैया नहीं० ॥ ८ ॥

फागुन फगुवा बीति गये ऊधो, हरि नहीं आये मोर।
अबकी जे हरि मोर ऐहैं, रंग खेलब झकझोर।
कन्हैया नहीं० ॥ ९ ॥

चैत फूलै बन टेसुल ऊधो, भवँरा पइठि रस लेइ।
का भवँरा तू लोटा पोटा, काहे दरद मोहिं देइ।
कन्हैया नहीं० ॥१०॥

बैसाख बाँस कटौतिउँ ऊधो, रचि रचि अँटा छवाय।
तेहि चढ़ि सोवतैं कृष्ण कन्हैया अँचरन करतिउँ बाय।
कन्हैया नहीं० ॥११॥

जेठ तपे मृगडहिया ऊधो, बन कै पवन हहराय।
आये पिया हिलमिलि के प्यारी, जिय की जरनि बुताय॥
कन्हैया नहीं० ॥१२॥

कृष्ण नहीं आये। कृष्ण को लिवा लाएँ।

शीतल चन्दन अंग में लगाकर कामिनी शृङ्गार कर रही है। जिस दिन से मनमोहन बिछुड़े हैं, तब से देखो, आषाढ़ महीना कितने महीनों पर आया है ॥१॥

एक तो गोरी यों ही अंग की पतली है, दूसरे उसके प्रियतम परदेश में हैं। तीसरे झमाझम बादल बरस रहा है। सावन में प्राण जाने का अधिक अंदेशा है ॥२॥

हे ऊधव! भादों की भयानक रात गरजती है और वह घहराती है। बिजली चमकती है। बादल गरजते हैं। मेरी छाती में पीड़ा उठ खड़ी होती है ॥३॥

कुवार में कामिनी आशा करके प्रियतम की बाट जोहती है। इस बार जो मेरे प्राणनाथ आयेंगे, तो हृदय के कपाट खुल जायँगे ॥४॥

हे ऊधव! कार्तिक की पूर्णमासी को सब सखियाँ गंगा नहाती हैं। हाय! मैं परम सुन्दरी अबला किसके साथ जाऊँ? ॥५॥

अगहन भर मैं आँगन में खड़ी रहती हूँ। चारोंओर धान के खेत लहलहा रहे हैं। हाय! प्रियतम के बिना मेरा कलेजा करकता है। शरीर से प्राण निकल रहे हैं ॥६॥

हे ऊधव! पौष में कुहरा पड़ता है। मेरी चीर भीग गई। चकई चकवा उस जमना के किनारे केलि कर रहे हैं ॥७॥

हे ऊधव! माघ में कड़ाके का जाड़ा पड़ता है। सब सखियाँ रुई भराती हैं। हाय! मेरे प्राणनाथ परदेश में रहते हैं। प्रियतमके बिना जाड़ा नहीं जा सकता ॥८॥

हाय! फागुन का फाग बीत गया। मेरे हरि न आये। इस बार जो मेरे हरि आयेंगे तो धूमधाम से रंग खेलूँगी ॥९॥

चैत्र में बन में पलाश फूलता है। भौंरा फूल में पैठकर रस लेता है। हे भौंरा! तुम क्यों लोटते-पोटते हो? क्यों मुझे पीड़ा देते हो? ॥१०॥

हे ऊधव ! मेरे मन मे लालसा थी कि बैसाख में हरे-हरे बाँस कटा-कर अटा छवाती। उस पर कृष्ण सोते और मैं आँचल से बयार करती।११।

हे ऊधव ! जेठ में मृगदाह तपता है। बन की हवा हहराकर बहती है। उस महीने में प्रियतम आये। प्यारी ने उनसे हिल-मिल कर जी की जलन मिटाई ।।१२।।

(४)

प्रात में कातिक परा है तुसार।
मोहिं छोड़ि कन्त भये बनिजार।
मैं न भूलोंगी ।।
अगहन मास जे अग्र सनेह।
चलु गोरिया नैहर अपनेह।
पान फूल ले कापड़ चीन्ह।
कन्त बिछोह दई दुख दीन्ह।
मैं न भूलोंगी ।।
पूस मास पिया बरत तुम्हार।
मैं बरती पाँचौं अतवार।
न्हाय खोरि कै देहुँ असीस।
जीवहु कन्त तूँ लाख बरीस।
भूलने तुम जाव रे सबै सखी।
मैं न भूलोंगी ।।
माघ मास घन परा है तुसार।
काँपइ हाथ औ काँपइ गात।
काँपइ सेज तुरँगहि खाट।
कि मैं नाहीं जैहौं भूलने तुम जाव।
मैं न भूलोंगी ।।

फागुन मास बहै फगुनी बयार।
तरुवर पात सबै झरि जाय।
जो मैं जनतिउँ फगुनी बयार।
हरि जू को रखतिउँ अंग छिपाय।
मैं न भूलोंगी॥

चैत मास बन फूले हैं टेसु।
गोरिया ने पठई है पिया को सनेसु।
सुनि कै सनेसु पिया अजहूँ न आय।
ए दोनों नैना रोय गवायउँ।
मैं न भूलोंगी॥

बैसाख मास अति मंगलाचार।
आनी है गौना ब्याही है बारि।
छाई है माड़ौ गाइ है गीत।
कन्थ को पन्त जोहत मोहिं बीत।
मैं न भूलोंगी॥

जेठ मास बर साइत होय।
बर पूजन निकरीं सब लोय।
अँगुर से अधरा कजरवा क रेख।
फिर फिर कन्त मोर मुख देख।
मैं न भूलोंगी॥

असाढ़ मास असाढ़ी जोग।
घर घर मंदिर सजैं सब लोग।
चिरई चिरंगुल खोता लगाय।
हमरा बलमु परदेस में छाय।
मैं न भूलोंगी॥

सावन मास में अधिक सनेह।
पिय बिन भूल्यो देह औ गेह।
पहिरी है कुसुमी उतारी है चीर।
पिया बिन सोहै न माँग सेंदुर।
मैं न भूलोंगी ॥

भादौं मास है गहिर गंभीर।
दामनि दमकै धारै न धीर।
दामिनि दमकै मेघ घहरावै।
सेज छाँड़ि धना रोइ गवाँवै।
मैं न भूलोंगी ॥

कुवार मास बन बोल्यो है मोर।
अरे अरे गोरिया बलम आये तोर।
आये बालम पूजी है आस।
पूरा 'विद्यापति' बारह मास।
मैं न भूलोंगी ॥

अर्थ स्पष्ट है। अंत मे 'विद्यापति' का नाम आया है। यह मैथिल-कोकिल 'विद्यापति' नहीं हैं।

(५)

यही देसवा मोरा जनम बितिये गैले।
कोई नहीं लावै पिया के समदिया। सन्तो हो ॥
आयल मास असाढ़ आस मोरा लागले रे की।
गगन घटा मेघ बरीसन लागे। भीग गेल चुनरी बिरहा उर जागे।
सन्तो हो ॥ १ ॥

सावन सुरती लगाये पिया मोर कैसे पायब रे की।
भादवँ मासे रैन अँधियारी। गुरु बिना भ्रम लागल उर भारी।
सन्तो हो ॥ २ ॥
कब मिललें पति मोर नयन भरि देखब रे की।
कौन जतन हम लायब सजनी। आसीन मास बीति गेल रजनी।
सन्तो हो ॥ ३ ॥
फूल कमल कुम्भलाये भमरवा डरी भागल रे की।
बिरहा लाग ललन पसीजे अँगिया। कासे कहौं कोई न बूझे बतियाँ।
सन्तो हो ॥ ४ ॥
कन्त रहल परदेस कातीक नियरायल रे की।
भरि भरि नीर नयन भरि आवै। सब सुख सखी मोर मनहुँ न भावे
सन्तो हो ॥ ५ ॥

इसी देश में मेरा जीवन बीत गया। प्रियतम का संदेशा कोई नही लाता।

आषाढ़ का महीना आया। मेरी आशा लगी थी। मेरे गगनमंडल में घटा उमड़ी। मेघ बरसने लगे। मेरी चूनरी भीग गई। हृदय में विरहाग्नि उत्पन्न हुई ॥१॥

सावन में ध्यान लगा रक्खा था कि अपने प्रियतम को कैसे पाऊँगी। भादों के महीने की भयानक अँधेरी रात में राह दिखानेवाले गुरू के बिना हृदय में बड़ा भ्रम लगता था ॥२॥

हा! मेरे प्रियतम कब मिलेंगे? कब मैं उनको आँख भरकर देखूँगी? हे सखी! मैं क्या उपाय करूँ? आश्विन के महीने की रात भी तो बीत गई ॥३॥

कमल का फूल कुम्हला गया। भौंरा डरकर भाग गया। विरह लग रहा है। अँगिया पसीज रही है। हाय! कोई मेरा दर्द नहीं बूझता ॥४॥

कातिक निकट आ गया। प्रियतम अभी तक परदेश में ही हैं। आँखें भर-भर आती हैं। हे सखी! सब सुख है, पर एक भी मेरे मन को नहीं भाता ॥५॥

यह छमासा है।

(६)

बीबी आया है आसाढ़ जो माह—आसाढ़ में धान बुवावती।
बीबी तेरे भैयाहैं निपट गँवार। भरी है जवानी चले चाकरी ॥१॥
बीबी म्हारे भैया हैं चतुर सुजान नौकरी करें राजे राम की।
बीबी पकड़ँगी घोड़े की बाग पहरा न सरकन दूँगी॥
गोरी छोड़ो हो घोड़े की बाग सँग के सिपाही म्हारे दूर गये।
तेरे संग को डसो काला नाग तुमको तो मारेगी बीजली॥
बीबी आया है सावन मास सावन में हिंडोले गड़ावती।
बीबी तेरे भैया० ॥ २ ॥
बीबी आया है भादो जो मास—भादो में गरजे है बादला।
बीबी तेरे भैया० ॥ ३ ॥
बीबी आया असौज जो मास–असौज में ब्राह्मण जिमावती।
बीबी तेरे भैया० ॥ ४ ॥
बीबी आया है कातक जो मास—कातक में गँगा न्हावती।
बीबी तेरे भैया० ॥ ५ ॥
बीबी आया है अगहन जो मास—अगहन में गहना घड़ावती।
बीबी तेरे भैया० ॥ ६ ॥
बीबी आया है पूस जो मास—चन्दन अँगीठी जलावती।
बीबी तेरे भैया० ॥ ७ ॥
बीबी आया है माह जो मास—माह में कपड़े बनावती।
बीबी तेरे भैया० ॥ ८ ॥

बीबी आया है फागन जो मास—फागन में फगवा खिलावती।
बीबी तेरे भैया० ॥ ९ ॥
बीबी आया है चैत जो मास—चैत में देवी को धावती।
बीबी तेरे भैया० ॥१०॥
बीबी आया है बैसाख जो मास—बैसाख में खेती कटावती।
बीबी तेरे भैया० ॥११॥
बीबी आया है जेठ जो मास—जेठ में पंखा ढुलावती।
बीबी तेरे भैया० ॥१२॥

अर्थ स्पष्ट है। इस गीत में बारह महीनों के खास खास कामों की तालिका है।

(७)

डोला मेरो भीजै बिरछा तरे, चारो भीजै कहार।
बीच में भीजै सुन्दर नारि, डोला मेरो भीजै बिरछा तरे॥
ठाढ़े भीजें मैया जाये वीर, छत्री उड़ि उड़ि जाय।
आषाढ़ जो आयो मेरी सखी री आषाढ़ में धान बुवाय॥
सावन जो आयो मेरी सखीरी, सावन में हिंडोले गढ़ाय,
रेसम डोरी बराय, चन्दन पटली छुलाय॥
देखो री कन्हैया झोटा दे रहो—दे रहो मेरे महाराज॥
भादों जो आयो सुनो सखी, भादों गहिर गँभीर॥देखो०॥
क्वार जो आयो मेरी सखी, क्वार में पित्तर मिलाय,
बाह्मन जेंवाय, दछिना दिवाय, कोरे कोरे कलस भराय।
रामलीला दिखाय॥ देखो०॥
कातिक जो आयो मेरी सखी, कातिक में गंगा न्हवाय,
अपनी तिरिया वो माता को मेला दिखाय॥ देखो०॥

अगहन जो आयो सुनो री सखी, अगहन में हँसली नथला
गढ़ाय, रेसम पाट पुवाय, अपनी कामिनि को पहराय ।।देखो०
पूस जो आयो सुनो री मखी, पूस उँसेटी हैं बाल ।।देखो०।।
माह जो आयो सुनो री सखी, माघ में तीरथ पठाय,
हरद्वार न्हवाय, अच्छी अँगीठी जलाय, माघ में पड़े
तुषार ।।देखो० ।।
फागुन जो आयो सुनो सखी, फागुन में होरिया खिलाय,
फगुवा गवाय, अच्छे अच्छे रँग बनाय ।। देखो० ।।
चैत जो आयो सुनो सखी री, चैत में फूली फुलवारी,
अच्छे अच्छे फुल रे बिनाय, गजरा बनाय।
पिया क पहिराय ।। देखो ०।।
बैसाख जो आयो सुनो सखी री, अच्छे अच्छे गेहुँवा कटाय,
राम चरचा कराय, कोरी कोरी रासें उठाय।
कोठी कोठला भराय ।।देखो०।।
जेठ जो आयो मेरी सखी री, जेठ में बँगला छवाय,
बिजना ढुराय ।। देखो० ।।

अर्थ स्पष्ट है। इसमें बारह महीनों के घर-गृहस्थी के कामकाज त्योहारों और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है।

यह बारहमासा हिंडोले पर भी गाया जाता है।

मेले के गीत

देहात में मेले बहुत हुआ करते हैं। बहुत ही कम मेले ऐसे होते हैं, जिनमें स्त्रियाँ न जाती हों। स्त्रियाँ झुण्ड बाँधकर चलती हैं। अकेली चलना उन्हें बहुत कम पसंद होता है। वे जहाँ दो-चार साथ हुईं कि उनमें गीत होने लगते हैं। गाना उनका स्वाभाविक गुण जान पड़ता है।

मेलों में जाते-आते स्त्रियाँ गीत गाया करती हैं। उनके मधुर कंठ से निकले हुए गीत बड़े ही प्रभावशाली होते हैं। उनसे स्त्रियों ही की नहीं, सुननेवाले पुरुषों की भी थकावट दूर होती रहती है। मेले वाले गीतों की लय भी ऐसी सरल होती है कि राह चलते वे गाये जा सकते हैं, और उनसे श्वास-प्रश्वास की क्रिया में कोई बाधा नहीं पहुँचती।

हमने मेलों में जा-जाकर थोड़े से गीत नोट कर लिए थे। पर मेलों के गीत असंख्य हैं और एक से एक बढ़कर मधुर हैं। बहुत से गीत हमारे संगृहीत गीतों से भी अच्छे होंगे।

यहाँ कुछ गीत दिए जाते हैं—

(१)

किन मोरी अवध उजारी हो—बिलखैं कउसिल्ला।
कहाँ गये राम कहाँ गये लछिमन कहाँ गई जनकदुलारी हो।
बिल० ॥१॥
बन गये राम बनैं गये लछिमन बन गई जनकदुलारी हो।
बिल० ॥२॥
राम बिना मोरी सूनी अजोध्या लछिमन बिन चौपारी हो।
बिल० ॥३॥

सीता बिना मोरी सूनी रसोइयाँ राम लखन ज्योंनारी हो।
विल० ॥४॥

कौशल्या विलाप करती हैं—हाय! किसने मेरी अयोध्या उजाड़ दी? राम कहाँ गये? लक्ष्मण कहाँ गये? सीता कहाँ गईं? ॥१॥

राम बन को गये। लक्ष्मण बन को गए। और जनक-नन्दिनी भी बन को गईं ॥२॥

राम के बिना मेरी अयोध्या सूनी है। लक्ष्मण बिना बैठक, और सीता बिना रसोई सूनी है। राम लक्ष्मण ही जीमने वाले थे ॥३,४॥

(२)

रघुबर सँग जाब– हम न अवध में रहबइ।
जौ रघुबर रथ पर जइहें भुँइयें चली जाब।हम० ॥ १ ॥
जौ रघुबर बनफल खइहें, फोकली बिनि खाब।हम० ॥ २ ॥
जौ रघुबर पात बिछैहें, भुइयाँ पड़ि जाब। हम० ॥ ३ ॥

राम जब बन जाने लगे, तब अवध की स्त्रियों ने कहा—

हम भी राम के साथ जायँगी। हम अयोध्या में न रहेंगी।

राम रथ पर जायँगे, हम पैदल ही चली जायँगी ॥१॥

राम बनफल खायँगे, हम उनके खाये हुए फलों का छिलका ही खाकर गुज़र कर लेंगी ॥२॥

राम पत्ता बिछाकर सोयेंगे, हम ज़मीन ही पर पड़ रहेंगी ॥३॥

सच्चा प्रेम इसी को कहते हैं।

(३)

जावोगे हम जानी–मन! तुम जावोगे हम जानी ॥
चार सखी मिलि चली हैं बजारे एक तें एक सयानी।
सौदा करी मनै ना भाई उठ गई हाट पछतानी ॥१॥
राज करंते राजा जैहें कमलापत सी रानी।
वेद पढन्ते। ब्रह्मा जैहें जोग करंते ज्ञानी ॥२॥

सूरज जैहैं चन्दा जैहैं जैहैं पवन औ पानी।
एक बेर धरती चलि जैहैं ह्वैहै बात पुरानी ॥३॥
चार जतन को बनो पींजरा जामें बस्तु बिरानी।
आवेंगे कोई लोग दिखनियाँ डूब जायँ बिन पानी ॥ ४ ॥

हे जीव! तुम जाओगे, मैं ऐसा जानती हूँ।

चार सखियाँ मिलकर बाज़ार चलीं। वे एक से एक बढ़कर चतुरा हैं। उन्होंने कुछ सौदा किया। पर उन्हें वह पसंद नहीं आया। इतने में हाट उठ गई। वे पछताने लगीं ॥१॥

राज करते हुए राजा चले जायँगे। कमलावती सी रानी भी चली जायँगी। इसी प्रकार वेद पढ़ते हुए ब्रह्मा और योग करते हुए ज्ञानी भी चले जायँगे ॥२॥

सूर्य जायगा, चन्द्रमा जायगा, पवन और पानी भी जायँगे। एक बार पृथ्वी भी चली जायगी।जैसा पहले होता आया है,वैसा ही फिर होगा ॥३॥

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि इन चार चीजों से एक पींजरा बना है। जिसमें एक पराई चीज रक्खी है। वह चीज बिना पानी ही डूब जायगी। उसे देखने वाले कोई बिरले ही आवेंगे ॥४॥

इस गीत में क्षणभंगुर संसार का वर्णन है, और उसकी तुलना हाट से की गई है।

(४)

धै देत्यो राम, हमारे मन धिरजा ॥
सब के महलिया रामा दियना बरतु हैं,
हरि लेत्यो हमरो अँधेर। हमारे० ॥ १ ॥
सब के महलिया रामा जेवना बनतु हैं,
हरि लेत्यो हमरी भूख। हमारे० ॥ २ ॥
सब के महलिया रामा गेंडुवा घुँटतु हैं,
हमरो हरि लेत्यो पियास। हमारे० ॥ ३ ॥

सब के महलिया रामा बिरवा कुँचतु हैं,
हमरो हरि लेत्यो अमलिया। हमारे० ॥ ४ ॥
सब के महलिया रामा सेजिया लगतु हैं
हमरो हरि लेत्यो नींद। हमारे० ॥ ५ ॥

हे राम! आप हमारे मन में धैर्य रख देते।

सब के महलों में दीपक जल रहे हैं। हमारे महल में आप अँधकार होने ही न देते ॥१॥

सब के महलों में भोजन बन रहे हैं। हमारी आप भूख ही हर लेते ॥२॥

सब के महलों में सुराही का पानी पिया जाता है। आप हमारी प्यास ही हर लेते ॥३॥

सब के महलों में पान के बीड़े खाये जाते हैं, हमारी आप अमल ही हर लेते ॥४॥

सब के महलों में सेज लग रही है। हमारी आप नींद ही हर लेते ॥५॥

(५)

मोरे गोरे बदन पर सब मोहे।
सड़के प गइली सड़कियउ मोहे बाट चलत मोसफिरउ हो मोहे ॥१॥
कुँवने प गइलीं कुँवनवाँ मोहे पानी भरत कँहरवउ हो मोहे ॥२॥
सेजिया पर गइलीं सेजरिया मोहे सेज सोअत बलमुवउ मोहे ॥ ३ ॥

मेरे गोरे शरीर पर सभी मुग्ध हैं।

मैं सड़क पर गई, वह भी मुझे देखकर मोहित हो गई। सड़क पर चलनेवाले पथिक भी मोहित हो गए ॥१॥

कुँवे पर गई, तो वह भी मोहित हो गया। पानी भरता हुआ कहार भी मुग्ध हो गया ॥२॥

सेज पर गई, तो सेज भी मोहित हो गई। और सेज पर सोता हुआ मेरा प्राणेश्वर भी मुग्ध हो गया ॥३॥

यह किसी रूपगर्विता का गीत है।

(६)

कब मिलिहैं रघुनाथ हमारे।
जैसे मिले वहि द्रुपत सुता को खैंचत चीर दुसासन हारे ॥१॥
जैसे मिले प्रहलाद भगत को खम्ह फारि हरिनाकुस मारे ॥२॥
जैसे मिले प्रभु राजा बलि को होत प्रात द्वारे भये ठाढे ॥३॥
जैसे मिले प्रभु सूर स्याम को मोहिं अस पतित अनेकन तारे ॥४॥

मेरे राम मुझे कब मिलेंगे?

प्रभु जैसे द्रोपदी को मिले, चीर खींचते-खींचते दुःशासन हार गया था ॥१॥

प्रभु जैसे भक्त प्रल्हाद को मिले थे, और खंभा फाड़कर हिरण्यकश्यप को मारा था ॥२॥

प्रभु जैसे राजा बलि को मिले थे, और प्रातःकाल होते ही उसके द्वार पर जा खड़े होते थे ॥३॥

प्रभु जैसे सूरश्याम को मिले थे। और मेरे हीं जैसे अनेकों पापी तारे हैं ॥४॥

(७)

मैं बेला तरे ठाढि रहिउँ, के जदुवा डारा।
हमरे बलम की बड़ी बड़ी अँखिया,
सुरमा सराई ऐनक लिहे ठाढि रहिउँ, के जदुवा डारा ॥१॥
हमरे बालम की बड़ी बड़ी जुलफें,
तेला फुलेला कँगन लिहें ठाढि रहिउँ, के जदुवा डारा ॥२॥
हमरे बलम के झीने झीने दँतवा,
खैरा सुपारी बिरवा लिहे ठाढि रहिउँ, के जदुवा डारा ॥३॥

मैं बेले के नीचे खड़ी थी, किसने जादू डाला ? मेरे प्रियतम की बड़ी-बड़ी आँखें हैं। मैं सुरमा, सलाई और ऐनक लिये खड़ी थी। किसने जादू डाला ? ॥१॥

मेरे प्रियतम की बड़ी-बड़ी अलकें हैं। मैं तेल, फुलेल और कंघी लिए खड़ी थी। किसने जादू डाला ? ॥२॥

मेरे प्रियतम के दाँत बहुत छोटे-छोटे हैं। मैं खैर, सुपारी और बीड़ा लिए खड़ी थी। किसने जादू डाला ? ॥३॥

(८)

राम और लछमन वह दोनों भाई,
वह दोनों बन को सिधारे हो राम ॥१॥
एक बन लंघे दूजा बन लंघे
तीजे बन लागी वहै प्यास हो राम ॥२॥
दूसरे नगर का है कोई राजा
भर गड़वा जल लावै हो राम ॥३॥
तेरा तो पानी लड़के जद ही में पीऊँ
नाम बता दे मात पिता का हो राम ॥४॥
अपने पिता का नाम न जानूं,
सीय हमारी माय हो राम ॥५॥
चल रे लड़के उस रे सहर को
जाहिं तुम्हारी माय हो राम ॥६॥
चंदन चौकी सीता न्हान सँजोया
केस दिये छटकाय हो राम ॥७॥
पीछा तो फिरकर सीता देखन लागी
पीछे खड़े श्रीराम हो राम ॥८॥

फट जा री धरती समाजा री सीता
केसों की हो गई दूब हो राम ॥९॥
इसरे पुरुष का मुख नहीं देखूं
जीवत दिया बनवास हो राम ॥१०॥
इसरे काया पर हल भी चलैंगे
खेती करैंगे श्रीराम हो राम ॥११॥
इसरे काया पै दूब जमैगी
गौवे चरावें श्रीराम हो राम ॥१२॥
इसरे काया पर गंगा बहैंगी
नीर पिलावैं श्रीराम हो राम ॥१३॥

राम और लक्ष्मण दोनों भाई बन को गये ॥१॥

एक बन में गये, दूसरे बन में गये, तीसरे में प्यास लगी ॥२॥

उनको किसी दूसरे नगर का राजा समझकर एक बालक कलश भरकर लाया ॥३॥

राम ने कहा—बालक ! तुम्हारे हाथ का पानी तो मैं तभी पीऊँगा, जब तुम अपने माता-पिता का नाम बता दोगे ॥४॥

बालक ने कहा—मैं पिता का नाम तो नहीं जानता। पर सीता मेरी माँ है ॥५॥

राम ने कहा—बालक ! उस नगर को चलो, जहाँ तुम्हारी माँ है ॥६॥

सीता चंदन की चौकी पर स्नान की तैयारी कर रही थीं। उन्होंने केश छिटका दिये थे ॥७॥

सीता ने पीछे फिरकर देखा तो पीछे श्रीराम खड़े थे ॥८॥

सीता ने कहा—हे धरती ! तुम फट जाओ। मैं समा जाऊँ। वैसा ही हुआ। सीता के केशों की दूब हो गई ॥९॥

सीता ने कहा—मैं इस पुरुष का मुंह न देखूंगी, जिसने मुझे जीते जी वनवास दिया ॥१०॥

इस शरीर पर हल चलेगा और राम खेती करेंगे ॥११॥

इस शरीर पर दूब उगेगी, जिस पर राम गौवें चरावेंगे ॥१२॥

इस शरीर पर गंगा बहेंगी, जिसमें श्रीराम अपनी गायों को पानी पिलावेंग ॥१३॥

(९)

बूझत भरत राम कहाँ माई।
जबसे छुटयो अजुध्या नगरी हमें उदासी आई।
घर गलियाँ और घाट बाट में सब परजा रोवत पाई ॥१॥
राम बिना मेरी सूनी अजुध्या लछिमन बिन ठकुराई।
सिया बिना मेरो मन्दिर सूनो लौटि पछार भरत ने खाई ॥२॥

भरत पूछ रहे हैं—हे माँ! राम कहाँ हैं? जब से अयोध्या छूटी, तब से मुझ पर उदासी ही छाई रही। घर-घर, गली-गली और घाट-बाट में मैंने प्रजा को रोती हुई पाया ॥१॥

राम के बिना मेरी अयोध्या, लक्ष्मण के बिना ठकुराई और सीता के बिना मेरा घर सूना है। यह कहकर भरत पछाड़ खाकर गिर पड़े ॥२॥

भरत का भ्रातृ-प्रेम हिन्दू-समाज में सहस्र धारा होकर प्रवाहित है।

(१०)

आज मोरे राम की सुधि आई।
घर क जेवना राम घरही छोड़तु हैं,
भूखन मरत ह्वै हैं दोउ भाई ॥ १ ॥
लोटा औ डोरी राम घर ही छोड़तु हैं,
प्यासन मरतु ह्वै हैं दोउ भाई ॥ २ ॥
तोसक तकिया रामा घर ही छोड़तु हैं,
नींदन मरतु ह्वैहैं दोउ भाई ॥ ३ ॥

राम के बन जाने पर कौशल्या विलाप करती हैं—आज मुझे राम की याद आई है ।

राम ने खाने-पीने के पदार्थ तो घर ही छोड़ दिये । दोनों भाई भूखों मरते होंगे ॥१॥

राम ने लोटा-डोरी भी घर ही छोड़ दी । दोनों भाई प्यासे मरते होंगे ॥२॥

राम ने तोशक-तकिया घर पर ही छोड़ दिया । दोनों भाई नींद के मारे मरते होंगे ॥३॥

(११)

सोचइ सोच तीनों पन बीते रामा ।
केहि देखि धरौं धीरज रामा ॥
पहिला सोच मोरे नैहर में परल रामा ।
बिन बीरन मोरी पीठ उदास रामा ॥१॥
दूसरा सोच मोरे ससुरे में परल रामा ।
बिनु मोरे ससुरू बैठक सून रामा ॥२॥
तीसर सोच मोरे ससुरे में परल रामा ।
बिन राजा मोरी सूनी सेज रामा ॥३॥

चिन्ता ही चिन्ता में मेरे तीनों पन (बचपन, युवापन और वृद्धापन) बीत गये । हे राम ! किसे देखकर धीरज धरूँ ?

पहली चिन्ता तो मुझे नैहर में हुई । मेरे पीछे कोई भाई नहीं ॥१॥

दूसरी चिन्ता मुझे ससुराल में मिली । ससुर बिना मेरी बैठक सूनी है ॥२॥

तीसरी चिन्ता मुझे ससुराल में मिली । स्वामी के बिना मेरी सेज सूनी है ॥३॥

(१२)

बिगड़ी प्रभु नाथ ! तोहें बिन हमरी ।
नैहर में जो बरिन होतेन ओनहूँ क करतिउँ आस ॥१॥
ससुरे में जौ देवर होते ओनहूँ क करतिउँ आस ॥२॥
दुवरवाँ जौ एकौ रूखउ होतै तो मैं होती ठाढ ॥ ३ ॥

कोई विधवा विलाप करती है—

हे स्वामी ! तुम्हारे बिना मेरी सब प्रकार से बिगड़ गई।

नैहर में यदि भाई होते, तो उनकी भी आशा करती ॥१॥

ससुराल में यदि देवर होते, तो उनकी भी आशा करती ॥२॥

मेरे घर के द्वार पर एक वृक्ष भी होता, तो मैं उसके नीचे ही खड़ी होती ॥३॥

अंतिम पंक्ति बड़ी ही हृदय-द्रावक है।

(१३)

चेतहु सीता चेतहु सीता घर घरुआर रे ।
चेतहु सीता चेतहु सीता गीहिथा से चारु ।
हमरे गोहनवाँ हो सीता तोहके बड़ दुख बा ॥१॥
केकर चेतहुँ राम घर घरुआर रे ।
केकर चेतहुँ राम गिहिथा से चारु।
तोहरे गोहनवाँ हो राम मोही बड़ सुख बा ॥२॥
बाबा राजा दसरथ क घर घरुआर रे ।
माता कवसिल्या देइ क गिहिथा से चारु ।
हमरे गोहनवाँ हो सीता तोहके बड़ दुख बा ॥३॥
माई बिना नैहर मान न होइ रे ।
सूनी अजोध्या हो राम मोही धई धई खाइ ॥४॥

बन जाते समय राम कहते हैं—हे सीता ! घर-द्वार की कुछ चिन्ता करो।

हे सीता ! गृहस्थी की चिन्ता करो। मेरे साथ चलने में तुमको बड़ा दुःख है ॥१॥

सीता कहती हैं—हे राम ! किसके घर-द्वार की चिन्ता करूँ ? किसकी गृहस्थी की फिक्र करूँ ? हे राम ! तुम्हारे साथ चलने में मुझे बड़ा सुख है ॥२॥

राम कहते हैं—हे सीता ! ससुर राजा दशरथ का घर-द्वार और कौशल्या माता की गृहस्थी सँभालो। हे सीता, मेरे साथ तुमको बड़ा दुःख होगा ॥३॥

सीता कहती हैं—हे प्रियतम ! माँ के बिना नैहर में मान नहीं मिलता। तुम्हारे बिना यह सूनी अयोध्या मुझे पकड़-पकड़कर खाने दौड़ती है ॥४॥

(१४)

बदन पर खुसबो आजावेगी रे।
द्वारे पर केवरा लगाओ मोरे प्यारे,
बदन पर खुसबो आ जावेगी रे ॥ १ ॥
बद की संघत तू मत करो प्यारे,
बदन पर फीकी आजावेगी रे ॥ २ ॥
बोतल बरंडी तुम मत पियो प्यारे,
अकिल पर गफलत आजावेगी रे ॥ ३ ॥
रंडी की संघत तुम मत करो प्यारे,
नहक को सान चली जावेगी रे ॥ ४ ॥

हे मेरे प्यारे ! द्वार पर केवड़े का वृक्ष लगाओ। जिससे शरीर पर खुशबू आ जाय ॥१॥

हे प्यारे ! तुम बुरों की संगति न करना। नहीं तो शरीर की शोभा न रहेगी ॥२॥

हे प्यारे ! तुम शराब मत पिओ। नहीं तो बुद्धि मन्द हो जायगी ॥३॥

हे प्यारे ! तुम वेश्या की संगति मत करो। नहीं तो सहज ही में शान चली जायगी ॥४॥

(१५)

चितै दे मेरी ओर, करक मिटि जाय रे।
बहुत दिनन से तेरे दिखिबे कौ मेरो जी ललचाय ॥१॥
मैं चितवति तू चितवत नाहीं रहि रहि जी घबड़ाय ॥२॥
निपट निठुर निरमोही मोहन मोहिं रहो तरसाय ॥३॥
तेरी चितवन में चित्त लगा है नेह सिरानो जाय ॥४॥

हे मोहन ! एक बार मेरी ओर देख लो। जिससे मेरे हृदय की पीड़ा मिट जाय।

बहुत दिनों से तुम्हें देखने के लिए मेरा जी ललचाता है ॥१॥

मैं तो तुम्हें देख रही हूँ। तुम मेरी ओर देखते ही नहीं। रह-रह कर जी घबराता है ॥२॥

हा ! बिल्कुल निर्मोही निष्ठुर मोहन मुझे तरसा रहा है ॥३॥

हे मोहन ! मेरा चित्त तेरी चितवन में लगा है। अब प्रेम चुकता जा रहा है ॥४॥

(१६)

संतौ नदी बहै यक धारा।
जैसे जल में पुरइन उपजे जल ही में करे पसारा।
वाके पानि पत्र नहिं भीजै ढुरकि परै जैसे पारा ॥१॥
जैसे सती चढी सत ऊपर पिय को बचन नहिं टारा।
आप तरै औरन को तारै तारै कुल परिवारा ॥ २ ॥

जैसे सूर चढे लड़ने को पग पीछे नहिं टारा ।
जिनकी सुरति भई लड़ने को प्रेम मगन ललकारा ॥३॥
भवसागर एक नदी बहत है लख चौरासी धारा ।
धर्मी धर्मी पार उतरिगे पापी बूड़े मँझधारा ॥४॥

हे संतो ! संसार रूपी नदी की यह एक धारा बह रही है ।

जैसे कमल जल में पैदा होता है और जल ही में फैलता है; पर उसका पत्ता पानी से नहीं भीगता। पानी उस पर से ऐसा ढुलक पड़ता है, जैसे पारा ॥१॥

जैसे सती सत पर चढ़ती है और पति की आज्ञा नहीं टालती। वह स्वयं तर जाती है, औरों को तारती है, सारे परिवार को तारती है ॥२॥

जैसे शूरमा रण में जाता है तो पीछे नहीं मुड़ता। लड़ने में जिसकी निष्ठा हो जाती है, वह प्रेम में मग्न होकर ललकारता है ॥३॥

संसार एक नदी है। जिसमें चौरासी लाख धारायें हैं। जो धर्मात्मा थे, वे तो पार उतर गये। पापी बीच धारा में डूब रहा है ॥४॥

(१७)

बन का चले दोनों भाई, कोई समुझावत नाहीं ।
भीतर रोवैं मात कौसिल्या द्वारे भारत भाई ॥१॥
आगे आगे राम चलत हैं पीछे लछमन भाई ।
तेकरे पीछे मात जानकी मधुबन लेत टिकाई ।२॥
भूक लगे भोजन कहँ पैहैं प्यास लगे कहँ पानी ।
नींद लगे डासन कहँ पैहैं कुस काँकर गड़ि जाई ॥३॥
रिमझिम रिमझिम देव बरीसै पौन बहै पुरवाई ।
कौनो बिरिछ तर भीजत होइहैं रामलखन दोनों भाई ॥४॥

हा ! दोनों भाई बन को जा रहे हैं। कोई समझाता नहीं है ।

भीतर कौशल्या माता रो रही हैं, और बाहर भाई भरत रो रहे हैं ॥१॥

आगे-आगे राम चल रहे हैं, पीछे लक्ष्मण भाई। उनके पीछे जानकी माता चल रही हैं। कोई इनको मधुबन में टिका लेता ॥२॥

हाय! भूख लगेगी तो वे भोजन कहाँ पायेंगे? प्यास लगने पर पानी कहाँ पायेंगे? नींद लगने पर बिछौना कहाँ पायेंगे? शरीर में कुश और कंकड़ गड़ जायँगे न? ॥३॥

'रिमझिम'-'रिमझिम' बादल बरस रहे हैं। पूर्वा हवा चल रही है। हा! दोनों भाई कहीं किसी वृक्ष के नीचे भीगते होंगे ॥४॥

(१८)

पर के अँगनवा में जनि जाहु स्वामी रे,
अरे केई देतो पिढवा अउर जलपान। अरे० ॥१॥
अपने अँगनवाँ में आहो मोरे स्वामी रे,
हमें देबो पिढवा अउर जलपान। हमें० ॥२॥
पर के सेजिया पै जनि जाहु स्वामी रे,
उतरि जैतो मुँहवा कै आब। उतरि० ॥३॥
अपने सेजिया पै आहो मोरे स्वामी रे,
रहि जैतो मुँहवा कै पान। रह० ॥४॥
अरे केसिया रौरे के लागे हन भौंरवा के नाहिन। केसिया० ॥५॥
अरे अँखिया रौरे के लागे हन मछलिया के नाहिन। अँखिया० ॥६॥
अरे दँतिया रौरे के लागे हन बिजुलिया के नाहिन। दँतिया ॥७॥
अरे बोलिया रौरे के लागे हन कोइलिया के नाहिन। बोलिया० ॥८॥
अरे चलिया रौरे के लागे हन मोगलवा के नाहिन। चलिया० ।९।

हे मेरे स्वामी! दूसरों के आँगन में मत जाओ। वहाँ कौन तुमको पीढ़ा देगा? कौन जल-पान के लिए पूछेगा? ॥१॥

हे मेरे प्रियतम! अपने आँगन में आओ। मैं बैठने को पीढ़ा दूँगी, और जल-पान कराऊँगी ॥२॥

प्राणनाथ! दूसरों की सेज पर मत जाओ। मुँह की आब उतर जायगी ॥३॥

हे प्रियतम! अपनी सेज पर आओ। जिससे मुख की शोभा बनी रहे ॥४॥

हे नाथ! तुम्हारे बाल भौरे की तरह लगते हैं ॥५॥

तुम्हारी आँखें मछली की तरह लगती हैं ॥६॥

तुम्हारी दंतावली बिजली-सी जान पड़ती है ॥७॥

तुम्हारी बोली कोयल की-सी है ॥८॥

तुम्हारी चाल मुग़ल की चाल की तरह गंभीर और आत्म-गौरव से भरी हुई है ॥९॥

मुगल-राज्य में मुगल ही सब गुणों के आदर्श माने जाते थे।

(१९)

छोटी-मोटी गैया क डूंड़ी डूंड़ी सींग ।
चरै चोथै जाय गैया जमुना के तीर ॥१॥
चरि चोंथि गैया रे पानी पिऐ जाइ ।
बघवा भुखान घाट छेंकेसि आइ ॥२॥
छोड़ु छोड़ु बघवा रे मोर पनिघट ।
हम हैं पिआसी पानी पिऐ दे ॥३॥
घर से आइब बछरू पिआइ ।
तब तूँ हम का लीहा खाइ ॥४॥
जो तू गैया जैबे बछरू पिआइ।
हमका दिहे जा सखिया गवाह ॥५॥
चाँद सुरुज दूनौ सखिया गवाह ।
बछरू पिआइ हम आउब जरूर ॥६॥
आउ रे बच्छा पी ले दूध डभकोरि ।
बिहनै जाब हम नैहरे की ओर ॥७॥

रोज तो आवो माई होंकरत चोंकरत।
आजु तोर मनवा काहें मलीन।
आजु काहें दुधवा नजोर ॥८॥
आजु की राति बच्छा रहबै तोहरे पास।
होत बिहान होबै बाघे क अहार ॥९॥
जौ तूँ जाबिउ मैया बाघ के पास।
हमहुँ क लिहेउ गोहनवाँ लगाय ॥१०॥
आगे आगे बछरू कुलाँचत जाय।
पीछे पीछे गैया विष मातलि जाय ॥११॥
जाइ के पहुँच बाछा बाघे के पास।
नजरि मिलाय कहेसि मामा सलाम ॥१२॥
पहिले तू मोर मामा मोहि भच्छि लेहु।
पीछे भच्छेहु आपनि बहीन ॥१३॥
गैया मोरी बहिनी बछौवा मोर भैंने।
जाइ के बाछा रहौ केदरी के बन में ॥१४॥
सत कै गैया धरम कै बछरू।
एक भरि गइलिनि दुइ भरि अइलिनि ॥१५॥

छोटी छोटी गाय की छोटी छोटी सींग है। गाय जमना के किनारे चरने चोंथने जाया करती थ: ॥१॥

चर-चोंथकर गाय पानी पीने गई। भूखे बाघ ने आकर उसका घाट घेर लिया ॥२॥

हे बाघ! मेरा पनघट छोड़ दो। मैं प्यासी हूँ। मुझे पानी पीने दो ॥३॥

मैं घर जाकर बछड़े को दूध पिलाकर आऊँगी, तब तुम मुझे खा लेना ॥४॥

हे गाय! तुम बछड़ा पिलाने जाओगी, तो मुझे गवाह दिये जाओ ॥५॥

हे बाघ! चाँद और सूर्य मेरे गवाह हैं। मैं बछड़े को पिलाकर जरूर आऊँगी ॥६॥

हे बछड़ा! आओ, पेट भरकर दूध पी लो। कल मैं अपने नैहर जाऊँगी ॥७॥

हे माँ! रोज तो तुम हुँकरती-चुँकरती आती थी। आज तुम्हारा मन मलिन क्यों है? आज तुम्हारे दूध में बल क्यों नहीं है? ॥८॥

हे बेटा! आज की रात तुम्हारे पास रहूँगी। सबेरा होते ही बाघ का आहार बनूंगी ॥९॥

हे माँ! तुम बाघ के पास जाओगी तो मुझे भी साथ लेते चलना॥१०॥

आगे-आगे बछड़ा कुलाँचें मारता हुआ जाता था। पीछे-पीछे गाय मोह-रूपी विष में मतवाली होकर जा रही थी ॥११॥

बछड़ा बाघ के पास पहुँचा। आँख मिलाकर बछड़े ने 'मामा' कहकर बाघ को सलाम किया ॥१२॥

हे मामा! आओ, पहले मुझे खा लो। फिर अपनी बहन को खाना॥१३॥

बाघ ने कहा—गाय मेरी बहन और बछड़ा मेरा भांजा है। जाओ भांजे! कदलीबन में विहार करो ॥१४॥

सत्य की गाय और धर्म का बछडा। गाय सत्य की रक्षा के लिए अकेली गई थी, धर्म की रक्षा कराती हुई लौटी ॥१५॥

यह गीत उत्तर प्रदेश और बिहार के देहात में बहुत प्रचलित है। इसमें वचन पालने की महिमा वर्णित है। सच है—

सत मत छोड़े बावरे, सत छोड़े पत जाय।

(२०)

समुझ मन माँ कोई काहू का नाहीं।

पुरुब दिसा से उठी बदरिया पिया के सोंच खड़ी अँगना ॥१॥
ज्वानी माँ कुछ सूझत नाहीं जान परत बिरदापन माँ ॥२॥

हे मनुष्य ! मन में समझ; कोई किसी का नहीं।
पूर्व दिशा से घटा उठी। स्त्री प्रियतम को सोचती हुई खड़ी है ॥१॥
जवानी मेंकुछ नहीं सूझता। वृद्धावस्था में समझ पड़ता है ॥२॥

(२१)

सुधिया न कीन्हे राजा हमरे सुरति की।
अपुआ तो जाय के विदेशवा में छाये,
पतिया न लिखे राजा हमरे न मन की ॥१॥
जो सुधि आवै राजा तुम्हरे सुरति की,
अँसुवा बहैं जैसे नदिया सवन की ॥२॥

हे राजा ! तुमने मेरी सुध नहीं ली।

तुम स्वयं तो जाकर विदेश में डेरा डाले हो। मेरे मन का हाल जानने के लिए तुमने पत्र भी न भेजा ॥१॥

हे राजा ! तुम्हारी याद आते ही मेरी आँखों से आँसू की ऐसी धारा बहती है, जैसे सावन की नदी ॥२॥

(२२)

ई देहियाँ तरुवर की छहियाँ।
झंखै कतौं कोउ नाय, जो मन झंखिहि राम ॥
सब भैयन से राम राम गुरुजी से बन्दगी।
मात पिता के सेवा करि ले मनवाँ लगाय कै ॥१॥
देई देवा नाहक पूजै चौरा बँधाय के।
दुनियाँ माँ नेकी कैले थोरे दिन कै जिन्दगी ॥२॥
एक तो सुखी रहै गाय क बछौना।

उनहुँ क दुख परा हरवा चले ते ॥
एक तो सुखी रहे चकई औ चकवा ।
उनहुँ क दुख परा रात भये ते ॥
एक तो सुखी रहे सूरज चन्द्रमा,
उनहुँ क दुख परा गहन परे ते ॥३॥

यह देह वृक्ष की छाया है। मन में राम को याद रखोगे तो कहीं किसी को झंखना न पड़ेगा।

सब भाइयों को राम-राम करो। गुरु को प्रणाम करो। मन लगाकर माँ-बाप की सेवा कर लो ॥१॥

चबूतरा बनवाकर देवी देवता की पूजा व्यर्थ है। संसार में आकर नेकी कर लो। थोड़े दिन की जिन्दगी है ॥२॥

एक तो सुखी गाय का बछड़ा था, हल में जुतने से वह भी दुखी हो गया। एक सुखी चकवा-चकई थे, रात होने से उन पर भी दुख पड़ा। सूर्य-चन्द्रमा सुखी थे, ग्रहण लगने से वे भी दुःखी हुए। अर्थात् संसार में कोई सुखी नहीं है ॥३॥

(२३)

बेटी बुलाइन जँघ बैठाइन पूंछैं बेटी सन हाल ॥१॥
जौन जौन सुख कीन्हे तू बेटी सो मोहिं देहु बताय ॥२॥
खाँड़ चिरौंजी क भोजन बाबू करुवई तेल नहान ॥३॥
हमरे करमवाँ माँ इहै लिखत है सेजिया माँ सूतौं अकेलि ॥४॥
साफ सुपेती का ओढन डासन गेडुवा धरेउँ सौ साठि ॥५॥
हमरे करमवाँ माँ इहै लिखत है सेजिया माँ सूतौं अकेलि ॥६॥
मरिजाय नौवा मरिजाय बरिया मरि जा पँडितवा के पूत ॥७॥
हमरे छोनिया क इया बर खोजिस जो सेजिया माँ
सूतै अकेलि ॥८॥

काहे मरै नौवा काहे मरै बरिया काहे पँडितवा क पूत ॥९॥
ऊसर खोदि बाबू कँकरी बोवाये का जाना तीति कि मीठि।१०।

बेटी को बुलाकर बाप ने जाँघ पर बैठाया और हाल पूछा ॥१॥

हे बेटी ! तुमने जो-जो सुख किया है, मुझे बताओ ॥२॥

हे बाबू ! खाँड़ चिरौंजी का तो आहार करती हूँ। और कड़वे तेल से नहाती हूँ ॥३॥

पर मेरे कर्म में यह लिखा है कि सेज में अकेली सोती हूँ ॥४॥

सफ़ेद चादरें ओढ़ती हूँ। सफ़ेद बिछाती हूँ। पर मेरे कर्म में अकेली सोना लिखा है ॥५, ६॥

वह नाई, वह बारी, वह पंडित का पुत्र मर जाय, जिसने मेरी प्यारी कन्या के लिए ऐसा वर खोजा ॥७, ८॥

हे बाबू ! नाई, बारी और पंडित क्यों मरें ? ऊसर खोदकर तुमने ककड़ी बुवाई थी। तुम्हें क्या पता कि वह मीठी होगी ? या तीती ? ॥९, १०॥

स्वयं न देखकर नाई, बारी और ब्राह्मण के भरोसे कन्या का विवाह करने का यह परिणाम होता है। मालूम होता है, कन्या का पति लम्पट है। कन्या को खाने-पहनने का सुख तो है, पर पति का सुख नहीं है।

कहा करौं बैकुंठ लै, कल्पवृच्छ की छाँहिं।
'अहमद' ढाक सुहावने, जहँ प्रीतम गल बाहिं॥

(२४)

लैहौ लिआइ प्रानपति हमके ॥
तूँ बन जात हमहुँ सँग चलबै,
हम से अवध रहा ना जाइ। प्रानपति० ॥१॥
मातु पिता घर सेवा करिहौ,
कुछ दिन में हम मिलबै आइ। प्रानपति० ॥२॥

कैसे जिवैं तेरो मातु पिता हो ,
कैसे जिवैं वहि अवध के लोग। प्रानपति० ॥३॥

सीता कहती हैं—हे प्राणपति ! मुझे साथ ले लो।

तुम बन को जा रहे हो। मैं भी चलूंगी। मुझसे अयोध्या में अकेले रहा नहीं जायगा ॥१॥

राम ने कहा—हे सीता ! तुम यहाँ रहकर मेरे माँ-बाप की सेवा करोगी। मैं कुछ दिनों के बाद आकर मिलूंगा ही ॥२॥

सीता ने कहा—हे राम ! तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे वियोग में जियेंगे कैसे ? और अवध के लोग ही कैसे जियेंगे ? ॥३॥

(२५)

सरन गहो सियराम के पिया हो सरन गहो सिय राम।
आजु पवन नहीं अँगना बहारै इन्द्र भरै नहिं पानी।
लछमी सरस्वती धान न कूटैं झंखै मदोदरि रानी ॥१॥
लंका अस कोट समुन्दर खाई कुंभकरन अस भाई।
मेघनाथ ऐसन बेटा जेकरे भलु त्रिय गैलु डेराई ॥२॥
जामवन्त ऐसे मंत्री जेकर बीर लछन अस भाई।
महाबीर अस पायक जेकरे छनहो लंक जराई ॥३॥
चन्दन गाछ के डँडिया बनवलो सबजो रंग बहार।
सीता के पहुँचाव अजोध्या राखि ले कुल परिवार ॥४॥

मंदोदरी रावण से कहती है—हे प्रियतम ! सीताराम की शरण गहो।

आज पवन आँगन नहीं बुहार रहा है। न इन्द्र ही पानी भरता है। लक्ष्मी और सरस्वती धान नहीं कूटती हैं। रानी मंदोदरी झंख रही हैं ॥१॥

रावण कहता है—जिसके लंका ऐसी कोट, समुद्र ऐसी खाईं, कुम्भकर्ण ऐसा भाई और मेघनाद ऐसा बेटा है, तुम उसकी स्त्री होकर डर गई ? आश्चर्य है ॥२॥

मंदोदरी कहती है—जामवन्त जिसका मंत्री है, लक्ष्मण जैसा वीर जिसका भाई है, हनुमान ऐसा जिसके पायक (दास) हैं, जिसने क्षण भर में लंका जला दी थी। उससे तो भय करना ही चाहिए ॥३॥

हे प्रियतम ! चंदन वृक्ष कटवाकर उसकी पालकी बनवा लो। उसमें हरे रंग का ओहार (परदा) डलवा लो। सीता को अयोध्या पहुँचा दो और अपने परिवार की रक्षा कर लो ॥४॥

(२६)

मातु गंगा लागि भगीरथ बेहाल ॥
कोई नीपे अगुआ त कोई पिछुआर ।
भगीरथ नीपे छथ शिव के दुआर ॥१॥
कोई तोड़े फूल कोई बेलपत्र ।
भगीरथ तोड़ैं छथ शिव के धेयान ॥२॥
कोई माँगे अन धन कोई धेनु गाय ।
भगीरथ माँगे छथि गंगाजी के धार ॥३॥
आगु आगु भगीरथ भागल जाथि ।
पिछु पिछु सुरसरि पसरलि जाथि ॥४॥

गंगा माता के लिए भगीरथ विकल हैं। कोई अपना अगवार (घर के आगे का भाग) लीप रहा है, कोई पिछवाड़ा लीप रहा है; पर भगीरथ तो शिव का द्वार लीप रहे हैं ॥१॥

कोई फूल तोड़ रहा है, कोई बेलपत्र तोड़ रहा है; पर भगीरथ शिव का ध्यान तोड़ रहे हैं ॥२॥

कोई अन्न-धन माँग रहा है, कोई कामधेनु गाय माँग रहा है। पर भगीरथ गंगाजी की धारा माँग रहे हैं ॥३॥

आगे आगे भगीरथ भागे जा रहे हैं। पीछे-पीछे गंगाजी फैलती जा रही हैं ॥४॥

भगीरथ की तरह कर्म-निष्ठ होना चाहिए।

(२७)

मैं न लड़ी थी, बलमा चले गये।
रंगी महल में दस दरवाजा, ना जानी खिड़किया खुली थी ॥१॥
पाँचो जनी मोरि रान्ह परोसिन तुम से बलम कछु कहिउ न गये ॥२॥

मैंने लड़ाई-झगड़ा नहीं किया था, पर प्रियतम चले गये।

इस रंगमहल में दस दरवाजे हैं। न जाने कौन सी खिड़की खुली थी, जिससे प्रियतम चले गये ॥१॥

पाँच जनी तुम मेरी पड़ोसिनें हो। क्या तुम से प्रियतम कुछ कह नहीं गये ? ॥२॥

रंगमहल = शरीर। दस दरवाजे = २ आँख, २ कान, २ नाक, १ मुख, १ लिंग, १ गुदा, १ ब्रह्मरंध्र। पाँच जनी = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

(२८)

कन्हैया बिरोगिन करि गये हमको।
खंभा की ओट ससुर समझावैं
अरे, बहुवर नाहीं तुम बिटिया हमारि।
का समझाओ ससुर तुम हमको,
अरे, हरी हरी चुरिया दुलम भई हमको ॥१॥
घूँघुट ओट जेठ समुझावैं
अरे, भैहौ नाहीं तुम बिटिया हमारि।
का समुझाओ जेठ तुम हमको
अरे, मोतिन माँग दुलम भई हमको ॥२॥
गोदहि बैठि देवर समुझावैं
अरे, भाभी नहीं तुम माता हमारि।

का समुझावो देवर तुम हमको
अरे फूलन सेज दुलम भई हमको ॥३॥
माय औ बाबू अति समुझावें
एक जनम बेटी खेल गमाओ।
का समुझावो माय औ बाबू,
अरे पिया की छाँह दुलम भइ हमको ॥४॥

(लखनऊ)

हाय! कन्हैया मुझे वियोगिनी बना गये। खंभे की ओट से ससुर समझा रहे हैं कि बहू! अब तुम बहू नहीं, मेरी बेटी हो। हे ससुर जी! तुम मुझे क्या समझा रहे हो? अब हरी-हरी चूड़ियाँ मुझे दुर्लभ हो गई ॥१॥

घूघट की ओट से जेठ मुझे समझा रहे हैं कि तुम मेरी भ्रातृ-वधू नहीं, मेरी बेटी हो। हे जेठ! तुम मुझे क्या समझा रहे हो? मोतियों से भरी माँग अब मुझे दुर्लभ हो गई ॥२॥

गोद में बैठकर देवर समझा रहे हैं—तुम मेरी भाभी नहीं, माता हो। हे देवर! तुम मुझे क्या समझा रहे हो? फूलों की सेज अब मुझे दुर्लभ हो गई ॥३॥

माँ और बाप मुझे बहुत समझा रहे हैं—हे बेटी! यह एक जन्म तो अब खेलकर बिता दो। हे माँ और बाप! क्या समझा रहे हो? मुझे अब पति की छाया दुर्लभ हो गई ॥४॥

यह एक विधवा का विलाप है। कैसा करुणाजनक है!

(२९)

बदनामी न सहबै जियत जरबै।
पूरी कचौरी हमें नाहिं चहिये,
सूखी भउरिया गुजर करबै। बदनामी० ॥१॥
झँझरे गेडुवा हमें नहिं चहिये,

टुटही मेलियवा गुजर करबै। बदनामी० ॥२॥
लौंग बिरियवा कै हमरे काम नहीं,
सूखी सुरतिया गुजर करबै। बदनामी० ॥३॥
तोसक तकिया हमें नाहीं चहिये,
टुटहे झिलँगवा गुजर करबै। बदनामी० ॥४॥
महला दुमहला हमहि नाहीं चहिये,
टुटही मड़इया गुजर करबै। बदनामी० ॥५॥
साला दुसाला कै काम नहीं है,
कारी कमरिया गुजर करबै। बदनामी० ॥६॥
मीठी रे बोलिया हमें नाहीं भावै,
पिय की सुरतिया गुजर करबै। बदनामी० ॥७॥
(जौनपुर)

मैं बदनामी न सहूँगी; जीते-जी पति की वियोगाग्नि में जलूंगी। मुझे पूरी-कचौड़ी नहीं चाहिए; मैं सूखी भौरी (भूभल में पकी रोटी) पर गुजर कर लूंगी ॥१॥

मुझे झज्झर (सुराही) नहीं चाहिए; मैं फूटी हुई मेटी (छोटी हँड़िया) से गुजर कर लूंगी ॥२॥

लौंग और पान के बीड़े की जरूरत मुझे नहीं है; मैं सूखी सुरती (तम्बाकू) से काम चला लूंगी ॥३॥

मुझे तोशक-तकिया भी नहीं चाहिए; टूटी हुई झिलँगा (खाट) पर मैं गुजर कर लूंगी ॥४॥

मुझे महल-अटारी भी नहीं चाहिए; मैं टूटे हुए झोपड़े में गुजर कर लूंगी ॥५॥

मुझे शाला-दुशाले की भी इच्छा नहीं है; मैं काली कमली से जीवन बिता लूंगी ॥६॥

मुझे मीठी बोली भी अब नहीं चाहिए। मैं चुपचाप रहकर प्रियतम की याद में जीवन बिता दूंगी ॥७॥

(३०)

जियरा हमरा बिरोगी, कवन समुझावै।
जैसे गोड़री बिन गगरी डोलति है,
तैसे बिरन बिन बहिनी। कौन समुझावै ॥१॥
जैसे केवट बिन नैया चलतु है,
तैसे बबुल बिन बेटी। कौन समुझावै ॥२॥
जैसे पिपर केर पत्ता डोलतु हैं,
तैसे पुरुष बिनु नारी। कौन समुझावै ॥३॥

(बाँदा)

मेरा जी दुःखी है; इसे कौन समझावे। जैसे गोड़री (गोड़ा, पेंदी) के बिना गगरी ठिकाने से नहीं रहती, वैसे ही बिना भाई की बहन ॥१॥
जैसे बिना केवट की नाव, वैसे ही बिना बाप की बेटी ॥२॥
जैसे पीपल का पत्ता हिलता है, वैसे ही बिना पुरुष की स्त्री ॥३॥

(३१)

छाड़ि देव राजा पराए घर आसा।
अम्मा लगौलीं मैं अपने दिनन को
बहे पुरवइया चुवन लागे लासा।
बेटा जनमाई मैं अपने दिनन को
आवे पतोहिया छोड़ावे लागे नाता ॥

हे राजा! दूसरे के घर की आशा छोड़ दो। अपने दिनों के लिए मैंने आम लगाया; पर फल आने के दिनों में पूर्वा हवा चलने लगी और लासा लग गया।

अपने दिनों के लिए मैंने पुत्र को जन्म दिया; पर पतोहू आई और वह माता-पुत्र का नाता ही तोड़ाने लगी ॥३॥

(३२)

कहाँ पायों कँगना कहाँ पायो मोतिया,
कहाँ पायों रे दिल-लगना,
दिल-लगना बलमुआ कहाँ पायों रे ॥१॥
हाटे पायों मोतिया बजारे पायों कँगना,
सेजा पायों रे, दिल-लगना बलमुआ ॥२॥
टुटि जइहें कँगना चिटिकि जइहें मोतिया,
रिसाय जइहें रे, दिल-लगना बलमुआ ॥३॥
जोड़ लेबों कँगना मँगाय लेबों मोतिया,
मनाय लेबों रे, दिल-लगना बलमुआ,
मनाय लेबों रे ॥४॥

(इलाहाबाद)

कंकण कहाँ पाया? मोती कहाँ पाये? और अपने मन का पति कहाँ पाया ॥ १ ॥

हाट में मोती पाये। बाजार में कंकण पाया, और सेज पर मन को भाने वाला पति पाया ॥ ३ ॥

कंकण टूट जायगा, मोती चिटक जायँगें, और मन-भाया पति रूठ जायगा ॥ ३ ॥

कंकण जोड़वा लूंगी, मोती मँगा लूगी, और अपने रूठे पति को मना लूंगी ॥४॥

(३३)

फूहर नारि कैसे घर तारै।
सेर भरि पीसै सवाउ सेर फाँकै, पैबे कि बेरा वहि को मूड़पिराय
कैसे घर तारै।

साँझ क सोइ पहर दिन जागै बढ़नी डारै रोय। कैसे घर तारै।
छानी क फूस अकेहु लाय बारै और बँडेरी कि घात लगावै।
कैसे घर तारै।
(हरदोई)

फूहड़ स्त्री घर का उद्धार कैसे कर सकती है ? एक सेर अन्न तो पीसती है और सवा सेर फाँक जाती है, रोटी पोने के समय उसका सिर दर्द करने लगता है ! साँझ होते ही सो जाती है, पहर दिन चढ़े जागती है, रो-रोकर झाड़ू चलाती है, छप्पर के फूस से चूल्हा जलाती है, और बँडेर पर घात लगाये है, भला वह घर का उद्धार कैसे करेगी ?

(३४)

मैं का जानौं राम जियरा बिआकुल पिया बिना।
ससुरु क आवै तिजरा, ननदी का संताप,
देवर क खरजुरहा मैं तो टूटे डार के पाना ।। मैं का जानौं०।।१।।
खटिया के टूटि पटिया चारो पावा के साल।
गोरी के छूटिग हितुवा,रोइ रोइ करत बिहान ।।मैं का जानौं।
बिन बिरिछ के अँगना, बिन कुकुरा के गाँव।
बिन डौका के डौकी रोइ रोइ करत बिहान ।।मैं का जानौं।३।।

हे राम ! मैं क्या जानू ? प्रियतम के बिना जी व्याकुल है। ससुर को तिजरा (तीसरे दिन का ज्वर) आता है, ननद को ताप चढता है, देवर को जुकाम है, मैं तो डाल से टूटा हुआ पत्ता हो रही हूँ ।। १ ।।

खाट की पाटी टूट गई है, चारों पायों के चूर टूट गये हैं। गोरी के प्रेमी बिछुड़ गये हैं, वह रो-रोकर रात काटती है ।। २ ।।

जैसे बिना वृक्ष का आँगन, बिना कुत्ते का गाँव; वैसे ही बिना पुरुष की स्त्री रो–रोकर सबेरा करती है ।।३।।

(३५)

पनवा अस धना पातरी रे, धनुहीयाँ ऐसी नै के चली रे।
फुलवा अस धना सोहनी रे, अँजोरिया ऐसी ऊइ के चली हो।

(इलाहाबाद)

स्त्री पान ऐसी पतली और सुकुमार है, और धनुष की तरह नम्रता से झुककर चलती है। फूल की तरह वह सुंदर है, और चन्द्रमा की तरह उदय होकर चलती है।

(३६)

रामहि राम रटन लागी जिभिया।
मुँहवा कहै हम हरि गुन गाउब,
कनवा कहै हम सुनब पुरान। रटन लागी०।१॥
अँखिया कहै हम दरसन करबइ,
मनुवा कहइ हम धरबइ ध्यान। रटन लागी०॥२॥
गोड़वा कहै हम तीरथ करबइ,
हथवा कहै हम देबइ दान। रटन लागी०॥३॥

जीभ अब राम-राम रटने लगी।

मुँह कहता है कि हम भगवान का यश गायेंगे। कान कहता है, हम पुराण सुनेंगे॥ १॥

आँख कहती है, हम भगवान का दर्शन करेंगी। मन कहता है, मैं ध्यान धरूँगा॥ २॥

पैर कहते हैं, हम तीर्थ करेंगे; और हाथ कहते हैं, हम दान देंगे॥३॥

कौमुदी-कुञ्ज

जातीय गीत

ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और कायस्थों को छोड़कर हिन्दू-समाज की प्रायः सभी निम्न श्रेणी की जातियों में उनके निजी गीत, नृत्य और बाजे प्रचलित हैं। नृत्य, जो कभी शिवजी करते थे, श्रीकृष्णचन्द्र करते थे और इन्द्र की सभा में जिसका बड़ा सम्मान था, उसका कुछ आभास अभी तक निम्न-श्रेणी की जातियों में पाया जाता है। बाजे प्रायः बहुत सस्ते दामों के होते हैं और वे केवल गीत और नृत्य को सरस बनाने ही में सहायक होते हैं। आजकल की तरह वे एक स्वतंत्र विषय नहीं बने हैं। मटके, सूप, सिटके, ढोलक, एकतारा आदि सस्ते बाजों से गाँव के लोग अपना मनोरंजन कर लेते हैं।

आगे भिन्न-भिन्न जातियों के कुछ जातीय गीत दिये जाते हैं। सबके गीतों के स्वर-ताल अलग-अलग होते हैं।

अहीरों के गीत

अहीरों के गीत दो प्रकार के होते हैं, एक राह चलते हुए या गोरू चराते हुए गाने के, जिसको बिरहा कहते हैं; और दूसरे विवाह आदि उत्सवों में नाच और नगाड़े पर गाने के। बिरहे विवाह में भी गाये जाते हैं!

नौजवान अहीरों की आम आदत होती है कि वे प्रायः राह में बिरहे टेरते हुए चलते हैं।

विवाह के अवसर पर एक सुन्दर और नौजवान अहीर जाँघिया पहनकर नाचता है। जाँघिये में बहुत-सी घंटियां सिई रहती हैं, जो नाचते

वक्त काफी शोर करती हैं। नाच के वक्त नगाड़ा इतने जोर से बजाया जाता है कि मीलों दूर से मालूम पड़ता है कि कहीं अहीर का नाच हो रहा है। अहीर का नाच बड़ी मशक्कत का होता है। नाचने वाले की पूरी कसरत हो जाती है। नाच की एक गत खतम करके वह कान में उँगली डालकर गीत या बिरहे गाता है।

गीतों में राम-चरित-मानस की चौपाईयाँ भी जोड़ ली जाती है, और बिरहे के स्वर में गाई जाती हैं।

बिरहा सचमुच विरह का गीत है। उसमें युवक और युवतियों के लुभावने भावों की बड़ी मीठी चुलबुलाहट भरी रहती है। यद्यपि बिरहों में अश्लील शृंगार का वर्णन विशेष रूप से होता है, पर उसका कोई हानिकारक प्रभाव अहीर युवक-युवतियों पर पड़ा हुआ नहीं दिखाई पड़ता। अहीर-जाति के स्त्री-पुरुष दोनों काफी हृष्टपुष्ट और सुगठित शरीर के होते हैं।

यहाँ कुछ बिरहे और गीत दिये जाते हैं :—

बिरहे

(१)

ताल में चमकै ताल की नेरुइया खेतवा में गेहूँ क बालि।
सभवा में चमकै पिया की पगड़िया अँगना छुलाछनि जोय॥

(लखीमपुर)

ताल में नरई, खेत में गेहूँ की बाल, सभा में प्रियतम की पगड़ी और घर के आँगन में सुन्दर लक्षणोंवाली स्त्री चमक रही है।

(२)

गाय चरावों सुपास न पावों, भैंस चरावों लम्बी दूर।
अपने बाप की छगड़ी चरावों, हिला हिला करे जी जाय।

अहीर की युवती कन्या अपने जी का दुःख कहती है—

गाय चराती हूँ और बड़ी दूर तक ले जाकर भैंस चराती हूँ, पति से मिलने का मौका ही नहीं मिलता। अपने बाप की बकरियाँ चराती

हूँ, 'हिला' 'हिला' (बकरियाँ हाँकने का शब्द) करते-करते जान निकल जाती है।

(३)

रहिउ करम की पातरि गोरिया भइउ गड़िवनवा क जोय।
सारी राति पिया पहिआ ढकेलें राति रतौंधी होय।

(लखनऊ)

हे गोरी ! तुम बड़ी अभागिन थी, जो गाड़ीवान की स्त्री हुई। तुम्हारे पति सारी रात तो गाड़ी ढकेलते रहते हैं और इस पर भी रात में उन्हें रतौंधी होती है।

(४)

राम क बगिया सिता कै फुलवारी।
लछिमन देवरा बइठ रखवारी।
फरि गये नेबुआ लटकि गई डारी।
तोरि तोरि नेबुआ पठावैं ससुरारी॥
वोहि नेबुआ क बनै तरकारी॥

(फैजाबाद)

अर्थ स्पष्ट है। इस बिरहे में अहीर ने अपनी सुप्रसिद्ध बुद्धि का अच्छा परिचय दे दिया है। वह चुपके-चुपके अपनी ससुराल को नीबू इसलिये भेजता है कि वहाँ उसकी तरकारी बनेगी !

(५)

कौन चिरैया पोथिया बाँचै, कौन खेवत दरबार।
कौन चिरैया कै लम्बी लम्बी टँगिया, कौने कै चाँवर बार॥१॥
मैना चिरैया पोथिया बाँचै, सुगवा खेवै दरबार।
हंसा चिरैया कै लम्बी लम्बी टँगिया, बकुला कै चाँवर बार॥२॥

(गोंडा)

कौन चिड़िया पोथी बाँचती है ? कौन राज-काज चलाती है ? किस चिड़िया की लम्बी-लम्बी टाँगें हैं ? और किसके चौंर जैसे-बाल हैं ? ॥ १ ॥

मैना पोथी बाँचती है। सुआ राज-काज चलाता है। हंस की लंबी-लंबी टाँगें होती हैं और बगुले के बाल चौंर-जैसे होते हैं ॥ २ ॥

(६)

राम भैलें जोगिया लषन बैरगिया,
दुनो भैया भइलें फकीर।
गरवाँ में नाये तुमड़ी को तकिया,
माँगें दुरदेसिया में भीख।

राम जोगी होगये और लक्ष्मण बैरागी। दोनों भाई फकीर हो गये। गले में तुम्बी लटकाये हुए वे दूर देश में भीख माँग रहे हैं।

यहाँ अहीर ने अपनी-सी हालत राम-लक्ष्मण की भी कर दी है।

(७)

केतनो कोइलवा के धोबिया तुं धोवई
नौ मन साबुन लगाइ।
जेकर सुभाव जनम पड़ि गईलेहें ओकर न मेंटे से मिटाय ॥१॥
जब बिगड़े तब निमन ही बिगड़े और का बिगड़े कपूत।
दही बिचारे कैसे बिगड़े जिनके अन्त ही से बिगड़ले दूध ॥२॥

हे धोबी ! नौ मन साबुन लगाकर तुम कोयले को कितना ही धोवो, लेकिन जिसका जन्म से जो स्वभाव पड़ गया है, वह मिटाने से नहीं मिटेगा ॥ १ ॥

बिगड़ेगा तो वही बिगड़ेगा, जो बना हुआ है। कपूत क्या बिगडेगा ? वह तो बिगड़ा ही है। बिगडे हुये दूध का दही क्या बिगड़ेगा ? ॥ २ ॥

(८)

चींटी मरी पहाड़ पर नौ सै लागि चमार।
प्यारे, नौ सै लागि चमार।
कलजुग माँ ससुरारि पियारी।
सो भाई प्यारे कलजुग माँ।
चारि रोज का बेटा गये ससुरारी।
गये ससुरारि सासु के भयो लरिका।
गलियन गलियन सासु पुकारै,
दमाद का खर्च कहाँ ते चलाई।
दमरी कै दाल छदाम के चाउर,
घी का अंस न देत दिखाई॥
हाथ माँ खुरपा बगल माँ खारा।
घास छोलन चला लरिका बिचारा॥
पाछे ते मेहरी ललकारा,
डारि दियो खुरपा बहाय दियो खारा।
छाँड़ि दियो ससुरारी को सहारा॥
लाउ छुरी गला काटि मरी।
ससुरारि की गलियाँ कबहूँ न चली॥
चींटी मरी पहाड़ पर नौ सै लागि चमार।
नाघा छवार की गन्ती नाहीं
जूता बने एक सै नौ हजार॥
सो भाई प्यारे॥

(लखनऊ)

पहाड़ पर चींटी मरी ; उसे उठाने के लिये नौ सौ चमार लगे। कलियुग की ससुराल प्यारी होती है। बेटा चार दिन के लिये ससुराल

गया। सास के लड़का हुआ। गली-गली में सास पुकारने लगी कि अब दामाद का खर्च कहाँ से चलेगा? दमड़ी की दाल, छदाम का चावल और उसमें घी कहीं छू भी नहीं गया था।

हाथ में खुरपा और बगल में खारा (घास बटोरने की जाली) लेकर लड़का बेचारा घास छीलने चला। पीछे से उसकी स्त्री ने उसे फटकारा। उसने खुरपा और खारा फेंक दिया और ससुराल का भरोसा छोड़ दिया।

इस बिरहे में ससुराल में जाकर रहनेवालों की दुर्गत दिखलाई गई है।

(९)

जब से छूटि रेल कै गाड़ी, कटिगा जँगल पहाड़।
पैसा रहा सो गोड़े क सौंपेउँ, पेटवा पीठि का हाड़॥

जब से रेलगाड़ी चली, जंगल और पहाड काटे गये। जो पैसा था, उसे तो मैंने पैर को सौंप दिया, अर्थात् पैर को पैदल न चलने दिया और टिकट खरीद लिय। और पेट को पीठ का हाड़ सौंप दिया अर्थात् खाने बिना पेट पीठ से चिपक गया।

(१०)

महँगी के मारे बिरहा बिसरिगा, भूलि गई कजरी कबीर।
देखि के गोरी क उभरा जोबन, अब उठै न करेजवा में पीर॥

महँगी के कारण बिरहा, कजली और कबीर सब भूल गये। अब गोरी के उठे हुए स्तनों को देखकर कलेजे में पीड़ा नहीं उठती।

अहीर ने कैसी सरसता से महँगी का कष्ट अनुभव किया है।

(११)

नीकी भुइयाँ नीकी भवानी, नीके नगर के लोग।
नीकी पंचो सभा तुम्हारी, बैठी आसन मारि॥

भुइयाँ मनावन चली ग्वालिनी, लै लोटा भरि दूध।
पूजि पाजि ठाढ़ी भइ ग्वालिनि, भुइयाँ देओ असीस॥
धोरी धोरी गैयाँ बछरा विअइयो, वहुयें खेलावें पूत।
भुइयाँ दई असीस।

भूमि अच्छी है, भवानी अच्छी हैं, नगर के लोग भी अच्छे हैं। हे पंचो! तुम्हारी सभा भी अच्छी है, जो आसन मारकर बैठी है। ग्वालिन लोटा भर दूध लेकर भूमि को मनाने चली। पूजा करके ग्वालिन खड़ी हुई और विनती करने लगी—हे भूमि माता! आशीर्वाद दो। भूमि ने आशीर्वाद दिया—गायों के सफेद बछड़े होंगे, वहुवें पुत्र खिलायेंगी।

(१२)

अमवा क लाग टिकोरवा रे सँगिया, गूलरि फरी है हड़फोरि।
गोरिया क उकसा है छाती क जोवनवा, पिया के खेलौना रे होइ॥

ऐ संगी! देखो, आम में टिकोरा (कैरी) लग आया, और गूलर का फल डालों का तना फोड़कर बाहर निकल आया। इसी तरह गोरी (प्रेयसी) की छाती पर स्तन उकस आयें हैं, जो पति के खिलौना हैं।

(१३)

गोरिया के छतिया प उठा रे जोबनवा, हँसैं सहरिया के लोग।
लै ला गोरी दमवा दै दा जोबनवा, तोहँसे जतनवा न होइ॥

गोरी की छाती पर स्तन उभर आये हैं। उन्हें देखकर शहर के लोग हँसते हैं। हे गोरी! दाम लेकर जोबन मुझे दे दो, तुमसे उसकी सँभाल न होगी।

(१४)

बने बने गइया चरावै रे कन्हइया, घरे घरे जोरत पिरीत।
आनकी बिअहिया क सान मारि आवै आखिर त जतिया अहीर॥

कन्हैया बन-बन में गाय चराता फिरता है और घर-घर में प्रीति जोड़ता रहता है; दूसरे की विवाहिता स्त्री को इशारा करता है, आखिर तो अहीर की जाति का है न?

(१५)

गोरी गोरी बहियाँ गोरी गोदना गोदावैं, जैसे चुनरी रँगै रँगरेज।
छतिया प गोदि दे अरे गोदनहरी, वहि रे छयलवा क नाँव॥

गोरी अपनी गोरी-गोरी बाहों पर ऐसा गोदना गोदाती है, जैसे रंगरेज चुनडी रँगता है। ऐ गोदनेवाली इसकी छाती पर इसके प्रेमी छैला का नाम गोद दे।

(१६)

पिसना के परकी जाँते क मुसरिया, दुधवा क परकी बिलारि।
आपन जोबना सम्हारेउ रे चिरई, रहरी में लागा थै हुँडार॥

जाँत (चक्की) के आसपास रहने वाली चुहिया आटे के लिये और बिल्ली दूध के लिये परक जाती है। हे चिरई (चिडिया, प्रेमिका) अपना जोबन बचाना, अरहर के खेत में न जाना; वहाँ भेड़िया लगता है।

(१७)

बहै पुरवइया झपसि आवै अमवा रे, ठाढ़ि देहिया रे मटियाय।
जियरा में करकै गोरी क नजरिया, घर बन एकौ न सुहाय॥

पूर्वा हवा बह रही है, आम झपस आया है; खड़ी देह भी मिट्टी के लोंदे की तरह बेदम हो रही है, तो भी गोरी की नजर जी में करक रही है; घर बन कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

(१८)

कछुई बिआनी कछुवा रे रामा, गँगाजी बियानी ह रेत।
छोटि छोटि बिटिया त बेटवा बिआनी, बजर परै रे यहि पेट॥

कछवी ने कछुवे को जन्म दिया, गंगाजी ने रेत को। छोटी-छोटी लड़कियाँ भी बेटे की माँ हो गई; ऐसे पेट पर बज्र गिरे।

(१९)

बड़ निक लागै गाइ चरवहिया, भुइयाँ जो परती होय।
बड़ निक लागै मेहरी क कोरवा, जब ले लरिकवा न होय॥

पड़ती जमीन मिले तो गाय का चराना बहुत अच्छा लगता है। युवती स्त्री की गोद तबतक बहुत प्यारी लगती है, जबतक उसके कोई लड़का नहीं होता।

(२०)

बैठिके माँजै रे गोरी बटलोइया, तोरि तोरि लोटवा प तान।
जेतना कमा थै मोर परदेसिया, ओतने क कचरी थै पान॥

गोरी लोटे पर ताल दे-देकर बटलोई माँज रही है। वह कहती है कि मेरा परदेशी जितना कमाता है, उतने का तो मैं सिर्फ पान कुचल डालती हू।

(२१)

पिया पिया कहत पिअरि भई देहियाँ, बैदा बतावै पिंडरोग।
गौंवाँ क लोगवा मरमियो न बूझैं, भई है गवनवा के जोग॥

पिया पिया कहते देह पीली हो गई; वैद्य कहते हैं कि पिंडरोग हो गया है। गाँव के लोग भी मर्म की बात नहीं समझते; वह तो गौना (पति के घर जाने) के योग्य हो गई है।

(२२)

नदिया के ईरे तीरे उपजी कुसाड़ी।
गउवा चरावइँ किसन मुरारी॥१॥
बीच बना में कान्हा कँबरी बिछावइँ।
सब सखियन का पकरि मँगावइँ॥२॥
कोइ सखि गावै कोइ बजावै।
कोइ सखि काँधा कि मुरली चोरावै॥३॥

सिसुकत के काँधा घर का चले।
भितरा ते निकसीं जसोमति माता ॥४॥
के तोहें मारा के तोहें गरिआवा।
के तोहें बतिया डोकरि गोहरावा ॥५॥
नहिं कोई मारा नहि त गरियावा।
नहिं कोई बतिया डोकरि गोहरावा ॥६॥
हमरी त बंसी चोराइ लिहिन राधा।
यही प रोवत हम घर चलि आई ॥७॥
बाँसे की बंसी तू जाइ द्या लाला।
तोहें सोने कि बंसी हम देब बनवाई ॥८॥

(सुलतानपुर)

नदी के तीर पर कुश जमा है। वहाँ श्रीकृष्ण गाय चरा रहे हैं ॥ १ ॥

कृष्ण बीच बन में कमली बिछाकर बैठे और उन्होंने सब सखियों को पकड़ मँगाया ॥ २ ॥

कोई सखी गाती है, कोई बजाती है, और कोई कृष्ण की वंशी चुराती है ॥ ३ ॥

सिसकते हुये श्रीकृष्ण घर आये। यशोदा माता भीतर से निकलीं ॥४॥

किसने तुम्हें मारा? किसने गरिआया? किसने तुम्हें तू करके बुलाया ॥ ५ ॥

न किसी ने मारा; न गरिआया; और न किसी ने तू करके बुलाया ॥ ६ ॥

राधा ने मेरी वंशी चुरा ली। इसी पर मैं रोता हुआ घर चला आया ॥ ७ ॥

हे लाला! बाँस की बाँसुरी थी, जाने दो। मै तुम्हें सोने की वंशी बनवा दूंगी ॥८॥

(२३)

चन्दा बरन बंर मिलि गये, सूरज से मिलि गये जेठ।
बिजुरी सी चमकत ननदी मिली, बदरी बरन मिली सास ।।

वर तो चाँद की तरह सुंदर, और जेठ सूरज जैसे तेजस्वी मिले। ननंद बिजली की तरह चटक-मटकवाली और बदली की तरह धूमिल स्वभाववाली सास मिली।

(२४)

गोरी क जोबना हुमसन लागे, जैसे हिरनियाँ क सींग।
मूरख जाने कछु रोग उठत हैं, ऊ तो पीसि लगावें नीम ।।

गोरी के स्तन उभड़ने लगे, जैसे हिरन के सींग हैं। मूर्ख पति समझता है कि कोई रोग उठ रहा है, वह उसपर नीम पीसकर लेप लगाता है।

(२५)

फूल मँदारे क फूलै रे बौरा, पिपरे मँ फूल न होय।
काउ टटोले डाढ़ीजार के अरे जोबना में हाड़ न होय ।।

अरे मूर्ख ! मदार का फूल फूलता है, पीपल में फूल नही होता। अरे दाढीजार के छोकरे ! क्या टटोलता है ? स्तन में हाड़ नहीं होते।

(२६)

अँगिया जो उधड़ी करै कर, दरजी क दोष न होय।
उठत उमिरि दूनो जोबना, निकरे पँसुरिया फोर ।।

चोली तार-तार उधड़ गई, इसमें दरजी का दोष नहीं। उठती हुई उम्र में दोनों स्तन पँसली छोड़कर निकल रहे हैं, इसीसे चोली फट गई है।

(२७)

बिरहा गावउँ बाघ की नाईं, दल बादल घहराय ।
सुनि के गोरिया उचकि उटि धावै, बिरहा क सबद ओनाय ।।

प्रेमी युवक कहता है—बिरहा बाघ की तरह गरजकर गाता हूँ, जैसे बादल घहराता है। उसे सुनकर गोरी (प्रेमिका) उचककर उठ दौड़ती है और बिरहे के स्वर को ध्यान से सुनने लगती है।

(२८)

लजिया क बतिया मैं केसे कहौं भउजी, जे मोरे बूते कहलो न जाय।
परके फगुनवामें सिअली चोलियवा में, असौं न जोबनवा अमाय ॥

हे भाभी! लाज-शर्म की बात है, मैं कैसे कहूँ? पिछले साल के फागुन में सिली हुई अँगिया में इस साल का यौवन समाता नहीं है।

(२९)

अहिरा का सोभेला जे ललकी लउरिया,
बभना का ललका जनेउ।
नोनिया का सोभेला जे कान्हे प फरुहवा,
जे छत्री का तीर तरुआरि।
औ पंचा के सोभेला निआउ।
(बस्ती)

अहीर को लाल रंग की लाठी, ब्राह्मण को लाल जनेऊ, लोनिया को कंधे पर फावड़ा (जिनसे चूहों की बिलें खोदता है,) शोभा देता है। क्षत्रिय को तीर और तलवार शोभा देता है और पंच की शोभा इन्साफ है।

(३०)

कौनु राति-दिन परा रहति हइ, कौनु रात-दिन ठाढ़।
कौनु राति-दिन चला करति हइ, इनके कौन सुभाउ ॥१॥
धरती माता परी रहति हइँ, राम राति दिन ठाढ़।
पावन पानी चला करति हइ, इनके यही सुभाउ ॥२॥
(लखनऊ)

कौन रात और दिन पड़ा रहता है ? और कौन खड़ा ? और कौन रात और दिन चलती रहती है ? ॥१॥

धरती माता पड़ी रहती हैं। राम रात दिन खड़े रहते हैं। पवन और पानी चलते रहते हैं। इनके ये स्वभाव ही हैं।

(३१)

गगरी में फँसरी लगाय के पतरकी इनरा में दिहे लटकाइ।
निहुरि निहुरि तैं तो पनिया भरत वाटे जोवना के पड़े परछाइँ।

हे पतले अंग वाली ! गगरी के गले में रस्सी बाँधकर तुमने उसे कुएँ में लटका दिया है। तुम तो झुककर पानी भर रही हो, उधर पानी में स्तनों की छाया पड़ रही है।

(३२)

दरुआ भकोसि सड़किया प गिरबे देबे आपन दँतवा निपोरि।
मुँहवा में कुकुर मूती टँगिया उठाइके हँसि देई सगरी बजार॥
डिपटी साहेब के नाहीं जानल बेहरकू गारी दीहैं पनर हजार।
अन्हरी में अन्हरू तु देबे जुरमनवा बिकि जइहैं भुलनी हमार॥
बुढ़वा बाप तोर करैला नोकरिया माई तोर जाँता पीसी खाय।
परई में दालिभात पुरवा में पानी ई गति भइली तोहार॥
बारबार तोके बरजीं बलमुवा तुँ जनि कलवरिया में जाय।
धैके पिअदवा अँधेरिया मजिटरी में दिहै जुरमनवा कराय॥

पति की शराबखोरी के विरुद्ध स्त्री की पुकार—

दारू पीकर सड़क पर गिरोगे और दाँत निकाल दोगे; कुत्ते मुँह में मूतेंगे और सारा बाजार हँसेगा। डिप्टी साहब को नहीं जानते ? वे पंद्रह हजार गालियाँ देंगे। हे अंधे ! तुम अनरेरी कचहरी में जुरमाना दोगे, मेरी भुलनी बिक जायगी तुम्हारा बुड्ढा बाप तो नौकरी करता है, माँ चक्की पीसकर खाती है ! तुम्हारी यह दशा है कि

मिट्टी के बर्तन में तो दाल-भात खाते हैं और कुल्हड़ में पानी पीते हो। हे बालम। मैं तुमको बार-बार रोकती हूँ कि कलवार के घर मत जाओ ! प्यादे तुमको पकड़ ले जायँगे और अनरेरी मजिस्ट्रेट की कचेहरी में जुरमाना कर देंगे।

कहारों के गीत

कहार डोली ढोने का काम करते हैं। दूल्हा को दुलहिन के घर और दुलहिन को दूल्हे के घर पहुँचाने का काम कहार के जिम्मे है। डोली, खड़खड़िया, पालकी या पीनस उठाकर जब वे चलते हैं, तब शृंगार-रस के रसीले गीतों से अपनी सवारी को रास्ते भर गुदगुदाते चलते हैं। पति के घर जानेवाली दुलहिन या विवाह के लिये जाते हुये दूल्हे को शृंगार-रस के गीत कितने मधुर लगते हैं, अनुभवी ही बता सकते हैं।

कहारों के गीत को कहीं लाचारी और कहीं कहरवा कहते हैं। कहार लोग अपने व्याह में नाचते भी हैं। नाचते वक्त 'हुड़ुक' नाम का बाजा बजाते हैं।

यहाँ कहारों के कुछ कहरवे दिये जाते हैं :—

(१)

गोरी धन सुअना पालो जी, गोरी धन ने ॥टेक॥
बड़ोई जतन करि पिंजरा बनायो,
ताभं घने घने तार लगाये जी ॥१॥
तुचा के कागद सें पिंजरा मँढ़ाय दयो,
मेरो पंछी न कहूँ उड़ि जाय जी ॥२॥
राति दिन वाकी टहल करति है,
मेरो पंछी न कहूँ दुखिआय जी ॥३॥
मेवाहू खवावै दिन रात पढ़ावै ताय,
दयो वाई सें चित् लगाय जी ॥४॥

एक दिना सो गाफिल हुय गई,
तोता निकरि गयो करै हाय जी ॥५॥
खिरकी न खुली कोई तारु न टूटो,
जानै निकरि गयो कौन राह जी ॥६॥
बाग बगीचा बन खंड़ सब ढूँढ़े.
कहूँ पंछी न मिलै मेरे राम जी ॥७॥
प्यारे सुअना को कहूँ पता न पायो,
गोरी बैठि रही झक मारि जी ॥८॥
याही विधि तेरे तन की दसा होय,
लेउ जीवन हरि गुन गाय जी ॥९॥
(बदायूँ)

अर्थ स्पष्ट है जीव शरीर और सुआ और पिंजड़े का रूपक है।

(२)

बुढ़वा कँहरवा कै आई बुढइया तौ फेंकै तलौना में जाल।
बुढ़ऊ न पावैं जो एकौ मछरिया
तो मींजै पतोहिया क गाल ॥१॥
बुढ़वा मोरे जिय क जरनिया टिकुली देखे जरि जाय।
हे देवी दाई तोके रोट चढ़ौबै जो ई बुढ़वा मरि जाय ॥२॥

बुड्ढे कहार की बुढाई आई, तब ताल में जाल फेंकने लगा। बुड्ढे को जब एक भी मछली नहीं मिलती, तब (खिसियाकर) वह पतोहू का गाल मींजता है ॥१॥

यह बुड्ढा मेरे जी का जंजाल है: मेरे माथे पर टिकुली देखकर जल उठता है। हे देवी! यह बुड्ढा मर जाय तो तुमको रोट चढाऊँगी ॥२॥

सचमुच बुड्ढा कहार गृहस्थी का बोझ हो जाता है।

(३)

दिनवा दिनवा मैं गिनों बलमुआ छोटे लड़िका राम।
अँगुरी पकरि दुलहा लै गयों बजरिया
पुछही नगरिआ के लोग राम॥
कि तोरा लागे भइया रे भतिजवा
कि या तोरा लागे लहुरा देवरवा राम॥
नाहीं लागे हमरा भइया रे भतिजवा
नाहीं लागे लहुरा देवरा हो राम॥
पुरबुज कमैया दुलहा पायेवँ छोटे लड़िका राम॥
जहाँ देखे लाई गट्टा तहाँ मचलाई राम।
टोपिया वदल दुलहा खाइ लाई गट्टा राम॥
सरसों कै तेल ककुन कै बुकवा राम।
सारी मीजि दुलहा कई लेबे सयनवा राम।
दिनवा दिनवा मैं गीनो वलमु छोटे लड़िका राम॥

बालम अभी छोटे वालक हैं। मैं उनके युवा होने का दिन गिन रही हूँ।

दूल्हा मेरी ऊँगली पकड़कर मुझे बाजार ले गया। बाजार के लोग पूछने लगे—तुम्हारा यह कौन है ?

तुम्हारा भाई है ? या भतीजा ? या छोटा देवर ?

न तो यह मेरा भाई है, न भतीजा और न छोटा देवर। पूर्व-जन्म की कमाई के फल से मैंने यह बालक दुलहा पाया है।

जहाँ यह गट्टा-लाई देखता है, मचल उठता है। टोपी देकर गट्टा-लाई खाता है।

सरसों के तेल और काकुन का उबटन लगाकर मैं थोड़े दिनों में इसे सयाना कर लूँगी। मैं बालम के युवा होने के दिन गिन रही हूँ।

इस गीत में एक युवती बहू की मनोव्यथा भरी है, जिसका विवाह एक बालक वर से कर दिया गया था।

(४)

सगरी रयेनिया भौंरा घूमि घामि आयो कि कोई नाहीं रे
जागै नागरी क लोगवा कि कोई नाहीं रे॥
जागै तो जागै एक पातरी तिरेवा कि जिन केरे रे
पियवा छाये हैं बिदेसवा कि जिन केरे रे॥१॥
अँगना बहारै साँवरि टटरा जो उघारै गागरिया लैके रे।
साँवरि पनिया क जाय गागरिया लैके रे॥२॥
गगरी तो भरि भरि धरिली जगति पर सुगनवा मुरहा रे।
बोलै बिरहा कै बोलिया, सुगनवा मुरहा रे ॥३॥
एक तौ मन होय सुगना पटकौं देहरिया, दोसरे मन रे,
परदेसिया क चीन्ह, दोसरे मन रे ॥४॥

हे भौंरा! सारी रात तुम घूम-घाम आये, नगर में कोई नहीं जाग रहा है। जागती है तो केवल एक पतले शरीर की विरहिणी स्त्री, जिसके पिया परदश में हैं॥१॥

आँगन बुहारकर साँवली ने टाटी खोली और गगरी लेकर वह पानी को गई॥२॥

गगरी भरकर उसने कुँवें की जगत पर रख दी। नटखट सुआ विरह की बोली बोलता है। ऐसा जी में आता है कि सुए को देहली पर पटक दूं; पर उसी वक्त याद आता है कि यह तो परदेशी (पति) का दिया हुआ चिह्न है॥३॥

अन्त की कड़ी में विरहिणी ने अपने परदेशी की दी हुई वस्तु पर जो प्रेम प्रकट किया है, उसका स्वाद कोई प्रेमी ही जान सकता है।

जिस जाति में इस तरह मार्मिक भाव व्यक्त करने का हृदय है, उसे असभ्य कैसे कहा जा सकता है?

(५)

तुलसी कों बैरागु भयो जी, तुलसी कों ।।टेक।।
तुलसीदास राजापुर में रहत हे।
निज त्रिय पे आसक्त बहुत हे।।
ताके मुख मांई छिन छिन चितवत हे।
बिनि देखे ताके कल न परै जी ।।१।।
सावन के महीना में सार उनके आय गये।
अपनी बहिन कों चोरा चोरी सों
लिवाय गये।।
तुलसीदास हू धोको तिनसे खाय गये।
ता दिन तुलसी बजार गये जी ।।२।।
साँझ भई दिनु आओ मुँदन में।।
तुलसी सोचु करन लागे मन में।।
कामुदेवु व्यापि रह्यो तन में।
लै सोंटा ससुरारि चले जी ।।३।।
आगें नदिया अगम बहति है।
बड़ी भारी जामें लहरि उठति है।।
ताय देखि तुलसी मन कंपित है।
एक मुरदा जातु बहो जी ।।४।।
ताई पै चढ़ि के तुलसी पार भये हैं।
तब ससुरारि में पहुँचि गये हैं।।
धर के किवार तुलसी लगे पाये हैं।
एक सरफु तहँ लटकि रहो जी ।।५।।
ताहि पकरि तुलसी घर में गये हैं।
तब त्रिया के ढिग पहुँचि गये हैं।।

त्रिया को निरखि मन मगन भये हैं।
त्रिया ऐसें बचन कह्यो जी ॥६॥

इतनो हेतु करो तुम हमसें।
इतनो जौ हितु करते रघुपति सें॥
छुटि जाते जग के बंधन सें।
नाय जनम मरन रहतो जी ॥७॥

सुनत बचन तिनकी बुद्धि पलटि गई।
पिछली करनी कछु परगट भई॥
हात जोरि ताकों परिकरमा दई।
तुम भई गुरु मातु हमरी जी ॥८॥

तुलसीदास प्रभू लीला न्यारी।
राव सें चांहें छिन में करि दें भिकारी॥
अस तुलसी को तुलसीदास करोरी।
ऐसे प्रभू को तू भूलि गयो जी ॥९॥

(बदायूं)

अर्थ स्पष्ट है। तुलसीदास की जीवन-कथा को किसी कहार ने अपने गीतों में गूंथकर अपने समाज को उनसे सुपरिचित कर लिया है।

(६)

सोच मन काहे क करी। मोरे मालिक सिरी भगवान ॥टेक॥
जहाँ लेत नित रैन बसेरा बधिक लगावत फाँस।
कूदि कादि के हरिनी निसरिगै हरिन क परिगा फाँस॥
सोच मन० ॥१॥

इही पार से हरिना पुकारै सुनु हरिनी मोरी बात।

विधना के घर खरच खोटाने बेंचि खात मोर माँस ॥
सोच मन० ॥२॥
वही पार से हरिनी बोलै सुनु बधिका मोरी बात।
हमहूँ क बाँधु पिया सँग मोरे खोउ न मोर अहिबात ॥
सोच मन० ॥३॥
यतनी बचन कहि तुरत हरिनिया गई बधिकवा के पास।
यतनी बचन जब सुने बधिकवा अपनी धना कै
सुधिया जो आई, काटि दिये गलफाँस ॥सोच मन०॥४॥
(बाराबंकी)

मन में चिंता क्यों करूँ? श्रीभगवान मेरे मालिक हैं। हरिन-हरिनी जहाँ रात में बसेरा लेते थे, वहाँ बहेलिये ने जाल लगाया। हरिनी तो कूद-फाँदकर निकल गई, लेकिन हरिन जाल में फँस गया ॥१॥

इस पार से हरिन ने पुकारकर कहा—हे हरिनी! मेरी बात सुन। ब्रह्मा के घर में खर्च की तंगी आ गई है, सो अब वह मेरा मांस बेचकर खायगा ॥२॥

इस पार से हरिनी बोली—हे वधिक! मेरी बात सुन। मेरे पिया के साथ मुझे भी तू बाँध ले। मेरा अहिबात (असिव्रत = सुहाग) न खो ॥३॥

यह कहकर हरिनी वधिक के पास चली गई। वधिक को अपनी स्त्री की याद आई और उसने हरिन के गले का फंदा काट दिया ॥४॥

मृत्यु में भी 'पिया का संग' न छोड़ने की लालसा में हरिनी के अकृत्रिम प्रेम की झलक है। और वधिक का अपनी स्त्री की याद से दयार्द्र हो जाना भी मानव-हृदय की अद्भुत घटना है। और वह स्त्री धन्य है, जिसकी याद आने से पति के हृदय की कलुषता जाती रहे और उसके स्थान पर सात्विक भाव जागृत हो उठे।

तेलियों के गीत

तेल के कोल्हू के गीतों के सिवा तेलियों के जातीय गीत भी हैं, जिन्हें वे विवाह आदि उत्सवों में कई तेली साथ मिलकर गाते हैं।

यहाँ तेलियों के कुछ गीत दिये जाते हैं :—

(१)

बिरहा गाना सहज है ग्यानी, जोड़ कै मिलाना काम।
भाँग का खाना सहज है ग्यानी, लहरि बचाना काम ॥१॥

हे ज्ञानी! बिरहा गाना तो सहज है, लेकिन बनाना मुश्किल है। भाँग खाना सहज है, लेकिन उसका नशा सँभालना मुश्किल है।

(२)

जहँ पंच तहँ परमेसर भाई, जहँ कुअँना तहँ कीच।
वहिय कीच का बना चउतरा,
हाँ, सब पंच नवावइँ सीस ॥१॥

पंचा क बठि मेड़रिया, मेड़रिया छोटा बड़ा एक तूल।
केकरे मैं अर्ती उतारउँ रामजी, केकरे खोंसउँ बेइलीक फूल ॥२॥

पंचा क आउब बहुत निक लागै, जौ घर संपति होइ।
आवत के पंचा के सिसिया नवावउँ,
जात के पैयाँ पड़ रे जाउँ ॥३॥
(सुलतानपुर)

जहाँ पंच हैं, वहीं परमेश्वर हैं। जहाँ कुँवा है; वहीं कीचड़ भी है। उसी कीचड़ (मिट्टी) का चबूतरा बनता है, जिसे सब लोग सिर झुकाते हैं ॥१॥

पंचों की मंडली बैठी है। मंडली में छोटे-बड़े सब बराबर हैं। हे रामजी ! मैं किसकी आरती उतारूँ ? और किसके सिर पर फूल चढाऊँ ? ॥ ॥

यदि घर में धन हो तो पंचों का आना बहुत प्रिय लगता है। पंचों के आने पर मैं उनको सिर नवाता हूँ और जब वे जाने लगते हैं तब उनके पैर पड़ता हूँ ॥२॥

इन बिरहों में पंचों की महिमा गाई गई है। इन बिरहों के प्रभाव से तेली-समाज के नवयुवकों में नम्रता और पंचों के प्रति सम्मान का भाव उत्पन्न होता है।

गड़रियों के गीत

गड़रियों के भी जातीय गीत हैं। अपने विवाह आदि उत्सवों में वे अपने ही गीत गाते-बजाते हैं।

गडरिये रात में छुट्टी पाते हैं और तब एक साथ बैठकर, सूप बजाकर, अपने गीत गाते हैं। इनके एक मुख्य गीत का नाम 'सिउरिया' और एक का नाम 'पंडों की मार' है।

यहाँ गड़रियों के कुछ गीत दिये जाते हैं :—

सिउरिया

बँगला में सौवै सिउरिया।
हर मेरा बँगला कैसा रै छवाया, खिन खिन
बरसै रै मेघा, अरे अब बँगला तो तड़ाया है।
बूँदा तो मेरी छाती पै गिरी मेरे बालम,
अरे मैं गिरी रे पलंग से नीचै॥
बिन बिन रोवै रै आज महलाँ में सिउरिया जी।
अरै वह सिउरिया बँगला में रोवै रै॥

अरै केला गढ़ में सुनी रै आवाज परसवा नै।
भय्या परसवा सुन ले मेरी बात,
आज महल में कोई रोवै जी॥
भय्या जय्यो कोई महल में जी।
परसा बोलो भय्या बँगला छवाया रै॥
जानै और दुख क्या है
जो रोवै आज महलों में मेरी रानी।
बात सुनी थोंदा की परसुवा नै,
इतनी सुनकर महलों को चल दिया
परसुवा सुन थोंदा की रै॥
चला वह महलों को रै
जहाँ बँगला में सोवै सिउरिया।
अरै अब खड़ा रै दरवाजे पै अर
मेरी रानी आज हाल बता दे सारा जी॥
अरै जो किसी ने मारा तुमको उसके हाथ कटाऊँ।
जो घूरा हो उसके नैन कढ़ाऊँ जी॥
इतनी सुनकर बोली जी सिउरिया,
ऐ मेरे राजा सुन लो मेरी बात।
ना मिजै किसी ने मारा ना किसी ने घूरा
ना किसी ने दी गाली है;
अर मेरे बालम मेरा यह कैसा बँगला छाया जी
आज मेरे बालमा॥
ऐ जो मुझसे मना कर देते तुम बालमा।
अजी गंगा खादर से कसौंदा लेती कटाय॥

चार मँजूर लगाकर रेशम बंद लेती लगवाय।
इतनी बात सुनके परसा ने उसी ज्वान ने जी॥
अरै लै रानी जाता कजली बन को वह ज्वान जी।
धर कंधे पर कुहाड़ी परसवा ज्वान तो जी।
इक पोरिया बाँस बन से लाऊँ
तब तेरा बँगला बनाऊँ रै।
अजी पाँच छगा अपने यारों को भी लाऊँगा॥
एक छगा भैया नाई यार को जी।
इक तो लइया दुरजना गूजर को जी॥
इक तो लैया गलै गड़रिया को जी,
वह भी हमारा यार है जी।
एक नैंनसिंह बढ़ी को जी
अर इक अपने लिये जी॥
जब परसा धर कँधे कुहाड़ी कजली बन को जाता।
अरै भैया मजला मैं मँजल पहरे मैं पहरा रै॥
अब कजली बन में पहुँचा वह परसवा ज्वान जी।
सारै रै बन मैं फिरा रै भागता
बाँस न हाथ आवै जी, आज परसवा ज्वान जी॥
ऐ कर्ता तैंने क्या रची है जो प्यासों तजैं पिरान।
कधी घर से बाहर को न निकला था
आज कजली बन फिरूँ हूँ जी॥
अब जब बाँस का बीड़ा देख लिया परसुवा ने जी।
मारी रैं कुहाड़ी ऐसी बींड़ पै
हुई एक में परसवा की बोझी जी॥
धर बोझी सिर पै चला वह परसवा ज्वान जी।

परसवा चला घर को जी, दस पहरे चला
बीस पहरे चला उसकी याद जो आई जी।।
ले मारे यार ने कहा छड़ी को जी याद मारी
तो रही है नाय जी आज इस वन में।
लगा बोझी साल के पेड़ से
परसवा ज्वान पीछे को लौटा आय।
जब बन में पहुँचा परसवा ज्वान जी,
छड़ी तो पाँचो हाथ न आवे
आज परसवा ज्वान जी।
एक खड़ी बँबी में पाँचो छगा जी ले बड़े।।
दिनों में आई हैं यह छड़ी पाँचों को काई।
जब परसवा ने मारी कुहाड़ी एक छगा काटी।
उस बंबी में एक नाग एक नागन
दोनों मियाँ बीबी जी।
ऐ मियाँ तू किस फिकर में सोवे
ऐ भर सावन में जी, ऐ भर सावन में जी।
हमारी मँडया उजाड़ी इस परसवा ने,
नाय है अब ठिकाना हमारा जी।
उठ डस ले इसको जी।
ऐ नागन तू बोले मतना इसे छड़ काट लेन दे जी।
जैसे भर सावन में मेरी मँडया उजाड़ी,
भर सावन में बँधवाऊँ इसकी अर्थी।।
अरे काटौ परसवा नै जब पाँचो वह चला जी
निकल नाग बंबी में से जी।
आज उसकी बोझी में बैठा जी

परसवा ले ज्वान की जी।
परसवा की बैठा वह नाग, वह नाग जी।
परसवा ने बोझी धर ली वह
सिर पर धर ले चला वह ज्वान जी।
ऐ नाग ने जी जहाँ चोटी होती है हिन्दुओं की।
उस नाग ने अपना मुँह लगाया
परसवा की चोटी पर जी।
अरे लगी प्यास उस परसा को
वह तो भड़क गया है जी।
खून खैंच लिया है नाग ने जी।
जब खैंच तान के लियाया गंगा की ढाँग पर जी।
गंगाजी को ढाँग पर खड़े से बोझी बगाई जी,
आज परसवा ज्वान जी।
अरे, वह कूद पड़ा गंगा में
भैया दिल खोलकर पानी पिऊँगा।
भैया मेरा भड़क गया सारा शरीर।
पानी पी के गंगाजी में से निकला जी भैया।
उसके छुटे पिरान जी। आज परसवा ज्वान जी॥
(बिजनौर)

अर्थ स्पष्ट है,

बिरहे

(१)

सात गाँव घर तीन हैं,
जिन घर नारी एक।
ब्रह्मा बूझे बेद से
नौ हर हारी एक॥

गुरू हमारे कथ गये,
कोई श्रोता करें बिचार ।।

सात गांव = पृथ्वी के सात खण्ड ।
घर तीन = तीन लोक । नारी एक = लक्ष्मी ।
ब्रह्मा वेद से पूछते हैं कि नौहल और एक हलवाहा वह कौन है ?

(२)

ऊजर खेड़े फिर बसैं, निरधनियाँ धन होय।
बिछुड़ा जोबन ना मिलै, मानुष तौ मिलि जाय।।
हरघड़ियों रब्ब का नाम।

उजड़ा हुआ गाँव फिर बस जाता है, निर्धन को धन भी हो जाता है, और बिछुड़ा हुआ मनुष्य भी मिल जाता है, पर गई हुई जवानी फिर नहीं मिलती।

धोबियों के गीत

धोबी भी अहीरों, चमारो, कहारों और नाइयों की तरह अपने जातीय उत्सवों में खुद नाच-गा लेते हैं। इनके गीत भी प्रायः अहीरों के बिरहे-जैसे होते हैं। केवल गाने के स्वर में थोड़ा अन्तर होता है और भावों में तो स्वभावतः धोबी-कुटुम्ब की सजीवता रहती है।

धोबी लोग हुड़ुक (एक बाजा) और काँसे या पीतल की कटोरी को उसी धातु की गुल्ली से पीटकर गाने के साथ बजाते हैं। कई धोबी मिलकर खड़े-खड़े गीत गाते हैं और उनके बीच में खास ढंग की पोशाक पहने हुये धोबी का एक छोकड़ा नाचता है।

यह तो मशहूर ही है कि धोबी कपड़े नहीं खरीदता। अतएव सभी धोबी नाच-गान के समय साफ-सुथरे बने रहते हैं। यह उनकी खास विशेषता है।

यहाँ धोबियों के कुछ गीत दिये जाते हैं।

(१)

धोबी बेटी पानी को जाय राजा तो निकले शिकार को।
धोबी बेटी पानी पिलाय प्यासे तो आए गजवन दूर के।
पियो राजा समुन्द्र झकोल हमरे हाथों का पानी वषभरा ॥१॥
समुन्द्र तो पीवें डाँगर ढोर हम तो पीवैंगे तुम्हरे हाथ का।
जो तुम्हें धोबीकी चाव धोवट धोओ हमारे बापकी ॥२॥
जंगी बाँधी पोट कँधे धरा मूँगरा
धोबीकी ने धोए दो चार राजा ने पूरे डेढ़ सो ॥३॥
देख राजा तुम्हारे हाथ गोरे हाथों में छाले पड़ गये।
देखें धोबीकी तुम्हारे हाथ गोरे हाथों में मेंहदी रच रहा ॥४॥
मन में तो धोबीकी बहुत मलूक
अब लों क्वारी क्यों रही।
ढूँड़े बाप ढूड़े चारौं खूँट हमारी जोडी के राजा ना मिले ॥५॥
मन तो राजा बहुत मलूक अब लो क्वारे क्यों रहे।
क्या मर गये माई बाप बैठे राजा तखत बिछाय।
मन में उदासी क्यों लई; न चिताए माई बाप,
न चिताया मारू देसड़ा ॥६॥
हमारी चिताई सात बरस की नार
सात महलों में छोड़ी एकली।
जाओ राजा जाओ मारू देस महलों छोड़ी नार एकली ॥७॥
एक मरेगी बिसूर बिसूर, राजा तुम चाहो दूसरी।
मरूँ एक जीऊँ एक साथ,
राजा की मरचो दूसरी जी, महाराज ॥८॥

(मेरठ)

धोबी की लड़की पानी भरने जा रही थी। उसी समय राजा शिकार को निकले। राजा ने कहा—हे धोबी की लड़की! पानी पिला, मैं दूर से प्यासा आ रहा हूँ। लड़की ने कहा—हे राजा! तालाब में पानी पी लो। मेरे (अछूत के) हाथ का पानी तुम्हारे लिये विष की तरह है ॥१॥

राजा ने कहा—तालाब में तो डाँगर-ढोर (गोरू) पानी पीते हैं, मैं तो तुम्हारे ही हाथ का पानी पीऊँगा ॥२॥

लड़की ने कहा—अगर तुम्हें धोबी की लड़की का चाव है तो मेरे बाप की धोवट धोओ ॥३॥

राजा ने कपड़ों की एक बड़ी गठरी बाँधी और कन्धे पर मूँगरा रक्खा। धोबी की लड़की ने दो चार कपड़े धोये, पर राजा ने पूरे डेढ-सौ धोये ॥४॥

लड़की ने कहा—हे राजा! तुम्हारे हाथ देखूं? तुम्हारे हाथों में तो छाले पड़ गये।

राजा ने कहा—हे धोबी की लड़की! तुम्हारे हाथ देखूं? हाथों में तो मेंहँदी-सी रच उठी ॥५॥

राजा ने मन में सोचा—धोबी की लड़की है तो बहुत सुन्दर; पर अबतक यह कुँवारी क्यों रही?

लड़की ने कहा—मेरे बाप ने चारों ओर ढूंढ डाला, मेरी जोड़ का कोई राजा मिला ही नहीं ॥६॥

लड़की ने मन में सोचा—राजा है तो बहुत सुन्दर; लेकिन अबतक क्वारे क्यों रहे? क्या इनके मा-बाप मर गये? और यह उनका सिंहासन पा गये हैं? इनका मन उदास क्यों है? न इनको माँ-बाप की याद आती है, न अपने मारू (मारवाड़) देश की ॥७॥

राजा ने कहा—मुझे मेरी सात वर्ष की रानी की याद आई है, जिसे मैंने सात महलों में अकेली छोड़ा है।

लड़की ने कहा—हे राजा! तुम अपने देश लौट जाओ। तुमने रानी को महल में अकेली छोड़ा है ॥८॥

तुम्हारी एक रानी तो महलों में बिसूर-बिसूरकर मर रही है, तुम दूसरी खोज रहे हो। मैं तो किसी एक के साथ मरूँगी और एक ही के साथ जीऊँगी। राजा का क्या ? एक मर गई, दूसरी कर ली ॥६॥

बहु-पत्नीवाले पुरुषों को धोबी की लड़की का कैसा चुभता हुआ जवाब है।

(२)

कौने सहर के मोर धोबिन धियरी रे
कौने सहर लूगा धोय ?
मथुरा सहर कै मोर धोबिन धियरी रे
हरदी सहर लूगा धोय ॥१॥
खोलिन खोलिन बुलिगै मोर धोबिन धियरी रे
कहु रे धिया धोबा नहि तो देय।
ओतका ला सुने हवै राजाजी के बेटवा रे
फेंकि जो देथें झीनी पिछोर ॥२॥
झीनी पिछोरी का धोबिन मोटियावै रे
राजा के बेटा घोड़ सम्हराय।
ओन्हा के मोटरी बोहन लागे छोकरी
रेंगि ओ जाथे बँधवा के पार ॥३॥
आगू आगू धोबनिन पीछू पीछू राजाजी रे,
चलत हैं बँधवा के पार।
डौकी घाट छाँड़े, डौका घाट छाँड़े रे
सुअना, धोबी घाट ला चले असनान ॥४॥
रदखद रदखद ओन्हा तो चुरिगे
राजा के बेटा हाँसे खदखद।
पहले चलौ पहले चलौ राजाजी बेटवा रे
पर दिही राख के बूंद ॥५॥

तोरे लेखे धोबनिन राख के बुँदवा हैं
मोरे लेखे चोवा फुलेल।
छाँड़ि देओ धोबनिन धोबिया भतार का
करि लेव राजा भतार।
राजा भतार में आग लगाओ रे
धोबिया हरलिही पाटी पार॥६॥
छाँड़ि देओ धोबनिन छितकन कुरिआला
सोइ तो लेबे रंग महल।
रँग महल में तो आगी लगाओ रे
कुरिआ के मोल अपार॥७॥
(बुंदेलखंड)

किस शहर के धोबी की यह कन्या है ? और किस शहर के कपड़े धो रही है ? मथुरा शहर के मेरे धोबी की यह कन्या है, और हरदी शहर में कपड़े धोती है॥१॥

युवती कन्या खोर-खोर (गली-गली) में फिरती हुई पुकारती है। कोई भी उसे धोने के लिए कपड़े नहीं दे रहा है। राजा के पुत्र ने यह सुना और उसने अपनी महीन पिछौड़ी धोने के लिए उसके आगे फेंक दी॥२॥

उस महीन पिछौड़ी को धोबिन गठरी में बाँधती है। उधर राजकुमार अपना घोड़ा तैयार करता है। कपडे की गठरी सिर पर रखे धोबिन-कुमारी बँधवा (तालाब) के पार की ओर चलती है॥३॥

आगे-आगे वह जा रही है, पीछे-पीछे घोड़े पर राजकुमार है। मर्दों का घाट छोड़कर, औरतों का घाट छोड़ कर, राजकुमार धोबी-घाट पर स्नान करने को उतरता है॥४॥

वहाँ क्या देखता है कि 'रद-खद' आवाज करता हुआ कपड़ा चुर रहा है। उसे सुन कर राजकुमार 'खद-खद' (प्रसन्नता से) हँसने लगता है। राजकुमार को धोबी-घाट पर देखकर युवती ने कहा—हे राजाजं के

कुमार ! आप आगे बढ़ जाइये, नहीं तो आपके शरीर पर राख के छींटे पड़ जायँगे ॥५॥

राजकुमार ने कहा—तेरे लिये ये राख के छींटे हैं, मेरे लिए तो 'चोवा और फुलेल' के समान हैं। हे धोबिन ! तू धोबी पति को छोड़ दे और राजा को अपना पति बना ले। युवती कहती है कि राजा को पति करने की लालच पर आग लगे, मुझे तो अपनी ही जाति का पति सुखकर है ॥६॥

राजकुमार ने कहा—टूटी-फूटी झोपड़ी छोड़कर तू रंगमहल में आकर सो। धोबिन कुमारी ने कहा—मेरी टूटी-फूटी झोपड़ी का मोल रंगमहल से बढ़कर है ॥७॥

यह धोबियों का सुआ-गीत है। यह युक्तप्रांत के दक्षिणी जिलों से लेकर बुंदेलखण्ड और छत्तीसगढ़ तक गाया जाता है।

धोबी की लड़की को जो सुख धोबी के घर में मिल सकता है, वह राजा के रंगमहल में नहीं। इस देश में पतिव्रत-धर्म की महिमा धोबी के परिवार में भी गाई जाती है।

(३)

मन तोरा अदहन दिल तोरा चाउर, नयना मूंग कैं दालि।
अपने बलम कै जेउना जेवउँतिउ बिनु लकड़ी बिनु आगि॥

(सुलतानपुर)

हे विरहिणी स्त्री ! तुम्हारा मन अदहन है, हृदय चावल है, आँखें मूंग की दाल हैं। अपने स्वामी को तुम लकड़ी और आग के बिना ही आहार खिलाया करती हो।

विरहिणी का कैसा यथातथ्य वर्णन है !

(४)

सासु गोसाईं तोरी पइयाँ जे लागउँ,
माता लैंदे सन कै डोर।

आँचर खोल जल भरउँ माता,
मइका केऊ न कहैं लड़कोर॥
(प्रतापगढ़)

हे घर की मालकिन सास! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, सन की रस्सी मँगा दो। हे माता! आँचल खोलकर पानी भरती हूँ। मुझे कोई लड़कोर (पुत्रवती) नहीं कहता।

कन्या को पुत्रवती कहलाने की बड़ी अभिलाषा है।

(५)

अरे कुअना की पनिहारिनि, कहो तू का मन झुरये ठाढ़ि।
अरे की कुअँना तो हार गिरा बा,
जा कै बिछुड़ी हो पनिहारि? ॥१॥
अरे ना कुअँना मोर हार गिरा बा, ए परदेशी,
नाहीं बिछुड़ी हौं पनिहारि।
अरे नन्हन कन्ता गये विदेसबा, तोहरिअ हाँ अनुहारि॥२॥
मोतियन से तोरि मँगिया गुहैबै,
हाँ, सोनवै लहवइबै सरीर।
घइला धइ द्या कुअना जगत पर,
बारी नयिका हो, चलो हमारे साथ॥३॥
सोनवा गलै सोनार दुकनिया,
अइ छइला, अब मोती झोंकावउ भार।
हस मुरइला कि जोड़िया छोड़िके,
हम काग संग ना जाब॥४॥
एतनी बचनिया पहलेइ कहतिउ बारी नयिका हो,
हम पूरुखु तुम नारि॥५॥
(जौनपुर)

हे कुँवें पर पानी भरनेवाली ! तुम दुःखी मन से यहाँ क्यों खड़ी हो ? क्या तुम्हारा हार कूँवें में गिर गया है ? या किसीका साथ छूट गया है ?॥१॥

हे परदेशी ! न तो कुँवें में मेरा हार गिरा है और न पनहारिनों का साथ छूटा है ; मेरे स्वामी बहुत छोटी उम्र में परदेश गये थे, उनकी शकल-सूरत तुमसे मिलती-जुलती है ॥२॥

मैं तुम्हारी माँग मोतियों से गुँथाऊँगा, और तुम्हारे शरीर को सोने से लस दूंगा। घड़ा कुँवें की जगत पर रख दो; हे बाला ! मेरे साथ चली चलो ॥३॥

हे छैला ! सोने को सुनार की दूकान पर गला डालो और मोतियों को भाड़ में झोंकवा दो। हंस और मोर जैसा जोड़ा छोड़कर मैं कौवे के साथ न जाऊँगी ॥४॥

हे बाला ! पहले ही यह क्यों नहीं कहा ? मैं तुम्हारा पुरुष हूँ और तुम मेरी स्त्री।

परदेशी पति ने बारह वर्ष बाद घर लौटकर स्त्री की परीक्षा ली।

(६)

निबिया कै पेड़वा जबै नीक लागे जब निबकौरी न होय।
मालिक, जब निबकौरी न होय ॥
गोहूँ कै रोटिया जबै नीक लागै घी से चभोरी होय।
मालिक, घी से चभोरी होय ॥१॥
अच्छा धोबिया जबै नीक लागै धोवै बकुला कै पाँख।
अच्छा समिया जबै नीक लागै नोकर क खुश कै देय ॥
मालिक, नोकर क खुश कै देय ॥२॥

(गोंडा)

नीम का पेड़ तभी अच्छा लगता है, जब उसमें निबकौरी (नीम का फल) नहीं होता ॥१॥

गेहूँ की रोटी तभी अच्छी लगती है, जब वह घी में खूब चुपड़ी हुई हो ॥२॥

अच्छा धोबी वही है, जो बगुले के पंख की तरह सफेद कपड़ा धोवे ॥३॥

अच्छा स्वामी वही है, जो नौकर को खुश रक्खे ॥४॥

(७)

बिरहा क मोटरी उठाउ परमेसरी
की लेइ चलु धोबिया दुआर।
आधा तो बिरहवा जे धोबी मटिअवलेन
की आधे में दुनियाँ संसार ॥१॥

(आजमगढ़)

हे परमेश्वरी ! विरह की गठरी उठाओ, और उसे धोबी के दरवाजे पर ले चलो। आधे विरह को तो धोबी मटियाता (धोने के लिए रेह में कपड़ा सानता) है और आधे में सारा संसार है।

(८)

सतगुरु लकड़ी बिलाई टाँग पकड़ी कउआ रँगवलन ठोर।
गिरगिट उठवलन ढाल तरुवरिया भइले अजोधिया सून ॥

(बस्ती)

यह धोबी का दृष्टि-कूट है।

(९)

ठीक दुपहरिया नवाब कचहरिया
कि सामी क बोलावाता नवाब।
सामी के मुँह से बतिऔ न आवै
कैसे दीहें मोगली जवाब ॥

(बनारस)

धोबी सचमुच बहुत सीधा होता है, और धोबिन उससे चालाक होती है। इस बिरहे में धोबिन की चिंता निर्मूल नहीं है। 'मं गली जवाब' शायद धोबिन देना जानती थी।

(१०)

मोटी मोटी लिटिया लगैहै धोबिनियाँ,
कि बिहनै चलै का बा घाट।
जोड़ी, बिहनै चलै का बा घाट॥१॥
तीनहि चीज मत भुलिहैं धोबिनिया
कि टिकिया तमाखू थोड़ा आगि रे।
जोड़ी, टिकिया तमाखू थोड़ा आगि रे॥
(बाराबंकी)

हे धोबिन! मोटी-मोटी लिट्टियां (बिना बेली हुई मोटी रोटियाँ जो उपले की आग में पकाई जाती हैं) बनाना; कल बड़े सबेरे घाट चलना है। हे मेरे बराबर काम करने वाली! कल घाट चलना है॥१॥

हे धोबिन! तीन चीजें न भूलना—कोयले की टिकिया (जिसको जलाकर तम्बाकू पर रक्खा जाता है), तम्बाकू और थोड़ी-सी आग।

धोबी और धोबिन घाट पर सबेरे से लेकर शाम तक साथ-साथ मेहनत करते हैं और वहीं खाते-पीते हैं। जीवन भर, जबतक उनके शरीर में बल रहता है, उनकी यही दिन-चर्या है। शरीर को सँभालने के लिए उनका रोजाना खर्च भी बहुत थोड़ा है। त्योहारों और विवाह के अवसरों पर जजमानों के यहाँ से उन्हें कुछ स्वादिष्ट खाने को और पहनने के लिए नई धोतियाँ मिल जाया करती हैं, यही उनके जीवन के इने-गिने सुख हैं।

(११)

धोबी क चहिये चारि मेहरिया एक घर का एक घाट।
एक मेहरिया रोटी पकावे, एक बिछावे खाट।

दुलहिन एक बिछावै खाट।
चिरई एक बिछावै खाट।

धोबी को चार औरतें चाहिए—एक घर के लिए, एक घाट के लिए, एक रोटी पकाने के लिए और एक दुलहिन, जो खाट बिछावे।

(१२)

छिओ राम छिओ। छिओ राम छीओ।
अँगिया चुलिया मैली रे हुइ गइ, बिन धोबी को गाँव।।
कै धुबिया पिअ लाय बसावौ कै धुबिया के जाँव।
छिओ राम छीओ; छिओ राम छीओ।।

अँगिया और चोली मैली हो गई। यह गाँव बिना धोबी का है। हे स्वामी! या तो धोबी लाकर गाँव में बसाओ, या मैं धोबी के घर चली जाऊँगी।

(१३)

ना बिरहन की खेती पाती ना बिरहन को बंज।
जाही पेट से बिरहा उपजैं गाऊँ दिना औ रात।
छिओ राम छीओ; छिओ राम छीओ।

विरहों की न खेती होती है, न विरहों का व्यापार होता है। विरहे इसी पेट से पैदा होते हैं, जिन्हें मैं रातदिन गाता रहता हूँ।

चमारों के गीत

चमारों के जातीय गीत बड़े ही मनोरंजक होते हैं। अपने मंगल-कार्यों में वे स्वयं नाच-गा लेते हैं और कुछ इसका पेशा भी करते हैं। विवाह आदि अवसरों पर वे अपने सगे-संबंधियों का गोल लेकर अपने जजमान किसानों के घर दूल्हे की न्योछावर लेने जाते हैं। उस समय उनकी ज ति

के कोई दो छोकड़े, जिनमें एक पुरुष बना होता है, दूसरा स्त्री, और जो कई रंगों के कपड़े पहने रहते हैं, नाचते और गाते चलते है। और एक तीसरा पुरुष, जो 'करिंगा' कहलाता है, हँसी-मजाक करता है। वह काले रंग क लंबा कुरता पहनता है, इसी से वह करिंगा अर्थात् काला अंगा या कुरता पहनने वाला कहलाता है। वह जब कोई दिल्लगी की बात कहता है, तब नाच-मंडली का प्रधान व्यक्ति चमड़े के तल्ले से जो उसके हाथ में लटकता रहता है, उसकी पीठ पर कपड़े से सिले हुए चमड़े पर जोर से मारता है।

चमारों का मुख्य बाजा मृदंग, कटोरा और सींग है। इनका नाच सार्वजनिक होता है। गाँव के प्रायः हरएक श्रेणी के लोग चमार का नाच देखने के शौकीन होते हैं। चमार भी गाँवभर को अपना नाच दिखात फिरते हैं।

'करिंगा' गाँव के जालिम जमींदार, कंजूस महाजन या झूठे और लम्पट पुरुषों की खरी आलोचना भी, किसी का नाम न बताकर, कर बैठता है; और उसका परिणाम भी कभी-कभी अच्छा निकल आता है। इस प्रकार चमार लोग एक प्रकार से समाज के आलोचक हैं। वे समाज में नीची श्रेणी के होते हैं, इससे ऊँचे का पूरा समाज उन्हें साफ दिखाई पड़ता है। समाज ने उन्हें खरी आलोचना करने का अधिकार भी दे रक्खा है; क्योंकि उनकी की हुई आलोचना का कोई बदला नहीं लेता।

चमारों के कुछ गीत यहा दिये जाते है :—

(१)

पंडित मुनि बड़ ज्ञानी। जल छानि के पीवत पानी।
वही सूत का बने जनेवा उसकर पाग बनाई।
धोती पहिन क रोटी खावें पाग में छूत ओलिआई ॥१॥
नदिया बहिगा नारौ बहिगा बसु नदियन में पानी।
कंछ मंछ घरियाल खाइ गयेन आधै दूध आधै पानी ॥२॥

हाड़ गले का मांस गले का दूध गऊ से आई।
वही दूध कर निकलत मक्खन हाट बजार बिचाई ॥३॥

पंडित बड़े ज्ञानी मुनि हैं। पानी छानकर पीते हैं।

उसी सूत का जनेऊ बनता है, उसी सूत की पगड़ी। धोती पहनकर वे रोटी खाते हैं। लेकिन पगड़ी में छूत समाई हुई है ॥१॥

नदी वही, नाले बहे, नदियों में पानी बढ़ा; कच्छ-मच्छ और घड़ियाल भी वे खा गये। आधे-आध पानी मिला हुआ दूध भी पी गये ॥२॥

गले में वही हाड़ है, गले में वही मांस है। गाय से दूध आता है। उसी दूध से मक्खन बनता है जो हाट-बाजार में बिकता है ॥३॥

अर्थात् मक्खन से परहेज नहीं करते, दूध से करते हैं।

(२)

राम नहि जानै तौ और जाने का भा।
फूल तौ वो है जो रामजी का सोहै,
नाहीं तौ बेला लगाये से का भा ॥१॥
कपड़ा तौ वो है जो रामजी का सोहै,
नाहीं गुलाबी रँगाये से का भा ॥२॥
पूत तौ वो है जो पिताजी का सेवै,
नाहीं तौ पाजी के जनमे से का भा ॥३॥
तिरिया तौ वो है जो दूनौ कुल तारै,
नाहीं तौ माया के कोखि आये का भा ॥४॥

यदि तुमने राम को नहीं जाना तो दूसरों के जानने से क्या हुआ ?

फूल तो वही अच्छा है जो राम को सोहता है। नहीं तो बेला लगाने से क्या हुआ ? ॥१॥

कपड़ा तो वही अच्छा है जो राम को सोहता है। नहीं तो गुलाबी रंग में रँगाने से क्या हुआ ? ॥२॥

पुत्र तो वही है जो पिता की सेवा करे। नहीं तो पाजी पुत्र के पैदा होने से क्या हुआ? ॥३॥

स्त्री तो वह है जो दोनों कुलों का उद्धार करे। नहीं तो माँ की कोख में उसके आने से क्या लाभ हुआ? ॥४॥

(३)

धन्य है पुरुष तोरि भागि करकसा नारि मिली।
सात घरी दिन रोय के जागी लिहिन बढ़निया उठाय।
निहुरे निहुरे अँगना बटोरैं घर भर को गरिआय॥
करकसा० ॥१॥

बखरी पर से कौवा रोवै पहुना आये तीन।
आवा पाहुन घरमाँ बैठा कण्डा में लाऊँ बीन।
करकसा० ॥२॥

हँडिया भरिके अदहन दीहिन चाउर मेरइन तीन।
कठउत भरिकै माँड़ पसाइन पिया हिलोर हिलोर।
करकसा० ॥३॥

सात सेर के सात पकाइन नौ सेरे का एक्कै।
तुम दहिजरऊ सातो खायेउ मैं कुलवन्तिन एक्कै।
करकसा० ॥४॥

देहरी बैठे तेल लगावै सेंदुर भरावै माँगि।
अँचल पसारि कै सूरज मनावै होइहौं कब मैं राँड़ि।
करकसा० ॥५॥

हे पुरुष! तुम बड़े भाग्यवान् हो जो तुमको कर्कशा स्त्री मिली। सात घड़ी दिन चढ़ आया, तब वह रोती हुई जगी। हाथ में झाड़ू लेकर निहुरे-निहुरे वह आँगन बुहारती है और घरभर को गाली देती जा रही है ॥१॥

घर के मुँड़ेर पर कौवा रो रहा है। इतने में तीन मेहमान आये। स्त्री ने कहा—आओ मेहमान! घर में बैठो। मैं जंगल से कंडे बीन लाऊँ, तब रसोंइ बनाऊँ॥२॥

हाँड़ी भरकर पानी उबाला। उसमें तीन चावल डाल दिये। कठौता भरकर माँड़ पसाया। हे मेहमानो! आओ, खूब हिला-हिलाकर पीओ॥३॥

सात सेर की सात रोटियाँ बनाईं, नौ सेर की एक ही। पति से झगड़ती है—रे दाढ़ीजार! तू ने तो सातो रोटियां खा लीं, और मैं कुल की रक्षा करनेवाली ने एक ही॥४॥

देहली पर बैठकर तेल लगाती है। माँग को सिन्दूर से भर रक्खा है। आँचल फैलाकर वह सूर्य को मनाती है कि मैं राँड़ कब होऊँगी? ॥५॥

(४)

तमुवाँ गिराये कहाँ जाबा हो कहाँ लगिहैं ठिकान।
काहे के लगवला बबुरिया हो लगवता तू आम।
अमिरित करता भोजनियाँ हो भजता हरिनाम॥१॥
प्रेम बाग नहीं बौरै हो प्रेम न हाट बिकाय।
बिना प्रेम कै मनुजवा हो जस अँधियरिया राति॥२।
प्रेम नगर की हटिया हो हीरा रतन बिकाय।
चतुर चतुर सौदा करि गये हो मूरुख ठाढ़ पछिताय॥३॥

तुमने बबूल क्यों लगाया? आम लगाते तो अमृत ऐसा फल खाते और राम का भजन करते॥१॥

प्रेम बाग में नहीं बौरता (फूलत)। प्रेम बाजार में भी नहीं बिकता। बिना प्रेम का मनुष्य अँधेरी रात की तरह है॥२॥

प्रेम-नगर के बाजार में हीरा रत्न बिकता है। चतुर लोग सौदा कर लेते हैं, मूर्ख खड़े पछताते हैं॥३॥

(५)

ऊँचा नगर मधुबन क जहाँ हरि बस रहे।
ठंडी छाया कदम की वहीं हरि टिक रहे॥
जो मैं ऐसा जानूं मेरे हरि तज जायँगे।
बनती सीस का चीरा हर पेंचों से लग रहती॥१॥
जो मैं ऐसा जानूं मेरे हरि तज जायंगे।
बनती नैनन का सुरमा हर डोरों से लग रहती॥२॥
सिंह ने घेरी स्वामी गउवै, बिरहा ने घेरी रानी रुकमन।
आय छुड़ाइय॥३॥
(बुलन्दशहर)

मधुबन का ऊँचा नगर है, जहाँ हरि बसे हैं। कदम्ब की ठण्ढी छायामें टिके हैं। यदि मैं जानती कि हरि मुझे छोड़ जायँगे तो मैं उनके सिर का चीरा (पगड़ी) बनती और हरएक पेंच से लगी रहती॥२॥

यदि मैं ऐसा जानती कि मेरे हरि मुझे छोड़ जायँगे, तो मैं उनके नेत्रों का सुरमा बन जाती और आँख के प्रत्येक डोरे (रेशे, नस) से लगी रहती॥२॥

हे मेरे हरि! विरह ने रानी रुक्मिणी को वैसा ही घेर रक्खा है, जैसे सिंह गाय को घेरे हो। तुम आकर छुड़ाओ॥३॥

(६)

उठो री सुलच्छन नार, झाड़ू दे लो अँगना॥१॥
घर में तो तुम चौका दे लो, बाहर धो लो बसना॥२॥
सास ननद के पैरों लग लो, गोद ले लो ललना॥३॥
घर में तो तुम बिपर जिमा लो, बाहर दे लो दछिना॥४॥
(मेरठ)

हे सुलक्षणा स्त्री! उठो, आँगन में झाड़ू दे लो ॥१॥
घर में चौका दे लो। बाहर बरतन धो लो ॥२॥
सास-ननद को प्रणाम कर लो। अपना बालक गोद में ले लो ॥३॥
घर के भीतर ब्राह्मण जिमा लो और बाहर दक्षिणा दे लो ॥४॥

(७)

मारे डारै कटीली तोर अँखिया।
ब्रह्मा बस कीन्हा बिश्नु बस कीन्हा,
मुनि बस कीन्हा बजाइ कै बँसिया ॥१॥
काम बस कीन्हा क्रोध बस कीन्हा,
हरि बस कीन्हा लगाइ कै छतिया ॥२॥
गोपी बस कीन्हा ग्वाल बस कीन्हा,
राधा बस कीन्हा गले डारि फँसिया ॥३॥

तेरी कटीली आँखें मुझे मारे डालती हैं। तू ने ब्रह्मा को वश में कर लिया, विष्णु को वश में कर लिया और वंशी बजाकर मुनियों को वश में कर लिया ॥१॥

तू ने काम को वश में कर लिया। क्रोध को वश में कर लिया। भगवान् को भी छ ती से लगाकर वश में कर लिया ॥२॥

तू ने गोपियों को वश में किया। ग्वालों को वश में किया। गले में प्रेम की फाँसी डालकर राधा को भी वश में कर लिया ॥३॥

(८)

गोविन्दा नहीं गाया तैं ने गाया क्या रे बावरे।
रतनों की चोरी करी रे राई करन को दान रे।
कोठे चढ़कर देखन लागे कितने ऊपर बिमान रे ॥१॥
पतिबरता भूखी मरे रे बेस्वा चाबें पान रे।
पतिबरता बैठी रहै रे बेस्वा करे गुमान रे ॥२॥

हाथी छुट गया डार से रे लसकर पड़ी पुकार रे।
नौ दरवाजे बन्द पड़े रे निकल गया उस पार रे।।३।।
निर्धन गिरा पहाड़ से रे कोई न पूँछे बात रे।
साहूकार के काँटा चुभ गया पड़ गई हाहाकार रे।।४।।

अरे बावरे ! तू ने गोविन्द को नहीं गाया तो क्या गाया ? तू ने रत्नों की तो चोरी की है और दान के लिए राई का विचार किया है। फिर भी कोठे पर चढ़कर तू देख रहा है कि स्वर्ग का विमान कितनी दूर पर है।।१।।

पतिव्रता भूखी मर रही है। वेश्या पान चबा रही है। पतिव्रता चुपचाप है। वेश्या गुमान कर रही है।।२।।

हाथी अपने खूंटे से छूट गया। सारे लश्कर में शोर मच गया। नवों दरवाजे बन्द पड़े हैं। पर वह उस पार निकल गया।।३।।

गरीब पहाड़ पर से गिर पड़ा, किसी ने बात भी न पूछी। साहूकार को जरा-सा काँटा चुभ गया, चारों ओर हाहाकार मच गया।।४।।

प्रान्तीय भाषाओं के गीत

काश्मीरी गीत

काश्मीर पृथ्वी का स्वर्ग कहलाता है। उसका प्राकृतिक सौन्दर्य ऐसा लुभावना है कि उसे देखकर विदेशी पर्यटकों का भी मन मुग्ध हो जाता है। वहां के निवासी भी गोरे रंग के और सुन्दर होते हैं। प्रकृति की बाहरी सुन्दरता वहां के निवासियों के हृदयों में भी पहुँच गई है, जो उनके प्रेम से परिप्लुत होकर उनके गीतों में प्रतिबिम्बित हो रही है।

काश्मीरी गीत काश्मीर ही की तरह सुन्दर होते हैं। वे त्योहारों, संस्कारों और प्रेमियों के उन्मादक व्यवहारों का निदर्शन करते हैं और जीवन के सहचर बने रहते हैं।

काश्मीरी गीतों की भाषा में संस्कृत और फारसी के शब्द प्रचुर संख्या में व्यवहृत होते हैं। प्रेम सम्बन्धी गीतों में फारसी शब्दों का बाहुल्य होता है। संभवतः क श्मीरियों में इश्क मुसलमानी सभ्यता ही के संसर्ग से आया है। किसी समय काश्मीर तो संस्कृत का विद्यापीठ था। इससे यद्यपि अब हिन्दुओं की संख्या ५-६ फीसदी ही है, पर संस्कृत शब्द, जो वहाँ के जीवन में बस गए थे, वे हिन्दुओं से अधिक संख्या में बसे हुए हैं। काश्मीरी भाषा में उच्चारण की कई ध्वनियां ऐसी हैं जिनके लिए देवनागरी वर्णमाला में अक्षर नहीं है, इससे उन ध्वनियों का कुछ अभ्यास किए बिना गीत शुद्ध नहीं पढ़े जा सकते।

यहाँ कुछ काश्मीरी गीत दिए जाते हैं:—

(१)

प्रबाथ हो आव अछ्य मुचराव,
न्यंदर मो त्राव न्यंदर मो त्राव ॥१॥

छु चमकान आथम सिर्युक गाश
न्यबर अन्दर यि च्यथ आकाश
मुचर अछ्य दारि मो त्रोपराव
न्यंदर मो त्राव न्यंदर मो त्राव ॥२॥

छत्रत हयत्यनय च्य क्रिहनी कीश
च चेनन कोन छुख वुपदीश
समय गव रंग बदलिथ आव
न्यंदर मो त्राव न्यंदर मो त्राव ॥३॥

मकर चेर फेर च होशस कुन
वोद्यूगक्य ज्याम नाली छुन
च्यतस वुज़नाव आलुच त्राव
न्यंदर मो त्राव न्यंदर मो त्राव ॥४॥

ख्यनुय साथय धनय राथय
तिहुन्द सा सी छु प्रबाथय।
अमिस निश अभिज्ञय हो ज़ाव
न्यंदर मो चाव न्यंदर मो त्राव ॥५॥

कर्म प्वाव दर्म खोरन त्राव
गछ आत्म तीर्थ तन मन नाव।
बखच सर प्रयम पोञ्ना छाव
न्यंदर मो त्राव न्यंदर मो त्राव ॥६॥

प्रभातकाल आ गया, नींद को छोड़ो, नींद को छोड़ो ॥१॥

अब आत्मा के सूर्य का प्रकाश चमकने लगा। बाहर और भीतर मे चित् रूपी आकाश भी चमकने लगा; अब नेत्रों का द्वार खोलो। नींद को छोड़ो, नींद को छोड़ो ॥२॥

तुम्हारे काले बाल सफेद होने लगे; अब भी तुम उपदेश को नहीं सुनते। एक समय गया, दूसरा आया; नींद को छोड़ो, नींद को छोड़ो ॥३॥

अब देर न करो; सावधान हो, उद्योग का कवच पहनो और अपने चित्त को जगाकर आलस्य को छोड़ दो; नींद को छोड़ो, नींद को छोड़ो ॥४॥

कर्म की खड़ाऊँ धर्म के पाँव में पहन लो। जाओ, आत्मा के तीर्थ में तन-मन को धो डालो; भक्ति के तालाब में प्रेम के पानी में नहा लो; नींद को छोड़ो, नींद को छोड़ो ॥५॥

(२)

क्याह यावुन यीयना फीरिथ
मानन्दि तीर जन गुम नीरिथ ॥१॥
दम तिहंदय क्याह यिय दरकार,
यस नह सूति आसि पनुन यार।
ख्यय अफसूस अथ गछि मूरिथ,
मानंदि तीर ज़न गुम नीरिथ ॥२॥
रिन्द आशिक हा जिन्दय मूदे
तिमहस तोर क्युत मुकलिथ गय।
गछि खाकसे खाक मन मीलिथ,
मानंदि तीर ज़न गुम नीरिथ ॥३॥
मो नाज़ यथ यावन रायस,
यावन मंज़य प्यत पायस।
गर छयुय गछुन पान थाव शीरिथ,
मानंदि तीर ज़न गुम नीरिथ ॥४॥

आह ! क्या गया हुआ यौवन फिर आयेगा ? जो तीर की तरह निकल गया ॥१॥

क्या उसका जीना किसी काम का है, जिसके साथ उसका प्रेमी न हो ? वह हाथों को मलता हुआ शोक करेगा, जब कि यौवन तीर की तरह निकल जायगा ॥२॥

मस्त प्रेमी जिन्दा ही मर गये, और वे ही इस संसार के दुखों से छूट भी गये। मिट्टी के साथ मिट्टी मिल जायगी; हाय ! यौवन तीर की तरह निकल गया ॥३॥

इस यौवन रूपी राजा का अभिमान मत करो। युवावस्था ही में विचार करो। यहां से जाना है, इसलिए शरीर को तैयार रक्खो। यौवन तीर की तरह चला गया ॥४॥

पहाड़ी गीत

पहाड़ी गीत बड़े ही रसीले होते हैं। पहाड़ी स्त्री-पुरुषों का जन्म प्रकृति की सब से सुंदर गोद में होता है, इससे उनके गीतों में प्रकृति की मनोहर छटा का चित्रण पद-पद में पाया जाता है।

पहाड़ी गीतों में प्रेम-कथायें बहुत हैं। यों तो वह भी धार्मिक त्योहारों, विवाह आदि संस्कारों और मेले-ठेले के गीत उत्तर प्रदेश के दूसरे जिलों में प्रचलित गीतों ही जैसे हैं, पर पहाड़ों पर उपलब्ध फूलों, झीलों, नदियों के जितने सरस वर्णन बीच-बीच में पहाड़ी गीतों मे मिलते हैं, उतने पहाड़ से दूर के गीतों में नहीं मिलते। प्रकृति की यह सरसता पहाड़ियों के स्वभाव में भी व्याप्त हो गई है, जहाँ से गीतों का जन्म होता है।

यहाँ कुछ पहाड़ी गीत दिए जाते हैं:—

(१)

बाटा में की सेरी रूपा वै यकली क्य धान गोड़े,
यकली मैं हुँलो बटवा छकली कै लौंलो हौ ॥१॥

कथ गया त्यरा रुपा द्यौराणी ज्यठाणी व,
कथ गया त्यरा द्यवर ज्यठाणा हौ ॥२॥
कथ गई तेरी रुपा वै ननद पौणी हौ,
काँ गई त्यरा रुपा वै सासु सौरा हौ ॥३॥
ज्यठण मेरी बटवा चुला की रस्यारी हौ,
द्यौराण मेरी बटवा खरकै घसारी हौ ॥४॥
ज्यठाणो म्यरो बटवा सभा भैंटियो हौ,
द्यवर म्यरो बटवा भैंसिया ग्वावो हौ ॥५॥
ननद पौणी बटवा पयावा न्हैं गईं हौ,
सासुन सौरा म्यरा बिरध ह्वै गीं हौ ॥६॥
बाटा में की सेरी तू रुपा ध्वपरी का घाम क्य धान गोड़ै,
धान गोडुलो बटवा साल जमोव हौ ॥७॥
कथ गयो त्यरो बावी ब्यवायो हौ,
घुना साँटी को बटवा ब्या करी गयो हौ ॥८॥
वी दिन बटी बटवा पलटी नी चायो हौ,
सिलंग डावी लगै गयो भरफूलै व्हे गे हौ ॥९॥
मैं रुपा ह्वै गयो भर जोबन बठवा लोग,
वी दिन बटी वीले पलटी नी चायो हौ ॥१०॥
मैं हुँलो त्यरो रुपा वै बावी ब्यवायो हौ,
तू बावी ब्यवौंणो ह ये आपणी मैं बैणी को हौ ॥ ११॥
यक बोल बोली ग छै आब जन बोले हौ,
दूसरो बोल बोलले ऐ फिर मैं बैणी की मँगाले ॥१२॥
हिट हिट तू रुपा सिलंगी का सेव रुपा रौतेली,
सिलंगी का सेव पिपवीं का हवा ॥१३॥

म्यरा बावी ब्यवौणा का खुटन नवीहर ज्वतो हौ,
जाँघन वीका ढुडी को सुराव हौ ॥१४॥
आडन वीका गंगाजी बागो सिरन वीका प्वतषै की पाग,
कमर वीका रेशमी फेंटा रै बटवा लोग हाथन वीका
लुवासार छड़ी हौ ॥१५॥
नवीहर ज्वतौ रुपा वै फाटी गयो,
दुडी का सुराव फाटी फूटी गई हौ ॥१६॥
मैं त्यो ब्यवौणो हुलो रुपा वै तेरी डोली कछौंलै,
अलिया बलिया हुँलो त्वरो हौवो वै खौंलौ ॥१७॥

रास्ते के निकट के खेत में रुपा ! तू क्यों अकेले धान निराती है ? तब वह कहती है—मैं तो अकेली ही हूँ और दूसरा अपने साथ किसको लाऊँ ? ॥१॥

तेरी देवरानी जेठानी कहाँ गईं ? तेरे देवर जेठ कहाँ गये ? ॥२॥

तेरी ननद और पौंड़ी (स्वामी की बड़ी बहन) कहाँ गईं ? तेरे सास ससुर कहाँ गये ? ॥३॥

रुपा कहती है—मेरी जेठानी रसोई बना रही है। देवरानी गायों के लिए घास काटने गई है ॥४॥

मेरे जेठ, हे पथिक ! सभा में बैठे हैं। मेरे देवर भैंसों को चराने गए हैं ॥५॥

ननद और पौणी अपनी-अपनी ससुराल चली गई हैं। सास-ससुर वृद्ध हो गये हैं ॥६॥

रास्ते के निकट के खेत में इस दोपहर के घाम में रुपा ! तू कौन से धान निराती है ? तब वह कहती है—मैं साल व जमोल (धानों की जातियाँ) नामी धानों को गोड़ती हूँ ॥७॥

तेरा स्वामी कहाँ गया ? रुपा कहती है—मैं बहुत छोटी ही थी, तब मेरे साथ उसने पाणिग्रहण किया था ॥८॥

पाणि-ग्रहण के बाद विदेश को गया था। तब से वह नहीं लौटा। उसके लगाये सिलंग के पेड़ में फूल लग गया है ॥९॥

मैं अब, हे पथिक! युवती हो चुकी हूँ। लेकिन वह अभी तक नहीं लौटा ॥१०॥

वह कहता है—मैं ही तेरा स्वामी हूँ। रुपा क्रोधित होकर कहती है—तू अपनी माँ और बहन का स्वामी होगा ॥११॥

तूने मुझसे इतना कह दिया, अब आगे को चुप रह। यदि आगे को दूसरा शब्द तू बोला, तो मैं फिर तुझे गाली दूंगी ॥१२॥

उसका स्वामी फिर कहता है—रुपा! तू उसी सिलंग की छाया में चल। पीपल के वृक्ष के नीचे हवादार स्थान में चल ॥१३॥

तब रुपा कहती है—मेरे स्वामी के पैरों में नलीवाला जूता था। उसकी जंघा में दुडी (एक प्रकार का कपड़ा) का पजामा था ॥१४॥

उसके बदन में गंगा-जल के समान रंगवाला वस्त्र था। सिर में उसके प्वतवै (एक प्रकार का कपड़ा) का पाग था। उसके कमर में, हे पथिक! रेशमी फेंटा था। उसके हाथों में लोहे की मूंठ वाली छड़ी थी ॥१५॥

उसका पति कहता है—नली का जूता फट गया है। टुडी का पाजामा भी फट गया है ॥१६॥

मैं अगर तेरा पति होऊँगा, तुझे पालकी में ले जाऊँगा। यदि कोई लबार हुआ तो तेरे यहाँ हल जोतूंगा। अन्त में वह उसको पालकी में ले ही जाता है ॥१७॥

धान का खेत निराते समय का यह गीत अलमोड़े का है।

(२)

आई गेन रितु बौड़ी दांई जैसु फेरो ॥१॥
उवा देसी उवा जाला उंदा देसि उंदो ॥२॥
मौली गेन कई भाती का फूलौर डाले ॥३॥
फूली गेन वणू मांझे ग्वीराला बुरांसो ॥४॥

नाना भाँति गलीचा फूलू का बीछि गैने ॥५॥
प्रकृती न कनू सारा जीवू कू जगैले ॥६॥
डाल्यों माँ झपन्याली घूघूती घूरली ही ॥७॥
ऊँची ऊँची न डाँड्यो कप्फ पंछी वास्लो ॥८॥
गैहीरी गदन्यो माँ मेल्यूड़ी रौंकली स्या ॥९॥
लंबि लंबि पुगड़्यो माँ रऽरऽ शब्द होलो ॥१०॥
गेहूँ की जउ की सारे पिंग्ली होइ गैने ॥११॥
गाला गीत बसंती गौंका छोरा दि छोरी ॥१२॥
डांडी कांठी गैने ग्वेरू का गितूना ॥१३॥
आइगे रस-लोही सर्वत्र जीवनू माँ ॥१४॥
छोटी नौनि नऊना डेल्यो फूलू चढ़ाला ॥१५॥
औजी नाचि बजाई कै रीझाला धियारयों ॥१५॥
जौका भाइ रला देला टालूखी अंगूड़ी ॥१७॥
मैंतु वैरायु कू अप्णी बोलौंला चैत मैना ॥१८॥
नी होला छुछि मेरा क्वी मैत्या भाइ वैणा ॥१९॥
फूटी फूटी सदी रोदे औदे याद मैतै ॥२०॥

(गढ़वाली झुमैलो)

ऋतुराज दाँई के फेरे की तरह लौट आये हैं ॥१॥

ऊपर देश के लोग (भाटिया आदि) ऊपर चले जायँगे और नीचे देश के लोग नीचे ॥२॥

बनों में ग्वीराल, बुराँस आदि भाँति-भाँति के फूल फूल गये हैं। और फूलों के रंग-बिरंगे गलीचे बिछ गये हैं ॥३-४-५॥

प्रकृति ने समस्त जीवों को किस प्रकार जगा दिया है ॥६॥

घने हरे पत्तोंवाले वृक्षों के सिरों पर पेंड़कियाँ अपना राग अलापती हैं ॥७॥

ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर कप्फू पक्षी बोलेगा। गहरी उपत्यकाओं में मेल्युड़ी (एक चिड़िया) चहकेगी ॥८-९॥

लंबे-लंबे खेतों में (हल जोतते हुए किसानो का) र', 'र' शब्द होगा ॥१०॥

गेहूँ जौ के खेत (पककर) पीले हो गए हैं। गाँवों की बालक-बालिकायें बसंत के गीत गायेंगी ॥११-१२॥

ग्वालों के गीतों से शिखर और उपत्यकाएँ गूंज रही हैं ॥१३॥

सब प्राणियों में प्रेम-रस का संचार हो गया है ॥१४॥

छोटे बालक-बालिकाएँ देहलियों में फूल चढ़ाएँगी। औजी (बाजा बजाने वाले) अपनी स्वामिनियों को नाच-गाना सुनाकर और बाजे बजा कर प्रसन्न करेंगे ॥१५-१६॥

जिन विवाहिता युवतियों के भाई हैं, वे उन्हें आँगी और साड़ियाँ उपहार देंगे ॥१७-१८॥

वे अपनी बहनों को मायके बुलाएँगे। मुझ अभागिनी के मायके में कोई भाई-बहन नहीं हैं ॥१९॥

सदेई को मायके की याद आती है और वह फूट-फूटकर रोती है ॥२०॥

यह गीत बसंत-ऋतु में स्त्री अथवा पुरुष गाँव में एक स्थान पर एकत्र होकर गाते हैं। इसमें ऋतुओं के लौटने की उपमा उन बैलों से दी है जो अन्न को माँड़ते वक्त चक्कर काटकर जहाँ से चले थे, वहीं पर लौट आते हैं।

इसमें उन भोट (तिब्बत के) लोगों का वर्णन है जो जाड़ों में गरम देशों में उतर आते हैं और वसंत आने पर अपने देशको वापस होने लगते हैं।

इसमें नाना प्रकार के फूलों, पौदों, पर्वतीय पक्षियों के शब्दों, पके हुए जौ गेहूँ के पीत वर्ण खेतों, कृषकों के हल चलाते हुए "रऽ रऽ" ध्वनि से बैलों को हाँकने, गाँव के बालकों के वसन्तागमन की बधाई के निमित्त अनेक भाँति के गीत गाने तथा ग्वालों की मधुर ध्वनि से गुंजित पर्वत और गुफाओं का मनोहर वर्णन है।

चैत्र मास में छोटी-छोटी बालिकायें प्रफुल्लित हृदय से प्रत्येक घर के द्वार पर फूल बखेरती हैं। औजी लोग अपने स्वामियों के यहाँ जाते हैं और अनेक मनोहर गीतों से उनको रिझाकर मनोवांछित पुरस्कार पाते हैं।

सदेई नाम की एक कन्या, जिसका कोई भाई नहीं है और जो अपने घर से दूर देश में ब्याही गई है, अत्यन्त कारुणिक शब्दों में विलाप करती है कि जिन स्त्रियों के भाई होंगे वे किस प्रकार बधाई बजानेवाले औजियों का चित्त वस्त्र-धनादि पुरस्कार से प्रसन्न करेंगे; किस प्रकार वे चैत्र मास में अपनी बहन को अपने घर बुलाकर उसका यथोचित सत्कार करेंगे!

(३)

भूरी आखुटी काणी मिरचारे दाणें,
चार दिना संसारटी रे, मोर हंस खेल लो लाण ॥१॥
फूले तौ करो फूलटू दाड़े फूलो ली तीलो,
वहोत दिनारे बीछड़े हौंदे, समा पाय रे मीलो ॥२॥
फूले तौ करो फूलटू दाणी फूलो ला पारे,
तुमे जाण हम चतुरो, हम चतुरे रे व्योपारे ॥३॥
पणिज कर्म शरी मोरा, रे पांखे,
सुजगे कर दाणीये कानरू, ये तो कहि फारसी ताखे ॥४॥
घिवे भरमे दूंटे, तेलें भरमे कुप्पी मनामनीये,
सिलगेरे धूंआँ, देखुओ ना लूपिये ॥५॥

एक पहाड़ी युवक भूरी नामक सुन्दरी पर आसक्त है। भूरी उसे प्रेम-भरी आँखों से देखती है या नहीं, इसमें प्रेमी को संदेह है। बहुत दिनों के बाद एक दिन कहीं डगर में भूरी से उसका साक्षात् हो जाता है, उस समय प्रेमी युवक ने यह गीत गाया है:—

प्यारी भूरी! तेरी आँखों की पुतलियाँ तो काली मिरच के समान सलोनी हैं। दुनिया चन्द रोज़ा है, हमारी तुम्हारी चार दिन की ज़िन्दगी है। आओ, हम तुम उसे हँस खेलकर काट लें ॥१॥

देखो, समय कैसा सुहावना है! चारोंओर तील के सुन्दर फूल किस तरह से फूल रहे हैं! हम तुम बहुत दिनों तक बिछुड़े रहे, आज अचानक मिलना हुआ है ॥२॥

तील और दाणी के फूल कैसे सुन्दर लग रहे हैं। तूने जाना कि तू बड़ी चतुर है; लेकिन इस प्रेम के व्यापार में तेरा प्रेमी तुझसे दस गुना होशियार है ॥३॥

मैं तुझसे पूछता हूँ कि तू अलग ही अलग रहकर यौवन-धनुष पर मोर-पंखी (नयन-बाण) लगाकर क्यों ताक-ताककर मेरा कलेजा छेदा करती है? पर अब तू जरा होशियार हो जा ॥४॥

मेरे घर में घी के बहुतेरे घड़े हैं और मनों तेल के कुप्पे भरे पड़े हैं। पर अन्दर ही अन्दर कलेजे में एक ऐसी आग सुलगा करती है, जिसका न तो धुआँ उठता है और न जिसकी लौ ही दिखलाई पड़ती है ॥५॥

(४)

मंगल गीत

दे देना बाबा जी कन्या को दान।
दानु मां को दान होलो कन्या को दान।
हीरा दान मोती दान सब कोई देला।
तुम देला बाबा जी कन्या को दान।
तुम ह्वेवेला बाबा जी पुन्य का लोभी,
दे देवा बाबा जी कन्या को दान।
हेम दान गज दान सब कोई देला।
तुम देल्या बाबा जी कन्या को दान।
अन्न दान धन दान सब कोई देला

तुम देल्या बाबा जी कन्या को दान।
गाय दान भूमि दान सब कोई देला।
तुम देल्या बाबा जी कन्या को दान।
तुम ह्वेवेला बाबा जी पुन्य का लोभी,
दे देवा बाबा जी कन्या को दान।

(गढ़वाली)

हे पिता जी ! तुम कन्या दान दे दो। कन्या दान सब दानों से श्रेष्ठ है। हीरा और मोती का दान तो सब कोई करेंगे। हे पिता जी ! तुम कन्या दान दोगे। इससे तुम्हें पुण्य होगा, इसलिए कन्यादान दे दो। सोना और हाथी का दान तो सब कोई करेंगे लेकिन तुम कन्या दान करोगे। अन्य धन का दान तो सब कोई करेंगे लेकिन तुम कन्यादान करोगे। गाय दान और भूमि दान तो सब कोई करेंगे लेकिन तुम कन्यादान दोगे। इससे तुम्हें पुण्य होगा। इसलिए हे पिता जी ! तुम कन्यादान दो।

(५)

घुघुति

ए नी बांस घुघति रूण भूण
मेरी ईजू सुणलि रूण भूण
पार धारा का रूखा का भूणी
के चाँणोछी पगलि तू उड़ि
तेरी दाशा देखि लागि जाँछ
मैं निश्वास घुघुति रुण भूण
ए नी बांस० ॥१॥

कातिखाँछ गाड़ को सुसाट
मैं वाने रै गई वी की वाट
बेरुठी छ पराणी सुए की
मैं उदास घुघुति रूण भूण

ए नी बांस० ॥२॥
छेड़ी खांछ भागी तेरी बाणि
खैई भरी अकेली पराणी
को बताल मेरी हई गेछ
एसी दास घुघुति रुण झूण
ए नी बांस घुघुति० ॥३॥
(कमाऊँनी)

ऐ घुघुति ! तू रूण-झूण तान न छेड़। मेरी मा सुनेगी तो व्याकुल हो उठेगी। ऐ पगली ! उस पार विशाल देवदार वृक्ष के नीचे उड़ान मारकर तू किसे खोज रही है ? तेरी दशा मेरी ही तरह है। तुझे देखकर मुझे निःश्वास होता है; मेरा हृदय भर आता है ॥१॥

नदी का कभी न थकने वाला कलरव मेरा हृदय जैसा चीर रहा है। नदी-तट पर कितनी देर से बैठी मैं उसकी (प्रिय की) बाट जोह रही हूँ, लेकिन प्रिय ने जैसे मुझे भुला दिया हो। मैं उदास हूँ। अकेले तेरे रूण-झूण स्वर मेरे कानों में गूंज रहे हैं ॥२॥

तेरी तान मुझे विह्वल कर देती है। क्या मेरा जीवन अकेले ही बीत जायगा ? कौन मेरे प्रिय को बतायेगा कि मेरी ऐसी दशा हो गई है ? ऐ घुघुति ! तू ऐसे रूण-झूण स्वर में न गा; मेरी मां सुनेगी तो व्यथित हो उठेगी ॥३॥

(६)

पारा भीड़ा कोछै भागी सूर सूर मुरलि बाजिगे ।
पारा भीड़ा कोछै सुआ रूण झूण बिणई बाजिगे ॥
पड़िगो बरफ भागी पड़ि गो बरफ

पंछि हूनो उड़ि उड़ि ऊनो सुए की तरफ सुआ फूर फूर
मुरलि बाजिगे ।

तेल बाती बुझि गयो यो दियो निभाण
तू न्हे गये परदेस मैल कये जाण भागी सूर सूर
मुरलि बाजिगे
पारा भीड़ा कोछै भागी रूण झूण बिणई बाजिगे
(कमाऊँनी)

उस पहाड़ी से सूर सूर किसकी मुरली के स्वर गूज रहे हैं ?
उस पहाड़ी से रूण झूण कौन बिणई की तान छेड़ रहा है ?
चारों ओर बरफ ही बरफ है ।
यदि मैं (पंखवान) पंछी होत तो तुम्हारी ओर उड़ी चली आती ।
तेल और बाती बुझ गई ।
दीपक की लौ भी शान्त हो गई ।
तुम तो (मुझे अकेली छोड़कर) परदेश चल दिये ।
मैं किधर जाऊँ ?
उस पहाड़ी से सूर सूर किसकी मुरली के स्वर गूज रहे हैं ?
उस पहाड़ी से रूण-झूण कौन बिणई के तान छेड़ रहा है ।*

नेपाली गीत

नेपाल भारत की उत्तरी सीमा पर, हिमालय पर्वत की गोद में एक स्वतंत्र राज्य है। भारतीय संस्कृति से वह भी आल्पावित है। नेपाली भाषा के गीतों में भी वही माधुर्य और हृदयोल्लास है, जो भारत की अन्य भाषाओं में है ।

यहाँ नेपाली भाषा के दो गीत दिये जाते हैं :—

---

*श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' से प्राप्त ।

(१)

सीरीमा सिरीनी बातासै लाग्यो सिरीस को झयांगह मां
कांछी झंझटि माया पाताली
आजलाई आ यहीं आहें न जी के
भोली लाई भो में ली.....लौन या सरी मायान मार
भ मरी जाऊं त मी काल आउ देन
बांच्छु तिमी छैनो भलाई बितेका दिन ले स ताउछ
पिढीमा बसिनी दिन भरि हेछु
रात भरि रोइ काट्छु, तिम्रो याद मां मनी सुवदैछु
म जीउदो मुर्द्रा नी कति मुर्मुरिउं
जीवन ले पोल्टैइ च कांछी न आउने भार ली जाउन
छिन छिनमा देख्छुनी छिन छिन ममँ देख्दिन
संगे छौ संगे छेनौ, हेर कस्तो ये रोग आयो नी
नाची मा नाची नी हामो देश सांची
स्वर्ग मन्दे माथि चारंजु आनो ची आम्बो ची
सिरीमा सिरीमा ।

सिरी सिरी करती हुई शिरीष के झुरमुट के बीच से हवा चल रही है। मेरी प्रियतमे ! हवा के झोंके की तरह ही चंचल क्या हमारी प्रीति है ?

आज भर के लिये तुम यहीं मेरे निकट आ जाओगी। कल तुम अपनी मनमानी कर लेना। आज तो मेरी ममता को इस तरह न बिसारो।

मैं मर जाता, मेरा काल अभी नहीं आ रहा है। जीवित हूँ, लेकिन तुम मेरे संग नहीं हो। बीती हुई मीठी यादें मुझे आ-आकर सताती हैं।

सीढी पर बैठकर मैं दिन भर तुम्हारी राह देखता रहता हूं। रात भर रो रो कर बिता देता हूँ। सोने में भी तुम्हारी याद नहीं जाती।

मैं जीवित हूं, लेकिन निर्जीव की तरह कितना मैं चीत्कार करूं ?

(२)

क.....ठई.....लादू बरीले.....
हाय मेरो परदेशी अबला लाइ न छोड़ रातै मा।
घर बार छोड़ि तिमि यनि आयं
सबै लाइ भुलैर
अंधेरी रातै कहाँ म जाऊँ
बिचमा परेर
माया को बादल फुटेर आयो
आँखा को लालीमा
हाय मेरो परदेशी अबला लाइ न छोड़ रातै मा।

हाय ! मेरे परदेशी ! मुझ अबला को रातमें अकेला मत छोड़।

मैंने तुम्हारे लिये घर-बार त्याग दिया, सब को मैंने भुला दिया। अंधेरी रात में मैं कह जाऊ ?

बीच में मुझे अकेला मत छोड़ो।

माया के बादलों ने आकर मेरे आंख की लालिमा को ढक दिया। अनुराग से अरुण मेरी आंखों में आंसुओं के बादल छा गये।

हाय, मेरे परदेशी ! मुझ अबला को रात में अकेला मत छोड़।*

पठानों के गीत

पठान जाति भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर बसती है। यह जाति अपनी वीरता और स्वातन्त्र्य-प्रियता के लिये प्रसिद्ध है।

इस जाति के स्त्री-पुरुष बड़े हृष्टपुष्ठ और तगड़े होते हैं। जीवन के

---

*श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' से प्राप्त।

सभी सुखों का स्वच्छन्दता-पूर्वक स्वाद लेते हैं और उसे अपने गीतों में सुललित शब्दों और रागों में पिरो देते हैं।

यहाँ पठानों में प्रचलित कुछ गीतों की पंक्तियाँ दी जाती हैं। गीतों में स्वाभाविक सरसता और कवि की-सी भावुकता मन को आनन्द देने वाली है :—

(१)

तन मे दरिया ज़ड़ मे सिपाय दे।
द जानान मीना लका द लाल पके सातमा ॥

मेरा शरीर एक दरिया है; दिल सीप है; इस सीप में मैं अपने प्रियतम के प्यार को मोती की तरह पालती हूँ।

(२)

या मे द यार प ज़ना ख़ाल दे।
या प आस्मान के मुश्तरी ब्रेखना कवीना ॥

दो ही वस्तुएँ हैं, जिनसे आँखे चौंधिया जाती हैं; या तो मेरी प्रेमिका की ठोड़ी का तिल या आकाश मे चमकता हुआ ध्रुवतारा।

(३)

ज़ड़ खो मे आगायो चिता यौड़ो।
ख़टके न दे चे बा उस पड़ी गुलुना ॥

मेरे पास एक ही दिल था, जिसे तू ले गया। यह कोई ककड़ी की लता थोड़े ही है कि इसमें बार-बार फूल खिलेंगे ?

(४)

प हंगामा द स्परली पोशुम।
जिनाको रावड़ह प टोकरो के ज्यड़ गुलना ॥

मैं अच्छी तरह समझ गया कि बहार आ गई। कुमारी लड़कियाँ फूलों से भरी हुई टोकरियां लिये हुये आ रही हैं।

(५)

बे बणों बे ब ज़रो द मर्ग गुन्दे परीगी,
खे जुना प्रे ख्वारेगी।
सन्दरे ये लेज़तका, द नटो पशान गडेगी,
जाहिल ब न पोहेगी।।

न उसके पंख हैं, न हड्डी; लेकिन वह पंछी की तरह फड़फड़ाता है। सुन्दर मुँहवाली लड़कियाँ उसपर मुग्ध हो जाती हैं। मीठे गीत गा-गाकर वह नट की तरह नाचता है। वह मूर्ख ही होगा, जो इसे बूझ न सकेगा।

यह चरखे की पहली है।*

पंजाबी गीत

पंजाब पाँच नदियों—सतलज, व्यास, राबी, चनाब, और झेलम का हराभरा प्रान्त है। पंजाब निवासी अपनी इन नदियों पर बड़ा गर्व करते हैं। पंजाब मुख्यतः गाँवों का प्रान्त है। प्रत्येक गाँव गीतों का एक घोंसला है। बच्चे से लेकर बुड्ढे तक स्त्री-पुरुषों में सुख-दुख की जो भावनायें उठती हैं, सब गीतों में पिरो दी गई हैं, जो समाज के वातावरण में इधर से उधर उड़ती फिरती हैं।

यहाँ पंजाबी भ प का एक गीत दिया जाता है:——

(१)

बे बधावेआ सज्जना, सुआवेआ सज्जना
एह घर कीन्हीं गुणीं वण दे।

*श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के एक लेख से

एह घर लिप्पेआ परोलेआ, कुंगुए छिड़केआ,
एह घर इन्हीं गुणीं बण दे ।।
जम्मन पुत्त सपुत्तड़े, आमन नूँहाँ सुहागनाँ,
एह घर इन्हीं गुणीं बण दे ।
जम्मन धीआँ सुंजूइयाँ, आमन छैल जुआई,
एह घर इन्हीं गुणीं बण दे ।।

हे साजन ! यह घर किस तरह बनता है ?

यह घर लीप-पोतकर और केसर छिड़ककर बनता है ।

सपूत उत्पन्न हों, और अच्छे गुणोंवाली कुलवधुएँ आयें; इन्हीं गुणों से घर बनते हैं ।

बुद्धिमती बेटियाँ पैदा हों और बाँके जमाई आयें, इन्हीं, गुणों से घर बनते हैं ।

सिंधी गीत

सिंध अभी ८ वर्ष पहले भारत का पश्चिमी प्रान्त था । अब पाकिस्तान के अधिकार में चला गया है । पर उसके गीतों में भारतीय संस्कृति ही की आभा वर्तमान है ।

यहाँ नमूने के तौर पर एक गीत दिया जाता है:——

पट पहिरींदास कीना की, वागा मू ना वानन था ।
दम दम खेता जा, मूखे खियालड़ी खनन था ।।
लोई कीना लहियान लिगान तन मन लारे ।
पीरूँ चूँ दीद आस पंदा में शला लामन माँझ लावाँ ।।
पट पहिरींदास कीना की खातरूँ कीना सुवाँ ।
सजन मुहिरये सुना जी ना हे कलारी तवहाँरवे ।।

असीन मान्हू मला चढयूं वहयूं बारे वलारा वर्‌यूं।
कुल्हे फाटुर कोरो कंजरो सुवारे हिना सन सथीनदस।
वेही वेहियाला साँदे विछामी सहिरयूं खान सुवाइनदस॥
चावे शेरल अदल थिंदो जुलुम जोरी कम ना इन्दो।
थे इन्साफ! ओमर! तुहिनजा मान सहिरयूं रवे सुराइनदस॥
वभाये वतन रवे सारे साहु दियान।
जगा में आद जियान जे वजे माहू मलीर दे॥

मार्वी नामक स्त्री ऊमर से कहती है—मैं आपके दिये हुए रेशमी वस्त्रों को क्या करूँगी?

मैं तो जिस समय से अपना घर-बार छोड़कर यहाँ आई हूँ, मुझे सोते-जागते प्रतिक्षण अपने खेतों ही की सुध आती रहती है।

मेरा जी यही चाहता है कि मैं शीघ्र अपने शरीर से इन वस्त्रों को उतार दूँ।

रह-रह कर मैं पेरू* फलों को जंगल में जाकर तोड़ने के लिये उत्कण्ठित हो उठती हूँ।

मैं रेशमी कपड़े नहीं पहनूंगी और न राजसी बिछौने ही पर लेटूंगी।

हे राजन! आपको इस बात का अनुमान नहीं हो सकता कि अपने खेत-पात तथा अपने स्वजनों को छोड़ने से मुझे कितनी मानसिक पीड़ा हो रही है।

मेरा जन्म तो ऐसे कुल में हुआ है जिसमें लोग पशु चराते हैं, और रात्रि के समय हिंसक जीवों से अपनी तथा अपने पशुओं की रक्षा करने के लिये अपनी झोपड़ियों में आग जलती रखते हैं।

* यह सिन्ध में होता है

मैं ये रेशमी कपड़े तो क्या पहनूंगी ? मैं तो जैसा कि सदा से कहती आई हूँ, कैंची से एक मोटे कपड़े की अँगिया ब्योंत लूंगी, जो कन्धों पर खुली रहेगी।

उसे मैं अपनी सहेलियों से अनुनय करके सिला लूंगी।

राजन् ! मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। अपना राज-बल दिखाकर आप मेरे हृदय पर अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकते।

पर हे ओमर ! यदि आप मुझे अपने देश को लौट जाने की आज्ञा देने की कृपा करेंगे, तो विश्वास रखिये कि मैं अपने साथी-संगियों से आपके न्याय-प्रेम की कहानियाँ कहूँगी।

यदि मुझे आपने कदाचित् मुक्त न किया, तो मैं अपने देश और घर की स्मृति में अपने प्राण समर्पण कर दूंगी।

क्योंकि मेरा यह अचल विश्वास है कि यदि मैं जीवितावस्था में स्वदेश न पहुँच पाई और मेरा मृतक शरीर ही वहाँ पहुँचा, तो मैं अनन्त काल तक जीवित रहूँगी !'

राजस्थानी गीत

राजस्थान वीरों का प्रान्त है। वहाँ की वीरता कवियों, चारणों और कुल-परंपरागत प्रतिष्ठा की देन है; और शृंगार-रस स्वाभाविक है। इससे राजस्थानी गीतों में इन्हीं दो रसों का प्राधान्य है। संस्कारों के गीतों के अतिरिक्त राजस्थानी में ग्राम-कथायें और वीर-गाथायें भी बहुत हैं, जिनमें बीच-बीच में दोहों और सोरठों का भी प्रवेश पाया जाता है।

प्रतिभा किसी देश-विशेष की सम्पत्ति नहीं। सजला, सफला, सस्य-श्यामला भूमि में कवि उत्पन्न हो सकते हैं तो निर्जला, निष्फला रेणुराशि-संकुला धरती में भी कवि होते हैं। मारवाड़ में भी कविता

का विकास उसी उन्माद के साथ हुआ है, जैसा उत्तर प्र.श और बंगाल में। प्राचीन काल के ऐतिहासिक कवियों का त। कहना ही क्या ? वर्तमान काल में भी मारवाड़ के गाँव-गाँव में कवि हैं; हृदय-हृदय में कविता का जागरण है; वाणी-वाणी में सूक्तियों का स्रोत है। कविता के कितने ही मर्मज्ञ और सहृदय कवि गाँवों में अप्रकट रूप से निवास करते हैं।

हिन्दी में वीररस के कवि एक हाथ की उँगलियों से भी कम हैं। उधर मारवाड़ का सारा आकाश चारणों और बारहटों के सिंहनाद से गूंज रहा है। हिन्दी में नीतिकार कितने हैं ? उधर मारवाड़ में ईलिया, किसनिया, केलिया, छोटिया, जठवा दादुवा, दानिया, नाथिया, नागजी, नोपला, फारबस, फूसिया, बाघजी, बींझरा, भैरिया, मोतिया, राजिया, सगतिया, सारंगा और सोरठिया आदि बीसों हैं, जिनके नीति के वचन लोगों के कंठ-कंठ में विराजमान हैं। पाबूजी का गीत, गोगा चौहान का गीत, भबूता सिद्ध का गीत, भैरोंजी का गीत और ढोला मारू के गीत जो वहाँ गाये जाते हैं और रात में चित्रपटों पर उनके दृश्य दिखाये जाते हैं, हिन्दी में उनकी तुलना मैं किससे करूँ ? नानिया राणा, वजीरा तेली और प्रेमसुख भोजक के ख्यालों के जोड़ के रसपूर्ण काव्य और कहाँ मिलेंगे ? मारवाड़ के रेगिस्तान में ऊँट पर रात में सफर करना पड़ता है। उस समय ऊँट वाले रास्ते भर सोरठ, देश और सारंग राग के स्वर में 'निहालदे' और 'बनजारे' का जो ऐतिहासिक गीत गाते हैं, वे भारत के किसी प्रांत में सुनने को नहीं मिल सकते। मारवाड़ के 'भूकर घेसला' के जोड़ के हास्य-रस के कवि हिन्दी में केवल खुसरो हैं। खुसरो के बाद विनोद का वह मैदान ही खाली पड़ा है। मारवाड़ में रात के तीसरे पहर में उठकर माली लोग कुँएँ से पानी निकालने लगते हैं। उस समय वे जोर-जोर से चिल्लाकर जो गीत गाते हैं, उनमें शान्ति की अमृतधारा प्रवाहित रहती है। शान्तिमयी पिछली रात में मालियों के गीत जिनकी निद्रा भंग कर देते हैं, मेरी दृष्टि में वे बड़े भाग्यशाली जन हैं। क्योंकि दूर से सुनाई पड़ने वाले वे गीत हृदय में शान्ति, शक्ति, कोमलता और निर्मलता की वृद्धि करते हैं।

मारवाड़ी समाज का जिन्हें अनुभव है, वे सहज ही में कह सकते हैं कि मारवाड़ का समस्त जीवन ही काव्यमय है। वहाँ की रहन-सहन, वेश-भूषा, बोलचाल, हास्य-विनोद सब में कविता की धारा प्रवाहित है।

राजस्थान में कई बोलियाँ बोली जाती हैं। जैसे—ढूंढाड़ी, मेवाड़ी, देवराबाटी, बीकानेरी, जोधपुरी, चूरूवाली और शेखावाटी। यहाँ कुछ दोहे और सोरठे दिये जाते हैं, वे किसी खास बोली के नहीं, बल्कि मिश्रित हैं।

दोहे और सोरठे

(१)

तन तलवाराँ तिलछियो, तिल तिल ऊपर सीव।
आला घावाँ ऊठसी, छिन एक ठहर नकीब॥

कोई वीर-पुरुष युद्ध में घायल होकर घर आया है। घर के सामने चारण उसकी वीरता का बखान कर रहा है। उस समय उस वीर की स्त्री कहती है—

हे चारण! मेरे वीर पति का शरीर तलवार के घावों से टुकड़े-टुकड़े हो गया है, वह एक-एक तिल की दूरी पर सिला हुआ है। तेरी कविता सुनकर वह गीले घावों ही से उठ खड़ा होगा; इसलिये हे चारण! तू जरा ठहर जा।

(२)

फौज घटा खग दामणी, बूँद बरच्छी देह।
आली इकली देखनै, मारण आयो मेह॥

कोई विरहिणी कहती है—

घटा फौज है, बिजली तलवार है, बूंद बरछी है। हे सखी! मुझे अकेली देखकर बादल मारने आया है।

(३)

उठे ही पीरो होय उठे ही सासरो ।
आथूणों होय खेत चवे नहिं आसरो ।।
नाड़ा खेल नजीक जठें हल खोलणा ।
इतरा दे करतार फेर नहिँ बोलणा ।।

पिता और ससुर का घर एक ही गाँव में हो, खेत पश्चिम में हो, झोपड़ी चूती न हो, तालाब खेत के पास हो, जहाँ पर बैल खोल दिये जायँ, ताकि बैलों को पानी पिलाने को दूर न ले जाना पड़े। भगवान् इतना दें तो फिर कुछ माँगने की आवश्यकता नहीं।'

खेत का पश्चिम दिशा में होना बड़ाही युक्तिपूर्ण है। मारवाड़ का किसान सबेरे खेत पर जाता है और शाम को घर लौटता है। पश्चिम दिशा में खेत होगा तो उसे सबेरे शाम दोनों वक्त सूर्य पीछे मिलेगा। इससे उसकी आँखों को सूर्य हानि न पहुँचा सकेगा।

(४)

स्याम उगारी रण रहे, ये रजपूताँ रीत।
ज्याँ लग पाणी आवटे, त्याँ लग दूध निचीत।।

राजपूतों की यह रीति है कि वे स्वामी के आगे रण में जूझते हैं। जैसे, जबतक पानी स्वयं जल न लेगा, तबतक दूध पर आँच न आने देगा।

(५)

आसक नट साधक सती, सूराँ सहेबो सेल।
अरा फरी की बात नहिं, खरा-खरी को खेल।।

प्रेमी होना, नटबाजी करना, साधक होना, सती होना और वीरों का भाला सहना, इसमें चालाकी नहीं चल सकती। यह तो खराखरी का खेल है।

(६)

परणंताँ म्हें परखियो, मूछाँ तणी अणी।
म्हें तो लाँबी पहेरश्याँ, पण जद पेन्हे घणी॥

नवबधू कहती है—विवाह के समय पति की मूछ की नोक ऊपर उठी हुई देखकर ही मैं तो समझ गई थी कि विधवा होऊँगी। पर कब? जब हजारों स्त्रियाँ विधवा हो लेंगी, तब। अर्थात् यह शूरवीर है। सदा रण ही में रहेगा और हजारों को मारकर तब शरीर त्याग करेगा।

यह दोहा उस समय का है, जब मूछे निकल आने के बाद विवाह होता था।

(७)

धर धरती पग पागड़े, अरियाँ तणों गरड्ड।
हजू न छोड़े साहबा, मूछाँ तणों मरड्ड॥

रण में लड़ते-लड़ते धड़ पृथ्वी पर आ गया। पैर रिकाब में है। शत्रुओं ने चारोंओर से घेर रक्खा है। फिर भी मेरे प्राणनाथ मूछों का मरोड़ना नही छोड़ते।

(८)

नैण लगै तो लगण दै, तू मति लगियौ चित्त।
वै छूटेंगे रोय कै, तू बँध्यो रहैगो नित्त॥

हे चित्त! नेत्र लगे तो लगने देना, पर तू न लगना। नेत्र तो रोकर छूट जायँगे, पर तू सदा बँधा ही रहेगा।

(९)

सत मत छोड़े बावरे, सत छोड़े पत जाय।
सत की बाँधी लच्छमी, फेर मिलैली आय॥

हे बावले ! तू सत मत छोड़। सत छोड़ने से पत जायगी। लक्ष्मी सत से बँधी है। वह फिर आकर मिलेगी।

(१०)

काछ दिढ़ा कर बरसणा, तन चोखा मुख मिट्ठ।
रिण सूरा जग वल्लभा, सो मैं बिरला दिट्ठ॥

काछ का मजबूत, हाथ का दानी, शरीर का निरोग, मुंह का मधुर, रण का वीर, संसार का प्यारा मनुष्य मैंने बिरला ही देखा है।

(११)

समझण दे तो संपत दे,
न कर थारी समझण पाछी ले।
पण समझण और सम्पत नहि,
तो दो धक्का म्हारे से ले॥१२॥

हे ब्रह्मा ! जीवन में बुद्धि देना तो धन भी देना। धन विना बुद्धि वापस लेना। पर बुद्धि और धन दोंनो न हों, तो ऐसे जीवन के लिये दो धक्के मुझसे लेना।

(१२)

ढोल बजन्ता हे सखी, पति आयो मुहिँ लेण।
बागाँ ढोलाँ हूँ चली, पति को बदलो देण॥

हे सखी ! पति मुझे ढोल बजाकर लेने आया। मैं भी रण का ढोल बजते ही पति को बदला देने चली अर्थात् सती होने चली।

(१३)

बरसाँ बीस पचीस में, जाग सकै तो जाग।
जोबन दूध उफाँण ज्यूँ, जासि ठिकाने लाग॥

बीस-पचीस बरस की उम्र में तुझे जागना हो तो जाग। नहीं तो जवानी दूध के उफान की तरह ठिकाने लग जायगी।

(१४)

रात पलट्टे दी हवै, दीह पलट्टे रेण।
भल मिनखाँरा बोलणा, नाहिं पलट्टे बेण॥

रात बदली, दिन हुआ। दिन पलटा, रात हुई। पर सत्पुरुषों का बचन कभी नहीं पलटता।

(१५)

सर सूखो बेलू हिली, पाँणी गयौ पताल।
ए गरबाला हँसला, अजू न छोड़ी पाल॥

तालाब सूख गया, जड़ भी हिल गई, पानी पताल को चला गया। फिर भी अभिमानी हंस ने पाल (तालाब के किनारे की भूमि) नहीं छोड़ी।

(१६)

आवे वस्तु अनेक, हद नाणो गाढ़े हुवे।
अकल न आवै एक, क्रोड़ रुपीये 'किसनिया'॥

अनेक वस्तुयें आ सकती हैं, धन भी बहुत हो सकता है। पर करोड़ों रुपयें खर्च करने पर भी अकल नहीं आ सकती, ऐसा किसनिया कहता है।'

(१७)

डीगी पाल तलाव री, हंसो बैठौ आय।
पीत पुराणी जल नहीं, चुग चुग कंकर खाय॥

तालाब की पाल हिल गई। वह सूख गया। हंस आकर बैठा। जल नहीं था। फिर भी वह पुरानी प्रीति का ख्याल करके कंकड़ चुन-चुन कर खाता है।

(१८)

आगम बुद्धी बाणियाँ, पच्छिम बुद्धी जाट।
तुरत बुद्धी तुरकड़ा, ब्राह्मन सम्पट पाट॥

बनिया पहले सोचता है, जाट पीछे। तुर्क तत्काल सोचता है और ब्राह्मण तो बिल्कुल सपाट ही होता है।

(१९)

प्यारे वे दिन खूब थे, बिच मातौ नहिं बाँथ।
अब साईं ऐसी करी, कागद ही पर हाथ॥

हे प्यारे ! वे दिन कैसे अच्छे थे, जब हम दोनों हाथ में नहीं समाते थे। हाय ! अब भगवान ने ऐसा किया कि हाथ कागज ही पर रहता है।

(२०)

कागद छोटो हित घणौ, मोसो लिख्यो न जाय।
सागर में पाणी घणौ, गागर में न समाय॥

कागज छोटा है प्रेम बहुत है। मुझसे लिखा नहीं जाता। सागर में पानी बहुत है, पर वह गागर में नहीं समा सकता।

(२१)

जे धण होती बादली, आभै जाय अड़ंत।
पंथ बहंता साजनाँ, ऊपर छाँह करंत॥

हाय ! यदि मैं बदली होती तो आकाश में जाकर ठहरती और राह में चलते हुए सजन के ऊपर छाया करती चलती।

(२२)

चकवा सारस वाण, नारि नेह तीनू निरख।
जीणो मुसकल जाण, जोड़ी बिछुड्याँ 'जेठवा'॥

जेठवा कहता है—चकवा, सारस और स्त्री के स्नेह का यह स्वभाव होता है कि जोड़ी बिछुड़ने पर इनका जीना कठिन होता है।

(२३)

म्हे परणंता परखियौ, वोह कर तीजणियाँह।
मो कर चूड़ी ऊतरै, ऊतरसी घणियाँह॥

विवाह के समय मैंने पति के हाथ में रण-कंकण देखा। मैंने समझा कि मेरे हाथ की चूड़ी उतरेगी; पर कब? जब बहुतों की उतर लेगी, तब।

(२४)

आभ फटै धर ऊससै, कटै बखतराँ कोर।
सिर टूटै धर तड़फड़ै, जद छूटै जालौर॥

आकाश फट जाय, पृथ्वी हिल उठे, बख्तर के पुरजे-पुरजे उड़ जायँ, सिर कटकर गिर पड़े और धड़ तड़पने लगे, तब कहीं जालौर (राज्य विशेष) छूट सकता है।

(२५)

खड़ग धार पर काह, चाले तो चलबो सहल।
मुसकल जग रे माँह, नेह निभाणो 'नागजी'॥

नागजी कहते हैं—तलवार की धार पर चलना सहज है, पर संसार में प्रेम निभाना कठिन है।

(२६)

कंथा रिण में जायनैं, किण रो ढूंढ़ो साथ।
साथी थारै तीनि हैं, हियौ कटारी हाथ॥

हे कन्त! रण में जाकर किनका साथ ढूँढ़ियेगा? तुम्हारे तीन साथी हैं—हृदय, कटारी और हाथ।

(२७)

माई एहा पूत जण, जैहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै साँप॥

हे माता ! ऐसा पुत्र उत्पन्न करना, जैसा राणा प्रताप है । जिसे सिरहाने का साँप जानकर अकबर सोते-सोते उझक उठता था।'

(२८)

सोरठियो दोहो भलो, भलि मरवण री बात।
जोबन छाई धन भली, तारा छाई रात॥

छंदों में सौराष्ट्र का दोहा या सोरठा अच्छा होता है। ढोला-मारू की कथा अच्छी होती है। जवानी से उमड़ी हुई स्त्री और तारों-भरी रात अच्छी होती है।

(२९)

घोड़ा हींसे बारणे, बीर अखाड़े पोल।
कंकण बांधो रण चढ़ो, वै बाग्या रण-ढोल॥

द्वार पर घोड़ा हिनहिना रहा है; ड्योढी में वीर लोग हैं। हे वीर! रण-कंकण बाँधकर लड़ने जाओ। वह लो ! लड़ाई का ढोल भी बज उठा।

(३०)

सोढ़े ऊमर कोटरो, यौं बाही अब यट्ट।
जाने बेहू भाइये, आथ करी बे बट्ट॥

ऊमर कोट के सोढा ने ऐसी तलवार चलाई कि बैरी के दो बराबर टुकड़े हो गये। मानो दो भाइयों ने बराबर-बराबर धन बाँटा हो।

इस दोहे के सम्बन्ध की एक कथा है—

एक राजपूत बालक को एक पंडितजी कविता पढाया करते थे। वे एक दिन पढा रहे थे—

मृगनयनी के नयन ते, मयन अयन मन होत।

राजपूत बालक की माता परदे की आड़ में बैठी थी; उसने यह सुनकर पंडितजी से कहा—मेरे बेटे को यह क्या पढाते हो? मैं जो दोहा कहती हूँ, उसे पढाओं और उसका अर्थ समझाओ।

यह कहकर उसने ऊपर वाला दोहा पढकर सुनाया।

(३१)

प्यारी पौढ़ी पिलँग पर, मुख पर चीर लगाय।
जाँणक झीणी बादली, चँदलौ लियो छिपाय॥

प्यारी मुँह पर चीर डालकर पलँग पर पौढ रही है। ऐसा मालूम हो रहा है, मानो बारीक बदली ने चाँद को ढक लिया है।

(३२)

उदियापुर की काँमणी, गौखाँ निरखै गात।
देवल हो तो डिग पड़ै, माँणस कितीक बात॥

उदयपुर की कामिनी का शरीर गवाक्ष में दिखाई पड़ रहा है। अहा! इसे देखकर देवता की मूर्ति हो तो भी डिग जाय, मनुष्य की तो बात ही क्या!

(३३)

नौज किणी सूं लागजो, नैणां हन्दो नेह।
धुकै न धूवाँ नीसरै, जले सुरंगी देह॥

नेत्र और स्नेह किसी से न लगें, तभी अच्छा। क्योंकि लगने से सुन्दर रंगवाली देह जला करती है, यद्यपि धुंवाँ नहीं निकलता।

गीत

(१)

बाय चल्या छा भँवरजी पीपली जी,
हाँ जी ढोला हो गई घेर घुमेर।
बैठां की रुत चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हाँरी सास सपूती रा पूत
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी॥१॥

ब्याय चल्या छा भँवरजी गोरड़ी जी,
हाँ जी ढोला हो गई जोध जुवान।
बिलसण की रुत चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हारी लाल नणद रा वो बीर,
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी ॥२॥
कुँण थारा घुड़ला भँवरजी कस दिया जी,
हाँ जी ढोला कुँण थाने कस दिया जीण।
कुण्या जी रा हुकमा चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हारे हीवड़े रा जीवड़ा
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी ॥३॥
बड़े बीरे घुड़ला गोरी ! कस दिया जी,
हाँ ए गोरी ! साथीड़ा कस दिया जीण।
बापाजी रा हुकमा चाल्या चाकरी जी ॥४॥
रोक रुपैयो भँवरजी मैं बणूँ जी,
हाँ जी ढोला ! बण ज्याऊँ पीली-पीली म्होर।
भीड़ पड़े जद भँवरजी ! बरत ल्यो जी,
ओ जी म्हारी सेजाँ रा सिणगार !
पियाजी ! प्यारी ने सागे ले चलो जी ॥५॥
कंदे न ल्याया भँवरजी ! सीरणी जी,
हाँ जी ढोला ! कदे न करी मनुवार।
कदे न पूछी मनड़े री बारता जी,
ओ जी म्हारी लाल नणद रा वो वीर !
थाँ बिन गोरी ने पलक न आवड़े जी ॥६॥
कदे न ल्याया भँवरजी ! सूतली जी,
हाँ जी ढोला ! कदे बी बुणी नँहीं खाट।

कदेय न सूत्या रलमिल सेज में जी,
ओ जी पियाजी! अब घर आओ
थारी प्यारी उडीके महल में जी ॥७॥

था रे बाबाजी ने चाए भँवर जी! धन घणो जी
हाँ जी ढोला! कपड़े री लोभण थारी माय।
सेजाँ री लोभण उडीके गोरड़ी जी,
थारी गोरी उड़ावे काग।
अब घर आओ जी क धाई थारी नोकरी जी ॥८॥

अब के तो ल्यावाँ गोरी! सीरणी ए,
हाँ ए गोरी! अब करस्याँ मनुवार।
घर आय पूछाँ मनड़े री बारता जी ॥९॥

अब के ल्यावाँ गोरी सूतली जी,
हाँ ए गोरी! आय बुणांगा खाट।
पछे सोस्याँ रलमिल थारी सेज में जी ॥१०॥

चरखो तो ले ल्यूँ भँवर जी राँगलो जी,
हाँ जी ढोला! पीड़ो लाल गुलाल।
तकवो तो ले ल्यूँ जी भँवरजी! बीजलसार को जी।
ओजी म्हारी जोड़ी रा भरतार,
पूणी मँगाल्यूँ जी क बीकानेर की जी ॥११॥

म्होर-म्होर की कातूँ भँवरजी! कूकड़ी जी,
हाँ जी ढोला! रोक रुपैए रो तार।
में कातूं थे बैठा बिणज ल्यो जी,
ओ जी म्हारा लाल नणद रा वो वीर!
जल्दी घर आओ प्यारी ने पलक न आवड़े जी

गोरी री कुमाई खासी राँडिया रे!
हाँ ए गोरी! के गाँधी के मणियार।
म्हें छा बेटा साहूकार का जी,
ए जी म्हारी घणी ए पियारी नार!
गोरी री कुमाई से पूरा ना पड़े जी ॥१३॥

साँवण खेती भँवरजी! थे करी जे,
हाँ जी ढोला! भादुड़े करायो जी नीनाण।
सीटाँ री रुत छाया भँवरजी! परदेश में जी,
ओ जी म्हारा घणां कमाऊ उमराव!
थारी पियारी ने पलक न आवड़े जी ॥१४॥

ऊजड़ खेड़ा भँवरजी फेर बसे जी,
हाँ जी ढोला! निरधन के धन होय।
जोबन गये पछे कना बावड़े जी,
ओ जी थाने लिखूँ बारम्बार,
जल्दी घर आओ जी क थारी धण एकली जी।

जोबन सदा न भँवरजी! थिर रहे जी,
हाँ जी ढोला! फिरती-थिरती छाँय।
पुल का तो बाया जीक मोती नीपजे जी!
ओ जी थारी प्यारी जी जोवे बाट।
जल्दी पधारो देश में जी ॥१६॥

स्त्री कहती है—हे पति! तुमने पीपल लगाया था। हे प्राणनाथ! वह अब खूब घनी छाया वाला हो गया है। जब उसकी छाया में बैठने की ऋतु आई, तब तुम परदेश चले हो। हे मेरी सुपुत्रवती सास के पुत्र! तुम कमाने के लिये पूरब मत पधारो ॥१॥

तुमने जिस गोरी से विवाह किया था, वह यौवन-मद से मतवाली

हो गई है। जब बिलास की ऋतु आई, तब तुम कमाने चले। हे मेरी प्यारी ननद के भाई ! कमाने के लिये पूरब न जाओ ॥२॥

हे मेरे नाथ ! किसने तुम्हारा घोड़ा कस दिया ? किसने उस पर जीन रख दी ? किसकी आज्ञा से तुम परदेश जा रहे हो ? हे मेरे हृदय के जीव ! तुम कमाने के लिये पूरब मत जाओ ॥३॥

पति ने कहा—बड़े भाई ने घोड़ा कस दिया और साथियों ने उस पर जीन रख दी। बाबा की आज्ञा से मैं कमाने जा रहा हूँ ॥४॥

स्त्री ने कहा—हे नाथ ! मैं तुम्हारे लिये रुपया बन जाऊँगी। मैं तुम्हारे लिये पीली-पीली मोहर बन जाऊँगी। हे प्राणधन ! जब जरूरत पड़े, उसे काम में लाना। हे मेरे सेज के शृंगार ! प्रियतम ! अपनी प्यारी को भी साथ ले चलो ॥५॥

पति परदेश चला गया। स्त्री पति को पत्र लिखती है—

हे स्वामी ! तुम न कभी मिठाई लाये और न मुझे प्यार से खिलाया। न तुमने कभी मन की बात ही पूछी। हे मेरी प्यारी ननद के भाई ! तुम्हारे बिना तुम्हारी गोरी को एक क्षण भी चैन नहीं पड़ती ॥६॥

न तुम कभी सुतली ले आये। न तुमने खाट ही बुनाया। न कभी हम दोनों हिलमिल कर सेज पर सोये ! हे प्रियतम ! अब घर आओ। तुम्हारी प्यारी महल में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है ॥७॥

तुम्हारे बाबाजी को तो बहुत धन चाहिये। और हे पति ! तुम्हारी माँ कपड़ों की लोभिन है। सेज की लोभिन तुम्हारी गोरी प्रतीक्षा कर रही है। तुमको बुला लाने के लिये तुम्हारी गोरी कौआ उड़ाया करती है। तुम्हारी कमाई से मैं बाज आई। तुम घर आओ ॥८॥

पति ने पत्र का उत्तर लिखा—हे गोरी ! अब की बार मिठाई लाऊँगा और प्यार से तुमको खिलाऊँगा। घर आकर मन की बात भी पूछूंगा ॥९॥

अब की सुतली भी लाऊँगा। खाट भी बिनूंगा और फिर हम दोनों हिल-मिल कर बड़े सुख से तुम्हारी सेज में सोयेंगे ॥१०॥

पत्नी लिखती है—हे प्रियतम ! हे मेरे समान यौवन-पूर्ण ! हम एक सुन्दर चरखा, एक रंगीला पीढा और अच्छे लोहे का एक तकवा खरीद लेंगे तथा बीकानेर से रूई की पोंणी मँगा लेंगे ॥११॥

हे पति ! मैं मोहर की कुकड़ी कातूंगी, और रुपयों के मूल्य के तार। मैं कातूंगी, तुम बुन लेना। यह व्यवसाय हम करेंगे। हे मेरी प्यारी ननद के भाई ! जल्दी घर आओ। पल भर के लिये भी मुझे चैन नहीं पड़ती है ॥१२॥

पति ने लिखा—स्त्री की कमाई कोई निकम्मा आदमी खायगा या कोई इत्र बेचनेवाला या कोई मनिहार। मैं तो साहूकार का बेटा हूँ। हे मेरी अत्यंत प्यारी स्त्री ! स्त्री की कमाई से काम नहीं चलेगा ॥१३॥

स्त्री ने लिखा—सावन में तुमने खेती की थी और भादों में निराया था। जब भुट्टे खाने का समय आया, तब तुम परदेश में हो। हे मेरे बहुत कमाने वाले राजा ! अब घर आओ। तुम्हारी प्यारी को पल भर भी चैन नहीं पड़ती ॥१४॥

हे पति ! गाँव उजड़कर फिर बस जाता है। निर्धन को धन भी मिल जाता है। पर गया हुआ यौवन फिर नहीं लौटता। हे मेरे प्राणाधार ! मैं तुमको बार-बार लिखती हूँ, जल्दी आओ। तुम्हारी प्यारी अकेली है ॥१५॥

हे पति ! यौवन सदा स्थिर नहीं रहता। यह तो बादल की छाया के समान है। समय पर बोया हुआ मोती उपजता है। हे पति ! तुम्हारी बाट जोह रही हूँ। जल्दी घर पधारो ॥१६॥

इस गीत में विरहिणी की पुकार बड़ी ही मार्मिक है। यह गीत पढकर कौन ऐसा परदेशी युवक होगा जो अपनी विरहिणी की ओर एक बार आकर्षित न होगा ? इस गीत में विरहिणी के अंतस्तल का प्रेम छलका पड़ता है। वह अपने पति को लिखती है कि आओ मैं चरखा कातकर और तुम कपड़ा बुनकर, हम दोनों किसी तरह अपना जीवन निर्वाह कर लेंगे। पर तुम परदेश में न रहो। यह गीत सुनकर महात्मा गाँधीजी

तो अवश्य ही प्रसन्न होते और मारवाड़ियों को चरखे और खद्दर की प्राचीनता बताने के लिये उनके सामने वे यह गीत प्रमाण-रूप से उपस्थित करते। पति ने जो पत्नी को यह लिखा कि 'मैं साहूकार का बेटा हूँ, स्त्री की कमाई क्यों खाऊँ'? यह वाक्य मारवाड़ियों के व्यापारी जीवन की रीढ है। इस 'साहूकार बेटे' के भीतर मारवाड़ियों का अदम्य उत्साह, अथक परिश्रम, अप्रतिम उद्योग और अपरिमित कष्ट-सहिष्णुता व्याप्त है।

(२)

मधुबन रो ए आँबो मौरियो, ओ तो पसरयो ए सारी मारवाड़।
सहेल्याँ ए आँबो मौरियो ॥१॥
बहू रिमझिम महलाँ से ऊतरी, बहू कर सोला सिणगार।
सासूजी पूछ्या ए बहू थारे गेणो ए म्हाँने पैरि दिखाव।
सहेल्याँ ए० ॥२॥
सासू गहणा नै के पूछो, गहणा ओ म्हारो सो परिवार। ।
म्हारा सुसरो गढ़ का राजवी सासू जी म्हारी रतन भण्डार।
सहेल्याँ ए० ॥३॥
म्हारो जेठजी बाजूबंद बाँकड़ा, जिठाणी म्हारी बाजूबंद की लूँब।
म्हारी देवर चुड़लो दाँत को, देवराणी म्हारी चुड़ला री मजीठ।
सहेल्याँ ए० ॥४॥
म्हारा कँवरजी घररो चाँदणो, कुलबहू ए दिवले री जोत।
म्हारी धीयज हाथरी मूँदड़ी, जँवाई म्हारे चमेल्याँ रो फूल।
सहेल्याँ ए० ॥५॥
म्हारी नणद कसूँभल काँचली, नणदोई म्हारो गज-मोत्याँरो हार।
म्हारा सायब सिर को सेवरो, सायबाणी म्हें तो सेजाँरा सिणगार।
सहेल्याँ ए० ॥६॥

म्हेंतो वार्याजी बहूजी थारी बोल नै, लडायो म्हारो सो।
परिवार म्हेंतो वार्याजी सासूजी थारी कूख नै, थे तो जाया।
अर्जुन भीम सहेल्याँ ए० ॥७॥
म्हें तो वार्याजी बाईजी थारी गोद नै थे खिलाया लिछमण राम।
सहेल्याँ ए आँबो मौरियो ॥८॥

मधुबन में आम बौरा है। अहा ! यह तो सारे मारवाड़ में फैल गया है। हे सखियो ! आम में बौर आया है ॥१॥

बहू सोलह श्रृंगार करके छम-छम करती हुई महल से उतरी। सास ने पूछा—हे बहू ! तुम्हारे पास क्या-क्या गहने हैं? पहनकर मुझे दिखाओ न. ॥२॥

बहू ने कहा—हे सास जी ! मेरे गहनों की बात क्या पूछती हो? मेरा गहना तो सारा परिवार है। मेरे ससुरजी घर के राजा हैं और सासूजी रत्नों की भंडार ॥३॥

मेरे जेठजी तो बाजूबंद हैं और जेठानीजी बाजूबंद की लटकन। मेरा देवर मेरी हाथी दाँत की चूड़ी हैं और देवरानी उसकी मजीठ ॥५॥

मेरा पुत्र घर का चांद है और मेरी पुत्र-वधू दिये की जोत।

मेरी कन्या हाथ की अँगूठी है और मेरा जामाता चमेली का फूल है ॥५॥

मेरी ननद कुसुम्भी चोली है और ननदोई गजमुक्ताओं का हार। मेरे स्वामी सिर के मुकुट और मैं उनकी सेजका श्रृंगार हूँ ॥६॥

यह सुनकर सास ने कहा—बहू ! मैं तो तुम्हारी बोल पर न्यौछावर हूँ। तू ने मेरे सारे परिवार को सुखी किया। बहू ने कहा—सासजी ! मैं तो तुम्हारी कोख पर न्यौछावर हूँ। तुमने तो अर्जुन और भीम ऐसे प्रतापी पुत्र पैदा किये हैं ॥७॥

और हे ननद ! मैं तुम्हारी गोद पर न्यौछावर हूँ। तुमने तो राम और लक्ष्मण ऐसे भाइयों को गोद में खिलाया है ॥८॥

गीत की अंतिम पंक्तियों पर ज़रा गौर से विचार कीजियेगा। यह उस समय का गीत है जब मातायें अर्जुन और भीम ऐसे पुत्र उत्पन्न करती थीं और बहनें राम और लक्ष्मण ऐसे भाइयों को गोद में खिलाती थीं। सास ने, जो बहू के नीति-युक्त व्यवहार और मधुर भाषण की प्रशंसा की है, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। बहू एक परिवार को प्रेम-बन्धन में बाँधने के लिये है, न कि फूट फैलाने के लिये, जैसा कि आजकल है। गीत के अनुसार मारवाड़ी समाज में अर्जुन और भीम की माताओं वाला और राम और लक्ष्मण को खिलाने वाली बहनों का परिवार घर-घर में होना चाहिये।

मालवी गीत

उत्तर भारत के किसानों में मालवा और गुजरात के नाम सर्वत्र व्याप्त हैं। देश में अकाल पड़े तो गृहिणी कहती है:—

तूँ पिय जइयो मालवा, हम जैबै गुजरात,

मालवा हरा-भरा और सुखी प्रांत है। उसके सुखी जीवन के हाव-भाव, कटाक्ष, हास-विलास, और दाम्पत्य जीवन के सुख-दुख सब गीतों में भी निखर आये हैं।

नमूने के तौर पर यहाँ एक गीत दिया जाता है:—

आप सस मंजे लेटदी, सानूं मारदी चक्की वल सैनतां।
साथों चक्की नहियो पिसदी,आपे पोहणगियां सहुरेदियाँजाइयां।
आपे चक्की पिस जावेगी, जदों डाँग समाँ वाली खड़के।
अद्धी राती मार पई, भन सुटियाँ मलूक जहियाँ हड्डियाँ।
नाले मुंडा मोती चुगदा, नाले पुछदा कित्थे कित्थे लगियाँ।
मेरी सुख मंग गोरिये, चढ़दे नूँ लौंग बथेरे।
तेरी सुख नहियों मँगदी, दिन चढ़दे नूँ कैद करावाँ।
पहिलों ससां नुहां मंगदियाँ, पिछों रोंदियाँ चुल्हे कोल बह के।

आप तो सास पलूंग पर लेटती है और हमें चक्की की ओर इशारे करती है।

पर हमसे चक्की न पीसी जायगी। आपही पीसती फिरेंगी ससुर की बेटिय.।

अच्छा! चक्की आप ही पीसी जाएगी, जब शाम वाली लाठी का शब्द होगा।

आधी रात को मार पड़ गई और नाजुक हड्डियां तोड़ दीं।

यह लड़का (पति) साथ-साथ मोती चुनता है, साथ-साथ पूछता है कि कहाँ-कहाँ चोट लगी है।

हे गोरी, मेरे सुख की इच्छा करो। प्रातः तुम्हें नाक का गहना बनवा दूंगा।

नहीं, तेरे सुख की इच्छा मैं क्यों करूँ। दिन चढते ही मैं उस (सास) को कैद करा दूंगी।'

पहले तो सासें बहुएं माँगती हैं और बाद में चूल्हे के पास बैठी रोती हैं।*

भीलों के गीत

भील राजपूताने की एक सुप्रसिद्ध जाति है, यह पहाड़ों और बनों में बसती है। इन्होंने ही राणा प्रताप को अकबर के साथ युद्ध करने में सहायता की थी। राजपूताने में अरावली पहाड़ से लेकर मेवाड़, सिंध, मारवाड़ तथा खानदेश, अहमदाबाद, मध्य-प्रदेश तक ये फैले हुये हैं। बंबई प्रांत के भी किसी किसी जिले में ये मिलते हैं। उत्तर प्रदेश में भी छिटके-विटके मिलते हैं; जो जंगलों में रहते हैं, और गृहस्थों के यहाँ विवाह, ब्रह्मभोज आदि उत्सवों में दोनों और पत्तलें देने का काम करते हैं।

---

*जनपद से

ये मुसहर कहलाते हैं, क्योंकि मूषक भी इनका आहार होता है। पर असली भीलों से ये बहुत दूर हो गये हैं। इनकी बोली और रहन-सहन सब में विभिन्नता आ गई है।

भील बहुत पुरानी जाति है। द्रोणाचार्य का शिष्य एकलव्य भील ही था।

भील एक वीर जाति है। तीर और धनुष इनका जातीय अस्त्र है। ये शरीर से बड़े बलवान और कष्ट-सहिष्णु होते हैं।

भील-जाति में भी जीवन के सभी प्रसंगो के लिये मन के दुःख-सुख प्रकट करने के बड़े रोचक गीत हैं। मनोभावों को व्यक्त करने की कला इनमें भी वैसा ही है, जैसी अन्य जातियों में पाई जाती है।

भीलों में कई बोलियाँ, जैसे भीलोड़ी, बागड़ी गिरासिया आदि प्रचलित हैं। इनमें मेवाड़ी, गुजराती, मालवी का भी मिश्रण मिलता है। बाँसवाड़ और डूंगरपुर में बागड़ी, कुशलगढ़, उदयपुर, और प्रतापगढ़ में भीली, भीलोड़ी और बागड़ी तीनों बोलियाँ सामान्य रूप से बोली जाती हैं। गिरासिया जोधपुर में बोली जाती है। गुजरात, मालवा और मध्य-प्रदेश में बसने वालों की बोलियों में उन प्रांतों के शब्द भी मिलजुल गये हैं:—

भीलो के दो गीत पृष्ठ १४० और १४२ पर दिये गये हैं। यहाँ एक गीत दिया जाता है :—

मारे आँगणे लेमड़ी नणदीं ने आँगणे झाड़ माजी।
धमके वाड़ुं लेमड़ी फूल घेल्याँ घेल्याँ जाय रे॥
नणदी बाईना बीरा मने सुनरी वोरीआल, माजी।
मारे जुगे सुनड़ी मारां भरियाँ जोबन जाय रे,
मारे जुगे दोरड़ो मने दोरड़ो वोरीआल रे,
नणदी बाईना बीरा मने घुघरी वोरी आलरे॥
मारे जुगे घुघुरी मारो भरियाँ जोबन जाय॥

कोई नव-वधू अपने पति से कहती है—मेरे ही आँगन में नीम लगा है; अर्थात् तुम्हारे जैसा कड़वा पति मिला है। मेरी ननद के आँगन में तो झाड़ है। मैं एकदम नीम को काट डालूंगी, जिससे वह शाखाओं-सहित फैलेगा।

हे ननद के भाई! मुझे अच्छी-सी चुनड़ी ला दो; मेरी भरी हुई जवानी जा रही है।

मुझे तोड़ा (गले में पहनने का आभूषण-विशेष) चाहिए। उसे खरीद लाओ। मेरी भरी हुई जवानी जा रही है।

हे मेरी ननद के भाई! मुझे घुघरी (आभूषण-विशेष) ला दो; मेरी भरी हुई जवानी जा रही है।

मराठी गीत

महाराष्ट्र प्रांत वीरों और विद्वानों की क्रीड़ा-भूमि है। मराठों ने कभी दिल्ली के तख्त पर भी कब्जा किया था। महाराष्ट्र में एक-से-एक बढ़कर यशस्वी कवि, आदर्श संत, चतुर राजनीतिज्ञ और गंभीर विद्वान् हुए हैं। तिलक, रानाडे और गोखले महाराष्ट्रीय ही थे। जीवितों में संत विनोबा, काका कालेलकर, देशमुख, मामा वरेरकर महाराष्ट्रीय ही हैं। महाराष्ट्र का वायु मंडल नाना प्रकार के अनुभवों का एक विशाल कोष-सा है। उसकी आभा वहाँ के ग्राम-गीतों में भी प्रस्फुटित हो रही है।

यहाँ नमूने के लिए कोंकड़ी मल्लाह का प्रेम एक गीत दिया जाता है—

चिमणा बनुन, गडे, नाचेन, ग! नाचेन, ग!
झाडाझाडावरि बसेन, ग! बसेन, ग!
साँजसकाल तुला सुमरेन, ग! सुमरेन, ग!
मचवा डुलेन, तसा डुलेन, ग! डुलेन, ग!

हलू हलू, गड़े, चढ़ेन, ग ! चढ़ेन, ग !
डोलकाठीवर बसेन, ग ! वसेन, ग !
प्रीत खरी ही बघेन, ग ! बघेन, ग !
मासा बनुन, गड़े, पोहेन, ग ! पोहन, ग !
साँजसकाल पाठि लागेग, ग ! लागेन, ग !
नालेवरती ओणविन, ग ! ओणविन, ग !
बुचड़ा बघून, खुलेन, ग ! खुलेन, ग !
चाँदणि तूँ ही चमकसि, ग ! चमकसि, ग !

तेरे लिए मैं चिड़िया बनकर, प्रत्येक वृक्ष पर बैठकर, साँझ-सवेरे तेरी याद करता रहूँगा। नाव जैसे डुलती है, वैसे ही डुलता रहूँगा। मस्तूल पर धीरे-धीरे चढ़कर, उस पर बैठकर, तेरे प्रेम का सुख अनुभव करूँगा। मछली बनकर पानी में, साँझ-सवेरे तेरे पीछे लगकर, पतवार पर झुककर, तेरे गुथे हुए बालों को देखकर, प्रसन्न होऊँगा। तू चाँदनी जैसी चमक रही है।

गुजराती गीत

गुजरात प्रांत के गीत बड़े ही सरस होते हैं। गुजरात के तन और मन दोनों सुन्दर हैं, इससे गीतों में दोनों का माधुर्य समाया हुआ मिलता है।

यहाँ दो गीत दिए जाते हैं—

(१)

लवँग केरी लाकड़िये रामे सीताने मार्यां जो।
फूल केरे दड़ूलिये सीताई वरे वारायाँ जो ॥१॥
राम ! तमारे बोलड़िये हूँ जलमाँ माछली थईश जो।
तमे थशो जो जल माँ रे माछली हूँ माछीड़ो थईश जो ॥२॥

राम ! तमारे बोलड़िये हूँ आकाश बिजळी थईश जो।
तमे थशो जो आकाश बिजळी हूँ मेहलियो थईश जो ॥३॥
राम तमारे बोलड़िये हूँ बळीने ढगलो थईश जो।
तमे थशो जो बळीने ढगलो हूँ भभूतियो थईश जो ॥४॥

हे राम ! लवंग की लकड़ी से राम ने सीता को मारा है। फूल के गेंद से सीता ने राम से बदला लिया है ॥१॥

सीता ने कहा—राम ! तुम्हारी कड़ी बोली से रूठकर मैं जल में मछली हो जाऊँगी।

राम ने कहा—तब मैं मछली पकड़नेवाला बन जाऊँगा ॥२॥

सीता ने कहा—राम ! तुम्हारी बोली से रुष्ट होकर मैं आकाश में बिजली बन जाऊँगी।

राम ने कहा—तुम बिजली बन जाओगी तो मैं मेघ बन जाऊँगा ॥३॥

सीता ने कहा—हे राम ! तुम्हारी बोली से रूठकर मैं जलकर भस्म हो जाऊँगी।

राम ने कहा—तुम जल कर भस्म हो जाओगी तो मैं भभूतिया (भस्म लगाये हुए योगी) बन जाऊँगा। अर्थात् तुम्हारा भस्म शरीर पर चुपड़ लूंगा ॥४॥

यह नव-दम्पति का प्रणय-कलह है।

(२)

मेंदी ते बावी मालवे,
एनो रंग गीओ गुजरात, मेंदी रंग लाग्यो रे।
नानो देरीडो लाडको ने,
काँई लाव्यो मेंदीनो छोड, मेंदी रंग लाग्यो रे।
वाटी घुंटीने भर्या वाटका,
भाभी रँगो तमारा हाथ, मेंदी रँग लाग्यो रे।

हाथ रँगीने देरी शुं रे करूँ,
एनो जोनारो परदेश, मेंदी रँग लाग्यो रे।
लाख टका आलुं रोकडा,
कोई जावजो दरीआ पार, मेंदी रँग लाग्यो रे।
शोक्यना सायबाने जई एटलुं के'जो,
तारी बेनी परणे घेरे आव्य, मेंदी रँग लाग्यो रे।
बेनी परणे तो भले परणे,
एनी झाझा दी' रोकजो जान, मेंदी रँग लाग्यो रे।
शोक्यना सायबाने जई एटलुं के, जो,
तारो वीरो परणे घेरे आव्य, मेंदी रँग लाग्यो रे।
वीरो परणे तो भले परणे,
एनी जाडेरी जोडजो जान, मेंदी रँग लाग्यो रे।
शोक्यना सायबाने जई एटलुं के'जो,
तारी माडी मरे घेरे आव्य, मेंदी रँग लाग्यो रे।
माडी मरे तो भले मरे,
एने बारजो बोरडी हेठ, मेंदी रँग लाग्यो रे।
शोक्यना सायबाने जई एटलुं के'जो,
तारी मानेतीनी उठी आँख, मेंदी रँग लाग्यो रे।
हालो सपाईओ हालो भाई बँधाओ,
हवे हलफे बाँधो हथीआर, मेंदी रँग लाग्यो रे।

मालवे में मेंहदी बोवाई थी, उसका रंग गुजरात में गया। मेहँदी का रंग लगा है।

छोटा देवर बहुत दुलारा था और वह कुछ मेहँदी तोड़ लाया।

उसको पीसकर उसने कटोरी भर ली और भाभी के पास आकर वह कहता है—हे भाभी! इससे तुम अपना हाथ रँग लो।

भाभी कहती है—हे देवर! हाथ रंग कर मैं क्या करूँ? उसको देखने वाला (तुम्हारा भाई) तो परदेश में है।

जो कोई दरिया पार जाय तो मैं उसको एक लाख रुपये नगद दे दूं।

सौत के पियाजी से जाकर इतना कहना कि घर पर तेरी बहन का विवाह है। इस अवसर पर तो घर आ जा।

वह परदेशी पति कहलाता है—बहन का विवाह हो, तो होने दो। उसकी बरात बहुत दिन तक रोकना।

पत्नी दूसरी बार सन्देशा भेजती है—सौत के पियाजी से जाकर इतना कहना कि घर पर तेरे भाई का विवाह है। इस अवसर पर तो घर आ जा।

वह परदेशी पति कहलाता है—भाई का विवाह होने दो, उसकी बरात बहुत बड़ी निकालना।

पत्नी तीसरी बार कहलाती है—सौत के पियाजी से इतना कहना कि घर पर तेरी माता मर रही है। अब तो तू घर पर आ जा।

परदेशी पति कहलाता है—माँ मरे तो मरने दो; उसको बेर के वृक्ष के नीचे जलाना।

अब पत्नी आखिर का संदेशा जो वास्तव में उपरोक्त संदेशों की तरह झूठा ही था, भेजती है—सौत के पियाजी से जाकर इतना कहना कि घर पर तेरी दुलारी की आँखें दुःख रही हैं, अब तो घर आ जा।

यह आखिर का संदेशा सुनकर परदेशी पति से नहीं रहा जाता। वह अपने नौकरों और मित्रों को जल्दी से घर की ओर जाने के लिए शस्त्रास्त्र सजाकर तैयार हो जाने का हुक्म देता है।

कन्नड़ गीत

कन्नड़ दक्षिण भारत की एक साहित्य-सम्पन्न भाषा है। यह मैसूर राज्य के दस जिलों में तथा मद्रास, बंबई, हैदराबाद और कुर्ग में भी बोली जाती है। इसमें भी अन्य प्रान्तों की तरह सुन्दर और सरस ग्रामगीत मिलते हैं।

नमूने के लिये यहां एक गीत दिया जाता है :—

कप्पु हेंड़तियेंदु करकरि माड़व्याड़।
नेरलद हण्णु अनि कप्पु इद्दरु।
तिंदु नोड़िदर रुचि भाळ ॥१॥
केंपु हेंड़तियेंदु संतोष पड़व्याड़।
अत्तीय हण्णु अति केंपु इद्दरु।
ओड़ेदु नोड़िदर हुळ भाळ ॥२॥

पत्नी काली है, ऐसा कहकर दुःखी मत बनो। जामुन का फल बिल्कुल काला होता है; तो भी खाने पर बिलकुल स्वादिष्ट लगेगा ॥१॥

पत्नी गोरी है, इससे हर्षित मत हो। गूलर का फल अत्यंत लाल होता है; पर खोलकर देखो, उसमें कीड़े अधिक होंगे ॥२॥*

मलयाली गीत

यह भाषा कोचीन और ट्रावन्कोर, मालाबार में बोली जाती है। इस प्रदेश को केरल भी कहते हैं।

राम और कृष्ण के गीत सारे भारत की भाषाओं और बोलियों में, शिक्षित और अशिक्षित सभी प्रकार की जनता में, सर्वत्र पाये जाते हैं। यह वह तागा है, जिसमें समूची हिन्दू-जाति, रूप-रंग वेष-भूषा और जाति-

---

*प्रेषक और हिन्दी-अनुवादक श्री गुरुनाथ जोशी, धारवाड़।

पाँति का भेद रखते हुये भी एक साथ पिरोई हुई है और एक सुन्दर-सी माला बन गई है।

केरल बहुत सुन्दर प्रदेश कहा जाता है। वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों पर महात्मा गाँधी भी मुग्ध हो गये थे। प्रकृति का वाह्य सौन्दर्य वहाँ के निवासियों के हृदयों में भी समा गया है; और वह गीतों-द्वारा घर-घर में प्रवाहित हो रहा है।

केरल की पाणन नाम की एक जाति के गरीब लोग बाजों के साथ गीत गा-गाकर भीख माँगते फिरते हैं। गीत ज्यादातर भगवद्भक्ति से ओत-प्रोत होते हैं। उनमें से एक गीत यहाँ दिया जाता है।

उत्तर केरल में उण्णियार्चा नामक एक वीरांगना थी। उसके बारे में बहुत से गीत मिलते हैं। उण्णियार्चा एक दिन गाँव के मंदिर में मेला देखने गई। उस समय उसने जो सिंगार किया, उसका वर्णन नीचे के गीत में मिलता है:—

चन्दनक्कल्लिटे अरिकें चेन्नु,
चन्दन मुरसिक्कुरि वरच्चु;
कण्णाटि नोक्किक्तिळकं तोट्टु
पीळीत्तिरुमुटि केट्टिवेच्चु
अञ्जनं कोंटवर् कण्णेषुति
कुंकुमम् कोंटवळ पोट्टुकुत्ति
कस्तूरि कलभंञ्ञळ् पूशुन्नुंटे
मेय्यलभरणप्पेट्टि तुरन्नुवेच्चे;
एषु कटलोटि वन्न पट्टु,
पच्चोळप्पट्टु चुळियुम् तीर्त्ते
पूम्कुलं ञ्ञेरिवच्चुटुक्कुन्नुंटे
पोन् तोटयेटुत्तु चमयुन्नुंटे;
कोदृं पटि वेच्च पोन्नरञ्ञाण

मीते अषकिन्नु पूट्टुन्नुंटे
एषु चुट्टुल्ळोरु पोन्मालयुम्—
मुत्तु पतिच्चुल्ळ मालयल्लो
कषुत्तिल तन्नेयुम् चेर्त्तणिञ्ञु;
रामायणम् कोत्तिच्च रंटु वळ
एल्लामेटुत्तिट्टणियुन्नुटे;
पोनमुटि तन्नेयुम् चूटुन्नुंटे;
चमयंङ्ङळोक्के च्चमञ्ञोरुंडी
कैविरल्कारिळुम् पोनमोति रम
चेर्चयोटंङ्ङु अणियुन्नुटे;
उरुमि एटुत्तु अरयिळप्पूट्टि

उसने चंदन घिसकर माथे पर तिलक लगाया; दर्पण देखकर तिलक लगाया; सुंदर बालों को सँवारा; आँखों में अंजन लगाया, कुंकुम का तिलक लगाया; शरीर पर अंगराग लेपन किया; गहनों की पेटी खोल रक्खी; सात समुद्र पार से आया हरे रेशम की धोती निकाली; उसे खोलकर साफ किया; आँचल को पुष्पाकार बनाकर उसे पहन लिया; कानों में सोने के तोडे (एक गहना) पहने; सात लडोंवाली सोने की माला गले मे डाली; मोती-जड़ी हुई और एक माला धारण किया; हाथों में राम-नाम खुदे हुए कंकण पहन लिये, छःओ अँगलियों में अँगूठियाँ पहन लीः सब प्रकार से अपना सिंगार किया; और अंत में अपनी खास कटार भी लेकर कमर में बाँध ली।

रास्ते में कुछ गुण्डों ने उसे घेर लिया। उसका पति, जो साथ था, चूहे की तरह थरथराने लगा। तब उण्णियार्चा ने अपने पति से कहा—

पेण्णाय ञानुं विरक्कुन्निल्ळ
आणाय निङ्ङळ विरक्कुन्नेंते ?

अबला होकर भी मैं विचलित नहीं हूँ। आप पुरुष होकर भी क्यों काँप रहे हैं?

फिर उसने आगे जाकर गुंडों का सामना किया——

अरयुम् तलयुमुरप्पिक्कुन्नु,
अरयिन्नुरुमियेटुत्तवलम्
ननमुंटु नन्नायरयिळ् केट्टि
नेरिट्ट निन्नल्ळो पेण्किटावुम्
अरिशं चोटिच्चु परञ्ञु पेण्णुम्
आणुं पेण्णल्ळात्त कय्यम्मारे!
एन्नोटोराश निंङ्ळक्कुंटतेंकि—
ळेन्नुटे कय्युं पिटिच्चु कोळ्विन्
एरिय दूषणं चोल्ळियार्च;
आलिल पोले विर नुटंङ्ङी
अंकक्कलि कोंटु निन्नवळुम्
अटियीन्नु मुटियोळं विरच्चु पोयि
एन्नाळो नोक्कित्तटुत्तु कोळ्क
पकु-ति तिरिञ्ञोन्नु निन्नु पेण्णुम
अञ्ञूरुं मुन्नुरुं वीणु पेण्णुम्
रंटामतोन्नु परिञ्ञावळुम्
पतिनेट्टाळे करत्तिळ् वेक्कुन्नटु
तोटुवोर् कळर्येकरं वन्नुवल्ळो।

उसने सिर और कमर कस लिया; कमर से कटार निकाल लिया; अँगोछा कमर पर अच्छी तरह बाँध लिया; और गुंडो के सामने जाकर वह क्रोध भरी आवाज में बोली—अरे नपुंसक कायरो! तुम्हें मेरी आशा हो तो, जिसे हिम्मत हो, आकर मेरा हाथ पकड़ ले। बोलते-बोलते वह क्रोध से

पत्ते के समान काँपने लगी। फिर उसने युद्ध के अनेक पैंतरे बदले; युद्ध-मद से वह पागल-सी हो गयी; शत्रुओं को धमकी दी; और एकदम अठारह आदिमियों को अपने हाथ से परास्त कर दिया।*

तमिल गीत

तमिलनाड भारत का दक्षिणी प्रान्त है। तमिल बिल्कुल स्वतंत्र भाषा है। उसका जन्म संस्कृत से नहीं हुआ है; पर संस्कृति उसकी भारतीय है।

तमिल के गीत भी वैसे ही सुन्दर हैं, जैसे अन्य प्रान्तीय भाषाओं के हैं। उनका उच्चारण जरूर विषम है; पर हरएक शब्द से रस टपकता है।

यहाँ दो गीत दिए जाते हैं:—

(१)

अरिशि इरुक् कुदु परपिरु कुदु
अडुप्पुक् किल्लादु शंगड़म ॥१॥
कात्तडिक्कुदु तूल पर क्कुदु
कद विल्लाद शंगड़म ॥२॥
पेण्जादि वंदु मुन्ने निर किरान्न
पुडोवै इल्लाद शंगड़म ॥३॥
दाशन वंदु वाशलिल निर किरान
काशु इल्लाद शंगड़म ॥४॥

चावल है, दाल है, चूल्हा नहीं है, यह कठिनाई है ॥१॥
हवा चल रही है, धूल उड़ रही है, किवाड़ नहीं, यह कठिनाई है ॥२॥
स्त्री आकर सामने खड़ी है; साड़ी नहीं है, यह कठिनाई है ॥३॥
भिखमंगा दरवाजे पर खड़ा है; अधेला नहीं है, यह कठिनाई है ॥४॥

---

*प्रेषक और हिन्दी-अनुवादक श्री ए० चन्द्रहासन, एम० ए०, एरनाकुलम्।

(२)

गीतों ने श्मशान तक मनुष्य का साथ नहीं छोड़ा है। माता के शव को चिता पर चढ़ाते समय वहां यहाँ गीत गाया जाता है—

ऐ रेण्डु तिंगला अङ्गमेला नोन्दु पेट्रुरु।
पैयलेण्ट पोदे परिन्देडुत्तु चेय्य इयु॥
कैप्पुरत्तिलेन्दी कलशप्पाल तन्दालै।
एप्पिरप्पिल काण्बेन इनि॥

दस महीने पेट में रखकर, बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाकर, जच्चाखाने में 'बच्चा पैदा हुआ' यह बात औरों से सुनकर और तुरन्त प्रेम से हाथ में लेकर जिस माता ने स्तन-घट से दूध पिलाया था, उस प्रेम-मूर्ति माता को आगे मैं किस जन्म में देखूंगा?

वट्टिलिलुँ तोट्टिलिलुँ मारमेलुँ तोलमेलुँ।
कट्टिलिलुँ वैत्तु एन्नै कादलितुमूट्ट॥
शिहिलिट्टुक्काप्पारिर शीशट्टुँ ताय्यको।
विरहिलिट्टु त्तीयुमूट्टुवेन?॥

झूले में, पालने में, छाती पर, कन्धे पर या खाट पर सुलाकर लाड़-प्यार से थपकियाँ दे-देकर, जिसने मुझे सदा सुख दिया, और गोद में उठा कर तमाशा दिखाया, क्या उस माता को चिता पर जलाऊँ?

तेलुगु गीत

आन्ध्र देश की भाषा तेलुगु है। यह भाषा प्रेम के गीतों से लसी हुई है। राह चलते हुए स्त्री-पुरुष गाते चलते हैं—

एटुवंटि मोह मो कानि ओ एलनाग इंतित अनग रादे।
मटु माय दैवमी मनसु देलियग लेक मनल नेड़ बापे
नय्यो—ओ मगुवा॥

कलिकि निन्नेड़ बासिनदि मोदलु नीरूपु कनुल कट्टिनटुलुंडुने।
चेलिय ने नोकटि दलचेद नन्न नीसेयु चेलिमि तलपै
युंडुने ॥
सोलसि ने नेमैन ब्राय नीयाकार शोभन मै कनुपिंचुने।
पिलिचि पेरुन नो कटि बिलुव बोलचिन नीदु पेरु मुंदुग
दोचुने—ओ मगुवा ॥

हे सुन्दरि! तुम पर यह मेरा कैसा अनोखा मोह है, जिसका पारावार नहीं। जब से तुम्हारा वियोग हुआ है, जिसको देखता हूँ, वही तुम्हारा रूप बन जाता है। चित्त में जिसका विचार करता हूँ, वही तुम्हारे प्रेम का विचार बन जाता है। जो कुछ मैं लिखता हूँ, वही तुम्हारा सुन्दर आकार प्रतीत होता है। नाम लेकर किसी को बुलाने लगता हूँ, तो मुँह से तुम्हारा ही नाम निकल पड़ता है।

ओड़िआ गीत

ओड़ीशा प्रांत भारत के पूर्वी समुद्र-तट पर है। इस प्रांत ने शासन के बहुत-से उथल-पथल देखे हैं। इससे ग्राम-गीतों में भी हीरे की तरह पहलें निकल आई हैं और हरएक रसके मधुर गीत पाये जाते हैं।

यहाँ श्री देवेन्द्र सत्यार्थीजी की पुस्तक 'बेला फूले आधी रात' (पृष्ठ १२८) में प्रकाशित एक बड़े गीत का एक अंश नमूने के तौर पर दिया जाता है:—

राम लइखण-दुइ गोनी-भाइ
दुइ भाइ किणिले जे कपिळा-गाई
लइखणक गाई बेशि-क्षीर-देला
रामंक गाई-र क्षीर-शुखी गला
कांदुछंति सीता ठा-कुराणी हे...हळि-आ ॥१॥

कि बुद्धि करिबे से . . .
आणि ले लइखण अयोध्या पुरी कु,
गोटिए कपिळा गाई मो राम रे
ताहा देखि सीता रामंकु कहिले,
आणि बाकु से परि गाई मो राम रे
से परि गाई कुआड़े न पाइले
खोजि खोजि राम होइलेणि बाई मो राम रे
एहा जाणि सीता कांदि बाकु लागिले
झुरु वस्सी थाइ भात पकाइ मो राम रे
एहा जाणि लइखण सीतांकु कहिले
कांहि कि कांदु छ छार कथा पांइ मो राम र
रामंक पांइ ए देह धरिलि
तुम्भरि पांइ आणिछि ए गाई मो राम रे ।

राम और लक्ष्मण दो भाई थे। दोनों भाइयों ने दो कपिला गायें खरीदीं। लक्ष्मण की गाय अधिक दूध देती थी। राम की गाय का दूध सूख गया। हे किसान! सीताठकुराणी रो रही है। बेचारी क्या करे? लक्ष्मण अयोध्या से एक कपिला गाय ले आये। उसे देखकर सीता ने राम से कहा—मेरे लिए भी ऐसी ही एक गाय ला दो, मेरे राम!—वैसी गाय कहीं भी न मिली। राम खोज-खोजकरके थक गये। यह जानकर सीताजी रोने लगीं; भात फेंककर वे उदास हो गईं। यह जानकर लक्ष्मण ने सीता से कहा—जरा-सी बात के लिए क्यों रोती हो? मैंने यह शरीर राम की सेवा के लिए ही धारण किया है। तुम्हारे लिए ही मैं यह गाय लाया हूँ।

बुंदेलखंडी गीत

बुंदेलखंडी हिन्दी का क्षेत्र हमीरपुर, झाँसी, जालौन, बाँदा, ग्वालियर का कुछ भाग, भूपाल, ओरछा, सागर, नृसिंहपुर, सिउनी, होशंगावाद तथा मिश्रित रूप में दतिया, पन्ना, छतरपुर, चरखारी, दमोह, बालाघाट छिँदवाड़ा का कुछ भाग, तथा टीकमगढ़, अजयगढ़, समथर और ओरछा तक सीमित है। इस क्षेत्र में बड़े-बड़े योद्धा, शासक, कवि, आचार्य और कलाविद् हुए हैं। बुंदेलखंडी ग्राम-गीतों का माधुर्य भारत की किसी भाषा के गीत से कम नही है। इसमें स्त्री-पुरुष के जीवन के प्रत्येक क्षण के गीत सरस शब्दों और भावोत्तेजक लयों में मिलते हैं।

यहां नमूने के तौर पर कुछ गीत दिये जाते हैं—

(१)

नजर भर हेरत, काये नइयाँ ?
हम तौ राजा-पिया बन की हिरनियाँ
तुम ठाकुर के लरिका, तुपक तीर मारत काये नइयाँ ।।
हम तौ राजा-पिया जल की मछरिया
तुम ढीमर के लरिका, झमक जाल डारत काये नइयाँ ।

हे मेरे राजा-पिया ! मुझे आँख भरकर देखते क्यों नहीं ? मैं तो बन की हिरनी हूँ; तुम ठाकुर के लड़के हो, तोप और तीर से मेरा शिकार क्यों नहीं कर लेते ?

हे राजा-पिया ! मैं तो जल की मछली हूँ; तुम मल्लाह के लड़के हो, झटपट जाल डालकर मुझे फँसा क्यों नहीं लेते ?

(२)

अकती

अकती खेलन कैसे जाउँरी,
बर तरें मेले लिबउआ।

पैले लिबउआ मोरे नउआ री आये,
नउआ के सगै नइँ जाउँरी।
बर तरै मेले लिबउआ ॥१॥
दूजे लिबउआ मोरे बमना री आये,
बमना के सँगै नइँ जाउँरी।
बर तरै मेले लिबउआ ॥२॥
तीजे लिबउआ मोरे ससुराजी आये,
ससुरा के सँगै नइँ जाउँरी॥
बर तरै मेले लिबउआ ॥३॥
चौथे लिबउआ मोरे देउराजी आये,
देउरा के सँगै नइँ जाउँरी।
बर तरै मेले लिबउआ ॥४॥
पाँचयँ लिबउआ मोरे जेठा री आये,
जेठा के सगै नइँ जाउँरी।
बर तरै मेले लिबउआ ॥५॥
छटये लिबउआ मोरे राजा जू आये,
राजा के सँगै भली जाउँरी।
बर तरै मेले लिबउआ ॥६॥*

मैं अकेली खेलने कैसे जाऊँ? बड, वृक्ष के नीचे मुझे लिवा ले जाने वाले ठहरे हैं।

लिवा ले जाने को पहले नाई आया। नाई के साथ मैं नही जाऊँगी ॥१॥

दूसरी बार ब्राह्मण आया। ब्राह्मण के साथ भी मैं नही जाऊँगी ॥२॥

*गीत 'सारथी' (नागपुर) में प्रकाशित श्री गौरीशंकर द्विवेदी के एक लेख से लिए गये हैं। [नागपुर]

तीसरी बार मेरे ससुर जी आये। मैं ससुरजी के भी साथ नहीं जाऊँगी ॥३॥

चौथी बार देवरजी आये। मैं देवर जी के साथ भी नहीं जाऊँगी ॥४॥

पाँचवी बार मेरे जेठजी आये। मैं जेठजी के साथ भी नहीं जाऊँगी ॥५॥

छठीं बार तो मेरे राजाजी ही आ गये। उनके साथ तो मैं चली ही जाऊँगी ॥६॥

मुन्डा गीत

मुन्डा जंगलों में बसनेवाली एक जाति है। मुंडालोग पश्चिमी बंगाल, बिहार की दक्षिणी पहाड़ियों, उडीसा के कुछ जंगलों, मध्य-भारत तथा मध्य-प्रदेश की सीमा पर, नेपाल के कुछ भागों, उत्तर प्रदेश के उत्तर की कुछ तराइयों और मद्रास के गंजाम जिले में बसते। हैं इन्हें पहले कोल भी कहते थे।

जंगल में निवास करने के कारण ये हमारे सभ्य-समाज की अपेक्षा प्रकृति के अधिक निकट रहते हैं; इससे इनके ग्रामगीतों में प्रकृति का भी संम्मिश्रण यथेष्ट पाया जाता है। पुरुष-स्त्री, बालक-वृद्ध सबके प्रेम, करुण, विरह, हास्य, प्रणय-कलह आदि के उद्गार वैसे ही सरस और मनोहर हैं, जैसे हमारे।

नमूने के तौर पर यहाँ एक गीत दिया जाता है।—

(१)

बुरु रेभाचिरे टिकुरारे मा
काजि तेगे होइँ आयुम मेया
गाड़ा रेभाचिरे जोबेला रेभा
बांकड़ां तेगे होइँ आतेन मेया
काजि तेगे होइँ आयुम मेया
गति लेका होइँ आयुम मेया

बांकड़ां तेगे होइँ आतेन मेया
सोगोती लेका होइँ आतेन मेया
सोगोती लेका होइँ अयुम मेया
एला रे गतिरेलँ जगर कोआ
पिरित लेका होइँ आतेन मेया
एला रे सांगाइँ रेलँ लापन्दा कोआ ।
एला रे गति रेलँ जगर कोआ
गाती सोगोतिलं जगर कोआ
एला रे सांगाइँ एलँ लापन्दा कोआ
हिरिती पिरीतिलं लापन्दा कोआ

हे प्रिय ! तुम पहाड़ पर हो या किसी टीले पर हो। (वहां से केवल) तुम्हारी आवाज ही सुनाई देती है।

हे प्रिय, तुम नदी में हो या किसी तराई (दलदल) में हो। (वह से केवल) बात ही सुनाई देती है।

(तुम्हारी) आवाज जो सुनाई देती है, उससे तो तुम प्रियतम के समान जान पड़ते हो। (तुम्हारी) बातचीत जो सुनाई देती है (उससे) तुम प्रिय के ऐसे जान पड़ते हो।

तुम प्रियतम ऐसे सुनाई देते हो (सो) प्रिय! आओ हमलोग बातचीत करें।

तुम प्रिय-ऐसे जान पड़ते हो, (सो) हे; प्रिय! आओ हम लोग हँसे-बोलें।

आओ प्रिय ! हम लोग प्रिया और प्रियतम की तरह प्रेम की बातें करें।

आओ प्रिय ! हम लोग प्रिया और प्रियतम की तरह हँसे बोलें।

संथाली गीत

बिहार-प्रांत के संथाल-परगना, हजारीबाग, सिंहभूम और मानभूम जिलों के जंगलों और पहाड़ों में संथाल-जाति बसी हुई है। मध्य-प्रदेश, बंगाल और उड़ीसा में भी संथाल मिलते हैं।

संथाली गीत बड़े सरस और काव्यमय होते हैं। गरीब से गरीब संथाली भी हमेशा हँसता हुआ मिलेगा, और गीत तो उनके जीवन के अंग ही हैं।

यहाँ नमूने के तौर उनका एक गीत दिया जाता है—

जिवी ताहेन मोर

(जब तक प्राण है)

जिवी ताहेन मोर रोड़ आञ लान्दायाञ
जिवी ताहेन मोर हँसी खेलाय
जिवीए दाड़ रे मा इङ गाञो रागा
हायरे सोनेर दिही जिवी बारसा ॥१॥
धरती रे ताहेन मोर धरती दुण्डाङ मोर
रोड़ आन गिञ नायोञ लान्दावान गे
रोड़ लान्दा दो गो सोंगे तेञ निदी
तोराय नायोगो
ञ्तुम दोगो नायो ताहेन गितिञ ॥२॥
रासी मा बस्ती दोला मा पे टोला
तोकोय कानतापेमाय मान्दाड़िया ?
लाटिच कातेय ताड़ामा तियार कातेय
हिलाउक आ
उनी कान गेतालेयाय मान्दाड़िया ॥३॥
गाडाय राकाषू कोड़ा होड़ मोम लाड़ाव
कुल्हीम बोलोक कोड़ा दा बीसः लाड़ाव
उमिन माराङ रासका मेनाकताम खान
मोने रे मन मोर तुम्दाक रुइमे ॥४॥
आले बोयहा दो आड़ीलो सांगेआ
जोतो बोयहागे तुम्दाक टामाक

जोमोक लेरूया जोमोक ले सेरेञा
हो बोर आकान गिदराम दोड़ो केया ॥५॥
माँडवा लातार रे छामड़ा लातार रे
आड़ी जोमोक दो आलीम रूया
नायोय ञोञो लकान बाबाय ञोञो लेकान
जुरीय ञोञो लकान खिड़की दुआर ॥६॥
गाड़ा आड़े रे आन नाक हारे
ढिप चुह चेंणेंए राराक् कान
इञा दाञा मेन एदा गाति गेय गोगोलकान
हाय रे ढिप चुई चेंणेंम एड़े किदि ॥७॥
आतो होड़ तालारे दिसिम होड़ ताला रे
बुन्दी किदि तिरीम बुदी किदि
बुन्दी दो रे तिरिम बुन्दी किदि
दाना पानी तिरी लागावामा ॥८॥
मोणें बरु पारोम रे
मोणों जोड़ रितियो साडे काना
मोणे गेले गिदरा काते चेत वाञ
चेकावाकान
हारा गोदोक लेकाञा नाइकाड एत् कान ॥९॥

जबतक प्राण हैं, बोल लूं, हँस लूं। जबतक प्राण हैं तभी तक हँसना-खेलना है। प्राण निकल जाने पर मेरी माँ रोएगी। हाय रे! सोने की देह प्राणों के भरोसे पर है ॥१॥

जबतक धरती पर रहू, जबतक धरती पर चलूं-फिरूँ, बोल लूं, मा,! हस लूं, बोलना और हँसना तो मा! मैं साथ लेता जाऊँगा। मेरा नाम, मा! यह रह जाएगा ॥२॥

बड़ी बस्ती है, तीन हैं टोले। तुम लोगों का कौन है मांदर बजानेवाला? जो तनकर चलता है, बाहें फैलाकर नाचता है। वही है हम लोगों का मांदर बजानेवाला ॥३॥

युवक, तुम नदी से उठते हो, देह हिलाते हो। युवक, तुम गली में घुसते हो तो कन्धा हिलाते हो। तुम में रसिकता इतनी अधिक है तो जी भरकर मांदर क्यों नहीं बजाते? ॥४॥

हम लोग हैं कई भाई, हरेक का है अपना नगाड़ा। हम जमकर बजाते हैं; जमकर गाते हैं तू सुनती तो गोद का बच्चा रख देती ॥५॥

मण्डप के नीचे, छावनी के नीचे जमकर मांदर न बजाया करो, मा देखती है, पिता देखता है, प्रियतम खिड़की से देखता है ॥६॥

नदी के किनारे है आसन का पेड़, उस पर 'दिपचू' पक्षी बोल रहा है मैंने समझा, मेरा प्रियतम सीटी मार रहा है। वाह रे दिपचू! तूने बहुत छकाया ॥७॥

गाँव के लोगों के बीच, देश के लोगों के बीच, तुमने मेरी माँग भर दी, प्रिय, म ग भर दी, दाना-पानी देना पड़ेगा, प्रियतम! ॥८॥

प.च पहाड़ों के उस पार प च जोड़ ब सुरी बजती है, प च बच्चों की मा हू तो क्या? मुझे तो लगता है अभी उठती जवानी है ॥९॥*

बँगला गीत

[illegible] भावुकता का अक्षय स्रोत है। वहाँ बाहर-भीतर सर्वत्र भावों के मधु स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं। बँगला-ग्राम-गीतों में भी वह पूरे वेग से प्रवाहित है। उनमें प्रेम, शृंगार, विरह, हास्य, करुणा, भक्ति आदि सभी रसों के गीत मिलते हैं और समाज में नीचे से लेकर ऊपर तक समान रूप से व्याप्त है।

नमूने के तौर पर यहाँ एक गीत दिया जाता है :—

---

*श्री वेन्द्र [illegible] के एक लेख से।

निशीथे-जाइयो फुल बने, हे भ्रमरा,
निशीथे-जाइयो फुल बने।
जालाए चाँदेर बाती—जेगे रब सारा राती गो
कइओ कथा शिशिरे रो शने, हे भ्रमरा,
निशीथे जाइयो फुल बने। ??
यदि बा घुमाये पड़ि, शयनेरो पथ धरियो
नीरव चरणे जाइयो, हे भ्रमरा ! निशीथे जाइयो फुल बने।
तोमार गगन जेन भाँगेना—आमार गान जेन भाँगेना,
फुलेर घुम जेन भाँगेना, निशीथे जाइयो फुल बने, हे भ्रमरा !

हे भौंरा ! आधीरात को फूलों के वन में जाना।

चाँद की बत्ती जलाकर मैं सारी रात जागती रहूँगी। ओस की बूंदों से बात करती जाऊँगी।

तुम आधी रात को फूलों के वन में जाना।

यदि मैं सो जाऊँ, तो स्वप्नों के पथ पर चल पड़ूँगी; तुम नीरव चरणों के साथ आना।

तुम्हारा गान थमने न पाये; मेरी नींद टूटने न पाये; फूलों की नींद टूटने न पाये। आधीरात को फूलों के बन में दर्शन देना, हे भौंरा !

असमीया गीत

असम प्रांत भारत की उत्तर पूर्वी सीमा पर है। असमीया भाषा के गीत बड़े ही मधुर और प्रेम-रसा से सरबोर होते हैं। नमूने के तौर पर यहाँ गीतों के तीन-चार सरस टुकड़े दिये जाते हैं:—

(१)

हाहे होइ परिम गोइ तोमारे पुखुरीत;
पारो होइ परिमोगोइ छालत।
घामे होइ सोमामगोइ तोमारे शरीरत;
माखी होई चु मदिम गालत॥

माछ होई सातुरिम तोमारे योवनत;
कासो होई वगामो गोइ पारत।
चौराइ होइ जपियम तोमार डालिम गाछर;
कूंहीं कूँहि पाटरे आरत॥

मैं हंस बनकर तेरे तालाब में तैरूँगा। कबूतर बनकर (तेरे) छत पर बैठ जाऊँगा। पसीना बनकर तेरे शरीर में समा जाऊँगा। मक्खी बन कर (तेरे) गाल का चुम्बन ले लूँगा।

मैं तेरे यौवन में मछली बनकर तैरूँगा। कच्छू बनकर उस पार चला जाऊँगा। पक्षी बनकर तेरी डाल पर उन पत्तों पर जो बहुत चिकने हैं, कूदूंगा।

(२)

घरतो न परे मन समनिया पथारतो न परे मन।
कमोवा तुलाबोर जेनेकोई उरिछे तेनेकोइ उरिबर मन॥

प्यारी! मेरा मन न घर में सन्तुष्ट है न खेत में; वह जिस तरह धुनी हुई रूई उड़ती फिरती हो, उसी तरह मेरा मन उड़ रहा है।

(३)

नोई देखि लागिले, पानीरे पियाहटि;
नोमाक देखि लागिले दया।
हाटर कटा टामूल, हाटत मरोहिले;
नहला निजरे गय॥

नदी देखकर पानी की प्यास मालूम होती है। तुझे देखकर प्रेम की प्यास लगती है। मेरे हाथ का पान हाथ ही में सूखा जा रहा है। क्या तुम मेरी अपनी नहीं हो?

(४)

धनशिरी भेटीले जेङ्के जावरे;
सुवनशिरी भेटीले कोने ?
भाङा खोलाकुट कुमारे गढ़िले
यौवन गढ़ि दिले कोने ?

धनशिरी नदी में कूड़े करकटों से बाँध बना हुआ है; सुवन शिरी को किसने बाँधा ? बरतनों के टूटे हुये टुकड़े को कुम्हार ने बनाया था। इस यौवन को किसने बनाया है ?

मैथिली गीत

मैथिली बिहार के मुजफ्फरपुर, दरभंगा, भागलपुर, सहरसा, मुँगेर और पूर्णिया जिलों की लोक-भाषा है। इसके पूर्व में बँगला, पश्चिम में भोजपुरी, उत्तर में ने ाली और दक्षिण में मगही बोली जाती है। यह जिस भू-भाग में बोली जाती है, उसका पुराना नाम मिथिला है उसे तिरहुत भी कहते है।

मैथिली भाषा हिन्दी से मिलती-जुलती है। इसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है।

मैथिली के कुछ गीत नमूने के तौर पर यहां दिये जाते हैं:—

(१)

बेरि बेरि बरजइ दीनानाथ हे बाबा हे तिरिया जनम जनि देहु।१।
तिरिया जनम जब देहु हे दीनानाथ बाबा हे सुरति बहुत जनि देहु।
सुरति बहुत जब देहु हे दीनानाथ बाबा हे पुरुख अमरुख जनि देहु।२।
पुरुख अमरुख जब देहु हे दीनानाथ बाबा हे कोखिया बिहुन जनि देहु।
कोखिया बिहुन जब देहु हे दीनानाथ बाबा हे सौतिन सउत जनि देहु।।३।।

हे सूर्य भगवान्! मैंने बार-बार रोका कि मुझे स्त्री का जन्म मत दो ॥१॥

स्त्री का जन्म दो तो बहुत सुन्दर मत बनाओ। बहुत सुन्दर ही बनाओ तो क्रोधी पति न दो ॥२॥

यदि क्रोधी पति ही दो, तो बाँझ मत बनाओ। बाँझ ही बनाना हो, तो सौत मत दो ॥३॥

(२)

हे भोला बाबा केहन कयलौं दीन ॥१॥
खेती पथारी भोला से हो लेला छीन ॥
भाई सहोदर से हो भे गेल भीन ॥२॥
घर में न खरची बाहर न मिले रीन।
गाँव के मालिक न पड़ै दइय नीन ॥३॥
एके गो लोटा छलइ भाइ भेलइ तीन।
पनिया पिवइत काल होइय छीनाछीन ॥४॥
एके गो बैल बच गेल महाजन लेलक रीन।
कर कुटुम्ब सब भेलइ परभीन ॥५॥

हे भोलानाथ! तु ने मुझे कैसा गरीब बना दिया ॥१॥

थोड़ी सी खेती-बाड़ी थी, उसे भी तुमने छीन लिया। सगे भाई थे, वे भी अलग हो गये ॥२॥

न घर में खर्ची है, न बाहर ऋण मिलता है। गाँव का जमींदार रात में सोने भी नहीं देता ॥३॥

एक ही लोटा है, और तीन भाई हैं। पानी पीने के समय छीना-छीनी होती है ॥४॥

एक ही बैल बचा था, उसे भी महाजन ने कर्जे में ले लिया है। हित मित्र कुटुम्बी सभी पराये हो गये हैं ॥५॥

(३)

बाईं आँख मोर फरके रे ननदी, पिया आजु आयथिन।
कितनौ सँवारौं माथे क बेनी, बार बार सखि खसके,
हे ननदी, पिया आजु आयथिन।।
खुलि खुलि जाइ बन्द अँगिया क, सिर क सारी सरके,
हे ननदी, पिया आजु आयथिन।।

हे ननद! आज मेरी बाईं आँख फड़क रही है। आज मेरे प्रियतम आयेंगे।

मै माथे की वेणी (चोटी) कितना ही सँवारती हूँ, पर वह बारबार खुल जाती है। हे ननद! मेरे प्रियतम आज आयेंगे।

मेरी चोली के बंद रह-रहकर खुल जाते हैं और सिर की साड़ी सरक जाती है। हे ननद! आज मेरे प्रियतम आयेंगे।

भोजपुरी गीत

भोजपुरी और अवधी भाषाओं में बहुत कम अंतर है। दोनों में गीत भी करीब-करीब एक-से मिलते हैं। कुछ स्थानीय नामों में अंतर है और कुछ उच्चारण में भेद है।

भोजपुरी बनारस, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, जौनपुर का पूर्वी भाग, बस्ती, आजमगढ़, शाहाबाद, चम्पारन, सारन और छोटा नागपुर के कुछ भागों में बोली जाती है।

पश्चिम प्रांत के गीतों से पूर्वी गीतों में मिठास अधिक होती है। जान पड़ता है, पूर्व के निवासियों ने प्रेम, विरह, स्नेह, दया आदि कोमल गुणों के प्रभाव का अनुभव बड़ी गहराई से किया है।

यहाँ नमूने के तौर पर भोजपुरी का एक गीत दिया जाता है:—

ऊँचहि घरवा के ऊँचि रे अटारि,
ताहि बैठी रुपादेवी झारे लम्बी केस ॥१॥
का तुहू रूपा बेटी झारे लांबी केस,
तोर स्वामी जूझल बाड़े गइया की गोहारि ॥२॥
हाथ केरी ककही हाथहि रहि जाय,
सीर के सेनुरवा दईव हर ले जाय ॥३॥
सभवा बइठल तुहू बाबा हो हमार,
बीता एक जगहिआ बाबा हमरा के दान ॥४॥
बीता एक जगहिया रुपवा तोहि बलिहारि,
लेइ आव कयथवा रुपवा लेहु ना नापाइ ॥५॥
मचिया बइठलि तुहू मइया हो हमार,
लहरा पटोरवा अम्मा हमरा के दान ॥६॥
लहरा पटोरवा रुपवा तोहि वलिहारि,
लेइ आव बजजवा रुपवा लेहु ना फराय ॥७॥
पसवा खेलत तुहू भैया हो हमार,
चन्दन चइलिया भैया हमरा के दान ॥८॥
चन्दन चइलिया रुपवा तोहि बलिहारि,
लेइ आव बढ़इया रुपवा लेहु ना चिराय ।९
भाड़ारा पइसलि तुहू भउजी हमारि,
अवध सिन्हरवा भउजी हमरा के दान ॥१०।
पूरब के चँदवा पछीम कइले जाइ,
भउजी कै सिन्होरवा ननँद नहि दान ॥११॥
एक तो बेटी पातरी दोसर सुकवार,
कइसे कइसे बेटी सहिबो अगिनी की आँच ॥१२॥

तोहर लेखे आहो आमा अगिनी के आँच
हमरी लेखे कतनी अँचवा सीतल बतास ॥१३॥

ऊँचे घर की ऊँची अटा है, जिसपर बैठकर रूपा देवी अपने लम्बे बाल साफ़ कर रही है ॥१॥

हे रूपा बेटी ! तुम बाल क्या साफ़ कर रही हो ? तुम्हारा पति तो गाय की रक्षा में जूझ गया ॥२॥

रूपा के हाथ की कंघी हाथ ही में रह गई। माँग का सिन्दूर भगवान ने हर लिया ॥३॥

सभा में बैठे हुये हे मेरे बाबा ! मुझे एक बीता जगह दान दो ॥४॥

हे रूपा बेटी ! एक बीता जगह तुम पर अर्पण है। कायस्थ बुलाकर नपा लो न ? ॥५॥

मचिये पर बैठी हुई मेरी सासजी ! तुम मेरी माँ हो। मुझे एक रेशमी धोती दो ॥६॥

हे रूपा बेटी ! लहर पटोर (रेशमी वस्त्र) तुम पर अर्पण है। बजाज बुलाकर फड़वा लो न ? ॥७॥

पासा खेलते हुये हे मेरे भाई ! मुझे थोड़ी-सी चन्दन की चैली प्रदान करो ॥८॥

हे रूपा बहन ! चन्दन की चैली तुम पर अर्पण है। बढ़ई बुलाकर चिरा लो न ? ॥९॥

भंडार में घुसी हुई हे मेरी भौजी ! मुझे सिंधोरा (सिन्दूर का पात्र) प्रदान करो ॥१०॥

पूरब का चन्द्रमा पश्चिम में कैसे जायगा ? भौजीका सिंधोरा ननद को नहीं दिया जा सकता ॥११॥

हे बेटी ! एक तो तुम पतले अंग की हो, दूसरे सुकुमारी हो; हे बेटी ! आग की आँच कैसे सहोगी ॥१२॥

हे माँ! तुम्हारे लिये आग की आँच है; मेरे लेखे तो वह शीतल वायु है ॥१३॥

कहना नहीं होगा कि रूपा देवी सती हो गई।

ब्रजभाषा के गीत

ब्रजभाषा बड़ी मधुर भाषा है। यह मथुरा, आगरा, इटावा, एटा, बुलंदशहर, अलीगढ़, भरतपुर, धौलपुर, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, गुडगाँव, करौली और ग्वालियर के पश्चिमोत्तर भाग तक बोली जाती है।

डा० गौरीशंकर एम० ए०, पी०-एच० डी०, 'सत्येन्द्र', ने ब्रज के ग्रामगीतों का अच्छा संग्रह किया है जो पोद्दार-अभिनंदन-ग्रन्थ में प्रकाशित हुए हैं। उनमें से एक गीत नमूने के तौर पर यहाँ दिया जाता है:—

सात सहेलिन झुंड, चन्द्रावलि पानी निकरी जी।
आगे डेरा पठाँन के, चन्द्रावलि लइ ऐ छिपाइ ॥१॥
सरग-उड़ंती चीलिया, उड़ि मेरे पीहर जाउ।
जाउ बबुल तें यों कहौ, बेटी चन्द्रावलि लई ऐ छिपाइ ॥
जाउ बिरँन ते यों कहौ, मैना चन्द्रावलि लई ऐ छिपाइ ॥२॥
बबुल जो सुनिकें रोइए जी, माइ लै खाई ऐ पछार;
बिरँन जो सुनिकें रोइए जी, भावज खाई ऐ पछार;
ऐसी चन्द्रावलि ना मिलै, जैसी राज कुँमारि ॥३॥
थैली तौ बाँधी डेड़ सै जी रुपिअँनु ओरु न छोरु;
लै रे मुगल के छोहरा, हमरी चन्द्रावलि देउ छुड़ाइ;
ऐसी चन्द्रावलि ना मिलै, जैसी राज-कुँमारि ॥४॥
रुपिया तौ मेरें बहुत ऐं, थैलीन औरु न छोरु।
ऐसी चन्द्रावलि ना मिलै, जैसी राज कुँमारि ॥५॥
जाऔ बबुल घर आपने, जाउ बिरँन घर आपने।
रखूँगी दोउ कुल-लाज।
पाँनी न पीऊँ पठाँन कौ, सेजँन धरुँगी न पाँउ ॥६॥

सरग-उड़ँती चीलिया जा मेरे ससुरें जाउ।
मेरे कहियौ ससुर सँमझाइ, बहू चन्द्रावलि लई ऐ छिपाइ॥७॥

मेरे कहियौ दिवर सँमझाइ, भाभी चन्द्रावलि लई ऐ छिपाइ॥
मेरे कहियौ बलँम सँमझाइ, धनियाँ लई ऐ छिपाई।
मेरे कहियौ जेठ सँमझाइ, बहुअरि लई ऐ छिपाइ॥८॥

ससुरजी सुनि के रोईऐजी, सासुलि खाई ऐ पछार।
जेठ जी सुनि कें रोईऐ, जेठाँनी खाई ऐ पछार।
दिवर जु सुनि के रोईऐ, द्यौराँनी खाई ऐ पछार॥९॥

हतिया लै ससुर चालिए जी, बहुअरि लाँमें छुड़ाइ।
लै घुड़िला जेठै चले, बहुअरि लाँमें छुड़ाइ;
ऐसी चन्द्रावलि ना मिलै, जैसी राज-कुँमारि॥१०॥
लै उँटिला बाँलम चले जी, धँनियाऐं लाँमें छुड़ाइ।
गेंद लै दिवरा चले जी, भाभी ऐ लाँमें छुड़ाइ॥११॥

लै रे मुगल के छोहरा, हमारी चन्द्रावलि देउ छुड़ाइ॥१२॥
हतिया तौ हमारें भौतु ऐं हतिनिनु ओरु न छोरु।
घुड़िला तौ हमारें भौतु ऐं, घोड़ीन ओरु न छोरु;
ऐसी चन्द्रावलि ना मिलै, जैसी राज कुँमारि॥१३॥

ऊँट तौ हमारे भौतु ऐं, उँटियँनु ओरु न छोरु।
गेंद तौ हमारें भौतु ऐं बल्लँनु ओरु न छोरु।
ऐसी चन्द्रावलि न मिलै, जैसी राज-कुँमारि॥१४॥

जाऔ ससुर घर आपने, जाउ जेठ घर आपने,
राखूँगी पगड़ी की लाज।
खानों न खाऊँ पठाँन कौ, सेजँनु धरुँगी न पाँउ॥१५॥

जाऔ दिवर घर आपने, राखूँगी टोपी की लाज।
जाऔ बलँम घर आपने राखूँगी दोऊ कुल-लाज।
खाँनो न खाऊँ पठाँन कौ, सेजँनु धरुँगी न पाँऊ॥१६॥
सुनि रे पठाँन के छोहरा, पाँनी तौ भरि लाउ।
माँजि-धोइ लोटा भरि लाउ, ऐसी चन्द्रावलि प्यासी मरी जाइ॥१७॥
मुगलँनु पीठि जौ फेरिऐ, तमुअँन दै लई आगि।
ऐसी चन्द्रावलि जरि गई, जैसें राज-कुँमारि॥१८॥
हाड़ जरें जैसें लाकड़ी, केस जरें जैसें दूब।
हाइ-हाइ मुगला करें, तोबा करै पठाँनु॥१९॥

चंद्रावलि सात सहेलियों के झुंड में पानी भरने निकली। आगे पठान का पड़ाव पड़ा था; पठान ने चंद्रावलि को पकड़कर छिपा लिया॥१॥

चंद्रावलि ने आकाश में उड़ती हुई चील से कहा—हे चील! उड़कर मेरे नैहर को जाओ और मेरे पिता से कहो कि चंद्रावलि को पठान ने छिपा लिया है। मेरे छोटे भाई से कहना कि तुम्हारी बहन चंद्रावलि को पठान ने छिपा लिया है॥२॥

पिता तो यह सुनकर रो उठे; माता पछाड़ खाकर गिर पड़ी; छोटा भाई रोने लगा और भावज पछाड़ खाकर गिर पड़ी। हाय! ऐसी चंद्रावलि नहीं मिलेगी, जो राजकुमारी जैसी है॥३॥

पिता ने डेढ़ सौ थैलियों में इतने रुपये भरे, जिनका ओर ही छोर नहीं था। और उस मुगल के लड़के से कहा—ऐ मुगल के लड़के! ले, और मेरी चंद्रावलि को छोड़ दे। राजकुमारी-जैसी चंद्रावलि मुझे फिर कहाँ मिलेगी?॥४॥

मुगल के लड़के ने कहा—रुपया मेरे पास बहुत है; थैलियों का तो अंत ही नहीं है। राजकुमारी-जैसी चंद्रावलि फिर कहाँ मिलेगी?॥५॥

चंद्रावलि ने कहा—हे पिता ! घर ज ओ; हे छोटे भाई ! घर जाओ; मैं दोनों कुलों की लज्जा रक्खूगी। न मैं उसके हाथ का पानी पीऊँगी, न उसका सेज पर पैर रक्खूंगी ॥६॥

चंद्रावलि ने चील से फिर कहा—हे आकाश में उड़ने वाली चील ! अब तुम मेरी ससुराल में जाओ और मेर ससुर को समझाकर कहो कि बहू चंद्रावलि को पठान ने छिपा लिया है ॥७॥

मेरे देवर को समझाकर कहना कि तुम्हारी भाभी का पठान ने छिपा लिया है। मेरे स्वामी को समझा कर कहना कि तुम्हारी स्त्री को पठान ने छिपा लिय. है ॥८॥

समाचार सुनकर ससुर रोने लगा, सास पछाड़ खाकर गिर पड़ी। जेठ सुनकर रो पड़ा और जेठानी पछाड़ खाकर गिर पड़ी। देवर सुनकर रोने लगा और देवरानी पछाड़ खाकर गिर पड़ी ॥९॥

बहू को छुड़ा लाने के लिए ससुर हाथी लेकर, जेठ घोड़ा लेकर चला ॥१०॥

स्त्री को छुड़ाने के लिए पति ऊँट लेकर और भाभी को छुड़ाने के लिए देवर गेंद लेकर चला ॥११॥

उन्होंने कहा—मुगल के छोकरे ! ले; और हमारी चंन्द्रावलि को छोड़ दे ॥१२॥

मुगल के छोकरे ने कहा—हाथी तो मेरे पास बहुत हैं; हथिनियों की गिनती ही नहीं; घोड़े भी बहुत हैं; घोड़ियाँ अनगिनती हैं। राजकुमारी-जैसी चन्द्रावलि मुझे कहाँ मिलेगी ? ॥१३॥

ऊँट भी मेरे पास बहुत हैं; ऊँटिनों का अंत ही नहीं है। गेंद भी बहुत हैं, और बल्लों की गिनती ही नहीं। राजकुमारी-जैसी चन्द्रावलि मुझे फिर नहीं मिलेगी ॥१४॥

चन्द्रावलि ने कहा—हे ससुरजी ! घर लौट जाओ। हे जेठजी ! घर जाओ, मैं पगड़ी की लाज रक्खूंगी। मैं पठान का खाना न खाऊँगी और न उसकी सेज पर पाँव रक्खूंगी ॥१५॥

हे देवर ! अपने घर जाओ, मैं टोपी की लाज रक्खूंगी। हे स्वामी ! घर लौट जाओ मैं दोनों कुलों की लाज रक्खूंगी। मैं पठान का न खाना खाऊँगी, न उसकी सेज पर पाँव रक्खूंगी ॥१६॥

अरे, पठान के लड़के सुन; पानी भरकर ला। माँज-धोकर लोटा भर ला; चंद्रावलि प्यास के मारे मरी जा रही है ॥१७॥

मुगल के लड़के ने जैसे ही पीठ फेरी, वैसे ही चन्द्रावलि ने तंबू में आग लगा दी। राजकुमारी जैसी चन्द्रावलि जल गई ॥१८॥

हड्डियाँ लकड़ी जैसी और बाल घास की तरह जल गये। मुगल का लड़का हाय, हाय और उसके साथी पठान तोबा-तोबा करने लगे ॥१९॥

— — —

अनुक्रमणिका

अ

अकती खेलन कइसे ८४५
अँगना चनन बडो रूख २२५
अँगने में फिरहिं जच्चारानी २६४
अँगिया जो उघड़ी करैकर ७५७
अगिला सुगवा रुनझुन ६०३
अत्राविद्युक्तानि १०७
अद्यापि हि नृशंसस्य १०८
अन्ये तदनुरूपाणि ८०
अपने ओसारे कुसुमा ५७३
अपनी खिड़किया लचिया ५८८
अपने बपैयाजी कै रेसमा ६६९
अपने पिया की पिआरी ३८१
अमवा क लाग टिकोरवा ७५३
अमवा महुलिया घन पेड़ १०३
अय्यिय साहसकारिणि १८८
अयं पटो में पितुरंग-भूषण १५
अये लाजानुच्चैः १५
अरी अरी कारी कोइलि ८९
अरी अरी कारी कोइलि ४११
अरी अरी कारी बदरिया १११
अरे अरे काला भँवरवा ८९. ४०५
अरे अरे काली कोइलिया ४०१
अरे अरे बेटी पियारी रानी ३८५
अरे कुअना की पनिहारिन ७७९
अरे अरे स्यामा चिरइया ९०
अरे अरे स्यामा चिरइया १९१
अई सावन मेहँदी ६२८
अलबेली जच्चारानी २७७
अर्थोऽस्ति चेन्न ७०
अर्द्ध भार्या मनुष्यस्य १०६
असुतरां सुतरां ९९
अहिफन कमल ४७
अहिरा क सोभेला ७५८
अहो प्रमादी १२३
अंबरं विनयतः १२१

आ

आइउँ पिताजी की चोरी ६७७
आई गैन रितु बौंड़ी ७९७
आँखि तोरी देखुँ ए दुलहा १३५
आग लागी बनखंड में ५१
आगम बुद्धी बाणिया ८१८
आगि लागि घर जरिगा ५०
आजु मोरे लीपन पोतल ३१०
आज सुहाग कै राति ४३४
आज के गैला भँवरा ६६६
आज मोरे राम की सुधि ७२५
आठहि काठ केरि नइया ५७६
आधी फुलवरिया गुलबवा १०२
आधे तलवा माँ हंस चूनैं १०२,४०८
आप सस मंजे लोट दी ८२९
आयाते दयिते १०८

आभ फटै धर ऊससै ८१९
आलस नींद किसानै नासै २४
आलि कल्पय पुरः १२०
आली री बिन स्याम ७०५
आवत देखे मैं दुइरे सिपहिया ५१४
आसक नट साधक सती ८१४
आसन देखि बावा डासन १३४
आसौं के सवनवाँ ६२४

इ

इन्दु तण्डुल खंडमंडल ११६
इन नैनन के नीर १२५
इमली क ड़ सुरूहर ३२३
इरिषी उरूक वद्दु ८४१
इष एकपदी भव ३४५
इसी को कहते इस्टेशन ६५५

ई

ई देहियाँ तरवर की ७३५

उ

उठत रेख मसि भीजत १९७
उठै ही पीरो होय ८१४
उठोरी सुलच्छन नारि ७८८
उतरत चइत चढ़त बैसखवा ४६५
उतरत असाढ़ सुन री सखी ६२९
उतर हे्यों दक्खिन हेर्यों ३७०
उदन्वच्छिन्ना भूः ११५
उदियापुर की कामिणी ८२१
उपगीयमान उपगायन ७८
उवहु सुरुजमनि १०२,४२२

ऊ

ऊँच ओसरवा कवन रामा ३३३
ऊँच ऊँच कोठवा उठइहा ३६९
ऊँच ऊँच बखरी उठायो ३६८
ऊँच नगर पुर पाटन ४०२
ऊँचहि घरवा कै उँचि रे ८५७
ऊँचा नगर मधुवन कै ७८८
ऊँची अटारी उरेही ५८०
ऊँचे डगरिया कै कुँइया २५९
ऊजड़ खेड़े फिर वसै ७३३

ए

एक करेली हम बोवा १५१,६४३
एक फूल फूलै ६५३
ए कनउजवा के ब्राह्मन ३३७
एटुवंटि मोह मो कानि ८४२
एको रसः करुण एव ९१
एक हि घरवा के बतिस दुवार ४४९
एक मंद मै मोहबस १२८
एक साध मन उपजी २०४
एक सौ अमवा लगवलीं २९८
एक सुधि आइ गइली ४८५
ए नी वाँस घुघती ८०२
एह बेटी बहुत अधीनी १३६
ए ही रतन कुँवा ६५३

ऐ

ऐ रेण्डु तिंगला ८४२

ओ

ओखली चावल छाँटती ५५२,५५४

औ

औचक आइ जोबनवा ५०
औंघाई सीसी सुलखि १२४

क

कनक अटारी दिअना बरै ६४७
कनक छरी सी कामिनी १२२
कनक दिअट दियना बरै ४३८
कब मिलिहैं रघुनाथ हमारे ७२२
कमर में सोहै करधनिया २५२
कछुई बियानी कछुवा ७५४
क ठई लाई बरीलै ८०६
कदाचिदौन्थानिक ७९
कप्पु हेडांतियंदु ८३७
कपोले मार्जारः १२०
करूँ कौन जतन अरी एरी ६११,६२२
कवनी उमरिया सासू ५०८
कहँवा उपजी पुरइनि ६८०
कहा करौं बैकुंठ लै ७३७
कन्हैया नाहीं आये ८३७
कन्हैया बिरोगिनि करि गये ७४०
कहाँ पायो कँगना ७४४
कागद छोटो हित घणो ८१८
काछ दिढ़ा कर बरसणा ८१६
करो न माया मोरी ३२७
कहँवइ के गढ़ थवई ३७२
कहँवा ते सोना लाये ३९९
काचा दाख हेठ बनड़ी १३७
कारिक पियरिय बदरिया ९०, १०१,३०६
काञ्ची गुणैर्विरचिता १२१
काहे क चनना उतारेउ २५५
काहे रे अमवा हरियर १५७,२६५
काहे को हरुला ३२९
काहे बिन सून अँगनवा ३७१
काँचिनि इँटिया कै ६००
काहे फिरत बौरानी ६७८
कि गुन अमवा बउरले २१०
किन मोरी अवध उजारी ७१८
कीरति को मल एक ६६५
की हो दुलहे रामा ६७५
कुँवना खोदाये कवन फल २७४
कुरु करे गुरु मेकमयो घनम् ११६
कूर कुरकुट क कोठरी ४३५
कृष्ण सुदामा दोनों पढ़ने को ४९१
कृपा करिशि त १००
केकर ऊँच मंडिलवा २४३
केतनौ कोइलवा के ७५०
केन मोर छइहैं १६८
केथुवन छाई ला अरइल ४३०
के मोरे नौरँगिया लगावै २२९
केरे देले गोहुवाँ हो रामा ५५१
कोइली जे बोलैं अमवा ४२९
कोऊ कहै बार १२५
कोठवा से उतरी राधिका २००
कोठा उठाओ बरोठा उठावो ४००
कोप भवन राजा दसरथ २२१
कौन की ऊँची अटरिया १३३,३४८
कौने बन उपजै सुपरिया २७०
कौन गरहनवा बाबा साँझेजे ३५५
कौन फूल फूलेला ५६२
कौन फूल फूलेला घरीरे ५५६
कौनी उमरिया सासू ५९४
कौनी की जुनिया तेलिनि ६६०
कौन चिरैया पोथिया बाँचै ७४९
कौन रातदिन परा रहत है ७५८
कौने सहर के मोर ७७६
कौना मास फूलेला ६७८
कंथा खंडमिदं १६
कंथा रिण में जायनैं ८१९
क्वचिद्गायति ८०
काह यायुन यीयना ७९३

ख

खड़ग धार पै काह ८१९
खाइ लेहु खाइ रे लेहु ३८३
खिड़की हो बैठलीं रानी १७६

ग

गगरी में फँसरी ७५९
गड़ि जात बाजी १९
गढ़पर परेला ए हिंडोलवा ६२३
गतेऽर्द्ध रात्रे परिमंद मंदं ११७
गयाजी में बरुवा पुकारें ले ३२६
गरजउ हे दैवा गरजउ २४२
गलिया क गलिया पंडित घूमैं ३३५
गलिया क गलिया फिरइ ६१८
गहिरी जमुनवा के तिरवाँ ११८,२६३
गहिरी नदिया ए हरीजी ५०४
ग्रामेऽस्मिन पथिकाय १०८
गाय चराओं सुपास न पाओं ७४८
गोपिन के अँसुवान १२५
गोपीचंद रजवा के परिगै ५४९
गोड़वा धोवत १५४
गोरिया के छतिया प ७५३
गोरी गोरी बहियाँ सबज रँग ६५६
गोरी क जोवना ७५७
गोरी धन सुअना पालोजी ७६०
गोरी गोरी बहियाँ ७५४
गोविन्दा नहीं गाया ७८९
गंगा किनारे बरुवा फिरैं ३३०
गंगा जमुनवा के बिचवाँ १७४
गंगा जमुन बिच आँतर ३२४

घ

घर घर घुमहि नउनिया ३४१
घर में से निसरेली बेटी ३७६
घाराटो न पोरे मन ८५३
घेरि घेरि आवै पिया ६२३
घोड़ा हींसै बारणे ८२०
घोड़े चढ़ु दुलहा ८३,३६४

च

चकई पुछहि सुनु चकवा १९३
चकवा सारस वाण ८१८
चनन क बिरछा हुरेर ३३१
चनना कटाइउँ पलँगा बिनाइउं २५६
चरखा मेरा अठफागुडी १६४
चलहु न धनिया १९९
चलहु न सखिया सहेलरि १७५
चाची के दुइ कान ५२
चितै दे मेरी ओर २३,७२९
चिमणा बनुन गड़े ८३२
चींटी मरी पहाड़ पर ७५१
चुनाँ कहत शाले २७
चेतहु सीता चेतहु ७२७
चैतइ कै तिथि नौमी २१४,२६९,३०१
चैतइ बरुवा तेज चले ३३८
चैत अजोध्या में जनमे ७०२
चंदनक्कल्लिटे अरिकें ८३८
चंदा बरन बर ७५७
चंपक हरवा अँग मिलि ११४

छ

छव महीना कै बेटी रजलो ८७,५३८
छाड़ि देव राजा ७४३
छापक पेड़ छिड़लिया ९१,२४९
२०७,२१७
छीओ राम छीओ ७४३
छोट मोट पेड़वा ढँकुलिया १९६

छोटी मोटी गैया क ७३२
छोटी मोटी तुलसी गछिया १०२,५०२
छोटी मोटी दुहनी दुधे कै ८८,६१५

ज

जन्मना जायते शूद्रः ३१८
जबरा क मेहरारू २४
जब से छूटि रेल कै गाड़ी ४८,७५२
जब हम रहे जनक घर २९१
जगुः कलं च ७९
जहाँ पंच तहँ परमेसर ५६,७६७
जाते मजदाओ वरत ३१७
जाओगे हम जानी ७१९
जाने न दूगी वर ४३३
जायमानो हि ब्राह्मणः ३१८
जिवी ताहेन मोर ८४९
जियरा हमरा बिरोगी ७४३
जिरवै अस धन पातरि २४६
जुगुति मे परसौ जो ४५०
जेठ तपै दिन रात २५७
जेठ बैसखवा के गरमी २६७
जेठ बैसखवा क दिना २३४
जेठै कै दुपरिहया ४५६
जे धन होती बादली ८१८
जेहि दिन गोपीचंद ५४१
जोबन गया तो २१
जोवन गयो तो ५०
जौ तोरा मूंड़ पिराये १५६
जौने देस हिंगिया ८३,२६०
जौ मैं जनतेउँ ए लवँगरि १९९
जौ मैं होतेउँ बनकी ६००
ज्ड़ खो मे आगायो ८०७

झ

झिलमिल बहेला बयार १०२,५१२
झीने झीने गोहुँवाँ ४८७
झूरी आखुटी काणी ८००
झूला किन डारो रे २३

ट

टाँड़े से मेहँदी चली ६०७
टुटही मड़ैया बुनिया ६१४
टूटि खाट घर टपकत ५०,११३, ४०५

ठ

ठाढ़ी झरोखवा मैं चितवउँ २२,६१६
ठीक दुपहरिया ७८१
डीगी पाल तलाव री ८१७
डोला मेरो भीजै बिरछा तरे ७१६

ढ

ढोल बजंता हे सखी ८१६

त

ततः स पर्ण-बहुलां १०१
ततः सतु महाप्राज्ञो १२८
तद्वक्त्राब्जजितः ११६
तन तलवाराँ तिलछियो ८१३
तन में दरिया ८०७
ताल किनारे महल मोर ६३०
ताल में कुहकै ६३५
ताल में चमकइ ताल की ७४८
तिथिर्वारश्च नक्षत्रं ३१८
तीरे तरुण्या वदनं सहासं ११६
तुम पिया की पियारी ३९०
तुलसी को बैराग भयो ७६४
तूँ छै ये कुर्जा भायली ९०
तो कों देबों भौंरा ९०

द

दसइ बरिसवा क १३९
दरुवा भकोसि ७५९
दत्वा पीलु शमी करीर १०९
द्वारेन द्वारे बरुवा फिरें ३२४
दिन ती सून सुरुज बिन २७४
दिवा मा स्वप्सीः ३१९
दिनवा दिनवा मैं गिनौं ७६२
दीकरी दादाजी ने बिनवै १३८
दुअरे हे आवत दुलहा ४२३
दुइ मुँह छोट ५२
दुःखार्ते मयि दुःखिता १०५
दूधन नहाओ ५८
दूरिहि देस जनि फरेहु ६१७
दे देना बाबाजी ८०१
देहरी के ओट धन २८१
देहु न माता मोहि सेतुवा ३२२
देहु न मोरी माई बाँसे क ३५६

ध

धन्य है पुरुष तोरी भागि ७८६
धनशिरी भेटीले ८५४
धर धरती पग पागड़े ८१५
धीरे बहु नदिया १६०,६१३
धै देत्यो राम २०,४५,७२०
धोबी क चहिये ७८२
धोबी बेटी पानी को ७७४
धोरे धोरे बैठ ननद २३२

न

नजर भर हेरत कायें ८४५
नजर कइ मातल बढ़इया २१२
नदिया के ईरे तीरे ३२६,७५५
नदिया के ईरे तीरे ४२३
ननद भावोदा प्यार १६५
ननद भौजाई दूनौं पानी २८३
ननद भौजाई मिलि पनिया ५१९
ननदी भउजिया खेललीं ४८०
नभ फूलें फुलवरिया हो ७००
नव दुअरिया नव खंभा ३४०
नान्ध्री पयोधर इवातितरां ७१
नानी सुपुत्ती ने सूत १६५
ना बाबा बजना बजायो ३१४
नाहक गौन दिहे मोर १३९,४३५
नाहं जानामि केयूरे २९३
ना हम कुकुर बिलरिया १११
ना बिरहन की खेती ७८३
निम्पतिकृत नियमरहिता ७०
निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो ११८
निबिया क पेड़वा ७८०
निमिया की डार मैया ६९९
निशीथे जाइयो फुलबने ८५२
नीकी भुइँया नीकी भवानी ७५२
नीले नीले घोड़वा १३४,३६३
नैण लगें तो लगन दे ८१५
नोई देखी लागीले ८५३
नौज किसी सूं लागज्यो ८२१

प

पट पहिरींदास कीना ८०९
परबत पर दिवला बरै ५०
पर के अँगनवाँ भेंजनि ७३१
पतले सिंकिया क एकले ५९६
पनवा अस धन पातरि ७४६
पनवा कतरि कतरि भाजी ३८९
पनिया क गइउँ ५९१
परश्लोकान्स्तोकान् ७१
पद्मनाथ करुणां कुरु १२१

प्रसन्न सम्पादित १२३
पलँग जो आये बिकाय २५८
पहिलै मँगन सीता माँगैली ३५४
पहिल सपन एक देखेउँ १९५
प्रतीयमानं पुनरन्यदेव ७१
प्रविशामि कियंगेषु १०७
परदेसी प्रीतम काहे ६५०
परणंता म्हे परखियो ८१५
प हंगामा द ८०७
प्रवाथ हो आव ७९२
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं ९३
पाँच पंडा बोल बाबुल ४४१
पानी के पिआसल जिरवा ४४७
पाने कै पात झलामलि ४२४
प्यारे वे दिन खूब थे ८१८
प्यारी पौढ़ी पिलँग पर ८२१
प्रात में कातिक परा है ७११
पारा मीडा को छै मागी ८०३
पाँवों में पैंजनिया २१३
पिय सन अस मन २६
प्रियविरहितस्याद्य १०४
पिसना के परकी ७५४
पिया अपने को प्यारी ३५९
पिया नहिं आये भवनवा ६५६
पिया पिया कहत ७५५
पिया मोर चलिलें नोकरिया २७१
पीठाः कच्छपवत्तरन्ति १७
पुरुब पछिम मोरे बाबा क ३५७
पुरुब पछौहाँ मोरे बाबा क ३८०
पुरुब देसतें आये हैं ५९७
पुरुब से आई रेलिया २५
पूजन चली गौरि भवानी ६७५
पूरुब पछियवाँ से अइले ५७९
प्रेम पिरित रस बिरवा २१,६१८
प्रेयो मित्र १४८
पेंड तेरी सुहाई रे ६७२
पंडित मुनि बड़ ज्ञानी ७८४

फ

फूल एक फूलै गुलाब २४५
फूल मँदारे क फूलै ७५७
फूहरि नारि कैसे ७४४
फौज घटा खग दामणी ८१३

ब

बदन पर खुसबो आ जावेगी ७२८
बदनामी न सहबै ७४१
बड़ निक लागै ७५५
बदरिया झिमकत आवै ४८६
बनि बनि आवति नारि १७२
बनवारी हो हमरा के ४३७
बना मेरो कुंजन से ४३१
बन को चले दोनों भाई ७३०
बने बने गैया चरावै ७५३
बयार बहेला पुरवैया ४७१
बरसाँ बीस पचीस में ८१६
बरसै ओरिया क बुँदवा ६५५
बरिसहु बरिसहु देव ५५५
बरहै बरिसवा क मोरि ४३६
बरहँ बरिसवा क लचिया ५८४
बसुधाघर में बसुधाघर में १००
बँगला में सोवै सिउरिया ७६८
बाबा निमिया क पेड़ जिनि ११२,६१५
बाबा जे चलेन मोर वर हेरन १३४, ३५२
बाय चल्या छा भौंर जी ८२१
बार बरनी कन्याड़ी ने १४०
बाटा में की सेरी ७९४
बाबाजी बियहिन राजा घर ३०४

बाबा बाबा गोहरावों ३७३
बाजत आवै ककरहिली क बाजन ४१७
बाजत आवै ककरैला क बाजन ४१८
बाबल तेरा सींकों का ४४५
बारहि बरिस क मैना ४७५
बारह बरिसवा ग अम्मा ५३१
बाईं आँख मोर फरके ८५६
विमल किरतिया तोहरी रे ३८२
बिरहा गावउँ बाघ की नाई २७
बिन बैलन खेती करै २४
बिरना झीनी झीनी पतिया ८६,६०४
बिरहा क मोटरी ७८१
बीबी आया है असाढ़ ७१५
बुरु रे भाचिरे टिकुरारे मा ८४७
बेइलि एक हरि लायनि १०२,५१७
बेबलों बे ब जरो ८०८
बेरिया के बेर तुहें ६७०
बेरि बेरि बरजइ दीनानाथ ८५४
बेरिया क बेर मैं बरजेउँ ३९४
बेटी चन्नण दे ओहले १३६
बैठी थी सखिन संग १२६

भ

भरि गै है ताल तलैया ८३८
भारी भइल राम अँखिया ५३८
भूत की मिठाई जैसी १२५
भोर भये भिनुसार १८६

म

मचियहिं बैठी पुरखिन रानी ३७७
मद्गेहे मुसलीव १७
मधुवन रो ए आँबो ८२७
मन मुदित सकल महतारी ६७६
मन तोरा अदहन दिल तोरा २०,७७८
महँगी के मारे बिरहा २७,७५२
म्हे परणंता परखियो ८१९
मृगनयनी के नयन से ८२०
माई एहा पूत जण ८१९
माई तलवा कुहकै मोर ६२४
मारै डारै कटीली ७८९
मारे आँगणे लेमड़ी ८३१
माहे सुगहा जे भोरवै ३९८
मातु गंगा लागि ७३९
मुँह देखे क पियवा ६५६
मेरी लाडो सोवे अटारिया ४४०
मेंहदी चुनन गइलिउँ बगिया ६१९
मेंदी तो बावी मालवे ८३४
मैं बेला तरे ठाढ़ि रहिउँ ७२२
मैं न लड़ी थी ७४०
मैं का जानौं राम ७४५
मोटी मोटी लिटिया ७८२
मोर कौड़ी क लोभी ६६३
मोरँग मोरँग मैं सुन्यों ४५९
मोरे गोरे बदन पर ७२१
मोरी धानी चुनरिया ६२७
मोरे के अँगना तुलसिया ४१६
मोरे पिछवारे लौंग का बिरवा ३९७
मोरे पिछवरवाँ बाँस बसेरी ४३७
मोरे पिछवरवाँ रे घनी बँसवरिया ४६८
मोरे पिछवरवाँ कुम्हरवा की ४९५
मोरे पिछवरवाँ लिलहिया ६११

य

यकतो मोतिया ढुरूहुर ३३९
यथा नयति कैलासं ९९

यदेतच्चन्द्रान्तः १२२
यद्योनिः किल संस्कृतस्य १००
यही देसवा मोर जनम ७१३
यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं ३१७
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य ३१८
या मे दयार ८०७
यास्यत्यद्य शकुंतलेति १०५
ये अन्ता यावती १६३
ये रतनारे होरिलवा २४०
यौ वृन्दानि त्वरयति १११,३०८

र

रघुवर सँग जाब २२,७१९
रहिउ करम कै पातरि ७४९
राइयो रुकमिनि १६७
राजा अर्जीत सिंह के ६८३
राजा दसरथ के पिछवरवाँ २५३
रात पलहे दी हवै ८१७
राधे ललिता चन्द्रावलि २९७
राजा जनक अइलैं नहाइ ३६१
राजा दसरथ अँगना मूँजि ३२८
राम औ लछमन वह दोनों ७२३
राम क बगिया १३०,७४९
राम जे चलेनि मधुबन क १९८
राम चले ससुरिया २१५
रामं दशरथं विद्धि २९३
राम भइले जोगिया ७५०
रामा बारह बरिस क उमिरिया ५२७
रामा सखिया दीन दोठे ६८८
राम लइखण दुइ गोनी भाइ ८४३
राहइ पर एक कुँइया २९९
राम नहि जाने तो और जाने ७८५
रामहि राम रटन लागी ७४६

ल

लजिया कै वतिया ७५८
लरिका ठाकुर बूढ़ देवान २३
लवँग केरी लाकड़िये ८३३
लाड़ोकी अम्मा अरज करै ४४३
लाली तोरी अँखिया ये बाबू ४१५
लिखि लिखि पतिया के ४८९
लील लील घोड़वा कँवर ४४३
ले ले ले ले ला १४२
लै हो लिआइ प्रानपति ७३७

व

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत् ३२१
वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ७०
विद्याया पूर्वं पुर्णेन्दुं १२२
विलासमसृणोल्लसन् ८१
विलुलितमतिपूरैः १०६
विलोक्य संगमे रागं ११९
विधुरप्यर्कति १०७
विकल विरली भूताः १०९
वृथागाथाश्लोकैः ७७
वृद्धोन्धः पतिरेष १६
वे वधावेआ सज्जना ८०८

श

श्वश्रूः पश्यति १५३
शुश्रूषश्व गुरून् १५७

स

सकल चिरैया उड़ि जैहैं २१
सगरी रयनिया भौंरा ७६३
स्तनादूर्ध्वमधो नाभेः ३१९
सत मत छोड़े बावरे ८१५
सत मत हारे बाबरे ५१
सब की नगरिया गोविन्दा ५२४

सभवाँ बैठल सिरी कृस्न २१८
सभवहिं बैठे सिर साहब ३१२
सभवाँ बैठल तोहें बाबा ३३८
सभकों के पकइले पुड़िया ४७२
समझण दे तो सँपत दे ८१६
समुझ मन माँ ७३४
सरन गहो सिय राम कै ७३८
सर सूखो बेलू हिली ८१७
सरगा उड़ै एक चिल्हिया ९०
साँवलिया रे काहे मारै २१
साजन तेरे हेत ५०
सावन सुगना मै गुर घिउ ९०,३५१
ससुरु दुअरवां जम्हिरिया २५४
साँझ भई दिन अथवा ५०
साहं गौरिव सिहेन ११८
सावन मेंहदी बोवायउँ १०२
सासु जे बोललीं अड़पी १६०,२३५
सासु मोरी कहेली बँझिनिया १८०
सासु ने बहू बे १६९
सावन भादौं की अन्हियरिया २३६
सासु जे चली हैं निहारन ३६०
सात सखी सीता चढ़ि गईं ३६२
सासु गोसाई बड़ी ठकुराइनि ३८८
सावन माँ कुस कास जामे ६२१
सावन घन गरजै ६२५
सावन की हरियाली है ६४५
सात बहिनि चंदा सिंकिया ६८५
सात गाँव घर तीन ७७२
सासु गोसाईं तोरी ७७८
सात सहेलिन झुंड ८५९
स्याम उगारी रण रहे ८१४
सीरीमा सीरीनी बाला सै ८०५
सीसेन तंत्रं १६३
सुभाषितेन गीतेन ८१
सुनत पथिक मुंह माह निसि १२४
सुनु कपि जिय मानसि १२८
सुनेयो सुनेयो नमेयो १६५
सुखिया दुखियादोनों बहिनियाँ२७९
सुनिले कन्हैया मोर जोगीभइलें३०९
सुगना बोलै रे ६७७
सुनो सखी मैयाँ ६२०
सुमिरन करके अजैपाल को ६९५
सुधिया न लीने रामा ७३५
सूतल रहली अटरिया २२०
सूतल रहलों मैं अपने ५०५
सोच मन काहे क करी २२,७६५
सोचइ सोच तीनों पन ७२६
सोढ़े ऊमरकोटरी ८२०
सोने के खड़उँवा कवन राम २३८
सोने के खरउँवा राजाराम ९४,४६५
सोने के खड़उँवा राजा दसरथ१८३,
३०२,३२५
सोने के पिढ़वाँ रे राम ४२६
संतो नदी वहै इक धारा २२,७२९
सोरठियो दोहो भलो ८२०
सोरहो सिंगार सीता कइली १७८
सोवत सुगना कोइलरि ६६७
सोवत रहलिउँ मैं मैया के कोरवाँ
३९६,४०२
सौना भदौना की रतिया ३०८,३९३

ह

हटियै सेंदुरा महँग भये ३९५
हनि हनि काटिनि खंबा २२४
हम चितवत तुम चितवत २६
हमने कही थी लाला ६५१
हमरे बबैया ज के ५६७
हमरे बलमुवा के ८८
हरि हरि बेला फुलै आधी ६५५

हरो हरो गोबरा पियरो है ४४६
हस्ते कपोलममलं १०४
हँसि हँसि पूछइँ राजा २७८
हाथी चढ़ो बाबा हाथी चढ़ो ३१५
हाथी में माजेउँ घोड़ा में ४२५
हाथे ले ले लोटिया ४२०
हाँ हे होइ परिम गोइ ८५२
हे पाँच पान नौ नरियल ४१३

क्ष

क्षत्क्षामाः शिशवः १५
क्षपां क्षामीकृत्य ११९

ग्राम-साहित्य पर पठनीय पुस्तकें

हिन्दी

धरती गाती है	देवेन्द्र सत्यार्थी
धीरे बहु गंगा	देवेन्द्र सत्यार्थी
बेला फूले आधीरात	देवेन्द्र सत्यार्थी
बाजत आवे ढोल	देवेन्द्र सत्यार्थी
आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत	राहुल सांकृत्यायन
ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन	डा० सत्येन्द्र
भोजपुरी ग्रामगीत	कृष्णदेव उपाध्याय
भोजपुरी लोकगीत में करुणरस	दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह
मैथिली लोकगीत	रामइक़बाल सिंह
बुन्देलखंड के लोकगीत	उमाशंकर सिंह
छत्तीसगढ़ी लोकगीत	श्यामाचरण दुबे
पंजाबी गीत	सन्तराम
राजस्थानी लोकगीत	सूर्यकरण पारीक
ढोला मारू रा दूहा	रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तम स्वामी
मालवी लोकगीत	श्याम परमार
विन्ध्यप्रदेश के लोकगीत	श्रीचन्द्र जैन
हिन्दी-लोकगीत	राम किशोरी श्रीवास्तवा
हमारे लोकगीत	पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी
सुहाग-गीत	विद्यावती कोकिल

बँगला

हारामणि — क्षितिमोहन सेन

गुजराती

रढ़ियाली रात — झवेरचंद मेघाणी

लोकगीत — रणजीतराव मेहता

नागर स्त्रियों माँ गवाता गीत — नर्मदाशंकर लालशंकर

अँग्रेज़ी

Folk Lore in Southern India—Natesan Shastri

Ancient ballads and legends of Hindustan–Toru Dutt.

Folk-Songs of Southern India—C. E. Gover

पहले संस्करण की सम्मतियाँ

(१)

पण्डित मदन मोहन मालवीय—

प्रिय त्रिपाठी जी,

ग्राम-गीत संग्रह का जो भाग आपने मुझे दिखाया है, उसको देखकर मुझको अनिर्वचनीय सुख प्राप्त हुआ है। इसमें अनेक गीतों में बहुत रस, बहुत मिठास और मन पर चोट करने वाले भाव बड़ी सरल भाषा में भरे हुये हैं। जो लोग कविता के हृदय के पहिचानने वाले हैं, और जिनको हमारे गाँवों में बसनेवाले सीधे और भोले भाई और बहिनों के जीवन का ज्ञान है, वे इस संग्रह में उनके सुख-दुख, मान-अपमान, उनके मन की कामना और धर्म के भाव के उद्गार में बहुत रस पावेंगे। इन गीतों के संग्रह का आपका परिश्रम अति प्रशंसनीय है। इस परिश्रम से आपने हिन्दी जगत् को सदा के लिये उपकृत किया है। मुझे निश्चय है कि कविता के प्रेमी आपके इस संग्रह का प्रेम से स्वागत करेंगे।

काशी — मदन मोहन मालवीय

भाद्र० कृ० ९, सं० १९८६ वि०

(२)

महात्मा गाँधी—

भाई रामनरेश जी,

आपके ग्रामगीतों के संग्रह का जो कुछ परिचय मैं कर सका हूँ, उससे आपके परिश्रम का और राष्ट्रभाषा प्रेम का कुछ नाप मुझको मिलता है। संग्रह उत्तम लगा। मैं तो चाहता हूँ, प्रत्येक हिन्दी-भाषा-प्रेमी आपके संग्रह

का अध्ययन करें। पुस्तक विद्यालयों में स्थान लेने लायक मानता हूँ। आपने गीतों का अनुवाद दिया है, उससे पुस्तक की उपयोगिता अधिक हुई है। आपके प्रयत्न के लिये धन्यवाद।

मेरठ — आपका

२८-१०-२९ — मोहन दास गाँधी

(३)

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी—

आपने साहित्य के इस अछूते अंश की पूर्ति करके बड़ा काम किया। बड़ी अच्छी पुस्तक लिखी। पुस्तक के आरम्भ के कई सौ पृष्ठ तो अनमोल ही हैं। उनमें विषय की विवेचना और आपके साहित्य-ज्ञान की राशियाँ भरी मिलीं।

(४)

डाक्टर भगवानदास—

नमस्कार।

अनेक धन्यवाद। ग्राम-गीत की पुस्तक मिली। जबतक आँखों में और हृदय में अधिक व्यथा नहीं आरम्भ हुई, तबतक पढ़ता रहा। हृदय दुर्बल हो जाने से सचमुच बहुत करुणा की कविता पढ़ने-सुनने से रस उठने के स्थान में व्यथा ही अब होने लगती है। नैषध का श्लोक याद आता है—

पिकाद्वने श्रृण्वति भृङ्गहुंकृतै-
र्दशामुदञ्चत्करुणं वियोगिनाम्।
अनास्थया सूनकरप्रसारिणीं
ददर्शदूनः स्थलपद्मनीं नलः॥

आपका परिश्रम और सदुत्साह सफल हो। और देश में मिथ्या शाब्दिक चतुरता और नटबाजी और कृत्रिम अलंकार की भरमार कम हो और गंभीर भाव और रस का उद्बोधन हो।

पिबत भागवतं रसमालयम्
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः
—न तु आलंकारिकाः—

गीतों में मुझे, तो रस की मात्रा व्यास, वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति से भी—तथा तुलसीदास, सूरदास से भी, अधिक जान पड़ी। मुझे तो संस्कृत में ऐसा रस नही आता।

भगवान्दास

(५)

लाला लाजपतराय—

My Dear Tripathiji,

I am realy happy to hear that you are making a collection of Folke-lore-songs of the provinces of Northern India. I congratulate on your enterprise, because the real history of the country and its moral and social ideals are so much locked up in these Folk-lores that their loss will be a real disaster. We are losing every thing valuable in our Folklore traditions, and any body who restores them to life again and makes them available to the educated people would do a lasting service to the country and also to the Hindu culture. I hope, therefore, that patriotic indians whether educated or uneducatd will help you in this work. I wish you success from the bottom of my heart.

(६)

माननीय सर सीताराम—

(प्रेसीडेंट लेजिस्लेटिव कौंसिल, युक्तप्रान्त) नैनीताल।

श्रीयुत त्रिपाठीजी,

प्रणाम। ग्राम-गीत के लिये धन्यवाद तथा बधाई। ग्राम-गीतों का

संग्रह कर आपने बड़ा उपकार किया है। इनसे हमारी सभ्यता, आदर्श तथा जीवन-प्रणाली का पता भली-भाँति लगता है। खेद तो यह है कि आये दिन इनका अभाव होता जा रहा है। यदि इसी प्रकार साहित्य को मर्म-दृष्टि से देखकर आप हमारे पश्चिमी प्रांत के गीतों को पुस्तकाकार में प्रकाशित कर सकें, तो अच्छा हो।

मैं तो यह चाहता हूँ कि साहित्य के अतिरिक्त हमारी लोकोक्तियों में जो परोपकारी लाभदायक अन्य अनेक बातें हैं, उनका भी संग्रह आवश्यक है। जैसे दवाओं के चुटकुले। अन्यथा नवजीवन के प्रवाह में अथवा जीवन-संघर्ष में पुराने साहित्य के साथ इन सब बातों का भी सर्वनाश हो जावेगा। अब भी प्रायः लोप हो गया है। आपका उद्यम और परिश्रम सराहनीय है।

(७)

कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सेक्रेटरी का पत्र—

Dear Mr. Tripathi,

Dr. Rabindranath Tagore is very glad to know that you have been taking great pains in collecting rural songs from different parts of india. He sends his blessings and wishes you every succass. He hopes your book will find appreciative readers and help to spread the love of folk-literature among our country men.

(८)

प्रो० नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०, भाषातत्व-रत्न—

ग्राम-गीतों का संग्रह, संकलन और प्रचार आपके अद्भुत आत्म-त्याग का परिचायक है। पुस्तक की भूमिका सुचिन्तित और सुलिखित है।

(९)

बाबू रामानन्द चटरजी, (माडर्न रिव्यू के सम्पादक)—

Dear Mr. Tripathi,

Your efforts to collect and publish folk-songs are highly praiseworthy. Your collection is sure to be useful and valuable. The work deserves every support and encouragement

Yours sincerely
Ramanand Chatterji

(१०)

महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा,
(भू० वाइस चांसलर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी)

Dear Tripathiji,

Many thanks for the fifth part of Kavita-Kaumudi, which fully maintains the standard of the previous parts: indeed from point of view of interest it surpasses them all. I wish you got some one to collect such songs from Mithila, where our women have a large stock of songs which may be regarded to be as नित्य and अपौरुषेय as the Veda itself.

I shall keep your collection always by me : an occasio nal dip into it will be so inspiring and ennobling with many thanks.

Yours sincerely
Ganganath Jha

(११)

मंत्री, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी--

आपकी "कविता-कौमुदी" का पाँचवाँ भाग सभा के गत अधि-

वेशन में उपस्थित किया गया था। यह भाग बहुत ही उत्तम निकला है और इसके लिये सभा आपको बधाई देती है।

(१२)

बाबू राजेन्द्रप्रसाद—

यदि कविता का गुण है हृदय को बेंचना—उस पर चोटें करना, तो ग्राम-गीत इस भाव से ओत-प्रोत हैं। आपका परिश्रम बहुत ही सफल हुआ है। और मैं समझता हूँ, हिन्दी-संसार आपके परिश्रम की कदर करेगा।

(१३)

पंडित रामनारायण मिश्र, काशी—

ग्राम-गीतों का संग्रह कर आपने मातृ-भाषा की सच्ची सेवा की है। स्वर्गवासी पं० सुधाकर द्विवेदीजी ने ऐसा संग्रह छपवाने की कई बार इच्छा प्रकट की थी। पर उनके जीते-जी यह काम न हुआ। यदि वे आज होते तो आपको सच्चे हृदय से आशीर्वाद देते।

आपकी पुस्तक पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

(१४)

मिस्टर ए० जी० शेरिफ़, I. C. S.—

I Congratulate you on the fifth volume. You have done a great service to literature in collecting and preserving this store of genuine folk-songs. It seems to me to be a work in the same class with Percy's *Reliques* of Ancient English Poetry. Percy's Reliques (as you know) was largely responsible for the romantic revival in English Literature at the end of the eighteenth century. Let us hope that your ग्रामगीत will have a similar influence.

The few ballads that I have read in the last ten days have the ring of the poetry and your commentary justly illustrates this. A study of these ballads will probably guide poets of the present generation to a fresh and living source of natural expression.

(१५)

बाबू मैथिलीशरण गुप्त –

आपकी मौलिक रचनायें ही आपको अमर बनाने के लिए यथेष्ट हैं, परन्तु आप और कुछ न करके यदि एक यही काम करते, तो भी अक्षय यश के अधिकारी थे।

कुछ गीत तो इतने कारुणिक हैं, कि आँसू नहीं रुकते। न जाने, ऐसा कितना साहित्य होगा ! भगवान आपका भला करे, आपका ध्यान इस ओर गया है। नये मन्दिर निर्माण कराने की अपेक्षा पुरानों का जीर्णोद्धार करना बड़े त्याग और पुण्य का काम है; किन्तु इसके लिये बड़े मनोबल की आवश्यकता है; आप भाग्यवान हैं कि आपमें वह बल है।

(१६)

प्रो० अमरनाथ झा, एम० ए०—

हिन्दी का आपने इस संग्रह के प्रकाश करने से बड़ा उपकार किया है। आपके परिश्रम और उत्साह की मैं क्या प्रशंसा करूँ ? यदि आप स्वयं सुकवि न होते, तो केवल 'कविता-कौमुदी' के पाँच भाग का संकलन ही इस योग्य था कि हिन्दी-साहित्य में आपको आदरणीय स्थान दिलावे।

इन गीतों को पढ़ने पर कवियों के पद कैसे नीरस मालूम होते हैं ! न इनमें अनुप्रास है, न अलंकार की खोज है, न शब्द-विन्यास है। हृदय की उमंग है, स्वाभाविक भाव है, नित्य की भाषा है और सीधे हृदय

पर प्रभाव पड़ता है। सोचना नहीं पड़ता। प्रभाव पड़ने पर विचारते हैं, 'प्रभाव क्यों पड़ा ? इस पद में क्या विशेषता है ?' विचार करें, गाने-वाला तो प्रभाव डालकर अपना काम कर गया।

"जैसे कुम्हार क औंवाँ त भभकि-भभकि रहै।
बेटा, वैसइ माई क करेजवा त धधकि-धधकि रहै।।"

"आधे तलवाँ माँ हंस चूनैं आधे माँ हंसिनि।
तबहूँ न तलवा सोहावन एक रे कमल बिन।।

आधी फुलवरिया गुलबवा आधी माँ केवड़ा गमकइ।
तबहूँ न फुलवा सुहावन एक रे भँवर बिन।।"

"जो मैं होतिउँ बन कइ कोइलिया, बनै रे बन रहतिउँ हो ना।
मोरा हरि जाते अहेरिया, तौ सबद सुनौतिउँ हो ना।।"

बड़ा आनन्द होता है इन्हें पढ़ने पर; और शोक भी होता है कि अपनी इतनी अनमोल सम्पत्ति को हम लुप्त होने दे रहे हैं। आशा है, आपके प्रयत्न से यह स्थायी-स्वरूप में साहित्य का अङ्ग होगा।

(१७)

डा० बाबूराम सक्सेना—

ग्राम-गीतों के संग्रह में जो अदम्य उत्साह आप दिखा रहे हैं, उसके लिये आप प्रशंसा के पात्र हैं। आपके इस काम का मूल्य भविष्य में मालूम होगा, जब इन गीतों का प्रायः लोप ही हो जायगा।

(१८)

प्रो० ताराचन्द राय (बर्लिन युनिवर्सिटी, जर्मनी)—

You have rendered a signal service to the cause of Indian rural poetry through the publication of your most valuable and interesting collection. You deserve the

deepest gratitude of all Hindi scholars for the excellent to the fifth volume of your kavita-Kaumudi.

(१६)

सन्तराम, बी० ए०, (लाहौर)—

ग्राम-गीतों का ऐसा सुन्दर संग्रह तैयार करके आपने एक बहुत ही पुण्य कार्य किया है। कोई-कोई गीत तो इतना मर्मस्पर्शी है कि पढ़ते-पढ़ते आत्मा बाह्य जगत को भूल-सा जाता है। मालूम नहीं, वर्तमान पीढ़ी आपके परिश्रम की कद्र कर सकेगी या नहीं; परन्तु एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जब जनता आपके इस भगीरथ-प्रयत्न की दाद देगी।

सूचना—

पहले संस्करण में ग्रामगीत कविता-कौमुदी का पाँचवाँ भाग था। अब दूसरे संस्करण में वह हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक कवियों के भागों के बाद तीसरा कर दिया गया है।

सम्पादक

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library
मसूरी
MUSSOORIE
यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है ।
This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.

GL H 491.1
KAV V.3
122270
LBSNAA

H
491.1
कविता
वर्ग संख्या
Class No.....

अवाप्ति संख्या
ACC No.....15099
पुस्तक सं.
Book No.....

लेखक
Author.....
शीर्षक
Title..... कविता- गौरव ।

निर्गम दिनांक Date of Issue	उधारकर्ता की सं. Borrower's No.	हस्ताक्षर Signature

491.1 LIBRARY 15099

LAL BAHADUR SHASTRI

National Academy of Administration

MUSSOORIE

कविता
भाग 3

Accession No. 122270

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving